हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

षोडश भाग

हिंदी का लोकसाहित्य

संपादक

म. पं. राहुल सांकृत्यायन

डा० कृष्णादेव उपाध्याय

नागरीप्रचारिणी सभा • काशी

मूल्य २५)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

(सत्रह भागों में)

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

सं० २०१७ वि०

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मुद्रक : महताब राय, नागरी मुद्रण, काशी

प्रथम, संस्करण २००० प्रतियाँ, संवत् २०१७ वि०

मूल्य २५)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

षोडश भाग

हिंदी का लोकसाहित्य

संपादक

महापंडित राहुल सांकृत्यायन
डा० कृष्णदेव उपाध्याय

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

सं० २०१७ वि०

प्राक्कथन

यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास के प्रकाशन की सुचिंतित योजना बनाई है। यह इतिहास १७ भागों में प्रकाशित होगा। हिंदी के प्रायः सभी मुख्य विद्वान् इस इतिहास के लिखने में सहयोग दे रहे हैं। यह हर्ष की बात है कि इस शृंखला का पहला भाग, जो लगभग ८०० पृष्ठों का है, छप गया है। उक्त योजना कितनी गंभीर है, यह इस भाग के पढ़ने से ही पता लग जाता है। निश्चय ही, इस इतिहास में व्यापक और सर्वांगीण दृष्टि से साहित्यिक प्रवृत्तियों, आंदोलनों तथा प्रमुख कवियों और लेखकों का समावेश होगा और जीवन की सभी दृष्टियों से उनपर यथोचित् विचार किया जायगा।

हिंदी भारतवर्ष के बहुत बड़े भूभाग की साहित्यिक भाषा है। गत एक हजार वर्ष से इस भूभाग की अनेक बोलियों में उत्तम साहित्य का निर्माण होता रहा है। इस देश के जनजीवन के निर्माण में इस साहित्य का बहुत बड़ा हाथ रहा है। संत और भक्त कवियों के सारगर्भित उपदेशों से यह साहित्य परिपूर्ण है। देश के वर्तमान जीवन को समझने के लिये और उसको अभीष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर करने के लिये यह साहित्य बहुत उपयोगी है। इसलिये इस साहित्य के उदय और विकास का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचन महत्वपूर्ण कार्य है।

कई प्रदेशों में बिखरा हुआ साहित्य अभी बहुत अंशों में अप्रकाशित है। बहुत सी सामग्री हस्तलेखों के रूप में देश के कोने कोने में बिखरी पड़ी है। नागरीप्रचारिणी सभा पिछले ५० वर्षों से इस सामग्री के अन्वेषण और संपादन का काम कर रही है। बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश की अन्य महत्वपूर्ण संस्थाएँ भी इस तरह के लेखों की खोज और संपादन का कार्य करने लगी हैं। विश्वविद्यालयों के शोधप्रेमी अध्येताओं ने भी महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन और विवेचन किया है। इस प्रकार अब हमारे पास नए सिरे से विचार और विश्लेषण के लिये पर्याप्त सामग्री एकत्र हो गई है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि हिंदी साहित्य के इतिहास का नए सिरे से अवलोकन किया जाय और प्राप्त सामग्री के आधार पर उसका निर्माण किया जाय।

हिंदी साहित्य के इस बृहत् इतिहास में लोकसाहित्य को भी स्थान दिया गया है, यह खुशी की बात है। लोकभाषाओं में अनेक गीतों, वीरगाथाओं, प्रेम-गाथाओं तथा लोकोक्तियों आदि की भी भरमार है। विद्वानों का ध्यान इस ओर

भी गया है, यद्यपि यह सामग्री अभी तक अधिकतर अप्रकाशित ही है। लोककथा और लोककथानकों का साहित्य साधारण जनता के अंतस्तर की अनुभूतियों का प्रत्यक्ष निदर्शन है। अपने बृहत् इतिहास की योजना में इस साहित्य को भी स्थान देकर सभा ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

हिंदी भाषा तथा साहित्य के विस्तृत और संपूर्ण इतिहास का प्रकाशन एक और दृष्टि से भी आवश्यक तथा वांछनीय है। हिंदी की सभी प्रवृत्तियों और साहित्यिक कृतियों के अविकल ज्ञान के बिना हम हिंदी और देश की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के आपसी संबंध को ठीक ठीक नहीं समझ सकते। इंडो-आर्यन् वंश की जितनी भी आधुनिक भारतीय भाषाएँ हैं, किसी न किसी रूप में और किसी न किसी समय उनकी उत्पत्ति का हिंदी के विकास से घनिष्ठ संबंध रहा है, और आज इन सब भाषाओं और हिंदी के बीच जो अनेकों पारिवारिक संबंध हैं उनके यथार्थ निदर्शन के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि हिंदी की उत्पत्ति और विकास के बारे में हमारी जानकारी अधिकाधिक हो। साहित्यिक तथा ऐतिहासिक मेलजोल के लिये ही नहीं बल्कि पारस्परिक सद्भावना तथा आदान प्रदान बनाए रखने के लिये भी यह जानकारी उपयोगी होगी।

इन भागों के प्रकाशित होने के बाद यह इतिहास हिंदी के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करेगा, और मैं समझता हूँ कि यह हमारी प्रादेशिक भाषाओं के सर्वांगीण अध्ययन में भी सहायक होगा। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के इस महत्वपूर्ण प्रयत्न के प्रति मैं अपनी हार्दिक शुभकामना प्रगट करता हूँ और इसकी सफलता चाहता हूँ।

राष्ट्रपतिभवन,
नई दिल्ली।
३ दिसंबर, १९५७

राजेन्द्र प्रसाद

षोडश भाग के लेखक

१. श्री रामइक्बाल सिंह 'राकेश'—बिहार राज्यांतर्गत मुजफ्फरपुर जिले के निवासी। 'मैथिली लोकगीत' के संपादक।

२. श्रीमती संपत्ति आर्याणी, एम० ए०—पटना विश्वविद्यालय के साइंस कालेज में हिंदी की प्राध्यापिका।

३. श्री श्रीकांत मिश्र—पटना जिले के निवासी। 'मगही' मासिक पत्रिका के संपादक।

४. श्री रामानंद, एम० ए०—पटना विश्वविद्यालय में भूगोल के प्राध्यापक। 'बिहान' नामक पत्रिका के संपादक।

५. श्री डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, एम० ए०, पी-एच० डी०—राजकीय डिग्री कॉलेज, ज्ञानपुर, वाराणसी में हिंदी के प्राध्यापक। 'भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन' शीर्षक निबंध पर पी-एच० डी०। भोजपुरी लोकगीत, भाग १–२ आदि अनेक ग्रंथों के संपादक।

६. श्री सत्यव्रत अवस्थी, एम० ए०—'बिहाग रागिनी' नामक अवधी लोकगीतों के संपादक।

७. श्री श्रीचंद्र जैन, एम० ए०—अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, खरगोन (मध्यप्रदेश)। 'भुइयाँ परे हैं लाल', 'धरत मोरी मैया', 'बघेली लोकगीत' आदि ग्रंथों के संपादक।

८. श्री दयाशंकर शुक्ल—'छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य' के संपादक।

९. श्री कृष्णानंद गुप्त—ग्राम गरौठा, जिला झाँसी के निवासी। टीकमगढ़ की 'लोकवार्ता' नामक त्रैमासिक पत्रिका के संपादक।

१०. श्री डॉ० सत्येंद्र, एम० ए०, पी-एच० डी०—हिंदी विद्यापीठ, आगरा में प्राध्यापक। 'ब्रज-लोक-संस्कृति', 'ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन' आदि महत्वपूर्ण ग्रंथों के रचयिता।

११. श्री संतराम 'अनिल', एम० ए०—क्रिश्चियन कालेज, लखनऊ में हिंदी के प्राध्यापक। 'कन्नौजी लोकगीत' के संपादक।

१२. श्री नारायणसिंह भाटी—जोधपुर से प्रकाशित 'परंपरा' नामक त्रैमासिक पत्रिका के संपादक।

१३. डॉ० श्याम परमार, एम० ए०, पी-एच० डी०—'मालवी लोकगीत', 'मालवा की लोककथाएँ' आदि ग्रंथों के संपादक।

१४. श्री कृष्णचंद्र शर्मा 'चंद्र'—मेरठ कालेज में हिंदी के प्राध्यापक।

१५. श्री देवेंद्र सत्यार्थी—हिंदी, उर्दू तथा पंजाबी तीनों भाषाओं में अनेक प्रदेशों के लोकगीतों के संपादक। उपन्यासकार और पत्रकार।

१६. श्री रामनाथ शास्त्री—'बाबा जित्तो' तथा 'न माँ ग्राँ' आदि ग्रंथों के लेखक। डोगरी संस्था, जम्मू (कश्मीर) के संस्थापक।

१७. श्री ओंकारसिंह 'गुलेरी'—डोगरी संस्था, जम्मू (कश्मीर) के संस्थापक।

१८. श्री शमी शर्मा—शिमला (पंजाब) के निवासी। काँगड़ी लोकसाहित्य के संग्राहक।

१९. श्री डॉ० गोविंद चातक, एम० ए०, पी-एच० डी०—'गढ़वाली लोकसाहित्य का अध्ययन' विषयक शोधनिबंध पर पी-एच० डी०। 'गढ़वाली लोकगीत' तथा 'गढ़वाली लोककथाएँ' नामक ग्रंथ के संपादक।

२०. श्री मोहनचंद्र उपरेती—कुमाऊँनी लोकसाहित्य के अन्वेषक और संग्राहक।

२१. श्रीमती डॉ० कमला सांकृत्यायन—महापंडित राहुल सांकृत्यायन की पत्नी। नेपाली लोकसाहित्य की संग्राहिका और विदुषी।

२२. श्री पद्मचंद्र काश्यप—कुलुई लोकसाहित्य के संग्राहक और अन्वेषक।

२३. श्री हरिप्रसाद—हायर सेकेंडरी स्कूल, चंबा में अध्यापक। चंबियाली लोकसाहित्य के संग्राहक और अन्वेषक।

हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास की योजना

गत ५० वर्षों के भीतर हिंदी साहित्य के इतिहास की क्रमशः प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई है और उसके ऊपर कई ग्रंथ भी लिखे गए हैं। पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपना हिंदी साहित्य का इतिहास सं० १९८६ वि० में लिखा था। उसके पश्चात् हिंदी के विषयगत, खंड और संपूर्ण इतिहास निकलते ही गए और आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के हिंदी साहित्य (सं० २००६ वि०) तक इतिहासों की संख्या पर्याप्त बड़ी हो गई। सं० २००४ वि० में भारतीय स्वातंत्र्य तथा सं० २००६ वि० में भारतीय संविधान में हिंदी के राज्यभाषा होने की घोषणा होने के बाद हिंदी भाषा और साहित्य के संबंध में जिज्ञासा बहुत जाग्रत हो उठी। देश में उसका विस्तारक्षेत्र इतना बड़ा, उसकी पृष्ठभूमि इतनी लंबी और विविधता इतनी अधिक है कि समय समय पर यदि उनका आकलन, संपादन तथा मूल्यांकन न हो तो उसके समवेत और संयत विकास की दिशा निर्धारित करना कठिन हो जाय। अतः इस बात का अनुभव हो रहा था कि हिंदी साहित्य का एक विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया जाय। नागरीप्रचारिणी सभा ने आश्विन, सं० २०१० वि० में हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास की योजना निर्धारित और स्वीकृत की। इस योजना के अंतर्गत हिंदी साहित्य का व्यापक तथा सर्वांगीण इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय तथा इतिहास में उसकी पृष्ठभूमि से लेकर उसके अद्यतन इतिहास तक का क्रमबद्ध एवं धारावाही वर्णन तथा विवेचन इसमें समाविष्ट है। इस योजना का संघटन, सामान्य सिद्धांत तथा कार्यपद्धति संक्षेप में निम्नांकित है :

प्राक्कथन—देशरत्न राष्ट्रपति डॉ० राजेंद्रप्रसाद

भाग	विषय और काल	संपादक
प्रथम भाग	हिंदी साहित्य की पीठिका	डा० राजबली पांडेय
द्वितीय भाग	हिंदी भाषा का विकास	डा० धीरेंद्र वर्मा
तृतीय भाग	हिंदी साहित्य का उदय और विकास १४०० वि० तक	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
चतुर्थ भाग	भक्तिकाल (निर्गुण भक्ति) १४००–१७०० वि०	पं० परशुराम चतुर्वेदी
पंचम भाग	भक्तिकाल (सगुण भक्ति) १४००–१७०० वि०	डा० दीनदयालु गुप्त
षष्ठ भाग	शृंगारकाल (रीतिबद्ध) १७००–१९०० वि०	डा० नगेंद्र

सप्तम भाग	शृंगारकाल (रीतिमुक्त) १७००–१९०० वि०	पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
अष्टम भाग	हिंदी साहित्य का अभ्युत्थान (भारतेंदुकाल) १९००–५० वि०	श्री विनयमोहन शर्मा
नवम भाग	हिंदी साहित्य का परिष्कार (द्विवेदीकाल) १९५०–७५ वि०	डा० रामकुमार वर्मा
दशम भाग	हिंदी साहित्य का उत्कर्षकाल १९७५–९५ वि०	पं० नंददुलारे वाजपेयी
एकादश भाग	हिंदी साहित्य का उत्कर्षकाल (नाटक) १९७५-९५ वि०	श्री जगदीशचंद्र माथुर
द्वादश भाग	हिंदी साहित्य का उत्कर्षकाल (उपन्यास, कथा, आख्यायिका) १९७५–९५ वि०	डा० श्रीकृष्णलाल
त्रयोदश भाग	हिंदी साहित्य का उत्कर्षकाल १९७५–९५ वि०	श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
चतुर्दश भाग	हिंदी साहित्य का अद्यतनकाल १९९५–२०१० वि०	डा० रामअवध द्विवेदी
पंचदश भाग	हिंदी में शास्त्र तथा विज्ञान	डा० विश्वनाथप्रसाद
षोडश भाग	हिंदी का लोकसाहित्य	पं० राहुल सांकृत्यायन
सप्तदश भाग	हिंदी का उन्नयन	डा० संपूर्णानंद

१—हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों का विभाजन युग की मुख्य सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है।

२—व्यापक सर्वांगीण दृष्टि से साहित्यिक प्रवृत्तियों, आंदोलनों तथा प्रमुख कवियों और लेखकों का समावेश इतिहास में होगा और जीवन की सभी दृष्टियों से उनपर यथोचित विचार किया जायगा।

३—साहित्य के उदय और विकास, उत्कर्ष तथा अपकर्ष का वर्णन और विवेचन करते समय ऐतिहासिक दृष्टिकोण का पूरा ध्यान रखा जायगा अर्थात् तिथिक्रम, पूर्वापर तथा कार्य-कारण-संबंध, पारस्परिक संघर्ष, समन्वय, प्रभावग्रहण, आरोप, त्याग, प्रादुर्भाव, अंतर्भाव, तिरोभाव आदि प्रक्रियाओं पर पूरा ध्यान दिया जायगा।

४—संतुलन और समन्वय में इसका ध्यान रखना होगा कि साहित्य के सभी पक्षों का समुचित विचार हो सके। ऐसा न हो कि किसी पक्ष की उपेक्षा हो जाय और किसी का अतिरंजन। साथ ही साहित्य के सभी अंगों का एक दूसरे से संबंध

और सामंजस्य किस प्रकार से विकसित और स्थापित हुआ, इसे स्पष्ट किया जायगा। उनके पारस्परिक संघर्षों का उल्लेख और प्रतिपादन उसी अंश और सीमा तक किया जायगा जहाँ तक वे साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध होंगे।

५—हिंदी साहित्य के इतिहास के निर्माण में मुख्य दृष्टिकोण साहित्य-शास्त्रीय होगा। इसके अंतर्गत ही विभिन्न साहित्यिक दृष्टियों की समीक्षा और समन्वय किया जायगा। विभिन्न साहित्यिक दृष्टियों में निम्नलिखित की मुख्यता होगी :

(१) शुद्ध साहित्यिक दृष्टि : अलंकार, रीति, रस, ध्वनि, व्यंजना आदि।
(२) दार्शनिक।
(३) सांस्कृतिक।
(४) समाजशास्त्रीय।
(५) मानववादी, आदि।

६—विभिन्न राजनीतिक मतवादों और प्रचारात्मक प्रभावों से बचना होगा। जीवन में साहित्य के मूल स्थान का संरक्षण आवश्यक होगा।

७—साहित्य के विभिन्न कालों में विविध रूप में परिवर्तन और विकास के आधारभूत तत्वों का संकलन और समीक्षण किया जायगा।

८—विभिन्न मतों की समीक्षा करते समय उपलब्ध प्रमाणों पर सम्यक् विचार किया जायगा। सबसे अधिक संतुलित और बहुमान्य सिद्धांत की ओर संकेत करते हुए भी नवीन तथ्यों और सिद्धांतों का निरूपण संभव होगा।

९—उपर्युक्त सामान्य सिद्धांतों को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक भाग के संपादक अपने भाग की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। संपादकमंडल को इतिहास की व्यापक एकरूपता और आंतरिक सामंजस्य बनाए रखने का प्रयास करना होगा।

पद्धति

१—प्रत्येक लेखक और कवि की उपलब्ध कृतियों का पूरा संकलन किया जायगा और उसके आधार पर ही उनके साहित्यक्षेत्र का निर्वाचन और निर्धारण होगा तथा उनके जीवन और कृतियों के विकास में विभिन्न अवस्थाओं का विवेचन और निदर्शन किया जायगा।

२—तथ्यों के आधार पर सिद्धांतों का निर्धारण होगा, केवल कल्पना और संमतियों पर ही किसी कवि अथवा लेखक की आलोचना अथवा समीक्षा नहीं की जायगी।

३—प्रत्येक निष्कर्ष के लिये प्रमाण तथा उद्धरण आवश्यक होंगे।

४—लेखन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जायगा—संकलन, वर्गीकरण, समीकरण, संतुलन, आगमन आदि।

५—भाषा और शैली सुबोध तथा सुरुचिपूर्ण होगी।

६—प्रत्येक खंड के अंत में संदर्भग्रंथों की सूची आवश्यक होगी।

यह योजना विशाल है। इसके संपन्न होने के लिये बहुसंख्यक विद्वानों के सहयोग, द्रव्य तथा समय की अपेक्षा है। बहुत ही संतोष और प्रसन्नता का विषय है कि देश के सभी सुधियों तथा हिंदीप्रेमियों ने इस योजना का स्वागत किया है। संपादकों के अतिरिक्त विद्वानों की एक बहुत बड़ी संख्या ने सहर्ष अपना सहयोग प्रदान किया है। हिंदी साहित्य के अन्य अनुभवी मर्मज्ञों से भी समय समय पर बहुमूल्य परामर्श होते रहते हैं। भारत की केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों से उदार आर्थिक सहायताएँ प्राप्त हुई हैं और होती जा रही हैं। नागरीप्रचारिणी सभा इनसभी विद्वानों, सरकारों तथा अन्य शुभचिंतकों के प्रति कृतज्ञ है। आशा की जाती है कि हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास निकट भविष्य में पूर्ण रूप से प्रकाशित होगा।

इस योजना के लिये विशेष गौरव की बात है कि इसको स्वतंत्र भारतीय गणराष्ट्र के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी का आशीर्वाद प्राप्त है। हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास का प्राक्कथन लिखकर उन्होंने इस योजना को महान् बल और प्रेरणा दी है। सभा इसके लिये उनकी अत्यंत अनुगृहीत है।

नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी।

राजबली पांडेय,
संयोजक,
हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास

संपादकीय वक्तव्य

किसी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिये उसके लोकसाहित्य का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। शिष्ट साहित्य का लोकसाहित्य से घनिष्ठ संबंध है। वास्तविक बात तो यह है कि शिष्ट साहित्य लोकसाहित्य का ही विकसित, संस्कृत तथा परिमार्जित स्वरूप है। इंगलैंड के चिड्विक बंधुओं ने 'ग्रोथ आव लिटरेचर' नामक ग्रंथ में तथा एफ० बी० गूमर ने 'बिगिनिंग्स आव पोएट्री' नामक अपनी सुप्रसिद्ध रचना में यह दिखलाने का प्रयास किया है कि अभिजात वर्ग के साहित्य के निर्माण में लोकसाहित्य ने प्रचुर योगदान किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी प्रकार के भाव प्रकट करते हुए लिखा है[1] :

> 'भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने परिचित ग्रामगीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है; केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्यपरंपरा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है।...'
>
> 'जब जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बँधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब तब उसे सजीव और चेतनप्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवनतत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।'

इस प्रकार आचार्य शुक्ल के मतानुसार शिष्ट साहित्य के सम्यक् स्वरूप को पहचानने के लिये लोकसाहित्य का अध्ययन आवश्यक है। लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य के लिये सदा उपजीव्य रहा है और भविष्य में भी रहेगा।

हिंदी साहित्य के इतिहास के अनुशीलन से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि इसके निर्माण में लोकसाहित्य की प्रचुर देन है। हिंदी साहित्य के आदिकाल को आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथाकाल' नाम दिया है। ये वीरगाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं—(१) प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में और (२) वीरगीतों (बैलेड्स) के रूप में। प्रबंध काव्य के रूप में जो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं उनमें 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो' तथा 'परमाल रासो' मुख्य हैं। यद्यपि इन रासो काव्यों के कथानक में प्रायः परंपरागत संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश युग की

[1] रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सातवाँ संस्करण, सं० २००८, पृ० ६००-६०१

प्रसंगरूढ़ियों का निर्वाह है, फिर भी अनेक लोकप्रचलित किंवदंतियाँ इनमें जुड़ी हुई पाई जाती हैं। पृथ्वीराज रासो में होली और दीपावली संबंधी ऐसी ही किंवदंतियाँ दी गई हैं जो पौराणिक परंपरा से भिन्न हैं। शुक्ल जी ने जिन काव्यों को 'वीरगीत' कहा है वे लोकगाथाएँ (बैलेड्स) हैं जो लोकसाहित्य की एक विधा है। वीरगीतों का प्रसिद्ध उदाहरण जगनिक द्वारा रचित 'आल्हा' है, जो अपनी लोकप्रियता के कारण उत्तरी भारत की जनता के गले का हार बन गया है।

भक्तिकाल के साहित्य पर विचार करने पर उसके अंतस्तल में लोकसाहित्य की आत्मा स्पष्ट झलकती हुई दिखाई पड़ती है। निर्गुण शाखा के प्रधान कवि महात्मा कबीर की रचना को बिना किसी प्रतिवाद के लोकगीत कहा जा सकता है। आज भी गाँवों में अनेक 'निर्गुन' और भजन गाए जाते हैं जिनमें 'कबीरदास' का नाम बराबर पाया जाता है। कबीर के अनेक दोहे राजस्थान की सुप्रसिद्ध प्रेम-गाथा 'ढोला मारू रा दूहा' में ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं। सूरसागर के सम्यक् विश्लेषण से भी अनेक महत्वपूर्ण लोकतत्वों का पता चल सकता है। सूर के पदों में ऐसे अनेक स्थल हैं जो ब्रज प्रदेश की लोकसंस्कृति की ओर संकेत करते हैं। सूरसागर में लोकोक्तियों और मुहावरों का सहज प्रयोग देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूरदास ने भाषा को गढ़ने का प्रयत्न नहीं किया है, बल्कि लोक में प्रचलित टकसाली भाषा को ज्यों का त्यों उठाकर रख दिया है। आचार्य शुक्ल ने सूर की कविता के संबंध में लिखा है :

'इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीत-काव्य-परंपरा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है[1]।' शुक्ल जी के इस कथन से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि सूरसागर की रचना के मूल स्रोत वे लोकगीत तथा लोकगाथाएँ रही होंगी जो राधा और कृष्ण की प्रेमलीला के संबंध में ब्रजमंडल में गाई जाती रही होंगी।

इसी प्रकार जायसी और तुलसी के काव्यों में लोकसाहित्य तथा लोक-संस्कृति की सामग्री उपलब्ध होती है। जायसी ने अवध में जनसाधारण के बीच प्रचलित लोककथा को अपने 'पद्मावत' का विषय बनाया है। इतना ही नहीं, इन्होंने लोकगीतों की एक विधा—बारहमासा—को अपनाकर नागमती के विरह का वर्णन भी किया है। जायसी के पद्मावत को लोकसंस्कृति (फोकलोर) का कोश

[1] वही, पृ० १६५

कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। लोकविश्वास, लोकपरंपरा, लोकप्रथा, लोकधर्म, लोकजीवन आदि विषयों का सजीव चित्रण इस कवि ने अपने ग्रंथ में किया है। तुलसीदास ने लोकसंस्कृति के तत्वों को कुछ संस्कृत तथा परिष्कृत रूप में ग्रहण किया है। गोस्वामी जी ने शिष्ट साहित्य तथा लोकसाहित्य की परंपराओं की गंगाजमुनी छटा दिखलाई है। यद्यपि लोकसाहित्य का प्रभाव छने हुए रूप में इनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है, फिर भी सोहर आदि लोकगीतों के छंदों में रामचरित की व्यंजना करके इन्होंने अपने लोकानुराग का अच्छा परिचय दिया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिंदी साहित्य के निर्माण में लोकसाहित्य ने आधारशिला का कार्य किया है। हिंदी के संतसाहित्य में लोक-साहित्य के तत्व प्रचुर परिमाण में पाए जाते हैं। अतः कुछ विद्वानों के मतानुसार इन्हें लोकसाहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय का गंभीर विवेचन करते हुए लिखा है[1] :

'इन मध्य युग के संतों का लिखा हुआ साहित्य—कई बार तो यह लिखा भी नहीं गया, कबीर ने तो 'मसि कागद' छुआ ही नहीं था—लोकसाहित्य कहा जा सकता है या नहीं ? क्यों कबीर की रचना लोकसाहित्य नहीं है ? सच पूछा जाय तो कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर मध्ययुग के संपूर्ण देशी भाषा के साहित्य को लोकसाहित्य के अंतर्गत घसीटकर लाया जा सकता है। अतः आचार्य द्विवेदी जी के अनुसार हिंदी के संपूर्ण संतसाहित्य को लोकसाहित्य कहा जा सकता है। अन्य विद्वानों ने भी द्विवेदी जी के इस मत का समर्थन किया है। हमारी संमति में हिंदी साहित्य के वीरगाथाकाल तथा भक्तिकाल की अधिकांश रचनाओं को लोकसाहित्य में अंतर्भुक्त किया जा सकता है।'

ऐसी परिस्थिति में हिंदी साहित्य के इतिहास के सम्यक् अनुशीलन के लिये लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि से परिचित होना एक आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। अतः हिंदी साहित्य के इतिहासकारों का यह धर्म है कि वे लोकसाहित्य के परिप्रेक्ष्य (पर्स्पेक्टिव) में हिंदी साहित्य के अनुशीलन तथा शोध का प्रयास करें।

यह अत्यंत परितोष का विषय है कि 'हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास' के आयोजकों ने उपर्युक्त मौलिक महत्व को समझा और उनकी सूक्ष्म दृष्टि लोक-साहित्य की महत्ता की ओर आकृष्ट हुई। संभवतः इस दिशा में यह सर्वप्रथम प्रयास है। जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोकगीतों तथा लोकसाहित्य का मूल्य अपनी तत्वभेदिनी प्रतिमा के द्वारा बहुत पहले से ही

[1] 'जनपद', वर्ष १, अंक १, पृ० ७१

समझा था तथा हिंदी साहित्य के सम्यक् अध्ययन के लिये लोकसाहित्य की ओर संकेत भी किया था। परंतु इस कार्य को संपादित करने का श्रेय वर्तमान आयोजकों को ही प्राप्त है।

हिंदी साहित्य के बृहत् इतिहास का प्रस्तुत (सोलहवाँ) भाग लोकसाहित्य से संबंधित है। इस खंड की विशेषता यह है कि इसके विभिन्न अध्यायों को उस विषय के अधिकारी विद्वानों ने लिखा है। इन लेखकों में से अधिकांश ने अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में लोकगीतों तथा लोककथाओं का संग्रह तथा संपादन कर ख्याति प्राप्त की है। लोकसाहित्य संबंधी इतनी प्रचुर सामग्री का एकत्र संकलन तथा विवेचन और हिंदी की विभिन्न बोलियों के लोकसाहित्य—लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकसुभाषित आदि—का इतना विभिन्न संग्रह तथा गंभीर आलोचन राष्ट्रभाषा हिंदी में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने अपनी जनपदीय बोलियों के लोकगीतों तथा कथाओं का संकलन स्फुट रूप में अवश्य किया, परंतु बीस क्षेत्रीय भाषाओं के लोकसाहित्य की मीमांसा एकत्र करने का कोई प्रयास अब तक नहीं हुआ था।

लोकसाहित्य के मौलिक सिद्धांतों को प्रतिपादित करने के लिये विस्तृत प्रस्तावना के रूप में लोकसाहित्य का समीक्षात्मक विवेचन भी पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। इसका श्रेय डा० कृष्णदेव उपाध्याय को है। इसमें लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति, लोकगाथाओं की उत्पत्ति, उनका श्रेणीविभाग, उनकी विशेषताएँ, लोककथाओं की प्राचीन परंपरा, उनके प्रधान तत्व तथा लोकसुभाषितों, लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों आदि का प्रामाणिक विवेचन करने का प्रयास किया गया है, आशा है, इस विवेचन के द्वारा लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं तथा विशेषताओं को सरलता से समझा जा सकेगा।

ग्रंथ में हिंदीभाषी प्रदेश की निम्नांकित बीस जनपदीय बोलियों तथा भाषाओं के लोकसाहित्य का वर्णन प्रस्तुत किया गया है—(१) मैथिली, (२) मगही, (३) भोजपुरी, (४) अवधी, (५) बघेली, (६) छत्तीसगढ़ी, (७) बुंदेली, (८) व्रज, (९) कनउजी, (१०) राजस्थानी, (११) मालवी, (१२) कौरवी, (१३) पंजाबी, (१४) डोगरी, (१५) काँगड़ी, (१६) गढ़वाली, (१७) कुमाऊँनी, (१८) नैपाली, (१९) कुलुई तथा (२०) चंबियाली। इन समस्त क्षेत्रीय भाषाओं को भाषाविज्ञान की दृष्टि से सात समुदायों में विभाजित किया गया है तथा प्रत्येक समुदाय के अंतर्गत जो बोलियाँ या भाषाएँ आती हैं उनके लोकसाहित्य का विवेचन हुआ है। इन विभिन्न समुदायों का विभाजन तथा उनके अंतर्गत समाविष्ट बोलियों की परिगणना निम्नांकित है :

समुदाय	बोलियाँ या भाषाएँ
(१) मागधी समुदाय	(१) मैथिली, (२) मगही, (३) भोजपुरी ।
(२) अवधी समुदाय	(४) अवधी, (५) बघेली, (६) छत्तीसगढ़ी ।
(३) व्रज समुदाय	(७) बुंदेली, (८) व्रज, (९) कनउजी ।
(४) राजस्थानी समुदाय	(१०) राजस्थानी, (११) मालवी ।
(५) कौरवी	(१२) कौरवी ।
(६) पंजाबी समुदाय	(१३) पंजाबी, (१४) डोगरी, (१५) काँगड़ी ।
(७) पहाड़ी समुदाय	(१६) गढ़वाली, (१७) कुँमाऊँनी, (१८) नेपाली, (१९) कुलुई, (२०) चंबियाली ।

इस प्रकार उपर्युक्त सात समुदायों में विभाजित बीस क्षेत्रीय भाषाओं के लोकसाहित्य का वर्णन यहाँ पर किया गया है। इस विवरण को प्रस्तुत करते समय वर्णन का क्रम पूर्व से पश्चिम की ओर रखा गया है, अर्थात् सबसे पहले उस भाषा को लिया गया है जो उपर्युक्त सातो समुदायों में सबसे पूर्व में बोली जानेवाली (भाषा) है। उसके पश्चात् उससे पश्चिम की भाषा ली गई है। इसी क्रम के अनुसार मागधी समुदाय में सबसे पूरब की मैथिली भाषा का वर्णन है, फिर मगही और बाद में भोजपुरी का। मागधी समुदाय के पश्चात् अवधी, व्रज तथा राजस्थानी समुदाय लिए गए हैं, जो क्रमानुसार पूर्व से पश्चिम की ओर पड़ते हैं।

प्रत्येक लोकसाहित्य का विवेचन मुख्यतः तीन दृष्टियों से किया गया है : (१) अति संक्षेप में भाषा, (२) मौखिक साहित्य, तथा (३) मुद्रित साहित्य। मौखिक साहित्य के अंतर्गत पहले गद्य का वर्णन है, पश्चात् पद्य का। गद्य के अंतर्गत लोककथाएँ, कहावतें, मुहावरे आदि आते हैं। पद्य के क्षेत्र में लोकगीत, लोकगाथा (पँवाड़ा), लोरियाँ, शिशुगीत तथा खेल के गीत रखे गए हैं। मुद्रित साहित्य के अंतर्गत उन कवियों तथा लेखकों का वर्णन है जिनकी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। भाषा के प्रसंग में विभिन्न भाषाओं की बोलियाँ, उनका क्षेत्रविस्तार, उस भाषा के बोलनेवालों की संख्या आदि दी गई हैं। प्रत्येक भाषा के क्षेत्रविस्तार को निश्चित रूप से समझने के लिये प्रत्येक अध्याय के साथ उस भाषा का मानचित्र भी दे दिया गया है। पाठकों की सुविधा के लिये पुस्तक के अंत में

हिंदी तथा अंग्रेजी में लोकसाहित्य संबंधी अब तक प्रकाशित पुस्तकों की विस्तृत सूची भी दे दी गई है।

इस ग्रंथ के संपादन की विस्तृत योजना मैंने बनाई थी। उसके आधार पर हिंदी भाषा की विभिन्न बोलियों को समुदायों में विभक्त करके तथा प्रत्येक बोली या भाषा में उपलब्ध लोकसाहित्य की विवेचना करनेवाले अधिकारी विद्वानों को चुनकर प्रत्येक बोली से संबंधित विस्तृत सामग्री प्रस्तुत कराई थी। जो सामग्री इस प्रकार प्रस्तुत हुई वह इतनी विशाल थी कि उसे एक भाग में प्रकाशित करना असंभव था। बहुत से लेखकों ने लोकगाथाओं के लंबे लंबे उदाहरण दिए थे जिनमें कई सौ पंक्तियाँ थीं। जो कथाएँ उदाहरण स्वरूप दी गई थीं उनकी भी दीर्घता कुछ कम न थी। एक ही प्रकार के गीत के अनेक उदाहरण देने तथा लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रचुर संकलन प्रस्तुत करने से पांडुलिपि का आकार अत्यंत विशाल हो गया। अतः इसका संक्षेपीकरण अत्यंत आवश्यक था। इस बीच मुझे विदेश जाना पड़ा अतः मेरी अनुपस्थिति में यह कार्य अत्यंत परिश्रम और सावधानी से डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया। इस दृष्टि से अनेक अंशों को हटाना पड़ा। केवल उदाहरण स्वरूप एक या दो लोककथाओं को स्थान दिया गया है। प्रत्येक लोकगीत का प्रायः एक ही उदाहरण दिया गया तथा मुहावरों एवं कहावतों की संख्या भी प्रायः दस तक सीमित कर दी गई। यथासंभव केवल उन्हीं अंशों को हटाया गया है जो विशेष आवश्यक नहीं समझे गए हैं। अतः जिन विद्वानों के लेखों में उद्धृत गीतों के उदाहरणों में से कटौती की गई है उन सभी लोगों से मैं क्षमायाचना करता हूँ। वास्तव में पुस्तक के मूल रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है, केवल अनावश्यक उदाहरणों को हटा दिया गया है। दो तीन विद्वानों ने मुद्रित साहित्य एवं भाषा संबंधी परिचय नहीं दिया था, जिसे पुस्तक में एकरूपता लाने के लिये जोड़ दिया गया है।

उन सभी विद्वान् लेखकों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ के निर्माण में योगदान किया है। इस ग्रंथ की अनुक्रमणिका श्री हरिशंकर, एम० ए० के प्रयास का परिणाम है।

राहुल सांकृत्यायन

संकेतसारिणी

अ०	अवधी
आ० गृ० सू०	आश्वलायन गृह्यसूत्र
आ० प०	आदि पर्व (महाभारत)
इं० ए०	इंडियन एंटीक्वेरी
इं० स्का० पा० बै०	इंगलिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स
उपाध्याय	कृष्णदेव उपाध्याय, डा०–
ऋ० वे०	ऋग्वेद
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
ओ० इं० बै०	ओल्ड इंगलिश बैलेड्स
ओ० डे० बे० लै०	ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आव् बेंगाली लैंग्वेज
क०	कनउजी
क० कौ०	कविता कौमुदी
काँ०	काँगड़ी (बोली)
कु०	कुमाऊँनी (बोली)
कुलु०	कुलुई (बोली)
कौ०	कौरवी (बोली)
ग०	गढ़वाली (बोली)
ग्रा० गी०	ग्रामगीत
चं०	चंबियाली (बोली)
ज० ए० सो० ब०	जर्नल आव् दि एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल
ज० रा० ए० सो०	जर्नल आव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, इंगलैंड
जै० उ० ब्रा०	जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
डिक्शनरी आव् फोकलोर०	डिक्शनरी आव् फोकलोर माइथोलोजी एंड लीजेंड
डो०	डोगरी
तां० ब्रा०	तांड्य ब्राह्मण
दि स्टडी आव् फोकसाँग्स	एसेज इन दि स्टडी आव् फोकसाँग्स

ना० प्र० स०	नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
ने०	नेपाली
न्यू० इं० डि०	न्यू इंगलिश डिक्शनरी
पं०	पंजाबी
प्र०	प्रस्तावना
ब०	बघेली
ब्र०	ब्रज
ब्र० लो० सा० अ०	ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन
भो० लो० गी०	भोजपुरी लोकगीत
भो० लो० सा० अ०	भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन
म०	मगही
मा०	मालवी
मार्टिनेंग	काउंटेस ईवलिन मार्टिनेंग
मै०	मैथिली
मै० सं०	मैत्रायिणी संहिता
रा०	राजस्थानी
रा० च० मा०	रामचरितमानस
रा० लो० गी०	राजस्थानी लोकगीत
लिं० स० इ०	लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया
श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
सि० कौ०	सिद्धांतकौमुदी
सं०	संवत्
ह० ग्रा० सा०	हमारा ग्रामसाहित्य
हिं० सा० बृ० इ०	हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास
हिं० सा० सं०	हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग

विषयसूची

(*लोकसाहित्य खंड*)

प्रथम खंड

मागधी समुदाय

द्वितीय खंड

अवधी समुदाय

तृतीय खंड

ब्रज समुदाय

चतुर्थ खंड

राजस्थानी समुदाय

पंचम खंड

कौरवी

षष्ठ खंड

पंजाबी समुदाय

सप्तम खंड

पहाड़ी समुदाय

प्रस्तावना

लेखक
डा० कृष्णदेव उपाध्याय

प्रस्तावना

१. लोकसाहित्य का सामान्य परिचय

(१) 'लोक' शब्द की प्राचीनता—'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकृ दर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है।[1] इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है जिसका लट् लकार में अन्यपुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखनेवाला'। अतः वह समस्त जन-समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा। 'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में लोक शब्द के लिये 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।[2] वैदिक ऋषि कहता है कि विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत के लोगों की रक्षा करता है :

'य इमे रोदसी उभे अहमिंद्रमतुष्टवं।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं॥

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुषसूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है।[3] यथा :

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

उपनिषदों में अनेक स्थानों में 'लोक' शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में यथार्थ ही कहा गया है कि यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह प्रभूत या व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह से जान सकता है ?[4]

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः।
क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्॥

[1] सिद्धांत कौमुदी, पृ० ४१७ (वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९८९)
[2] ऋ० वे० ३।५३।१२
[3] वही, १०।९०।१४
[4] जै० उ० ब्रा० ३।२८

महावैयाकरण पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनसे ठञ् प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा 'सार्वलौकिकः' शब्दों की निष्पत्ति की है।[1] 'सर्वत्र विभाषा गोः' ६।१।१२३ सूत्र की वृत्ति को देखने से पता चलता है लोक और वेद में एङन्त गो शब्द को पद के अंत में विकल्प से प्रकृति भाव होता है।[2] इससे ज्ञात होता है पाणिनि ने वेद से पृथक् लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की निष्पत्ति बतलाते हुए लिखा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार का है परंतु लोक में इसका स्वरूप भिन्न प्रकार का समझना चाहिए।[3] वररुचि ने अपने वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।[4] इन्होंने भी अनेक स्थानों पर इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि अमुक शब्द का लोक में अमुक रूप में व्यवहार होता है। महाभाष्यकार पतंजलि ने लोक में प्रचलित गौः शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में किया है।[5]

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवें अध्याय में अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्री संहिता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ (महाभारत) अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक (साधारण जनता) की आँखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।[6]

अज्ञानतिमिरांधस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानांजनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम्॥

इसी प्रकार महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए लोकयात्रा का

१ लोक सर्वलोकाट्ठञ्। ५।१।४४
तत्र विदित इत्यर्थे। लौकिकः। अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः। सार्वलौकिकः।

२ लोके वेदे चैङन्तस्य गोरिति वा प्रकृतिभावः स्यात्पदांते। गो अग्रम्। गोऽग्रम्। ६।१।१२२ सूत्र की वृत्ति देखिए।

३ बहुलं छंदसि २।४।३९ तथा २।४।७३; २।४।७३ सूत्रों की व्याख्या देखिए।

४ लोकस्य पृणे। सि० कौ०; पृ० २६७।६ वार्तिक सूची

५ केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानां च। एकैकस्य शब्दस्य बहवो उपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी-गोणी-गोता-गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। महाभाष्य-पश्पशाह्निक।

६ महाभारत, आ० प०, १।८४

उल्लेख किया गया है।[१] इसी पर्व में एक अन्य स्थान पर पुण्य कर्म करनेवाले लोक का वर्णन उपलब्ध होता है।[२] महर्षि व्यास ने लिखा है :

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः

अर्थात् जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है वही उसे सम्यक् रूप से जान सकता है।

भगवद्गीता में 'लोक' तथा 'लोकसंग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है।[३] भगवान् श्रीकृष्ण ने 'लोकसंग्रह' पर बड़ा बल दिया है। वे अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं[४] :

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ लोकसंग्रह का अर्थ साधारण जनता का आचरण, व्यवहार तथा आदर्श है।

(२) 'लोक' शब्द की परिभाषा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि लोक शब्द का अर्थ 'जानपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बलिक नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं[५]। विश्वभारती, शांतिनिकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष डा० कुंजविहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा बतलाते हुए 'लोक' शब्द की भी सुंदर व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है—लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति हैं जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास

[१] पुराणां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम्। वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः। आ० प० १।६६

[२] आ० प० ११।१०१-२

[३] गीता ३।३; ३।२२; ३।२४

[४] गीता ३।२०

[५] डा० द्विवेदी : 'जनपद', वर्ष १, अंक १, पृ० ६५।

करते हैं[1]। इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त है। इन्हीं लोगों के साहित्य को लोकसाहित्य कहा जाता है। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है तथा परंपरागत रूप से चला आता है। यह साहित्य जब तक मौखिक रहता है तभी तक इसमें ताजगी तथा जीवन पाया जाता है। लिपि की कारा में रखते ही इसकी संजीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है।

(३) लोकसंस्कृति तथा लोकसाहित्य की पृथक् सत्ता—प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक् धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं—(१) शिष्ट संस्कृति, (२) लोकसंस्कृति। शिष्ट संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था, जो अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी और पथप्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। लोकसंस्कृति से हमारा अभिप्राय जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्सभूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी। यदि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। प्रो० बलदेव उपाध्याय ने इस विषय का गंभीर विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है :

'लोकसंस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों के पूर्ण परिचय के लिये दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहिताएँ दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकाएँ हैं। अथर्ववेद लोकसंस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जनजीवन है[2]।'

ऋग्वेद में यज्ञ यागादिक का विधान पाया जाता है तो अथर्ववेद में अंधविश्वास, टोना टोटका, जादू, मंत्र आदि का। इस प्रकार ऋग्वेद शिष्ट तथा संस्कृत जन के विचारों की झाँकी प्रस्तुत करता है तो अथर्ववेद में लोकसंस्कृति का चित्रण उपलब्ध होता हैं। अतः ये दोनों वेद दो भिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं।

१ दि पीपुल दैट लिव इन मोर आर लेस प्रिमिटिव कंडीशन आउटसाइड दि स्फियर आव सोफिस्टिकेटेड इन्फ्लुएंसेज। डा० दास—ए स्टडी आव ओरिसन फोकलोर।

२ 'समाज' (काशी विद्यापीठ), वर्ष ४, अंक ३ (१९५८), पृ० ४४६।

उपनिषद् काल में भी ये दोनों संस्कृतियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। जिन उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत्, ब्रह्म आदि का वर्णन है वे अभिजात संस्कृति के ग्रंथ हैं परंतु जिनमें लोकजीवन का विवरण है, लोकविश्वास तथा लोकपरंपराओं का उल्लेख है, उनका संबंध निश्चय ही लोकसंस्कृति से है। गृह्यसूत्रों को यदि लोकसंस्कृति का विश्वकोश कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। यों तो सभी गृह्यसूत्रों में जनजीवन का चित्रण पाया जाता है परंतु पारस्कर तथा आश्वलायन गृह्यसूत्रों में लोकसंस्कृति का विशेष वर्णन उपलब्ध होता है। भिन्न भिन्न संस्कारों के अवसर पर आश्वलायन गृह्यसूत्र में जहाँ शास्त्रीय विधानों का वर्णन किया गया है वहाँ जनता में प्रचलित लोकविश्वासों तथा प्रथाओं का भी उल्लेख हुआ है[1]। पाली जातकों में लोकसंस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है। वावेरु जातक के अध्ययन से तत्कालीन व्यापारिक दशा का पता चलता है। नंच जातक में वैवाहिक प्रथा का उल्लेख करते हुए वर के आवश्यक गुणों की ओर संकेत किया गया है[2]। इसी प्रकार अन्य जातकों से भी उस समय की साधारण जनता के रहन सहन, खान पान, रीति रिवाजों का पता चलता है। वाल्मीकि के आदिकाव्य में वर्णित सुग्रीव और जांववान्—जो बंदरों और भालुओं के राजा थे—उन आदिम जातियों के नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आज भी इस विशाल देश में लाखों की संख्या में विराजमान हैं। उस समय शिष्ट जन तथा साधारण जन की भाषा में भी अंतर था। हनुमान जब लंका में अशोकवाटिका में बैठी हुई सीता से मिलने के लिये गए तब वे सोचने लगे कि यदि मैं 'संस्कृतां वाचम्'—शिष्ट लोगों की भाषा—का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायगी[3] :

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि संस्कृता वाक् को विद्वान् लोग बोलते थे और साधारण लोग लोकभाषा का व्यवहार करते थे।

महाभारत में यद्यपि कौरवों तथा पांडवों की युद्धगाथा ही प्रधानतया वर्णित है तथापि उसमें लोकसंस्कृति की भी झाँकी देखने को मिलती है। महाभारत के सभापर्व के अंतर्गत द्यूतपर्व में युधिष्ठिर तथा शकुनि के जुआ खेलने का वर्णन

[1] प्रो० बलदेव उपाध्याय : गृह्यसूत्रों में लोकसंस्कृति।
[2] प्रो० बटुकनाथ शर्मा : पाली जातकावली।
[3] वाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड।

उपलब्ध होता है।[1] मांस बेचनेवाले धर्मव्याध के साथ युधिष्ठिर के संवाद का उल्लेख पाया जाता है। व्यास जी के जन्म की कथा, राजा शांतनु का धीवरकन्या से विवाह, द्रौपदी का बहुपतित्व आदि सैकड़ों प्रथाओं का उल्लेख महाभारत में हुआ है जिनसे तत्कालीन लोकसंस्कृति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने वेद से पृथक् लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि मैं लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ :[2]

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः

संस्कृत के कवियों तथा नाटककारों की कृतियों में लोकसंस्कृति का जो विराट् और भव्य रूप देखने को मिलता है उसका वर्णन करना अत्यंत कठिन है। कविकुलगुरु कालिदास ने अपने ग्रंथों में शिष्ट संस्कृति तथा लोकसंस्कृति का समान रूप से वर्णन किया है। मेघदूत में यक्ष के घर की वापी का वर्णन करते हुए जहाँ कालिदास ने 'वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपान मार्गा' लिखकर उच्च वर्ग के लोगों के वैभव का वर्णन किया है वहाँ उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने लोकसंस्कृति का चित्र भी प्रस्तुत किया है। धान के खेत की रखवाली करनेवाली स्त्रियों द्वारा ईख की छाया में बैठकर लोकगीतों के गाने का उल्लेख इस महाकवि ने किया है :[3]

इक्षुच्छायानिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालि गोप्यो जगुर्यशः ॥

शूद्रक रचित मृच्छकटिक नाटक में उस समय की सामाजिक दशा का जो चित्रण किया गया है उससे साधारण जनता की संस्कृति का पता चलता है।

लोकसाहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में अनेक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं जो उस समय गाई जाती थीं। शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी गाथाएँ प्राप्त होती हैं जिनमें अश्वमेध यज्ञ करनेवाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इस विषय का विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा।

भारतीय शास्त्रों ने लोक में प्रचलित साहित्य के विभिन्न रूपों की कभी उपेक्षा नहीं की है। नवीन छंद, नवीन गीतपद्धति, नवीन नाट्यरूपक बराबर ही लोकचित्त से छनकर उच्च शास्त्रीय धरातल तक पहुँचते रहे हैं। भारतीय नाट्य-शास्त्र ने लोकप्रचलित नाटकों को भी अपनी विवेचना का विषय बनाया है।

[1] महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व) पृ० ८४५–९१४ (गीता प्रेस का संस्करण)
[2] गीता, १५।१८
[3] रघुवंश, सर्ग ४

प्राचीन नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट प्रतीत हो जाती है। उन दिनों खेले जानेवाले नाटकों में सभी प्रकार के मनोरंजक तथा रसोद्दीपक रूपक होते थे। शृंगार, वीर या करुण-रस-प्रधान ऐतिहासिक 'नाटक'; नागरिक रईसों की कविकल्पित प्रेमकथाओं के 'प्रकरण'; धूर्तों और दुष्टों का हास्योत्तेजक उपाख्यान-मूलक 'भाण'; स्त्रियों से रहित, वीर-रस-प्रधान एकांकी 'व्यायोग'; तीन अंकोंवाला 'समवकार'; भयानक दृश्यों को दिखानेवाला, भूत-प्रेत-पिशाचों का उपस्थापक 'डिम'; स्वर्गीय प्रेमिका के लिये जूझ पड़नेवाले प्रेमिकों की सनसनीखेज प्रतिद्वंदिता-वाला 'ईहामृग'; स्त्रीशोक की करुण कथा से संबंधित एकांकी 'अंक'; एक ही पात्र द्वारा अभिनीयमान विनोद और शृंगार प्रधान 'वीथी'; जनता में हास्यरस की उत्पत्ति करनेवाला 'प्रहसन' आदि रूपक अत्यंत लोकप्रिय थे।[1] रूपकों के अतिरिक्त अनेक उपरूपकों की भी रचना की गई थी जिनमें नाटिका का प्रचलन सबसे अधिक था। 'गोष्ठी' में नौ दस पुरुष और पाँच छः स्त्रियाँ साथ ही अभिनय करती थीं। 'हल्लीश' में एक पुरुष कई स्त्रियों के साथ नृत्य करता था। इसी प्रकार से अन्य छोटे मोटे रूपकों का भी अभिनय होता था।

यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि इतने विशाल संस्कृत साहित्य में इन उप-रूपकों के उदाहरण स्वरूप एक भी ग्रंथ आज विद्यमान नहीं है। संभवतः ये लोक-नाट्य के रूप में उस समय जीवित थे। अतः इनके उदाहरण को समझाने के लिये पुस्तक लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गई होगी। इनमें 'समवकार' नामक रूपक सात आठ घंटों में खेला जाता था। सात-सात घंटों तक खेले जानेवाले इन पौराणिक नाटकों को लोकनाट्य समझना ही उचित जान पड़ता है। आज भी अनेक लोकनाटकों का रात रात भर अभिनय होता रहता है और जनता की अटूट भीड़ वहाँ लगी रहती है। परवर्ती काल में रंगमंच बहुत उन्नत हो गया होगा और कालिदास तथा भवभूति जैसे महाकवियों के नाटक उपलब्ध होने लगे होंगे। तब ये लंबे नाटक उच्च स्तर के समाज में उपेक्षित हो गए होंगे। साधारण जनता में फिर भी ये प्रचलित रहे। इनके लक्षणों को पढ़कर आजकल की रामलीला के पुराने लौकिक रूप का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

संस्कृत के विशाल कथासाहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में जिन कथाओं का संकलन हुआ है वे वास्तव में लोककथाएँ ही थीं जो इस देश में विभिन्न प्रदेशों में फैली हुई थीं। कथासरित्सागर की प्रस्तावना में बताया गया है कि इन कथाओं का

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : समाज, वर्ष १, अंक १, पृ० ६७

मूल वक्ता कोई अभिशप्त गंधर्व था जो शापवश विंध्याटवी में आ गया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि गुणाढ्य पंडित ने मूल रूप में इन कथाओं को नगर से दूर रहनेवाले ग्रामीण या वन्य लोगों से सुना होगा। मध्ययुग के अनेक श्रेष्ठ प्रकरणों, चंपूकाव्यों और निजंधरी कथाओं का मूल रूप लोककथानक ही है। इस प्रकार भारतीय साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण भाग लोकसाहित्य पर आश्रित है।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि लोकसंस्कृति तथा लोकसाहित्य का मूल अत्यंत प्राचीन है तथा शिष्ट संस्कृति के साथ ही साथ लोकसंस्कृति तथा साहित्य की धारा भी इस देश में पुरातन काल से प्रवाहित रही है।

(४) 'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति—सर्वसाधारण जनता के रीति रिवाज, रहन सहन, अंधविश्वास, प्रथा, परंपरा, धर्म आदि विषयों के अध्ययन की ओर यूरोपीय विद्वानों का ध्यान सबसे पहले आकृष्ट हुआ था। इस प्रसंग में सबसे पहले जान आब्रे का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने आज से प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व सन् १६८७ ई० में 'रिमेंस आव जेंटिलिज्म एँड जुडाइज्म' नामक पुस्तक लिखी थी। इसके लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् जे० ब्रैंड ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'आब्जरवेशन आन पापुलर एँटिक्विटीज' सन् १८७७ ई० में प्रकाशित की। १६वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक जन-जीवन का अनुशीलन करनेवाले शास्त्र को 'पापुलर एँटिक्विटीज' के नाम से पुकारा जाता था। सन् १८४६ ई० में इंगलैंड के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता विलियम जान टामस ने 'फोकलोर' इस नए शब्द का निर्माण किया।[1] यह शब्द इतना लोकप्रिय हुआ कि यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में इसका प्रयोग किया जाने लगा और आज संसार की सभी भाषाओं में इस विषय का अध्ययन प्रारंभ हो गया है। डा० फ्रेजर ने अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ 'गोल्डेन बाउ' को १८ भागों में लिखकर इस विषय को दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित कर दिया। ई० बी० टायलर ने 'प्रिमिटिव कल्चर' नामक पुस्तक का निर्माण दो बृहत् भागों में किया है जिसमें इन्होंने आदिम सभ्यता के उद्भव तथा विकास पर प्रचुर प्रकाश डाला है। जर्मन विद्वानों ने भी इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है जिनमें ग्रिम बंधुओं—विलियम ग्रिम तथा जेकब ग्रिम—का कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है। इन्होंने जर्मनी की लोककथाओं को एकत्र कर, उनका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इंगलैंड की 'फोकलोर सोसाइटी' ने इस विषय के अध्ययन तथा अनुसंधान में बड़ा योगदान किया है। अब तो यूरोप का शायद ही कोई ऐसा देश हो जिसमें

१ मेरिया लीच : डिक्शनरी आव फोकलोर, भाग १, पृ० ४०३

'फोकलोर सोसाइटी' की स्थापना न हुई हो। अमेरिका के प्रत्येक राज्य में ऐसी संस्थाएँ स्थापित हैं जिनमें 'अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी' सबसे प्राचीन तथा प्रधान है।

(५) 'फोकलोर' का पर्यायवाची शब्द 'लोकसंस्कृति' है—'फोकलोर' शब्द की उत्पत्ति का उल्लेख पहले किया जा चुका है। हिंदी में इसके पर्यायवाची शब्द के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इन विभिन्न मतों का उल्लेख करने के पूर्व 'फोकलोर' शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ पर थोड़ा विचार करना अत्यंत आवश्यक है। 'फोकलोर' दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है—(१) फोक तथा (२) लोर। 'फोक' शब्द की उत्पत्ति ऐंग्लोसैक्सन शब्द (Folc) से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे Volk कहते हैं। डा० बार्कर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से दूर रहनेवाली किसी पूरी जाति का बोध होता है परंतु इसका यदि विस्तृत अर्थ लिया जाय तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। लेकिन 'फोकलोर' के संदर्भ में 'फोक' का अर्थ 'असंस्कृत लोग' है। दूसरा शब्द 'लोर' ऐंग्लो-सैक्सन लर (lar) शब्द से निकला है जिसका अर्थ है 'सीखा गया' अर्थात् ज्ञान। इस प्रकार 'फोकलोर' का अर्थ हुआ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।

'फोक लोर' शब्द के हिंदी पर्याय के लिये पहले 'फोक' शब्द को लीजिए। इसके लिये हमारे सामने तीन शब्द आते हैं ग्राम, जन तथा लोक। पं० रामनरेश त्रिपाठी का 'फोक' शब्द के लिये 'ग्राम' शब्द पर अत्यधिक आग्रह है। इसी आधार पर उन्होंने 'फोकसांग' का हिंदी पर्याय 'ग्रामगीत' स्वीकार किया है। परंतु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो 'ग्राम' शब्द 'लोक' के भाव को व्यक्त करने में नितांत असमर्थ है। 'ग्राम' शब्द लोक की विशाल भावना को अत्यंत संकुचित कर देता है। यदि गंभीर दृष्टि से विचार करें तो लोक की सत्ता नगर तथा ग्राम दोनों में समान रूप से विद्यमान है। परंतु ग्राम शब्द गाँव तक ही सीमित है। आज बंबई और कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में भी निवास करनेवाले निम्न वर्ग के लोग गीत गा गाकर अपना मनोरंजन करते हैं। अतः उनके गीतों को 'लोकगीत' न कहकर जो लोग 'ग्रामगीत' कहने का आग्रह करते हैं उनका यह आग्रह दुराग्रह मात्र है।

'जन' शब्द में सभी प्राणियों का समावेश किया जा सकता है। वेदों में सामान्य जनता के लिये इस शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। इससे संबंधित

[1] त्रिपाठी : जनपद, खंड १, पृ० ५-१६

'जनपद', 'जनप्रवाद' आदि शब्द प्रचलित हैं। परंतु 'लोक' शब्द की एक अपनी परंपरा है; इसका विशेष अर्थ है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अन्य दोनों शब्दों की अपेक्षा यह 'फोक' के अधिक समीप भी है। अतः 'लोक' शब्द का ग्रहण ही समीचीन है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'फोकलोर' शब्द का हिंदी पर्यायवाची शब्द 'लोकवार्ता' बतलाया है। उन्होंने इस शब्द का चुनाव वैष्णव संप्रदाय में प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' आदि ग्रंथों के 'वार्ता' शब्द के आधार पर किया है[1]। परंतु इस शब्द को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रथम तो यह शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं प्रतीत होता। 'लोकवार्ता' शब्द में अधिक से अधिक लोककथा या लोकचर्या का भाव वहन करने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त 'लोकवार्ता' शब्द संस्कृत साहित्य में एक अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ मिलता है। संस्कृत के कोशों में इसका अर्थ प्रवाद, अफवाह, या किंवदंती दिया गया है[2]। संस्कृत के सुप्रसिद्ध कोशकार वामन शिवराम आप्टे ने अपने कोश में लोकवार्ता का अर्थ लोकप्रिय सूचना (पापुलर रिपोर्ट) या सार्वजनिक अफवाह (पब्लिक रयूमर) दिया है। सर मोनियर विलियम्स की 'संस्कृत डिक्शनरी' में भी 'वार्ता' शब्द का अर्थ आप्टे के समान ही प्राप्त होता है। इस प्रकार संस्कृत के कोशों में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग कहीं भी 'ज्ञान' या 'लोर' के अर्थ में नहीं किया गया है। अतः डा० अग्रवाल के 'लोकवार्ता' शब्द में अव्याप्ति दोष होने के कारण इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के लिये किया गया है। मनु महाराज ने चार विद्याओं का वर्णन करते हुए 'वार्ता' का भी उल्लेख किया है जिससे उनका तात्पर्य अर्थशास्त्र से है :

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता; दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्या ह्येताः चतस्रः स्यु लोकसंस्थितिहेतवे॥

इन उल्लेखों से विदित होता है कि 'वार्ता' वह शास्त्र है जिसे आजकल अंग्रेजी में 'एकोनामिक्स' कहते हैं।

महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में भी 'वार्ता' शब्द का व्यवहार किया गया है। यक्ष प्रश्न करता है :

का वार्ता ? किमाश्चर्यं ? कः पन्था ? कश्च मोदते ?

[1] डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १

[2] द्वारिकाप्रसाद शर्मा : संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ।

इसपर युधिष्ठिर उत्तर देते हुए कहते हैं :

अस्मिन् महोमोहमये कटाहे, सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन, भूतानिः कालः पचतीति वार्ता॥

इन श्लोकों में आए हुए 'वार्ता' शब्द के अर्थ को संदर्भपूर्वक विचार करने से पता चलता है कि इसका प्रयोग 'नूतन समाचार' या 'नई बात' के अर्थ में किया गया है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में कहीं भी वार्ता शब्द का प्रयोग ज्ञान (लोर) के अर्थ में नहीं किया गया है। 'लोकवार्ता' शब्द में अव्याप्ति दोष की सत्ता की चर्चा की जा चुकी है।' अतः फोकलोर के अर्थ में डा० अग्रवाल द्वारा प्रचारित 'लोकवार्ता' शब्द अपने दोषों—अवाचक तथा अव्याप्ति—के कारण स्वतः धराशायी हो जाता है।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने 'फोकलोर' के लिये 'लोकयान' शब्द प्रयुक्त करने का सुझाव दिया है[1]। इन्होंने इस शब्द का निर्माण हीनयान, महायान आदि शब्दों के अनुकरण पर किया है। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि ये उपर्युक्त शब्द बौद्धधर्म के एक विशिष्ट संप्रदाय के द्योतक हैं तथा ये धार्मिक जगत् से संबंध रखते हैं। हीनयान, महायान तथा वज्रयान शब्द धर्म से संबंधित होने के कारण इसी अर्थ में रूढ़ बन गए हैं। अतः इनके अनुकरण पर जो 'लोकयान' शब्द बनाया जायगा उससे जनसाधारण के धर्म का तो बोध हो सकता है परंतु उसके रहन सहन, रीति रिवाज, अंधविश्वास, परंपरा तथा प्रथाओं का बोध नहीं हो सकता। अतः अव्याप्ति दोष से युक्त होने के कारण इस शब्द को भी स्वीकार करने में हम नितांत असमर्थ हैं। इधर कुछ विद्वानों ने 'लोकायन' शब्द की ओर भी संकेत किया है।[2] इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'लोक की गति' है। परंतु 'फोकलोर' के विस्तृत तथा व्यापक अर्थ को द्योतित करने में यह अत्यंत अशक्त है। यह शब्द हिंदी में कुछ अपरिचित सा भी है। अतः इस शब्द को भी ग्रहण करने में अनेक आपत्तियाँ उपस्थित हैं।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार 'फोकलोर' के लिये 'लोकसंस्कृति' शब्द का प्रयोग नितांत उपयुक्त एवं समीचीन है। लोकसंस्कृति के अंतर्गत जनजीवन से संबंधित जितने आचार विचार, विधि निषेध, विश्वास, प्रथा, परंपरा, धर्म, मूढ़ाग्रह, अनुष्ठान आदि हैं वे सभी आते हैं। जैसा आगे विस्तार से बतलाया जायगा, फोकलोर के अंतर्गत भी ये ही विषय समाविष्ट हैं। अतः 'लोक-

[1] राजस्थानी कहावताँ, भाग १, कलकत्ता, भूमिका, पृ० ११

[2] जनपद, खंड १, अंक १, पृ० ६६।

संस्कृति' शब्द 'फोकलोर' के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सवर्था समर्थ है। कोई भी परिभाषा या नवनिर्मित शब्द अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति दोष से रहित होना चाहिए। 'फोकलोर' के अर्थ में 'लोकसंस्कृति' का प्रयोग इन दोषों से मुक्त है। 'लोकायन' तथा 'लोकयान' की भाँति इसमें अवाचक दोष भी नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि हिंदी में 'लोकसंस्कृति' चिरपरिचित शब्द है। इसके उच्चारणमात्र से ही जनजीवन का चित्र, उसकी संस्कृति की झाँकी हमारे आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है। जब हिंदी में यह शब्द पहले से विद्यमान है तब लोकवार्ता, लोकयान, तथा लोकायन जैसे अप्रचलित शब्दों का निर्माण कर उन्हें प्रचारित करने का प्रयास करना कहाँ तक संगत है ? कुछ लोग कह सकते हैं लोकसंस्कृति शब्द 'फोक-कल्चर' का पर्याय हो सकता है, फोकलोर का नहीं। परंतु डा० उपाध्याय के सिद्धांतानुसार 'फोक-कलचर' तथा 'फोकलोर' में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों की सीमाएँ एक दूसरे के छोर को छूती हुई दिखाई पड़ती हैं।

इधर कुछ विद्वानों ने प्रयाग में 'भारतीय लोकसंस्कृति शोध संस्थान' की स्थापना की है जिसके तत्वावधान में गत दो वर्षों से 'अखिल भारतीय लोकसंस्कृति संमेलन' आयोजित किया जा रहा है। इन विद्वानों ने भी 'फोकलोर' के लिये 'लोकसंस्कृति' शब्द का ही प्रयोग करना उचित समझा है। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'फोकलोर' के अर्थ में 'लोकसंस्कृति' शब्द को ग्रहण करने का सुझाव उपस्थित किया है[1]। इस प्रकार डा० उपाध्याय की 'लोकसंस्कृति' को डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का समर्थन प्राप्त है।

सभी दृष्टियों से विचार करने पर 'फोकलोर' के व्यापक अर्थ को प्रकाशित करनेवाला एकमात्र शब्द 'लोकसंस्कृति' ही ठहरता है। अतः लोकसाहित्य के विद्वान् इस शब्द को ग्रहण कर इसका व्यवहार तथा प्रचार जितनी शीघ्रता से करें उतना ही अच्छा है। हिंदी में लोकवार्ता शब्द ने जो अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा कर दी है वह लोकसंस्कृति शब्द के प्रयोग से सदा के लिये नष्ट हो जायगी तथा लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के पार्थक्य को सरलता से समझा जा सकेगा।

(६) लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य में अंतर—गत पृष्ठों में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि 'फोकलोर' का समानार्थवाचक शब्द हिंदी में 'लोकसंस्कृति' है। आजकल अनेक विद्वान् इन दोनों शब्दों के पार्थक्य को बिना समझे बूझे एक शब्द का दूसरे के लिये प्रयोग

[1] डा० भोलानाथ तिवारी : संमेलन पत्रिका, लोकसंस्कृति अंक, सं० २०१० (चैत्र-आषाढ़)।

भ्रमवश कर दिया करते हैं जिससे उनके भावों को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। अतः इन दोनों शब्दों—लोकसंस्कृति तथा लोकसाहित्य—के अंतर को समझ लेना अत्यंत आवश्यक है। यहाँ लोकसंस्कृति शब्द का व्यवहार 'फोकलोर' के लिये किया गया है और 'लोकसाहित्य' 'फोक लिटरेचर' के लिये प्रयुक्त हुआ है। अतः जो अंतर अंग्रेजी के फोकलोर तथा फोकलिटरेचर शब्दों में है वही भेद लोकसंस्कृति तथा लोकसाहित्य में समझना चाहिए। सोफिया बर्न ने 'फोकलोर' के क्षेत्रविस्तार के संबंध में लिखा है कि यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अंतर्गत पिछड़ी हुई जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों के अवशिष्ट विश्वास, रीति रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के संबंध में; भूत प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में; जादू टोना, संमोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन में रीति रिवाज तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्यव्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेंड), लोक कहानियाँ, बैलेड, गीत, किंवदंतियाँ, पहेलियाँ और लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक संपन्नता के अंतर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वे सभी इसके क्षेत्र में हैं। यह किसान के हल की आकृति नहीं है जो लोकसंस्कृति के विद्वान् को अपनी ओर आकर्षित करतो है प्रत्युत वे उपचार तथा अनुष्ठान हैं जिन्हें किसान हल को भूमि जोतने के काम में लाने के समय करता है; जाल तथा वंशी की बनावट नहीं, बल्कि वे टोने टोटके हैं जिन्हें मछुआ समुद्र के किनारे करता है; पुल अथवा किसी भवन का निर्माण नहीं है, प्रत्युत वह बलि है जो उनके निर्माण के समय दी जाती है। लोकसंस्कृति वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है; वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान, तथा ओषधि के क्षेत्र में हुई हो, अथवा सामाजिक संगठन, तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में संपन्न हुई हो।[१] सोफिया बर्न ने फोकलोर के विषय को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है[२] :

(१) लोकविश्वास और अंध परंपराएँ।

[१] सोफिया बर्न : ए हैंडबुक आव फोकलोर; डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ४-५

[२] ए हैंडबुक आव फोकलोर

(२) रीति रिवाज तथा प्रथाएँ।

(३) लोकसाहित्य।

प्रथम श्रेणी के अंतर्गत पृथ्वी तथा आकाश, वनस्पति जगत्, पशु जगत्, मानव, मनुष्यनिर्मित वस्तु, आत्मा तथा परलोक, परामानवी व्यक्ति, शकुन, अपशकुन, भविष्यवाणी, आकाशवाणी, जादू टोना, आदि से संबंधित लोकविश्वास और परंपराएँ आती हैं। दूसरी श्रेणी में सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ, व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, उद्योग धंधे, व्रत, त्योहार आदि के संबंध में प्रचलित रीति रिवाजों का समावेश है। तीसरी श्रेणी में लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, खेल के गीत आदि अंतर्भुक्त हैं। इस प्रकार समस्त लोकसंस्कृति उपर्युक्त तीन विभागों में विभक्त की गई है।

सोफिया बर्न ने लोकसंस्कृति का जो श्रेणीविभाग किया है उसपर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का एक भाग है, उसका एक अंश है। यदि लोकसंस्कृति की उपमा किसी विशाल वटवृक्ष से दी जाय तो लोकसाहित्य को उसकी एक शाखा मात्र समझना चाहिए। यदि लोकसंस्कृति शरीर है तो लोकसाहित्य उसका एक अवयव है। लोकसंस्कृति का क्षेत्रविस्तार अत्यंत व्यापक है परंतु लोकसाहित्य का विस्तार संकुचित है। लोकसंस्कृति की व्यापकता जनजीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है परंतु लोकसाहित्य जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों और कहावतों तक ही सीमित है। एक का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तो दूसरे का सीमित तथा संकुचित। लोकसाहित्य अंग है तो लोकसंस्कृति अंगी है। लोकसंस्कृति में लोकसाहित्य का अंतर्भाव होता है परंतु लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति का समावेश होना संभव नहीं है।

अतः उपर्युक्त विवेचन के द्वारा लोकसंस्कृति से लोकसाहित्य का पार्थक्य स्पष्टतया प्रतीत होता है। अंग्रेजी में 'फोकलोर' तथा 'फोकलिटरेचर' का पार्थक्य स्पष्ट है। अतः हिंदी में इन दोनों शब्दों के समानार्थक लोकसंस्कृति तथा लोकसाहित्य के भेद को समझने में प्रमाद नहीं करना चाहिए। आशा है, इन दोनों शब्दों के अंतर को समझाने के लिये इतना विवेचन पर्याप्त होगा।

(७) लोकसाहित्य का क्षेत्रविस्तार—लोकसाहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है उन सबको लोकसाहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुत्रजन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोडश संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाए जाते हैं; किंबहुना, प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है उसका

प्रभाव जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता । अतः बाह्य जगत् में इस परिवर्तन को देखकर हृदय में जो उल्लास या आनंद की अनुभूति होती है वह लोकगीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्वपुरुषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा गाकर आनंद प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीररस का संचार करती है। ये गीत लोकगाथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।

गाँव के बूढ़े जाड़े के दिनों में आग के पास बैठकर कहानियाँ सुनाया करते हैं। बूढ़ी दादियाँ तथा माताएँ बच्चों को सुलाने के लिये लोरियों तथा छोटी छोटी कथाओं का प्रयोग करती हैं। जनमन के अनुरंजन के लिये गाँवों में साँग या नाटक भी खेले जाते हैं जिन्हें देखने के लिये दूर दूर से लोग आते हैं। ये लोक-नाट्य ग्रामीण जनों के मनोविनोद के अन्यतम साधन हैं। गावँ के लोग अपने दैनिक व्यवहार तथा वार्तालाप में सैकड़ों मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग किया करते हैं। छोटे छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्यजनक गीत गाते हैं। ये सभी गीत तथा कथाएँ लोकसाहित्य के अंतर्गत आती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकसाहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा यह स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की संमिलित संपत्ति है।

(८) लोकसाहित्य का सामान्य परिचय—एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था । उस समय उसका आचार विचार, रहन सहन सरल, सहज तथा स्वाभाविक था। वह आडंबर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। उसके समस्त क्रियाकलाप—उठना, बैठना, हँसना, बोलना—स्वाभाविकता में पगे रहते थे। चित्त के आह्लाद के लिये, मन के अनुरंजन के लिये साहित्य की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती है, परंतु दोनों युगों के साहित्य में जमीन-आसमान का अंतर है। आज का साहित्य अनेक रूढ़ियों, वादों से जकड़ा हुआ है, कविता पिंगल शास्त्र की नपी तुली नालियों से प्रवाहित होती है, अलंकार के भार से वह बोझिल है, कथाओं में अनेक प्रकार के शिल्पविधान (टेक्नीक) को ध्यान में रखना पड़ता है तथा नाटकों की रचना में अनेक नाटकीय नियमों का पालन करना पड़ता है। परंतु जिस युग की हम चर्चा कर रहे हैं उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना जंगल में खिलनेवाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था जितना आकाश में विचरनेवाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वही हमें लोकसाहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।

सभ्यता के प्रभाव से दूर रहनेवाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा निराशा, हर्ष विषाद, जीवन मरण, लाभ हानि, सुख दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसी को लोकसाहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिये लिखा गया हो[1]।

२. भारत में लोकसाहित्य की प्राचीन परंपरा

भारत में लोकसाहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। संस्कृत में लोकसाहित्य की उत्पत्ति तथा विकास की कथा बड़ी मनोरंजक है। सुदूर प्राचीन काल में किस प्रकार लोकगीतों का प्रचार हुआ और किस प्रकार वे भिन्न भिन्न शताब्दियों से होकर आज भी अपनी स्थिति को बनाए हुए हैं—यह विषय नितांत विचारणीय एवं मननीय है।

लोकगीतों का बीज हमारे सबसे प्राचीन तथा पवित्र ग्रंथ ऋग्वेद में पाया जाता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान स्थान पर उपलब्ध होता है, वे ही लोकगीतों के पूर्व प्रतिनिधि हैं। पद्य या गीत के अर्थ में 'गाथा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में उपलब्ध होता है[2]। गानेवाले के अर्थ में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर मिलता है[3]। 'गाथा' शब्द का व्यवहार एक प्रकार के विशिष्ट साहित्य के अर्थ में ऋग्वेद में किया गया है जहाँ इसे 'रैभी' और 'नाराशंसी' से पृथक् निर्दिष्ट किया गया है[4]। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में गाथाओं का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है[5]। दोनों में अंतर यह था कि ऋक् दैवी होती थी और गाथा मानुषी; अर्थात् गाथाओं के निर्माण या उत्पत्ति में मनुष्य का योग अत्यंत आवश्यक था। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है

[1] दि पोएट्री आव दि पीपुल, बाइ दि पीपुल, फार दि पीपुल।

[2] (क) प्रकृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मदे सोमस्य वोचत।—ऋ० वे० ८।३२।१

(ख) अग्निमोडिष्वावसे गाथाभिः शीर शोचिषम्।—ऋ० वे० ८.७१।१४

(ग) तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।
उतो कृपंत धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः॥—ऋ० वे० ९।९९।४

[3] (क) इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत।—ऋ० वे० १.७।१

[4] रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतं॥—ऋ० वे० १०।८५।६

[5] ऐतरेय ब्राह्मण।

कि गाथाएँ ऋक्, यजुः और साम से पृथक् होती थीं अर्थात् गाथाओं का प्रयोग मंत्र के रूप में नहीं किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी अवदान—सत्कृत्य—को लक्षित करके जो लोकगीत समाज में प्रचलित थे तथा जनता द्वारा गाए जाते थे वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य के एक पृथक् अंग के रूप में स्वीकृत किए गए। यास्क के निरुक्त की व्याख्या करते हुए दुर्गाचार्य ने गाथा का यह अर्थ स्पष्ट रूप से बतलाया है[1]:

'स पुनरितिहासः ऋग्बद्धो गाथाबद्धश्च। ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते। गाथाः शंसति, नाराशंसीः शंसति इति उक्तं गाथानां कुर्वीतेति।'

इसका आशय यह है कि वैदिक सूक्तों में कहीं कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओं के द्वारा और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध है।

वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण[2] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[3] में उपलब्ध होते हैं जिनमें अश्वमेध यज्ञ करनेवाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ये गाथाएँ कहीं केवल श्लोक नाम से निर्दिष्ट हैं तो कहीं इन्हें 'यज्ञगाथा' या केवल 'गाथा' कहा गया है[4]। जनमेजय के संबंध में यह गाथा कही गई है:

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।
अश्वं बबन्ध सारङ्गं देवेभ्यो जनमेजयः॥

दुष्यंत के पुत्र भरत की चर्चा निम्नांकित गाथाओं में उपलब्ध होती है[5]:

हिरण्येन परीवृतान्कृष्णाञ्छुक्लदतो मृगान्।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।
यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मण बद्वशो गा विभेजिरे॥
अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात्पञ्चपञ्चाशतं हयान्॥
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदायुः पञ्च मानवाः॥

[1] निरुक्त ४।६ की व्याख्या।

[2] शतपथ ब्राह्मण, कांड १३, अध्याय १, ब्राह्मण ५

[3] ऐतरेय ब्राह्मण, ८।४

[4] तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते। तां गाथां दर्शयति।—ऐतरेय ब्राह्मण ३९।७; तत्र प्रथमं श्लोकमाह।—वही, ३९।९

[5] ऐतरेय ब्राह्मण, ३९।९, श्लोक १, २, ३, ५

इन ऐतिहासिक गाथाओं की परंपरा महाभारत काल में भी अक्षुण्ण दिखाई पड़ती है। व्यास की इस शतसाहस्री संहिता में दुष्यंत के यशस्वी पुत्र भरत के संबंध में अनेक गाथाएँ उपलब्ध हैं जो नितांत प्राचीन प्रतीत होती हैं। ऐतरेय ब्राह्मणवाली गाथाएँ ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंद में भी पाई जाती हैं।

ये गाथाएँ राजसूय यज्ञ के अवसर पर तो गाई ही जाती थीं, इसके अतिरिक्त विवाह के शुभ महोत्सव पर भी इन गाथाओं के गाने का विधान मैत्रायिणी संहिता[1] में उपलब्ध होता है। इसी विधान के अनुसार पारस्कर गृह्यसूत्र[2] में विवाह संबंधी दो गाथाएँ पाई जाती हैं :

अथ गाथां गायति।
सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवती।
यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्राजायामस्याग्रतः॥
यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥

आश्वलायन गृह्यसूत्र[3] में सीमंतोन्नयन के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा का उल्लेख हुआ है। वहाँ सोम की प्रशंसा में यह गाथा दी गई है :

तौ चैतां गाथां गायतः—

सोमो नो राजाऽवतु मानुषीः
प्रजा निविष्ट चक्रासौ।

इन समस्त उल्लेखों से यही प्रतीत होता है कि राजसूय यज्ञ, विवाह तथा सीमंतोन्नयन के शुभ अवसरों पर ऐसी गाथाएँ गाई जाती थीं जो प्राचीन काल से परंपरागत रूप में चली आती थीं। राजसूय यज्ञ के समय ऐतिहासिक गाथाओं तथा विवाहादि के अवसर पर देवता विषयक प्रचलित गाथाओं के गाने का नियम था, यह पूर्वनिर्दिष्ट उदाहरणों से स्पष्ट ज्ञात होता है।

वैदिक गाथाओं के समान पारसियों की धर्मपुस्तक अवेस्ता में उपलब्ध गाथाएँ अवेस्ता के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक प्राचीन स्वीकृत की गई हैं। इन गाथाओं में पारसी धर्म के मूल सिद्धांत बड़ी ही सुंदरता के साथ प्रतिपादित

१ मै० सं० ३।७।३

२ पारस्कर गृह्यसूत्र, कांड १, खंडिका ७।

३ आ० गृ० स० १।१५

किए गए हैं। पालिजातकों के अनुशीलन से पालि भाषा में उपनिबद्ध गाथाओं का पता चलता है। ये गाथाएँ प्राचीन काल से परंपरा रूप में प्रचलित थीं और इनमें उस काल में विख्यात लोकप्रिय कथाओं का सारांश उपस्थित किया गया है। भगवान् गौतम बुद्ध के पूर्वजन्म से संबंद्ध कथाएँ—जिन्हें 'जातक' कहा जाता है—इन्हीं गाथाओं के पल्लवीकरण से आविर्भूत हुई हैं। ये गाथाएँ बुद्ध भगवान् की समसामयिक प्रतीत होती हैं। प्रसिद्ध सिंहचर्मजातक से—जिसमें व्याघ्रचर्म से आच्छादित गर्दभ की मनोरंजक कथा वर्णित है—ये दो गाथाएँ दी जाती हैं जिनसे कथा की मूल घटना की पर्याप्त सूचना मिलती है[1] :

नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो।
चिरम्पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवम्।
पारुतो सीहचम्मेन रवमानो च दूसयी॥

विक्रम संवत् की तृतीय शताब्दी में—जब प्राकृत भाषा का बोलबाला था—लोकगीतों की उन्नति बड़े जोर शोर से हुई। राजा हाल या शालिवाहन के द्वारा संग्रहीत 'गाथासप्तशती' से पता चलता है कि उस समय लोकगीत बनाने तथा गाने की प्रथा बहुत ही अधिक थी। राजा हाल ने एक करोड़ गाथाओं में से सुंदर तथा श्रेष्ठ केवल सात सौ गाथाओं को चुना और इस प्रकार उन्हें कालकवलित होने से बचा लिया। ये गाथाएँ सरस गीतिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। रस से ओतप्रोत इन गाथाओं को पढ़कर लोकसाहित्य की माधुरी का तनिक मजा लिया जा सकता है। रसोई बनाते समय कोई सुंदरी फूँक मारकर आग जलाना चाहती है परंतु आग जलती ही नहीं। इसका कितना सरस कारण इस गाथा में दिया गया है :

रन्धणकम्मणिउणिए मां जूरसु रत्तपाड़लसुअन्धम्।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ॥

किसी विरहिणी नायिका का चित्रण इस गाथा में कितना सुंदर किया गया है[2]।

अज्जं गओत्ति, अज्जं गओत्ति, अज्जं गओत्ति गणिरीए।
पढ़म चिअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ॥

[1] प्रो० बटुकनाथ शर्मा : पालि जातकावलि, पृ० १७
[2] अमरुक : गाथा सप्तशती, ३ ३।८

अर्थात् मेरा पति विदेश आज गया है, आज गया है, आज गया है, इस प्रकार उसके जाने के दिन गिननेवाली विरहिणी ने दिन के पहले अर्ध भाग में ही दीवाल पर रेखाएँ खींच खींचकर उसे चित्रित कर दिया।

वाल्मीकीय रामायण में भगवान् राम के जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजक गीत गाने का स्पष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। आदिकवि वाल्मीकि ने रामजन्म के समय पर गंधर्वों द्वारा गाने तथा अप्सराओं द्वारा नाचने का उल्लेख किया है[1]:

जगुः कलं च गन्धर्वाः, ननृतुश्चाप्सरो गणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥

महाकवि कालिदास ने अज के शुभ जन्म के अवसर पर राजा दिलीप के महल में वेश्याओं द्वारा नृत्य तथा मंगलवाद्य बजने का उल्लेख किया है[2]। इतना ही नहीं, मेहनत मजदूरी करते—जैसे चक्की पीसना, धान कूटना, ढेंकी चलाना, खेती निराना, चर्खा कातना आदि—समय जिस प्रकार आजकल स्त्रियाँ झुंड बाँधकर गीत गा गाकर अपनी थकावट मिटाती हैं, ठीक उसी प्रकार प्राचीन काल में भी हुआ करता था। प्रसिद्ध कवयित्री विज्जका (१२वीं शताब्दी) ने धान कूटनेवाली स्त्रियों के गीत का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही रोचक है:

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः।
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमक संकुलाः कलभगण्डनी गीतयः॥

भाव यह है कि स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ साथ गाना भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ झन झन कर रही हैं। उनका उरःस्थल (छाती) हिल रहा है। मीठी हुंकार की आवाज तथा चूड़ियों के शब्द से मिलकर उनका गाना विचित्र आनंद पैदा करता है। महाकवि श्रीहर्ष

१ बालकांड, १८।१६

२ सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्विनाः
प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि॥ —रघुवंश, ३।१६

ने चक्की में सत्तू पीसने का उल्लेख किया है जिसकी सोंधी सोंधी गंध पथिकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है[1] :

प्रतिहट्टपथे घरट्टाजात्
पथिकाह्वानद-सक्तुसौरभैः ।
कलहान्न घनान् यदुत्थितात्
अधुनाप्युज्झति घर्घरस्वनः ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भी विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा प्रचलित थी। भगवान् राम के जन्म के समय स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख गोस्वामी जी ने किया है :

गावहिं मंगल मंजुल बानी ।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी ॥'

इतना ही नहीं, तुलसीदास जी ने सोहर छंद में 'रामललानहछू' की रचना कर लोकगीतों की महत्ता भी प्रतिपादित की है।

लोकसाहित्य के एक विशिष्ट अंग लोककथाओं की भी परंपरा कुछ कम प्राचीन नहीं है। वेदों तथा उपनिषदों में ऐसे उपाख्यान उपलब्ध होते हैं जिन्हें हम लोककथाओं का बीज या मूल कह सकते हैं। ऋग्वेद में सरमा और पणि का संवाद तथा कठोपनिषद् में प्राप्त नचिकेता का आख्यान लोककथाओं के पूर्वरूप हैं। संस्कृत साहित्य में लोककथाओं का अनंत भांडार भरा पड़ा है। महाभारत में अनेक आख्यान तथा उपाख्यान उपलब्ध होते हैं जो बड़े ही शिक्षाप्रद हैं। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में अनेक प्राचीन कथाओं का संग्रह किया गया है। सोमदेव का 'कथासरित्सागर' वास्तव में लोककथाओं का अगाध समुद्र है। विष्णु शर्मा द्वारा विरचित 'पंचतंत्र' कथासाहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट महत्व रखता है। मध्यकाल में इस ग्रंथ का अनुवाद यूरोप की प्रायः प्रत्येक भाषा में किया गया था। नारायण पंडित का 'हितोपदेश' सुंदर तथा उपदेशप्रद कथाओं का संकलन है। यही बात 'शुकसप्तति' तथा 'पुरुषपरीक्षा' के संबंध में भी कही जा सकती है।

लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों की परंपरा भी बड़ी प्राचीन है। वेदों में अनेक लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जैसे—न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। संस्कृत साहित्य में सूक्तियाँ तथा लोकोक्तियाँ प्रचुर परिमाण में प्राप्त होती हैं। 'कस्मै देवाय

[1] नैषधीय चरित, सर्ग २, श्लोक ८५

हविषा विधेम' को लिखनेवाले वैदिक ऋषि ने मानो सर्वप्रथम पहेली बुझाने का प्रयास किया है। मुहावरों का प्रयोग संस्कृत के कवियों ने अपने काव्यों में प्रचुरता से किया है।

उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लोकसाहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से लेकर आज तक अबाध गति से चली आ रही है। इसका प्रवाह अक्षुण्ण है।

२. आधुनिक काल में भारतीय लोकसाहित्य का संकलन

१६वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब अँग्रेजों के शासन की नींव इस देश में जम गई तब उन्होंने भारतीय संस्कृति के अध्ययन की ओर भी दृष्टिपात किया। इसके पहले ही १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (सन् १७८४ ई०) में सर विलियम जोन्स के स्तुत्य प्रयत्नों से 'एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल' नामक शोधसंस्थान की स्थापना कलकत्ते में हो चुकी थी। १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जो अँग्रेज सिविलियन यहाँ शासन करने के लिये आए उनमें से अधिकांश योग्य शासक होने के अतिरिक्त गंभीर विद्वान् भी थे। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति जिज्ञासा तथा इस देश के पुरातन इतिहास को खोजने की लगन विद्यमान थी। प्राचीन भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व के क्षेत्र में इन लोगों ने जो श्लाघनीय कार्य किया है वह इतिहास के प्रेमियों से छिपा नहीं है।

भारतीय लोकसाहित्य के प्रारंभिक अनुसंधानकर्ताओं में दो प्रकार के व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं—(१) अँग्रेज सिविलियन तथा (२) ईसाई मिशनरी। प्रथमोक्त इस देश पर शासन करने के लिये आए थे और अपरोक्त अपने धर्मप्रचार के हेतु। परंतु दोनों इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि जब तक इस देश की विभिन्न भाषाओं तथा साहित्यों का सम्यक् अध्ययन नहीं किया जाता तब तक जनता से संपर्क स्थापित नहीं हो सकता। धर्मप्रचार के लिये साधारण जनता की भाषा और साहित्य को जानना अत्यधिक आवश्यक था। अतः इसी समान प्रेरणा से प्रेरित होकर इन दोनों श्रेणियों के लोगों ने भारतीय इतिहास के शोध के साथ ही भारतीय भाषा तथा साहित्य का अध्ययन प्रारंभ किया।

भारतीय लोकसाहित्य के अध्ययन का सर्वप्रथम सूत्रपात करनेवाले जो अँग्रेज सिविलियन थे उनके कार्यों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, कर्नल जेम्स टाड ने इस पुनीत कार्य का श्रीगणेश किया था। टाड राजस्थान के अनेक देशी राज्यों में रेजिडेंट था। अतः उसे वहाँ के स्थानीय इतिहास, रस्म रिवाज, रहन सहन, वेशभूषा आदि के अध्ययन का अधिक अवसर प्राप्त हुआ था। टाड ने अनेक वर्षों के कठिन परिश्रम

के पश्चात् 'ऐनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज आव् राजस्थान' नामक अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ सन् १८२६ ई० में प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में राजस्थान के विभिन्न देशी राज्यों का इतिहास सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही विद्वान् लेखक ने राजपूतों की सामाजिक अवस्था, रहन सहन, आमोद प्रमोद, वेशभूषा आदि विषयों पर भी प्रचुर प्रकाश डाला है। यह सत्य है कि इसमें लोकगीतों या कथाओं का संग्रह नहीं है, परंतु कर्नल टाड ने अपने ग्रंथ के निर्माण में राजस्थान में प्रचलित लोकगाथाओं, वीरकथाओं तथा चारणों द्वारा गेय गीतों से बड़ी सहायता ली है। भारतीय लोकसंस्कृति के अध्ययन का प्रथम प्रयास टाड ने अपने उक्त ग्रंथ में किया है, इस कारण इस पुस्तक का विशेष महत्व है।

जे० ऐबट ने सन् १८५४ ई० में पंजाबी लोकगीतों तथा लोककथाओं के संबंध में अपना एक लेख प्रकाशित किया[1]। पंजाब वीरप्रसू भूमि रही है। अतः वहाँ वीरों की अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। ऐबट ने इन्हीं वीरों की चर्चा अपने लेख में की है।

रेवेरेंड एस० हिल्सप नामक पादरी ने मध्य प्रदेश की जंगली जातियों के संबंध में अनेक ज्ञातव्य विषयों का संग्रह किया था। सन् १८६६ ई० में सर रिचर्ड टेंपुल ने हिल्सप साहब के लेखों को संपादित कर प्रकाशित किया। मिस फ्रेयर नामक अंग्रेज महिला ने सन् १८६८ ई० में 'ओल्ड डेकन डेज' नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें दक्षिण भारत की लोक कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। चार्ल्स ई० गोवर ने सन् १८७१ ई० में 'फोकसाँग्स आव् सदर्न इंडिया' नामक पुस्तक का संपादन किया। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भारतीय लोकगीतों का सर्वप्रथम संग्रह है। अतः यह अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक है। विद्वान् लेखक ने कन्नड़ लोकगीत, बड़ागा गीत, कुर्ग गीत, तमिल गीत, कूरल, मलयालम गीत, तथा तेलुगु के लोकगीतों का संग्रह कर उनका केवल अँग्रेजी अनुवाद इस ग्रंथ में प्रकाशित किया है। इस प्रकार दक्षिण भारत की चार प्रधान भाषाओं—कन्नड़, तमिल, तेलुगु एवं मलयालम—के लोकगीतों का सुंदर अनुवाद इसमें उपलब्ध है। भारतीय लोकगीतों के संग्रह का सूत्रपात इसी ग्रंथ से समझना चाहिए।

डाल्टन ने सन् १८७२ ई० में 'डेस्क्रिप्टिव एथ्नोलाजी आव् बंगाल' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ का निर्माण किया जिसमें बंगाल में निवास करनेवाली विभिन्न

[1] आन दि बैलेड्स ऐंड लीजेंड्स आव् दि पंजाब, जे० ए० एस० बी०, भाग २३, पृ० ५९-९१ तथा १२३-६३

जातियों के संबंध में बहुमूल्य सामग्री विद्यमान है। इसी वर्ष श्री आर० सी० कालवेल ने 'तमिल पापुलर पोइट्री' नामक अपना लेख प्रकाशित किया जिसमें तमिल भाषा के लोकगीतों पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है[1]। श्री एफ० टी० कोल ने सन् १८७६ ई० में राजमहल में निवास करनेवाली पर्वतीय जातियों के लोकगीतों के संबंध में एक लेख लिखा[2]।

इसी समय जी० एच० डेमेंट ने 'बंगाली फोकलोर फ्राम दिनाजपुर' नामक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक बंगाली लोककथाओं का संग्रह किया गया है। ये सन् १८७६ ई० तक (जबकि इनका देहांत हो गया) लगातार इंडियन ऐंटिक्वेरी में लोकसाहित्य संबंधी लेख लिखा करते थे। बंगाल की सुप्रसिद्ध कवयित्री तरुदत्त ने सन् १८८२ ई० में 'एंशेंट बैलेड्स एंड लीजेंड्स आव् हिंदुस्तान' का प्रकाशन किया। बंगाली लोककथाओं के सुप्रसिद्ध संग्रहकर्ता श्री लालबिहारी दे ने सन् १८८३ ई० में 'फोकटेल्स आव् बंगाल' का संग्रह किया। यह बंगाली कथाओं का सर्वप्रथम सुंदर संग्रह है। यद्यपि अँग्रेजी अनुवाद के कारण इसमें मौलिक कहानियों की सुंदरता बहुत कुछ नष्ट हो गई है, फिर भी ये कथाएँ बड़ी रोचक हैं। इन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक 'बंगाल पीजेंट लाइफ' में बंगाल के ग्रामीण जीवन का सच्चा तथा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। श्री आर० सी० टेंपुल ने १८८४ ई० में 'लीजेंड्स आव् दि पंजाब' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसमें पंजाब के सुप्रसिद्ध वीरों की गाथाएँ संग्रहीत हैं। पंजाबी लोककथाओं के संग्रह का इसे संभवतः प्रथम प्रयास समझना चाहिए। अगले वर्ष सन् १८८५ ई० में श्रीमती स्टील ने 'वाइड अवेक स्टोरीज' पुस्तक लिखी जिसमें उन्हें आर० सी० टेंपुल का भी सहयोग प्राप्त था। यह कहानी संग्रह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें लेखकद्वय ने उस समय तक की प्राप्त समस्त कहानियों का अध्ययन करके उनमें वर्णित घटनाओं को श्रेणीबद्ध रूप में प्रकाशित किया है। इसी वर्ष श्री नटेश शास्त्री ने 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' का प्रकाशन किया जिससे लेखक के अथक परिश्रम का पता चलता है।

इसी वर्ष ई० जे० राबिन्सन का 'टेल्स एंड पोएम्स आव् साउथ इंडिया' प्रकाश में आया जिसमें दक्षिण भारत के लोकगीतों तथा कुछ कथाओं का अँग्रेजी अनुवाद दिया गया है।

[1] इंडियन ऐंटिक्वेरी, भाग १, पृ० ९७-१०३

[2] दि राजमहाल हिलमेंस साँग इ० ए० भाग ५ पृ० २२१-२२

भारतीय लोकगीतों तथा लोककथाओं के संग्रहकर्ताओं में सर जार्ज ग्रियर्सन का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। इन्होंने भाषाविज्ञान के क्षेत्र में जो महान् कार्य संपादित किया उससे भारतीय भाषाशास्त्री अपरिचित नहीं हैं। 'लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया' नामक महाग्रंथ इनकी अमर रचना है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र के अतिरिक्त लोकसाहित्य के संग्रह तथा संरक्षण के लिये डा० ग्रियर्सन ने जो कार्य किया है वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस विद्वान् ने सन् १८८४ ई० में 'सम बिहारी फोकसाँग्स' नामक लेख प्रकाशित किया जिसमें बिहारी भाषा के विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का संग्रह है। इसके दो वर्ष पश्चात्, सन् १८८६ ई० में, डा० ग्रियर्सन का 'सम भोजपुरी फोकसांग्स' नामक बृहत् तथा विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हुआ जिसमें भोजपुरी के बिरहा, जँतसर, सोहर आदि गीतों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने मूल गीत देकर उनका सुंदर अँग्रेजी अनुवाद भी दिया है। लेख के अंत में भाषाविज्ञान संबंधी टिप्पणियाँ दी गई हैं जिससे लेखक की विद्वत्ता का पता चलता है। यह भोजपुरी लोकगीतों के संग्रह का प्रथम प्रयास है। सन् १८८४ ई० में ग्रियर्सन ने विजयमल की लोकगाथा का संकलन किया था जो बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। इसके अगले वर्ष, सन् १८८५ ई० में, इन्होंने 'दि सांग् आव् आल्हाज़ मैरेज' नामक लेख इंडियन ऐंटिक्वेरी में छपवाया। इसमें आल्हा के विवाह से संबंधित लोकगाथा का मूल रूप दिया गया है। इसी वर्ष इन्होंने 'टू वर्शन्ज़ आव् दि सांग् आव् गोपीचंद' का संकलन कर प्रकाशित किया। इस लेख में गोपीचंद की लोककथा का भोजपुरी तथा मगही पाठ एकत्रित किया गया है। सन् १८८६ ई० में जर्मनी की सुप्रसिद्ध पत्रिका में डा० ग्रियर्सन का 'नयका बनजरवा' नामक गीत छपा। यह एक भोजपुरी लोकगाथा है जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में प्रचलित है। डा० ग्रियर्सन के संग्रह की विशेषता यह है कि इन्होंने लोकगीतों का मूल पाठ भी दिया है और उनका अँग्रेजी अनुवाद भी। इसके साथ ही इन्होंने ऐतिहासिक तथा भाषाशास्त्र संबंधी टिप्पणियाँ भी दी हैं। इन्होंने 'बिहार पीजेंट लाइफ' नामक ग्रंथ भी लिखा है जिसमें ग्रामीण जनजीवन से संबंधित शब्दावली का संग्रह किया गया है।

भारतीय लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति के संग्रह तथा संरक्षण में विलियम क्रुक का योगदान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। क्रुक एक अँग्रेज सिविलियन थे जो बहुत दिनों तक मिर्जापुर के कलक्टर थे। इन्होंने उत्तर प्रदेश के लोकगीतों का प्रचुर संग्रह तथा भारतीय लोकसंस्कृति का गंभीर अध्ययन किया। विलियम क्रुक ने सन् १८९१ ई० में भारतीय लोकसाहित्य तथा संस्कृति को प्रकाश में लाने के लिये 'नार्थ इंडियन नोट्स ऐंड क्वेरीज़' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ

किया जिसने लोकसाहित्य की बड़ी सेवा की। इस पत्रिका के पृष्ठों में लोकगीतों तथा लोककथाओं का बहुमूल्य संग्रह सुरक्षित है तथा लोकसंस्कृति की अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। यह पत्रिका पाँच छः वर्षों तक प्रकाशित होती रही। सन् १८९६ ई० में क्रुक ने 'पापुलर रिलिजन ऐंड फोकलोर आव् नार्दर्न इंडिया' नामक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ की रचना की। इसमें जनसाधारण के अंधविश्वास, टोने टोटके, नजर लगने तथा ग्रामदेवता, कुलदेवता, भूत प्रेत, रीतिरिवाज आदि विषयों का बड़ा ही सांगोपांग तथा विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में भोजपुरी प्रदेश की प्रथाओं का वर्णन विशेष रूप से उपलब्ध होता है। क्रुक ने उत्तर प्रदेश की विभिन्न जातियों का विवरण चार भागों में 'कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स आव् नार्थवेस्ट प्राविंस' नाम से प्रकाशित किया है।

पं० रामगरीब चौबे ने, जो हिंदी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे, विलियम क्रुक के आदेश तथा प्रेरणा से उत्तर प्रदेश के लोकगीतों का संग्रह किया था जिसे उन्होंने सन् १८९३ ई० में 'नार्थ इंडियन नोट्स ऐंड क्वेरीज़' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। इनके द्वारा संग्रहीत गीतों में हरदौल के गीत, कोयल के गीत तथा शिशुगीत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने इंडियन ऐंटिक्वेरी में भी स्वसंकलित अनेक लोकगीत छपवाए हैं।

जे० डी० ऐंडरसन ने सन् १८९५ ई० में आसाम राज्य की कछारी जाति के लोगों की लोककथाओं तथा शिशुगीतों का संकलन 'कलेक्शन आव् कछारी फोकटेल्स ऐंड राइम्स' प्रस्तुत किया।

आर० एम० लाफ्रेनैस ने सन् १८९९ ई० में 'सम सांग्स आव् दि पोर्चुगीज़ इंडियन्स' शीर्षक लेख प्रकाशित किया जिसमें गोआ निवासी भारतीयों के लोकगीतों का संकलन है[1]।

इस प्रकार १९वीं शताब्दी के समाप्त होते होते भारत के विभिन्न प्रांतों के लोकगीतों तथा कथाओं के कुछ संग्रह प्रकाश में आ गए। परंतु यह संकलन कार्य अभी तक बहुत अल्प हुआ था। सिविलियन लोगों तथा मिशनरियों ने इस कार्य को आगे भी जारी रखा जैसा आगे विवृत है।

स्विनर्टन ने पंजाबी लोककथाओं का संग्रह बड़े परिश्रम से किया है। इनकी 'रोमैंटिक टेल्स फ्राम दि पंजाब' का प्रकाशन सन् १९०३ ई० में हुआ। इस संकलन में राजा रसालू की सुप्रसिद्ध कथा का संग्रह किया गया है जिसका प्रचार अन्य प्रांतों में भी पाया जाता है। सन् १९०५ ई० में एफ० हान

[1] इंडियन ऐंटिक्वेरी, भाग ३०, पृ० ४०१-९

ने 'कुरुख फोकलोर इन ओरिजिनल' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उराँव लोगों के २०० लोकगीतों का संग्रह प्रस्तुत है। सन् १६०६ ई० में इ० थर्स्टन ने 'एथ्नोग्रैफिक नोट्स इन सदर्न इंडिया' प्रकाशित की। थर्स्टन साहब ने दक्षिण भारत की विभिन्न जातियों का गहन अध्ययन किया था। सन् १६०६ ई० में इनकी 'कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स आव् सदर्न इंडिया' नामक प्रसिद्ध पुस्तक निकली। सन् १६१२ ई० में इनकी 'ओमेंस ऐंड सुपरस्टीशंस आव् सदर्न इंडिया' प्रकाश में आई। यह पुस्तक अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें दक्षिण भारत के निवासियों के अंधविश्वास, शकुन, तंत्र मंत्र, टोने टोटके आदि का विस्तृत तथा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। डब्ल्यू० टी० डेम्स ने सन् १६०७ ई० में 'पापुलर पोएट्री आव् दि बिलोचीज़' का प्रकाशन किया। इस ग्रंथ में अनेक वीरगाथाएँ, प्रेम संबंधी गीत तथा पहेलियाँ मूल रूप में दी गई हैं। इनके साथ ही इनका अँग्रेजी अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। आसाम प्रांत में मिकिर नामक जाति निवास करती है। ई० स्टेक ने सन् १६०८ ई० में इस जाति की सामाजिक प्रथाओं का उल्लेख अपने ग्रंथ 'दि मिकिर्स' में किया है। सी० एच० बोंपस ने सन् १६०६ ई० में बोडिंग द्वारा संकलित संथाली कहानियों का अँग्रेजी में अनुवाद किया। सन् १६११ ई० में सलिगमैन ने 'वेद्दा' नामक जाति का वर्णन अपने ग्रंथ में किया। इसके अगले वर्ष, सन् १६१२ ई० में, शेक्सपियर नामक पादरी ने आसाम की लुशाई कुकी जाति की सामाजिक दशाओं का चित्रण अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया। इसी वर्ष ए० जी० आगरकर ने बड़ोदा राज्य में निवास करनेवाली जातियों के संबंध में अपनी पुस्तक लिखी जिसका नाम 'ए ग्लासरी आव् कास्ट्स, ट्राइब्स ऐंड रेसेज़ इन बड़ोदा स्टेट' है। इसी समय लोककथाओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें ए० कुलक की 'बंगाली हाउसहोल्ड टेल्स' और शोभनादेवी की 'ओरिएंट फर्ल्स' प्रसिद्ध हैं। डा० हीरालाल और रसल ने सन् १६१६ में मध्य प्रांत (मध्य प्रदेश) की जातियों के संबंध में अपना विशाल ग्रंथ 'दि ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आव् सेंट्रल प्राविंस आव् इंडिया' चार भागों में प्रकाशित किया जिसमें इस प्रांत में निवास करनेवाली जातियों के लोकगीत तथा कथाएँ भी संग्रहीत हैं। सी० ए० बक की पुस्तक 'फेथ्स, फेयर्स ऐंड फेस्टिवल्स आव् इंडिया' सन् १६१७ ई० में लिखी गई जिसमें लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति संबंधी अनेक ज्ञातव्य वस्तुएँ संग्रहीत हैं। सन् १६१८ ई० बिहार सरकार ने डा० ग्रियर्सन की पुस्तक 'बिहार पीजेंट लाइफ' का पुनः प्रकाशन किया। इसके प्रकाशित हो जाने से ग्रामीण शब्दावली का संग्रह करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ।

सन् १६२० ई० तक लोकसाहित्य की प्रचुर सामग्री एकत्रित, संपादित और प्रकाशित हो चुकी थी। परंतु अब तक का अधिकांश शोधकार्य विदेशी

विद्वानों द्वारा ही किया गया था। भारतीय विद्वानों ने इतस्ततः अपने लोक-साहित्य का संकलन अवश्य किया था परंतु यह कार्य संगठित रूप से नहीं हुआ था। इस काल के पश्चात् इस देश के विभिन्न प्रांतों में अनेक भारतीय विद्वान् अपने लोकसाहित्य की रक्षा में जुट गए तथा इन्होंने अथक परिश्रम द्वारा अपने साहित्य एवं संस्कृति की रक्षा की। बंगाल में डा० दिनेशचंद्र सेन, बिहार में रायबहादुर शरच्चंद्र राय, उत्तर प्रदेश में पं० रामनरेश त्रिपाठी, गुजरात में झवेरचंद मेघाणी आदि विद्वानों ने इस कार्य को अपने हाथों में लिया और लोकसाहित्य की सेवा में अपना जीवन ही लगा दिया। डा० सर आशुतोष मुखर्जी बहुत बड़े विद्वान् तथा गुणग्राही व्यक्ति थे। जब वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर थे तब उन्होंने बँगला भाषा की प्रतिष्ठा उक्त विश्वविद्यालय में की तथा इसके लोकसाहित्य की रक्षा के लिये प्रशंसनीय कार्य किया। उनकी प्रेरणा तथा आदेश से डा० दिनेशचंद्र सेन ने पूर्व बंगाल के मैमनसिंह जिले (अब पूर्वी पाकिस्तान में) के लोकगीतों का संकलन करवाया जो बाद में 'मैमनसिंह गीतिका' तथा 'पूर्ववंग गीतिका' के नाम से प्रकाशित हुआ। डा० सेन ने इन गीतों का अँग्रेजी अनुवाद 'ईस्टर्न बंगाल बैलेड्स' के नाम से चार भागों में सन् १९२३-३२ के बीच प्रकाशित किया। इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्वावधान में बँगला लोकसाहित्य पर अनेक भाषण दिए जो 'फोक लिटरेचर आव् बंगाल' के नाम से सन् १९२० ई० में प्रकाशित हुए। इसके पहले इन्होंने 'बँगला भाषा तथा साहित्य का इतिहास' भी अंग्रेजी में प्रस्तुत किया था। डा० सेन के लोकसाहित्य संबंधी इन कार्यों से अनेक बंगाली विद्वानों को प्रेरणा प्राप्त हुई और उन लोगों ने बँगला लोकसाहित्य का संग्रह किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस कार्य में सक्रिय योगदान दिया है। इस विश्वविद्यालय से प्रकाशित मंगलकाव्य के इतिहास तथा मनसा संबंधी लोकगीत इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। बँगला लोकसाहित्य के साथ डा० दिनेशचंद्र सेन का नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

बिहार के श्री शरच्चंद्र राय का कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है। वास्तव में श्री राय लोक-साहित्य-शास्त्री (फोकलोरिस्ट) नहीं प्रत्युत मानव-विज्ञान-शास्त्री (एंथ्रोपालोजिस्ट) थे। इन्होंने बिहार की मुंडा, उराँव, संथाल, बिरहोर आदि आदिम जातियों का अत्यंत विद्वत्तापूर्ण तथा गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। ये राँची में रहते थे और वहीं से 'मैन इन इंडिया' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करते थे जिसमें इन आदिम जातियों के संबंध में महत्वपूर्ण लेख छपते थे। इनकी सबसे प्रथम पुस्तक 'दि मुंडाज़ एंड देयर कंट्री' है जो सन् १९१२ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसमें बिहार की मुंडा जाति के लोगों की सामाजिक व्यवस्था का सुंदर विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही अनेक

मुंडा लोकगीत भी इसमें दिए गए हैं। इनकी दूसरी पुस्तक 'दि बिरहोर्स' है जो सन् १९२५ ई० में छपी थी। 'ओराँव रिलिजन एंड कस्टम्स' का प्रकाशन सन् १९२८ में हुआ था। इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने ओराँव नामक आदिम जाति के लोगों के धर्म तथा प्रथाओं का वर्णन किया है। इस पुस्तक में भी अनेक लोकगीत दिए गए हैं। इसके पहले सन् १९१५ ई० में ओरावों के संबंध में इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी जिसका शीर्षक था 'दि ओराँव्स आव् छोटा नागपुर'। उड़ीसा के पर्वतों में निवास करनेवाली 'भुइया' जाति के लोगों के विषय में लिखी गई 'दि हिल भुइयाज आव् ओरिसा' का प्रकाशन सन् १९३६ ई० में हुआ। 'खारीज' नामक पुस्तक की रचना सन् १९३७ ई० में की गई जो अपने ढंग का अद्वितीय ग्रंथ है। इसमें खारी लोगों के ३७ लोकगीत तथा ५५ पहेलियाँ दी गई हैं। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि शरच्चंद्र राय का यह कार्य सर्वथा मौलिक है। ये बिहार में ही नहीं, प्रत्युत भारत में भी मानव-विज्ञान-शास्त्र के अग्रणी आचार्य थे। लोकसाहित्य के क्षेत्र में कार्य करनेवाले अनेक विद्वानों ने इनकी कृतियों से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त किया है।

गुजरात में लोकसाहित्य की एकांत साधना में अपना समस्त जीवन खपा देनेवाले स्वनामधन्य श्री झवेरचंद मेघाणी के कार्यों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही है। श्री मेघाणी ने गुजराती लोकसाहित्य की जो सेवा की है वह उन्हें अमरत्व प्रदान करने के लिये पर्याप्त है। इन्होंने गुजराती लोकगीतों, लोककथाओं, शिशुगीतों, वीरगाथाओं आदि सभी का विशाल संग्रह किया है। 'कंकावटी' का प्रकाशन रनपुर से सन् १९२७ ई० में हुआ था। सन् १९२५ से ४२ ई० के बीच में 'रढ़ियाली रात' के नाम से चार भागों में लोकगीतों का संकलन इन्होंने प्रकाशित किया। इस विशाल संग्रह में सभी प्रकार के लोकगीत संकलित हैं। सन् १९२८–२९ में 'चूँदड़ी' के दो भाग प्रकाश में आए। 'हालरडाँ' में पालने के गीतों का सुंदर संग्रह उपलब्ध होता है। 'सोरठी गीत कथाओ' का प्रकाशन सन् १९३१ ई० में हुआ जिसमें ग्रामीण कहानियों का संकलन है। इन संग्रहों के अतिरिक्त मेघाणी ने लोकसाहित्य का सैद्धांतिक विवेचन भी प्रस्तुत किया है। बंबई विश्वविद्यालय में इन्होंने लोकसाहित्य के सिद्धांतपक्ष को लेकर अनेक सारगर्भित भाषण दिए जो बाद में 'लोकसाहित्य नुँ समालोचन' के नाम से सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ[१]। 'धरती नुँ धावन' में मेघाणी द्वारा लिखी गई विभिन्न प्रस्तावनाओं का एकत्र संकलन किया गया है। मेघाणी सच्चे अर्थों में

[१] बंबई विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

लोकसाहित्य शास्त्री थे। ये लोकगीतों का संकलन ही नहीं करते थे प्रत्युत उन्हें अपने मधुर तथा ललित कंठ से गाकर श्रोताओं को आत्मविभोर कर देते थे। इन्होंने जिस एकाग्र चित्त तथा एकांत साधना से गुजराती के लोकसाहित्य की सेवा की है उसका मूल्य आँकना अत्यंत कठिन है। मेघाणी के साथ ही गोकुलदास रामचुरा का भी नाम लिया जा सकता है जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा गुजराती लोकसाहित्य का भांडार भरा है।[1]

२०वीं शताब्दी के तृतीय दशक में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों के संग्रह का प्रशंसनीय कार्य प्रारंभ किया। इन्होने बड़े श्रम से भारत के विभिन्न प्रांतों की अनेक वर्षों तक यात्रा करके कई हजार लोकगीतों का संकलन किया। सन् १९२९ ई० में इन्होंने कविताकौमुदी (भाग ५)—ग्रामगीत—का प्रकाशन किया जिसमें उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के लोकगीतों का संकलन प्रस्तुत है। त्रिपाठी जी हिंदी लोकगीतों के संग्रहकर्ताओं के सेनानी एवं अग्रणी हैं। इन्होंने 'हमारा ग्रामसाहित्य' नामक पुस्तक भी लिखी है जिसमें लोकगीतों, कहावतों तथा मुहावरों का संग्रह है। परंतु अपने ग्रामगीतों का प्रथम भाग प्रकाशित कर त्रिपाठी जी ने इस कार्य से विश्राम ले लिया है और अब वे लोकसाहित्य की सेवा से तटस्थ ही नहीं हो गए हैं बल्कि तट से भी बहुत दूर चले गए हैं। फिर भी हम उनकी सेवाओं के लिये ऋणी हैं तथा उनके पथप्रदर्शन के लिये उनका आभार स्वीकार करते हैं।

लोकगीतों के संकलनकर्ताओं में श्री देवेंद्र सत्यार्थी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। इन्होंने भारत, बर्मा, लंका आदि देशों में घूम घूमकर लोकगीतों का संग्रह किया है। अपने जीवन के अमूल्य बीस वर्ष इन्होंने इस कार्य में लगाए हैं तथा लगभग तीन लाख लोकगीतों का प्रकांड संकलन किया है। सत्यार्थी जी ने लोकसाहित्य संबंधी लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'बेला फूले आधी रात', 'धरती गाती है', 'बाजत आवे ढोल' तथा 'धीरे बहो गंगा' अधिक प्रसिद्ध हैं। सत्यार्थी जी ने किसी एक प्रांत के लोकगीतों का वैज्ञानिक संग्रह प्रस्तुत नहीं किया है प्रत्युत लोकसाहित्य के संबंध में भावात्मक लेख लिखे हैं तथा उदाहरणस्वरूप कुछ गीत दे दिए हैं। इन्होंने किसी प्रांत के दो चार गीतों को पकड़कर एक लेख लिख मारा है। अतः इनकी रचनाओं में उस गंभीरता तथा विद्वत्ता का अभाव है जो एक लोक-साहित्य-शास्त्री में होनी चाहिए।

[1] मेघाणी के उपर्युक्त सभी ग्रंथ गुर्जर-ग्रंथ-रत्न-कार्यालय, गांधीरोड, अहमदाबाद से प्राप्त हो सकते हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लोकसाहित्य के अध्ययन को बड़ी प्रगति प्रदान की है। सन् १६४४ में चतुर्वेदी जी की प्रेरणा तथा प्रयास से ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ़ में 'लोकवार्ता परिषद्' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति के विभिन्न अंगों का संकलन, संपादन तथा प्रकाशन था। इस परिषद् के तत्वावधान में 'लोकवार्ता' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी श्री कृष्णानंद जी गुप्त के संपादकत्व में प्रकाशित होती थी जो संभवतः पाँच छः अंकों के बाद बंद हो गई। सन् १६४७ में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जब देशी राज्यों का विलयन होने लगा तब यह 'लोकवार्ता परिषद्' भी विलीन हो गई। परंतु अपने अल्पकालीन जीवन में ही इस परिषद् ने स्तुत्य कार्य किया। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' नामक पाक्षिक पत्र द्वारा बुंदेलखंडी लोकसाहित्य की अनुपम सेवा की है। परंतु दुःख है कि यह पत्र भी अब बंद हो गया है। चतुर्वेदी जी के ही उद्योग से काशी में सन् १६५२ ई० में 'हिंदी जनपदीय परिषद्' की स्थापना की गई थी। इस परिषद् की ओर से 'जनपद' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इसके संपादकमंडल में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० उदयनारायण तिवारी जैसे धुरंधर विद्वान् थे। परंतु यह पत्रिका भी अर्थाभाव के कारण चार अंकों के पश्चात् अकाल कालकवलित हो गई।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोकसाहित्य के प्रेमियों को सदा प्रोत्साहित किया है। आपके 'पृथिवीपुत्र' नामक ग्रंथ में 'जनपदकल्याणी योजना' का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। आपके तथा अन्य विद्वानों के उद्योग से मथुरा में 'ब्रज-साहित्य-मंडल' की स्थापना हुई है जिसके तत्वावधान में 'ब्रजभारती' प्रकाशित होती है। इस मंडल का कार्य सराहनीय है। इसने लोकसाहित्य संबंधी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन कर ब्रजसाहित्य की बहुमूल्य सेवा की है।

इस देश में लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति के संग्रह तथा रक्षा के लिये अब तक जो प्रयत्न हुए हैं वे विशृंखलित और विकेंद्रित हैं। आज तक ऐसी कोई केंद्रीय संस्था नहीं थी जो इस देश के विभिन्न राज्यों में शोध करनेवाले लोकसाहित्य के विद्वानों के कार्यों में समन्वय (को-आर्डिनेशन) स्थापित कर सके तथा जिसके तत्वावधान में समस्त देश में एक वैज्ञानिक पद्धति का अवलंबन कर लोकसाहित्य के संग्रह का कार्य किया जा सके। इस अभाव की पूर्ति के लिये प्रयाग में सन् १६५८ ई० में 'भारतीय लोकसंस्कृति शोधसंस्थान' की स्थापना की गई। इस संस्थान के संस्थापक पं० ब्रजमोहन व्यास, श्री श्रीकृष्णदास तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय हैं। संस्थापकों की इस त्रयी ने सन् १६५८ के अक्टूबर मास में अखिल भारतीय लोकसंस्कृति संमेलन का प्रथम अधिवेशन प्रयाग में किया था

जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों के अधिकारी विद्वान् तथा विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस संमेलन का दूसरा अधिवेशन सन् १९५९ के दिसंबर मास में बंबई में हुआ था जिसमें इँग्लैंड की फोकलोर सोसाइटी तथा इंडोनेशिया के प्रतिनिधि विद्यमान थे। इस शोधसंस्थान की ओर से 'लोकसंस्कृति' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इस संस्थान के द्वारा दो पुस्तकें भी प्रकाशित होनेवाली हैं—(१) लोकसाहित्य के विद्वानों का परिचय, (२) लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति संबंधी पुस्तकों का विवरण (बिब्लियोग्राफी)। लोककला को प्रोत्साहन देने के लिये प्रयाग में एक 'लोककला संग्रहालय' भी खोला गया है जिसके साथ ही एक बृहत् पुस्तकालय भी है। इसमें देश और विदेश की लोकसाहित्य संबंधी पुस्तकें विद्वानों तथा शोधछात्रों के उपयोग के लिये रखी हुई हैं। यह संस्थान भारत की विभिन्न भाषाओं के लोकगीतों का संग्रह प्रकाशित करेगा तथा विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करनेवाले विद्वानों में सामंजस्य स्थापित करेगा। इस शोधसंस्थान की स्थापना से लोकसाहित्य के अध्ययन में एक नई गति और प्रगति आ गई है।

३. विभिन्न बोलियों के लोकसाहित्य का संग्रह तथा शोधकार्य।

हिंदी भाषा की विभिन्न बोलियों—राजस्थानी, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी आदि—में लोकसाहित्य संबंधी शोधकार्य बड़ी लगन के साथ हो रहा है। सभी प्रादेशिक क्षेत्र अपनी मौखिक साहित्यसंपत्ति को सँजोकर रखने में तत्पर दिखाई देते हैं। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, इस दिशा में जितना अधिक तथा ठोस कार्य राजस्थानी में हुआ है उतना हिंदी की किसी दूसरी बोली में नहीं। राजस्थानी विद्वान् अपने राज्य में बहुमूल्य लोकसाहित्य का संग्रह तथा प्रकाशन बड़े ही सुव्यस्थित ढंग से कर रहे हैं। राजस्थानभारती, परंपरा, मरु-भारती, लोककला, वरदा आदि पत्रिकाएँ इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। राजस्थानी के पश्चात् संभवतः दूसरा स्थान भोजपुरी को दिया जा सकता है। अधिकारी विद्वानों ने भोजपुरी के भाषापक्ष तथा लोक साहित्य पक्ष—इन दोनों का वैज्ञानिक पद्धति से गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ब्रज में भी लोकसाहित्य के क्षेत्र में अच्छा कार्य हुआ है जिसका अधिकांश श्रेय ब्रजसाहित्य मंडल (मथुरा) को प्राप्त है। हिंदी के अन्य क्षेत्रों में भी शोधकार्य हो रहा है परंतु उनका अधिकांश अभी प्रकाश में नहीं आया है। प्रयाग, लखनऊ, काश्मीर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों ने लोक-साहित्य को एम० ए० (हिंदी) में स्थान प्रदान किया है। अतः इससे अनुसंधान कार्य में बड़ी प्रगति आ गई है तथा अनेक शोधछात्र इस दिशा में काय कर रहे हैं।

(१) **राजस्थानी**—हिंदी की विभिन्न बोलियों में लोकसाहित्य के संकलन का जितना अधिक कार्य राजस्थानी में हुआ है उतना संभवतः अन्य किसी बोली में नहीं। राजस्थान सदा से वीरप्रसविनी भूमि रहा है। यहाँ के पराक्रमी पुरुषों के अद्भुत शौर्य और लोकोत्तर वीरता की अमर गाथा इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। यहाँ की स्त्रियों ने धधकती हुई जौहर की प्रचंड ज्वाला को अपने कोमल कलेवर से आलिंगित कर आदर्श सतीत्व का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। अतः राजस्थान के लोकगीतों तथा गाथाओं में इन वीरों तथा सतियों का गुणगान होना स्वाभाविक है। इस प्रदेश में जल का अभाव होने पर भी लोकगीतों की पयस्विनी की अजस्र धारा सतत गति से प्रवाहित होती रही है।

राजस्थानी लोकसाहित्य की परंपरा प्राचीन है। जैन मुनियों का संपर्क लोकजीवन से अधिक रहा है। अतः वे जहाँ भी गए वहाँ लोकभाषा तथा लोक-रुचि का आदर करते हुए साहित्य की सृष्टि करते रहे। जनसाधारण उनकी किस रचना को किस राग या ताल में गावें, इसकी सूचना के रूप में उन्होंने अपनी रचनाओं के प्रारंभ में 'देशी' या 'ढाल एहनी' आदि शब्दों द्वारा उसके संगीत का निर्देश कर दिया है। जैन साहित्य के पंडित मोहनलाल दलीचंद देसाई ने 'जैन गुर्जर कवियो' के तीसरे भाग के परिशिष्ट में जैन ग्रंथों में प्रयुक्त २४०० देशियों या तर्जों की अनुक्रमणिका दी है। इनमें राजस्थानी लोकगीतों की अधिकता है। इन लोकगीतों की 'देशियों' के उद्धरण के रूप में जैन कवियों ने आज से ५०० पूर्व लोकगीतों के महत्व को समझा था। १७वीं शताब्दी में इस ओर अधिक ध्यान दिया गया और सैकड़ों लोकगीतों की देशियों में अनेक कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। १९वीं शताब्दी के जैन यतियों द्वारा लिखे गए अनेक लोकगीत भी उपलब्ध होते हैं[1]।

राजस्थानी लोकगीतों का संभवतः सबसे प्रथम संकलन श्री खेताराम माली का 'मारवाड़ी गीतसंग्रह' है जो रामलाल नेमाणी द्वारा राम प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित किया गया था। इस संग्रह में पाँच भाग हैं जिनमें १०३ लोकगीत संग्रहीत हैं। इस ग्रंथ की द्वितीयावृत्ति सन् १९१५ ई० में हुई थी। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध प्रकाशक श्री बैजनाथ केड़िया ने हिंदी पुस्तक एजेंसी से 'मारवाड़ी गीत' नामक एक संग्रह प्रकाशित किया था। कलकत्ते से ही विद्याधरी देवी द्वारा संकलित 'असली

[1] इस लेख की अधिशांश सामग्री श्री अगरचंद जी नाहटा के लेख 'राजस्थानी लोकगीतों का संग्रह एवं प्रकाशन कार्य' से ली गई है। अतः लेखक इसके लिये नाहटा जी का अत्यंत अनुगृहीत है।

मारवाड़ी गीतसंग्रह' नामक पुस्तक सन् १९३३ ई० में प्रकाश में आई। परंतु ये तीनों संग्रह सामान्य कोटि के थे। जोधपुर के श्री जगदीशसिंह गहलोत ने 'मारवाड़ के ग्रामगीत' नामक संकलन सन् १९१९ ई० में प्रकाशित किया। इस संग्रह में १०० गीतों का संपादन गीतों के परिचय, टिप्पणी, और कठिन शब्दों के अर्थ सहित किया गया है। इसी वर्ष जैसलमेर के मेहता रघुनाथसिंह ने 'जैसलमेरीय संगीतरत्नाकर' नाम से लोकगीतों का सुंदर संग्रह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित किया। इस संग्रह के गीत बड़े बड़े और अच्छे हैं। मेहता जी ने इनका संकलन बड़े मनोयोग के साथ किया है। इसी समय पं० रामनरेश त्रिपाठी ने हिंदीमंदिर (प्रयाग) से 'मारवाड़ के मनोहर गीत' नाम से ५१ पृष्ठों की एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की। त्रिपाठी जी के पश्चात् श्री देवेंद्र सत्यार्थी ने भी राजस्थान के लोकगीतों का संग्रह किया है परंतु इनका कोई ग्रंथ इस विषय पर देखने में नहीं आया। सन् १९३३ ई० में श्री सरदार मल जी थानवी ने 'घुड़ला' नामक एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें 'घुड़ले' नामक त्योहार का वर्णन देते हुए, उससे संबंधित नौ गीत भी संकलित हैं। श्री पुरुषोत्तमदास पुरोहित का 'पुष्करणों का सामाजिक गीत' इस दिशा में सुंदर प्रयास है[१]।

राजस्थानी लोकगीतों का सर्वश्रेष्ठ संकलन बीकानेर की विद्वत्रयी—श्री सूर्यकरण पारीक, श्री नरोत्तमदास स्वामी तथा श्री रामसिंह—द्वारा 'राजस्थान के लोकगीत' के नाम से दो भागों में प्रकाश में आया[२]। इस ग्रंथ में विद्वान् संपादकों ने राजस्थान के चुने हुए सुंदर गीतों को एकत्रित कर प्रेमी पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। इस संग्रह में २३० लोकगीत हैं। संपादकों ने प्रत्येक गीत का संदर्भ तथा उसका हिंदी अनुवाद भी दिया है। अंत में कठिन शब्दों का अर्थ भी दिया गया है। इस प्रकार यह ग्रंथ विशेष महत्वपूर्ण है। इसी संपादकत्रयी ने राजस्थान में प्रचलित तथा अत्यंत लोकप्रिय लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' का संपादन बड़े परिश्रम, लगन तथा विद्वत्ता के साथ किया है[३]। इस ग्रंथ की भूमिका में लोक-साहित्य संबंधी बहुमूल्य विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। मूल गाथा के हिंदी अनुवाद के साथ पादटिप्पणियों में विभिन्न पाठ तथा पुस्तक के अंत में कठिन शब्दों का अर्थ दिया गया है। सन् १९४२ ई० में श्री सूर्यकरण पारीक का 'राजस्थानी लोकगीत' पाठकों के सामने आया जिसमें विद्वान् संपादक ने राजस्थानी

[१] मरुधर प्रकाशन मंदिर, जोधपुर से प्रकाशित।

[२] राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, सन् १९३८ ई०।

[३] नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित।

लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय बड़ी सुंदर रीति से प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह पुस्तिका केवल ६५ पृष्ठों की है फिर भी अनेक उपयोगी बातें इसमें पाई जाती हैं। स्वर्गीय पारीक जी की स्मृति में 'राजस्थान के ग्रामगीत' के प्रथम भाग का प्रकाशन सन् १६४० ई० में हुआ[1]। इसमें स्वयं पारीक जी तथा उनके शिष्य श्री गणपति स्वामी द्वारा संकलित ६७ गीत हैं। ताराचंद ओझा का 'मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह', निहालचंद वर्मा का 'मारवाड़ी गीत' तथा मदनलाल वैश्य की 'मारवाड़ी गीत-माला' इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयत्न हैं। जैसलमेर के श्री नागरमल गोयल ने 'राजस्थानी संगीत' में ६३ गीतों का संकलन किया है।

दिल्ली से मारवाड़ी गीतों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें पहला संग्रह ओम्प्रकाश गुप्त द्वारा संकलित 'मारवाड़ी गीतसंग्रह' के नाम से छपा है[2] तथा दूसरा प्रह्लाद शर्मा गौड़ द्वारा संकलित 'मारवाड़ी गीत और भजनसंग्रह' है[3]। राजस्थानी लोकगीतों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। पुरुषोत्तम मेनारिया ने 'राजस्थानी लोकगीत' नामक ६४ पृष्ठों की छोटी सी पुस्तिका में संस्कार, त्योहार और देवी देवताओं संबंधी गीतों को एकत्रित किया है[4]। 'राजस्थानी भीलों के लोक-गीत' भी अपने ढंग का प्रथम प्रयास है जिसमें भीलों के मधुर गीत संकलित किए गए हैं[5]। रानी लक्ष्मीकुमारी चूँडावत का 'राजस्थानी लोकगीत' नामक संग्रह राजस्थानी संस्कृति परिषद्, जयपुर से प्रकाशित हुआ है जिसमें अर्थसहित ६० गीत दिए गए हैं। संपादिका की भूमिका महत्वपूर्ण एवं गंभीर है।

लोकगीतों के अतिरिक्त राजस्थान में लोकगाथाएँ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं जिनका संग्रह अन्वेषी शोधकों ने किया है। राजस्थानी भाषा की प्राचीन लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसके बाद दूसरी प्रसिद्ध लोकगाथा पदमा तेली रचित 'रुक्मिणीमंगल' है। इस काव्य की सबसे प्राचीन प्रति संवत् १६६६ विक्रमी की उपलब्ध होती है। लोकगाथा होने के कारण इसमें समय समय पर परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा है। इसी के समान प्रसिद्ध दूसरी लोकगाथा 'नरसी जी रो मायरो' है। कालक्रम

[1] 'सूर्यकरण पारीक राजस्थानी ग्रंथमाला', संख्या १, प्रकाशक—गयाप्रसाद ऐंड सन्स, आगरा, सन् १६४०।

[2] गर्ग ऐंड कं०, खारी बावली, दिल्ली।

[3] अग्रवाल बुक डिपो, खारी बावली, दिल्ली।

[4] दि स्टूडेंट बुक कंपनी, जयपुर।

[5] साहित्य संस्थान, उदयपुर।

से इसमें भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। इसके रचयिता का नाम रतना खाती है। राजस्थानी जनता के लोकप्रिय जनकाव्य 'कृष्ण रुक्मणी रो ब्यावलो' का लेखक पदमा भगत तेली माना जाता है। उपर्युक्त दोनों लोककाव्यों के रचयिता नीची जाति में उत्पन्न हुए थे। श्री गणपति स्वामी ने 'जीणमाता रो गीत' नामक एक महत्वपूर्ण लोकगाथा का कुछ अंश 'राजस्थान-भारती' में प्रकाशित किया था। ठाकुर सौभाग्यसिंह शेखावत के संपादकत्व में 'जीणमाता' नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है[1]। इसी प्रकार 'डुंग जी जवार जी रो गीत', 'तेजा जी रो गीत', 'मानाँ गूजरी को पवाड़ो' तथा 'पाबू जी रा पवाड़ा' आदि अनेक लोकगाथाएँ श्री गणपति स्वामी के संपादकत्व में प्रकाशित हो चुकी हैं।

(२) राजस्थान की लोक-संस्कृति-शोध संबंधी संस्थाएँ—

(क) शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिट्यूट, बीकानेर—राजस्थान में लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के क्षेत्र में जो अनेक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं उनमें राजस्थानी रिसर्च इंस्टिट्यूट का स्थान सर्वप्रथम है। इस संस्था की स्थापना सन् १९४६ ई० में बीकानेर के तत्कालीन महाराज सर शार्दूलसिंह जी की संरक्षकता में हुई थी। इस शोधसंस्थान ने राजस्थानी भाषा, साहित्य तथा इतिहास के क्षेत्र में शोधकार्य करने के अतिरिक्त लोकसंस्कृति की रक्षा तथा प्रकाशन के संबंध में अमूल्य सेवा की है। यह अनेक वर्षों से 'राजस्थान भारती' नामक एक त्रैमासिक शोधपत्रिका का प्रकाशन भी करती है जिसके माध्यम से हजारों राजस्थानी लोकगीत तथा कथाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। इस संस्था ने लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित किए हैं। यह अनेक विद्वानों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हें लोक-साहित्य-संकलन में प्रवृत्त करती है। हजारों गीत तथा कथाएँ संग्रहीत होकर इस संस्थान के कार्यालय में सुरक्षित हैं। इसके वर्तमान संचालक श्री अगरचंद जी नाहटा हैं जो राजस्थानी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं।

(ख) राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता—यह सोसाइटी अनेक वर्षों से राजस्थानी भाषा और साहित्य के संरक्षण तथा प्रकाशन का कार्य बड़ी लगन से कर रही है। इस सोसाइटी की ओर से सन् १९३८ ई० में 'राजस्थान के लोकगीत' (भाग १, पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध) नामक सुंदर संकलन प्रकाशित किया गया था जो आज भी इस क्षेत्र में अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रंथों का प्रकाशन भी इस सोसाइटी की ओर से हुआ है। यह 'राजस्थानी' नामक

[1] राजस्थानी संस्कृति संस्थान, जयपुर।

त्रैमासिक पत्रिका निकलती है जिसमें राजस्थानी लोकसाहित्य संबंधी प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।

(ग) भारतीय लोक-कला-मंडल, उदयपुर—इस मंडल का उद्देश्य राजस्थान की लोककला, लोकनाट्य, लोकनृत्य एवं लोकसंस्कृति के विभिन्न अंगों की रक्षा एवं उनका प्रकाशन तथा प्रचार है। इस संस्था के वर्तमान संचालक श्री देवीलाल सामर हैं जिनके सतत परिश्रम तथा अथक प्रयत्न के कारण इसने थोड़े ही समय में बहुत अधिक उन्नति कर ली है। लोक-कला-मंडल ने राजस्थान की लोकसंस्कृति के संबंध में अनेक सुंदर तथा लोकप्रिय पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें से कुछ ये हैं: (१) राजस्थानी लोकनाट्य, (२) राजस्थानी लोकनृत्य, (३) राजस्थानी लोकोत्सव, (४) राजस्थान का लोक-संगीत, (५) राजस्थान के लोकानुरंजन। इन ग्रंथों में १००-१०० पृष्ठों की संकुचित सीमा के भीतर विद्वान् लेखकों ने राजस्थानी लोकसंस्कृति के भिन्न भिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस मंडल द्वारा 'लोककला' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसका प्रधान लक्ष्य लोककला का संरक्षण है। मंडल के अधिकारी जनता में प्रचार के लिये लोकनृत्य तथा लोक-नाट्य का स्थान स्थान पर अभिनय भी प्रस्तुत करते हैं जिससे शिष्ट और सुसंस्कृत जनसमाज की रुचि इधर आकृष्ट हो।

(घ) राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ—इस समिति की स्थापना अभी दो वर्षों से हुई है। राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन तथा प्रचार के साथ साथ यह लोकसाहित्य की भी सेवा कर रही है। इस समिति की ओर से 'वरदा' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। इस पत्रिका का वर्ष २, अंक १ 'लोकसाहित्य विशेषांक' के रूप में छपा है जिसमें राजस्थानी लोकसाहित्य की प्रचुर एवं बहुमूल्य सामग्री प्रकाशित हुई है। इस पत्रिका के वर्तमान संपादक श्री मनोहर शर्मा हैं जिन्होंने राजस्थानी लोकसाहित्य संबंधी अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों की रचना की है।

(ङ) मरुभारती, पिलानी (राजस्थान)—डा० कन्हैयालाल सहल की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से लोकसाहित्य के अनेक प्रेमी पिलानी (जयपुर) से 'मरुभारती' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं जिसके पृष्ठों में राजस्थानी लोकसाहित्य की सामग्री रहती है। जयपुर की 'मरुवाणी' भी इस दिशा में एक स्तुत्य प्रयास है। इस प्रकार इन संस्थाओं तथा पत्रपत्रिकाओं द्वारा राजस्थानी लोकसंस्कृति के विभिन्न अंग प्रकाश में लाए जा रहे हैं।

(२) ब्रज—हिंदी की बोलियों में ब्रजभाषा का प्रमुख स्थान है। ब्रज राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं तथा गोपियों के साथ रास की रंगस्थली है। अतः इस

क्षेत्र में लोकगीतों की प्रचुरता स्वाभाविक है। यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने इस प्रदेश के लोकगीतों का संकलन किया है, ब्रज के लोकगीतों का अभी तक कोई प्रामाणिक तथा बृहत् संग्रह देखने में नहीं आया है।

हिंदी विद्यापीठ, आगरा के डा॰ सत्येंद्र ने 'ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन' शीर्षक पुस्तक लिखी है[1] जिसमें इस क्षेत्र के गीतों का प्रामाणिक विवेचन प्रथम बार पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में अनावश्यक विस्तार है तथा वर्णनपद्धति भी सुस्पष्ट, सुगठित तथा सुव्यवस्थित नहीं है, फिर भी ब्रज के लोकगीतों तथा कथाओं के संबंध में इससे अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। डा॰ सत्येंद्र की दूसरी पुस्तक 'ब्रज की लोक कहानियाँ' है जिसमें विद्वान् संपादक ने बड़े परिश्रम के साथ ब्रज के विभिन्न भागों में प्रचलित लोककथाओं का संग्रह किया है[2]। 'ब्रज-लोक-संस्कृति' का प्रकाशन डा॰ सत्येंद्र के संपादकत्व में हुआ है[3] जिसमें ब्रज की संस्कृति के विभिन्न अवयवों—इतिहास, कला, लोकगीत—का विवेचन अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 'पोद्दार-अभिनंदन ग्रंथ' में डा॰ सत्येंद्र ने 'ब्रज का लोकसाहित्य' नाम से एक विशालकाय लेख प्रस्तुत किया है जिसमें ब्रज के सैकड़ों लोकगीत और लोकोक्तियाँ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने गुरु गुग्गा की ब्रज में प्रचलित लोकगाथा के पाठ (वर्णन) को बड़े परिश्रम के साथ संपादित कर प्रकाशित किया है[4]। ब्रज-लोक-साहित्य एवं संस्कृति से संबंधित इनके अनेक लेख हिंदी विद्यापीठ की मुखपत्रिका 'भारतीय साहित्य' में समय समय पर प्रकाशित हुए हैं। आदर्शकुमारी यशमाल ने बच्चों के मनोरंजन के लिये ब्रज की लोककथाओं का खड़ी बोली में प्रकाशन किया है[5]।

(क) ब्रज-साहित्य-मंडल, मथुरा—ब्रजमंडल के अनेक उत्साही विद्वानों ने ब्रज की लोकसंस्कृति तथा साहित्य के प्रकाशन के लिये 'ब्रज-साहित्य-मंडल' नामक संस्था की स्थापना मथुरा में की है। इस मंडल की ओर से ब्रज-संस्कृति-संबंधी अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। यह संस्था 'ब्रजभारती' नामक शोधपत्रिका भी प्रकाशित करती है जिसमें ब्रज का अनंत लोकसाहित्य धीरे धीरे प्रकाश में आ रहा है। इस मंडल का वार्षिक अधिवेशन ब्रजमंडल के विभिन्न स्थानों में हुआ करता है। इस संस्था के हाथरसवाले अधिवेशन में स्वयं राष्ट्रपति डा॰ राजेंद्रप्रसाद

[1] साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा, सन् १९४९
[2] ब्रज-साहित्य-मंडल, मथुरा, सन् १९४७
[3] ब्रज-साहित्य-मंडल, मथुरा।
[4] हिंदी विद्यापीठ, आगरा से प्रकाशित।
[5] आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली।

जी ने पधारने की कृपा की थी। इस प्रकार मंडल ने व्रज के लोकसाहित्य की रक्षा तथा उसके प्रकाशन के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवा की है।

(३) अवधी—अवधी प्रदेश में भी लोकगीत प्रचुरता से पाए जाते हैं परंतु जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक को ज्ञात है, इन गीतों का कोई प्रामाणिक संकलन प्रकाश में नहीं आया है। प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० बाबूराम सक्सेना ने अपने ग्रंथ 'अवधी भाषा का विकास' (इवोल्यूशन आव् अवधी) की रचना के समय कुछ लोकगीतों का संकलन अवश्य किया था परंतु वे अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। श्री सत्यव्रत अवस्थी ने 'विहाग रागिनी' नामक एक छोटी सी पुस्तक में अवधी के कुछ लोकगीतों का संकलन प्रस्तुत किया है। लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने 'अवधी और उसका साहित्य' में अवधी के वर्तमान कवियों का परिचय देते हुए उनकी कविताएँ उद्धृत की हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने श्री सत्यनारायण मिश्र की सहायता से प्रतापगढ़ तथा गोंडा जिलों से अवधी के २००० लोकगीतों का संग्रह बड़े परिश्रम से किया है जो शीघ्र ही 'अवधी लोकगीत' के नाम से प्रकाशित होनेवाला है। पं० रामनरेश त्रिपाठी की कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत) में भी अवधी के कुछ गीतों का संकलन उपलब्ध होता है।

परंतु अवधी लोकगीतों का सबसे प्रामाणिक तथा सुंदर संग्रह प्रोफेसर इंदुप्रकाश पांडेय (अध्यक्ष, हिंदी विभाग, एलफिन्स्टन कालेज, बंबई) का 'अवधी लोकगीत और परंपरा' है[1] जिसमें विद्वान् लेखक ने अवधी के संस्कारगीतों का ही प्रधानतया संकलन किया है। पुस्तक के प्रारंभ में ८५ पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी है जिसमें संस्कारों तथा सामाजिक संस्थाओं की व्याख्या की गई है। पांडेय जी ने बड़े श्रम से इन गीतों का संपादन किया है। प्रत्येक गीत के प्रारंभ में संदर्भ तथा अंत में उसका अर्थ दिया गया है। लेखक ने इन गीतों की स्वरलिपि को सुरक्षित रखने के लिये इनकी टेपरिकार्डिंग भी की है। अपने संग्रह के द्वितीय भाग में पांडेय जी अवधी के अन्य लोकगीत भी प्रकाशित करनेवाले हैं।

सीतापुर की हिंदी सभा लोकगीतों के संग्रह की दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रही है। इधर सन् १९५६ ई० से श्री उपेंद्रनाथ राय और श्री गौरीशंकर पांडेय के संपादकत्व में 'अवधभारती' का प्रकाशन फैजाबाद से हो रहा है। इस द्वैमासिक पत्रिका द्वारा अवधी लोकसाहित्य की बहुमूल्य सामग्री प्रकाश में

१ रामनारायणलाल ऐंड संस, प्रयाग, १९५७

लाई जा रही है। आशा है शोधी विद्वान् अवधी के लोकगीतों तथा लोककथाओं का प्रामाणिक संग्रह प्रस्तुत कर इस अभाव को दूर करने की चेष्टा करेंगे।

(४) बुंदेलखंडी—बुंदेलखंड में लोकसाहित्य के संग्रह का कार्य बड़े उत्साह के साथ हो रहा है। सन् १६४४ ई० में ओरछा के तत्कालीन महाराज के संरक्षण में 'लोकवार्ता परिषद्' की स्थापना टीकमगढ़ में हुई थी जिसने बुंदेलखंड के लोकगीतों, गाथाओं, कहावतों तथा मुहावरों के संकलन का कार्य वैज्ञानिक पद्धति से प्रारंभ किया था। इस परिषद् के तत्वावधान में 'लोकवार्ता' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी जिसके संपादक थे लोकसाहित्य के विद्वान् श्री कृष्णानंद जी गुप्त। यद्यपि इस पत्रिका के संभवतः कुछ ही अंक प्रकाशित हुए, फिर भी इसमें लोकसाहित्य संबंधी बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। इस परिषद् ने अपने अल्पकालीन जीवन में ही प्रशंसनीय कार्य किया था। परंतु स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् ओरछा राज्य के भारतीय संघ में विलयन के साथ ही इस परिषद् का भी विलयन हो गया। इसी समय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' पत्र द्वारा बुंदेलखंडी लोकसाहित्य को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय प्रयास किया था। परंतु यह पत्र भी अधिक दिनों तक नहीं चल सका। पिछले दो वर्षों से झाँसी जिले के मऊरानीपुर में 'ईसुरी परिषद्' की स्थापना हुई है जिसके मंत्री हैं श्री नर्मदाप्रसाद जी गुप्त। इस परिषद् का उद्देश्य भी 'लोकवार्ता परिषद्' की ही भाँति बुंदेलखंडी लोकसाहित्य का संकलन तथा प्रकाशन है। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार तथा नाटककार डा० वृंदावनलाल वर्मा तथा श्री कृष्णानंद जी गुप्त के संरक्षण में यह परिषद् कुछ ठोस सेवा कर सकेगी, ऐसी दृढ़ आशा है।

बुंदेलखंड में ईसुरी नामक लोककवि की 'फागें' बहुत प्रसिद्ध हैं। श्री कृष्णानंद जी गुप्त ने इन फागों का संकलन 'ईसुरी की फागें' शीर्षक छोटी सी पुस्तिका में प्रस्तुत किया है[1]। श्री गुप्त जी की इच्छा कई भागों में इन फागों को प्रकाशित करने की थी परंतु संभवतः उनकी यह योजना पूर्ण नहीं हो सकी। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी ने बुंदेलखंडी लोककथाओं का संग्रह बड़े परिश्रम तथा लगन के साथ किया है। इस क्षेत्र में चतुर्वेदी जी का कार्य प्रशंसनीय है। श्री हरप्रसाद शर्मा ने 'बुंदेलखंडी लोकगीत' प्रकाशित किया है।

परंतु इस क्षेत्र में प्रो० श्रीचंद्र जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप आजकल गवर्नमेंट कालेज, खरगोन (मध्य प्रदेश) में हिंदी विभाग के अध्यक्ष हैं।

[1] लोकवार्ता परिषद्, टीकमगढ़ से प्रकाशित।

इन्होंने बुंदेलखंडी तथा बघेलखंडी लोकसाहित्य की प्रचुर सेवा की है। रीवाँ के आसपास की जंगली जातियों के लोकगीतों का भी इन्होंने संकलन किया है जो 'आदिवासियों के लोकगीत' के नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। 'विंध्य के लोककवि' में इन्होंने सुप्रसिद्ध लोककवि ईसुरी, गंगाधर आदि का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है।[1] 'धरती मोरी मैया' में इनके लोकसाहित्य संबंधी अनेक लेखों का संग्रह हैं।[2] 'आगे गेहूँ पीछे धान' नामक पुस्तिका में बुंदेलखंडी तथा बघेलखंडी कृषि संबंधी कहावतों एवं विश्वासों का संकलन किया गया है। 'भुइयाँ परे हैं लाल' में बघेलखंडी सोहरों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने 'विंध्य भूमि की लोककथाएँ', 'विंध्यभूमि की अमर कथाएँ', 'विंध्य के आदिवासियों की कथाएँ', 'बघेलखंडी लोककथाएँ' आदि पुस्तकें लिखीं हैं जिनमें बुंदेलखंड तथा बघेलखंड की लोककथाओं का संकलन किया गया है। 'विंध्य के लोकगीत' में 'करना' नामक स्थानीय जंगली जाति के गीतों का संग्रह है। 'काव्य में पादपपुष्प' श्रीचंद्र जैन की एक उत्कृष्ट रचना है[3] जिसके एक अध्याय में लोकगीतों में पादपपुष्पों का वर्णन किया गया है। श्री लखनप्रताप 'डरगेश' ने बघेली लोकगीतों का संकलन कर इस प्रदेश के लोकगीतों को काल के गाल में जाने से बचाया है[4]।

पं० गौरीशंकर द्विवेदी ने 'प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ' में बुंदेलखंडी लोकगीतों का संग्रह तथा उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है[5]। श्री देवेंद्र सत्यार्थी ने इसी ग्रंथ में बुंदेलखंड के सात लोकगीतों की चर्चा अपनी भावात्मक शैली में की है[6]। सागर तथा जबलपुर विश्वविद्यालय में अनेक छात्र बुंदेलखंडी लोकसाहित्य पर शोध-कार्य कर रहे हैं। डा० शंकरदयाल चौऋषि एम० ए०, पी-एच० डी० अपनो डि० लिट्० की उपाधि के लिये सागर विश्वविद्यालय में बुंदेलखंडी लोकोक्तियों तथा पहेलियों पर शोधकार्य कर रहे हैं। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी की अंतिम रचना 'बुंदेलखंडी लोकगीत' है जिसमें उन्होंने इस प्रदेश में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों का विद्वत्तापूर्ण संग्रह किया है[7]।

१ अग्रवाल प्रकाशन, इलाहाबाद।
२ यूनिवर्सिटी बुकडिपो, आगरा।
३ मध्य प्रदेशीय प्रकाशन समिति, भूपाल।
४ काटिया, विंध्य प्रदेश, सन् १९५४ ई०।
५ प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ६०७-६१४
६ वही, पृ० ६१५-६२०
७ मध्यप्रदेश शासन साहित्यपरिषद् द्वारा प्रकाशित, सन् १९५९।

(५) मालवी—डा० श्याम परमार ने 'मालवी लोकगीत' का संपादन कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। 'मालवी और उसका साहित्य'[1] नामक दूसरे ग्रंथ में इन्होंने मालवा के लोकगीत, लोकनाट्य आदि विषयों का संक्षिप्त विवेचन सुंदर रीति से प्रस्तुत किया है। 'मालवा की लोककथाएँ'[2] बच्चों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। इधर लोकनाट्यों के संबंध में इनकी 'लोकधर्मी नाट्य-परंपरा' पुस्तक प्रकाशित हुई है[3]। इस प्रकार डा० श्याम परमार ने मालवा के लोकगीत, लोकनाट्य, तथा लोककथा आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया है। माधव कालेज, उज्जैन के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डा० चिंतामणि उपाध्याय ने अपने शोधनिबंध 'मालवी लोकसाहित्य का अध्ययन' में इस प्रदेश के लोकसाहित्य के विभिन्न अवयवों का सांगोपांग प्रामाणिक विवेचन किया है। श्री रतनलाल मेहता ने मालवी कहावतों का संकलन प्रकाशित किया है[4]। श्री वसंतीलाल 'वम' (उज्जैन) भी मालवी लोकसाहित्य के उद्धार के लिये अथक परिश्रम कर रहे हैं।

पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण जी व्यास की अध्यक्षता में 'मालव लोकसाहित्य परिषद्' की स्थापना उज्जैन में की गई है। यह परिषद् मालवी लोकसंस्कृति की रक्षा तथा प्रकाशन में सतत गति से कार्य कर रही है।

(६) छत्तीसगढ़ी—सागर विश्वविद्यालय के मानवविज्ञान शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० श्यामाचरण दूबे ने 'छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय' नामक ग्रंथ लिखकर इस प्रदेश के लोकगीतों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इन्होंने इस संबंध में अँग्रेजी में भी एक पुस्तक लिखी है जो 'फील्ड सांग्स आव् छत्तीसगढ़' के नाम से लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी है[5]। यहाँ के सरस तथा मधुर गीतों ने सुप्रसिद्ध मानवविज्ञान-शास्त्री डा० वेरियर एलविन का भी ध्यान आकृष्ट किया जिन्होंने अँग्रेजी में 'फोकसांग्स आव् छत्तीसगढ़' नामक ग्रंथ की रचना की है[6]। डा० एलविन का यह ग्रंथ बड़ा प्रामाणिक है। इसमें छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का अँग्रेजी भाषा में पद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया गया है परंतु मूल

[1] 'सरस्वती सहकार' की ओर से राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
[2] आत्माराम ऐंड सन्स, नई दिल्ली, सन् १९५४ ई०
[3] हिंदीप्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी।
[4] राजस्थान शोधसंस्थान, उदयपुर।
[5] यूनिवर्सल बुक डिपो, लखनऊ।
[6] आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बंबई, सन् १९४६

गीतों के अभाव में आनंद की पूर्ण अनुभूति नहीं होने पाती। सागर तथा जबलपुर विश्वविद्यालयों में अनेक शोधछात्र छत्तीसगढ़ी लोकगीतों तथा लोकोक्तियों पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। इस प्रदेश की लोककथाओं का संकलन डा० एलविन ने 'फोक टेल्स आव् महाकोशल' में किया है[1]। कटनी के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा पुरातत्ववेत्ता स्व० रायबहादुर डा० हीरालाल ने इस प्रदेश की जंगली जातियों के लोकगीतों के कुछ रेकार्ड तैयार कराए थे जिनका प्रदर्शन इन्होंने नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा आयोजित कोशोत्सव के अवसर पर किया था। श्री चंद्रकुमार ने छत्तीसगढ़ की लोककथाओं का संकलन बच्चों के लिये किया है जो आत्माराम एंड संस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

(७) **निमाड़ी**—निमाड़ी लोकसाहित्य के एकांत सेवी पं० रामनारायण उपाध्याय ने इस प्रदेश के लोकगीतों का संकलन कर अमूल्य सेवा की है। इस क्षेत्र में आप अद्वितीय हैं। आपका 'निमाड़ी लोकगीत' इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास है[2]। इसमें निमाड़ में प्रचलित विविध प्रकार के गीतों का संकलन किया गया है। इनकी दूसरी पुस्तक 'जब निमाड़ गाता है' का प्रकाशन अभी हाल में ही हुआ है[3]। इस ग्रंथ में प्रधानतया संस्कार तथा व्रत संबंधी गीतों का संग्रह है। लोरी तथा बच्चों के कुछ गीत भी दिए गए हैं। डा० कृष्णलाल 'हंस' ने 'निमाड़ी भाषा और उसका साहित्य' नामक शोधनिबंध पर पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इस शोधपूर्ण ग्रंथ में निमाड़ी साहित्य के विभिन्न अंगों का गंभीर विवेचन किया गया है। इस पुस्तक के प्रकाशित हो जाने पर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जायगी। डा० 'हंस' ने बच्चों के लिये निमाड़ी लोककथाओं को दो भागों में खड़ी-बोली में प्रकाशित किया है[4]। इस प्रदेश में अभी बहुत काम करना बाकी है। इधर पं० रामनारायण उपाध्याय के अथक परिश्रम से सन् १९५३ ई० में 'निमाड़ लोक-साहित्य-परिषद्', सनावद, की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य निमाड़ी लोकसाहित्य का संकलन तथा प्रकाशन है। इस परिषद् की ओर से 'निमाड़ी कविताएँ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई हैं जिसमें निमाड़ी के आधुनिक ११ कवियों की कविताएँ संकलित हैं[5]।

[1] वही, सन् १९४४ ई०।

[2] मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन, जबलपुर, १९४९

[3] उषा प्रकाशनगृह, ४६ यशवंतगंज, इंदौर, १९५८ ई०।

[4] आत्माराम ऐंड सन्स, नई दिल्ली।

[5] निमाड़ लोक-साहित्य-परिषद्-प्रकाशन, सनावद (म० प्र०)।

(८) कौरवी—आजकल खड़ी बोली जिस प्रदेश में मातृभाषा के रूप में व्यवहृत होती है उसका प्राचीन नाम कुरु प्रदेश था। अतः कुछ विद्वानों ने इस प्रदेश में प्रचलित भाषा का नामकरण 'कौरवी' किया है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कुरु प्रदेश के लोकगीतों का संग्रह 'आदि हिंदी के गीत और कहानियाँ' नाम से प्रकाशित किया है[1]। राहुल जी ने इन गीतों को एक बुढ़िया से सुनकर लिपिबद्ध किया था। यह पुस्तक अपने ढंग का प्रथम प्रयास है जिसके लिये लोकसाहित्य के प्रेमी राहुल जी के अत्यंत आभारी हैं। सुश्री सत्या गुप्त, एम० ए० ने, जो प्रयाग विश्वविद्यालय में अनुसंधान कार्य कर रही हैं, अपने शोध का विषय 'कौरवी लोकसाहित्य का अध्ययन' रखा है। उनका यह निबंध समाप्तप्राय है जिसमें उन्होंने गंभीरतापूर्वक कौरवी लोकगीतों की विस्तृत मीमांसा की है। सुश्री सत्या गुप्त ने अपने शोधनिबंध के संबंध में सहारनपुर, मेरठ आदि जिलों में घूम घूमकर हजारों गीतों का संकलन किया है। इनका शोधनिबंध तथा इनके द्वारा संकलित लोकगीतों का संग्रह प्रकाशित हो जाने पर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जायगी।

श्रीमती सीतादेवी तथा दमयंतीदेवी ने खड़ी बोली के गीतों का संकलन 'धूलिधूसरित मणियाँ' में किया है[2]। कुरु प्रदेश के लोकगीतों का यह सबसे प्रामाणिक तथा सुंदर संकलन है। इन विदुषी स्त्रियों ने गावों में जाकर, स्त्रियों के मुख से सुनकर, इन गीतों को लिपिबद्ध किया है। इस पुस्तक में अधिकतर संस्कार संबंधी गीत उपलब्ध होते हैं। इसमें कुछ गीत हरियाना प्रांत से भी संग्रहीत हैं।

कुछ वर्ष हुए लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के एक शोधछात्र ने अपने एम० ए० के शोधनिबंध के रूप में 'कुरु प्रदेश के लोकगीत' शीर्षक निबंध प्रस्तुत किया था जिसमें स्थानीय गीतों का सुंदर विवेचन किया गया था। परंतु अभी तक यह निबंध प्रकाशित रूप में जनता के सामने नहीं आया।

(९) मगही—मगही क्षेत्र के विद्वान् भी अब अपनी लोकसाहित्य संबंधी संपत्ति को सुरक्षित करने में तत्पर दिखाई पड़ते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पटना में 'बिहार मगही मंडल' की स्थापना (सन् १९५८ ई० में) की गई है जिसके अध्यक्ष पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति विभाग के प्रधान डा० वी० पी० सिनहा हैं। इस मंडल के तत्वावधान में 'बिहान' नामक मासिक पत्रिका मगही बोली में ही प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के सुयोग्य

[1] पटना, १९५२ ई०

[2] दिल्ली।

संपादक श्री रामानंदन जी हैं जो पटना विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग में प्राध्यापक हैं। इस दिशा में पं० श्रीकांत शास्त्री तथा श्रीमती संपत्ति अर्याणी का कार्य प्रशंसनीय है। 'बिहान' पत्रिका द्वारा मगही के अनेक लोकगीत तथा लोककथाएँ प्रकाश में आई हैं। राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार ने मगही के हजारों लोकगीत तथा सैकड़ों लोककथाओं का संकलन करवाया है जो वहाँ सुरक्षित है। मगही के मुहावरों और कहावतों का संकलन भी उक्त परिषद् द्वारा किया गया है। परिषद् द्वारा मगही के संस्कारगीतों का सटीक संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। आशा है, निकट भविष्य में इस बोली के गीतों तथा कथाओं का विशाल भांडार प्रकाश में आ जायगा।

मगही लोकसाहित्य संबंधी ऐसी बहुत सी छोटी छोटी पुस्तिकाएँ हैं जिनके गीत और भजन ग्रामीण स्त्रीपुरुषों के कंठों में निवास करते हैं। ऐसी पुस्तिकाओं में श्रीधरप्रसाद मिश्र की 'गिरिजा-गिरीश चरित' और 'उमा-शंकर-विवाह-कीर्तन' उल्लेख्य हैं जिनमें शिवपार्वती के चरित का क्रमबद्ध गान प्रचलित विनोदपूर्ण शैली में किया गया है। इसके अतिरिक्त इनकी 'राम-वन-गमन' और 'लंकादहन' आदि पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। श्रीरामप्रसाद सिंह 'पुंडरीक' ने सन् १९५२ ई० 'पुंडरीक-रत्न-मालिका' प्रकाशित की जिसमें सोहर, जँतसार, झूमर, होली, बिरहा, कजली आदि की लय और छंद में लिखित धार्मिक तथा राष्ट्रीय कविताएँ हैं।

श्रीकांत शास्त्री तथा ठाकुर रामबालक सिंह के संपादकत्व में 'मगही' नामक मासिक पत्रिका सन् १९५५ ई० से लगातार प्रकाशित हो रही है। 'महान् मगध' नामक पत्रिका कुछ दिनों चलकर अकाल कालकवलित हो गई। इधर मगही के अनेक कवि और लेखक मगही भाषा में कविताओं तथा नाटकों का प्रकाशन कर रहे हैं।

(१०) मैथिली—अन्य भाषाओं की भाँति मैथिली भाषा का भी लोकसाहित्य अत्यंत समृद्ध है। श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' ने इन गीतों का संग्रह 'मैथिली लोकगीत' के नाम से किया है जिसकी भूमिका प्रयाग विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइसचांसलर डा० अमरनाथ जी झा ने लिखी है[१]। परंतु 'राकेश' जी का यह प्रयास लोकगीतों के विशाल समुद्र की दो चार बूँदों के समान है। डा० जयकांत मिश्र ने अपने अँग्रेजी ग्रंथ 'मैथिली साहित्य का इतिहास' में मैथिली लोकसाहित्य का अच्छा परिचय दिया है। इस विवरण से पता चलता है कि इस क्षेत्र में कितना अधिक कार्य हो चुका है। पं० सुधाकांत मिश्र द्वारा स्थापित 'अखिल

[१] हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग से प्रकाशित (सं० १९९९ वि०)।

भारतीय मैथिली साहित्यपरिषद्' (प्रयाग) का उद्देश्य मिथिला के लोकसाहित्य की रक्षा करना है। गीतों की मूल धुनों को सुरक्षित रखने के लिये लोकगीतों के रेकार्ड भी तैयार किए गए हैं। राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार ने भी मैथिली के सैकड़ों लोकगीतों तथा कथाओं का संकलन करवाया है। मैथिली लोकसाहित्य के संरक्षण तथा प्रचार के लिये दरभंगा से मैथिली भाषा में अनेक पत्रपत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। डा० उदयनारायण तिवारी ने प्रयाग विश्वविद्यालय की हिंदी परिषद् से प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में मैथिली लोकसाहित्य का विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

(११) भोजपुरी—राजस्थानी को छोड़कर लोकसाहित्य संबंधी जितना अधिक शोधकार्य भोजपुरी में हुआ है उतना संभवतः हिंदी की अन्य किसी बोली में नहीं। भोजपुरी के विद्वानों ने भोजपुरी के लोकसाहित्य का केवल संकलन ही नहीं किया है प्रत्युत भोजपुरी भाषा और इसके लोकसाहित्य का वैज्ञानिक तथा प्रामाणिक विवेचन भी प्रस्तुत किया है।

(क) भोजपुरी लोकगीत, भाग १—इस ग्रंथ का संपादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया है[1]। भोजपुरी लोकगीतों का यह सर्वप्रथम वैज्ञानिक संग्रह है। इस पुस्तक में संग्रहीत गीतों का संकलन लेखक ने भोजपुरी प्रदेश के गाँवों में घूम घूमकर किया है। हिंदू विश्वविद्यालय, काशी के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर पं० बलदेव उपाध्याय ने १०० पृष्ठों की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है। इस पुस्तक में २७१ गीतों का संकलन है जिनके संपादन का क्रम इस प्रकार है—(१) प्रसंग-निर्देश, (२) मूल गीत, (३) हिंदी अर्थ, (४) पादटिप्पणी में कठिन शब्दों का अर्थ। गीतों के संग्रह के अंत में भोजपुरी शब्दकोश भी दिया गया है।

(ख) भोजपुरी लोकगीत, भाग २—इस ग्रंथ के भी संपादक डा० कृष्णदेव उपाध्याय हैं[2]। इसकी भूमिका डा० अमरनाथ झा ने लिखकर इसे गौरवान्वित किया है। इसमें भोजपुरी के पचीस प्रकार के लोकगीतों का संग्रह है जिनकी समस्त संख्या ४३० है। इस पुस्तक के भी संपादन का क्रम प्रथम भाग की भाँति है। ग्रंथ के अंत में १०० पृष्ठों की टिप्पणियाँ दी गई हैं जो अत्यंत उपयोगी हैं।

(ग) भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस—इसके संपादक श्री दुर्गाशंकर-प्रसाद सिंह हैं जिन्होंने बड़े परिश्रम के साथ इन गीतों का संकलन किया है[3]।

[1] हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सं० २०११ वि०।
[2] हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, सं० २००५ वि०।
[3] हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग।

इन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में भोजपुरी की उत्पत्ति, प्राचीनता, विस्तार आदि अनेक आवश्यक वस्तुओं पर प्रकाश डाला है।

(घ) भोजपुरी के कवि और काव्य—यह दुर्गाशंकर प्रसाद जी की दूसरी पुस्तक है जिसमें इनकी मौलिक गवेषणा का परिचय प्राप्त होता है[१]। इस पुस्तक में उत्तरप्रदेश तथा बिहार के ऐसे अनेक भोजपुरी कवियों का परिचय दिया गया है जिनकी रचनाओं का अभी तक किसी को पता भी नहीं था। सरभंग संप्रदाय के कवियों का विस्तृत विवेचन यहाँ प्रथम बार हुआ है। इससे लेखक की अनुसंधान की प्रवृत्ति और अध्यवसाय का पता चलता है।

(ङ) भोजपुरी ग्राम्य गीत—इस पुस्तक का संपादन श्री डब्लू० बी० आर्चर, आई० सी० एस० तथा संकटाप्रसाद ने किया है[२]। छोटा नागपुर (बिहार) की विभिन्न जातियों के लोकगीतों का संकलन कर श्री आर्चर ने प्रचुर ख्याति प्राप्त की है। उनका यह संग्रह बिहार के शाहाबाद जिले के कायस्थ परिवार से सन् १९३९-४१ ई० के बीच किया गया था। इस पुस्तक में संस्कार संबंधी, विशेषतः विवाह-गीतों का ही संग्रह किया गया है। गीतों का खड़ी बोली में अर्थ न देने के कारण भोजपुरी से अपरिचित लोगों के लिये इसका रसास्वादन करना कठिन है। पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा देवेंद्र सत्यार्थी की विभिन्न पुस्तकों में भोजपुरी के अनेक लोकगीत उद्धृत पाए जाते हैं।

(च) भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन—इधर भोजपुरी लोकसाहित्य के संबंध में गवेषणात्मक निबंध (थीसिस) भी लिखे गए हैं जिनमें डा० कृष्णदेव उपाध्याय का 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' विशेष महत्वपूर्ण है[३]। इस पुस्तक में भोजपुरी लोकसाहित्य के विभिन्न अवयवों—लोकगीत, लोकगाथा, लोक-कथा आदि—की सांगोपांग तथा गंभीर आलोचना प्रस्तुत की गई है। डा० उपाध्याय ने इस ग्रंथ में लोकसाहित्य को सुव्यवस्थित तथा दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। भोजपुरी लोकसाहित्य की महत्ता प्रतिपादित करनेवाला यह प्रथम मौलिक ग्रंथ है। भोजपुरी के साहित्य का इतना व्यापक, सुव्यवस्थित तथा गंभीर विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

[१] बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

[२] बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना, १९४३

[३] हिंदीप्रचारक पुस्तकालय, काशी।

(छ) भोजपुरी और उसका साहित्य—इस छोटी सी पुस्तिका के लेखक डा० कृष्णदेव उपाध्याय हैं[1]। इसमें डा० उपाध्याय ने भोजपुरी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें भोजपुरी लोकनाट्य, लोकसंगीत तथा लोककला का वर्णन समास शैली में किया गया है।

(ज) लोकसाहित्य की भूमिका—इस मौलिक ग्रंथ में डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य के सामान्य सिद्धांतों का गंभीर विवेचन किया है[2]। लोकसाहित्य का वर्गीकरण, लोकगाथाओं की उत्पत्ति तथा उनकी विशेषताएँ, लोककथाओं का मूल स्रोत तथा प्रसार, लोकसाहित्य का महत्व आदि विषयों का प्रतिपादन यहाँ पहली बार हुआ है। बीच बीच में लोकगीतों के उदाहरण के रूप में भोजपुरी के अनेक गीत उद्धृत किए गए हैं। लोकसाहित्य के स्वरूप तथा सिद्धांत का प्रतिपादन करनेवाला हिंदी में यह अद्वितीय ग्रंथ है।

(झ) भोजपुरी लोकसंस्कृति का अध्ययन—इस ग्रंथ की रचना डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने बड़े अध्यवसाय, लगन तथा परिश्रम से की है[3]। इस विशालकाय ग्रंथ में डा० उपाध्याय ने भोजपुरी जनजीवन से संबंध रखनेवाले समस्त विषयों का विवेचन किया है, जैसे भोजपुरी जनता के आचार विचार, रहन-सहन, रीति रिवाज, अंधविश्वास, टोना टोटका, भूत प्रेत, तावीज गंडा, डाइन भूतिन, देवी देवता, धर्मकर्म आदि विषयों की सांगोपांग मीमांसा प्रस्तुत की गई है। इसे भोजपुरी जनजीवन का कोश समझना चाहिए।

(ञ) भोजपुरी लोकसंगीत—इस विषय पर भी डा० उपाध्याय ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें भोजपुरी लोकसंगीत की विशेषताओं पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही लगभग पचास भोजपुरी गीतों की स्वरलिपि भी प्रस्तुत की गई है जिसमें मूल धुनों की रक्षा हो सके।

(ट) भोजपुरी लोकगाथा—यह ग्रंथ[4] डा० सत्यव्रत सिनहा का शोधनिबंध है जिसमें विद्वान् लेखक ने लोकगाथाओं के विभिन्न तत्वों का प्रतिपादन बड़ी सुंदर रीति से किया है। इन्होंने अनेक भोजपुरी गाथाओं को लिपिबद्ध कर उनका वर्गीकरण करते हुए उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किया है।

[1] राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

[2] साहित्य भवन, लिमिटेड, प्रयाग, १९५७ ई०।

[3] यह ग्रंथ अभी प्रेस में है।

[4] हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

(ठ) भोजपुरी भाषा और साहित्य—भाषाशास्त्र के प्रकांड विद्वान् डा० उदयनारायण तिवारी ने इस विशाल ग्रंथ में भोजपुरी भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया है[१]। भोजपुरी भाषा का इतना गंभीर अध्ययन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। यह डा० तिवारी के लगातार बीस वर्षों के अनवरत परिश्रम तथा अथक अध्ययन का फल है। यह पुस्तक आपके अँग्रेजी भाषा में लिखे गए शोधनिबंध—'ओरिजिन ऐंड डेवेलपमेंट आव् भोजपुरी' का हिंदी रूपांतर है। तिवारी जी ने भोजपुरी की लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों का भी संग्रह किया है जो प्रयाग की 'हिंदुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ है[२]।

(ड) भोजपुरी गीत और गीतकार[३]—यह पुस्तिका श्री 'राहगीर' जी के संपादकत्व में प्रकाशित हुई है जिसमें भोजपुरी के उदीयमान तरुण लोककवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन कवियों की संक्षिप्त आलोचना की है।

(१२) लोकगीतों के मिश्रित संग्रह—हिंदी में लोकगीतों के संग्रह का सर्वप्रथम प्रयास संभवतः पं० रामनरेश त्रिपाठी का है। अतः इनको इस क्षेत्र में अग्रणी कहा जा सकता है। त्रिपाठी जी के पहले लोकगीतों के संग्रह का श्रीगणेश नहीं हुआ था, ऐसा कहना समुचित न होगा। श्री मन्नन द्विवेदी ने बस्ती जिले के गीतों का संकलन कर 'सरवरिया' के नाम से प्रकाशित किया था परंतु यह ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है। इस विशाल देश के प्रत्येक प्रांत (राज्य) में घूम घूमकर लोकगीतों को व्यवस्थित रूप से संग्रह करने का प्रयत्न प्रथमतः त्रिपाठी जी ने ही किया इसमें संदेह नहीं। इन्होंने अपने लोकगीतों का संग्रह कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत) नाम से प्रकाशित किया है[४] जिसमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि अनेक क्षेत्रों के दस प्रकार के गीतों का संकलन है। पुस्तक के प्रारंभ में 'ग्रामगीतों का परिचय' शीर्षक लंबी भूमिका भी दी गई है। त्रिपाठी जी की दूसरी पुस्तक 'हमारा ग्रामसाहित्य' है[५] जिसमें विभिन्न जातियों द्वारा गाए जानेवाले गीत संकलित हैं। वर्षा तथा अन्य ऋतुओं से संबंधित घाघ तथा भड्डरी की अनेक

१ राष्ट्रभाषा परिषद् (बिहार), पटना।
२ 'हिंदुस्तानी' पत्रिका, प्रयाग में देखिए:
भोजपुरी लोकोक्तियाँ—अप्रैल, जुलाई, सन् १९३९;
भोजपुरी मुहावरे—अप्रैल, अक्टूबर, ४० ई०; जनवरी, सन् १९४१ ई०
३ भोजपुरी पहेलियाँ—अक्टूबर, सन् १९४२ ई०, वाराणसी, सन् १९५८ ई०
४ हिंदी मंदिर, प्रयाग, सन् १९२९ ई०
५ हिंदी मंदिर, प्रयाग।

सूक्तियाँ भी इसमें संमिलित हैं। इनकी 'सोहर' नामक पुस्तक में पुत्रजन्म के अवसर पर गेय गीत उपलब्ध होते हैं। त्रिपाठी जी ने 'घाघ और भड्डरी' में इनकी सूक्तियों का संकलन प्रस्तुत किया है[1]। 'ग्रामीण साहित्य' भाग २ में लोकोक्तियों, मुहावरों तथा पहेलियों का संग्रह पाया जाता है[2]। इस प्रकार लोकसाहित्य के क्षेत्र में त्रिपाठी जी ने प्रचुर कार्य किया है।

लोकगीतों के दूसरे उत्साही संग्रहकर्ता श्री देवेंद्र सत्यार्थी हैं। इन्होंने भारत तथा बर्मा के विभिन्न प्रांतों में लगातार बीस वर्षों तक घूम घूमकर लोकगीतों का संकलन किया है। यह कार्य इनके अथक परिश्रम, प्रचुर धैर्य तथा अटूट अध्यवसाय का द्योतक है। सत्यार्थी जी ने अपनी इस लोक-गीत-यात्रा में लगभग तीन लाख गीतों का संग्रह किया है जो किसी भी लोकसाहित्य के विद्वान् के लिये गौरव की वस्तु है। इन्होंने इन गीतों के संग्रह पंजाबी, हिंदी तथा उर्दू भाषाओं में प्रकाशित किए हैं जिनका विवरण निम्नांकित है :

क—हिंदी

(१) धरती गाती है (१९४८)
(२) धीरे बहो गंगा (१९४८)
(३) बेला फूले आधीरात (१९४८)
(४) बय लोकगीत
(५) बाजत आवे ढोल (१९५२)

ख—पंजाबी

(१) गिद्धा (१९३६)
(२) दीवा बले सारी रात (१९४१)

ग—उर्दू

(१) मैं हूँ खानाबदोश (१९४१)
(२) गाए जा हिंदुस्तान (१९४६)

इन ग्रंथों में सत्यार्थी जी ने भावात्मक शैली अपनाकर लोकगीत संबंधी लेख लिखे हैं। इनके ग्रंथों को किसी विशिष्ट प्रदेश या बोली के गीतों का संग्रह समझना भूल होगा। इसी प्रकार सत्यार्थी जी ने अँग्रेजी में 'मीट माई पीपुल'

[1] हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।
[2] आतमाराम ऐंड सन्स, नई दिल्ली।

नामक पुस्तक लिखी है जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों (राज्यों) के लोकगीतों की झाँकी पाठकों के संमुख प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार सत्यार्थी जी का लोकगीत-संबंधी संकलन तथा ग्रंथप्रणयन का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है।

४. लोकसाहित्य का श्रेणीविभाजन

लोकसाहित्य जनजीवन का दर्पण है। यह जनता के हृदय का उद्‌गार है। सर्वसाधारण जनता जो कुछ सोचती है, जिन भावों की अनुभूति करती है, उसी का प्रकाशन उसके साहित्य में उपलब्ध होता है। ग्रामीण लोग विभिन्न संस्कारों के अवसर पर तथा विभिन्न ऋतुओं में लोकगीत गा गाकर अपना मनोरंजन करते हैं। कहानियाँ सुनना तथा सुनाना उनके मनबहलाव का अनन्य साधन है। समय समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों तथा भाव भरे मुहावरों का प्रयोग कर गाँवों के निवासी अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। जनता के अनुभवों पर आश्रित कुछ सूक्तियों में ऐसी अनुभूतियाँ उपलब्ध होती हैं जो अन्यत्र नहीं पाई जा सकतीं। जनजीवन से संबंधित नाटकों को देखने के लिये जनता की जो अपार भीड़ एकत्रित होती है वह उनकी लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस प्रकार हम लोकसाहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं :

(१) लोकगीत (फोक लिरिक्स)
(२) लोकगाथा (फोक बैलेड्स)
(३) लोककथा (फोक टेल्स)
(४) लोकनाट्य (फोक ड्रामा)
(५) लोकसुभाषित (फोक सेइंग्स)

लोकसुभाषित के अंतर्गत मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत आदि सभी प्रकार के विषयों का अंतर्भाव किया जा सकता है। इन सूक्तियों तथा सुभाषितों का उपयोग ग्रामीण जनता अपने प्रति दिन के व्यवहार में किया करती है। लोकसाहित्य के इस अंतिम प्रकार को प्रकीर्ण-साहित्य की संज्ञा भी दी जा सकती है।

(१) लोकगीत—

(क) लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति—लोकसाहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जनजीवन में व्यापकता तथा प्रचुरता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोकगीत विभिन्न ऋतुओं में तथा विभिन्न संस्कारों

के अवसर पर गाए जाते हैं। कुछ ऐसी जातियाँ भी हैं जिनमें गीतविशेष को गाने की प्रथा है। विभिन्न कार्य करते समय परिश्रमजन्य थकावट दूर करने के लिये भी कुछ गीत गाए जाते हैं। इस प्रकार लोकगीतों का श्रेणीविभाजन निम्नलिखित पाँच प्रकार से किया जा सकता है :

(अ) संस्कारों की दृष्टि से,
(आ) रसानुभूति की प्रणाली से,
(इ) ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से,
(ई) विभिन्न जातियों के अनुसार, तथा
(उ) श्रम के आधार पर।

क्रमपूर्वक इनका संक्षिप्त वर्णन पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है :

(अ) संस्कारों की दृष्टि से विभाजन—भारतीय जीवन में धर्म का विशिष्ट स्थान है। हिंदू जनता धर्मप्राण है, इस कथन में कुछ भी अत्युक्ति नहीं समझनी चाहिए। हमारा समस्त जीवन धर्म के ताने बाने से बुना हुआ है। जन्म के पहले से लेकर मृत्यु के बाद तक हिंदू जीवन विभिन्न संस्कारों से संबद्ध है। हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है जिनमें गर्भाधान, पुंसवन, पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह और मृत्यु प्रधान हैं। इनमें भी प्रथम दो संस्कारों की प्रथा अब नहीं है। अतः आजकल शेष पाँच संस्कार ही प्रधान रूप से संपादित किए जाते हैं। विभिन्न संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कंठ से गीत गा गाकर जनमन का अनुरंजन करती हैं। पुत्रजन्म तथा विवाह के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों में उत्साह तथा उल्लास की मात्रा अधिक होती है। पुत्री की बिदाई तथा मृत्यु संबंधी गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी तथा हृदयविदारक होते हैं। किसी प्रिय व्यक्ति, पति या पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री या माता मृत आत्मा के गुणों का वर्णन करती हुई रोती तथा विलाप करती है। इस प्रकार इन गीतों का करुण क्रंदन पाषाणहृदय को भी पिघलाने में समर्थ है।

(आ) रसानुभूति की प्रणाली से विभाजन—लोककवियों ने गीतों में विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति बड़ी सुंदर रीति से की है। लोकगीतों में अनेक रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका स्रोत कदापि सूख नहीं सकता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है, परंतु निम्नलिखित पाँच रसों की ही प्रधानता पाई जाती है :

१. शृंगार
२. करुण

३. वीर
४. हास्य
५. शांत

शृंगार रस के अंतर्गत विशेषकर पुत्रजन्म, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, कजली तथा झूमर के गीत आते हैं। सोहर के गीतों में गर्भिणी स्त्री की शरीरयष्टि का सजीव चित्रण उपलब्ध होता है। गर्भिणी होने पर स्त्रियों का शरीर पीला पड़ जाता है, पयोधर स्थूलता को प्राप्त करते हैं परंतु अन्य अंगों में कृशता आ जाती है। लोककवि ने 'दोहद' का वर्णन भी इस अवसर पर किया है। झूमर के गीतों का शरीर और आत्मा दोनों ही शृंगार रस से ओतप्रोत हैं। संभोग शृंगार तथा प्रणयलीला की मधुर अभिव्यंजना इन गीतों में की गई है जिसे पढ़कर सहृदयों के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। राजस्थानी लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' तथा पंजाब की सुप्रसिद्ध प्रेमगाथाएँ 'सोहनी और महीवाल' एवं 'हीर राँझा' में संभोग शृंगार की मधुर झाँकी देखने को मिलती है।

पुत्री की बिदाई (गौना), जँतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी तथा सोहनी आदि गीतों में करुण रस की मंदाकिनी मंद मंद गति से प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। पुत्री की बिदाई का अवसर बड़ा ही दुःखदायी होता है। इस समय अनेक धैर्यशाली व्यक्तियों का धैर्य भी करुण रस के प्रबल प्रवाह में बह जाता है। गौना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भाँति उमड़ता दिखलाई पड़ता है। जाँता के गीतों में विरहिणी स्त्रियों का आर्तनाद सुनाई देता है। राजस्थानी 'कुर्जा' के गीतों के संबंध में भी यही बात समझनी चाहिए।

लोकगाथाओं में वीररस की योजना का प्रचुर अवसर उपलब्ध होता है। जगनिक लिखित आल्हा की मूलगाथा में प्रबल पराक्रमी आल्हा और ऊदल की वीरता का वर्णन किया गया है। आज भी 'आल्हा' का जो पाठ (टेक्स्ट) प्राप्त होता है उसमें वीररस मूर्तिमान् रूप में हमारे सामने आता है। अलहैत जोश में आकर जब ताल स्वर से आल्हा गाने लगते हैं तब कायरों की भी भुजाएँ फड़कने लगती हैं। विजयमल, सोरठी, लोरकी आदि गाथाओं में भी वीररस कूट कूटकर भरा हुआ है।

लोकगीतों में हास्यरस की मात्रा अपेक्षाकृत कम पाई जाती है। वैवाहिक परिहास के गीतों में हास्यरस की मधुर व्यंजना हुई है। झूम झूमकर गाए जाने-वाले 'झूमर' गीतों में भी हास्य का पुट उपलब्ध होता है। ब्रज में प्रचलित 'ढकोसलों' में ऐसी असंबद्ध बातें कही जाती हैं जिन्हें सुनकर हँसी आए बिना नहीं

रहती। भजन, निर्गुन, तुलसी माता, गंगा माता आदि के गीतों में शांत रस पाया जाता है।

(इ) ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से विभाजन—लोकगीतों का यदि विवेचन किया जाय तो उनमें से अधिकांश गीत किसी न किसी ऋतु अथवा त्योहार से संबंध रखनेवाले मिलेंगे। वर्षा, वसंत आदि ऋतुओं के आने पर जनता के मन में जिस नवीन उल्लास एवं उमंग का संचार होता है उसकी अभिव्यक्ति लोकगीतों में सम्यक् रूप से उपलब्ध होती है। आल्हा विशेषकर वर्षा ऋतु में गाया जाता है। सावन में हिंडोले पर झूलते हुए कजली गाने की प्रथा प्रचलित है। फाल्गुन महीने में फाग या होली के गीत गाए जाते हैं तथा चैत्र मास में 'चैता' या 'घाँटों' गीतों की मधुर स्वरलहरी पाठकों को आत्मविभोर कर देती है।

विभिन्न व्रतों के अवसर पर स्त्रियाँ विभिन्न गीत अपने कलकंठ से गाती हैं। श्रावण शुक्ला पंचमी को, जो नागपंचमी के नाम से प्रसिद्ध है, नाग (सर्प) देवता के संबंध में गीत गाए जाते हैं। भाद्रपद कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को 'बहुरा' का व्रत किया जाता है। कार्तिक शुक्ल द्वितीया को 'गोधन' की पूजा की जाती है तथा इसी पक्ष की षष्ठी तिथि को संतानहीन स्त्रियाँ 'छठी माता' का व्रत करती हैं। राजस्थान में 'तीज' तथा 'गनगौर' त्योहार स्त्रियाँ बड़े उत्साह से मनाती हैं। इन सभी अवसरों पर वे विभिन्न प्रकार के गीत गाती हैं।

(ई) विभिन्न जातियों के गीत—कुछ ऐसे भी गीत हैं जिन्हें केवल कुछ विशेष जाति के लोग ही गाते हैं। उदाहरण के लिये बिरहा को लिया जा सकता है। यह अहीर जाति के लोगों का राष्ट्रीय गीत है। ये लोग जिस लय और भावभंगी के साथ यह गीत गाते हैं, संभवतः दूसरा कोई नहीं गा सकता। 'पचरा' नामक गीत गाने की प्रथा 'दुसाध' नामक अस्पृश्य कही जानेवाली जाति के लोगों में प्रचलित है। नट लोग गले में ढोल बाँधकर आल्हा गाते फिरते हैं। भिक्षा माँगनेवाले कुछ साधु, जो अपने को 'साईं' कहते हैं, गोपीचंद तथा भरथरी के गीत गाने में प्रवीण होते हैं। राजस्थान में ऐसी अनेक जातियाँ हैं, जैसे धाड़ी, भोया आदि, जिनका पेशा विशेष लोकगीतों को गा गाकर अपना जीवनयापन करना है। अतः ये गीत उन जातियाँ की अपनी संपत्ति हैं।

(उ) श्रम के आधार पर विभाजन—कतिपय गीत ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जो कोई विशेष कार्य करते समय गाए जाते हैं। इन गीतों का उद्देश्य परिश्रमजन्य क्लांति को दूर करना होता है। खेत में धान रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं उन्हें 'रोपनी के गीत' कहते हैं। इसी प्रकार खेत निराते समय के गीत 'निरवाही' या 'सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'जँतसार' उन गीतों

की संज्ञा है जिन्हें जाँता पीसते समय स्त्रियाँ गाती हैं। तेली लोग तेल पेरते समय जो गीत गाते गाते तन्मय हो जाते हैं वे कोल्हू के गीत कहे जाते हैं। आजकल चर्खा के गीत भी उपलब्ध होते हैं जिन्हें चर्खे पर सूत 'कातते' हुए गाते हैं। इन सभी गीतों को श्रमगीत (लेबर सॉंग्स) का अभिधान प्रदान किया गया है क्योंकि इनका संबंध किसी न किसी श्रम अथवा कार्य से है।

लोकगीतों के वर्गीकरण की जो पद्धति गत पृष्ठों में प्रस्तुत की गई है उसमें प्रायः सभी प्रकार के लोकगीतों का अंतर्भाव हो जाता है। कुछ विद्वानों ने अपने अपने ढंग से लोकगीतों को विभाजित करने का प्रयास किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक में लोकगीतों का विभाजन ११ श्रेणियों में किया है[1]।

श्री सूर्यकरण पारीक ने राजस्थानी गीतों की मीमांसा करते हुए इन्हें उनतीस (२९) भागों में विभक्त किया है[2]। श्री भालेराव ने लोकगीतों की केवल चार श्रेणियाँ स्थापित की हैं[3]। परंतु ध्यानपूर्वक यदि इन विद्वानों के वर्गीकरण की मीमांसा की जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि इनका विभाजन वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि इन्हीं के द्वारा प्रतिपादित एक श्रेणी के गीतों का दूसरी श्रेणी के गीतों में अंतर्भाव हो जाता है[4]।

लोकगीतों के श्रेणीविभाग का जो वृक्ष (डाइग्राम) यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है वह वैज्ञानिक है क्योंकि लोकगीतों की समस्त विधाएँ इसमें अंतर्भुक्त हो जाती हैं। इस देश के किसी भी प्रदेश के लोकगीतों के भेद तथा प्रभेद इसके अंतर्गत रखे जा सकते हैं। यहाँ पर लोकगीतों के वर्गीकरण की केवल सामान्य एवं स्थूल रूपरेखा ही दी गई है। उदाहरण के लिये पुत्रजन्म के अवसर पर अनेक विधिविधान किए जाते हैं जिनके लिये विभिन्न गीत प्रचलित हैं। परंतु उन सभी गीतों को इसी संस्कार के अंतर्गत रखा गया है। स्थानाभाव के कारण अधिक श्रेणीविभाजन संभव नहीं है।

[1] त्रिपाठी : कविताकौमुदी, भाग ५, पृ० ४५

[2] सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० २२–२५

[3] डा० श्याम परमार : भारतीय लोकसाहित्य, पृ० ६४

[4] डा० उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० ३३–३५

- **लोकगीत**
  - १ संस्कार संबंधी गीत
    - पुत्रजन्म
    - मुंडन
    - यज्ञोपवीत
    - विवाह
    - गौना
    - मृत्यु
  - २ ऋतु संबंधी गीत
    - कजली
    - हिंडोला
    - होली
    - चैता
    - बारहमासा
  - ३ व्रत संबंधी गीत
    - नागपंचमी
    - बहुरा
    - गोधन
    - पिड़िया
    - छठी माता
  - ४ जाति संबंधी गीत
    - अहीरों के गीत
    - दुसाधों के गीत
    - चमारों के गीत
    - गोंड़ों के गीत
    - कहारों के गीत
    - धोबियों के गीत
    - तेलियों के गीत
  - ५ श्रम संबंधी गीत
    - रोपनी के गीत
    - सोहनी के गीत
    - जँत के गीत
    - कोल्हू के गीत
    - चरखा के गीत
  - ६ विविध गीत
    - झूमर
    - अलचारी
    - पूरबी
    - निर्गुन
    - भजन
    - पालना
    - खेल

(२) लोकगाथा—लोकसाहित्य के अंतर्गत ऐसे भी गीत पाए जाते हैं जो बहुत लंबे होते हैं तथा जिनमें कथावस्तु की ही प्रधानता होती है। इन गीतों को लोकगाथा के नाम से अभिहित किया गया है। उत्तरी भारत में 'आल्हा' की लोकगाथा बड़ी प्रसिद्ध है जिसमें वीररस का संचार पाया जाता है। पंजाब में राजा रसालू तथा राजस्थान में पाबूजी की गाथा अत्यंत लोकप्रिय है। मध्यप्रदेश में जगदेव की गाथा बड़े प्रेम से गाई जाती है। ये गाथाएँ इतनी लंबी होती हैं कि गवैए कई कई रात तक इन्हें गाते रहते हैं। यदि इनको साधारण जनता का महाकाव्य कहा जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। इन गाथाओं को लिपिबद्ध करना बड़ा कठिन है। इंगलैंड में अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं जिनमें राबिन हुड से संबंधित गाथाएँ अत्यंत प्रसिद्ध हैं। संसार के सभ्य कहे जानेवाले सभी देशों ने अपने राष्ट्रीय वीरों की लोकगाथाओं को सुरक्षित रखा है।

(३) लोककथा—लोकसाहित्य में लोककथाओं का प्रमुख स्थान है। वे अपनी प्रचुरता तथा लोकप्रियता के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। गाँवों में जहाँ मनोरंजन के आधुनिक साधन उपलब्ध नहीं हैं वहाँ लोककथाएँ ही लोगों के चित्त का अनुरंजन किया करती हैं। रात्रि के समय माताएँ अपने छोटे छोटे बच्चों को सुंदर कहानियाँ सुनाकर उन्हें आनंद प्रदान करती हैं। बालक इन कहानियों को सुनते सुनते निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं। जाड़े की रात्रि में आग के—जिसे ग्रामीण भाषा में 'कउड़ा' कहते हैं—चारों ओर ग्रामीण जन बैठ जाते हैं। उस समय ग्रामस्थविर अनेक प्रकार की रोचक कहानियाँ सुनाकर लोगों के चित्त बहलाता है। खेतों में पशु चरानेवाले चरवाहे किसी वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर छोटी छोटी चुटीली कहानियों द्वारा अपना समय काटते हैं। अनेक व्रतों, विशेषकर स्त्रियों के व्रत के अवसर पर कथा कहने की प्रथा प्रचलित है। भोजपुरी प्रदेश में लड़कियाँ पिड़िया का व्रत करती हुई नियमित रूप से पूरे एक मास तक सबेरे तथा संध्याकाल पिड़िया की कथा सुनती हैं। प्रातःकाल वे यह कथा सुने बिना अन्नजल तक ग्रहण नहीं करतीं। गाँवों में सत्यनारायण बाबा की कथा अत्यंत लोकप्रिय है जिसे मांगलिक उत्सवों के अवसर पर लोग सुना करते हैं। कहने का आशय यह है कि लोकजीवन लोककथाओं के तानेबाने से बुना हुआ है।

(४) लोकनाट्य—नाटक में गीत, संगीत और नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के साथ संगीत की योजना बड़ा आनंद प्रदान करती है परंतु इसके साथ ही यदि नृत्य का भी सहयोग हुआ तो आनंद की सीमा नहीं रहती। संस्कृत के किसी कवि ने ठीक ही लिखा है कि नाटक विभिन्न रुचि रखनेवाले लोगों के चित्त के प्रसाधन का अनन्यतम साधन है। ग्रामीण जनता नाटक देखकर जिस

आनंद और तन्मयता का अनुभव करती है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार के पश्चिमी जिलों में भिखारी ठाकुर का 'बिदेसिया' नाटक अत्यंत लोकप्रिय है। ब्रजमंडल में रासलीला का प्रचुर प्रचार है। हाथरस (उ० प्र०) के आसपास नौटंकी का अभिनय कड़ी कुशलता से किया जाता है जिसे देखने के लिये हजारों की संख्या में लोग उपस्थित होते हैं। कुमायूँ तथा गढ़वाल में झोड़ा, चँचेरी, छपेली, छोलिया आदि अनेक लोकनृत्य प्रसिद्ध हैं जिनमें ग्रामीण जीवन के विभिन्न दृश्यों का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। मालवा में 'माँच' नामक लोकनाट्य प्रसिद्ध है। गुजरात में 'गर्वा' लोकनृत्य बड़ा लोकप्रिय है जिसमें केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। इसमें गीत और संगीत का सुंदर सामंजस्य पाया जाता है। गुजराती लोकसाहित्य के आचार्य श्री झवेरचंद मेघाणी ने इसे 'गीत, संगीत तथा नृत्य' की त्रिवेणी कहा है। पंजाब का काँगड़ा नृत्य मनोहरता में अपना सानी नहीं रखता। इस प्रकार विभिन्न प्रांतों में लोकनाट्य तथा नृत्य प्रचलित हैं।

(५) लोकसुभाषित—ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित, अनुभूत ज्ञानराशि भरी पड़ी है। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है। कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें नीति संबंधी बातें कही गई हैं। घाघ और भड्डरी की उक्तियों में ऋतुविज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पाई जाती है। खेती तथा वर्षा के संबंध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं उनमें स्वानुभूति की मात्रा अत्यधिक है। माताएँ बच्चों को पालने पर सुलाकर मधुर स्वर में गीत गाती हैं जिन्हें पालने के गीत (क्रैडल सांग्स) कहते हैं। बच्चे इन गीतों को सुनते सुनते सो जाते हैं। बालकगण अनेक खेल खेलते समय गीत गाते रहते हैं जिन्हें 'खेल के गीत' कहा जाता है। इन सभी प्रकार के गीतों को 'लोकसुभाषित' के अंतर्गत रखा गया है। 'प्रकीर्ण साहित्य' की कोटि में भी इनका अंतर्भाव किया जा सकता है।

५. लोकगीतों का परिचय

(१) संस्कार संबंधी गीत—भारतवर्ष धर्मप्राण देश है। अतः हमारे जीवन के सभी कृत्य धर्म से ओतप्रोत हैं। भारतीय धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का विधान किया है। गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक कोई न कोई संस्कार होता ही रहता है। यद्यपि षोडश प्रकार के संस्कार बतलाए गए हैं तथापि पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गौना और मृत्यु प्रधान संस्कार माने जाते हैं। इन अवसरों पर, मृत्यु संस्कार को छोड़कर, स्त्रियाँ अपने मधुर कंठों से गीत गा गाकर अपने

हृदय का उल्लास और आनंद प्रकट करती हैं। जहाँ इन गीतों में उछाह और प्रसन्नता दिखाई पड़ती है वहाँ मृत्यु के गीतों में विषाद की अमिट रेखा उपलब्ध होती है। यहाँ कुछ प्रसिद्ध संस्कारों से संबंधित गीतों का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है :

(क) **सोहर**—पुत्रजन्म के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को 'सोहर' कहते हैं। कहीं कहीं इन्हें 'मंगल' भी कहा जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् राम के जन्म के अवसर पर 'रामचरितमानत' में मंगल गाने का उल्लेख किया है :

गावहिं मंगल मंजुलबानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥

'सोहर' शब्द की उत्पत्ति 'शोभन' से ज्ञात होती है। भोजपुरी में 'सोहल' का अर्थ 'अच्छा लगना' होता है जो संस्कृत के 'शोभन' से मिलता जुलता है। 'सोहर' की निरुक्ति 'सुघर' शब्द से भी मानी जा सकती है जिसका अभिप्राय 'सुंदर' होता है। पुत्रजन्म के ये गीत 'सोहिलो' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

सोहर छंद में निबद्ध होने के कारण ही इन गीतों का नाम 'सोहर' पड़ गया है। हिंदी में पुत्रजन्म के जो गीत उपलब्ध होते हैं उनमें प्रायः तुक नहीं होता और न वे पिंगलशास्त्र के नियमों के अनुसार ही लिखे गए होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामललानहछू' में जिन सोहरों की रचना की है उनमें तुक के साथ ही पिंगल के भी नियमों का पालन किया गया है[१]।

पुत्रजन्म भारतीय ललनाओं की ललित कामनाओं की चरम परिणति है। मानी गई मनौतियों का मनोरम परिणाम है। इस अवसर पर पास पड़ोस एवं कुटुंब की स्त्रियाँ, विशेषकर लोकगीतों की गायिका वृद्धाएँ, एकत्रित होकर, नवप्रसूता स्त्री के सूतिकागृह के द्वार पर बैठकर, मनोरंजक सोहरों को गाकर, अमृत की वर्षा करती हैं। ये गीत बारह दिनों तक गाए जाते हैं और बालक के 'बरही' संस्कार के साथ ही इनकी समाप्ति होती है।

पुत्र का पैदा होना मानव जीवन में विशेष उत्सव का अवसर समझा जाता है। इस उत्साह के समय नृत्य और गान की प्रथा प्राचीन काल में भी रही है और आज भी वर्तमान है। आदिकवि वाल्मीकि ने रामजन्म के अवसर पर गंधर्वों द्वारा गाने और अप्सराओं द्वारा नाचने का वर्णन किया है :

[१] बालकांड १८।१६

जगुः कलं च गन्धर्वाः, ननृतुश्चाप्सरो गणाः।
देव दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥

महाकवि कालिदास ने रघु के शुभ जन्म के अवसर पर राजा दिलीप के महल में वेश्याओं द्वारा नृत्य करने तथा मंगल वाद्य बजने का उल्लेख किया है[1]।

सोहरों का प्रधान विषय संभोगशृंगार का वर्णन है। इनमें स्त्रीपुरुष की रतिक्रीड़ा, गर्भाधान, गर्भिणी की शरीरयष्टि, प्रसवपीड़ा, दोहद, धाय को बुलाने और पुत्रजन्म की चर्चा पाई जाती है। गर्भवती स्त्री जिन अभिलषित वस्तुओं को खाने की इच्छा करती है उन्हें 'दोहद' कहते हैं। कालिदास ने सुदक्षिणा के दोहद का बड़ा रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है[2]। लोकगीतों में दोहद का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है और पति उसकी पूर्ति करता हुआ पाया जाता है। वह अपनी आसन्नप्रसवा स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन सी वस्तु भोजन में अच्छी लगती है। इसपर उसकी स्त्री उत्तर देती है कि मुझे चावल का भात, अरहर की दाल, रोहू नामक मछली और तित्तिर का मांस स्वादिष्ट लगता है। इसके अतिरिक्त नीबू, केला और नारियल भी मुझे पसंद है[3]।

जहाँ लोकगीतों में पुत्र के पैदा होने पर महान् उत्सव मनाया जाता है वहाँ पुत्री के जन्म के कारण इनमें विषाद की गहरी रेखा दिखाई पड़ती है। कोई माता कहती है कि जिस प्रकार पुरइन का पत्ता हवा के झोंके से काँपने लगता है उसी प्रकार मेरा हृदय पुत्रीजन्म की आशंका से काँप रहा है। यही कारण है कि पुत्री के पैदा होने पर ये गीत (सोहर) नहीं गाए जाते।

सोहर के गीत वर्ण्य विषय की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं : (१) पूर्वपीठिका और (२) उत्तरपीठिका। पुत्रप्राप्ति की लालसा रखनेवाली स्त्री, गर्भ की वेदना से व्याकुल तरुणी, वधू के मंगलसाधन में निरत सास, धाय को

[1] सुखश्रवाः मंगलतूर्यनिस्वनाः
प्रमोद नृत्यैः सहवारियोषिताम्।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥ —रघुवंश, ३।१९

[2] न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः
प्रियासखीमुत्तरकोशलेश्वरः ॥ रघुवंश, —३।५

[3] भो० लो० गी०, भाग १, पृष्ठ ५१

दौड़कर बुलानेवाला पति, बालक के उत्पन्न होने पर धनधान्य माँगनेवाली धाय, ये सब सोहर की पूर्वपीठिका के प्रतिपाद्य विषय हैं। परंतु सद्यःजात शिशु का रुदन, माता का आनंद, सास की प्रसन्नता, पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर अपना सर्वस्व लुटा देनेवाले पिता के हर्ष का वर्णन उत्तरपीठिका के अंतर्गत आता है।

मैथिली सोहरों की परंपरा बड़ी प्राचीन है। इनमें भी दोहद, प्रसवपीड़ा, उछाह और आनंद का वर्णन उपलब्ध होता है। परंतु इन गीतों में शृंगार रस की अपेक्षा करुण रस का पुट अधिक पाया जाता है। मैथिली भाषा के सोहर तुकांत तथा भिन्नतुकांत दोनों प्रकार के पाए जाते हैं[1]। ब्रज में इन गीतों को सोभर, सोहर या सोहिले कहा जाता है। 'सोभर' वह घर है जिसमें नवप्रसूता स्त्री (जच्चा) रहती है। भोजपुरी में इसे 'सउरि' कहते हैं। अतः प्रसूतिकागृह के उपलक्ष में गाए जानेवाले गीत 'सोभर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोजपुरी प्रदेश की ही भाँति ब्रज में भी पुत्रजन्म के समय विभिन्न अवसरों पर गाने के लिये भिन्न भिन्न गीत प्रचलित हैं। इन गीतों को प्रधानतया चार भागों में विभक्त किया जा सकता है: (१) जंति के गीत, (२) छठी के गीत, (३) जगमोहन लुगरा, (४) तगा। जंति तथा छठी के गीतों के भी अनेक भेद पाए जाते हैं[1]।

(ख) मुंडन के गीत—बालक के कुछ बड़े होने पर उसका मुंडन संस्कार किया जाता है। यह संस्कार पुत्रजन्म के पहले, तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष, अर्थात् विषम वर्षों में ही संपन्न होता है। इस संस्कार के पहले बालक के बालों को काटना निषिद्ध माना जाता है। इसे संस्कृत में 'चूडाकर्म' कहते हैं। महाकवि कालिदास ने 'गोदानविधि' के नाम से इसका उल्लेख किया है[४]। गोस्वामी तुलसीदास ने महर्षि वशिष्ठ द्वारा राम का चूडाकर्म किए जाने का वर्णन रामायण में किया है[५]।

किसी पवित्र तीर्थस्थान, देवस्थान या नदी के किनारे यह संस्कार संपादित किया जाता है। अधिकांश लोग उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में स्थित विंध्याचल की विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में अपने बच्चों का मुंडन संस्कार कराते हैं। अनेक

[1] राकेश : मै० लो० गी०, पृष्ठ ५०

[1] डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १२२–२३

२ ,, ,, हिं० सा० बृ० इ०, भाग, १६

[४] अथास्य गोदानविधेरनन्तरं
विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः।—रघुवंश ३।३३।

[५] चूडाकर्म कीन्ह गुरु आई।— रा० च० मा०, बालकांड।

व्यक्ति मनौतियाँ मानकर वहाँ जाते हैं। परंतु जो लोग अर्थाभाव के कारण वहाँ नहीं जा सकते वे किसी नदी के किनारे अथवा देवस्थान के पास यह कार्य संपन्न करते हैं। मुंडन और जनेऊ के अवसर पर बालक की फुआ धन या आभूषण के रूप में उपहार मिलने की आशा रखती है। अतः इन गीतों में इसका बारंबार उल्लेख प्राप्त होता है।

(ग) यज्ञोपवीत के गीत—यज्ञोपवीत को 'जनेऊ' भी कहा जाता है। जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का ही अपभ्रंश रूप है। इसे उपनयन भी कहते हैं। मनु ने द्विजों के लिये यज्ञोपवीत का विधान किया है तथा विभिन्न वर्गों के लिये विभिन्न आयु तथा विभिन्न ऋतुओं में इस संस्कार को संपादित करने का निर्देश किया है। जनेऊ के गीतों में उन विधिविधानों का उल्लेख पाया जाता है जो इस संस्कार में किए जाते हैं।

बुंदेलखंडी और मैथिली के इन गीतों में माता और पिता की प्रसन्नता, बालक की फुआ का नेग माँगना और विविध विधिविधानों का उल्लेख पाया जाता है। हिंदी की विभिन्न बोलियों के जनेऊ के गीतों में एक ही भावधारा प्रवाहित होती है। मैथिली लोकगीतों में जनेऊ के अवसर पर भी बाँस का मंडप बनाने का उल्लेख पाया जाता है जो संभवतः अन्यत्र प्रचलित नहीं है। 'लापर परीछने' अर्थात् ब्रह्मचारी बालक के सिर के कटे हुए बालों को आँचल में धारण करने की प्रथा मैथिली तथा भोजपुरी गीतों में समान रूप से वर्णित है। इसके अतिरिक्त पलाशदंड, मृगछाला और मूँज की करधनी धारण करने का उल्लेख भी दोनों में अभिन्न रूप से हुआ है।

(घ) विवाह के गीत—विवाह मानव जीवन का सबसे प्रसिद्ध और प्रधान संस्कार है। संसार की सभी जातियों में, चाहे वे अर्धसभ्य या असभ्य हों, यह संस्कार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। प्रोफेसर वैस्टरमार्क ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक में संसार की बर्बर जातियों में भी यह संस्कार संपन्न होने का उल्लेख किया है।[1]

विवाह बड़े धूमधाम और उत्साह के साथ किया जाता है। निर्धन व्यक्ति भी इस अवसर पर अपनी शक्ति से अधिक व्यय कर देते हैं। इसीलिये यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'धन जाय शादी कि बादी' अर्थात् धन या तो विवाह में नष्ट होता है अथवा झगड़े या मुकदमे में।

[1] हिस्ट्री आव् ह्यूमन मैरेज, भाग १, २, ३

विवाह के गीत वर और कन्या दोनों पक्षों में समान रूप से गाए जाते हैं। परंतु जहाँ वरपक्ष के गीतों में उल्लास उमड़ा पड़ता दिखाई देता है वहाँ कन्यापक्ष के गीतों में करुणरस की मंदाकिनी मंद गति से बहती दृष्टिगोचर होती है। भोज· पुरी प्रदेश में कन्या के घर गाए जानेवाले गीतों के २४ प्रकार हैं तथा वरपक्ष में गेय गीतों के भेद पंद्रह हैं[१]। व्रजमंडल में वैवाहिक अवसरों पर चौबीस प्रकार के गीत गाए जाते हैं[२]। इससे इस संस्कार के समय स्त्रियों के कलकंठ से गेय इन गीतों की प्रचुरता का अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

मैथिली में विवाह के गीतों को 'लग्नगीत' कहते हैं। इस समय 'संमरि' नामक गीत भी गाए जाते हैं जो मनोरम एवं हृदयस्पर्शी होते हैं। 'संमरि' शब्द स्वयंवर का अपभ्रंश है। इन गीतों में सीतास्वयंवर, रुक्मिणीहरण और उषा-स्वयंवर आदि के गीत प्रसिद्ध हैं। मैथिली लग्नगीतों का विषय है पुत्रीजन्म की निंदा, सुंदर वर खोजने के लिये पुत्री की अपने पिता से प्रार्थना तथा उपयुक्त वर न मिलने पर पिता की परेशानियाँ।

राजस्थानी विवाह के गीतों को 'बनड़े' कहते हैं जिसका अर्थ 'दूल्हा' होता है[३]। स्थानीय प्रथाओं के कारण इन गीतों के भी अनेक भेद उपलब्ध होते हैं, जैसे पीठी, हलदी, मँहदी, सेवरा, घोड़ी, कामण तथा ओलूँ आदि। वर के चुनाव के संबंध में राजस्थानी कन्या अपनी भोजपुरी तथा मैथिली बहिनों से अधिक चतुर दिखाई पड़ती है[४]।

(ङ) गौना के गीत—'गौना' शब्द संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ 'जाना' है। चूँकि इस अवसर पर कन्या अपने पिता के घर से पति के गृह को 'गमन' करती है अतः इसे 'गौना' कहा जाता है। कहीं कहीं कन्या की बिदाई विवाह के दूसरे ही दिन कर दी जाती है। परंतु जब कन्या की इस प्रकार बिदाई नहीं की जाती तब उसका गौना किया जाता है जो विवाह के पहले, तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष, अर्थात् विषम वर्ष में संपादित होता है। समाज में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित होने के कारण इतने वर्षों के बाद गौना करना उचित भी था। गौना विवाह के समान ही बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर वर का पिता अपनी पुत्रवधू को लिवा लाने के लिये प्रायः नहीं जाता क्योंकि पुत्रवधू का रुदन सुनना उसके लिये निषिद्ध माना जाता है।

[१] डा० उपाध्याय : हिं० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ११४

[२] डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १५३-२३१

[३] पारीक : राजस्थान के लोकगीत, भाग १, पूर्वार्ध, पृ० १६०

[४] वही, पृ० १६०

मिथिला में गौना के गीतों को 'समदाउनि' कहते हैं। इन गीतों में पुत्री के प्रति माता और पिता का प्रेम उमड़ा पड़ता है। पुत्री के सतत अश्रुपात से नदियों में बाढ़ तक आ जाती है[1]। राजस्थानी भाषा में गौना के गीतों को 'ओलू' कहा जाता है। इनके भाव इतने करुण होते हैं कि इन्हें सुनकर हृदय थामकर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ इन गीतों को गाती हुई रोने लगती हैं[2]।

(च) मृत्युगीत—मृत्यु मानव जीवन का अंतिम संस्कार है। यह संसार के सभ्य या असभ्य सभी जातियों में किसी न किसी रूप में मनाया जाता है। मृत्युगीत प्रधानतया दो प्रकार के पाए जाते हैं। एक में तो मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है और दूसरे प्रकार के गीतों में उसकी मृत्यु से उत्पन्न दुःखों का उल्लेख। यदि कोई बच्चा असमय में ही कालकवलित हो गया तो उसकी सुंदरता, भोलापन तथा सरलता का वर्णन इन गीतों का विषय होगा। यदि परिवार के किसी धन कमानेवाले व्यक्ति की मृत्यु हो गई तो उसके निधन से परिवार की होनेवाली आर्थिक दुर्दशा का चित्रण इन गीतों में मिलेगा। इन मृत्युगीतों को यदि 'आशुकविता' कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी क्योंकि स्त्रियाँ अपने प्रिय व्यक्ति का स्वर्गवास होने पर उसके दुःख से उत्पन्न हृदय के भावों को तत्काल गीतों के रूप में प्रकट करती हैं।

मृत्युगीतों की परंपरा बड़ी प्राचीन है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त मिलते हैं जिनमें मृत व्यक्ति के संबंध में दुःख प्रकट किया गया है। प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग को जायगी, उसकी रक्षा के लिये कौन रक्षक के रूप में जायगा इसका बड़ा ही रोचक वर्णन इन ऋचाओं में किया गया है। मृत आत्मा को संबोधित करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है :

> **प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः**
> **यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।**
> **उभा राजाना स्वधया मदन्ता**
> **यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥**
>
> —ऋग्वेद १०।१४।७

रामायण और महाभारत में अनेक वीर योद्धाओं की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है। परंतु महाकवि कालिदास के काव्यों में मृत्युगीतों ने अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त किया है। कुमारसंभव में महाकवि ने कामदेव के भस्म हो जाने पर

[1] राकेश : मै० लो० गी०, पृ० १७०
[2] पारीक : रा० लो० गी०, भाग १, पृ० १८८

रतिविलाप का जो प्रसंग उपस्थित किया है वह पाषाणहृदय को भी पिघला देने की क्षमता रखता है। रति मदन के विभिन्न गुणों का वर्णन करती हुई दुःख की अधिकता के कारण संज्ञाहीन हो जाती है। जब उसे होश होता है तब वह विलाप करती हुई कहती है :

मदनेन विना कृता रतिः
क्षणमात्रं किल जीवतीति मे।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं,
रमण! त्वामनुयामि यद्यपि॥

अपने प्राणप्रिय पति की मृत्यु पर करुण क्रंदन करनेवाली रति का जो चित्र कविकुलगुरु ने खींचा है वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी है :

अत्र सा पुनरेव विह्वला,
वसुधाऽऽलिङ्गन धूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा,
समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम्॥

इसी प्रकार इस महाकवि ने इंदुमती की अकाल मृत्यु पर महाराज अज के द्वारा शोक की जो अभिव्यंजना कराई है वह संसार के साहित्य में अपना सानी नहीं रखती। अज विलाप करते हुए कहते हैं कि निर्दय मृत्यु ने इंदुमती का हरण कर मेरी किस वस्तु को नष्ट नहीं कर दिया अर्थात् आज मेरा सर्वस्व लुट गया।

गृहिणी सचिवः सखी मिथः,
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणा विमुखेन मृत्युना,
हरता त्वां वद किन्न मे हृतम्॥

महाकवि बाण ने हर्षचरित में महाराज हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री के पति की मृत्यु के उपरांत इस प्रकार के गीतों के गाने का उल्लेख किया है[1]। भारतीयों का दृष्टिकोण मृत्यु में भी मंगल की भावना की ओर रहता है। अतः संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के गीतों का प्रायः अभाव पाया जाता है।

परंतु उर्दू साहित्य में मृत्युगीत या 'शोकगीत' काव्य की एक विशेष विधा या वर्णनपद्धति माना जाता है जिसे 'मर्सिया' कहते हैं। उर्दू साहित्य में 'मर्सिए' बहुत प्रसिद्ध हैं जिनको गा गाकर सुनाने पर श्रोताओं पर प्रचुर प्रभाव पड़ता है।

[1] अ० अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन।

उर्दू के अनीस तथा दबीर आदि कवियों ने मर्सिया लिखने में बड़ी प्रवीणता एवं ख्याति प्राप्त की है[1]। अंग्रेजो में भी मृत्युगीत लिखने की परंपरा प्रचलित है जिसे 'एलेजी' कहते हैं। अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि ग्रे की एलेजी भावों के वर्णन तथा हृदय की अनुभूति की व्यंजना में अद्वितीय है।

यूरोपीय देशों में मृत्युगीत—यूरोपीय देशों में मृत्युगीत की परंपरा प्रचलित है। महाकवि होमर ने इलियड नामक अपने महाकाव्य के अंतिम भाग में ट्राय की जनता के विलाप का जो मर्मस्पर्शी वर्णन किया है वह मृत्युगीत का प्राचीन उदाहरण है। आयरलैंड में किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् सामूहिक रूप से विलाप करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। यद्यपि इस प्रथा का अब धीरे धीरे ह्रास हो रहा है। इन विलापगीतों को 'कीन' कहते हैं। इनको एक विशेष प्रकार की लय में गाया जाता है। इन गीतों में मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है तथा अपने परिवार के लोगों को छोड़कर चले जाने के लिये उसे उलाहना दिया जाता है। ऐसे अवसर पर रोनेवाली प्रायः पेशेवाली स्त्रियाँ होती हैं जो उच्च स्वर से मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन करती हुई चिल्लाती हैं[2]।

दक्षिण इटली के निवासी शोकगीतों के लिये एक विशेष छंद का प्रयोग करते हैं। वहाँ मृत्यु के समय रोनेवाली सार्वजनिक स्त्रियाँ (पब्लिक वेलर्स) होती हैं जो द्रव्य देकर इस कार्य के लिये बुलाई जाती हैं। रोने का यह पेशा परंपरागत होता है अर्थात् माता की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्री इस कार्य का संपादन करती है। कार्सिका द्वीप में भी यह प्रथा उपलब्ध होती है[3]।

हिंदी के लोकसाहित्य में मृत्युगीत बहुत कम पाए जाते हैं। यद्यपि प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के समय रुदन करती हुई स्त्रियाँ कुछ गाती अवश्य हैं परंतु वह प्रथा के रूप में प्रचलित नहीं है। उसे दुखिया के हृदय का उद्‌गार मात्र कहा जा सकता है। ब्रज में चतुर्वेदियों में मृत्यु के अवसर पर स्त्रियों द्वारा जो विलाप किया जाता है वह संगीतात्मक होता है। उसमें एक लय होती है और वह अर्थ से युक्त पाया जाता है[4]।

[1] डा० रामबाबू सक्सेना : उर्दू साहित्य का इतिहास।

[2] काउंटेस एमेलिन मार्टिनेंगो : दि स्टडी आव् फोक सांग्स, पृ० २७१

[3] इसके विशेष वर्णन के लिये देखिए—मेरिया लीच : डिक्शनरी आव् फोकलोर, भाग २, पृष्ठ ७५५

[4] डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २३२

भोजपुरी प्रदेश में जब कोई पुरुष मर जाता है तब घर की स्त्रियाँ, विशेषकर उसकी धर्मपत्नी, उसके विशिष्ट गुणों का उल्लेख करती हुई रोती है। इन गीतों में मृत व्यक्ति के न रहने से उत्पन्न होनेवाले भावी दुःखों का वर्णन होता है। यदि मृत व्यक्ति अधिक द्रव्य कमानेवाला हुआ तो विषाद तथा रुदन की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है। यह विलाप बड़ा ही हृदयद्रावक होता है[1]।

सी० ई० गोमर ने नीलगिरि की पहाड़ियों में निवास करनेवाली बड़ागा जाति के मृत्युगीतों का उल्लेख किया है जिसमें प्रेतात्मा के सभी दुर्गुणों का वर्णन उपलब्ध होता है[2]। इस प्रकार मृत्युगीतों का प्रचार तथा महत्व अन्य गीतों की अपेक्षा कुछ कम नहीं है।

(२) ऋतु संबंधी गीत—

(क) कजली—लोकगीतों में कजली का एक विशेष स्थान है। इसकी विशेषता यह है कि इसे पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों समान रूप से गाती हैं। मिर्जापुर (उ० प्र०) में कजली के दंगल हुआ करते हैं जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों भाग लेते हैं। इस दंगल में दो दल होते हैं। एक दल प्रश्न करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। यह क्रम कई रात तक चलता रहता है। सावन की सुहावनी रात में जब गवैए इसे गाने लगते हैं तो एक समाँ बँध जाता है। जिस प्रकार रामनगर (वाराणसी) की रामलीला प्रसिद्ध है उसी प्रकार मिर्जापुर की कजली विख्यात है :

लीला रामनगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरदार।

मिथिला में कजली से मिलता जुलता गीत 'मलार' है। मलार पावस ऋतु में स्त्री और पुरुष दोनों गाते हैं। लेकिन दोनों के गाने के ढंग पृथक् पृथक् हैं। स्त्रियाँ इन्हें गाते समय किसी साजबाज की सहायता नहीं लेतीं। हिंडोले पर बैठकर वे संमिलित स्वर में इन्हें गाती हैं[3]। राजस्थान में तीज के अवसर पर हिंडोले के जो गीत गाए जाते हैं वे इसी कोटि में आते हैं[4]। एक राजस्थानी गीत में कोई पुत्री अपनी माता से कहती है कि 'ए माँ! चंपा के बाग

१ डा० उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० ५६
२ गोमर : फोक सांग्स आव् सदर्न इंडिया।
३ राकेश : मैथिली लोकगीत, पृ० २६३
४ पारीक : राजस्थानी लोकगीत, भाग १, पूर्वार्ध, पृ० ८४–८५

में झूला डाल दो। नवेली तीज आ गई है। मेरी सहेलियों के घर में हिंडोले हैं परंतु मेरे घर में नहीं है। मैं आज झूला झूलने गई तो मुझको किसी ने नहीं झुलाया[1]।' कजली का वर्ण्य विषय प्रेम है। इसमें शृंगार रस के उभयपक्ष संभोग तथा वियोग की झाँकी देखने को मिलती है।

(ख) होली—होली हमारा सबसे लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध त्योहार है। इसे चारों वर्णों के लोग बड़े प्रेम तथा उछाह से मनाते हैं। चूँकि यह फाल्गुन महीने में मनाया जाता है अतः इसे 'फगुआ' या 'फाग' भी कहते हैं। हिंदी के रीतिकालीन कवियों ने राधा कृष्ण के होली खेलने का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। होली के अवसर पर गाली गाने की भी प्रथा है जिन्हें 'कबीर' कहते हैं। जैसे—

अररर अररर भइया, सुनलऽ मोर कबीर !

इन गालियों या गानों को कबीर क्यों कहते हैं यह विषय चिंत्य है। ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर की अटपटी 'निर्गुन वाणी' तत्कालीन समाज के लिये लोकप्रिय न हो सकी। अतः कबीर के प्रति सामाजिक अवज्ञा तथा क्षोभ दिखलाने के लिये ही लोगों ने इन गालियों को कबीर का नाम दे दिया हो[2]।

मैथिली में होली के गीतों को 'फाग' कहते हैं। होली के अवसर पर गाए जानेवाले इन गीतों की गति, उनकी भाषा का बंध और स्वरों का संधान अत्यंत मीठा होता है[3]।

उत्तर प्रदेश में होली ढोलक और झाल (एक प्रकार का बाजा) के साथ गाई जाती है परंतु राजस्थान में होली गाते समय चंग अथवा डफ बजाने की प्रथा प्रचलित है जो बहुत पुरानी है। राजस्थान में होली के अवसर पर लड़कियाँ तथा तरुणी स्त्रियाँ अलंकारों तथा वस्त्रों से सज धजकर, मिल जुलकर गाती बजाती, खेलती कूदती और नाचती हैं। इस समय एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है जिसे 'लूर' कहते हैं। इस नृत्य में स्त्रियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार रूप में नाचती हैं। इसे 'लूवर' या 'घूमर' भी कहते हैं[4]।

होली के गीतों में उल्लास तथा आनंद की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें मस्ती का भाव पाया जाता है।

[1] वही, पृ० ८६
[2] डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन।
[3] राकेश : मैथिली लोकगीत, पृ० २७८
[4] पारीक : रा० लो० गी०, भाग १, पृ० ६६

(ग) चैता—लोकगीतों में चैता हृदय की द्रावकता तथा मनोरमता में अपना सानी नहीं रखता। यह बड़े मधुर स्वर में गाया जाता है। सामूहिक रूप से समवेत स्वर (कोरस) में भी लोग इसे गाते हैं। लोकगीत के रचयिताओं ने अपनी कृतियों में कहीं अपना नामोल्लेख नहीं किया है। परंतु भोजपुरी चैता में बुलाकी दास का नाम अनेक बार आया है। मैथिली में चैता को 'चैतावर' कहते हैं। इनमें बसंत की मस्ती और रंगीन भावनाओं का अनोखा चित्र अंकित किया गया है। कुछ लोग इसे 'चैती' भी कहते हैं।

चैत्र मास में गाए जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'चैता', 'चैती' या 'चैतावर' पड़ा है। चैता में प्रेम का प्रचुर पुट पाया जाता है। इनमें संभोग श्रृंगार का वर्णन मधुर तथा मार्मिक शब्दों में किया गया है। लोककवि ने दांपत्य प्रेम की गूढ़ व्यंजना इन गीतों में की है। कोई मिथिला देश की विरहिणी कह रही है कि जब चैत (वसंत) बीत जायगा तब मेरा (मूर्ख) पति घर आकर क्या करेगा? आम्रवृक्ष की मंजरी में टिकोरे (छोटा कच्चा फल) निकल आए, आम की टहनी टहनी में रस का संचार हो गया परंतु मेरा प्रियतम परदेस से अभी तक नहीं आया[१]।

चैती के गीतों की मधुरिमा अद्वितीय है। मधुर रस में सने हुए इन गीतों को सुनकर श्रोता अपनी सुधिबुधि खो देता है। चैता के मनोरम गीतों में जो आकर्षण है, जो अपील है, जो हृदयद्रावकता है वह अन्य लोकगीतों में कहाँ? यदि लोकगीतों की माधुरी का मजा चखना हो, इनकी मिठास का स्वाद लेना हो, तो चैता के गीतों को सुनिए।

(घ) बारहमासा—बारहमासा उन गीतों को कहते हैं जिनमें किसी विरहिणी स्त्री के बारह महीनों में अनुभूत वियोगजन्य दुःखों का वर्णन होता है। जिन गीतों में केवल छः मासों का वर्णन होता है उन्हें छःमासा और चार महीनेवाले को चौमासा कहते हैं। बारहमासा गाने का कोई निश्चित समय नहीं है परंतु ये प्रायः पावस ऋतु में ही गाए जाते हैं। हिंदी साहित्य में बारहमासा लिखने की परंपरा प्राचीन है। सुप्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि जायसी ने नागमति के विरह का वर्णन बारहमासा के माध्यम से किया है[२]। ऐसा ज्ञात होता है कि जायसी से बहुत पहले ही लोकगीत के रूप में बारहमासा प्रचलित था। जायसी ने उसी परंपरा का

[१] राकेश : मै० लो० गी०, पृ० २८५

[२] पद्मावत : नागमती वियोग खंड।

अनुसरण अपने काव्य में किया। इस कवि ने नागमती का वियोगवर्णन आषाढ़ मास से प्रारंभ किया है और ज्येष्ठ मास में उसकी समाप्ति की है। जायसी के पश्चात् अनेक संत कवियों ने बारहमासा लिखा है जिसमें विरहिणी स्त्री के दुःखों की मार्मिक व्यंजना उपलब्ध होती है।

मैथिली लोकगीतों में बारहमासा का प्रधान स्थान है। मिथिला में इनका बड़ा प्रचार है। बँगला में इन गीतों को 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपांतर है। बँगला साहित्य में पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसामंगल' में बेहुला की 'बारमाशी' का वर्णन पाया जाता है। भारतचंद्र के 'अन्नदामंगल' में भी बारहमासा उपलब्ध होता है। मैथिली बारहमासा की भाँति बँगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरहजन्य वेदना का चित्रण हुआ है। 'बारमाशी' की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक मास में होनेवाले व्रतों का भी वर्णन होता है।

हिंदी की अन्य बोलियों—व्रज, अवधी, बुंदेलखंडी आदि—में भी बारहमासा पाया जाता है जिनका वर्ण्य विषय विप्रलंभ शृंगार है[1]।

(३) व्रत संबंधी गीत—भारतवासियों का जीवन धर्ममय है। प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व या त्योहार आकर हमारी धार्मिक चेतना को जागरित करता रहता है। इन अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं। विभिन्न मासों में नागपंचमी, बहुरा, तीज, पिड़िया, अहोई आठें और गोधन का व्रत बड़े उत्साह से स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इन पर्वों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा है।

नागपंचमी श्रावण शुक्ल पंचमी को मनाई जाती है। गावों में यह 'नागपचैयाँ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन नागदेवता की पूजा की जाती है तथा उनके भोजन के लिये कटोरे में दूध और धान की खील दी जाती है[2]। बंगाल में सर्पों की अधिष्ठातृ देवी मनसा की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा इनकी उपासना एवं स्तुति में सैकड़ों ग्रंथों की रचना हुई है[3]। बहुरा का व्रत भाद्र कृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। स्त्रियाँ इस व्रत को पुत्र की प्राप्ति के लिये करती हैं। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोधन का व्रत मनाया जाता है। यह 'गोधन' गोवर्धन का अपभ्रंश रूप है जिसकी पूजा का प्रचार प्राचीन भारत में पाया जाता है। पिड़िया का व्रत कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अगहन शुक्ल प्रतिपदा तक अर्थात् पूरे एक मास तक मनाया

[1] डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन।
[2] डा० वोगल : सरपेंट लोर।
[3] डा० आशुतोष भट्टाचार्य : मनसामंगल साहित्येर इतिहास।

जाता है। यह व्रत भाई की मंगलकामना के लिये उसकी बहन के द्वारा किया जाता है। वंध्या स्त्रियाँ पुत्रप्राप्ति के लिये कार्तिक शुक्ल षष्ठी को 'छठी माता' का व्रत करती हैं। यह व्रत मिथिला में भी प्रचलित है। इसे 'डाला छठ' भी कहा जाता है। इन सभी पार्विक अवसरों पर स्त्रियाँ मधुर लोकगीत गाती हैं। हिंदी प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में पृथक् पृथक् पर्वों की विशेषता एवं महत्ता है परंतु गीतों के गाने की प्रथा सर्वत्र प्रायः समान है।

(४) जाति संबंधी गीत—विशेष जाति के लोग कुछ विशेष गीत ही गाया करते हैं। उदाहरण के लिये 'बिरहा' अहीर जाति के लोगों द्वारा ही गाया जाता है। इसी प्रकार 'पचरा' दुसाधों की निजी संपत्ति है। बिरहा को यदि अहीर लोगों का राष्ट्रीय गीत कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अहीर का लड़का इस गीत को गाने में जितना ही अभ्यस्त होता है वह उतना ही योग्य समझा जाता है। लोकगीतों में बिरहा संभवतः आकार में सबसे छोटा है। परंतु यह बिहारी के दोहों के समान हृदय पर सीधे चोट करता है। अहीर जब अपनी मस्ती में आता है तभी इनको गाता है। अन्य गीतों के समान इनमें भी प्रेम का पुट प्रचुर परिमाण में पाया जाता है।

दुसाध जाति के लोग 'पचरा' नामक गीत गाते हैं। जब दुसाधों में कोई व्यक्ति रोगग्रस्त अथवा प्रेतबाधा से पीड़ित होता है तब उस जाति का कोई वृद्ध 'पचरा' गाकर देवी का आवाहन करता है और पीड़ित व्यक्ति को नीरोग करने की प्रार्थना करता है। देवी भक्त की प्रार्थना स्वीकार कर रोगी को नीरोग कर देती हैं। गड़ेरिया लोगों के भी निजी गीत होते हैं जिन्हें ये लोग किसानों के खेतों में अपनी भेड़ों को 'हिरा' कर बड़ी मस्ती से गाते हैं। गोंड़ जाति के गीतों को 'गोड़ऊ' तथा कहार लोगों के गीतों को 'कहरवा' कहा जाता है। गोंड लोग विवाह आदि अवसरों पर लोकनृत्य का भी प्रदर्शन करते हैं जिसे 'गोड़ऊ नाच' कहते हैं। ये 'हुडुका' नामक बाजा बजाते हैं। इनका अभिनय बड़ा सुंदर होता है जो 'हर बोलाई' के नाम से गाँवों में प्रसिद्ध है। तेलियों के गीतों में तैलिक जीवन का चित्रण पाया जाता है। इनके गीतों को 'कोल्हू के गीत' भी कहते हैं। चमारों के जातीय गीत बड़े मनोरंजक होते हैं जिनमें समाज के ऊपर चुभता व्यंग्य होता है। 'डफरा' और 'पिपिहरी' नामक वाद्ययंत्रों की सहायता से ये अपने गीतों को और भी हृदयाकर्षक बना देते हैं।

(५) श्रमगीत (ऐक्शन साँग्स)—कोई कार्य करते समय शरीर की थकावट मिटाने के लिये जो गीत गाए जाते हैं उन्हें श्रमगीत कहते हैं। इन गीतों के अंतर्गत जँतसार, रोपनी, सोहनी, चर्खा आदि के गीत हैं।

चक्की में आटा पीसते समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'जँतसार' या जाँत के गीत कहते हैं। इन गीतों में करुण रस की मात्रा अत्यधिक होती है। जाँत के गीतों में नारीहृदय की जो वेदना, जो कसक, जो टीस उपलब्ध होती है वह अन्यत्र नहीं मिलती। करुण रस के जितने मार्मिक प्रसंग हो सकते हैं प्रायः उन सबकी अवतारणा इन गीतों में हुई है। पुत्रहीन तथा पतिविहीन वंध्या एवं विधवा स्त्री का मार्मिक चित्रण इन गीतों में सजीव हो उठा है।

धान को खेत में रोपते समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'रोपनी' के गीत कहते हैं। खेत में लगी हुई घास निराते समय गाए जानेवाले गीतों को 'निरवाही' या 'सोहनी' के गीत कहा जाता है। इन दोनों का वर्ण्य विषय गार्हस्थ जीवन का चित्रण है। पतिपत्नी का स्वाभाविक तथा अभिन्न स्नेह, दारुण सास के द्वारा पुत्रवधू को कष्ट देना, पारिवारिक कलह आदि का वर्णन इन गीतों में किया गया है। चर्खा के गीतों में आधुनिकता का पुट पाया जाता है। इन गीतों में चर्खा चलाने से देश की गरीबी दूर होने तथा स्वराज्य की प्राप्ति का उल्लेख पाया जाता है[1]।

(६) विविध गीत—झूमर, अलचारी, पूरबी और निर्गुन आदि ऐसे गीत हैं जिनका अंतर्भाव पूर्वोक्त वर्गीकरण में नहीं हो सकता। झूमर के गीतों को स्त्रियाँ झूम झूमकर गाती हैं अतः इन्हें 'झूमर' की संज्ञा प्राप्त हुई है। ये गीत संयोग शृंगार से ओतप्रोत होते हैं। इनके गाने की एक विशेष लय (ट्यून) होती है जो बड़ी मनमोहक है। पति के परदेश चले जाने पर निःसहाय तथा लाचारी की अवस्था में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'अलचारी' कहते हैं। इनमें विप्रलंभ शृंगार की मात्रा विशेष रहती है। पूर्वी उन गीतों को कहते हैं जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में विशेष रूप से गाए जाते हैं। इन गीतों की भी एक विशेष लय होती है। ये गीत बड़े ही लोकप्रिय हैं। 'निर्गुन' के गीतों में भक्तहृदय की भावनाएँ अभिव्यंजित होती हैं। इन गीतों में कबीरदास का नाम बारंबार आता है परंतु इन्हें महात्मा कबीर की रचना स्वीकार नहीं किया जा सकता।

देवी देवता संबंधी गीतों में शीतला माता, गंगा जी तथा तुलसी जी के गीत विशेष प्रसिद्ध हैं। बालकों के खेल के गीत, पालने के गीत तथा लोरियों को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। बच्चे खेल खेलते समय अनेक गीत गाते हैं। ये गीत प्रायः सभी प्रदेशों में समान रूप से प्रचलित हैं। परंतु बुंदेलखंड में इनकी संख्या संभवतः अधिक है। लोरी गाने की परंपरा इस देश में अत्यंत

[1] डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन।

प्राचीन काल से चली आ रही है। महाभारत में अनेक लोरियाँ उपलब्ध होती हैं जो अत्यंत मर्मस्पर्शिनी हैं। अंग्रेजी साहित्य में इनका अनंत भांडार भरा पड़ा है। हिंदी की विभिन्न बोलियों में लोरियों की संख्या अनंत है।

६. लोकगाथाओं की समीक्षा

लोकसाहित्य में लोकगाथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगाथा के संबंध में गंभीर तथा विद्वत्तापूर्ण शोध कार्य किया है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। फैंक सिजविक, फ्रांसिस जेम्स चाइल्ड, कीट्रीज तथा गूमर जैसे तलस्पर्शी विद्वानों ने इस विषय का गंभीर मंथन कर अपने सिद्धांतों को ग्रंथाकार प्रकाशित किया है। लोकगाथा की कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं जिनका अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। इसी विषय की संक्षिप्त मीमांसा पाठकों के सामने प्रस्तुत की जाती है।

(१) लोकगाथा की परिभाषा—

(क) लोकगाथा (बैलेड) की परिभाषा—लोकगाथा वह प्रबंधात्मक गीत है जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की प्रधानता हो। अंग्रेजी में लोकगाथा के लिये बैलेड शब्द का प्रयोग किया जाता है। बैलेड शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के बैलारे (Ballare) धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना है। राबर्ट ग्रेव्स ने लिखा है कि बैलेड का संबंध बैले से है जिसमें संगीत और नृत्य की प्रधानता रहती है[1]। इस निरुक्ति से ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में बैलेड गाने के अवसर पर सामूहिक नृत्य भी हुआ करता था। नृत्य और गीत इसके दो अभिन्न तत्व थे। बैलेड शब्द का मूल अर्थ या अभिप्राय उस प्रबंधात्मक गीत से था जो नृत्य के समय साथ साथ गाया जाता था परंतु कुछ काल पश्चात् इसका प्रयोग किसी भी ऐसे गीत के लिये किया जाने लगा जिसे सामान्य जनता का एक दल सामूहिक रूप से गाता हो। इंग्लैंड के गवैयों ने जब इसका प्रयोग आरंभ किया तब नृत्य के साथ इसके सतत साहचर्य का भाव तो नष्ट हो गया परंतु लययुक्त सामूहिक कार्य (रिदमिक ग्रूप ऐक्शन) के अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा। प्रोफेसर कीट्रीज का यह मत है कि बैलेड वह गीत है जो कोई कथा कहता हो अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गई

[1] इट इज कनेक्टेड विथ दि वर्ड 'बैले' ऐंड ओरिजिनली मेंट ए सांग आर रिफ्रेन इंटेन्डेड ऐज एकांपनीमेंट टु डान्सिंग, बट लेटर कवर्ड ऐनी सांग इन हिच ए ग्रूप आर पीपुल सोशली ज्वाइंड। —राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, भूमिका।

हो[1]। हैजलिट ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'गीतात्मक कथानक' कहा है[2]। सुप्रसिद्ध लोक-साहित्य-मर्मज्ञ फ्रैंक सिजविक ने अपनी पुस्तक में बैलेड की परिभाषा बतलाने में कठिनता का अनुभव करते हुए इसे अमूर्त पदार्थ के गुणों से युक्त बतलाया है। उनके विचार से यह कोई ठोस या स्थायी वस्तु नहीं है प्रत्युत इसका स्वरूप रसात्मक होने के कारण द्रवरूप है[3]। न्यू इंग्लिश डिक्शनरी के प्रधान संपादक डा० मरे ने बैलेड का अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि बैलेड वह स्फूर्तिदायक या उत्तेजनापूर्ण कविता है जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो[4]। प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान् मैकएडवर्ड लीच ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए इसे प्रबंधात्मक या आख्यानात्मक लोकगीत का एक प्रकार कहा है[5]। बैलेड को रूसी भाषा में 'ब्लीना', स्पेनिश भाषा में 'रोमांस', डेनिश भाषा में 'वाइज' यूक्रेन की भाषा में 'डुमी' तथा सर्वियन भाषा में 'पेस्मी' कहते हैं[6]। इससे ज्ञात होता है कि संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में लोकगाथाओं का अस्तित्व विद्यमान है।

(ख) लोकगाथा और लोकगीतों में भेद—लोकगाथा और लोकगीतों में प्रधानतया दो प्रकार का भेद है : (१) स्वरूपगत भेद, (२) विषयगत भेद। स्वरूपगत भेद के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लोकगीत आकार में छोटा होता है परंतु लोकगाथा का आकार अधिक विस्तृत होता है। उदाहरण के लिये झूमर या सोहर लोकगीत है जो आठ दस पंक्तियों से प्रायः अधिक या बड़ा नहीं होता। परंतु लोकगाथा का विस्तार हजारों पंक्तियों में भी हो सकता है। आजकल जो 'आल्हा खंड' बाजारों में उपलब्ध होता है वह पाँच सौ से भी अधिक पृष्ठों में प्रकाशित हुआ है जिसमें कई हजार पंक्तियाँ हैं। राजस्थान की सुप्रसिद्ध लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' के संबंध में भी यही बात समझनी चाहिए। 'राजा रसालू' की पंजाबी

१ ए बैलेड इज ए सांग दैट टेल्स ए स्टोरी, आर, टु टेक दि अदर प्वाइंट आव् व्यू ए, स्टोरी टोल्ड इन सांग। —इ० स्का० पा० बै०, भूमिका, पृ० ११

२ इट इज ए लिरिकल नरेटिव।

३ दि डिफिकल्टी इज टु डिफाइन दि बैलेड, फार इट हैज सम आव् दि क्वालिटीज आव् ऐन ऐब्स्ट्रैक्ट थिंग। इट इज एसेंशियली फ्लूइड, नार रिजिड, नार स्टैटिक।—फ्रैंक सिजविक : दि बैलेड, पृ० ८

४ ए सिंपुल स्पिरिटेड पोएम इन शार्ट स्टैंजाज इन हिच सम पापुलर स्टोरी इज ग्रैफिकली टोल्ड।—न्यू इंगलिश डिक्शनरी। देखिए बैलेड शब्द का अर्थ।

५ ए फार्म आव् नरेटिव फोक साँग। —डिक्शनरी आफ फोकलोर, भाग १, पृ० १०६

६ वही, पृ० १०६

लोकगाथा भी बहुत बड़ी है। उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में प्रसिद्ध 'सोरठी' तथा 'विजयमल' की गाथा भी कुछ कम लंबी नहीं है जिसे गवैए लगातार कई दिनों तक गाते रहते हैं। अंग्रेजी भाषा में दि जेस्ट आव् राबिनहुड नामक सुप्रसिद्ध गाथा हजारों पंक्तियों में समाप्त होती है।

दूसरा भेद विषयगत है। लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों (जैसे पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गौना), ऋतुओं—वर्षा, वसंत, ग्रीष्म—और पर्वों पर गाए जानेवाले गीत संमिलित हैं जिनमें गार्हस्थ जीवन के सुख दुःख, मिलन विरह, हानि लाभ, जीवन मरण आदि के वर्णन की प्रधानता उपलब्ध होती है। इन गीतों में कहीं कोई सौभाग्यवती स्त्री पुत्रजन्म के अवसर पर आनंद और उल्लास में मग्न दिखाई-पड़ती है तो कहीं कोई माता विवाह करने के लिये जानेवाले अपने पुत्र को देखकर अपने भाग्य पर फूली नहीं समाती। कहीं कोई विधवा स्त्री पति की मृत्यु से दुःखित होकर अपने भागधेय को कोसती है तो किसी वंध्या नारी का करुण विलाप पाषाणहृदयों को भी पिघला देता है। कहने का आशय यह है कि घर के संकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है उन्हीं की झाँकी हमें इन गीतों में देखने को मिलती है। परंतु लोकगाथाओं का वर्ण्य विषय लोकगीतों से भिन्न है। इसमें संदेह नहीं कि इन गाथाओं में भी प्रेम का पुट गहरा रहता है लेकिन यह प्रेम जीवनसंग्राम में अनेक संघर्षों का सामना करता हुआ अंत में सफलीभूत होता हुआ दिखलाया गया है। इन लोकगाथाओं में युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का पुट अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिये 'आल्हखंड' में माढ़ोगढ़ की लड़ाई का वर्णन उपलब्ध होता है तो 'सोरठी' की गाथा में रहस्य और रोमांस अधिक हैं। कहीं कहीं इन गाथाओं में अनेक वीर-पुरुष लोकत्राता या लोकरक्षक के रूप में अंकित किए गए हैं। अनेक गाथाओं में मुगलों के अत्याचारों से स्त्रियों की रक्षा करने के लिये अनेक त्यागी वीरों ने अपने प्राणों की आहुति तक दे दी है। अंग्रेजी लोकगाथाओं में राबिनहुड लोकरक्षक के रूप में चित्रित किया गया है जो धनी व्यक्तियों को लूटकर उनका धन गरीबों में बाँट देता था[1]।

(ग) बैलेड के लिये 'लोकगाथा' शब्द की उपयुक्तता—अंग्रेजी के बैलेड शब्द के लिये लोकसाहित्य के कई विद्वानों ने 'गीतकथा' शब्द का प्रयोग किया है[2]। परंतु वर्तमान लेखक की विनम्र संमति में बैलेड के लिये 'लोकगाथा'

१ ही राब्ड दि रिच टु रिलीव दि पुअर।
२ सूर्यकरण पारीक: राजस्थानी लोकगीत, पृ० ७८-८५

शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने शोधनिबंध भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन में सर्वप्रथम बैलेड के लिये 'लोकगाथा' शब्द का प्रयोग किया है[1] तथा अन्य विद्वानों ने भी इस शब्द को स्वीकार कर लिया है[2]।

संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पद (लिरिक) के अर्थ में प्राचीन काल से होता चला आया है। 'गाथा' का अर्थ है पद्य या गीत और इस अर्थ में इसका व्यवहार ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। महाकवि हाल की 'गाथासप्तशती' में सात सौ गाथाओं का संग्रह किया गया है जो आर्या छंद में लिखी गई हैं। पालि साहित्य में भी पद्यात्मक रचना को 'गाथा' कहते हैं। पालि जातकावली में अनेक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। वैदिक साहित्य में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिये किया गया है जो कोई प्राचीन आख्यान या कथा कहता हो। 'गाथा' शब्द से 'इन्' प्रत्यय करने पर इस पद की निष्पत्ति होती है। अतः 'गाथा' शब्द का अर्थ हुआ कोई आख्यान अथवा कथा। हिंदी की भोजपुरी बोली में गाथा का अभिप्राय किसी कथा या कहानी से समझा जाता है जैसे 'का आपन गाथा गवले बाड़ऽ' अर्थात् तुम क्या अपनी कहानी सुना रहे हो।

इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथात्मकता इन दोनों के तत्व विद्यमान हैं। इस शब्द से दोनों का भाव द्योतित होता है। इसलिये ऐसे प्रबंधात्मक गीतों के लिये जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी उपलब्ध होती हो, 'लोकगाथा' शब्द का ही प्रयोग नितांत समीचीन है।

(घ) लोकगाथाओं की उत्पत्ति—लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद पाया जाता है। विभिन्न यूरोपीय विद्वान् इस संबंध में अपना विभिन्न मत रखते हैं। इनके सिद्धांतों में प्रचुर पार्थक्य पाया जाता है। किसी विद्वान् के अनुसार इन लोकगाथाओं की उत्पत्ति एक समुदाय के द्वारा हुई है तो कोई इन्हें किसी व्यक्तिविशेष की रचना स्वीकार करता है। दूसरे लोगों का यह मत है कि प्राचीन काल में ये गाथाएँ चारणों द्वारा गाई जाती थीं अतः इनके निर्माण में उनका हाथ अवश्य रहा होगा। लोकसाहित्य के कुछ मर्मज्ञ किसी जाति-विशेष को ही इसका कर्ता स्वीकार करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इस

[1] हिंदीप्रचारक पुस्तकालय, काशी, १९६०

[2] डा० सत्यव्रत सिनहा : भोजपुरी लोकगाथा।

संबंध में विद्वानों के विभिन्न सिद्धांत प्रचलित हैं जिनका वर्गीकरण प्रधानतया निम्नांकित छः श्रेणियों में किया जा सकता है :

(१) ग्रिम का सिद्धांत—समुदायवाद
(२) श्लेगल का सिद्धांत—व्यक्तिवाद
(३) स्टेंथल का सिद्धांत—जातिवाद
(४) बिशप पर्सी का सिद्धांत—चारणवाद
(५) चाइल्ड का सिद्धांत—व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद
(६) उपाध्याय का सिद्धांत—समन्वयवाद

इन विभिन्न सिद्धांतों की समीक्षा तथा इनके गुणदोषों का विवेचन आगे प्रस्तुत किया जाता है :

(१) ग्रिम का सिद्धांत समुदायवाद—विलियम ग्रिम जर्मनी के सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्र-वेत्ता थे। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में इनके द्वारा प्रतिपादित ग्रिम का नियम (ग्रिम्स ला) अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्होंने जर्मनी की लोककहानियों का भी संकलन तथा संपादन किया है जो 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' के नाम से प्रकाशित हुई हैं। लोकगाथाओं के क्षेत्र में इनका अनुसंधान अत्यंत मौलिक है। इन गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में इनका एक विशेष सिद्धांत है जिसे 'समुदायवाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। ग्रिम का यह निश्चित मत है कि लोककाव्य का निर्माण आप से आप होता है। इनके निर्माण में किसी विशेष कवि या रचयिता का हाथ नहीं होता। समस्त जनता के द्वारा इनकी उत्पत्ति होती है[१]। इनका निष्पादन स्वतः-संभूत है[२]। ग्रिम का कथन है कि किसी लोककाव्य की रचना के संबंध में यह सोचना कि उसका कोई विशेष रचयिता होगा, नितांत असंगत है क्योंकि इनका निर्माण स्वतः होता है। ये किसी कवि या चारण के द्वारा नहीं लिखे जाते।

ग्रिम ने इस सिद्धांत को बड़ा महत्व प्रदान किया है कि लोकगाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति की काव्यप्रतिभा का परिणाम नहीं है, प्रत्युत इसके निर्माण का श्रेय एक समुदाय (कम्युनिटी) को प्राप्त है। जिस प्रकार किसी व्यक्तिविशेष के हृदय में हर्ष विषाद, सुख दु:ख आदि की भावना जाग्रत होती है उसी प्रकार

१ 'ही (ग्रिम) मेनटेंड दैट दि पोएट्री आव् दि पिपुल 'सिंग्स इटसेल्फ'; इट हैज नो इंडिविडुअल पोएट बिहाइंड इट ऐंड इज दि प्रोडक्ट आव् दि होल फोक।'—गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ४९-५०

२ स्पांटेनियस जेनेरेशन आव् दि बैलेड।

किसी विशेष समुदाय के व्यक्ति भी विशेष अवसरों पर इन्हीं भावनाओं का अनुभव करते हैं। किसी उत्सव के समय, किसी मेला के अवसर पर, अथवा किसी धार्मिक पर्व पर साधारण जनता का समुदाय एकत्र होता है। हर्ष और प्रसन्नता के अवसर पर समुदाय के इन्हीं लोगों ने एक साथ मिलकर इन गाथाओं की रचना की होगी। ग्रिम के सिद्धांत का संक्षेप में आशय इस प्रकार है :

मान लीजिए, किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्रित हैं। सभी आनंद में निमग्न हैं। हर्षोन्माद की परिस्थिति में उनमें से किसी एक ने गीत की किसी एक कड़ी को बनाकर गाया। दूसरे व्यक्ति ने उसमें दूसरी कड़ी जोड़ दी और तीसरे व्यक्ति ने तीसरी कड़ी की रचना की। इस प्रकार कुछ समय के पश्चात् सामूहिक रूप से एक गीत तैयार हो गया। यतः इस गीत या गाथा के निर्माण में प्रस्तुत समुदाय के सभी व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त है, इसकी रचना सभी व्यक्तियों के सामूहिक प्रयास का परिणाम है, अतः इसे किसी व्यक्तिविशेष की रचना नहीं कह सकते। यह समस्त समुदाय की कृति मानी जायगी, न कि किसी विशेष व्यक्ति, कवि या रचयिता की रचना होगी[1]।

आजकल भी ऐसा देखने में आता है कजली गानेवाले व्यक्ति दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। प्रत्येक दल में आठ दस व्यक्ति होते हैं। पहिले एक दल का एक व्यक्ति कजली की किसी कड़ी को तत्काल बनाकर सुनाता है। पुनः दूसरे दल का कोई व्यक्ति उसके उत्तर में एक नई कड़ी तुरंत बनाकर गाता है। फिर प्रथम दल का व्यक्ति तीसरी कड़ी का निर्माण करता है। पुनः दूसरे दल का कोई गवैया उसमें स्वनिर्मित चौथी कड़ी जोड़ देता है। इस प्रकार यह सामूहिक गान का क्रम घंटों, और कभी रात रात भर, चलता रहता है। इस रीति से कजली के अनेक गीत बनकर तैयार हो जाते हैं। परंतु इन गीतों के विषय में यह कहना नितांत असंगत होगा कि अमुक कजली को अमुक व्यक्तिविशेष ने बनाया है क्योंकि इनका निर्माण समस्त समुदाय के सहयोग से संपन्न हुआ है।

ग्रिम के मतानुसार जिस प्रकार इतिहास का निर्माण किसी व्यक्तिविशेष के द्वारा नहीं किया जा सकता उसी प्रकार महाकाव्य का भी प्रणयन संभव नहीं है। सवसाधारण जनता ही प्राचीन घटनाओं तथा इतिवृत्तों को कविता का रूप प्रदान

[1] 'इट इज इन कांसिस्टेंट', ही सेज, 'टु थिंक आव् कंपोजिंग एन एपास, फार एव्री एपास मस्ट कंपोज इटसेल्फ, मस्ट मेक इटसेल्फ ऐंड कैन बी रिटेंड बाइ नो पोएट।' —गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ५०

करती है और इस प्रकार महाकाव्य का निर्माण होता है[1]। ग्रिम ने बारंबार अपने इसी सिद्धांत का प्रतिपादन अनेक स्थानों पर किया है। इन्होंने एक दूसरे अवसर पर इस विषय की चर्चा करते हुए लिखा है कि महाकाव्यों की रचना किसी विशिष्ट व्यक्ति या प्रसिद्ध कवि के द्वारा नहीं की जाती प्रत्युत इनका प्रादुर्भाव स्वतः होता है और सर्वसाधारण जनता में इनका प्रचार आपसे आप होता है[2]। ग्रिम के मत का सिद्धांतवाक्य यह है कि 'जनता लोककाव्य की रचना करती है[3]।' अतः लोकगाथाओं की परिभाषा बतलाते हुए ग्रिम ने लिखा है कि लोकगाथा जनता के द्वारा, जनता के लिये, जनता की कविता है[4]।

ग्रिम के सिद्धांत का जो विवेचन प्रस्तुत किया गया है उसमें सत्य का अंश प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। परंतु सभी गीतों तथा गाथाओं के विषय में इस सिद्धांत का प्रतिपादन करना कि इनका निर्माण व्यक्तिविशेष के द्वारा न होकर समुदायविशेष के द्वारा हुआ है, समीचीन प्रतीत नहीं होता।

(२) श्लेगल का सिद्धांत : व्यक्तिवाद—ए० डब्ल्यू० श्लेगल का सिद्धांत ग्रिम के मत के सर्वथा विपरीत है। अतः इन्होंने ग्रिम के सिद्धांत का बड़े प्रबल तर्कों द्वारा खंडन किया है। लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में श्लेगल का मत 'व्यक्तिवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके मतानुसार किसी कविता या गाथा का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य होता है। जिस प्रकार कोई कलात्मक कृति कलाकार की अपेक्षा रखती है उसी प्रकार कोई कविता भी किसी कवि की रचना का परिणाम होती है। गगनचुंबी अट्टालिकाएँ, अभ्रस्पर्शी प्रासाद, उत्तुंग कीर्तिस्तंभ किसी श्रेष्ठ कलाकार के परिश्रम के परिणाम होते हैं। पाषाण पर उत्कीर्ण सजीव प्रतिमाएँ किसी मूर्तिकलाविशारद की कलाकुशलता प्रमाणित करती हैं तथा विविध मनोहर रंगों से निर्मित आकर्षक एवं हृदयहारी चित्र किसी चतुर चितेरे की तूलिका की विशेषता, प्रकट करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि भव्य प्रासाद तथा मनोरम अट्टालिकाओं के निर्माण में अनेक व्यक्तियों का सहयोग रहता है, फिर भी

१ 'एपिक पोएट्री', ही डिक्लेयर्स, 'कैन नो मोर बी मेड दैन हिस्ट्री कैन बी मेड'। इट इज दि फोक हिच पोर्स इट्स ओवन फ्लड आव् पोएट्री ओवर फार आफ ईवेंट्स ऐंड सो ब्रिंग एबाउट दि एपास।' —गूमर : ओ० इ० वै०, भूमिका, पृ० ५१

२ 'एपिक पोएट्री', ही (ग्रिम) सेज, 'इज नाट प्रोड्यूस्ड बाइ पर्टिक्युलर ऐंड रिकाग्नाइज्ड पोएट्स बट रादर स्प्रिंग्स अप ऐंड स्प्रेड्स एलांग टाइम एमंग दि पीपुल देमसेल्ज, इन दि माउथ आव् दि पीपुल।' —गूमर : वही, भूमिका, पृ० ५१

३ दि फोक कंपोजेज इटसेल्फ।

४ 'दि पोएट्री आव दि पीपुल, बाइ दि पीपुल, फार दि पीपुल।' —गूमर : ओ० इ० वै०।

उस प्रासाद की निर्मिति में विशेष कलाकार के व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोककविता के संबंध में भी यही बात समझनी चाहिए। लोकगाथा के निर्माण में अनेक लोककवियों का सहयोग अवश्य रहता है परंतु वह किसी विशेष कवि की ही रचना होती है। अत्यंत प्राचीन काव्यों में कोई उद्देश्य निहित रहता है, उसमें कोई योजना होती है। अतः इस योजना का कर्ता कोई विशिष्ट कलाकार ही हो सकता है[1]।

श्लेगल का यह 'व्यक्तिवादी सिद्धांत' समीचीन जान पड़ता है। इस संसार में कोई भी कृति अपने निर्माणकर्ता की अपेक्षा रखती है। किंबहुना इस जगत् का भी कोई कर्ता स्वीकार किया जाता है। अतः लोकगाथाओं का रचयिता कोई विशेष व्यक्ति होगा इस सिद्धांत को स्वीकार करने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं दिखाई पड़ती।

(३) स्टेंथल का सिद्धांत : जातिवाद—लोकगाथाओं की रचना के संबंध में स्टेंथल के मत को 'जातिवाद' का नाम दिया जा सकता है। ग्रिम के कथनानुसार कुछ व्यक्तियों के समुदाय (कम्यूनिटी) द्वारा लोकगाथाओं की रचना होती है। परंतु इस विषय में स्टेंथल का सिद्धांत यह है कि किसी जाति (रेस) के समस्त व्यक्ति मिलकर लोकगाथाओं का निर्माण करते हैं। यह सिद्धांत ग्रिम के मत से एक कदम और आगे बढ़ा हुआ है। स्टेंथल के अनुसार व्यक्ति चिरकालीन सभ्यता एवं युग युग के विकास की परिणति हैं। आधुनिक काल में व्यक्ति की प्रधानता है। परंतु आदिम जातियों में व्यष्टि के स्थान पर समष्टि की प्रमुखता पाई जाती है। असभ्य जातियों में प्रधान भावनाएँ, एषणाएँ और मूल प्रवृत्तियाँ समान रूप में ही उपलब्ध होती हैं। जिस वस्तु का अनुभव कोई एक व्यक्ति करता है, समष्टि भी उसी का अनुभव करती है। इस परिस्थिति में सामान्य सृजनात्मक भावना के द्वारा भाषा और कविता का निर्माण होता है। इस प्रकार लोकगाथा किसी

[1] ए पोएम इंसाइज आलवेज ए पोएट। ए वर्क आव् आर्ट, ऐज एव्री पोएट्री मस्ट बी, हेदर गुड आर बैड, इंसाइज ऐन आर्टिस्ट; ऐंड फार पोएम्स आव् एनी रीच आर ग्रेस, वी मस्ट ऐज्यूम ऐन आर्टिस्ट आव् दि हाइएस्ट क्लास। लीजेंड, एपास ऐंड सांग माइट वेल बिलांग टु दि पिपुल ऐज देअर प्रापर्टी, बट दि मेकिंग आव् दिस वर्स वाज नेवर ए कम्यूनल प्रोसेस। ए स्टेटली टावर, आर एनी बिल्डिंग आव् ब्यूटी मीन्स, इट इज ट्रू, दैट ए होस्ट आव् वर्कमेन हैव कैरीड स्टोंस फ्राम दि क्वैरी ऐंड रेयर्ड दि वाल्स; बट बिहाइंड देम इज दि शेपिंग थाट आव् दि आर्किटेक्ट। आल पोएट्री रेस्ट्स अपान ए यूनियन आव् नेचर ऐंड आर्ट, ईविन दि अर्लिएस्ट पोएट्री, हैज ए परपज ऐंड ए सैन, ऐंड देयरफोर बिलांग्स टु ऐन आर्टिस्ट।—गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ५४

व्यक्तिविशेष की संपत्ति न होकर संपूर्ण जाति (रेस) की धरोहर या थाती होती है[1]।

लोक (फोक) के निर्माण में समान वंश या जाति का होना जितना आवश्यक है उतना समान भाषा का होना नहीं। यही एकता, जातीयता की यही भावना सर्वप्रथम भाषा के रूप में प्रकट होती है; पश्चात् कथाओं में, तत्पश्चात् धार्मिक विधिविधानों में और पुनः काव्यकला तथा सामाजिक रीतिरिवाजों में प्रकाशित होती है। दूसरे शब्दों में, जन अथवा लोककाव्य का निर्माण इन्हीं सूक्ष्म तथा रहस्यमयी विधियों से निष्पन्न होता है जिनसे भाषा, कानून और समाज के नियमों की रचना होती है[2]।

संसार के छोटे छोटे देशों में अनेक ऐसी असभ्य तथा अर्धसभ्य जातियाँ हैं जिनके समस्त सदस्य एक स्थान पर एकत्र होकर उत्सव मनाया करते हैं। ये लोग मेले या अन्य सार्वजनिक उत्सवों पर एकत्रित होकर अपना मनोरंजन करते हैं। इस अवसर पर ये सामूहिक रूप से गीत गाते और बनाते जाते हैं। इस प्रकार उस जाति के समस्त सदस्यों द्वारा लोकगाथाओं का निर्माण होता है।

स्टेंथल का यह सिद्धांत किसी छोटी जाति के विषय में तो समीचीन हो सकता है परंतु किसी बड़े देश की बड़ी जाति के संबंध में लागू नहीं हो सकता। यद्यपि इस मत में भी ग्रिम के सिद्धांत की ही भाँति सत्य का बहुत कुछ अंश विद्यमान है परंतु इसे पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस मत के खंडन में भी वे ही तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो ग्रिम के विषय में रखे गए हैं। 'समस्त जाति लोकगाथाओं का निर्माण करती है' यह उक्ति उतनी ही हास्यास्पद है जितनी 'समग्र जाति शासन करती है' यह उक्ति। जिस प्रकार शासन का संचालन

[1] स्टेंथल ट्राइड टु सेट फोर्थ दि डाक्ट्रिन दैट ए होल रेस कैन मेक पोएम्स। दि इंडिवीडुअल, ही मेंटेंड, इज दि आउटकम आव् कलचर ऐंड लांग एजेज आव् डेवलपमेंट; ह्वाइल प्रिमिटिव रेसेज शो सिंपली ऐन एग्रीगेट आव् मेन। सेन्सेशन, इंपल्स ऐंड सेंटिमेंट मस्ट बी काइट यूनिफार्म इन दि अनसिविलाइज्ड कम्युनिटी—ह्वाट वन फील्स, आल फील। नो वन ओवन्स ए वर्ड, ए कामन क्रियेटिव सेंटिमेंट श्रोज आउट दि सांग ऐंड मेक्स पोएट्री। नो वन ओवन्स ए वर्ड, ए ला, ए स्टोरी, ए कस्टम। नो वन ओवन्स ए सांग। —गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ३६-३७

[2] दिस यूनिटी, दिस स्पिरिट आव् रेस, मेनिफेस्ट्स इटसेल्फ फर्स्ट इन स्पीच, देन इन मिथ, देन इन कस्टम। आफ्टर लांग ट्रैडिशन कस्टम गिव्स बर्थ टु ला। इन अदर वर्ड्स, पोएट्री आव् दि पीपुल इज मेड बाइ एनी गिवेन रेस थ्रू दि सेम मिस्टीरियस प्रोसेस ह्विच फार्म्स स्पीच, कल्ट, मिथ, कस्टम आर ला। —गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ३६

कुछ चुने हुए व्यक्तियों द्वारा होता है उसी प्रकार लोकगाथाओं की रचना कुछ विशिष्ट लोककवियों का ही कार्य है।

(४) बिशप पर्सी का सिद्धांत : चारणवाद—बिशप पर्सी इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध गीत-संग्रह-कर्ता थे। इन्होंने उस देश के प्राचीन लोकगीतों का संकलन प्रकाशित किया है जो 'प्राचीन अंग्रेजी कविता का संग्रह' (रेलिक्स आव् एनशेंट इंग्लिश पोएट्री) के नाम से प्रसिद्ध है। इनके इस संग्रह से उस देश के विद्वानों का ध्यान लोकगीतों के महत्व की ओर आकृष्ट हुआ और इसके पश्चात् लोकगीतों तथा गाथाओं का संकलन एवं संपादन होने लगा। इनकी उपर्युक्त पुस्तक से अनेक विद्वानों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अतएव अंग्रेजी लोकसाहित्य के इतिहास में बिशप पर्सी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बिशप पर्सी का सिद्धांत है कि लोकगाथाओं की रचना चारण या भाटों द्वारा की गई होगी। प्राचीन काल में इंग्लैंड में ये चारण लोग ढोल या सारंगी (हार्प) पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना किया करते थे। इसके साथ ही ये गीतों की रचना भी करते जाते थे। इन गीतों को चारणगीत (मिंस्ट्रेल बैलेड्स) कहा जाता था क्योंकि इनकी रचना चारणों के द्वारा की जाती थी जिन्हें 'मिंस्ट्रल' कहते थे। ये चारण लोग इंग्लैंड के धनीमानी व्यक्तियों के दरबार में जीविकोपार्जन के लिये जाया करते थे और उन्हें स्वरचित कविता सुनाकर अपनी उदरदरी की पूर्ति किया करते थे। यहाँ इनका बड़ा संमान होता था। इस प्रकार इंग्लैंड में कवि और चारण दो पृथक् व्यक्ति हो गए थे। काव्यकला की समृद्धि विद्वानों और कवियों द्वारा होती थी और लोकगाथओं की रचना चारण लोग किया करते थे[1]।

बिशप पर्सी ने अपनी पुस्तक में संकलित गाथाओं की रचना के संबंध में लिखा है कि इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अधिकांश प्राचीन वीरगाथाओं का निर्माण चारणों के द्वारा हुआ होगा। यह संभव है कि छंदोबद्ध बड़ी बड़ी गाथाओं की रचना साधुसंतों एवं कवियों की काव्यप्रतिभा के परिणाम हों, परंतु छोटे छोटे वर्णनात्मक गीतों की सृष्टि चारणों द्वारा ही हुई होगी जो इनकी रचना कर गाया

[1] दस, दि पोएट ऐंड दि मिंस्ट्रेल, अर्ली विद अस, विकेम टू परसंस। पोएट्री वाज कल्टि-वेटेड बाई मेन् आव् लेटर्स......बट दि मिंस्ट्रेल कांटीन्यूड ए डिस्टिंक्ट आर्डर आव् मेन् फार मेनी एजेज आफ्टर दि नार्मन कांक्वेस्ट, ऐंड गाट देअर लाइव्लिहुड बाई सिंगिंग वर्सेज टु दि हार्प ऐट दि हाउसेज आव् दि ग्रेट।—बिशप पर्सी : रेलिक्स आव् एनशेंट इंग्लिश पोएट्री, भूमिका, पृ० २४

करते थे[1]। जाजेफ रिटसन नामक विद्वान् का भी यही मत है। इन्होंने अंग्रेजी लोकगाथाओं की उत्पत्ति रानी एलिजाबेथ के समय से स्वीकार की है। अँग्रेजी भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट भी पर्सी के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। उनकी संमति में चारण लोकगाथाओं के निर्माण में बड़े दक्ष थे। उनका यह सिद्धांत है कि प्रारंभ में गाथाओं की रचना चारणों ने ही की होगी जो कविता और संगीत दोनों की जानकारी का दावा रखते थे अथवा ये किसी स्वयंभू चारण के समय समय के हार्दिक उद्गार होंगे[2]। प्रोफेसर पाल का मत है कि मौखिक परंपरा के काल में चारण लोग गीतों की रचना करते थे और जीविका की प्राप्ति के लिये इसे गाँवों में गाते फिरते थे।

भारतवर्ष में भी इन चारणों के द्वारा अनेक लोकगाथाओं की रचना हुई है। सुप्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' का मूललेखक जगनिक चंदेलराज परमर्दिदेव—जिसका लोकविख्यात नाम परमार था—के दरबार में चारण था। 'रासो' की रचना कर सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज की कीर्ति को अमरत्व प्रदान करनेवाला चंदबरदायी भी भाट ही था। राजस्थान में अनेक चारणों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की कीर्ति का गान किया है जो 'चारणकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध है। हिंदी साहित्य के वीरगाथाकाल में जो अनेक ग्रंथों की रचना हुई वह इसी कोटि के अंतर्गत समझनी चाहिए। आज भी गोरखपंथी साधु, जिन्हें साईं कहते हैं, सारंगी बजाकर गीत बनाते और गाते फिरते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में निवास करनेवाले चारण लोग, जो 'भाट' के नाम से प्रसिद्ध हैं, बारातों में जाकर तत्काल ही काव्य की रचना कर बारातियों का मनोरंजन करते हैं। परंतु समस्त लोकगाथाओं की रचना चारणों द्वारा ही हुई होगी, यह कहना कठिन है।

१ आइ हैव नो डाउट दैट मोस्ट आव् दि हिरोइक बैलेड्स इन दिस कलेक्शन वेअर कंपोज्ड बाइ दिस आर्डर आव् मेन, फार, आल्दो सम आव् दि लार्जर मोट्रिकल रोमांसेज माइट कम फ्राम दि पेन आव् दि मांक्स आर आथर्स येट् दि स्मालर नरेटिंग्ज वेअर प्राबेब्ली कंपोज्ड बाइ दि मिंस्ट्रेल्स हू सँग देम।—बिशप पर्सी : रेलिक्स आव् एनशेंट इंग्लिश पोएट्री, भूमिका, पृ० २४

२ इन हिज (सर वाल्टर स्काट्स) आइज दि मिंस्ट्रेल वाज काइट सफिशेंट टु एकाउंट फार बैलेड्स', ही रिमार्क्स, 'मे बी मिंस्ट्रेल्सी, हेदर आव् दि बार्डर आर आव् एल्सह्वेअर। 'बैलेड्स', ही रिमार्क्स, 'मे बी ओरिजनली दि वर्क आव् मिंस्ट्रेल्स प्रोफेसिंग दि ज्वाइंट आर्ट्स आव् पोएट्री ऐंड म्यूजिक आर दे मे बी दि आकेजनल इन्फ्यूजंस आव् सम सेल्फराट बाड'।—गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ५६

(५) प्रो० चाइल्ड का सिद्धांत : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद—प्रोफेसर चाइल्ड लोकसाहित्य के अधिकारी विद्वान् थे। इनके द्वारा पाँच भागों में संग्रहीत तथा संपादित 'इंग्लिश ऐंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स' नामक ग्रंथ इनकी अमर कृति है जिससे इनकी अगाध विद्वत्ता तथा भगीरथ प्रयास का पता चलता है। लोकगाथाओं की रचना के संबंध में प्रोफेसर चाइल्ड का मत है कि जिस प्रकार किसी काव्य का कोई न कोई लेखक अवश्य होता है उसी प्रकार इन लोकगाथाओं की रचना भी किसी व्यक्तिविशेष के द्वारा ही होती है परंतु उस लेखक के व्यक्तित्व का कुछ विशेष महत्व नहीं होता[1]।

व्यक्तिविशेष की कृति होने पर भी, भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा गाए जाने के कारण इन गाथाओं में परिवर्तन तथा परिवर्धन होता रहता है। अतः इनके मूल लेखक का व्यक्तित्व नष्ट या तिरोहित हो जाता है और ये गाथाएँ जनसामान्य की संपत्ति बन जाती हैं। प्रो० चाइल्ड का मत श्लेगल के सिद्धांत के समान ही है। अंतर केवल इतना ही है कि प्रो० चाइल्ड लेखक के व्यक्तित्व को महत्व प्रदान नहीं करते। प्रो० स्टीनट्रूप का भी, जो डेनिश लोकसाहित्य के प्रामाणिक आचार्य माने जाते हैं, यही मत है। उन्होंने लोकगाथाओं के निर्माण में किसी कवि के व्यक्तित्व का जोरदार शब्दों में खंडन किया है।

लोकगाथाओं की प्रधान विशेषताओं का वर्णन करते हुए अन्यत्र यह दिखलाने का विनम्र प्रयास किया गया है कि इनकी रचना में कवि के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। बहुत सी गाथाओं के रचयिताओं का पता भी नहीं चलता। जो गाथाएँ किसी लेखक के नाम से प्रसिद्ध हैं उनमें भी विभिन्न गायकों द्वारा इतना अधिक परिवर्तन कर दिया जाता है कि उनके मूल लेखक का व्यक्तित्व छिप जाता है। प्रो० चाइल्ड गाथाओं के रचयिता किसी व्यक्ति को तो मानते हैं परंतु उसके व्यक्तित्व को गाथाओं में प्रतिबिंबित स्वीकार नहीं करते। इसीलिये इनका सिद्धांत व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

(६) डा० उपाध्याय का सिद्धांत : समन्वयवाद—लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में डा० कृष्णदेव उपाध्याय का एक विशेष सिद्धांत है जो 'समन्वयवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। डा० उपाध्याय के मतानुसार इन गाथाओं की उत्पत्ति के विषय में जिन विभिन्न सिद्धांतों का विवेचन पहले प्रस्तुत किया जा

[1] दो दे (बैलेड्स) डू नाट राइट देमसेल्व्ज ऐज विलियम ग्रिम हैज सेड्, दो ए मैन ऐंड नाट ए पीपुल हैज कंपोज्ड देम, स्टिल दि आथर काउंट्स फार नथिंग, ऐंड इट इज नाट बाइ मिअर ऐक्सिडेंट बट बिद बेस्ट रीजन दैट दे हैव कम डाउन टु अस एनानिमस।
—जानसन : साइक्लोपीडिया, १८९३ ई०।

चुका है उन सबमें कुछ न कुछ सत्य का अंश विद्यमान है। विभिन्न दृष्टियों से ये सभी मत आंशिक रूप में समीचीन जान पड़ते हैं। परंतु किसी एक सिद्धांत को ही सच्चा और प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

जिन सिद्धांतों की चर्चा पहले की जा चुकी है वे सभी कारणभूत हैं। इन सब का सहयोग इन गाथाओं के निर्माण में उपलब्ध होता है। ये समुदाय रूप से इनकी निर्मिति के हेतु हैं, पृथक् पृथक् नहीं। यह स्वीकार करने में किसी को भी विप्रतिपत्ति नहीं होगी कि कुछ गीत या गाथाएँ ऐसी हैं जो व्यक्तिविशेष की रचनाएँ हैं। भोजपुरी चैता या घाँटों के गीतों में इनके रचयिता बुलाकीदास का नाम बारंबार आता है। जैसे—

दास बुलाकी चइत घाँटो गावे हो रामा।
गाई गाई बिरहिन समझावे हो रामा॥
चइत मासे।

इससे ज्ञात होता है कि इनकी रचना बुलाकीदास के द्वारा ही की गई होगी। इसी प्रकार खेती, कृषि तथा वर्षा संबंधी अनेक सूक्तियाँ घाघ और भड्डरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। भोजपुरी कवि भिखारी ठाकुर का बिदेसिया नाटक और गीत प्रसिद्ध हैं। बिहार के छपरा जिले के निवासी पं० महेंद्र मिश्र ने ऐसे सैकड़ों गीतों की रचना की है जो 'पुरबी' नाम से प्रसिद्ध हैं। बुंदेलखंड में 'ईसुरी' नामक लोककवि के फागों का जनता में बड़ा प्रचार है। ब्रजमंडल में मदारी और सनेहीराम के गीत बड़े प्रेम से गाए जाते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि लोकसाहित्य के निर्माण में व्यक्तिविशेष का—चाहे वह कवि हो या नाटककार या कथाकार—सहयोग अवश्य रहता है।

लोकगाथाओं की रचना में समुदाय (कम्युनिटी) का भी योग होता है। अनेक गीत ऐसे पाए जाते हैं जिनका प्रचार किसी जातिविशेष के लोगों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है। जैसे अहीर जाति के लोग बिरहा गाते हैं और दुसाध (हरिजनों की एक जाति) लोग पचरा। अहीरों की बारात में बिरहा गाने की विशेष प्रथा है। इस अवसर पर अच्छे अच्छे गवैए जुटते हैं। दो दलों के बीच बिरहा गाने की प्रतियोगिता प्रारंभ हो जाती है। एक दल का व्यक्ति तत्काल बिरहा बनाकर गाता है तथा प्रश्न करता है। दूसरे दलवाले भी इसी प्रकार अपनी आशुरचना के द्वारा उसका उत्तर देते हैं। इस प्रकार जिन बिरहों की रचना होती है उनका रचयिता अहीरों का समुदाय होता है न कि कोई व्यक्तिविशेष। यही बात 'कजली' गीतों के संबंध में भी कही जा सकती है। झूमर तथा सोहर (पुत्रजन्म के गीत) गीतों को स्त्रियों का समुदाय बनाता और गाता जाता है।

आदिम जातियों (प्रिमिटिव रेसेज) में यह प्रथा आज भी प्रचलित है कि उस जाति के सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित होकर गाना गाकर अपना मनोरंजन किया करते हैं। कोई व्यक्ति गीत की एक कड़ी बनाता है तो कोई दूसरी कड़ी। तीसरा व्यक्ति तीसरी कड़ी जोड़ता है तो चौथा अगली पंक्ति का निर्माण करता है। इस प्रकार पूरा गीत तैयार हो जाता है। इस पद्धति से निर्मित गीतों में किसी विशेष कवि या गायक का हाथ न होकर पूरी जाति का सहयोग होता है। अतः ये गीत समस्त जाति की संपत्ति होते हैं न कि किसी एक व्यक्ति की। बिहार राज्य के संथालों और मध्यप्रदेश के गोंड नामक आदिम जातियों में आज भी यह प्रथा पाई जाती है।

चारणों द्वारा भी अनेक गाथाओं की रचना हुई है। जगनिक तथा चंदबरदायी की अमर कृतियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। राजस्थान में तो चारणों के द्वारा गाथा या काव्य रचने की परंपरा ही चल पड़ी थी। अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में गीतों की रचना करना इन चारणों का प्रधान कार्य था। इंग्लैंड में भी राजाओं और अमीरों के दरबार में किसी काल में चारणों की भीड़ लगी रहती थी जो अपनी पेटपूजा के लिये ही अपने स्वामी का गुणगान किया करते थे। इन चारणों के द्वारा भी अनेक गाथाओं और काव्यों की रचना हुई है; भला इसे कौन अस्वीकार कर सकता है।

अधिकांश लोकगाथाओं के रचयिता अज्ञातनामा हैं। आज उनके संबंध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। जिन लोककवियों के नाम का हमें पता है उनकी रचनाओं में कालांतर में इतना परिवर्तन और परिवर्धन हो गया है कि उन कृतियों में उनके व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है।

इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त प्रत्येक विद्वान् का सिद्धांत कतिपय गाथाओं के निर्माण के संबंध में तो समीचीन ठहर सकता है परंतु सभी प्रकार की गाथाओं के विषय में यह लागू नहीं हो सकता। डा० उपाध्याय का सिद्धांत इन सभी विभिन्न मतों में समन्वय स्थापित करता है, इसीलिये इसे 'समन्वयवाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार ये सभी (पाँचों) सिद्धांत एक साथ मिलकर लोकगाथाओं की उत्पत्ति के कारण हैं न कि पृथक् पृथक् (हेतुः न तु हेतवः)। समन्वयवाद का यह सिद्धांत ही इन लोकगाथाओं के निर्माण की समस्या को सुलझाने में समर्थ है। अतः डा० कृष्णदेव उपाध्याय का सिद्धांत ही इस संबंध में अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(ग) लोकगाथाओं की प्रधान विशेषताएँ—लोकसाहित्य में जो गीत उपलब्ध होते हैं उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार के

वे गीत हैं जो आकार में छोटे हैं। इनमें कथानक का सर्वथा अभाव रहता है। गीतात्मकता ही इनकी प्रधान विशेषता है। दूसरे प्रकार के गीत वे हैं जिनमें कथा-वस्तु की ही प्रधानता है। इसके साथ ही वे गेय भी हैं। काव्य की भाषा में यदि कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि पहला प्रगीति मुक्तक है तो दूसरा प्रबंध काव्य। संस्कार, ऋतु तथा जाति संबंधी समस्त लोकगीत प्रथम कोटि में आते है तथा लोरकी, विजयमल, नयकवा बनजारा, भरथरी, गोपीचंद, सोरठी, हीर राँझा, सोहनी महीवाल, ढोला मारू, राजा रसालू आदि के गीत द्वितीय कोटि में अंतर्भुक्त किए जा सकते हैं। ये लंबे गीत लोकगाथा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन लोकगाथाओं की प्रधान विशेषताओं को प्रधानतया निम्नांकित दस भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) रचयिता का अज्ञात होना।
(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
(३) संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
(४) स्थानीयता का प्रचुर पुट।
(५) मौखिक परंपरा।
(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव।
(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता।
(८) कवि के व्यक्तित्व की अप्रधानता।
(९) लंबे कथानक की मुख्यता।
(१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति।

(१) रचयिता का अज्ञात होना—लोकगाथा की सबसे बड़ी विशेषता है इसके रचयिता का अज्ञात होना। उत्तरी भारत में हीर राँझा, ढोला मारू, विजयमल, सोरठी, गोपीचंद, भरथरी आदि की अनेक गाथाएँ प्रचलित तथा प्रसिद्ध हैं परंतु इनके लेखकों का नाम अंधकार के गह्वर में छिपा हुआ है। किस काल में किस गाथा की रचना किस कवि ने की इसका पता लगाना अत्यंत कठिन है। आजकल कबीरदास जी के नाम से अनेक 'निर्गुन' के पद प्रसिद्ध हैं जिनके अंत में 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' अथवा 'गावेले कबीरदास यह निरगुनवा हो' आदि पदों की पुनरावृत्ति पाई जाती है। परंतु इस नामोल्लेख के कारण इन गीतों को संत कबीर की रचना मान लेना समुचित नहीं है। लोककवि अपनी रचनाओं में अपना नाम पिरो देना कई कारणों से उचित नहीं समझते थे। राबर्ट ग्रेव्स ने इन कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वर्तमान सामाजिक संगठन में किसी लेखक का अपनी कृति में नाम न देना इस बात को सिद्ध करता है कि उसे अपनी रचना से लज्जा लगती है अथवा उसे अपने नाम को प्रकट करने में भय का अनुभव

होता है। परंतु आदिम समाज में यह बात लेखक के नाम की असावधानी के कारण होती थी[1]।

जिस प्रकार अन्य कविताओं का लेखक कोई व्यक्ति होता है उसी प्रकार इन लोकगाथाओं का रचयिता भी कोई व्यक्ति अवश्य रहा होगा जिसने अपने साथियों के साथ आनंद में निमग्न होकर इनकी रचना प्रारंभ की होगी। परंतु जातीय रचना (कम्यूनल आथरशिप) की यह विशेषता होती है कि इसका रचयिता गानेवाले दल के मुखिया का काम करता है। जब उस गाथा की रचना समाप्त हो जाती है तब वह उसका लेखक होने का गर्व तथा दावा नहीं करता। इस प्रकार की सामूहिक तथा जातीय रचनाओं में गाथा की प्रधानता होती है, दल का भी महत्व होता है परंतु किसी व्यक्तिविशेष की महत्ता नहीं रहती। ऐसा देखा जाता है कि छोटे छोटे बच्चे छोटे छोटे गीत बनाते, गुनगुनाते और गाते जाते हैं परंतु इनमें से कोई भी बालक गीत का रचयिता होने का दावा नहीं करता। यह किसी को याद भी नहीं रहता किस बालक ने किस गीत में किस कड़ी को जोड़ा है[2]। जातीय रचना में किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों का हाथ रहता है। सभी के सहयोग से उसकी रचना होती है। अतः किस व्यक्ति ने उसका निर्माण किया, यह बतलाना असंभव है।

गाँवों में संस्कार संबंधी अनेक लोकगीत प्रचलित हैं जिन्हें स्त्रियाँ विशेष मांगलिक अवसरों पर गाती हैं। ये गीत चिरकाल से परंपरागत रूप में चले आ रहे हैं। इन गीतों की रचना किसने की यह बतलाना कठिन है। आज भी स्त्रियाँ समुदाय रूप में 'झूमर' गीत गाती हैं। वे गीत गाने के साथ ही साथ उसके आगे की पंक्तियों की रचना भी करती जाती हैं। एक स्त्री एक कड़ी बनाती है तो दूसरी स्त्री अन्य पंक्ति जोड़ देती है। इस प्रकार गीत तैयार हो जाता है। परंतु यह किसी व्यक्तिविशेष की रचना न होकर समस्त समुदाय की कृति होती है। इसीलिये कहा गया है कि लोकगीतों का रचयिता अज्ञात होता है।

[1] एनानिमिटी इन दि प्रेजेंट स्ट्रक्चर आव् सोसाइटी यूजुअली इंप्लाइज दैट दि आथर इज अशेम्ड आव् हिज आथरशिप आर अफ्रेड आव् दि कांसीक्वेंसेज इफ ही रिवील्स हिमसेल्फ; बट इन ए प्रिमिटिव सोसाइटी इट इज ड्यू जस्ट टु केयरलेसनेस आव् दि आथर्स नेम। —राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, भूमिका, पृ० १२

[2] 'दि बैलेड इज इंपार्टेंट, दि ग्रुप इज इंपार्टेंट, बट दि इंडिवीडुअल काउंट्स फार लिटिल। रुडिमेंटरी बैलेड्री इज कामन एमंग ग्रुप आव् स्माल चिल्डरेन ऐंड इट विल बी नोटिस्ड दैट नो चाइल्ड विल क्लेम आथरशिप आव् दि सिंगसांग; नो वन रिमेंबर्स हू ऐडेड हिच फ्रेजेज टु दि कामन स्टोर। — राबर्ट ग्रेव्स : दि इंग्लिश बैलेड, भूमिका, पृ० १३

(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव—लोकगाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता। चूँकि लोकगाथा समुदाय की संमिलित रचना होती है अतः इसके मूल पाठ (ओरिजिनल टेक्स्ट) का पता लगाना बड़ा कठिन कार्य है। लोककवि गाथा की रचना कर उससे पृथक् हो जाता है। अब यह गाथा समस्त समाज, समुदाय या जाति की रचना हो जाती है और प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी निजी संपत्ति समझने लगता है। प्रत्येक गवैया अपनी इच्छा के अनुसार उसमें नई पंक्तियाँ जोड़ता जाता है। एक ही गाथा के विभिन्न प्रांतों या राज्यों में प्रचलित होने के कारण स्थानीय कवि अपनी भाषा का पुट उसमें देते जाते हैं। हैं। इस प्रकार आकार में वृद्धि होने के साथ ही साथ उसकी भाषा में भी परिवर्तन होता जाता है।

काव्य दो प्रकार के होते हैं—(१) अलंकृत काव्य (पोएट्री आव् आर्ट) तथा (२) संवर्धित काव्य (पोएट्री आव् ग्रोथ)[1]। अलंकृत काव्य से अभिप्राय उस कविता से है जो किसी व्यक्तिविशेष की रचना होती है और जिसमें रस, अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य के आवश्यक उपादानों की योजना होती है। संवर्धित काव्य वह प्रबंध काव्य है जो किसी विशिष्ट कवि की कृति तो अवश्य हो परंतु विभिन्न कालों और युगों में विभिन्न कवियों ने जिसकी अभिवृद्धि में योगदान दिया हो। महर्षि व्यास के मूल ग्रंथ का नाम 'जय' था[2]। कालांतर में उसकी संज्ञा 'भारत' हुई जिसमें उपाख्यान नहीं थे[3]। फिर अनेक प्रकार के उपाख्यान, नीतिवचन तथा धार्मिक प्रसंग जोड़ दिए जाने पर वह 'महाभारत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा उसके श्लोकों की संख्या एक लाख तक पहुँच गई।[4]

संवर्धित काव्य की ही भाँति लोकगाथाओं में लोककवियों द्वारा समय समय पर परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। इस प्रकार इनके मूलपाठ में परिवर्धन का क्रम जारी रहता है। लोकगाथाओं का जितना ही अधिक प्रचार होता है उनमें परिवर्तन की संभावना उतनी ही अधिक होती है। विभिन्न कालों में विभिन्न जनपदों

[1] हडसन : इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी आव् लिटरेचर।

[2] नारायणं नमस्कृत्यं, नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत॥ —आ० प०, १

[3] चतुर्विंशति साहस्रीं, चक्रे भारत संहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधै।

[4] इदं शतसहस्त्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्॥ —आ० प०, १०१-२

के लोककवियों द्वारा उनके कलेवर में वृद्धि की जाती है। अनेक नवीन घटनाओं का समावेश उनमें किया जाता है। कहीं कहीं पात्रों के नामों में भी भिन्नता कर दी जाती है। इस प्रकार यह प्रक्रिया सैकड़ों वर्षों तक चलती रहती है। इस अवधि में मूल गाथा में भाषा संबंधी तथा घटनाचक्र संबंधी इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि मूल लेखक भी अपनी कृति को पहचानने में असमर्थता का अनुभव करने लगता है[1]।

लोकगाथाओं की यह परंपरा मौखिक होती है अतः लिपिबद्ध काव्यों की अपेक्षा इसमें परिवर्तन का अवकाश अधिक पाया जाता है। कुछ विद्वानों ने लोकगाथा की उपमा विशाल नदी से दी है। जिस प्रकार कोई नदी अपने उद्गम-स्थल से अत्यंत पतली धारा के रूप में निकलती है, कालांतर में उसमें अनेक सहायक नदियाँ मिलकर उसके आकार को इतना विशाल कर देती हैं कि उसके मूल स्वरूप को पहचानना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार लोकगाथाओं के रूप में जनकवियों द्वारा इतना अधिक परिवर्तन कर दिया जाता है कि उसके मौलिक रूप का पता नहीं चलता।

इसीलिये किसी लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित या अंतिम स्वरूप नहीं होता। इसका कोई प्रामाणिक पाठ (वर्शन) नहीं होता। इसके अनेक पाठ होते हैं; परंतु कोई एक ही निश्चित पाठ नहीं होता। मान लीजिए, किसी गाथा के क, ख, ग तीन विभिन्न पाठ हैं। यह हो सकता है 'क' पाठ मूल गाथा के अधिक समीप हो, उससे अधिक मिलता जुलता हो, परंतु इसी कारण 'ख' और 'ग' पाठों का महत्व कुछ कम अंकित नहीं किया जा सकता[2]। इन अंतिम दोनों पाठों का उतना ही मूल्य है जितना प्रथम पाठ का। प्रो० कीट्रीज ने लिखा है कि प्रोफेसर चाइल्ड ने अनेक गाथाओं के २१ विभिन्न पाठों का संग्रह अपने ग्रंथ में किया है। परंतु इनमें से किसी भी एक पाठ का मूल्य दूसरे पाठ से किसी भी प्रकार न्यून नहीं है।

राबर्ट ग्रेव्स का मत है कि किसी विशेष गाथा का कोई वास्तविक तथा शुद्ध पाठ नहीं होता। लोककवि अपनी इच्छा के अनुसार उसमें परिवर्तन करते रहते हैं।

[1] कीट्रीज : इंगलिश ऐंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, भूमिका, पृ० १७.

[2] इट फालोज दैट ए जेनुइनली पापुलर बैलेड कैन हैव नो फिक्स्ड ऐंड फाइनल फार्म, नो सोल आथेंटिक वर्शन। देअर आर टेक्स्ट्स, बट देअर इज नो टेक्स्ट। वर्शन ए मे बी नियर दि ओरिजिनल दैन वर्शन्स बी ऐंड सी बट दैट डज नाट एफेक्ट दि प्रिटेंशंस आव् बी ऐंड सी टु एक्जिस्ट ऐंड होल्ड अप देअर हेड्स एमंग देअर फेलोज। —प्रो० कीट्रीज : इं० स्का० पा० बै०, भूमिका, पृ० १७-१८

अतएव किसी एक ही पाठ को विशुद्ध नहीं माना जा सकता[१]। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'भगवती देवी' शीर्षक लोकगाथा के तीन चार पाठों का संकलन किया है परंतु कौन सा पाठ मौलिक तथा शुद्ध है यह बतलाना कठिन है[२]।

'आल्हा' नामक लोकगाथा का मूल रचयिता जगनिक था जो चंदेलवंशी राजा परमर्दिदेव का राजकवि था। इसने हिंदी की बुंदेलखंडी बोली में अपने काव्य की रचना की थी। इसमें वीराग्रणी आल्हा और ऊदल की वीरता एवं पराक्रम का वर्णन रहा होगा। जगनिक की यह कृति आकार में बहुत बड़ी न रही होगी। परंतु आजकल बाजारों में जो मुद्रित 'आल्हखंड' उपलब्ध होता है उसका आकार मूल ग्रंथ से कई गुना अधिक है। इसमें ऐसी अनेक घटनाएँ पीछे से जोड़ दी गई जिनका मूल 'आल्हखंड' में वर्णन नहीं था। उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार के कारण इसके अनेक पाठ (वर्शंस) उपलब्ध होते हैं जिनमें कन्नौजी, बुंदेलखंडी और भोजपुरी पाठ अधिक प्रसिद्ध हैं। कन्नौजी तथा भोजपुरी पाठ प्रकाशित भी हो गए हैं। यदि अनुसंधान किया जाय तो इसके ब्रज तथा अवधी पाठों का भी पता लग सकता है।

(३) संगीत तथा नृत्य का अभिन्न साहचर्य—संगीत और गीत में अभिन्न साहचर्य उपलब्ध होता है। वास्तविक बात तो यह है कि संगीत के बिना गीत के रसास्वादन में आनंद ही नहीं आता। अंग्रेजी के बैलेड शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'वेलारे' से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। अतः प्रारंभिक काल में बैलेड का मूल अभिप्राय उस गीत से था जो नाचकर गाया जाता था। इसे जनसमुदाय समवेत स्वर (कोरस) में गाता था। उत्तेजनाजनक तथा पुनरावृत्तिमूलक संगीत के बिना गीत का पूर्ण आस्वादन नहीं होता[३]। संगीत ही गीत का प्राण है। यही इसकी आत्मा है।

यूरोपीय देशों में चारणों द्वारा—जिन्हें 'मिंस्ट्रेल' कहते थे—ढोल अथवा सितार बजाकर लोकगाथाओं के गाने का उल्लेख मिलता है[४]। डा० चाइल्ड ने तो

१ दैट इज ह्वाइ देयर इज नेवर एनी ऐक्चुअल करेक्ट टेक्स्ट आव् ए बैलेड प्रापर। सिंगर्स आर एलाउड टु आल्टर इट टु देअर लाइकिंग। ... नो सिंगल वर्शन मे बी रिगार्डेड ऐज 'दि राइट वन' इन ऐन ऐब्सोल्यूट सेंस। —राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, भूमिका, पृ० १३

२ कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत)

३ 'दि बैलेड इज इनकंसीट बिदाउट ऐन एक्साइटिंग ऐंड रिपीटिटिव म्यूजिक। —राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, पृ० १७

४ डा० कीट्रीज : इ० स्का० पा० बै० भूमिका।

इन चारणों के द्वारा गाए जाने से ही कुछ लोकगाथाओं को चारणगीत या 'मिंस्ट्रेल्स बैलेड' नाम से अभिहित किया है। बिशप पर्सी ने लिखा है कि इन चारणों का अनेक शताब्दियों तक एक पृथक् संप्रदाय था जो प्रतिष्ठित एवं धनीमानी व्यक्तियों के यहाँ गीत गा गाकर अपनी जीविका उपार्जन किया करता था[1]। गूमर का यह मत है कि कुछ गीत विशेष अवसरों पर बड़े प्रेम तथा उत्साह के साथ बहुत देर तक गाए जाते थे। मध्ययुग में मृत्यु के अवसर पर नृत्य तथा गीत प्रचलित थे जो स्वभावतः धीरे धीरे गाए जाते थे[2]।

इस देश में भी गीत और संगीत का अभिन्न संबंध दिखलाई पड़ता है। वर्षा के दिनों में आल्हा गाने की प्रथा प्रचलित है। अल्हैत इसे गाते समय अपने गले में ढोल बाँध लेता है और उसे पीट पीटकर जोरों से बजाता हुआ अपने भावावेश की सूचना श्रोताओं को देता है। 'आल्हा' गाने की गति में ज्यों ज्यों तीव्रता आती है त्यों त्यों ढोल बजाने की गति में परिवर्तन होता जाता है। होली के गीतों को गवैए ढोल तथा झाल बजाकर बड़े प्रेम से गाते हैं। चैता के गीत भी झाल बजाकर गाए जाते हैं। अतः उनका नाम ही 'झलकुटिया चैता' पड़ गया है। गोरखपंथी साधु गोपीचंद या भरथरी के गीत गाते समय 'सारंगी' बजाकर जनमन का अनुरंजन करते हैं। भिक्षुकगण अपनी दुरंतपूरा उदरदरी की पूर्ति के लिये भिक्षा की याचना करते समय 'कठताल' बजाकर गीत गाते हैं। गोंड जाति के लोग नृत्यगीत के अवसर पर 'हुडुका' नामक एक विशेष प्रकार के बाजे का उपयोग करते हैं। कौवाली गाते समय प्रायः 'खँजड़ी' का प्रयोग किया जाता है। संथाल लोग आवेग में आकर नाचते समय नगाड़े की आकृति का एक विशेष प्रकार का बाजा बजाते हैं। बंगाल में बाउल लोग भी अपनी स्वरसाधना में विशेष वाद्य की सहायता लेते हैं।

गीत और संगीत का संबंध इतना घनिष्ठ है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जब कोई भी वाद्ययंत्र उपलब्ध नहीं होता तब वहाँ की स्त्रियाँ काठ के बने कठौते को उलटा करके लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं। इससे एक विशेष प्रकार की

[1] बट दि मिंस्ट्रेल्स कंटीन्यूड ए डिस्टिंक्ट आर्डर आव् मेन फार मेनी एजेज आफ्टर दि नारमन कांकेस्ट ऐंड गाट देअर लाइव्लीहुड बाइ सिंगिंग वर्सेज टु दि हार्प ऐट दि हाउसेज आव् दि ग्रेट। —बिशप पर्सी : रेलिक्स आव् एंशेंट इंगलिश पोएट्री, भाग १, भूमिका, पृ० २४

[2] ., सर्टेन आव् दि बार्डर सांग्स वेअर संग लस्टिली एनफ ऐंड ऐट प्रोडिजस लेंग्थ। ...डांसेज वेअर कामन ऐट मिडीवियल फ्युनरल्स, नेचुरली टु ए लो मेजर। —एफ० बी० गूमर : दि पापुलर बैलेड, पृ० २४५

संगीतमय ध्वनि उत्पन्न होती है। इस संगीत के साथ वे गीत गाती हैं। जहाँ यह भी प्राप्त नहीं होता वहाँ वे ताली बजा बजाकर ही संगीत के अभाव की पूर्ति करती हैं। झूमर के गीत प्रायः ताली बजाकर ही गाए जाते हैं। लोकगीत सामूहिक रूप (कोरस) में गाए जाने पर ही विशेष आनंददायक होते हैं। यह बात भी उनकी संगीतात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार लोकगीतों और लोकगाथाओं का लोकसंगीत तथा लोकनृत्य से अविच्छिन्न संबंध है।

(४) स्थानीयता का प्रचुर पुट—लोकगीतों और गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें राजा और महाराजाओं के युद्धों तथा वीरता के कार्यों का वर्णन भले ही हो परंतु स्थानीय रंग इसमें गहरा होता है। यही कारण है कि जिस जनपद में जो गीत प्रचलित हैं उनमें वहाँ के लोगों की रहन सहन, रीतिरिवाज, खानपान और आचार व्यवहार का सजीव चित्रण रहता है। लोकसंस्कृति इन गीतों में अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिबिंबित दिखाई पड़ती है। राजस्थान की लोकगाथाओं में वहाँ के बलिदानी वीरों की गाथा का वर्णन बहुत सुंदर हुआ है। पाबू जी और गोगो जी के गीत इस विषय के ज्वलंत प्रमाण हैं[१]। उमादे की गाथा में राजस्थानी राजाओं की परस्त्रीप्रियता तथा सच्ची क्षत्राणी की आन तथा मान को दिव्य रूप में दिखलाया गया है। जब आसा जी नामक बारठ उमादे को समझाते हुए कहता है[२] :

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दो दो गयँद न बंधसी, एकै कंबू-ठाण॥

तब मनस्विनी उमादे 'पीव' को तो तज देती है परंतु अपने 'माण' को नहीं छोड़ती। वह सर्वदा के लिये पति का परित्याग कर गरीबी का जीवन व्यतीत करती है। मारवाड़ में यातायात का साधन ऊँट है। 'ढोला मारू रा दूहा' में मारवणी ऊँट की सवारी करती हुई दिखाई पड़ती है। इस ग्रंथ में ऊँट–करहा– का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है[३]।

बिहार राज्य की लोकगाथाओं में वीराग्रणी कुँअरसिंह के अद्भुत पराक्रम का वर्णन पाया जाता है। इनकी वीरता की कहानी बड़ी लोकप्रिय है तथा गाँव गाँव में प्रचलित हैं :

[१] पारीक : राजस्थान के लोकगीत, भाग १, उत्तरार्ध, पृ० ५२३, ५२७
[२] वही, पृ० ५३५–३८
[३] ढोला मारू रा दूहा।

बाबू कुँअरसिंह आज तोरे बिना,
हम ना रंगाइबि चुनरिया।

इस गीत को स्त्रियाँ आज भी बड़े प्रेम से गाया करती हैं। मैथिली लोकगीतों में मिथिला की अनेक सामाजिक प्रथाओं का उल्लेख हुआ है। उत्तरप्रदेश के पहाड़ी जिलों—नैनीताल, अलमोड़ा—में सर्दी अधिक पड़ती है। अतः वहाँ के लोगों के लिये थोड़ी सी भी गर्मी असह्य हो जाती है। कोई पर्वतीय कन्या अपने पिता से प्रार्थना करती हुई कहती है कि आप मेरा विवाह छानाबिलौरी नामक स्थान में मत कीजिएगा क्योंकि वहाँ गर्मी बहुत अधिक पड़ती है। वहाँ खेतों में काम करते समय पसीने के कारण मेरी अँगिया भीग जायगी[1]। यह गीत इस प्रकार है :

छानाबिलौरी जनि दिया बौज्यू,
लागला बिलौरी का घामा॥
हाथ की दातुँली हाथ में रौली,
लागला बिलौरी का घामा॥

बन जूली बनै रूँली, घर जूली घरै रूँली।
पसीणा ले तर हूली, लाज कसिकै बचूली॥ टेक
नई दुलहिन हूँली, मैं परदा में रूँली,
पसीणा ले तर हूँली, लाज कसिकै, बचूली॥
छानाबिलौरी जनि दिया बौज्यू,
लागला बिलौरी का घामा॥

(५) **मौखिक प्रवृत्ति**—लोकगाथाएँ चिरकाल से मौखिक परंपरा के रूप में चली आ रही हैं। प्राचीन काल में वेदों के अध्ययन की परंपरा भी मौखिक ही थी। गुरु अपने अंतेवासी को मौखिक रूप से ही वेदों की शिक्षा देता था। इसीलिये इन्हें 'श्रुति' की संज्ञा दी गई है। कालांतर में श्रुति ने लिपि का आश्रय ग्रहण कर लिया। परंतु लोकगाथाएँ आज भी अपनी मौखिक परंपरा को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। गोपीचंद और भरथरी के गीत गोरखपंथी साधुओं की गुरु-शिष्य-परंपरा द्वारा आज भी सुरक्षित हैं। राजस्थान के वीर पुरुषों के अलौकिक पराक्रम की गाथा को स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय वहाँ के चारणों को प्राप्त है। लोरकी, विजयमल, सोरठी आदि के गीतों को लोकगायकों ने कालकवलित होने से बचाया है। बिहार के प्रसिद्ध लोककवि भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' नाटक का प्रचार

[1] लेखक का निजी संग्रह।

उनके शिष्यों ने किया है। गुरु गुग्गा की विख्यात लोकगाथा को व्रज के लोकगायकों ने बचा रखा है। ढोला मारू की गाथा की रक्षा अनेक शताब्दियों तक मौखिक रूप में ही होती रही।

लोकगाथा तभी तक सुरक्षित रहती है जब तक उसकी परंपरा मौखिक होती है। लिपिबद्ध करते ही उसकी गति और प्रगति रुक जाती है। उसकी वृद्धि तथा विकास अवरुद्ध हो जाता है। इस विषय में सिजविक का कथन नितांत सत्य है कि यदि किसी गाथा को आपने लिपिबद्ध कर लिया तो निश्चित रूप से इसे स्मरण रखिए कि आपने उसकी हत्या करने में सहायता पहुँचाई है। जब तक लोकगाथा मौखिक रूप में है तभी तक उसमें जीवनी शक्ति है[1]। प्रोफेसर गूमर ने मौखिक परंपरा को लोकगीतों और गाथाओं की सच्ची कसौटी बतलाया है[2]। डा० वेरियर एल्विन का मत है कि गीतों को लिपि की शृंखला में बाँधने पर उनका विकास नष्ट हो जाता है। अतः लोकसाहित्य के प्रेमी इनका संग्रह कर बड़ा अपकार करते हैं[3]।

(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव—लोकगाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का प्रायः अभाव पाया जाता है। जिस प्रकार संस्कृत में 'नीतिशतक' और हिंदी में रहीम की नीति संबंधी कविताएँ मिलती हैं उस प्रकार के नीतिवचन गाथाओं में नहीं पाए जाते। इनकी प्रवृत्ति कथानक को गति प्रदान करने की है, न कि उपदेशकथन की। राबर्ट ग्रेव्स का मत है कि गाथाएँ नीति या सदाचार की शिक्षा नहीं प्रदान करतीं और न वे पृथकत्व की भावना का ही प्रचार करती हैं। यदि गाथाओं में ये बातें उपलब्ध हों तो यह समझना चाहिए कि चारण अपने समुदाय या समाज से बाहर चला गया है तथा वह सभ्यता के संपर्क में है। पक्षपात की भावना का समुदाय के कार्य से सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता[4]।

[1] इन दि ऐक्ट आव् राइटिंग ईच वन (बैलेड) डाउन, यू मस्ट रिमेंबर दैट यू आर हेल्पिंग टु किल दैट बैलेड। 'विरूम वोलितरे पर ओरा' इज दि लाइफ आव् ए बैलेड। इट लिव्स ओनली ह्वाइल इट रिमेंस ह्वाट दि फ्रेंच बिद ए चार्मिंग कनफ्यूजन आव् आइडियाज, काल ओरल लिटरेचर।—फ्रैंक सिजविक : दि बैलेड, पृ० ३६

[2] दीज आर दि कार्डिनल वर्चूज आव् दि बैलेड। विद रेस्पेक्ट टु इट्स कंडिशंस क्रिटिक्स यूनाइट इन रिगार्डिंग ओरल ट्रांसमिशन ऐज इट्स चीफ एवेलेबुल टेस्ट।—गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० २६

[3] फोक सांग्स आव् मैकल हिल्स, भूमिका।

[4] दि बैलेड प्रापर डज नाट मारेलाइज आर प्रीच आर एक्सप्रेस एनी स्ट्रांग पार्टिजन बायस।......मारेलाइजिंग आर प्रीचिंग इन ए बैलेड इज ए साइन दैट दि बार्ड इज डेफिनिटली आउट्साइड दि ग्रूप ऍंड इज इन टच विद कल्चर। ए पार्टीजन बायस इज इनकंपैटिबुल विद ग्रूप ऐक्शन।—राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, पृ० ८१

परंतु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि लोकगीतों तथा गाथाओं से हम कुछ उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। इनमें देशभक्ति, गुरुजनों की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य एवं प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनसे उपदेश या शिक्षा ली जा सकती है। गाथाओं में नीति की अभिव्यंजना अवश्य उपलब्ध होती है परंतु इसका स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं पाया जाता। कुसुमादेवी और भगवती देवी के गीतों से उनके अलौकिक सतीत्व और आदर्श आचरण की शिक्षा हमें अवश्य प्राप्त होती है, परंतु लोककवि ने इसे गोपनीय रखा है। आल्हा की लोकगाथा हमें देशभक्ति, माता की आज्ञा का पालन, स्वावलंबन आदि का पाठ पढ़ाती है। बिहुला के गीत में पतिपत्नी के आदर्श एवं अलौकिक प्रेम का वर्णन किया गया है। परंतु लोककवि ने इन वस्तुओं के वर्णन में अभिधा का प्रयोग न कर व्यंजना शक्ति को ग्रहण किया है।

(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता—लोकगाथा अलंकृत काव्य (आरनेट पोएट्री) से सर्वथा भिन्न है। अलंकृत कविता किसी कलाकार की कृति होती है जो अपनी रचना को सुंदर बनाने के लिये विभिन्न रस, अलंकार, रीति और गुणों की योजना करता है। वह अपने काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का निरूपण कर उसे किसी विशेष छंद के साँचे में ढालने का प्रयास करता है। वह विभाव, अनुभाव और विभिन्न संचारियों का विधान कर विविध रसों का आस्वादन अपने पाठको को कराना चाहता है। ऐसे काव्य को अलंकृत काव्य कहा जाता है। इसकी रचना कुशल कवि प्रयासपूर्वक करता है परंतु लोकगाथाएँ, जो जनता की कविता (पोएट्री आव् दि पीपुल) कही जाती हैं, इससे नितांत भिन्न हैं। इनमें अलंकारविधान और गुणों की योजना का प्रायः अभाव होता है। यदि कहीं अलंकारों की स्थिति दिखाई भी पड़ती है तो उनका संनिवेश अनायासपूर्वक समझना चाहिए।

लोकगाथाएँ रचनाविधान (टेक्नीक) की दृष्टि से बहुत अधिक समृद्ध नहीं होतीं। यहाँ रचनाविधान से हमारा तात्पर्य छंदों की योजना, अलंकारों के प्रयोग, कल्पना की ऊँची उड़ान और विभिन्न भावों के संनिवेश से है[1]। पिंगल शास्त्र के

[1] इट हैज बीन नोटेड दैट दि बैलेड प्रापर इज नाट हाइली ऐडवांस्ड इन टेक्नीक। बाइ 'ऐडवांस्ड टेक्नीक' इज मेंट कांसिकेटेड वर्स फार्म्स, दि इनजीनियस यूस आव् मेटाफर ऐंड एलिगोरी ऐंड ए प्रेजेंटेशन आव् आइडियाज ह्विच इज 'पोएटिकल' बिफोर इट इज पोएटिक, 'आर्टिस्टिक' बिफोर इट इज इमैजिनेटिव, 'म्यूजिकल' बिफोर इट इज इंटेंडेड फार सिंगिंग। —राबर्ट ग्रेव्स : दि इंगलिश बैलेड, भूमिका, पृ० २०

नियमों के अनुसार लोकगाथा को नाप तौलकर रखने की आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि इनमें छंदशास्त्र के विधिनिषेधों का पालन नहीं किया जाता। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अलंकृत काव्य से लोककाव्य के पार्थक्य को बतलाते हुए लिखा है[1] कि—'ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्यनिर्मित। ...ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है; छंद नहीं, केवल लय है; लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।'

हिंदी के रीतिकालीन कवियों ने जैसे पेचीदे मजमून बाँधे हैं उनका लोकगाथाओं में सर्वथा अभाव है। कथावस्तु का सरल रीति से वर्णन करना ही इनकी विशेषता है। इस प्रकार भाषा तथा भाव इन दोनों दृष्टियों से लोककाव्य अलंकृत कविता से पृथक् है।

(८) रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव—अलंकृत काव्य में उसके लेखक का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित रहता है। विद्वानों का यह मत है कि किसी कवि की शैली में उसके व्यक्तित्व की छाप दिखाई पड़ती है[2]। अतएव किसी कलात्मक कृति में उसके रचयिता के व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। परंतु लोकगाथाओं में लोककवि के व्यक्तित्व का अभाव पाया जाता है। पहले तो इन गाथाओं का रचयिता कोई एक व्यक्तिविशेष नहीं होता और दूसरे यदि होता भी है तो वह अपने व्यक्तित्व को पृष्ठभूमि में रखकर लोककाव्य की रचना करता है। अतएव उसके व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी रचनाओं पर नहीं पड़ता। गाथाओं के रचयिताओं का कोई विशेष महत्व नहीं होता। वे वर्तमान काल में उपस्थित नहीं रहते हैं और अतीत युग में उनका अस्तित्व था या नहीं, इस विषय में भी हमारा मन संदेह की दोला पर दोलायमान रहता है।

जहाँ तक श्रोताओं पर प्रभाव उत्पन्न करने का प्रश्न है लोककवि का उसमें विशेष हाथ नहीं होता। लोकगाथाओं का रचयिता केवल अदृश्य ही नहीं होता बल्कि उसकी सत्ता भी संदेह की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाती। कथा के

[1] पं० रामनरेश त्रिपाठी : कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत), ग्रामगीतों का परिचय, पृ० ६।

[2] इन दि बैलेड इट इज नाट सो। देअर दि आथर इज आव् नो एकाउंट। ही इज नाट ईविन प्रेजेंट। वी डू नाट फील श्योर दैट ही एवर एक्जिस्टेड।' —प्रो० कीट्रीज : इं० स्का० पा० बै०, भूमिका, पृ० ११

कहनेवाले का उसमें (कथा में) कोई विशेष भाग नहीं होता। अन्य गीतों की भाँति इसमें गायक के विचारों तथा भावनाओं की झाँकी उपलब्ध नहीं होती। इनमें उत्तम पुरुष (मैं) का प्रयोग नहीं पाया जाता। गाथाओं का रचयिता या गायक न तो कोई निजी विचार प्रकट करता है और न किसी वस्तु की आलोचना ही करता दिखाई पड़ता है। नाटक के विभिन्न पात्रों के संबंध में वह किसी के पक्ष या विपक्ष में अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना नहीं करता। यदि ऐसी किसी कथा की कल्पना की जा सकती हो जो वक्ता के बिना ही अपनी कहानी स्वतः कहे तो ऐसी कथा लोकगाथा ही हो सकती है[1]।

सिजविक का मत है कि किसी भी भाषा की लोकगाथा का सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ गुण उसका व्यक्तित्व नहीं प्रत्युत उसकी व्यक्तित्वहीनता है। इसमें किसी विद्वान् को विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती। परंतु हमको झटपट इस नतीजे पर नहीं पहुँच जाना चाहिए कि लोकगाथा का लेखक कोई व्यक्ति था ही नहीं। ऐसा संभव है कि अनेक कलात्मक कृतियाँ मौखिक परंपरा की प्रक्रिया के कारण अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर दें[2]। कीट्रीज ने लोकगाथा (बैलेड) की परिभाषा का निरूपण करते हुए 'व्यक्तित्वहीनता' को इसकी प्रधान विशेषता बतलाया है। गूमर ने बैलेड के प्रधान तत्वों की आलोचना करते समय लिखा है कि परंपरा, विषय की प्रधानता तथा व्यक्तित्वहीनता से युक्त इन गाथाओं में एक निश्चित कथावस्तु भी होती है।

[1] नाट ओनली इज दि आथर आव् ए बैलेड इनविजिबुल बट प्रैक्टिकली नान-एक्जिस्टेंट। दि टेलर आव् दि टेल हैज नो रोल इन इट। अनलाइक अदर सांग्स, इट डज नाट परपर्ट टु गिव अटरेंस टु दि फीलिंग आर मूड आव् दि सिंगर। दि फर्स्ट परसन डज नाट अकर ऐट आल; देअर आर नो कमेंट्स आर रिफ्लेक्शंस बाइ दि नरेटर। ही डज नाट टेक साइड्स फार आर अगेंस्ट ऐनी आव् दि ड्रैमेटिस्ट परसोनेल। ××× दि स्टोरी एक्जिस्ट्स फार इट्स ओन सेक। इफ इट वेअर पासिबुल टु कनसीव ए टेल ऐज टेलिंग इटसेल्फ विदाउट दि इंस्ट्रूमेंटैलिटी आव् ए कांशस स्पीकर, दि बैलेड उड बी सच ए टेल। —प्रो० कीट्रीज : इ० स्का० पा० बै०, भूमिका पृ० १०

[2] दि फर्स्ट ऐंड दि फोरमोस्ट क्वालिटी आव् दि बैलेड इन एनी लैंग्वेज इज नाट इट्स परसनैलिटी बट इट्स इंपरसनैलिटी। देअर कैन बी नो डिसऐग्रीमेंट एबाउट दैट। बट वी नीड नाट ऐटवंस जंप टू दि कंक्लूजन दैट दि आथर वाज नो परसन। इट इज कंसीवेबुल दैट ऐन आर्टिस्टिक कंपोजिशन माइट एक्वायर इन दि प्रोसेस आव् ओरल ट्रैडिशन, ए सिमिलर इंपरसनैलिटी। —फ्रैंक सिजविक : दि बैलेड, पृ० ११

अर्थात् इनमें मौखिक परंपरा के साथ ही वस्तुवर्णन की प्रधानता होती है जिसमें लेखक के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता[1]।

हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, मराठी तथा बंगला आदि भाषाओं में जो अनेक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं उनके अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि उनमें उनके रचयिताओं के व्यक्तित्व की छाप का अभाव है। लोकगाथाओं में कथा की प्रधानता होती है जिसके द्रुत प्रवाह में लेखक का व्यक्तित्व विलीन हो जाता है।

(९) लंबे कथानक की मुख्यता—लोकगाथाओं की एक अन्य विशेषता है इनकी कथावस्तु की लंबाई। गाथाओं का आख्यान बड़ा लंबा होता है। कोई कोई तो काव्य की उत्कृष्टता में न सही, लंबाई में महाकाव्यों से भी स्पर्धा करते हैं। भोजपुरी आल्हा रायल साहब के ६२० पृष्ठों में छपकर प्रकाशित हुआ है जिसके प्रत्येक पृष्ठ में लगभग ३० पंक्तियाँ हैं। ढोला मारू की राजस्थानी गाथा भी कुछ कम लंबी नहीं है। विजयमल, सोरठी, लोरकी तथा भरथरी के गीत किसी महाकाव्य से आकार में छोटे नहीं हैं। डा० ग्रियर्सन ने विजयमल की अपूर्ण गाथा को ८०० पंक्तियों में प्रकाशित किया है[2]। इसी प्रकार इन्होंने आल्हा के केवल विवाह की कथा को १३०० पंक्तियों में संग्रहीत किया है।

अंग्रेजी में छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के बैलेड उपलब्ध होते हैं। परंतु इनमें राबिनहुड संबंधी बैलेड बहुत लंबे हैं। 'ए जेस्ट आव् राबिनहुड' शीर्षक लोकगाथा सात सर्गों में गाई गई है जिसमें ४५६ पद्य (स्टेंजा) पाए जाते हैं। इसी प्रकार 'राबिन हुड एंड टेन मांक' की कथा ९० पद्यों में तथा 'राबिन हुड्स डेथ' की गाथा ७० पद्यों में समाप्त हुई है[3]।

समय की गति के साथ ही लोकगाथाओं में परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। अतएव जो गाथा जितनी ही प्राचीन होगी उसका आकार उतना ही बड़ा होता जायगा।

(१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति—लोकगाथाओं की सर्वप्रधान विशेषता टेक पदों की पुनरावृत्ति है। गाते समय गीतों की जितनी ही अधिक बार आवृत्ति की जाय उनका आनंद उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। गीत तथा संगीत के

[1] ट्रैडिशनल, आब्जेक्टिव, इंपरसनल ऐज दे आर, बैलेड्स मस्ट आलसो टेल् ए डेफिनिट टेल। —गूमर : दि पापुलर बैलेड, पृ० ६६

[2] ज० ए० सो० बं०, संख्या ५३ (सन् १८८४ ई०), भाग ३, पृ० ९४

[3] गूमर : ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स, ९० १-९३

अभिन्न साहचर्य का उल्लेख पहले किया जा चुका है। टेक पदों की आवृत्ति से लोकगीतों में संगीतात्मकता की मात्रा में अतिशय वृद्धि होती है। इस कारण श्रोताओं का हृदय आनंदसागर में निमग्न होने लगता है। सिजविक के मतानुसार टेक पद लोकगाथाओं की वह विशेषता है जिससे पता चलता है कि ये गीत सामूहिक रूप (कोरस) में पहले गाए जाते थे। प्रधान गवैया जब गीत की एक कड़ी गाता है तब उस समुदाय के दूसरे लोग एक साथ मिलकर टेक पदों की आवृत्ति करते हैं[1]। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान काल में समवेत स्वर से गीत गाने की प्रवृत्ति इसी परंपरा को सूचित करती है। गूमर ने लिखा है कि टेक पद लोकगाथाओं का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है[2]। फर्डिनेंड उल्फ के विचार से टेक पद उतना ही प्राचीन है जितना कि जनता की कविता। भोज, नृत्य, खेल तथा पूजा आदि अवसरों पर समस्त जनता द्वारा गाए जानेवाले गीतों से इनकी उत्पत्ति हुई है। श्रेष्ठ कवियों ने अपने काव्यों में इस परंपरा का अनुसरण किया है[3]। कीट्रीज ने भी इन्हें लोकगीतों तथा गाथाओं की प्रधान विशेषता के रूप में स्वीकार किया है[4]।

(अ) महत्व—इन टेक पदों का प्रधान उद्देश्य लोकगीतों को जीवन प्रदान कर श्रोताओं के हृदय पर अमिट प्रभाव उत्पन्न करना है। लोकगाथाएँ सामूहिक रूप (कोरस) में गाने की वस्तु हैं। प्राचीन काल में इन गीतों को गवैयों के दल का नेता गायक पहले गाता था तथा बाद में दल के शेष लोग उसका अनुसरण करते थे। पहले नेता एक पद गाता था, बाद में जनता गीत के टेक पद अथवा पदों को दुहराती थी। इससे गवैए की नीरसता दूर हो जाती थी क्योंकि श्रोताओं द्वारा दुहराए जाने के कारण उस गाथा में नवीन जीवन का संचार हो जाता था[5]।

१ दि रिफ्रेन इज ऐनदर पिक्युलिऐरिटी आव् दि पापुलर बैलेड दैट स्टैब्लिशेज इट्स डेरिवेशन फ्राम दि कोरल सांग। दि रेस्ट शैल वेअर दिस बर्डेन। दि सिंगर्स मोनोटोन इज रेगुलर्ली रिलीव्ड बाइ दि आडियंस ज्वाइनिंग इन विद ए रिपीटेड फ्रेज।—सिजविक : दि बैलेड, पृ० २७

२ गूमर : ओल्ड इंगलिश बैलेड्स, भूमिका, पृ० ८३

३ वही, पृ० ८३

४ ह्वाट इज मेंट इज रादर दैट देयर इज एबनडंट एविडेंस फार गार्डिंग दि रिफ्रेन इन जेनरल ऐज ए कैरेक्टेरिस्टिक फीचर आव् बैलेड पोएट्री।—प्रो० कीट्रीज : इं० स्का० पा० बै०, भूमिका, पृ० २१

५ सिजविक : दि बैलेड, पृ० २७

आजकल भी होली और चैता के गीत गाते समय गवैयों के दो दल हो जाते हैं। पहला दल किसी गीत की एक पंक्ति गाता है तो दूसरा दल उसके टेक पद की आवृत्ति करता है। मिर्जापुर तथा वाराणसी में कजली गानेवालों के दो दल जब मधुर कंठ से आवृत्ति के साथ इन गीतों को गाते हैं तब एक समाँ बँध जाता है। गीतों के टेक पदों को बारंबार गाने का एक उद्देश्य श्रोताओं पर प्रभाव उत्पन्न करना भी है। यही कारण है कि कविगण अपनी मधुर तथा सुंदर कविता को अनेक बार पढ़ते हैं। लोकगीतों की पंक्तियाँ जितनी ही अधिक बार दुहराई जायँ उनकी मनोरमता उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है। फुटबाल के मैच में दर्शकगण जब प्रसन्न होकर 'हुर्रे', 'हुर्रे' कहते हैं तब उनका अभिप्राय खेलाड़ियों को प्रोत्साहित कर खेल में अधिक जोश उत्पन्न करना ही होता है[1]। रस्साकशी और कबड्डी के खेल में 'ले लिया', 'ले लिया' और 'शाबाश', 'शाबाश' आदि जोर से चिल्लानेवाली जनता खेल में उत्साह तथा प्रभाव उत्पन्न करने के लिये ही ऐसा करती है।

(आ) बर्डेन, रिफ्रेन तथा कोरस में अंतर—लोकगाथाओं में टेक पदों की आवृत्ति अनेक प्रकार से की जाती है। अँग्रेजी बैलेड्स में आवृत्यात्मक पदावली तीन प्रकार की उपलब्ध होती है जिसे (१) बर्डेन, (२) रिफ्रेन तथा (३) कोरस कहते हैं। हिंदी भाषा में इनके लिये समुचित शब्द उपलब्ध न होने के कारण उपर्युक्त शब्दों का ही यहाँ प्रयोग किया गया है। बर्डेन और रिफ्रेन में बहुत थोड़ा अंतर है। कोरस इन दोनों से भिन्न होता है। लोकगाथाओं में बर्डेन उस मूलभूत अंश या चरण को कहते हैं जो गाथा की प्रत्येक पंक्ति के बाद गाया जाता है। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि गाथा के केवल अंत में ही इसकी आवृत्ति की जाती है[2]। इस प्रकार बर्डेन समस्त गीत में ओतप्रोत रहता है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से प्रकाशित न्यू इंग्लिश डिक्शनरी के यशस्वी संपादक डा० मरे ने इस

[1] ए मोमेंट्स रिफ्लेक्शन शुड सफाइस टु कनविंस एनी परसन, आव् दि रियल पापुलरिटी आव् रिपिटिशन ऐज मींस आव् सेक्योरिंग इफेक्टिवनेस। दि लोकल विट इन दि विलेज टैप रूम फाइंड्स दैट दि आफेनर ही सेज इट, दि मोर इट इज ऐप्रिशिएटेड। दि स्पेक्टेटर आव् दि फुटबाल मैच हू सेड 'हुर्रे', 'हुर्रे' वाज यूजिंग इनक्रिमेंटल रिपिटिशन फार दि सेक आव् इफेक्ट। —फ्रैंक सिजविक : दि बैलेड, पृ० ६०

[2] दि बर्डेन इज सम टाइम्स यूज्ड इन इट्स स्ट्रिक्टर सेंस ऐज डिफाइंड बाइ चैपहेल। दि बर्डेन आव् ए सांग इन दि ओल्ड एक्सेप्टेशन आव् दि वर्ड वाज दि फुट, बेस आर अंडर सांग। इट वाज संग थ्रूआउट ऐंड नाट मिअरली ऐट् दि एंड आव् दि वर्स। —गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ८४, पादटिप्पणी नं० ५

बृहत् कोश में बर्डेन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसे किसी गीत का टेक पद या समवेत स्वर से गेय पद (कोरस) कहा है। यह वह शब्दसमूह या पदावली है, जो प्रत्येक पद्य के बाद गाई जाती है[1]। गेस्ट के मतानुसार गीत की प्रत्येक पंक्ति के पश्चात् एक ही प्रकार के शब्दों का बार बार आना या दुहराया जाना 'बर्डेन' कहा गया है[2]।

लोकगाथाओं में कुछ टेक पदों की आवृत्ति 'बर्डेन' की भाँति प्रत्येक पंक्ति के पश्चात् नहीं होती बल्कि थोड़े थोड़े समय के पश्चात् निश्चित रूप से कुछ पद्यों के बाद होती है। इसे 'रिफ्रेन' कहते हैं। गूमर ने इसकी परिभाषा बतलाते हुए लिखा है कि निश्चत समय या स्थान के पश्चात् किसी निश्चित पदावली की पुनरावृत्ति को 'रिफ्रेन' कहते हैं। इससे प्रत्येक पद्य को अलग अलग समझने में सहायता मिलती है[3] लोकगाथाओं में निःसंदेह बार बार आनेवाला 'रिफ्रेन' वह पद्य (वर्स) है जिसे जनसमुदाय बड़े प्रेम से गाता है। मूल गीत को गाने का कार्य तो गवैयों के समुदाय का नेता करता है परंतु साधारण जनता इन्हीं आवृत्तिमूलक पद्यों को गाती है। बर्डेन और रिफ्रेन के पारस्परिक संबंध को निश्चत रूप से बतलाना बड़ा कठिन है। बहुत संभव है कि 'रिफ्रेन' भी 'बर्डेन' की ही भाँति रहे हों और वे भी जनता के द्वारा गीत के साथ लगातार गाए जाते रहे हों। 'रिफ्रेन' में एक ही पद या पदावली की बार बार आवृत्ति होती है। इसको गूमर ने वृद्धिपरक आवृत्ति (इन्क्रिमेंटल रिपिटिशन) की संज्ञा दी है। रिफ्रेन की उत्पत्ति के विषय में गूमर का यह मत है कि नृत्य, खेल और काम करते समय जनसाधारण के सामूहिक गान से इनका प्रादुर्भाव हुआ है। यही सभी प्रकार की कविता का, चाहे वह अलंकृत काव्य हो अथवा लोककाव्य, आवश्यक मूलभूत तत्व है। लोकसाहित्य की मौखिक परंपरा में इसकी स्थिति आवश्यक है[4]। कोरस उस समस्त पद्य (होल स्टैंजा) को

१ दि रिफ्रेन आर दि कोरस आव् ए सांग इज ए सेट आव् वर्ड्स रेकरिंग ऐट दि एंड आव् ईच वर्स। —न्यू० इ० डि०।

२ गेस्ट डिफाइंस बर्डेन ऐज दि रिटर्न आव् दि सेम वर्ड्स ऐट दि क्लोज आव् ईच स्टेव। —इंग्लिश राइम्स, भाग २, पृ० २९०

३ दि रिफ्रेन इज दि रिपिटिशन आव् ए सर्टेन पैसेज ऐट रेगुलर इंटरवल्स ऐंड इज दस आव् सर्विस इन दि मेकिंग आव् ए स्टैंजा। —गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ८५, पादटिप्पणी।

४ दि रिफ्रेन इज इनकनटेस्टेब्ली स्प्रंग फ्राम सिंगिंग आव् दि पीपुल ऐट डांस, से ऐंड वर्क, गोइंग बैक टु दैट कोरल रिपिटिशन ह्विच सीम्स टु हैव बीन दि प्रोटोप्लाज्म आव् आल पोएट्री। रिफ्रेन्स, आव् कोर्स, होल्ड फास्ट इन ओरल ट्रेडीशन।

कहते हैं जो लोकगाथा के प्रत्येक पद्य के बाद गाया जाता है[1]। स्थूल रूप में बर्डेन, रिफ्रेन तथा कोरस में यही अंतर समझना चाहिए।

(घ) लोकगाथाओं का वर्गीकरण—लोकगाथाओं का वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है : (१) आकार की दृष्टि से, तथा (२) विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से विचार करने पर ये गाथाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं—(१) लघु, और (२) बृहत्। लघु गाथाएँ वे हैं जिनका आकार छोटा है, जैसे भगवतीदेवी और कुसुमादेवी की गाथाएँ। बृहत् गाथाएँ प्रबंधात्मक काव्यों के समान बड़ी होती हैं जिनको लिपिबद्ध करने में सैकड़ों पृष्ठ लग सकते हैं। हीर राँझा, ढोला मारू, राजा रसालू और आल्हा ऊदल की गाथाएँ बड़ी विस्तृत हैं जिनकी तुलना किसी भी प्रबंध काव्य से की जा सकती है।

(१) डा० उपाध्याय का वर्गीकरण—लोकगाथाओं का वास्तविक वर्गीकरण विषय की दृष्टि से ही किया जा सकता है। इन गाथाओं में जिन विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है उन्हीं के आधार पर इनका विभाजन समुचित प्रतीत होता है। इस प्रकार डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार लोकगाथाओं का विभाजन प्रधानतया निम्नांकित तीन भागों में किया जा सकता है :

(१) प्रेमकथात्मक गाथाएँ (लव बैलेड्स)
(२) वीरकथात्मक गाथाएँ (हिरोइक बैलेड्स)
(३) रोमांचकथात्मक गाथाएँ (रोमैंटिक बैलेड्स)

प्रेम मानव जीवन का प्राण है। यह उसकी आत्मा है। अतः इन प्रेम-गाथाओं में प्रेम संबंधी घटनाओं का उल्लेख होना स्वाभाविक है। यह प्रेम साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत विषम वातावरण में जन्म लेता है और उसी में पलता है। फलस्वरूप इसमें संघर्ष भी दिखाई पड़ता है। 'कुसुमादेवी', 'भगवतीदेवी' और 'लचिया' की गाथाएँ ऐसी ही हैं जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। बिहुला की गाथा प्रेम का प्रबंधकाव्य है जिसमें बिहुला से विवाह करने के लिये अनेक नवयुवक अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। अंत में बाला लखंधर नामक व्यक्ति उसके प्रेम को जीतने में समर्थ होता है। शोभा नयकवा बनजारा भी एक दूसरा प्रणयाख्यान है जिसमें पति पत्नी के उभय पक्षों—संयोग और वियोग—का वर्णन बड़ी ही रोचक तथा मर्म-स्पर्शी भाषा में किया गया है। भरथरीचरित में अपने गुरु के उपदेश से राजा भरथरी

[1] दि कोरस वाज ए होल स्टैंजा संग आफ्टर ईच न्यू स्टैंजा आव् दि बैलेड। —गूमर : ओ० इ० बै०, भूमिका, पृ० ८५, पादटिप्पणी।

के घर छोड़कर जंगल में चले जाने का वर्णन पाया जाता है। उनके विरह में दुःखी उनकी वियोगविधुरा पत्नी का जो चित्र अंकित किया गया है वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। राजस्थान में प्रचलित ढोला मारू की गाथा प्रेम का वह अजस्र स्रोत है जिसमें अवगाहन कर पाठक अतिशय आनंद प्राप्त करता है। मारवणी का प्रेम अनन्य एवं अलौकिक है जिसकी समता आज के युग में उपलब्ध नहीं हो सकती। पंजाब में प्रसिद्ध हीर राँझा की प्रेमगाथा किस व्यक्ति के हृदय को रसमग्न नहीं कर देती? इसी प्रकार की गुजराती गाथा शुद्ध एवं स्वाभाविक प्रेम का ज्वलंत उदाहरण है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही प्रेम की धधकती ज्वाला में अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं।

अँग्रेजी साहित्य में भी प्रेमगाथाओं की प्रचुरता पाई जाती है जिससे वहाँ की सामाजिक परिस्थिति का पता चलता है। निर्दय भाई (क्रूएल ब्रदर) नामक एक ऐसी ही प्रेमगाथा है जिसमें कोई बहन अपने भाई की आज्ञा के बिना अपने प्रेमी से विवाह कर लेती है।

(२) दूसरे प्रकार की गाथाएँ वीरकथात्मक हैं जिनमें किसी वीर के साहसपूर्ण और शौर्यसंपन्न कार्य का वर्णन होता है। इन कथानकों में कोई वीर पुरुष किसी आपद्ग्रस्त अबला का उद्धार करता हुआ दिखाई पड़ता है अथवा वीरता से अपने शत्रुओं का सामना करता हुआ, न्यायपक्ष की विजय के लिये लड़ाई में जूझता हुआ हमारे सामने उपस्थित होता है। अलौकिक वीरता का वर्णन करना ही इन गाथाओं का चरम लक्ष्य है। कहीं पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिये भीषण संग्राम का वर्णन उपलब्ध होता है तो कहीं मातृभूमि के उद्धार के लिये शत्रुओं से लड़ने का विवरण पाया जाता है।

वीरगाथाओं में 'आल्हा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इन दोनों वीर भाइयों—आल्हा और ऊदल—ने किस प्रकार अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये महाप्रतापी सम्राट् पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह घटना इतिहास के पाठकों से छिपी हुई नहीं है। 'लोरिकायन' नामक गाथा में लोरकी की जीवनकथा, विवाह और वीरता का मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है। कुँवर विजयी, जिसको विजयमल भी कहते हैं, की गाथा भोजपुरी प्रदेश में प्रसिद्ध है। यह अपने समय का विख्यात वीर था जिसके सामने शत्रुगण लड़ाई के मैदान में कभी टिक नहीं सकते थे। इसके साहसपूर्ण कार्यों की गाथा उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में बड़े चाव से गाई जाती है।

गुजरात में राणकदेवी और सिद्धराज की वीरगाथा प्रसिद्ध है। राणकदेवी जूनागढ़ के राजा की स्त्री थी। अनहिलवाड़ पाटन के राजा सिद्धराज जयसिंह ने उसपर आक्रमण किया और उसे परास्त कर उसकी परम सुंदरी स्त्री राणकदेवी को

छीन लिया। यह वीरगाथा गुजरात में बड़ी प्रसिद्ध है और श्रोतागण इसे बड़े प्रेम से सुनते हैं। राजस्थान सदा से वीरप्रसू भूमि रही है। यहाँ जिस प्रकार ढोला मारू की प्रेमगाथा प्रचलित है उसी प्रकार पाबू जी की वीरगाथा भी विख्यात है[1]। यदि खोज की जाय तो भारत के प्रत्येक प्रांत में ऐसी गाथाओं की प्रचुरता से उपलब्धि हो सकती है।

तीसरे प्रकार की गाथाएँ वे जिनमें रोमांच, रोमांस और अलौकिकता पाई जाती है। इसके अंतर्गत सोरठी की सुप्रसिद्ध गाथा आती है। सोरठी एक साधारण घर की लड़की थी जो विवाह के पहले ही पैदा हो जाने के कारण लोकलाज से अपने मातापिता द्वारा परित्यक्त कर दी गई थी। उसकी माता ने उसे पालने में सुलाकर नदी में प्रवाहित कर दिया। परंतु 'जाको राखै साइयाँ मारि न सकिहैं कोय।' सोरठी पालने में पड़ी हुई नदी में बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे बेगवती नदी में बहती हुई देखा। नदी की धारा में से उसे निकालकर, घर लाकर वह उसे पालने पोसने लगा। धीरे धीरे युवावस्था प्राप्त करने पर सोरठी का विवाह हो गया।

सोरठी की यह कथा इतनी अलौकिक और रोचक है कि पढ़ते समय ऐसा ज्ञात होता है मानो कोई 'रोमांस' पढ़ रहे हों। अँग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की अनेक गाथाएँ हैं जिनमें रोमांस का पुट अत्यधिक उपलब्ध होता है। राबिन हुड से संबंधित गाथाओं में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है।

(२) प्रो० कीट्रीज का वर्गीकरण—अँग्रेजी लोकसाहित्य के प्रकांड विद्वान् तथा यशस्वी संपाकक प्रो० कीट्रीज ने लोकगाथाओं को दो भागों में विभक्त किया है।

(क) चारण गाथाएँ (मिंस्ट्रेल बैलेड्स)

(२) परंपरागत गाथाएँ (ट्रेडिशनल बैलेड्स)

मध्यकालीन यूरोप में चारण लोग राजदरबारों में जाकर लोकगाथाएँ गाया करते थे तथा इस प्रकार अपनी जीविका चलाते थे। ये गाथाओं को स्वयं बनाते और गाते फिरते थे। अतः इन चारणों द्वारा बनाए तथा गाए जाने के कारण ही इनका नाम 'चारणगाथाएँ' पड़ गया। बिशप पर्सी ने अपने ग्रंथ में चारणों द्वारा लोकगाथाओंकी उत्पत्ति की विवेचना बड़े विस्तार के साथ की है[2]।

[1] हिं० सा० बृह०, भाग १६, पृ० ४३३

[2] बिशप पर्सी : रेलिक्स आव् एनशेंट इंग्लिश पोएट्री, भूमिका।

परंपरागत गाथाओं से प्रो० कीट्रीज का अभिप्राय उन गाथाओं से है जो चिरकाल से चली आ रही हैं और जिनका प्रचार और प्रभाव आज भी अक्षुण्ण बना हुआ है। १७वीं शताब्दी में इन प्रकाशित गाथाओं की बड़ी माँग थी। अनेक व्यवसायी लोग इन गाथाओं को एकत्र कर एक पृष्ठ के लंबे पत्रों में इन्हें प्रकाशित करवाते थे[1]। ये ही गाथाएँ कालांतर में परंपरागत गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध हो गईं।

(३) प्रो० गूमर का श्रेणीविभाजन—लोकसाहित्य के प्रामाणिक विद्वान् प्रो० गूमर ने लोकगाथाओं का वर्गीकरण निम्नांकित छः श्रेणियों में किया है :

(१) प्राचीनतम गाथाएँ (ओल्डेस्ट बैलेड्स)
(२) कौटुंबिक गाथाएँ (बैलेड्स आव् किनशिप)
(३) शोकपूर्ण एवं अलौकिक गाथाएँ
    (कोरोनेच ऐंड बैलेड्स आव् दि सुपरनेचुरल)
(४) निजंधरी गाथाएँ (लीजेंडरी बैलेड्स)
(५) सीमांत गाथाएँ (बार्डर बैलेड्स)
(६) आरण्यक गाथाएँ (ग्रीन उड बैलेड्स)

(१) प्राचीनतम गाथाओं में समस्यामूलक गाथाओं (रिडिल बैलेड्स) का स्थान सर्वप्रथम है। ये अनंत काल से चली आ रही हैं। इनकी उत्पत्ति संभवतः ग्रीस देश से हुई। ये गाथाएँ प्रधानतया आकाश, पृथ्वी, और ऋतुओं से संबद्ध होती हैं। प्राचीन काल में ये समस्यामूलक गाथाएँ सामूहिक रूप से प्रश्न और उत्तर के रूप में गाई जाती थीं। पद्य में ही प्रश्न किया जाता था और उसका उत्तर भी पद्य में ही दिया जाता था।

कोई धनी मानी व्यक्ति किसी विधवा स्त्री की सबसे छोटी पुत्री से, जो सौंदर्य में सबसे अधिक बढ़ी चढ़ी थी, उसकी परीक्षा लेते हुए यह प्रश्न पूछता है :

ह्वाट इज हायर नार दि ट्री ?
ऐंड ह्वाट इज डियर नार दि सी ?

इसी प्रकार वह प्रश्नों की झड़ी लगाता हुआ अंत में उससे पूछता है कि स्त्री से भी बुरी संसार में कौन सी वस्तु है ? लड़की इसका उत्तर देती है 'शैतान।'

[1] प्रो० कीट्रीज़ : इंग्लिश ऐंड स्काटिश पाप्युलर बैलेड्स, भूमिका, पृ० २६

इसी प्रकार से रूस देश में विवाह के अवसर पर पहेलियाँ पूछने की प्रथा है। इसका एक ही उदाहरण यहाँ पर्याप्त होगा[1] :

आइ नो ए प्रेटी मेडेन,
आइ उड दैट शी वेयर माइन।
आइ विल मैरी हर इफ फ्राम ओटेन स्ट्रा,
शी विल स्पिन मी सिल्क सो फाइन।

दूसरे प्रकार के गीत घरेलू जीवन से संबद्ध हैं जिनमें किसी प्रेयसी का हरण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनमें 'रोमांस' का प्रचुर पुट होता है। 'गिल ब्रेंटन' की गाथा इसका उदाहरण है। स्काटलैंड में ऐसे बहुत से गीत उपलब्ध होते हैं। 'लोकिनवार' की गाथा इस संबंध में अत्यंत प्रसिद्ध है। इन गाथाओं में शुद्ध दांपत्य प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। परंतु कुछ ऐसे भी गीत पाए जाते हैं जहाँ प्रेमी और प्रेमिका विश्वास के पात्र सिद्ध नहीं होते। 'गे गोशवाक' नामक गाथा में कोई पक्षी किसी स्काटलैंड निवासी प्रेमी का पत्र उसकी अँग्रेजी प्रियतमा के पास पहुँचाता है जिसमें यह लिखा है कि वह अपनी प्रेयसी के प्रेम की प्रतीक्षा अब अधिक दिनों तक नहीं कर सकता। इसपर उसकी प्रेमिका उत्तर देती है कि :

बिड हिम बेक हिज ब्राइडल ब्रेड,
एंड ब्रू हिज ब्राइडल एल।

अवध में कुसुमादेवी और भगवतीदेवी के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं जिनमें उन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये अद्वितीय साहसिक प्रयास किया है। अत्याचारी मुगलों द्वारा वे पकड़ ली जाती हैं परंतु अपने प्राणों की आहुति देकर वे अपने सतीत्व पर आँच नहीं आने देतीं।

(२) कौटुंबिक गाथाएँ—इन गाथाओं में परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार का चित्रण किया गया है। बहन और भाई, सास और बहू, ननद और भावज के संबंध की बाँकी झाँकी हमें देखने को मिलती है। भारतीय लोकगीतों में बहन और भाई के दिव्य एवं आदर्श प्रेम का वर्णन उपलब्ध होता है परंतु अँग्रेजी लोकगीतों में इन दोनों का उच्चकोटि का प्रेम नहीं मिलता। 'निर्दय भाई' वाली गाथा में, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है, कोई क्रूरकर्मा निर्दय भाई अपनी बहिन के पेट में छुरा भोंक देता है जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। बहन का अपराध केवल इतना ही था कि उसने भाई से बिना पूछे ही किसी मनोवांछित युवक से अपना विवाह कर लिया था।

[1] गूमर : दि पापुलर बैलेड।

गया है। राबिन हुड बहुत उदार, दयालु एवं गरीबों का रक्षक बतलाया गया है। परंतु शासकीय कानूनों को भंग करने के कारण वह लुटेरा (आउटला) माना जाता था। अंग्रेजी लोकसाहित्य में राबिन हुड से संबंधित बीसियों गाथाएँ प्रचलित हैं। 'ग्रीन उड' में राबिन हुड के निवास करने के कारण उससे संबंधित गाथाओं का नाम ही 'ग्रीनउड बैलेड्स' पड़ गया। इसीलिये इनको 'आरण्यक गाथाओं' की संज्ञा यहाँ प्रदान की गई है।

राबिन हुड की गाथाओं की श्रेणी में 'गेस्ट आव् राबिन हुड' सबसे बड़ी गाथा है जो किसी महाकाव्य के समकक्ष मानी जा सकती है। इन गाथाओं में राबिन हुड का जो चरित्रचित्रण किया गया है वह एक लुटेरे के रूप में नहीं है बल्कि गरीब और दुःखियों के रक्षक और त्राता के रूप में चित्रित है। इसका चरित्र नितांत उदात्त, शुद्ध और दिव्य दिखलाया गया है। वह एक राष्ट्रीय वीर (नैशनल हीरो) के रूप में हमारे संमुख उपस्थित होता है। राबिन हुड संबंधी गाथाएँ इतनी अधिक हैं कि इनकी एक पृथक् श्रेणी ही बन गई है जो 'ग्रीन उड बैलेड्स' या 'आउटला बैलेड्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

रैंडोल्फ नामक एक दूसरा साहसिक व्यक्ति हो गया है जो राबिन हुड के समान ही उदार गरीबों का रक्षक और सहायक था। परंतु इसके संबंध में बहुत थोड़ी सी ही गाथाएँ उपलब्ध होती हैं।

आज से लगभग ३०–४० वर्ष पूर्व उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों, विशेषकर बिजनौर में, सुल्ताना नामक डाकू का नाम बड़ा प्रसिद्ध था। उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह धनीमानी व्यक्तियों को ही लूटता था और लूट के धन से गरीबों की सहायता करता था। बिजनौर और सहारनपुर जिलों में उसकी लोकप्रियता का संभवतः यही कारण था। इस (सुल्ताना) डाकू के संबंध में अनेक गाथाएँ उसके जीवनकाल में ही प्रचलित और प्रसिद्ध हो गई थीं जो आज भी बड़े प्रेम से सुनी और गाई जाती हैं। कुप्रसिद्ध डाकू मानसिंह के विषय में भी, जो अभी कुछ वर्ष हुए पुलिस की गोलियों का शिकार बन गया, ऐसी ही बातें कही जाती हैं। बहुत संभव है, ग्वालियर और आगरा के आसपास इसकी वीरता के गीत गाए जाते हों।

इसी शताब्दी में राजस्थान में जोरसिंह या जोरावरसिंह नाम का एक प्रसिद्ध डकैत हो गया है जिसकी वीरता के अनेक गीत उस प्रदेश में प्रचलित हैं[1]। जोरसिंह को उसके साथियों ने धोखा देकर मार डाला था। जिस दिन उसकी हत्या

[1] पारीक : रा० लो० गी०, पृ० ८३

की गई थी उसकी पहली रात को उसकी स्त्री को बुरा स्वप्न हुआ था। इसलिये उसने अपने पति को पहले से ही आगाह कर दिया था। परंतु जोरसिंह बहादुर, निडर एवं अपने साथियों पर विश्वास करनेवाला व्यक्ति था। अपने मित्रों के षड्यंत्र में पड़कर वह मारा गया। मरते समय अपनी पत्नी की सीख उसे याद आई। यहाँ तक का वृत्त तो एक गीत का विषय है। आगे चलकर जोरसिंह के वीर सुपुत्र ने किस प्रकार अपने पिता के खून का बदला उसके शत्रुओं से लिया इस घटना का वर्णन दूसरी गाथा में किया गया है[1]।

किनकेड ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक में काठियावाड़ के लुटेरों का बड़ा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे पता चलता है कि इन लोगों ने समाज में कितनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। इनकी वीरता एवं उदारता के गीत आज भी काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में बड़े चाव से गाए और सुने जाते हैं[2]।

उपर्युक्त सभी गाथाएँ 'ग्रीन उड बैलेड्स' की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। प्रोफेसर गूमर द्वारा प्रतिपादित लोकगाथाओं का यह वर्गीकरण बड़ा ही व्यापक एवं विस्तृत है। इसमें सभी प्रकार की गाथाएँ अंतर्भुक्त की जा सकती हैं।

७. लोककथाओंका विवेचन

लोकसाहित्य के अध्ययन में लोककथाओं का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। व्यापकता तथा प्रचुरता की दृष्टि से इनका मूल्य अत्यधिक है। लोकसंस्कृति के अनुसंधान के लिये ये अन्यतम साधन हैं क्योंकि इनमें जनसाधारण के सुख दुःख, आशा निराशा तथा हर्ष विषाद का सम्यक् चित्रण उपलब्ध होता है। भारतीय लोकसाहित्य में लोककथाओं की संख्या अनंत है। केवल हिंदी की ही विभिन्न बोलियों में उपलब्ध लोककथाओं का संग्रह किया जाय तो अनेक बृहत् ग्रंथ तैयार हो सकते हैं। जिस प्रकार आदिकाव्य (कविता) का जन्म इस देश में ही हुआ उसी प्रकार संसार की सबसे प्राचीन कहानियों के निर्माण का श्रेय भी इस पुण्य-भूमि भारत को ही प्राप्त है। भारतीय कथाएँ संसार की कहानियों में सबसे प्राचीन ही नहीं हैं बल्कि उन्हें कथासाहित्य का मूल स्रोत होने का गौरव प्राप्त है। भारतीय कथासाहित्य ने संसार के विभिन्न देशों की कथाओं को किस प्रकार प्रभावित किया है इसका इतिहास संस्कृत साहित्य की अमर कहानी है। सर्वप्रथम भारतीय कथाओं का अनुवाद अरबी और पहलवी भाषाओं में हुआ और इसके पश्चात् यूरोप के विभिन्न देशों में इनके अनुवाद प्रस्तुत किए गए। यूरोपीय देशों में प्रचलित ईसप

[1] पारीक : रा० लो० गी०, पृष्ठ ८३

[2] किनकेड : दि आउटलाज आव् काठियावाड़।

की कहानियों (ईसप्स फेबुल्स) तथा सहस्र रजनी चरित्र (अरेबियन नाइट्स) की कथाओं में भारतीय प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। भारत ने विश्व को जो अनेक देन दी है उसमें कथाओं का स्थान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है[1]।

(क) लोककथाओं की प्राचीन परंपरा—लोककथाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में इन कथाओं के बीज उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में ऋषि शुनःशेप का प्रसिद्ध आख्यान मिलता है[2]। अपाला आत्रेयी के आदर्श नारीचरित्र का चित्रण हमें सर्वप्रथम इसी वेद में दृष्टिगोचर होता है[3]। च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा भी सुंदर रीति से इसमें वर्णित है[4]। ब्राह्मण ग्रंथों में भी अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। शतपथ ब्राह्मण में पुरुरवा और उर्वशी की कथा नितांत प्रसिद्ध है[5]। इसी कथा को लेकर महाकवि कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' नाटक की रचना की है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप का आख्यान वर्णित है[6]। शाट्यायन ब्राह्मण में महर्षि वृश नामक पुरोहित के वेदकालीन महत्व का प्रतिपादन किया गया है[7]। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में दध्यङ् आथर्वण की कथा का उल्लेख हुआ है जिनका लोकप्रिय पौराणिक नाम दधीचि है। इस महान् त्यागी ने लोकोपकार के लिये अपनी हड्डियों को भी दान में दे दिया था। इन्हीं हड्डियों से वज्र का निर्माण कर इंद्र ने वृत्र का बध किया था।

ब्राह्मण ग्रंथों के पश्चात् उपनिषदों में भी अनेक कथाएँ उल्लिखित हैं। नचिकेता की सुप्रसिद्ध कथा कठोपनिषद् का प्रधान वर्ण्य विषय है। अग्नि और यक्ष की कथा का केनोपनिषद् में वर्णन पाया जाता है। वैदिक संहिता एवं उपनिषदों में जिन कथाओं की केवल सूचना मिलती है उनका विस्तृत विवरण 'बृहद्देवता' में तथा षड्गुरुशिष्य रचित 'कात्यायन सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थदीपिका' टीका में दिया गया है।

[1] इस विषय के विस्तृत वर्णन के लिये देखिए, डा० कीथ : हिस्ट्री आव् संस्कृत लिटरेचर; प्रो० बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदामंदिर, वाराणसी, १९५६, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३८५-४००।

[2] ऋ० वे० १।२४।३०

[3] ऋ० वे० ८।९१।१

[4] ऋ० वे० १०।३९।४

[5] श० ब्रा० ११।५।१

[6] ऐ० ब्रा० ७।३

[7] श० ब्रा० ५।२

बृहत्कथा—संस्कृत में लोककथाओं का सबसे प्राचीन तथा विशाल संग्रह गुणाढ्य की बृहत्कथा है। यह ग्रंथ पैशाची भाषा में लिखा गया था जो अब उपलब्ध नहीं होता। डा० ब्यूलर के अनुसार इसकी रचना ईसा की दूसरी शताब्दी में हुई थी। बृहत्कथा संस्कृत साहित्य के नाटककारों के लिये उपजीव्य ग्रंथ रहा है। महाकवि भास, शूद्रक तथा महाराज हर्ष ने अपने नाटकों की कथावस्तु इसी ग्रंथ से ली है। आजकल बृहत्कथा के तीन अनुवाद संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं :

(१) बृहत्कथाश्लोकसंग्रह
(२) बृहत्कथामंजरी
(३) कथासरित्सागर

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह के रचयिता बुधस्वामी हैं। ये नैपाल के निवासी थे। इनका समय आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है। बुधस्वामी की यह कृति संपूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होती। परंतु जितना अंश प्राप्त हो सका है उसमें २८ सर्ग हैं और समस्त श्लोकों की संख्या ४५३६ है[1]। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बुधस्वामी का यह ग्रंथ बड़ा विशाल रहा होगा। 'बृहत्कथा-मंजरी' के लेखक आचार्य क्षेमेंद्र हैं जो संस्कृत साहित्य में अपनी विपुल तथा सुंदर रचनाओं के लिये सुप्रसिद्ध हैं। ये काश्मीर के राजा अनंत के आश्रित कवि थे। इनका आविर्भावकाल ११वीं शताब्दी है। इस ग्रंथ में समस्त श्लोकों की संख्या ७५,००० हैं। 'कथासरित्सागर' महाकवि सोमदेव की अमर रचना है जो क्षेमेंद्र के समकालीन थे। बृहत्कथा का यह सबसे अधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध अनुवाद है। इस ग्रंथ में समस्त श्लोकों की संख्या २४,००० है। इसकी रचना सन् १०६३ ई० से लेकर सन् १०८१ ई० के बीच में हुई थी। टानी ने इस विशाल ग्रंथ का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद, 'ओशन आव् स्टोरी' के नाम से अनेक भागों में किया है। पेंजर ने अपनी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियों के साथ इसका संपादन कर प्रकाशित किया है[2]।

पंचतंत्र—संस्कृत के कथासाहित्य में पंचतंत्र का स्थान अद्वितीय है। इसका अनुवाद यूरोप की अनेक भाषाओं में हो चुका है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी कथाओं ने संसार की कहानियों को प्रभावित किया है। यह संस्कृत साहित्य का सबसे मौलिक एवं प्राचीन कथाग्रंथ है। आचार्य विष्णुशर्मा

[1] प्रो० बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३६२
[2] वही, पृ० ३८५-३६०

ने पाँच भागों या तंत्रों में इसकी रचना की थी। इसीलिये इसका नाम 'पंचतंत्र' पड़ा है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् बेनेफी तथा हर्टल ने जर्मन भाषा में इसका अनुवाद किया है। इन विद्वानों ने बड़े परिश्रम से यह सप्रमाण सिद्ध किया है कि संसार—प्रधानतः यूरोप—की कथाओं का मूल उद्गम पंचतंत्र ही है तथा यही कहानियाँ विभिन्न देशों में विभिन्न रूपों में कुछ परिवर्तन के साथ उपलब्ध होती हैं।

हितोपदेश—नीतिसंबंधी कथाग्रंथों में पंचतंत्र के पश्चात् 'हितोपदेश' का स्थान है। इस ग्रंथ के लेखक नारायण पंडित थे जो बंगाल के राजा धवलचंद्र के आश्रय में रहते थे। इसकी रचना १४वीं शताब्दी के आसपास हुई। हितोपदेश की अधिकांश कथाएँ पंचतंत्र से ली गई हैं जिसका उल्लेख ग्रंथकार ने स्वयं किया है। यह बड़ा ही लोकप्रिय ग्रंथ है जिसे संस्कृत साहित्य में प्रवेश प्राप्त करनेवाले व्यक्ति बड़े चाव से पढ़ते हैं।

वैतालपंचविंशतिका—इसके रचयिता शिवदास नामक कोई आचार्य थे। इस ग्रंथ में महाराज विक्रम से संबंधित पचीस कहानियों की रचना सरल संस्कृत में की गई है। प्रत्येक कहानी में राजा की व्यावहारिक बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलता है। 'बैतालपचीसी' के नाम से इसका अनुवाद हिंदी भाषा में हो चुका है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका—में संस्कृत की बत्तीस कथाएँ संग्रहीत हैं। हिंदी में 'सिंहासन बत्तीसी' के नाम से इसका अनुवाद प्रचलित है। **शुकसप्तति**—में तोते द्वारा कही गई ७० कथाओं का संकलन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ की प्रसिद्धि का अनुमान केवल इसी बात से किया जा सकता है कि ईसा की १४वीं शताब्दी में इसका अनुवाद 'तूतीनामा' के नाम से फारसी भाषा में किया गया था। भट्ट विद्याधर के शिष्य आनंद ने **माधवानलकथा** लिखी है जिसमें श्लोकों की रचना संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में की गई है। शिवदास के **कथार्णव** में ३५ कथाओं का तथा विद्यापति की **पुरुषपरीक्षा** में ४४ कहानियों का संकलन किया गया है। इसके अतिरिक्त पाली भाषा में लिखित जातककथाओं में—जिनकी कुल संख्या ५५० है—बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ उपलब्ध होती हैं। आर्यशूर ने **जातकमाला** की रचना संस्कृत पद्यों में की है।

(ख) लोककथाओं का भारतीय वर्गीकरण—लोककथाओं का श्रेणी-विभाजन उनके वर्ण्य विषय की दृष्टि से किया जा सकता है। परंतु प्रत्येक विद्वान् का वर्गीकरण एक दूसरे से भिन्न है। प्राचीन आचार्यों ने कथासाहित्य को दो भागों में विभक्त किया है : (१) कथा, (२) आख्यायिका। कथा उस कहानी को कहते हैं जो कवि की कल्पना से प्रसूत होती है। उदाहरण के लिये बाणभट्ट की कादंबरी और दंडी का दशकुमारचरित इस कोटि में रखे जा सकते हैं। परंतु

आख्यायिका का आधार ऐतिहासिक घटना होती है। यह किसी इतिहास संबंधी सच्चे वृत्तांत को लेकर लिखी जाती है। बाण का 'हर्षचरित' आख्यायिका का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसकी कथावस्तु वर्धन वंश के सुप्रसिद्ध महाराज हर्ष के जीवन से संबंध रखती है। आनंदवर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेदों का उल्लेख किया है : (१) परिकथा, (२) सकलकथा, (३) खंडकथा। परिकथा उस कथा को कहते हैं जिसमें केवल इतिवृत्त निबद्ध हो, रसपरिपाक के लिये जिसमें विशेष स्थान न हो। अभिनवगुप्ताचार्य ने परिकथा में ऐसे वृत्तांतों का समावेश आवश्यक माना है जिसमें वर्णन की विचित्रता पाई जाती हो। सकलकथा में बीज (प्रारंभ) से फलप्राप्ति पर्यंत समस्त कथा का संनिवेश उपलब्ध होता है। हेमचंद्राचार्य ने इस कथा को 'चरित' की संज्ञा प्रदान की है तथा उदाहरण के रूप में 'समरादित्यकथा' का उल्लेख किया है। खंडकथा एकदेशप्रधान होती है।

हरिभद्राचार्य ने कथाओं का एक नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जिसमें मौलिकता पाई जाती है। इनके अनुसार कथाओं के निम्नलिखित चार भेद हैं :

(१) अर्थकथा
(२) कामकथा
(३) धर्मकथा
(४) संकीर्णकथा

अर्थकथा का वर्ण्य विषय अर्थ की प्राप्ति होता है। कामकथा में प्रेम के वर्णन की प्रधानता पाई जाती है। इस प्रकार की कथाओं की संख्या अत्यधिक है। धर्मकथा का संबंध धार्मिक आख्यानों से होता है। इस कथा की अभिलाषा करनेवाले मनुष्य श्रेष्ठ तथा धार्मिक बतलाए गए हैं। परंतु दोनों लोकों की इच्छा रखनेवाले संकीर्णकथा के प्रेमी मध्यम श्रेणी के कहे गए हैं :

ये लोकद्वयसापेक्षाः किञ्चित्सत्त्वयुताः नराः।
कथामिच्छन्ति संकीर्णां ज्ञेयास्ते वरमध्यमाः॥

(१) डा० उपाध्याय का वर्गीकरण—डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से लोककथाओं का वर्गीकरण निम्नांकित छः प्रकार से किया है[1] :

(१) नीतिकथा।
(२) व्रतकथा।
(३) प्रेमकथा।

[1] डा० उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० १२६

(४) मनोरंजक कथा।
(५) दंतकथा।
(६) पौराणिक कथा।

लोकसाहित्य में जो कथाएँ उपलब्ध होती हैं वे प्रधानतया प्रथम कोटि में आती हैं। लोककथाओं का प्रधान उद्देश्य नीतिकथन होता है। उपदेश देने की प्रवृत्ति इन कथाओं की आत्मा समझनी चाहिए। पंचतंत्र तथा हितोपदेश की समस्त कथाएँ इसी श्रेणी में अंतर्भुक्त की जा सकती हैं। 'हितोपदेश' नाम से ही विदित होता है कि इन कहानियों में कल्याणकारी उपदेश का कथन किया गया है। 'कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते' द्वारा लेखक ने ग्रंथरचना संबंधी अपना अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। पंचतंत्र तथा हितोपदेश में जानवरों तथा पक्षियों के मुँह से कथाएँ कहलाई गई हैं। इन सबमें नीति या उपदेश अंतर्निहित है। लोककथाओं के संबंध में भी यही बात समझनी चाहिए। किस प्रकार मायावी स्त्रियाँ सीधे सादे पुरुषों को परेशान करती हैं तथा उन्हें चक्कर में डाल देती हैं इसका चित्रण 'तिरिया चरित्तर' नामक कहानी में किया गया है[1]। इस कहानी के द्वारा लोककथाकार ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि ऐसी दुष्टा स्त्रियों से पुरुषों को सावधान रहना चाहिए।

धर्म भारतीय जीवन का अविच्छिन्न अंग है। धार्मिक कृत्यों एवं विधिविधानों से हमारा जीवन ओतप्रोत है। धार्मिक क्रियाकलापों में व्रतों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन व्रतों के संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। सत्यनारायण की कथा का उत्तरप्रदेश तथा बिहार में प्रचुर प्रचार है। भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी 'अनंत चतुर्दशी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन अनंत भगवान् की कथा कही जाती है जिसे स्त्रीपुरुष सभी बड़े प्रेम से सुनते हैं। स्त्रियों के व्रतों में पिड़िया, बहुरा, जीवित्पुत्रिका, करवाचौथ, अहोई आठें आदि प्रचलित हैं। इन व्रतों के अवसर पर स्त्रियाँ कथाएँ कहती हैं। राजस्थान में गनगौर व्रत प्रधान माना जाता है। मिथिला में कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन षष्ठी व्रत करने की प्रथा है। इन सभी व्रतों से कोई न कोई कथा संबद्ध है। अतः इन व्रतकथाओं की अपनी पृथक् श्रेणी है।

कुछ ऐसी भी कथाएँ उपलब्ध होती हैं जिनका मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम है। माता का पुत्र के प्रति स्नेह कितना स्वाभाविक तथा वात्सल्यपूर्ण होता है, पतिपत्नी का प्रेम कितना दिव्य तथा निश्छल होता है, बहिन का भाई के प्रति प्रेम कितना अकृत्रिम तथा सच्चा होता है—इन सबका सजीव चित्रण इन कथाओं में पाया

[1] डा० उपाध्याय का निजी संग्रह।

जाता है। मानव जीवन से संबंध रखनेवाली कहानियों में प्रेम का तत्व सबसे अधिक है। परंतु लोककथाओं में जो दांपत्य प्रेम प्राप्त होता है वह नितांत पवित्र एवं शुद्ध है। कामवासना की उसमें गंध भी नहीं पाई जाती।

मनोरंजक कथाएँ वे हैं जिनका प्रधान उद्देश्य श्रोताओं का मनोरंजन मात्र है। इन कथाओं को बालकगण बड़े चाव से सुनते हैं। चिरकालीन परंपरा से चली आती हुई किसी प्रसिद्ध कथा को दंतकथा कहते हैं। इसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण पाया जाता है। इन कथाओं की आधारभूमि इतिहास की ठोस घटनाएँ होती हैं परंतु लोककथाकार उसपर अपनी कल्पना का आवरण चढ़ा देता है जिससे उसके वास्तविक रूप को पहचानना कठिन हो जाता है। राजा विक्रमादित्य के न्याय की, आल्हा ऊदल की वीरता की अनेक कथाएँ हैं जिनमें कल्पना और इतिहास की गंगाजमुनी छटा दिखाई पड़ती है। लोकसाहित्य में पौराणिक कथाओं का अभाव नहीं है। गोपीचंद, भरथरी, सरवन आदि की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कुछ कहानियों में सृष्टि की रचना, उसके विनाश, देवताओं के जन्म आदि का वर्णन मिलता है। नल दमयंती, शिवि, दधीचि आदि की त्यागपूर्ण कहानियाँ भी पाई जाती हैं। इस प्रकार उपर्युक्त छः श्रेणियों में ही सभी प्रकार की लोककथाओं का अंतर्भाव हो जाता है।

(२) डा० दिनेशचंद्र सेन का वर्गीकरण—बँगला लोकसाहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० डी० सी० सेन ने बंगाल की लोककथाओं का विभाजन निम्नांकित चार श्रेणियों में किया है[1];

(१) रूपकथा (सुपरनैचुरल टेल्स)
(२) हास्यकथा (ह्यूमरस टेल्स)
(३) व्रतकथा (रेलिजस टेल्स)
(४) गीतकथा (नरसरी टेल्स)

डा० सेन के मतानुसार रूपकथाएँ वे हैं जिनमें किसी अमानवीय एवं अप्राकृतिक अद्भुत वस्तु का वर्णन हो। इसके अंतर्गत भूतप्रेत, देवता तथा दानवों की कहानियाँ आती हैं। इनमें अलौकिकता का पुट एक आवश्यक अंग है। हास्य कथाओं को सुनकर श्रोताओं के हृदय में हास्यरस की उत्पत्ति होती है। ऐसी कथाओं को बालक बहुत पसंद करते हैं। व्रतकथा किसी विशेष व्रत या त्योहार के दिन कही जाती हैं। अंतिम श्रेणी की कहानियाँ बच्चों को पालने में झुलाते समय

[1] डा० सेन : फोक लिटरेचर आव् बंगाल।

कही जाती हैं जिससे उन्हें शीघ्र नींद आ जाय। इन्हें अँग्रेजी में 'क्रैडेल टेल्स' या 'नरसरी टेल्स' कहते हैं।

डा० सत्येंद्र ने ब्रज की लोककथाओं को आठ श्रेणियों में विभक्त किया है[1] : (१) गाथाएँ, (२) पशुपक्षी संबंधी कथाएँ, (३) परी की कथाएँ, (४) विक्रम की कहानियाँ, (५) बुझौवल संबंधी कहानियाँ, (६) निरीक्षणगर्भित कहानियाँ, (७) साधुपीरों की कहानियाँ, (८) कारणनिर्देशक कहानियाँ। परंतु अनेक दृष्टियों से यह वर्गीकरण अवैज्ञानिक तथा असंतोषजनक है।

(ग) पाश्चात्य देशों में लोककथाओं के प्रकार—पाश्चात्य विद्वानों ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से लोककथाओं की अनेक श्रेणियाँ स्थापित की हैं जिनका वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

(१) कल्पित कथा (फेबुल)—फेबुल उस लोककथा को कहते हैं जिसका संबंध जानवरों से होता है तथा जिसमें कोई उपदेश दिया गया रहता है। इन कथाओं में पशुपक्षी मानवीय पात्रों के रूप में चित्रित किए जाते हैं। जानवरों की विशेषताएँ रखते हुए भी ये पात्र मनुष्य के समान बातचीत तथा अभिनय करते हुए पाए जाते हैं। इस प्रकार की कथाओं का प्रधान उद्देश्य नैतिक शिक्षा या उपदेश देने की प्रवृत्ति होती है। किसी फेबुल को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : (१) कथा का वह भाग जिसमें नैतिक शिक्षा उदाहरण देकर समझाई जाती है, (२) दूसरे भाग में उपदेशकथन पाया जाता है जो किसी लोकोक्ति के रूप में होता है। उदाहरण के लिये हितोपदेश की 'मार्जारगृद्ध' कथा में कथावस्तु का भाग प्रथम कोटि में आता है तथा निम्नांकित उपदेशकथन द्वितीय कोटि में अंतर्भुक्त होता है :

अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण, हतो वृद्धः जरद्गवः॥

फेबुल को लोककथाओं का सबसे प्रारंभिक रूप समझना चाहिए। जानवरों से संबंध रखनेवाली इन लोककथाओं में जंतुओं की विशेषताओं का प्रतिपादन नहीं पाया जाता प्रत्युत उनमें मानव को शिक्षा देने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। अथवा मनुष्य के जीवन के किसी एक अंश या अंग को लेकर व्यंग्योक्ति की जाती है। फलस्वरूप हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि उपर्युक्त प्रकार की कथाएँ लोकसामान्य की रचनाएँ नहीं हैं। प्रत्युत ये सभ्य एवं संस्कृत व्यक्तियों द्वारा निर्मित

[1] डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ८३

हैं। यदि ऐसी बात न होती तो इनमें उच्च कोटि की बहुमूल्य नैतिक शिक्षा का इतना प्राचुर्य न होता। यह बहुत संभव है कि शिक्षित व्यक्तियों द्वारा इन कथाओं का निर्माण हो जाने पर सर्वसाधारण जनता ने इन्हें अपना लिया हो और इस प्रकार ये उनकी मौखिक संपत्ति बन गई हों।

भारतवर्ष में प्राचीनतम फेबुल्स पाए जाते हैं। कथासरित्सागर, पंचतंत्र तथा हितोपदेश पशुपक्षी संबंधी कथाओं के अनंत भांडार हैं। 'शुकसप्तति:' नामक ग्रंथ में शुक (तोता) द्वारा कही गई ७० कथाओं का संग्रह किया गया है। संस्कृत साहित्य की अधिकांश कहानियाँ इसी कोटि में आती हैं। भारतीय वर्तमान भाषाओं में भी इस श्रेणी की कथाओं की प्रचुरता पाई जाती है। पश्चिमी देशों में 'ईसप्स फेबुल्स' के नाम से अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। ईसप ईसा के पूर्व ६०० ई० में उत्पन्न हुआ था। यह आइओनिया का निवासी था तथा संभवतः सेमिटिक जाति का था। इसने तत्कालीन लोककथाओं का संग्रह किया था। ये कथाएँ प्रारंभ में मौखिक थीं क्योंकि ईसा की चौथी शताब्दी के पहले इनके लिखित रूप में विद्यमान होने का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। परंतु लोककथाओं के क्षेत्र में भारत ही संसार का गुरु रहा है। इसी देश की कहानियाँ अरब देश में होती हुई यूरोप में फैलीं। पंचतंत्र की कुछ कहानियों का संग्रह मध्य युग में यूरोप में 'फेबुल्स आव् बिदपाई' के नाम से किया गया था। फ्रेंच भाषा में 'फेबुल्स दे पिलपे' के नाम से प्रकाशित ग्रंथ पंचतंत्र के अरबी अनुवाद पर आश्रित था जो पहलवी भाषा से उसमें अनूदित किया गया था[1]। लोककथाओं में अनेक ऐसे कथानक उपलब्ध होते हैं जिनमें पशुपक्षी मनुष्यों की तरह बातचीत करते हुए पाए जाते हैं।

अंग्रेजी साहित्य में चासर, हेनरीसन, ड्राइडन तथा गे ने इस प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। फ्रांस में ला फांतेन आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ लोककथाकार है। जर्मनी में लेसिंग ने फेबुल्स के सुंदर संग्रह प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इनके इतिहास तथा साहित्यिक महत्व का गंभीर विवेचन किया है।

(१) परियों की कथा (फेयरी टेल्स)—'फेयरी टेल्स' को हिंदी में 'परियों की कथा' कहते हैं। जर्मन भाषा में इसे 'मार्शेन' तथा स्वेडिश भाषा में 'सागा' कहा जाता है। जिन लोककथाओं में परियों, अप्सराओं तथा अमानवीय व्यक्तियों की कथा कही गई रहती है उन्हें अंग्रेजी में 'फेयरी टेल्स' की संज्ञा प्राप्त होती है। इन कथाओं को निम्नांकित छः श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

[1] मेरिया लीच : डिक्शनरी आव् फोकलोर, भाग १, पृ० ३६१

(१) परियों द्वारा मनुष्यों की सहायता।
(२) परियों द्वारा मनुष्यों को क्षति पहुँचाना।
(३) परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण।
(४) परियों द्वारा कृत्रिम पुत्र प्रदान करना।
(५) मनुष्यों द्वारा परिस्तान की यात्रा।
(६) प्रेमिका या प्रेमी के रूप में परी का चित्रण।

परियों द्वारा मनुष्यों के उपकार की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। जिन व्यक्तियों पर इनकी कृपा होती है उनको ये धनधान्य से परिपूर्ण कर देती हैं। एक फ्रांसीसी लोककथा में परियों द्वारा कारागार से उस अबला के उद्धार का उल्लेख पाया जाता है जिसके पति ने उसे बंदीगृह की यातना भुगतने के लिये विवश किया था। भारत में परियों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें वे किसी व्यक्तिविशेष की आर्थिक सहायता करती हैं, रोगी को रोग से मुक्ति प्रदान करती हैं तथा भूखे को भोजन देती हैं। परंतु ये परियाँ मनुष्यों को कभी कभी क्षति भी पहुँचाती हैं। उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में चुड़ैलों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जो गंदी स्त्रियों तथा पुरुषों को पकड़ लेती हैं तथा उन्हें अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ देती हैं।

परियों द्वारा मनुष्यों का अपहरण भी किया जाता है। कभी वे पुरुषों को चुराकर परिस्तान में ले जाती हैं और कभी वहाँ चलने के लिये लालच देती हैं। प्रधानतया ये छोटे छोटे बच्चों को ही चुराती हैं। कालिदास ने मेनका नामक अप्सरा द्वारा शकुंतला के हरण का उल्लेख किया है। कुछ कथाओं में मनुष्यों द्वारा परिस्तान की यात्रा का वर्णन पाया जाता है। परंतु सबसे रोचक कहानियाँ वे हैं जिनमें कोई परी प्रेमिका के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। परियों से विवाह करने की चर्चा पाई जाती है जिनमें प्रेमी परिस्तान में कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् पृथ्वी पर आने की अपनी इच्छा प्रकट करता है।

जर्मन भाषा में 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' प्रसिद्ध पुस्तक है। ग्रिम सुप्रसिद्ध भाषा-तत्व-वेत्ता थे जिन्होंने अपनी भाषा में प्रचलित लोककथाओं का प्रकांड संग्रह प्रस्तुत किया है। ग्रिम ने अपने अथक परिश्रम तथा गंभीर गवेषणा द्वारा लोककथाओं के वैज्ञानिक अनुसंधान का यूरोप में सूत्रपात किया। इन्होंने कथाओं के अध्ययन की उस वैज्ञानिक पद्धति की नींव डाली जिसका अनुकरण बाद के विद्वानों ने किया। भारतीय लोकसाहित्य में प्रचलित इस श्रेणी की कथाओं के अनेक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं[1]।

[1] स्टिथ टामसन : ओरल टेल्स आव् इंडिया, पृ० ११–१७

(२) दंतकथा (लीजेंड)—इस शब्द का मूल अर्थ उस वस्तु से था जो पूजापाठ के धार्मिक अवसर पर पढ़ी जाती थी। यह प्रधानतया किसी सज्जन पुरुष का जीवनचरित अथवा धर्म के नाम पर बलिदान होनेवाले वीरों की गाथा होती थी। उदाहरण के लिये हम 'गोल्डेन लीजेंड आव् जेकोबस डि वोरोजिन' नामक ग्रंथ को ले सकते हैं जिसमें संतों की जीवनियों का संकलन उपलब्ध होता है। परंतु कालक्रम के पश्चात् 'लीजेंड' उन कथाओं को कहा जाने लगा जो किसी ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर आश्रित हुआ करती थीं। किसी व्यक्ति या स्थान के विषय में कही गई इन कहानियों में परंपरागत मौखिक सामग्री का भी मिश्रण होने लगा। इस प्रकार लीजेंड लोककथाओं का वह प्रकार है जिसके कथानक में तथ्य घटना (फैक्ट) तथा परंपरा (ट्रैडिशन) दोनों का समन्वय पाया जाता है।

'लीजेंड' तथा 'मिथ' के पार्थक्य को स्पष्ट करना कुछ सरल नहीं है। इन दोनों को विभाजित करनेवाली रेखाओं में बड़ा कम अंतर है। 'मिथ' में देवतागण प्रधान पात्रों के रूप में प्रस्तुत होते हैं तथा उनका उद्देश्य स्पष्टीकरण होता है। यूरोपीय देशों में हरकूलीज की कथा में 'मिथ' तथा लीजेंड दोनों का अंश दिखाई पड़ता है। 'लीजेंड' किसी सत्य घटना के रूप में कही जाती है परंतु 'मिथ' की सचाई उसके श्रोताओं के देवता में विश्वास के ऊपर आश्रित होती है। भारतीय लोकसाहित्य में प्रचलित राजा विक्रमादित्य के न्याय की कहानियाँ 'लीजेंड' की श्रेणी में आती हैं। परंतु भगवान् वामन के द्वारा बलि को छलने की कथा 'मिथ' कही जा सकती है। स्विनर्टन ने पंजाबी लोककथाओं का संग्रह 'लीजेंड्स आव् दि पंजाब' नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तकें में किया है। राजस्थान में जो अनंत अर्ध ऐतिहासिक लोककथाएँ प्रचलित हैं उन सबको 'लीजेंड' के अंतर्गत रखा जा सकता है।

(३) पौराणिक कथा (मिथ)—'मिथ' वह कथा है जो किसी युग में घटित दिखाई गई हो। इन कथाओं में किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीरों, देवीदेवताओं, जनता की अलौकिक तथा अद्भुत परंपराओं तथा सृष्टिरचना का वर्णन होता है[1]। सुप्रसिद्ध विद्वान् जी० एल० गोमे ने लिखा है कि मिथ के

[1] मिथ इज ए स्टोरी प्रेजेंटेड ऐज हैविंग ऐक्चुअली अकर्ड इन ए प्रीवीयस एज, एक्सप्लेनिंग दि कास्मोलाजिकल ऐंड सुपरनैचुरल ट्रेडिशंस आव् ए पीपुल, देयर गाड्स, हिरोज, कल्चरल ट्रेट्स, रिलिजस बिलीफ्स एट्सेट्रा।—मेरिया लीच : डिक्शनरी आव् फोकलोर, भाग २, पृ० ७७८

द्वारा विज्ञानपूर्व युग की घटनाओं का वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण किया जाता है[1]। ये कथाएँ प्रधानतया मनुष्य तथा संसार की सृष्टिरचना से संबंध रखती हैं। जैसे— मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हुई, पृथ्वी कैसे बनी, देवता आकाश या स्वर्गलोक में क्यों रहते हैं ? आदि। प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं के संबंध में उनके अज्ञात तत्वों का ये स्पष्टीकरण करती हैं—उदाहरणार्थ चंद्रमा में कालिमा क्यों दिखाई पड़ती है तथा सूर्य के सात घोड़े निराधार आकाश में कैसे चलते हैं ? आदि विभिन्न धार्मिक विधि-विधान किस प्रकार प्रारंभ हुए इनका भी वर्णन इन कथाओं में पाया जाता है। अतः मिथ की प्रधान विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

(१) इनकी पृष्ठभूमि धार्मिक होती है।

(२) इनमें प्रधान पात्र देवीदेवता होते हैं।

(३) इनका प्रधान वर्ण्य विषय सृष्टि की रचना तथा प्राकृतिक दृश्यों—(सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र आदि) का स्पष्टीकरण होता है।

कोई कथा तभी तक 'मिथ' कही जा सकती है जब तक उसके प्रधान पात्र देवी और देवता हैं अथवा इन पात्रों में देवत्व की भावना बनी है। परंतु जब ये पात्र देवत्व की कोटि से नीचे उतर कर मनुष्यों की श्रेणी में आ जाते हैं तब उस कथा को 'लीजेंड' कहने लगते हैं। भारतीय पुराणों की सृष्टि संबंधी कथाएँ देवासुर-संग्राम, समुंद्रमंथन की कथा, भगवान् के विभिन्न अवतारों की कहानियाँ 'मिथ' कही जा सकती हैं। परंतु राजा विक्रमादित्य, राजा रिसालू, गोपीचंद तथा भरथरी की कथाएँ 'लीजेंड' की कोटि में आती हैं। किसी साधारण कथा को 'फोकटेल' कहते हैं। मिथ से संबंधित शास्त्र को 'माइथोलोजी' (पुराणशास्त्र) कहा जाता है जिसमें सृष्टि की रचना, अलौकिक घटनाओं तथा देवीदेवताओं की कथाओं का वर्णन होता है। वेदों तथा पुराणों में माइथोलोजी की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। डा० मैकडानल ने वेदों के संबंध में 'वैदिक माइथोलोजी नामक विद्वत्तापूर्ण तथा गंभीर पुस्तक लिखी है।

संसार की आदिम जातियों में प्रचलित अधिकांश कहानियाँ 'मिथ' की श्रेणी में आती हैं। डा० एलविन ने मध्यप्रदेश की आदिम जातियों की पौराणिक कथाओं का संग्रह 'मिथ्स आव् मिडिल इंडिया' नामक पुस्तक में किया है।

अभिप्राय (मोटिफ)—अँग्रेजी के मोटिफ शब्द का अर्थ प्रधान अभिप्राय या भाव होता है। हिंदी में 'मोटिफ' के लिये 'अभिप्राय' शब्द का प्रयोग किया

[1] दि परपज आव् ए मिथ इज टु एक्सप्लेन, ऐज सर जी० एल० गोमे सेड, 'मिथ्स एक्सप्लेन मैटर्स इन दि साइंस आव् ए प्री-साइंटिफिक एज'।—मेरिया लीच : वही, पृ० ७७८

जाने लगा है। कुमारी दुर्गा भागवत ने इसके लिये 'कल्पनाबंध' शब्द का व्यवहार अपनी पुस्तक में किया है[1]। परंतु लेखक की विनम्र संमति में ये दोनों ही शब्द समुचित नहीं है। लोककथाओं में जो वस्तु उनकी विशिष्टता प्रकट करती है, 'मोटिफ' कहलाती है। इस प्रकार प्रत्येक लोककथा का मोटिफ पृथक् पृथक् या भिन्न भिन्न होता है। डा० स्टिथ टामसन के अनुसार 'मोटिफ' वह अंश है जिसमें फोकलोर के किसी भाग (आइटेम) का विश्लेषण किया जा सके[2]। लोककला में डिजाइन के 'मोटिफ' होते हैं। लोकसंगीत में भी 'मोटिफ' उपलब्ध होते हैं। परंतु विद्वानों ने लोककथा के क्षेत्र में ही इनका सांगोपांग अध्ययन किया है।

साधारणतया 'मोटिफ' शब्द का प्रयोग परंपरागत कथाओं के किसी तत्व के लिये किया जाता है। परंतु इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि परंपरा (ट्रैडिशन) का वास्तविक अंग बनने के लिये यह तत्व (एलिमेंट) ऐसा प्रसिद्ध होना चाहिए कि इसे सर्वसाधारण जनता स्मरण रख सके। अतएव यह तत्व साधारण न होकर असाधारण होना चाहिए। लोककथाओं में माता को मोटिफ नहीं कह सकते परंतु निर्दयी माता या विमाता 'मोटिफ' की संज्ञा प्राप्त कर सकती है। लोकगीतों में वर्णित 'दारुनिया सास' अर्थात् कष्ट देनेवाली, क्रूर एवं निर्दय सास मोटिफ का अच्छा उदाहरण है। 'मोटिफ' के इस विषय को निम्नलिखित उदाहरण से समझाया जा सकता है :

'मोहन सुंदर वस्त्र पहनकर शहर गया।' इस वाक्य में कोई उल्लेखनीय 'मोटिफ' नहीं है। परंतु यदि यह कहा जाय कि 'सोहन दिखाई न पड़नेवाली (अदृश्य) पगड़ी को सिर पर बाँधकर, जादू के घोड़े पर सवार होकर, उस देश को चला गया जो सूर्य के पूर्व और चंद्रमा के पश्चिम था।' इस वाक्य में चार 'मोटिफ' विद्यमान हैं : (१) अदृश्य पगड़ी, (२) जादू का घोड़ा, (३) आकाशमार्ग से यात्रा और (४) अद्भुत देश।

भारतीय लोककथाओं में शृगाल (गीदड़) या शशक को बड़े चालाक तथा धूर्त जानवर के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार गधा मूर्ख, जड़ तथा भारवाही पशु के रूप में दिखालाया गया है। लोककथाओं में ये दोनों ही 'मोटिफ' हैं। अनेक कहानियों में हीरामन तोते का मनुष्य की बोली में बोलना,

[1] दुर्गा भागवत : लोकसाहित्याची रूपरेखा, पृ० ४७१

[2] इन फोकलोर दि टर्म्स यूज्ड टु डेजिगनेट ऐनी वन आव् दि पार्ट्स इंट्र्र ह्विच ऐन आइटेम आव् फोकलोर कैन बी एनेलाइज्ड।—मेरिया लीच : डिक्शनरी आव् फोकलोर, भाग २, पृ० ७५३

किसी व्यक्ति का 'लिलही' घोड़ी पर चढ़कर भागना, तथा विशेष प्रकार के पक्षियों (जैसे कौवा, तोता आदि) द्वारा संदेश भिजवाना 'मोटिफ' के अंतर्गत आता है।

'मोटिफ' तथा 'टेल टाइप' (कथाप्रकार) में थोड़ा अंतर है। मोटिफ का क्षेत्र बड़ा विस्तृत तथा व्यापक है। अनेक देशों की लोककथाओं में एक ही मोटिफ पाया जा सकता है और पाया भी जाता है। अतः इसका क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय है। परंतु इसके विपरीत 'टाइप' का क्षेत्र अत्यंत संकुचित होता है। इसका विस्तार किसी देशविशेष की सीमा के भीतर ही होता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने 'मोटिफ' तथा 'टाइप' इन दोनों विषयों का अत्यंत गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० स्टिथ टामसन ने 'मोटिफ इनडेक्स आव् फोक लिटरेचर' नामक अपने विशालकाय ग्रंथ (भाग १-७) में इस विषय का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। इस देश में अभी इस संबंध में कुछ भी शोधकार्य नहीं हुआ है। हाँ, डा० कुंजबिहारीदास एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, उड़िया विभाग, विश्वभारती विद्यालय, शांतिनिकेतन ने अपनी पुस्तक उड़िया लोकगीत और कहानी में इस विषय का अवश्य ही प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है। व्रज की लोककथाओं में एक शरीर से दूसरे शरीर में प्राणों का प्रवेश, प्राणों की अन्यत्र स्थिति, चीर पर लेख, सत की रक्षा आदि अनेक 'मोटिफ' पाए जाते हैं। भोजपुरी लोककथाओं में सियरन पाँडे (गीदड़), कौवा, दुष्टा सास, विमाता आदि अनेक मोटिफों का व्यवहार किया गया है। इसी प्रकार अवधी, बुंदेलखंडी आदि लोककथाओं में भी मोटिफ उपलब्ध होते हैं।

(घ) लोककथाओं के प्रधान तत्व—लोककथाओं का सम्यक् अनुसंधान करने से उनकी निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है जिनका संक्षिप्त विवरण पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है :

(१) प्रेम का अभिन्न पुट।
(२) अश्लील शृंगार का अभाव।
(३) मानव की मूल वृत्तियों से निरंतर साहचर्य।
(४) मंगलकामना की भावना।
(५) सुखांतता।
(६) रहस्यरोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता।
(७) उत्सुकता की भावना।
(८) वर्णन की स्वाभाविकता।

(१) प्रेम का अभिन्न पुट—मानव जीवन से संबंध रखनेवाली लोककथाओं में रागात्मक तत्व की प्रधानता का होना स्वाभाविक है। इनमें कहीं तो भाई और बहिन के अकृत्रिम तथा सच्चे प्रेम का वर्णन पाया जाता है तो कहीं पति पत्नी के आदर्श प्रेम का चित्रण है। पुत्रवत्सला माता का वात्सल्य स्नेह अपने निर्मल स्वरूप में प्रकट हुआ है। आजकल की हिंदी कहानियाँ—जिनमें वासनामय प्रेम का कुत्सित चित्रण होता है तथा जिनमें 'सेक्स अपील' की पराकाष्ठा होती है—इन लोककथाओं की पवित्रता के सामने पानी भरें। हिंदी के प्रेममार्गी कवियों ने जिस संयम के साथ प्रेमाख्यानों की रचना की है वही संयम एवं विशुद्धता इन कथाओं में उपलब्ध होती है। कामवासना से जनित प्रेम 'विशुद्ध' विशेषण को प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि ग्रामीणों के द्वारा रचित इन कथाओं में कहीं भी अश्लीलता उपलब्ध नहीं होती।

(२) मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से निरंतर साहचर्य—इन लोककथाओं में पाया जाता है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से मेरा अभिप्राय उन वासनाओं से है जो मनुष्य में अन्वयव्यतिरेक से निवास करती हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि ऐसी ही वासनाएँ हैं जो सदा से बनी रही हैं और जब तक मानव की स्थिति है तब तक बनी रहेंगी। इन्हीं मूल वासनाओं का वर्णन इन कथाओं में पाया जाता है। इनकी रचना जीवन की मूलभूत वृत्तियों के आधार पर होती है। इनमें जिन घटनाओं का वर्णन होता है वे शाश्वत सत्य की प्रतीक होती हैं। आजकल की कहानियाँ कोई स्थानीय घटना अथवा तत्कालीन कथावस्तु लेकर लिखी जाती हैं, इसी से उनका प्रभाव स्थायी नहीं हो पाता। इसके ठीक विपरीत लोककथाएँ श्रोताओं के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती हैं।

(३) लोकमंगल की कामना—इन कथाओं का चरम लक्ष्य है। ग्रामीण कथाकार समस्त संसार के लोगों के कल्याण की अभिलाषा प्रकट करता है। वह विश्व के मंगल की कामना करता है। वह :

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाक् भवेत्॥

के स्वर में अपना स्वर मिलाता हुआ तापत्रय से पीडित मानवता में सुख और शांति की स्थापना का अभिलाषी है। यही कारण है कि लोककथाओं का पर्यवसान दुःख में नहीं प्रत्युत सदा सुख में दिखलाया गया है। जनता की जीवनचर्या से संबद्ध इन कथाओं में दुःख, निराशा, हानि, आपत्ति, संकट, उदासीनता आदि के प्रसंग न आए हों, ऐसी बात नहीं समझनी चाहिए। ये प्रसंग आए हैं और अधिक संख्या में अनेक अवसरों पर आए हैं, परंतु कथा के अंत में दुःख सुख में बदल

जाता है, निराशा आशा में परिणत हो जाती है और वियोग संयोग में परिवर्तित दिखाई पड़ता है।

भूतछूत, प्रेत पिशाच, दानव तथा परियों से संबंधित कथाओं में अद्भुत रस की प्रधानता पाई जाती है। ऐसी कथाओं में अलौकिकता का पुट अधिक रहता है। साधारण जनता इनको बड़े चाव से सुनती है। कहानी का सबसे बड़ा गुण उत्सुकता की भावना को बनाए रखना है। कथा को सुनने के लिये श्रोताओं में उत्सुकता न दिखाई पड़े तो यह समझ लेना चाहिए कि उसमें कुछ आकर्षण नहीं है। इस कसौटी पर कसे जाने पर लोककथाएँ खरी उतरती हैं। गाँव के चौपाल में बैठा हुआ ग्रामवृद्ध अपनी कथा का खजाना खोलता जाता है और श्रोतागण बड़ी शांति से उसे सुनने में तल्लीन रहते हैं। वे बीच बीच में बार बार कथा कहनेवाले से पूछते जाते हैं कि 'इसके बाद क्या हुआ ?' वर्णन की स्वाभाविकता कहानी कला की प्रधान विशेषता है। जो घटना जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन इन कथाओं का मुख्य लक्षण है। इसमें अतिशयोक्ति या अत्युक्ति का आश्रय नहीं लिया जाता। इसीलिये भारतीय संस्कृति का इनमें सजीव एवं सच्चा चित्र सुरक्षित है। आधुनिक कहानियों के वर्णन में अतिरंजना की जो प्रवृत्ति लक्षित होती है उसका लोककथाओं में नितांत अभाव है।

(४) लोककथाओं तथा आधुनिक कहानियों में अंतर—प्राचीन लोककथाओं तथा आधुनिक कहानियों में बड़ा अंतर है जिसे (१) स्वरूपगत और (२) विषयगत इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। लोककथाओं का आकार छोटा होता है परंतु आधुनिक कहानियाँ अपेक्षाकृत बड़ी होती है। इनमें से कोई कोई कहानी (जैसे प्रेमचंद लिखित 'पिसनहारी का कुँआ') तो इतनी लंबी होती है कि उसे लघु उपन्यास कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। आधुनिक कहानियों का रचनाशिल्प (टेक्नीक) बड़ा जटिल होता है परंतु लोककथाओं की रचनापद्धति सरल, सीधी एवं प्रवाहयुक्त होती है।

यदि विषयगत दृष्टि से विचार करते हैं तब यह पार्थक्य और भी स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। आजकल की कहानियों में सामाजिक वैषम्य, राजनीतिक कोलाहल, सेक्स अपील (यौनभावना को प्रोत्साहन) और आर्थिक शोषण का चित्रण होता है। प्रेम का अश्लील और भद्दा प्रदर्शन भी कुछ कहानियों में पाया जाता है। परंतु लोककथाओं में न तो सामाजिक वैषम्य का वर्णन है और न आर्थिक शोषण का। राजनीतिक संघर्ष भी इनमें नहीं पाया जाता। इन कथाओं में जिस समाज का चित्र प्रस्तुत किया गया है वह सुखी, प्रसन्न एवं संतुष्ट है। इनमें न तो रोटी के लिये वर्गविरोध की आवाज सुनाई पड़ती है और न शोषित, पीड़ित मानवता का

करुण क्रंदन। इनमें वर्णित संसार सुख और समृद्धि के कारण भूलोक में स्वर्ग के समान है।

८. लोकनाट्य की चर्चा

(१) प्राचीनता—भारतीय नाटक का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भरतमुनि (ई० पू० तीसरी शताब्दी) ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में इस विषय का विशद वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त धनंजयकृत 'दशरूपक' तथा विश्वनाथ कविराज लिखित 'साहित्यदर्पण' में इसके संबंध में बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। परंतु भरत के नाट्यशास्त्र का महत्व सबसे अधिक है। यह ग्रंथ नाट्यविद्या का मूल तथा स्रोत है।

नाटक की उत्पत्ति के संबंध में नाट्यशास्त्र में एक कथा दी गई है जिससे यह पता चलता है कि इंद्र तथा अन्य देवताओं ने सब लोगों के मनोरंजन के लिये ब्रह्मा से कोई मनोविनोद का साधन उत्पन्न करने की प्रार्थना की। वे ऐसा साधन चाहते थे जो श्रव्य तथा दृश्य दोनों ही हो तथा जिसमें सभी वर्णों के लोग समान रूप से भाग ले सकें[1]। चूँकि वेदों के पठनपाठन का अधिकार शूद्रों के लिये निषिद्ध था अतः पंचम वेद की रचना अत्यंत आवश्यक प्रतीत हुई। इस प्रकार सभी वर्णों के मनोरंजन के लिये ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर ब्रह्मा ने 'नाट्यवेद' की सृष्टि की[2]:

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्योगीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसमाथर्वणादपि॥

उपर्युक्त कथा से दो बातें स्पष्टतया प्रतीत होती हैं: (१) नाट्यवेद का निर्माण सभी वर्णों के लिये किया गया था, (२) इसके निर्माण का प्रधान कारण जनमन का अनुरंजन था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नाटक की अपील सार्वजनीन होती है तथा यह साधारण जनता के मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है। महाकवि कालिदास ने इसी तथ्य का पुष्टीकरण करते हुए लिखा है कि नाटक विभिन्न प्रकार की रुचि रखनेवाले मनुष्यों के मनोरंजन का अद्वितीय साधन है:

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।

वेदों में विभिन्न नाटकीय तत्वों के बीज उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में जो संवादात्मक ऋचाएँ पाई जाती हैं उन्हें नाटकीय संवादों का मूल रूप कहा जा

[1] नाट्यशास्त्र, १।१७

[2] वही, १।१७-१८

सकता है। सामवेद के गीतों का नाटक के निर्माण में कुछ कम योगदान नहीं है। विभिन्न धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों पर नृत्य की प्रथा जनता में प्रचलित थी। इस प्रकार गीत (संगीत) नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी ने प्राचीन नाट्य को जन्म दिया। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में भूतपूर्व सरगुजा रियासत की पहाड़ी में अवस्थित 'सीताबेंगा' तथा 'जोगीमारा' की गुफाओं में पुराना प्रेक्षागृह बना हुआ है। पाणिनि ने नाटक खेलनेवाले नटों का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी में किया है[1]। पतंजलि ने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बलिबंध' नाटक खेले जाने की चर्चा की है। पालि ग्रंथों में भिक्षुओं के लिये नाटक देखना निषिद्ध बतलाया गया है। एक स्थान पर ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि कीटागिरि की रंगशाला में नृत्य देखने के कारण दो भिक्षुओं को दंड दिया गया था क्योंकि यह कर्म उनके धर्म के विरुद्ध था। भास, अश्वघोष तथा कालिदास के नाटकों के पश्चात् तो संस्कृत साहित्य में नाटकों की रचना अबाध गति से होने लगी जिसकी परंपरा बाद में हजारों वर्षों तक अक्षुण्ण रूप से चलती रही।

इन समस्त उल्लेखों से स्पष्ट पता चलता है कि भारतीय नाट्यसाहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है।

(२) लोकनाट्यों का विकास—इस देश में मुसलमानी शासन की प्रतिष्ठा हो जाने पर भारतवर्ष की राजनीतिक एकसूत्रता नष्ट हो गई। देश के विभिन्न भागों में छोटे छोटे राजा राज्य करने लगे। मुसलमानी शासकों की प्रवृत्ति साहित्य तथा नाट्यकला की ओर शत्रुतापूर्ण थी। वे इन्हें नष्ट करने में ही अपनी वीरता समझते थे। फलतः इनके शासन में नाटकरचना तथा रंगशाला का घोर ह्रास हुआ। राजाश्रय का अभाव भी इनके पतन का कारण बना। संस्कृत साहित्य की नाट्यपरंपरा, जो हजारों वर्षों से अबाध गति से चली आ रही थी, सदा के लिये नष्ट हो गई।

इसी समय उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन का प्रवर्तन हुआ जिसके प्रधान प्रतिष्ठापक गोस्वामी वल्लभाचार्य जी थे। इन्होंने कृष्णभक्ति का प्रचार किया। इनके अनुयायियों ने भागवत के दशम स्कंध की कथा को, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण का जीवनचरित वर्णित है, अभिनय के माध्यम से जनता के सामने सजीव रूप प्रदान किया। कृष्ण की बाललीलाओं का अभिनय मंदिरों, मठों तथा अन्य स्थानों में होने लगा जिनको देखने के लिये श्रद्धालु जनता की भीड़ जुटने लगी। श्रीकृष्ण

[1] भिक्षुनटसूत्रयोः।

की इसी प्रारंभिक लीला ने आगे चलकर 'रासलीला' का रूप धारण किया जो आज भी मथुरा तथा वृंदावन में बड़े प्रेम से की जाती है।

उत्तरी भारत में रामभक्ति के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानंद को प्राप्त है परंतु रामभक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा इनके शिष्य गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वारा ही हुई। साधारण जनता में कृष्णभक्ति के प्रचार का जो श्रेय महात्मा सूरदास को प्राप्त है, रामभक्ति के प्रचार का उससे भी कहीं अधिक श्रेय गोस्वामी जी को मिलना चाहिए।

जहाँ तक ज्ञात है, उत्तरी भारत में रामलीला का प्रचार गोस्वामी तुलसीदास जी की देन है। गोस्वामी जी ने सर्वप्रथम काशी में रामलीला करानी प्रारंभ की थी। उनके समय की 'लंका', जहाँ रावण निवास करता था, आज काशी का एक प्रसिद्ध मुहल्ला है। इस प्रकार से भक्ति आंदोलन के प्रभाव से उत्तर प्रदेश में दो लोकधर्मी नाट्यपरंपरा का जन्म हुआ—(१) रासलीला और (२) रामलीला।

इसी समय बंगाल में गौरांग महाप्रभु का आविर्भाव हुआ जिन्होंने उस प्रांत में कृष्णभक्ति का प्रचुर प्रचार किया। श्री चैतन्य भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति का गान करते करते बेसुध हो जाते थे। वे भगवान् की आराधना करते समय कीर्तन भी किया करते थे। बंगाल में आज कीर्तन का जो इतना अधिक प्रचार है वह चैतन्य महाप्रभु की ही देन है। चैतन्य ने अनेक पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा की। वे काशी भी आए थे और प्रयाग को भी उन्होंने अपने चरणरज से पवित्र किया था। जगन्नाथपुरी की इनकी यात्रा तो प्रसिद्ध ही है। इनके साथ इनके भक्तों तथा शिष्यों की मंडली भी चला करती थी। ये लोग गौरांग महाप्रभु के साथ यात्रा किया करते। यह यात्रा शुद्ध धार्मिक होती थी जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण का भजन तथा कीर्तन प्रधान कार्य होता था। धीरे धीरे इन यात्राओं तथा कीर्तनों ने लोकनाट्य का रूप धारण कर लिया जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाएँ अभिनय के माध्यम से दिखलाई जाने लगीं। आज बंगाल में 'यात्रा' या 'जात्रा' तथा कीर्तन का प्रचुर प्रचार है। 'दशावतार' तथा 'यक्षज्ञान' में भी 'यात्रा' का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकनाट्यों का विकास धार्मिक आंदलनों से प्रेरणा प्राप्त कर हुआ है।

(३) लोकनाट्यों की विशेषताएँ—लोकनाट्य की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोकजीवन से इनका अत्यंत घनिष्ट संबंध है। यही कारण है कि लोक से संबंधित उत्सवों, अवसरों तथा मांगलिक कार्यों के समय इनका अभिनय किया जाता है। विवाह के अवसर पर अनेक जातियों में स्त्रियाँ बारात बिदा हो जाने पर स्वाँग का अभिनय करती हैं। चाँदनी रात में बालकगण परंपरागत अभिनय प्रस्तुत करते हैं।

(४) भेद—लोकनाट्य को हम प्रधानतया दो भागों में विभक्त कर सकते हैं : (१) प्रहसनात्मक, (२) नृत्यनाट्यात्मक (डांस ड्रामा)। प्रथम में जनमन के अनुरंजन के लिये किसी ऐसी घटना को अभिनय का विषय बनाया जाता है जिसे सुन तथा देखकर दर्शक हँसते हँसते लोटपोट हो जायँ। लखनऊ तथा बनारस के भाँड़ ऐसे प्रहसनों के अभिनय में अत्यंत प्रवीण समझे जाते हैं। इसमें नृत्य का अभाव रहता है। नट अपनी वाणी तथा अभिनय की मुद्रा से जनता के हृदय में हास्यरस का संचार करते हैं। दूसरे प्रकार के लोकनाट्य वे हैं जो किसी सामाजिक अथवा पौराणिक घटना को लेकर अभिनीत किए जाते हैं। इनमें संगीत, नृत्य तथा अभिनय की त्रिवेणी प्रवाहित रहती है। भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित 'बिदेसिया' लोकनाट्य इसका सुंदर उदाहरण है। इसमें किसी विरहिणी स्त्री का चित्रण किया गया है जो अपना दुःखद समाचार किसी बटोही के द्वारा अपने परदेसी पति के पास भेजती है। इस नाटक को खेलनेवाले अभिनय के साथ साथ नृत्य भी करते जाते हैं। संभाषण के बीच बीच में गीत भी गाते हैं। इस प्रकार गीत, नृत्य तथा अभिनय सब मिलकर एक अजीब समाँ बाँध देते हैं। दर्शकगण इस लोकनाट्य को रात रात भर देखते हैं फिर भी उनके मन की तृप्ति नहीं होती।

लोकनाट्यों की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा :

(क) भाषा—लोकनाट्यों की भाषा बड़ी सरल तथा सीधी सादी होती है जिसे कोई भी अनपढ़ व्यक्ति बड़ी आसानी से समझ सकता है। जिस प्रदेश या क्षेत्र में इन नाटकों का अभिनय होता है, नट लोग प्रायः वहाँ की ही क्षेत्रीय बोली (रीजनल डाइलेक्ट) का प्रयोग करते हैं। इससे अभिनय समस्त जनता के लिये बोधगम्य हो जाता है। इनकी भाषा में किसी प्रकार की सजावट या बनावट नहीं होती। दैनिक क्रियाकलाप में जिस भाषा का वे व्यवहार करते हैं उसी का प्रयोग अभिनय करते समय भी किया जाता है। ये प्रायः गद्य का ही उपयोग करते हैं परंतु बीच बीच में गीत भी गाते हैं।

(ख) संवाद—लोकनाट्यों के संवाद बहुत छोटे तथा सरल होते हैं। कहीं कहीं तो प्रश्न तथा उत्तर दो तीन शब्दों में ही सीमित रहता है। लंबे कथोपकथनों का इनमें नितांत अभाव होता है। ग्रामीण जनता में लंबे संवाद सुनने के लिये धैर्य नहीं होता अतः नाटकीय पात्र अपने संवादों को अत्यंत संक्षिप्त रूप में ही प्रयोग में लाते हैं।

(ग) कथानक—लोकनाट्यों का कथानक प्रायः ऐतिहासिक, पौराणिक या सामाजिक होता है। धार्मिक कथावस्तु को लेकर भी अनेक नाटक खेले जाते हैं।

बंगाल की 'जात्रा' और 'कीर्तन' का स्रोत धार्मिक है। राजस्थान में अमरसिंह राठौर की ऐतिहासिक कथा का अभिनय किया जाता है। केरल प्रदेश में प्रचलित 'यक्षगान' नामक लोकनाट्य का कथानक प्रायः पौराणिक होता है। उत्तरप्रदेश की रामलीला तथा रासलीला भगवान् राम तथा कृष्ण की कथा से संबंधित है। नौटंकी तथा स्वाँग की कथावस्तु समाज से अधिक संबंध रखती है।

(घ) पात्र—लोकनाट्यों में प्रायः पुरुष ही विभिन्न पात्रों का काम करते हैं। स्त्री पात्रों का कार्य भी पुरुष ही संपादित करते हैं। अब कुछ लोकनाट्य मंडलियों ने साधारण जनता को आकर्षित करने तथा धन कमाने के लिये इन नाटकों में सुंदरी लड़कियों का उपयोग प्रारंभ कर दिया है। लोकनाट्यों के पात्र अपनी वेशभूषा की अपेक्षा अपने अभिनय द्वारा ही लोगों को आकृष्ट करने की चेष्टा करते हैं। जिन पात्रों की अवतारणा इन नाटकों में की जाती है वे समाज के चिरपरिचित व्यक्ति होते हैं—जैसे गाँव का मक्खीचूस बनिया, खूसट बुड्ढा, छैला युवक, दुष्टा सास, कुलटा स्त्री, शराबी पति, पाखंडी साधु, अत्याचारी अफसर आदि।

(ङ) चरित्रचित्रण—लोकनाट्यों में चरित्रचित्रण बड़ा स्वाभाविक होता है। पात्रों के कथन से ही व्यक्ति के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। विदूषक अपने हावभाव तथा मुद्राओं से अपने चरित्र को सार्थक बनाने की चेष्टा करता है। स्त्रियों का चरित्रचित्रण प्रायः पुरुष ही किया करते हैं, अतः उसमें सजीवता का अभाव रहता है।

(च) रूपयोजना—इन नाटकों में किसी विशेष प्रकार के प्रसाधन, अलंकार, बहुमूल्य वस्त्र आदि की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, काजल, खड़िया आदि देशी प्रसाधनों से मुख को प्रसाधित कर तथा उपयुक्त वेशभूषा धारणकर पात्र मंच पर आते हैं।

(छ) रंगमंच—लोकनाट्य खुले हुए रंगमंच पर हुआ करते हैं। जनता मैदान में आकाश के नीचे बैठकर नाटक का अभिनय देखती है। किसी मंदिर के आगे का ऊँचा चबूतरा या ऊँचा टीला ही रंगमंच का काम देता है। कहीं कहीं काठ के ऊँचे तख्ते बिछाकर मंच तैयार कर लिया जाता है। इन रंगमंचों पर परदे नहीं होते अतः दृश्य की समाप्ति पर कोई परदा नहीं गिरता। सारी कथा अविच्छिन्न रूप से अभिनीत की जाती है तथा दर्शक उसे बड़े धैर्य से देखते हैं। पात्रगण अपना प्रसाधन किसी पेड़ या दीवाल की आड़ में बैठकर करते हैं जो उनके लिये 'ग्रीन रूम' का काम करता है।

(५) कुछ प्रसिद्ध लोकनाट्य—भारत के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न प्रकार के लोकनाट्य प्रचलित हैं। उत्तर भारत में प्रचलित रामलीला और रासलीला

की चर्चा पहले की जा चुकी है। मध्यभारत (मालवा) में 'माच' नामक लोकनाट्य प्रसिद्ध है। माच शब्द 'मंच' का अपभ्रंश रूप है। मंच चारों ओर से खुला रहने के कारण इसमें नेपथ्य नहीं होता। दर्शकगण कहीं से भी बैठकर नाटक की संपूर्ण गतिविधि को देख सकते हैं। माच की संवादयोजना, शब्दव्यंजना तथा अभिनय बहुत सुंदर होता है। संगीत इसका प्राण है।

राजस्थान में माच 'ख्याल' के रूप में प्रचलित है। इसका प्रारंभ १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जाता है। मालवा में माचों की परंपरा आरंभ से ही अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों में नौटंकी का बड़ा प्रचार है। हाथरस की नौटंकी बड़ी प्रसिद्ध है। नौटंकी, जिसकी उत्पत्ति कुछ विद्वान् 'नाटकी' शब्द से बतलाते हैं, का इतिहास बहुत पुराना है। उत्तरप्रदेश में 'नौटंकी' को 'स्वाँग' या 'भगत' भी कहते हैं। स्वाँग ठेठ ग्रामीण मनोरंजन है। इसमें अश्लीलता का पुट होता है। व्रजमंडल में खुले रंगमंच पर नौटंकी के ढंग पर 'भगत' होती है। 'भगतों' में विविध प्रकार की लीलाएँ खेली जाती हैं। स्वाँग का इनमें पूरी तरह से समावेश है।

गुजरात में 'भवाई' नामक लोकनाट्य अत्यंत प्रसिद्ध है। इसका अभिनय करने के लिये किसी भी ऊँची भूमि, मंदिर अथवा घर के चबूतरे पर रंगमंच अस्थायी रूप से तैयार किया जाता है। संस्कृत नाटकों की भाँति न तो यह अंकबद्ध होता है और न इसमें कथावस्तु का व्यवस्थित रूप से तारतम्य ही पाया जाता है। भवाई की प्रसिद्धि उसकी वेशभूषा, दैनिक जीवन से संबंधित घटनाओं के अभिनय और धार्मिक कथाओं के विश्वास पर आश्रित है। दो तीन व्यक्ति कपड़ा फैला (तान) कर खड़े हो जाते हैं तथा तबले, नगाड़े एवं अन्य तेज आवाजवाले वाद्यों के साथ कभी संमिलित स्वर में, कभी स्वतंत्र रूप से अभिनेता गा गाकर अभिनय करते हैं। इसमें भी स्त्रियों का अभिनय पुरुष ही करते हैं। भवाई लोकनाट्य साधारण जनता के मनोरंजन का सबसे प्रधान साधन है। इसमें अश्लीलता का पुट अधिक होने के कारण आधुनिक शिक्षित लोगों की रुचि इससे हटती जा रही है।

बंगाल की 'जात्रा' का उल्लेख भी पहले किया जा चुका है। 'गंभीरा' लोकनाट्य का दूसरा रूप है जो इस प्रदेश में प्रचलित है। यह शाक्त मतावलंबियों से संबंधित है। शिव की लीलाएँ अभिनीत करने के लिये भक्तगण मुँह पर विभिन्न प्रकार के चेहरे लगाकर मंच पर आते हैं। ये लीलाएँ प्रायः रात्रि में की जाती हैं। शिवरूप अभिनेता जनता को प्रणाम कर ढाक (एक प्रकार का वाद्य) की आवाज पर नृत्य आरंभ करता है। गायकों का मंडल उसके पीछे गाता है। नृत्य की गति आरंभ में मंद और अंत में द्रुत हो जाती है।

महाराष्ट्र में तमाशा, ललित, गोंधल, बहुरूपिया और दशावतार मराठी रंगमंच के आधार हैं। तमाशा महाराष्ट्र का प्राचीन लोकनाट्य है। तमाशा करने

वाली मंडली 'फड़' कहलाती है। 'फड़' का मुखिया सरदार कहलाता है। इस 'फड़' में ढोलकिया, सोंगड़िया (विदूषक), नचिया, नर्तकी और 'सुरतिया' (स्वर भरनेवाला) आदि होते हैं। नर्तकी तमाशा का प्राण होती है। नर्तकी अपनी भावभंगिमाओं तथा मधुर गीत से ग्रामीण जनता के हृदय को आकृष्ट कर लेती है।

ललित मध्ययुगीन धार्मिक नाट्य है। यह नवरात्र संबंधी विशिष्ट कीर्तन है है जिसमें भक्तों के स्वाँग आदि दिखलाए जाते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि ललित में कीर्तन की मात्रा कम होती गई और कालांतर में स्वाँग संबंधी विशेषताएँ ही नाटकीय रूप में प्रचलित हो गईं। कुछ विद्वानों का यह मत है कि गोंधल ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों को जन्म दिया है।

गोंधल धर्ममूलक लोकनाट्य है। महाराष्ट्र में इसका आनुष्ठानिक महत्व है। विवाहादि अवसर पर गोंधल की व्यवस्था की जाती है। मंडप के नीचे वस्त्र बिछाकर आम्रपत्रों तथा कलश सहित अंबा की प्रतिष्ठा करके गोंधल प्रारंभ किया जाता है। ग्रामीण वाद्यों के साथ 'पवाड़े' आदि गाए जाते हैं। गोंधल का अभिनय बड़ा मनोरंजक होता है।

यक्षगान दक्षिण भारतीय लोकनाट्य का वह प्रकार है जो तामिल, तेलुगु तथा कन्नड भाषाभाषी क्षेत्र की ग्रामीण जनता में प्रचलित है। तेलुगु में इसे 'विथि' या 'विथि भागवतम्' कहते हैं। यक्षगान की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। यह नृत्यनाट्य है जिसमें गीतबद्ध संवादों का प्रयोग होता है। लंबे लंबे बोल पात्रों को सहज ही कंठस्थ रहते हैं। इनमें वर्णन का प्राधान्य होता है। यक्षगान नाटकों की कथावस्तु प्रायः रामायण, महाभारत और भागवत से ली जाती है। परंतु कहीं कहीं कथानकों का आधार सामाजिक जीवन भी होता है।

'विथि नाटकम्' या 'विथि भागवतम्' तेलेगु का लोकनाट्य है। यक्षगान की अनेक विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं। 'विथि नाटकम्' का शाब्दिक अर्थ है वह नाटक जो मार्ग में प्रदर्शित किया जा सके। अतः यह स्पष्ट है कि ये नाटक लोकरंजन के प्रबल साधन हैं। इस नाटक में एक या दो ही पात्र रंगमंच पर आते हैं। स्त्रियाँ सामूहिक रूप से नृत्य करती हैं। कृष्णलीला को नृत्य और अभिनय द्वारा बड़ी सफलता से 'विथि नाटकम्' का विषय बनाया गया है। इसका मंच किसी मंदिर के खुले भाग में अथवा किसी ऊँचे स्थान पर बनाया जाता है। यक्षगान की तुलना में 'विथि नाटकम्' अधिक ग्रामीण है[१]।

[१] इस प्रकरण की अधिकांश सामग्री डा० श्याम परमार लिखित 'लोकधर्मी नाट्यपरंपरा' नामक पुस्तक से ली गई है, अतः लेखक उनका अत्यंत आभारी है।

६. लोकसुभाषित

संस्कृत में सुंदर तथा काव्यमयी उक्तियों को सुभाषित कहते हैं। अतः जिस उक्ति में कुछ चमत्कार हो वह सुभाषित के अंतर्गत आ सकती है। साधारण जनता अपने दैनिक व्यवहार में कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करती है। मनोरंजन के लिये पहेलियाँ भी बुझाई जाती हैं। बालकगण 'बुझौवल' बुझाने में बड़ा आनंद लेते हैं। अनुभवी किसानों ने वर्षा तथा कृषि संबंधी अपने अनुभवों को सूक्तियों के रूप में व्यक्त किया है। हिंदी में घाघ और भड्डरी की सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। माताएँ छोटे बच्चों को पालने पर सुलाकर गीत गाती हैं। वे उन्हें लोरियाँ भी सुनाती हैं। बच्चे खेल खेलते समय कुछ गीत भी गाते रहते हैं जिसमें उन्हें बड़ा रस मिलता है। लोरियाँ, शिशुगीत तथा खेल के गीत बच्चों से संबंधित हैं। लोकसाहित्य की उपर्युक्त सभी विधाओं को 'लोकसुभाषित' के अंतर्गत रखा गया है जिनका संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जाता है।

(१) लोकोक्तियाँ—

(क) परिभाषा—लोकसाहित्य में लोकोक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा वस्तुकथन में तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। लोकोक्तियाँ अनुसिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिर अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। इनका प्रधान उद्देश्य समासरूप में चिरसंचित अनुभवजन्य ज्ञानराशि का प्रकाशन है। शताब्दियों से किसी जाति या राष्ट्र की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है यदि इसका दर्शन करना हो तो उसकी लोकोक्तियों का अध्ययन करना वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है।

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकोक्तियों की परिभाषा विभिन्न प्रकार से बतलाई है। जार्जिया देश की लोकोक्तियों के संबंध में एक विद्वान् का मत है कि लोकोक्तियाँ वे संक्षिप्त सुभाषित हैं जिनमें नैतिक विचारों तथा लौकिक ज्ञान का ही—जो जनता के चिरकालीन निरीक्षण तथा अनुभव से प्राप्त होती हैं—वर्णन नहीं है, बल्कि इसके अतिरिक्त वे संस्कृति के तत्व, पौराणिक कथाओं के स्वरूप तथा ऐतिहासिक घटनाओं पर भी प्रकाश डालती हैं[1]।

[1] प्रोवर्ब्स आर शार्ट सेइंग्स हिच रिफ़्लेक्ट नाट ओनली मारल कंसेप्शंस ऐंड रूल्स आव् वर्ल्डली विज्डम, डिडक्टेड बाइ पीपुल फ्राम एक्सपीरियंस ऐंड आबजरवेशन बट आलसो रिवील ट्रेसेज आव् कल्चर, नेचर आव् थियोगोमिक मिथ्स ऐंड आव हिस्टारिकल इवेंट्स।—ए० गुगुशविली : रेशल प्रोवर्ब्स, चैंपियन द्वारा संपादित।

जर्मनी की लोकोक्तियों के संबंध में प्रो० ओटो हाफलेर ने लिखा है कि लोकोक्तियों में प्रतीकवाद केंद्रित रूप में उपलब्ध होता है जिसका अतिक्रमण सुंदरतम पद्यात्मक पदावली भी नहीं कर सकती। इन लोकोक्तियों में मानव जाति की प्रथाओं, घटनाओं, तथा उनके गुणदोषों का वर्णन दैनिक जीवन के अनुभवों के द्वारा किया जाता है[1]। एक अन्य विद्वान् के मतानुसार यह कथन अधिक सत्य होगा कि लोकोक्ति एक संक्षिप्त, चुभता हुआ, जीवन का सुंदर सूत्र है जो जनता की जिह्वा पर निवास करता है तथा जो व्यावहारिक जीवन के निरीक्षण, शाश्वतिक अनुभूति या जीवन के सच्चे नियम को प्रकाशित करता है[2]। इस प्रकार लोकोक्तियों में मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की अनुभूति पूंजीभूत रूप में उपलब्ध होती है।

(ख) प्राचीनता—लोकोक्तियों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। सच तो यह है कि मानव ने जबसे वाणी का व्यवहार करना सीखा तभी से वह लोकोक्तियों का प्रयोग करने लगा। संसार का सबसे प्राचीन साहित्य वेद है। इसमें लोकोक्तियों का अक्षय भांडार भरा पड़ा है :

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।[3]
अदीनाः स्याम शरदः शतम्।[4]
न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।[5]

आदि वैदिक सूक्तियों में प्राचीन ऋषियों के जीवन की अनुभूति भरी पड़ी है। त्रिपिटक तथा जातक कथाओं में इनकी प्रचुरता पाई जाती है। वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य में तथा महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्री संहिता में लोकोक्तियों का प्रयोग कर अपनी कृतियों को मनोरमता प्रदान की है। महाकवि कालिदास सुभाषितों के प्रयोग के लिये प्रसिद्ध हैं। 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' लिखनेवाला कवि यह अच्छी तरह जानता था कि तत्व से रहित मनुष्य लघु

[1] दि प्रोवर्ब इज ए मास्टरपीस आव् कानसेंट्रेटेड सिंबालिज्म अनसरपास्ड बाइ दि च्वायसेस्ट, दि मोस्ट रिफाइंड वर्स इपिग्राम ऐंड इट इज ओनली इन रेयर ऐंड फार्चुनेट मोमेंट्स दैट अवर सो काल्ड फिलासफी एटेंस टु दि सिंपुल क्रशिंग फोर्स दैट गिव्ज इम्मार्टैलिटी टु मेनी ए प्रोवर्ब। दि कस्टम्स ऐंड एफेयर्स आव् मैनकाइंड, देयर फालीज, देयर फाल्ट्स आर इलस्ट्रेटेड बाइ सिंपुल सेल्फ इविडेंट कंपेरिजन फ्राम लाइफ इन जेनेरल, आर फ्राम एव्रीडे एक्सपीरियंस।—डा० चैंपियन : रेशियल प्रोवर्ब्स, भूमिका।

[2] वही।

[3] अथर्ववेद ७.५२।८

[4] यजुर्वेद ३६।२४

[5] ऋ० वे० ४।३३।११

होता है तथा पूर्णता से युक्त व्यक्ति गौरव को प्राप्त करता है—रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय। महाकवि भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों में लोकोक्तियों का प्रयोग बड़ी सुंदर रीति से किया गया है। नैषधीय चरित के रचयिता ने 'हृदे गंभीरे हृदि चावगाढे शंसंति कार्यावतरं हि संतः' लिखकर बड़े ही पते की बात कही है।

अदृष्टमत्पर्थमदृष्ट वैभवात्
करोति सुप्तिर्जनदर्शनातिथिम्।

के लेखक ने मनोविज्ञान के एक बहुत बड़े तथ्य का उद्घाटन किया है। भारतचंपू के लेखक महाकवि राजशेखर ने प्राकृत भाषा में लिखे गए कर्पूरमंजरी नामक सट्टक में 'हत्थ कंकरा किं दप्पणेण पेक्खी' का उल्लेख किया है जो हिंदी में 'कर कंगन को आरसी क्या ?' इस रूप में प्रचलित है।

संस्कृत के कथासाहित्य में लोकोक्तियों का अक्षय भांडार भरा पड़ा है। कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि कथाग्रंथों में नीति संबंधी सूक्तियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। 'आयसैः आयसं छेद्यम्', 'कंटकेनैव कंटकम्' या 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' ऐसी ही उक्तियाँ हैं जो मानव जीवन के ऊपर अपना अमिट प्रभाव डालती हैं।

संस्कृत में लोकोक्ति को सुभाषित या सूक्ति कहते हैं जिसका अर्थ है सुंदर रीति से कहा गया कथन—सुष्ठु भाषितै सुभाषितम्। इस शब्द का प्रयोग नीचे के श्लोक में इस प्रकार किया गया है :

सुभाषितेन गीतेन, युवतीनां च लीलया।
मनो न रमते यस्य, स योगी अथवा पशुः॥

सुंदर रीति से कही गई उक्ति को ही सूक्ति कहते हैं। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात् साधारण मनुष्य व्यवहार में लाने लगते हैं तब इसका नाम लोकोक्ति पड़ जाता है।

भारत की विभिन्न भाषाओं में लोकोक्ति साहित्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। हिंदी की विभिन्न बोलियों—ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, राजस्थानी आदि—की ही लोकोक्तियों का यदि संग्रह किया जाय तो अनेक बृहत् ग्रंथ तैयार हो सकते हैं।

(ग) अन्य देशों के लोकक्तिसंग्रह—संसार के अन्य देशों में भी लोकोक्तियों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन सभ्यता की क्रीडास्थली मिस्रदेश में 'दि बुक आव् दि डेड' (३७०० ईसा पूर्व) संभवतः प्राचीनतम ग्रंथ है। इसमें लोकोक्तियों का प्रयोग पाया जाता है। केगेमी (Ke'gemni) (आविर्भावकाल

३९९८ ईसा पूर्व) तथा ताहहोतेप (Ptah-Hotep) (आविर्भाव ३५५० ईसा० पूर्व) के उपदेशों का स्पष्टीकरण लोकोक्तियों के माध्यम से किया गया है। मिस्रदेश के समाजसुधारक राजा अखनतेन (Akhnaten) (आविर्भावकाल १३८६ ईसा पूर्व) के नैतिक उपदेशों में इनका उपयोग किया गया है[1]। चीन देश में तायो धर्म के संस्थापक लाओ त्सू (Lao Tzu)—जिनका आविर्भाव ६०० ई० पू० से लेकर ५०० ई० पू० माना जाता है—तथा सुप्रसिद्ध चीनी महात्मा एवं धर्मप्रवक्ता कनफ्यूशस (५५१ ई० पू० से ४४७ ई० पू०) के धार्मिक प्रवचनों में भी लोकोक्तियों की उपलब्धि होती है[2]। जरथुस्र धर्म की पुस्तक जेंद अवेस्ता तथा ईसाइयों के धार्मिक ग्रंथ बाइबिल में सूक्तियों का आश्रय लेकर धार्मिक प्रवचनों को मनोरम रूप प्रदान किया गया है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि भारत, मिस्र तथा चीन आदि प्राचीन देशों में लोकोक्तियों का व्यवहार चिरकाल से होता था।

(घ) लोकोक्ति साहित्य की विशालता तथा संसार में उनके संकलन का प्रयास—संसार के विभिन्न देशों में लोकोक्ति साहित्य का जो संकलन तथा प्रकाशन अब तक हुआ है उससे ज्ञात होता है कि यह उस अगाध रत्नाकर के समान है जिसमें से केवल मुट्ठी भर मोती ही चतुर गोताखोर अभी निकाल पाए हैं। स्टीफेन तथा बानसर ने अपनी 'लोकोक्ति-ग्रंथ-सूची' नामक पुस्तक में लिखा है कि केवल यूरोप में जिन लोकोक्तियों का अब तक संग्रह हुआ है उनकी संख्या करोड़ों में कूती है। श्रीमती टुओमिकोस्की का कथन है कि फिनलैंड की फिनिश लिटरेचर सोसाइटी तथा 'डिक्शनरी एंडाउमेंट' के कार्यालय में जितनी फिनिश लोकोक्तियाँ संग्रहीत हैं उनकी संख्या १४,५०,००० से भी अधिक है[3]। इस्टोनिया देश की 'इस्टोनियन फोकलोर सोसाइटी' के प्राचीन लेखादि संग्रहालय (आर्काइव्स) में १,१०,००० लोकोक्तियाँ संकलित कर सुरक्षित की गई हैं। ए० गुरशून की धारणा है कि महान् रूसी भाषा में ६०,००० लोकोक्तियों का संग्रह विद्वानों ने किया है। सन् १८८० ई० में जर्मनी के लोकसाहित्य के उत्साही अनुसंधानकर्ता कार्ल वंडेर ने अपने सुप्रसिद्ध 'लोकोक्ति संग्रह-कोश' का पाँच बृहत् भागों में निर्माण किया जिसमें जर्मन भाषा की ५०,००० लोकक्तियों का संकलन प्रस्तुत है। सन् १९३७ ई० में चीन देश की ७०० कहावतों का संग्रह किया गया था। इस ग्रंथ की भूमिका में पैट्रिक पिचीसन ने लिखा है कि इस देश में २०,००० से भी अधिक लोकोक्तियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

[1] डा० चैंपियन : रेशल प्रावर्ब्स, भूमिका।
[2] वही।
[3] डा० चैंपियन : रेशल प्रावर्ब्स, भूमिका भाग।

हंगरी देश में सन् १५७४ ई० में इरेसमस तथा सन् १५६८ ई० में जान डेकसी ने लोकोक्तिसंग्रह का श्रीगणेश किया था। सन् १८२० ई० में ऐंड्रू दुगोनिक्स ने हंगरी की १२,००० चुनी हुई कहावतों का संकलन बड़े परिश्रम से किया था। इनको ४६ श्रेणियों में इन्होंने विभक्त किया था। परंतु इन लोकक्तियों का सबसे विशाल संग्रह प्रस्तुत करने का श्रेय मारगेलिस्स को प्राप्त है जिन्होंने २०,००० कहावतों का सन् १८६६ ई० में बुडापेस्ट से प्रकाशन किया था। अहमत मितात ने सन् १८८० ई० में ४,३०० तुर्की लोकोक्तियों का संग्रह किया जिसे पादरी डेवीज ने 'ओसमनली प्रोवर्ब्स' के नाम से पुनर्मुद्रित किया था। अरब की कहावतों को सुरक्षित करने का श्रेय अलमदानी (सन् ११२४ ई०) को प्राप्त है। इनके ग्रंथ का लैटिन भाषा में अनुवाद 'अरेबिनम प्रोवर्बिया' के नाम से फ्रेयताग ने तीन भागों में सन् १८४३ में प्रकाशित किया। मोरक्को की २००० मूरिश लोकोक्तियाँ प्रो० वेस्टरमार्क के प्रयास से 'विट ऐंड विजडम इन मोरक्को' के नाम से प्रस्तुत की गई हैं[1]।

स्कैंडिनेवियन देशों में भी लोकोक्तिसंग्रह का कार्य बहुत दिनों से हो रहा है। इस देश के सबसे प्रथम संग्रहकर्ता ग्रुव मेयर हैं जिनकी पुस्तक 'पेन प्रोवर्बियल' सन् १६५६ ई० में प्रकाशित हुई थी। फ्रेडरिक स्ट्राम ने सन् १६२६ ई० में स्वीडेन की ७००० कहावतों का संकलन किया। परंतु इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य कार्ल बैकस्ट्राम का है जिन्होंने सन् १६२८ ई० में स्टाकहोम के राजकीय पुस्तकालय को स्वेडिश, जर्मन, फ्रेंच तथा अँग्रेजी भाषा की ३०,००० लोकोक्तियाँ संग्रह कर प्रदान कीं।

संसार के लोकोक्ति साहित्य के सम्यक् अनुशीलन के लिये स्टीफेंस तथा बानसर की 'प्रोवर्ब लिटरेचर' (लंडन, १६२८) नामक पुस्तक अद्वितीय है। परंतु इस दिशा में सबसे उपादेय तथा प्रामाणिक ग्रंथ डा० चैंपियन द्वारा संपादित 'रेशल प्रोवर्ब्स' है जिसमें विद्वान् संपादक ने बड़े परिश्रम के साथ संसार भर की १८६ भाषाओं तथा बोलियों से चुनी हुई २६,००० सुंदर लोकोक्तियों का संग्रह प्रस्तुत किया है[2]। इस पुस्तक में अधिकारी विद्वानों द्वारा विभिन्न संग्रहों के विषय में परिचयात्मक भूमिकाएँ भी लिखी गई हैं जो विद्वत्तापूर्ण तथा उपयोगी हैं। डा० चैंपियन का यह प्रयास अपने ढंग का अद्वितीय है।

(ङ) भारतीय भाषाओं में लोकोक्तियों का संग्रह—भारतीय भाषाओं में भी लोकोक्तियों के संग्रह पाए जाते हैं। परंतु इस दिशा में भारतीय विद्वानों का

[1] वही।

[2] रूटलेज ऐंड केगन पाल, लिमिटेड, लंदन, सन् १६५०

ध्यान उतना आकृष्ट नहीं हुआ है जितना लोकगीतों के संकलन में। गत शताब्दी के उत्तरार्ध में विदेशी विद्वानों ने लोकोक्तियों के महत्व को समझा तथा इनको प्रकाश में लाने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया। कैप्टन कार ने सन् १८६८ ई० में कुछ तेलुगु तथा संस्कृत की लोकोक्तियों का प्रकाशन किया[1]। इसके अगले वर्ष ही, सन् १८६६ में, तेलुगु की कहावतों का दूसरा संग्रह प्रकाश में आया[2]। जे० क्रिश्चियन ने बिहारी लोकोक्तियों का[3] तथा राजचंद्र दत्त ने बंगाली लोकोक्तियों के आकलन का प्रशंसनीय कार्य किया[4] हिंदी लोकोक्तियों के संबंध में फैलेन की 'ए डिक्शनरी आव् हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स' अद्वितीय पुस्तक है[5] जिसमें इस शोधी संग्रहकर्ता ने हिंदी की विभिन्न बोलियों की लोकोक्तियों का उदाहरणसहित विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। पं० गंगादत्त उपरेती ने कुमाऊँ तथा गढ़वाल की कहावतों के ऊपर अच्छा काम किया है[6]। इन्होंने विषयक्रम से कहावतों का श्रेणीविभाजन कर अँग्रेजी भाषा में उनका अनुवाद भी किया है।

उपरेती जी की उपर्युक्त पुस्तक आज भी अपने विषय का एक ही ग्रंथ है। श्री रुचिराम गजुमल के द्वारा किया गया सिंधी भाषा के सुभाषितों का संकलन प्रारंभिक होते हुए भी सुंदर है[7]। पर्सीवल ने तामिल लोकोक्तियों का संग्रह किया है[8]। सर रिचर्ड टेंपुल तथा ओसबर्न ने पंजाबी लोकोक्तियों को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है[9]। नोवेल्स का काश्मीरी कहावतों का कोश विशेष महत्वपूर्ण है[10]।

(ङ) हिंदी क्षेत्र में कार्य—इस दिशा में भी यूरोपीय विद्वानों ने ही सर्वप्रथम कार्य किया है। फैलन की 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। जानसन ने हिंदी की कुछ लोकोक्तियों को अँग्रेजी अनुवाद के साथ

[1] ट्रुबनर, लंडन, १८६८ ई०।
[2] सी० के० रास, मद्रास, १८६६।
[3] बिहार प्रोवर्ब्स, केगन पाल, लंडन, १८६१ ई०।
[4] सम चीटागाँव प्रोवर्ब्स, कलकत्ता, १८६७ ई०।
[5] लंडन, सन् १८८६ ई०।
[6] प्रोवर्ब्स ऐंड फोकलोर आव् कुमाऊँ ऐंड गढ़वाल, लोदियाना, सन् १८६४ ई०।
[7] ए हैंडबुक आव् सिंधी प्रोवर्ब्स, कराची, सन् १८६५ ई०।
[8] रेवरेंड पी० पर्सीवल : तामिल प्रोवर्ब्स, मद्रास, सन् १८७४
[9] सी० एफ० ओसबर्न : पंजाबी लिरिक्स ऐंड प्रोवर्ब्स, लाहौर, सन् १६०५ ई०।
[10] रेवरेंड जे० एच० नोवेल्स : ए डिक्शनरी आव् काश्मीरी प्रोवर्ब्स ऐंड सेइंग्स, एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बंबई, १८८५ ई०।

प्रकाशित किया था[1]। श्री लेन की पुस्तक विशेष रूप से महत्वपूर्ण है[2]। ओल्डम ने शाहाबाद (बिहार) जिले की कहावतों का संग्रह इंगलैंड की 'फोकलोर' नामक शोधपत्रिका में छपवाया था[3]। 'ओझा-अभिनंदन-ग्रंथ' में श्रीमती सुमित्रादेवी शास्त्रिणी ने 'देरेवाली कहावतें' शीर्षक एक लंबा लेख लिखा है[4]। श्री शालिग्राम वैष्णव ने 'गढ़वाली भाषा में पखाणा' लिखकर गढ़वाली लोकोक्तियों पर प्रचुर प्रकाश डाला है[5]। श्री रतनलाल मेहता की 'मालवी कहावतें' तथा डा० सत्येंद्र की 'व्रज की कहावतें' इस दिशा में समुचित प्रयत्न कही जा सकती हैं। डा० उदयनारायण तिवारी ने भोजपुरी लोकोक्तियों का संकलन सन् १९३९ ई० में प्रयाग की 'हिंदुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित किया था। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ तथा भड्डरी की कहावतों का परिश्रम के साथ संकलन किया है[6]। 'हमारा ग्रामसाहित्य' में भी लोकोक्तियों का संक्षिप्त संग्रह विद्यमान है।

(च) लोकोक्तियों की विशेषताएँ—लोकोक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता है इनकी समास शैली। कहावतें आकार में छोटी होती हैं परंतु इनमें विशाल भावराशि सिमटी रहती है। उदाहरण के लिये 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' यह छोटी सी लोकोक्ति लीजिए; इससे कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का स्पर्शविचार, भोजनव्यवस्था तथा सामाजिक परंपरा का ज्ञान होता है। 'चार कवर भीतर, तब देवता पीतर' अर्थात् भर पेट भोजन के पश्चात् ही देवपूजा की चिंता करनी चाहिए। इस कहावत में चार्वाक का निम्नांकित सिद्धांत सूत्ररूप में अभिव्यक्त हुआ है :

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्,
ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

लोकोक्तियों की दूसरी विशेषता अनुभूति और निरीक्षण है। इनमें मानवजीवन की युग युग की अनुभूतियों का परिणाम तथा निरीक्षण शक्ति अंतर्निहित है। काशी में निवास के संबंध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है :

राँड़, साँड़, सीढ़ी संन्यासी;
इनसे बचे तो सेवै कासी।

१ डब्ल्यू० एफ० जानसन : हिंदी प्रोवर्ब्स विद इंगलिश ट्रांसलेशन, इलाहाबाद, १८९८

२ जे० जी० एम० लेन : ए कलेक्शन आव् हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स, मद्रास, सन् १८७० ई०।

३ 'फोकलोर' भाग ४१, लंडन, सन् १९६० ई०।

४ हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग से प्रकाशित।

५ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० १९९४ वि०।

६ हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें सत्य का बहुत कुछ अंश विद्यमान है। शताब्दियों के निरीक्षण तथा अनुभव के बाद ही इसकी रचना की गई होगी।

घाघ और भड्डरी के नाम से हिंदी में बहुत सी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं जिनमें ऋतु तथा खेती संबंधी अनेक उक्तियाँ कही गई हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों व्यक्तियों ने अपनी पैनी निरीक्षण शक्ति के बल से ऋतु संबंधी तथ्यों का अनुसंधान करके ही इनका निर्माण किया होगा। प्राचीन काल में जब वेधशालाएँ नहीं थीं तब ऋतु में होनेवाले परिवर्तन का ज्ञान निरीक्षण के आधार पर ही लोगों को होता था। आकाश में चमकनेवाली चंचला (बिजली) के रंग को देखकर निरीक्षण शक्ति से संपन्न चतुर व्यक्ति आनेवाले प्रभंजन तथा भविष्य में पड़नेवाले अकाल की घोषणा किया करते थे। उदाहरणार्थ:

वाताय कपिला विद्युत्, आतपायातिलोहिनी।
कृष्णा भवति सस्याय, दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

अतीत काल में ये ऋतुविशेषज्ञ किसी यंत्र की सहायता से नहीं, अपितु अपनी अनुभूति के बल से ही ऐसी सूचना दिया करते थे।

लोकोक्तियों की तीसरी विशेषता है सरलता। कहावतें बड़ी ही सरल भाषा में निबद्ध की जाती हैं जिससे सुनते ही उनका भावार्थ हृदयंगम हो जाता है। इनकी सरलता ही इनकी प्राभावोत्पादकता का कारण है। जो विषय अर्थ की कठिनता के कारण समझ में नहीं आता उसका हृदय पर प्रभाव भी नहीं पड़ता परंतु लोकोक्तियाँ अपनी सरलता तथा सरसता के कारण हृदय पर सीधे चोट करती हैं। जैसे—

नसकट पनही, बतकट जोय;
जो पहिलौंठी बिटिया होय।
पातर कृषी, बौरहा भाय,
घाघ कहैं दुख कहाँ समाय।

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पैर की नस को काटनेवाला जूता और बात को काटनेवाली (लड़ाकू) स्त्री कितनी दुःखदायी होती है। घाघ ने इसी बात को सीधी सादी भाषा में कहा है जिसका प्रभाव ग्रामीण जनों के हृदय पर बहुत ही अधिक पड़ता है।

(६) लोकोक्तियों का वर्गीकरण—लोकोक्तियों में जनजीवन का चित्रण उपलब्ध होता है। अतः इनका वर्ण्य विषय समस्त मानव जीवन है। फिर भी प्रधानतः इनको निम्नांकित पाँच श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:

(१) स्थान संबंधी लोकोक्तियाँ
(२) जाति संबंधी लोकोक्तियाँ
(३) प्रकृति तथा कृषि संबंधी लोकोक्तियाँ
(४) पशुपक्षी संबंधी लोकोक्तियाँ
(५) प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ

बहुत सी लोकोक्तियाँ ऐसी उपलब्ध होती हैं जिनमें किसी देश या स्थान की विशेषताओं का वर्णन होता है। बिहार के तिरहुत (तीरभुक्ति) प्रदेश की विशेषताओं को प्रकाशित करनेवाली यह कहावत कितनी सुंदर बन पड़ी है :

कोकटी धोती, पटुआ साग ;
तिरहुत गीत बड़े अनुराग।
भाव भरल तन तरुणी रूप ,
एतवैत तिरहुत होइछ अनूप ॥

इसी प्रकार बंगालियों की विशेषताएँ प्रकट करनेवाली यह लोकोक्ति कितनी सच्ची और सटीक है :

छाजा, बाजा, केस,
ई बंगाला देस।

जाति संबंधी लोकोक्तियाँ बहुत अधिक पाई जाती हैं। इनमें किसी जाति-विशेष के विशिष्ट गुणों या अवगुणों का वर्णन होता है; जैसे ब्राह्मणों के विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है :

बाभन, कुक्कुर नाऊ।
(आपन) जाति देखि गुर्राऊ ॥

बनियों के संबंध में प्रचलित यह लोकोक्ति कितनी सटीक है :

आमी, नीबू, बानिया।
चाँपे ते रस देय ॥

रिजले ने 'पीपुल्स आव् इंडिया' नामक अपनी पुस्तक में विभिन्न जातियों के संबंध में प्रचलित लोकोक्तियों का अँग्रेजी अनुवाद दिया है।

प्रकृति तथा कृषि से संबंध रखनेवाली लोकोक्तियों से मानव की निरीक्षण शक्ति का पता चलता है। ऋतु विज्ञान की जिन बातों को वैज्ञानिक अपने अनुसंधानों के द्वारा बतलाता है उसे ग्रामीण जन अपने चिरकालीन अनुभव से ज्ञात करता है। पशुपक्षियों के स्वभाव, उनके शारीरिक गुणदोष आदि का उल्लेख भी इनमें होता है। बैल की शारीरिक बनावट से उसकी तेज चाल का अनुमान करता हुआ घाघ कहता है :

सींग मुड़े, माथा उठा; मुँह का होवे गोल।
रोम नरम; चंचल करन, तेज बैल अनमोल॥

प्रकीर्ण कहावतें वे हैं जिनमें विभिन्न विषयों का समावेश होता है। इनके अंतर्गत नीति के वचन, 'नीरोग रहने के नुसखे' आदि आते हैं। नीति के क्षेत्र में घाघ की सूक्तियाँ तो कहीं कहीं चाणक्य की नीति से टक्कर लेती हैं। जैसे :

सधुवै दासी, चोरवै खाँसी, प्रीति बिनासै हाँसी।
घग्घा उनकी बुद्धि बिनासै, खायँ जो रोटी बासी॥

ब्रज में सामान्य भेदों के अतिरिक्त प्रधानतः सात प्रकार की लोकोक्तियाँ और पाई जाती हैं[1]—(१) अनमिल्ला, (२) मेरि, (३) अचका, (४) औठपाय, (५) गहगड्ड, (६) ओलना, (७) खुसि। इससे पता चलता है कि लोकोक्तियों का साहित्य कितना विशाल तथा विपुल है।

(२) मुहावरा—मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है परस्पर बातचीत और सवाल जवाब करना। इसे अँग्रेजी में 'ईडियम' कहते हैं। संस्कृत में इस शब्द के वास्तविक अर्थ को द्योतित करनेवाला कोई शब्द नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसके लिये वाग्रीति या 'रमणीय प्रयोग' का व्यवहार किया है। परंतु वास्तव में ये शब्द उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि इनसे 'मुहावरे' के भाव का सम्यक् प्रकाशन नहीं होता।

मुहावरा किसी भाषा अथवा बोली में प्रयुक्त होनेवाला वह वाक्य-खंड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोकव्यवहार में जिन जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा है, समझा है तथा बार बार उनका अनुभव किया है उनको उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं[2]।

मुहावरों का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितनी भाषा की उत्पत्ति। संस्कृत साहित्य में इनका प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। अत्यंत निबिड़ अंधकार के लिये 'सूचिभेद्यं तमः' तथा अत्यंत शीघ्रता के साथ रात के बीत जाने के लिये 'अक्ष्णोः प्रभातमासीत्' का व्यवहार किया गया है। किसी वस्तु को सामने देखते हुए भी उसके अस्तित्व को स्वीकार न करने के लिये 'गजनिमीलिका' का प्रयोग पंडित लोग किया करते हैं। संस्कृत में कुछ ऐसे भी मुहावरे हैं जिनकी परंपरा हिंदी में अक्षुण्ण रूप में बनी हुई है। बिना समझे बूझे अंधविश्वास के कारण किसी कार्य

[1] इसके विशेष वर्णन के लिये देखिए—डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ५३७–४२

[2] पं० रामनरेश त्रिपाठी : त्रिपथगा, अंक ६ (मार्च, १९५६), पृ० ३०

को सामूहिक रूप से करने के लिये 'गड्डुलिकाप्रवाहः' शब्दावली व्यवहृत होती है। यह मुहावरा 'भेड़ियाधसान' के रूप में हिंदी में वर्तमान है।

लोकसाहित्य में मुहावरों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। गाँव के लोग मुहावरों की ही भाषा में बातें करते हैं। हिंदी की विभिन्न बोलियों—ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी—में मुहावरों का अक्षय भांडार उपलब्ध होता है। यदि इनका ग्रहण हिंदी में किया जाय तो हमारी राष्ट्रभाषा का साहित्य अत्यंत समृद्ध होगा। मुहावरों का प्रयोग बड़ा व्यापक है। हमारे जीवन का ऐसा कोई विभाग नहीं जिसके वर्णन में इनका उपयोग न किया जाता हो। हजारों वर्षों से बोलचाल में प्रति दिन प्रयुक्त होने के कारण ये मानव जीवन के साथी बन गए हैं।

(क) मुहावरों की विशेषताएँ—मुहावरे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी वाक्य का अंगीभूत होकर रहता है। जैसे 'आग लगाना' एक मुहावरा है। परंतु इसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जब तक इसका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता तब तक इससे किसी अर्थ की व्यंजना नहीं हो सकती। मुहावरा अपने मूल रूप में ही सदा प्रयुक्त होता है। यदि मूल मुहावरे के स्थान पर उसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाय तो उसकी अभिव्यंजना शक्ति नष्ट हो जाती है। 'कमर टूटना' हिंदी का प्रसिद्ध मुहावरा है। परंतु इसके स्थान पर इसके पर्यायवाची शब्दों 'कटिभंग होना' को लिखा जाय तो यह असली अर्थ को व्यक्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार 'हाथ धोना' मुहावरे के स्थान पर 'हस्तप्रक्षालन' का प्रयोग समुचित अर्थ प्रकट करने में असमर्थ है।

मुहावरों का वाच्यार्थ से विशेष संबंध नहीं होता। लक्षणा द्वारा ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है। 'नौ दो ग्यारह' होना हिंदी का मुहावरा है जिसका अर्थ है 'किसी स्थान से चुपके से चल देना'। यहाँ वाच्य अर्थ से इस मुहावरे के वास्तविक अर्थ का द्योतन नहीं होता।

(ख) जनजीवन का चित्रण—मुहावरों में जनता के जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। सामाजिक प्रथाओं, रूढ़ियों और परंपराओं का इनमें उल्लेख पाया जाता है। जनसाधारण की आर्थिक दशा का चित्रण भी इनमें उपलब्ध होता है। भारतीय इतिहास की अनेक टूटी तथा बिखरी हुई कड़ियाँ इनकी सहायता से जोड़ी जा सकती हैं। भारतीय लोकसंस्कृति का सजीव स्वरूप इनमें दिखाई पड़ता है। विभिन्न जातियों की विशेषताओं पर इनके द्वारा प्रकाश पड़ता है। अतः इनका संकलन एवं अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

(३) पहेलियाँ—

(क) परंपरा—पहेलियों को संस्कृत में 'प्रहेलिका' कहते हैं। इनकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक काल में भी इनकी सत्ता का पता चलता है।

अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ये अनुष्ठान का एक आवश्यक अंग समझी जाती थीं। अश्व की बलि देने के पूर्व 'होता' और ब्राह्मण प्रहेलिका पूछा करते थे जिसे 'ब्रह्मोदय' कहा जाता था। वैदिक ऋषियों ने रूपकालंकार का आश्रय लेकर अनेक ऐसी ऋचाओं की रचना की है जो अर्थ की दुर्बोधता के कारण रहस्यात्मक बन गई है और पहेली के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। ऋग्वेद का यह प्रसिद्ध मंत्र है[1] :

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादाः,
द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रो र वीति,
महादेवो मर्त्यां आविवेश॥

उपर्युक्त मंत्र में वर्णित वृषभ कौन है इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। भिन्न भिन्न विद्वानों ने अपने मतानुसार इसके विभिन्न अर्थ किए हैं। यह मंत्र वास्तव में एक पहेली के समान है जिसके अभिप्राय को समझना सरल नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में सृष्टि का जो वर्णन किया है वह भी बहुत गूढ़ है। जो इस रहस्य को समझनेवाला है वही वेदविद् है[2]।

उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययेम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद सवेदवित्॥

महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न किया था वह भी पहेली की ही कोटि में आता है[3]। यक्ष प्रश्न करता है :

का वार्ता ? किमाश्चर्यं ?
कः पन्था ? कश्च मोदते ?

युधिष्ठिर इन प्रश्नों का सम्यक् उत्तर देते हैं :

संस्कृत साहित्य में प्रहेलिका प्रचुर परिमाण में पाई जाती है जिनको अंतर्लापिका तथा बहिर्लापिका इन दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं जिनमें केवल प्रश्न किया गया है और उनका उत्तर बाहर से देना पड़ता है परंतु अन्य प्रकार की प्रहेलिकाओं में श्लेषालंकार के द्वारा प्रश्नों के भीतर से ही उत्तर निकाला जाता है। इन दोनों प्रकार की पहेलियों के उदाहरण क्रमशः निम्नांकित हैं :

[1] ऋग्वेद।
[2] गीता।
[3] महाभारत।

पञ्चभर्त्री न पाञ्चाली; द्विजिह्वा न च सर्पिणी।
कृष्णमुखी न मार्जारी, यः जानाति स पण्डितः।
का काशी, का मधुरा; का शीतलवाहिनी गङ्गा।
कं संजघान कृष्णः; कं बलवन्तं न बाधते शीतम् ॥

पहेलियाँ वाग्विलास की वस्तु हैं। ये बुद्धि के अन्यतम साधन हैं। जिस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञानवेत्ता प्रश्नों द्वारा किसी बालक की बुद्धि की माप करते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में मनुष्यों की बुद्धिपरीक्षा के लिये इनकी रचना की गई होगी। इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि का व्यायाम भले ही होता हो परंतु इनसे रस की निष्पत्ति नहीं होती। अपनी दुर्बोधता के कारण ये रस की चर्वणा में बाधा उपस्थित करती हैं। इसीलिये प्राचीन आलंकारिकों ने इन्हें अलंकार की कोटि में स्थान नहीं दिया है[1]:

रसस्य परिपन्थित्वात् नालंकारः प्रहेलिका।

(ख) पहेलियों के भेद—जनजीवन से संबंध रखनेवाली सभी वस्तुओं के विषय में पहेलियाँ पाई जाती हैं जिन्हें प्रधानतया सात श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:

(१) खेती संबंधी
(२) भोज्य पदार्थ संबंधी
(३) घरेलू वस्तु संबंधी
(४) जीव संबंधी
(५) प्रकृति संबंधी
(६) शरीर संबंधी
(७) प्रकीर्ण

इनमें से विभिन्न जीव, प्रकृति, शरीर तथा घरेलू वस्तुओं से संबंधित पहेलियाँ अधिक प्रचलित हैं। आकाश के विषय में कही गई यह पहेली प्रसिद्ध है:

एक थाल मोतिन से भरा,
सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर थाल वह फिरै,
मोती उससे एक न गिरै ॥

किसी किसी पहेली में पौराणिक उपाख्यानों की ओर संकेत पाया जाता है, जैसे:

[1] विश्वनाथ कविराज: साहित्यदर्पण।

स्याम बरन मुख उज्जर कित्ते ?
रावन सीस मदोदरि जित्ते।
हनुमान् पिता करि लैहों,
तब राम पिता भरि दैहों॥

इसमें रावण के दस सिर, हनुमान का वायुपुत्र होना तथा राम के पिता दशरथ का उल्लेख किया गया है। पशुपक्षियों के संबंध में भी अनेक पहेलियाँ मिलती हैं।

पहेलियों में लोकसंस्कृति का चित्रण भी उपलब्ध होता है। दीपक की बत्ती को सती स्त्री का प्रतीक मानकर आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति इस पहेली में हुई है :

नाजुक नारि पिया सँग सोती,
अँग सों अंग मिलाय।
पिय को बिछुड़त जानि के,
संग सती हो जाय॥

(ग) ढकोसले—ढकोसले पहेलियों से भिन्न होते हैं। पहेलियों में प्रश्न और उनके उत्तर दोनों ही सार्थक होते हैं, परंतु ढकोसलों में बे सिर पैर की ऊटपटाँग तथा असंबद्ध बातें कही जाती हैं। इनका प्रधान उद्देश्य जनता का मनोरंजन करना होता है। ये हास्यरस की सृष्टि करते हैं। इन्हें सुनकर गंभीर प्रकृति के मनुष्यों के भी होठों पर मुसकराहट आ जाती है। जैसे[1] :

ऊँट पनारे बहि चला, मैं जानों पिय मोर।
हाथ नाइ पिय ढूँढ़न लागी, मिला कठौती का बेंट॥

ब्रज के लोकसाहित्य में इस प्रकार के ढकोसले बहुत पाए जाते हैं। संस्कृत के नाटकों में भी विदूषक की उक्तियों में इस प्रकार का असंबद्ध प्रलाप पाया जाता है जिसका उद्देश्य हास्यरस उत्पन्न करना है[2] :

चाणक्येन यथा सीता, मारिता भारते युगे।
एवं त्वां मोटयिष्यामि, जटायुरिव द्रौपदीम्॥

परंतु ऐसे उदाहरणों की संख्या अधिक नहीं है। निश्चय ही इन ढकोसलों का प्रधान उद्देश्य साधारण जनता का मनोरंजन करना है।

[1] त्रिपाठी : ए० ग्रा० सा०, पृ० २१४
[2] मृच्छकटिक, अंक ८, श्लोक ३४

(४) पालने के गीत—पालने के गीत उतने ही प्राचीन हैं जितनी मानव की सृष्टि। माता अपने छोटे बच्चों को थपकियाँ देकर सुलाती है। वह उसे पालने पर सुलाकर सुंदर तथा मधुर लय में गीत गाती है। ये ही गीत 'पालने के गीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गीतों का कोई अर्थ नहीं होता। ये अर्थप्रधान न होकर लयप्रधान होते हैं। इनके निर्माण में ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाता है जो सुनने में कानों को सुख देनेवाली तथा उच्चारणसाम्य के कारण संगीतात्मक होती है।

इन गीतों में साधारणतः दो या तीन से अधिक शब्द नहीं होते। गाए जाते हुए इन मधुर गीतों की आवाज झुलाए जाते हुए पालने की आवाज के समान होती है जिसका शिशु की स्नायु पर अच्छा प्रभाव पड़ता है[1]। छोटे छोटे बच्चों को लयपूर्ण गीत सुनने की बड़ी इच्छा होती है। वे इन मधुर गीतों को सुनकर सुख का अनुभव करते हैं और शीघ्र ही निद्रादेवी की गोद में चले जाते हैं।

पालने के गीतों में स्वरसाम्य पैदा करने के लिये एक ही शब्द या वर्ण की बारंबार आवृत्ति होती है जिससे अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न हो सके; जैसे :[2]

अरर बरर पूआ पाकेला,
चीलर खोंइछा नाचेला।
चीलर भइले थोर,
मोर बाबू का मुँहवा गोर॥

रात्रि के समय माताएँ अपने बच्चों को सुलाते समय यह संगीतात्मक गीत गाती हैं[3]।

चाना मामा! आरे आवऽ पारे आवऽ।
नदिया किनारे आवऽ;
सोने के कटोरवा में दूध भात लेले आवऽ,
बबुआ के मुँहवा में घुटुकऽ घुटुकऽ॥

[1] दि बेस्ट ललबी उड सीम टु बी दैट संग नेचुरली बाइ पीजेंट मदर्स विद बट टू आर थ्री वर्ड्स ऐंड संग आन टू नोट्स—ए शार्ट रुदिंग ड्रोन, करेसपांडिंग ऐक्जैक्टली टु दि साउंड आव् ए राकिंग क्रैडेल ऐंड हैविंग अपेरेंटली दि सेम इफेक्ट आन दि नर्व्स आव् दि चाइल्ड।—ग्रेस रीज : क्रैडेल सांग्स ऐंड नर्सरी राइम्स।

[2] लेखक का निजी संग्रह।

[3] वही।

इन गीतों में नादमाधुर्य उत्पन्न करने के लिये एक ही वर्ण की पुनरावृत्ति पाई जाती है। बर्कले ने पालने के गीतों की परिभाषा बतलाते हुए इसी तथ्य पर विशेष बल दिया है[1]। अँग्रेजी के इन गीतों में भी यही विशेषता पाई जाती है:

By by Lulla lullaby
Lullaby O lullaby.
× × ×
Ay lilly O lilly lally
All the night sae early

(क) संस्कृत साहित्य में लोरियाँ—पालने के गीतों की परंपरा बड़ी प्राचीन है। महाभारत में मदालसा का उपाख्यान बड़ा प्रसिद्ध है जो अपने शिशु को सुलाते समय लोरियाँ गाती है। इन गीतों में अद्वैत वेदांत के गूढ़ तत्वों का समावेश पाया जाता है। मदालसा अपने बच्चे अलर्क को संबोधित करती हुई कहती है कि हे पुत्र! तुम शुद्ध हो, बुद्ध हो और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो, अतः तुम मोहरूपी निद्रा को छोड़ो[2]:

त्वमसि तात! शुद्ध! बुद्ध! निरंजन!
भवमाया वर्जित ज्ञाता।
भवस्वप्नं च मोहनिद्रां त्यज,
मदालसाह सुतं माता॥

जब बच्चा रोने लगता है तब उसे चुप कराती हुई वह कहती है कि हे पुत्र! तुम नाम से रहित हो। न तो यह शरीर तुम्हारा है और न तुम इसके हो। अतः तुम क्यों रो रहे हो?

नाम विमुक्त शुद्धोऽसि रे सुत,
मया कल्पितं तव नाम।
न ते शरीरं न चास्य त्वमसि,
किं रोदिषि त्वं सुखधाम॥

अँग्रेजी साहित्य में पालने के गीत तथा लोरियों की प्रचुरता पाई जाती है। प्रसिद्ध विद्वान् ग्रेस रीज ने इनका सुंदर संग्रह प्रकाशित किया है[3]। इन लोरियों में

[1] ए टाइप आव् सांग संग बाइ मदर्स ऐंड नर्सेज दि वर्ल्ड ओवर टु कोक्स देअर बेबीज टु स्लीप। ··· दि सिंप्लेस्ट फार्म्स, मियरली ए हमिंग आर ए रिपिटिशन आव् मोनोटोनस ऐंड सूदिंग साउंड।—मेरिया लीच: डिक्शनरी आव् फोकलोर।

[2] महाभारत।

[3] क्रैडेल सांग्स ऐंड नर्सरी राइम्स।

करुणा की अभिव्यंजना हुई है। माता का दुःखी हृदय इन गीतों के माध्यम से प्रकाशित हुआ है।

(५) बालगीत—बच्चों के जितने भी क्रियाकलाप हैं उनमें गीतों का अभिन्न साहचर्य पाया जाता है। उनका उठना बैठना, चलना फिरना, नाचना थिरकना सभी लोकगीतों के ताने बाने से बुना गया है। गुजराती लोकसाहित्य के सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ श्री झवेरचंद मेघाणी ने बालगीतों को निम्नांकित दस श्रेणियों में विभक्त किया है :

(१) चलने फिरने के गीत
(२) बैठे बैठे चलने के गीत
(३) बच्चों को बुलाने के गीत
(४) ऋतु संबंधी गीत
(५) पशुपक्षी संबंधी गीत
(६) कथा संबंधी गीत
(७) व्रत संबंधी गीत
(८) चाँदनी रात संबंधी गीत
(९) गरबा के गीत
(१०) रास के गीत

अपनी पुस्तक में मेघाणी जी ने इन सभी गीतों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं[1]। हिंदी प्रदेश में भी पशु पक्षी, चंद्रमा, ऋतु आदि के संबंध में अनेक गीत प्रचलित हैं जिन्हें बच्चे बड़े प्रेम से गाते हैं। गरबा गुजरात की स्त्रियों तथा लड़कियों का सुप्रसिद्ध नृत्य है। इस नृत्य को सामूहिक रूप से करते हुए लड़कियाँ गीत गाती हैं।

(६) खेल के गीत—किसी देश के खेल कूद के अध्ययन से वहाँ के निवासियों के स्वभाव, साहस और शक्ति का पता लगता है। जिस जाति के खेल जितने ही साहसपूर्ण और वीरता से युक्त होते हैं वह जाति उतनी ही साहसिक समझी जाती है। लोकसंस्कृति के अनेक तत्वों का ज्ञान इनके अनुसंधान से हो सकता है।

इन खेलों में सहयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है। अँग्रेजी की एक कहावत है कि वाटरलू की लड़ाई क्रिकेट के मैदान में ही जीती गई थी जिसका आशय यह है कि सहयोग तथा सहकारिता की भावना से ही मनुष्य विजयश्री को प्राप्त कर

[1] मेघाणी : लोकसाहित्य, भाग १, पृ० १९९

सकता है। आदिम जातियों के खेलकूद में सहयोग की जो भावना थी वह आज सभ्य जातियों के खेलों में भी उपलब्ध होती है।

भारत के विभिन्न राज्यों में विविध प्रकार के खेल प्रचलित हैं। उत्तरप्रदेश में बालकों में कबड्डी का खेल बहुत प्रसिद्ध है। अब तो इसने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। कबड्डी खेलते हुए लड़के जो गीत गाते हैं उनमें एक गीत इस प्रकार है :

> आम छू आम छू कउड़ी झनक छू।
> आम छू आम छू कउड़ी बदाम छू।

यूरोपीय देशों में भी खेल खेलते समय बच्चों द्वारा गीत गाने की प्रथा है। सिमसन ने उत्तरी हेटी प्रदेश के गीतों का सुंदर विवेचन प्रस्तुत किया है[1]।

१०. लोकसाहित्य की काव्यात्मक अनुभूति

लोकसाहित्य की आत्मा उसकी सरलता, अकृत्रिमता और सरसता है। लोकसाहित्य में रस की प्रचुरता उपलब्ध होती है। परंतु रस की सृष्टि के लिये जिन विभाव, अनुभाव और संचारियों की आवश्यकता होती है उनका इसमें अभाव है। इसमें रस की उत्पत्ति स्वतः होती है। अलंकारों के संबंध में भी यही बात पाई जाती है। लोकगीतों में कहीं कहीं अलंकार अवश्य उपलब्ध होते हैं परंतु इनकी योजना आयासपूर्वक कहीं नहीं की गई है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और श्लेष ही अधिक प्राप्त होते हैं। लोककवि पिंगलशास्त्र का अध्ययन कर कविता करने नहीं बैठता अतः उसकी रचना में छंदयोजना का अभाव पाया जाता है। लोकगीतों में तुक प्रायः नहीं मिलता क्योंकि स्वच्छंद होने के कारण लोककाव्य को छंद और तुक की अर्गला में नहीं बाँधा जा सकता। लय की प्रचुरता होने के कारण लोकगीतों में संगीतात्मकता अधिक होती है। यही कारण है कि उसे सुननेवाले आनंद में विभोर हो जाते हैं।

(१) लोकगीतों में अलंकारयोजना—लोकगीत प्राकृत जन के हृदय के उद्गार हैं। अतः इनमें कृत्रिमता का अभाव है। लोककवि के मन में जो भाव उठते हैं उनका प्रकाशन वह अनायास करता है। यही कारण है कि अलंकृत कविता (पोएट्री आव् आर्ट) में अलंकरण की जो प्रवृत्ति पाई जाती है उसका इसमें अत्यंताभाव है। लोकगीतों में जो अलंकार उपलब्ध होते हैं उनकी योजना प्रयासपूर्वक नहीं की जाती है।

[1] सिमसन् : पीजेंट चिल्ड्रेंस गेम्स इन नार्दर्न हेटी, फोकलोर, भाग ६५, सं० २, पृ० ६५।

लोकगीतों में अलंकारयोजना की पहली विशेषता यह है कि इनका संनिवेश अनायास ही हो गया है अर्थात् लोककवि ने जान बूझकर इनका प्रयोग नहीं किया है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों की भाँति—जिन्होंने अवसर या अनवसर का विचार न कर अलंकारों को अपनी कविता में रखने का प्रयास किया है—लोककवि ने आयासपूर्वक अपनी कविता को अलंकृत करने की कहीं चेष्टा नहीं की है।

लोकगीतों के अलंकारविधान की दूसरी विशेषता है इनकी मौलिकता। लोककवि ने जिन उपमानों का प्रयोग किया है वे कवि-परंपरा-भुक्त (कन्वेंशनल) नहीं हैं बल्कि नूतन और मौलिक हैं। हिंदी तथा संस्कृत के प्राचीन कवियों ने आँखों की उपमा खंजन, मीन और मृग की आँखों से दी है परंतु लोककवि ने इन परंपराभुक्त उपमानों का तिरस्कार कर 'आम की फारी' (खड़ा काटा गया कच्चे आम का लंबा टुकड़ा) से इसकी तुलना की है। इसी प्रकार होठ की उपमा कविगण विद्रुम या बिंबफल से दिया करते हैं परंतु लोककवि पान के काटे हुए पतले टुकड़े से इसकी समानता करता है।

इसकी तीसरी विशेषता है ग्रामीण वातावरण से उपमानों का चुनाव। लोककवि जिस वातावरण में जनमता और पलता है उसके हृदय पर उसका स्थायी प्रभाव पड़ता है। अतः अपने भावों को स्पष्ट करने के लिये वह जिन उपमानों का चुनाव करता है वे उसके आसपास की परिचित वस्तुएँ हुआ करती हैं। यही कारण है कि वह पेट की उपमा पुरइन के लंबे चौड़े पत्ते से और पीठ की उपमा धोबी के 'पाट'[1] से देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों ही वस्तुएँ ग्रामीण जीवन में चिरपरिचित हैं। आँखों के उपमान के लिये 'आम की फारी' का अनुसंधान करनेवाला लोककवि अपने वातावरण से निश्चय ही ओतप्रोत रहा होगा।

लोकगीतों में अलंकारयोजना की चौथी विशेषता है आकृतिसाम्य। लोककवि उपमानों का चुनाव करते समय उपमेय की आकृति का अनुकरण करनेवाले उपमान को ही स्थान देता है। किसी स्त्री के जूड़े (बालों को लपेटकर बाँधी गई गोल आकृति) की उपमा वह अपनी लाठी के हूरे (लाठी का निचला गोलाकार भाग) से देता है। जूरा (जूड़ा) गोल होता है अतः उसकी गोल आकृति को देखकर लोककवि ने उसकी समानता हूरा से की है। स्त्री के सुंदर बालों की स्निग्धता और चिक्कणता की ओर उसका ध्यान बिल्कुल नहीं गया। पीठ की उपमा धोबी के 'पाट' से देते समय उसकी दृष्टि दोनों की आकृति (लंबाई और चौड़ाई)

[1] काठ या पत्थर का बना हुआ छोटा तख्ता जिसपर धोबी कपड़े धोता है।

की ओर ही अधिक दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के उन्नत ललाट के लिये 'लोटे' का अप्रस्तुत रूप में वर्णन करना आकृतिसाम्य का ही परिचायक है।

कोई ग्रामीण पुरुष किसी स्त्री के सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कहता है : 'ए गोरी! तुम्हारा जूरा लाठी के हूरे के समान है तथा तुम्हारे कपोल मालपुए की भाँति मुलायम हैं। सुंदरी! तुम पान के समान पतली हो और तुम्हारा ललाट लोटे के समान उन्नत है।' निम्नांकित बिरहे में इसका वर्णन बड़ी सुंदर रीति से किया गया है :

हुरवा नियर तोर जुरवा ए गोरिया,
पुअवा नियर तोर गाल।
पनवा नियर तू त पातर बाड़ू गोरिया,
लोटवा नियर तोर भाल॥

इस बिरहे में जिन उपमानों का उल्लेख किया गया है वे सभी ग्रामीण वातावरण से लिए गए हैं। देहाती अहीर सदा लाठी लेकर चलता है, जल पीने के लिए लोटे का उपयोग करता है। घर में आटा, दूध और घी की कमी न होने के कारण होली, दीवाली तथा अन्य पर्वों पर मालपुआ भी खाता है। विवाह शादी के अवसर पर पान का भी प्रयोग करता है। अतः यदि वह किसी स्त्री के अंगों की उपमा अपने दैनिक व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं से न दे तो और किससे दे? हिंदी के रीतिकालीन कवियों ने 'कनक छड़ी सी कामिनी' का वर्णन किया है परंतु जो कोमलता, सरसता और सुंदरता पान के पत्ते में है वह सोने की कठोर छड़ी में कहाँ उपलब्ध हो सकती है?

किसी नायिका के उठते हुए—विकासोन्मुख—स्तनों का वर्णन उपमा के माध्यम द्वारा कितना सुंदर और सटीक हुआ है। लोककवि कहता है कि यौवन के प्रभात में नायिका के स्तन जंगली बेर के समान छोटे छोटे थे। बाद में विकसित होने पर वे टिकोरे (आम का कच्चा तथा छोटा फल जिसमें गुठली नहीं होती) के रूप में परिणत हो गए। परंतु विवाह के पश्चात्, यौवन के मध्याह्न में, ज्योंही प्रियतम के हाथों के साथ उनका संपर्क हुआ त्योंही विकसित होकर उन्होंने सिंधोरा (सिंदूर रखने के लिये काठ का बना हुआ बड़ा गोलाकार पात्र) का रूप धारण कर लिया :

पहिले बइरि नियर,
फिर भइले टिकोरा।
सँइयाँ जी के हाथ लागल,
होइ गइले सिंधोरा॥

इस गीत में पूर्ण विकसित स्तनों की उपमा सिंघोरा से देना बड़ा ही उपयुक्त है। जायसी ने इनकी उपमा उलटे औंधाए गए सोने के कटोरे से दी है[1] :

हिया थार कुच कंचन लारू। कनक कचोर उठे जनु चारू॥

लोकगीतों में श्लेषालंकार का प्रयोग भी अनेक स्थानों पर हुआ है परंतु इसकी भी योजना अनायास ही हुई है। हिंदी तथा संस्कृत के कवियों ने अभंग तथा सभंग श्लेष के द्वारा काव्यरचना में बड़ी चातुरी दिखलाई है। परंतु लोकगीतों में अभंग श्लेष ही दृष्टिगोचर होता है। नीचे के बिरहे में यमक तथा श्लेषालंकार की योजना बड़ी सुंदर हुई है :

रसवा के भेजली भँवरवा के सँगिया,
रसवा ले अइले हा थोर।
अतना ही रसवा मैं केकरा के बटबों,
सगरी नगरी हित मोर॥

स्वाधीनपतिका कोई स्त्री कहती है कि हे सखी ! मैंने भौंरे को रस लेने के लिये भेजा था। परंतु वह थोड़ा सा ही रस लेकर आया। मेरे पास रस इतना थोड़ा है कि मैं किसे किसे इस रस को दूँ ? गाँव के जितने लोग हैं वे सभी मेरे परिचित या हितचिंतक हैं। यहाँ पर रस शब्द का अर्थ प्रेम और मधुर है। अतः यह यमक अलंकार का उदाहरण है। इस गीत में 'भँवरा' शब्द का प्रयोग पति और भ्रमर इन दोनों ही अर्थों का वाचक है। अतएव 'भँवरवा' शब्द में श्लेषालंकार है।

लोकगीतों में रूपकालंकार भी पाया जाता है। ईश्वर को प्रियतम या पति मानकर उसकी उपासना करना संत कवियों की परंपरा चिरकाल से रही है। ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा हृदय के अंधकार को दूर करने का उपदेश कोई संत कवि दे रहा है। वह आत्मा (स्त्री) को संबोधित करता हुआ कहता है कि पतिरूपी ईश्वर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। सोने के बने हुए पलँग में चाँदी की पाटी लगी हुई है। त्रिकुटी के घाट पर स्नान करके इस पलँग पर प्रियतम के साथ सो जावो[2]। गीत की कुछ कड़ियाँ निम्नांकित हैं :

सखी तोरे पियवा देइ गयो एगो पतिया।
बारहु दियवा जुड़ाइ लेहु हियवा,

[1] जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, सं० २०१३, पृ० ४६, दोहा १५, चौ० १
[2] लक्ष्मीसखी : अमरविलास।

समुझि समुझि के बतिया।
इहाँ बा ना केहू साथी ना सँघतिया,
कामिनी ! कंत तोरे जोहत बटिया।
सोने के खाटी, रूपे के पटिया,
करु मज्जन चलु त्रिकुटी के घटिया।
ओही रे घाट पर सुंदर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया।
लछमी सखि के सुंदर पियवा,
सूत रहु लगाई के छतिया॥

(२) लोकगीतों में रसपरिपाक—लोकगीतों में रसपरिपाक प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। जनता के ये गीत रस में सने हुए हैं। यदि यह कहा जाय कि रस ही इन गीतों की आत्मा है तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। इन लोकगीतों की रसात्मकता के समक्ष बड़े बड़े कवियों की सूक्तियाँ भी शुष्क और नीरस जान पड़ती हैं। एक एक लोकगीत क्या है रस से लबालब भरा हुआ प्याला है जिसके पीने से प्यास बुझने के स्थान पर और भी बढ़ती जाती है। क्या हिंदी, क्या बँगला, क्या गुजराती और क्या मराठी, सभी भाषाओं के लोकगीतों में रस की यह निर्झरिणी अविरल गति से बहती हुई दिखाई पड़ती जो जनजीवन को सदा आप्लावित करती हुई उसे सरस बनाए रखती है। लोकगीतों की पयस्विनी जिस प्रदेश से प्रवाहित होती है उसका शीतल जल उस प्रदेश के सभी लोगों को समान रूप से आनंद प्रदान करता है। अपनी इसी रसात्मकता के कारण लोकजीवन से संबंधित ये गीत मानवहृदय को इतना अपील करते हैं।

लोकगीतों में प्रायः सभी रसों की अभिव्यंजना हुई है परंतु इनमें प्रधानतया शृंगार और करुण रस ही उपलब्ध होते हैं। वैवाहिक गीतों में हास्य रस का भी पुट पाया जाता है। आल्हा ऊदल की वीरता का वर्णन करनेवाले 'आल्हा' में वीररस का विराट् रूप दिखाई पड़ता है। भजन, गंगामाता तथा देवी देवताओं के गीतों में शांत रस मिलता है। सोरठी के गीत में अद्‌भुत रस का दर्शन होता है।

लोकगीतों में शृंगार रस के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—का वर्णन बड़ी मार्मिक रीति से किया गया है। इनमें शृंगार का जो वर्णन उपलब्ध होता है वह नितांत पवित्र, संयत, शुद्ध और दिव्य है। हिंदी के अनेक कवियों ने शृंगाररस का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण वर्णन अपनी कविताओं में किया है उसका यहाँ अत्यंताभाव है।

शृंगार रस का विशेष प्रयोग सोहर, झूमर और विवाह के गीतों में लोक-कवियों ने किया है। महाकवि कालिदास ने जिस प्रकार 'रघुवंश' में गर्भवती

सुदक्षिणा का वर्णन किया है उसी प्रकार इन गीतों में भी गर्भवती स्त्री की शरीरयष्टि, दोहद तथा प्रसव के कष्टों का उल्लेख स्थान स्थान पर हुआ है। पुत्रजन्म के अवसर पर माता पिता के आनंद और उछाह का वर्णन लोकगीतों में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। पुत्र होने पर सास रुपए लुटाती है, ननद ब्राह्मणों को मुहर दान में देती है और बंधुबांधवों की स्त्रियाँ अन्य वस्तुओं का वितरण करती हैं[1] :

सासु लुटावेली रुपैया, त ननदी मोहरवा रे।
ललना गोतिनी लुटावेली बनडरवा, गोतिनियाँ फेरिहें पाँइच रे॥

शृंगार के साथ ही करुण रस की अभिव्यंजना भी इन गीतों में प्रचुर मात्रा में हुई है। करुण रस के गीत तीन अवसरों पर विशेष रूप से गाए जाते हैं: (१) बिदाई, (२) वियोग और (३) वैधव्य। इन अवसरों पर स्त्री के सुखमय जीवन का अवसान दिखाई पड़ता है और दुःख का नया अध्याय प्रारंभ होता है। उसके जीवन के वसंत में अचानक पतझड़ प्रारंभ हो जाता है। बिदाई के अवसर पर पुत्री का अपने परम प्रिय मातापिता तथा अन्य बंधुबांधवों से बिछोह होता है। वियोग की अवस्था में कुछ दिनों के लिये पति से संपर्क नहीं रहता, परंतु वैधव्य में अपने प्राणों से प्रिय पति का सदा के लिये आत्यंतिक विच्छेद हो जाता है। यही कारण है कि इन गीतों में करुण रस की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

(क) बिदाई—कन्या के विवाह के बाद उसकी बिदाई का समय कितना करुणोत्पादक होता है यह वाणी का विषय नहीं है। पिता के घर में स्वतंत्रतापूर्वक जीवन बितानेवाली, दुलार से पाली गई कन्या एक अनजान तथा अपरिचित घर को चली जाती है। पिता के घर के सुख तथा लाड़ प्यार की याद उसके हृदय को कष्ट देने लगती है। उसकी मानसिक वेदना आँसुओं की झड़ी के रूप में गिरती हुई दिखाई पड़ती है। एक लोकगीत में बेटी की बिदाई का बड़ा ही मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित किया गया है। पिता के अनवरत अश्रुपात से गंगा में बाढ़ आ जाती है। माता के रोने से उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। बहन की बिदाई में उसका भाई इतना अधिक रोता है कि उसके रोने से पैर तक उसकी धोती भीग जाती है[2] :

बाबा के रोअले गंगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भींजे,
भउजी नयनवा ना लोर॥

[1] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १
[2] वही।

(ख) वियोग—लोकगीतों में करुण रस की अभिव्यक्ति प्रियवियोग के अवसर पर बड़ी मार्मिक रीति से हुई है। प्रियतम के परदेश चले जाने पर पत्नी के लिये सारा संसार सूना लगता है। घर काटने दौड़ता है। प्रिय के प्रवास के समय समस्त प्रकृति में एक अद्भुत उदासीनता छाई रहती है। कोई प्रोषितपतिका स्त्री अपनी दयनीय दशा को बतलाती हुई कहती है कि अरे निर्मोही! तुम्हारे परदेश चले जाने से कितने लोग तुम्हारे वियोग में रो रहे हैं। घर में तुम्हारी घरनी रो रही है, बाहर तुम्हारी हरिनी रो रही है और तालाब में चकवा चकई रो रहे हैं। बिछोह करते समय तुम्हें इनपर तनिक भी दया नहीं आई :

घरवा रोवे घरनी ए लोभिया,
बाहारवा राम हरिनियाँ।
दाहावा रोवे चाकावा चकइया,
बिछोववा कइले निरमोहिया॥

पति के वियोग में केवल उसकी स्त्री ही नहीं रोती, प्रत्युत उसका बिछोह पशुपक्षियों को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहता। गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के वनगमन के अवसर पर कुछ इसी प्रकार का करुणाजनक वर्णन किया है जिसमें अयोध्या के परिजन और पुरजन ही नहीं, समस्त चराचर दुःखी दिखाई देते हैं।

एक दूसरी स्त्री पति के भावी वियोग के दिन बिताने के लिये उससे उपाय पूछ रही है। वह कहती है कि हे प्रियतम! तुम परदेश में यदि बहुत दिनों तक रहो तो अपनी आकृति को मेरी बाहों पर चित्रित करा दो जिसे देखती हुई मैं अपने वियोग के दुःखदायी दिन व्यतीत करूँगी। अथवा मेरे भाई को बुलाकर मुझे मायके भिजवा दो। यदि तुमने परदेश में बहुत दिनों तक रहने का निश्चय कर लिया है तब मेरी बाँह पकड़कर मुझे गंगा में डाल दो जिससे तुम्हारे असह्य वियोग को सहने का मुझे अवसर ही न प्राप्त हो। करुण रस से ओतप्रोत यह गीत इस प्रकार है[1] :

जुगुति बताए जाव,
कवना बिधि रहबो राम। टेक।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाए जाव। टेक।

[1] वही।

जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
बिरना बोलाई मोके नइहर पहुँचाए जाव। टेक।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं,
बहियाँ पकरि मोके गंगा भसिआए जाव। टेक।

इस गीत के प्रत्येक पद से करुण रस चुआ पड़ता है। यह गीत क्या है करुण रस का कलश है। वियोग की आशंका से उत्पन्न दुःख का इतना सरस, सजीव, स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता।

(ग) वैधव्य—वैधव्य के गीतों में करुण रस अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है। इन गीतों में विषाद की गहरी रेखा खिचीं हुई है। बालविधवाओं का करुण क्रंदन इनमें सुनाई पड़ता है। इनकी दर्दनाक आहें किस पाषाणहृदय को नहीं पिघला देतीं ? एक भोली भाली बालविधवा अपने पिता से पूछ रही है कि पिता जी! आपने किसलिये मेरा विवाह किया ? कब मेरा गौना हुआ ? इसपर पिता उत्तर देता है कि बेटी! सुख भोगने के लिये मैंने तुम्हारा विवाह किया और अच्छा मुहूर्त देखकर गौना किया। इसपर उसकी पुत्री दुःखभरे शब्दों में उससे कहती है कि पिता जी! मेरा सिर सिंदूर के बिना रो रहा है, मेरी गोद पुत्र के बिना रो रही है और मेरी सेज पति के बिना रो रही है :

बाबा सिर मोरा रोवेला सेनुर बिनु,
नयना कजरवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु,
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम॥

(घ) शांत रस—लोकगीतों में शांत रस का सुंदर परिपाक दिखाई पड़ता है। देवीदेवताओं के स्तुतिविषयक गीतों में जिस प्रकार भक्ति का उद्रेक दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार भजन के गीतों में ऐहिक जीवन की निःसारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता प्रतिपादित की गई है। स्त्रियों की कामना के दो ही केंद्र हैं—पति और पुत्र। इन दोनों के कल्याणसाधन के लिये वे भिन्न भिन्न देवी देवताओं से मंगल की कामना किया करती हैं। कोई वंध्या स्त्री षष्ठी माता से पुत्र की कामना करती हुई कहती है कि हे माता! मेरा जीवन निरर्थक प्रतीत होता है। सास मुझे दुतकारती है, ननद गालियों की बौछार करती है और पति भी मुझे तरह तरह के कष्ट देता है। अतः हे माता! मुझे पुत्ररत्न दो।

भजनों में शांत रस की मात्रा अधिक पाई जाती है। इनमें संसार की निःसारता, जीवन की अनित्यता और वैभव की क्षणभंगुरता का सुंदर प्रतिपादन किया गया है। वृद्धा स्त्रियाँ जब गंगास्नान या तीर्थयात्रा के लिये जाती हैं तब वे

इन भजनों को गाया करती हैं। एक तो भजनों के कोमल भाव, दूसरे इन वृद्धाओं के कंठ से निकली हुई भक्ति से विह्वल वाणी और तीसरे प्रातःकाल का सुहावना समय, ये तीनों मिलकर इन भजनों को अत्यंत रसमय बना देते हैं। शरीर की क्षणभंगुरता का द्योतक यह गीत कितना सरस है :

का देखिके मन भइल दिवाना, का देखिके।
मानुख देहि देखि जनि भूल,
एक दिन माटी होइ जाना।
आरे ई देहिया कागद की पुड़िया,
बूँद परे भिहिलाना। का देखिके।
ई देहिया के मलि मलि धोवलों।
चोवा चनन चढ़ाई।
ओहि देहिया पर कागा भिनके,
देखत लोग घिनाई॥

लोकगीतों में हास्य रस का भी पुट पाया जाता है। इन गीतों में प्रयुक्त हास्य ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं है। विवाह के अवसर पर ससुराल में वर के साथ जो हास परिहास किया जाता है वह बहुत ही संयत और विशुद्ध होता है। शिव जी के विवाह के अवसर पर पार्वती की माता शिव की बीभत्स आकृति को देखकर डर जाती हैं। इसपर पार्वती उनकी हुलिया बतलाती हुई अपनी माता से कहती हैं :

सूप अइसन दहिया ए आमा, बरध अस आँखी।
उहे तपसिया ए आमा, हमें बेलमाई॥
भँगिया पीसत ए आमा जियरा अकुलाई।
धतुरा के गोलिया ए आमा, हाथवा रे खिआई॥

लोककवि ने वीररस की भी योजना स्थान स्थान पर की है। जगनिक रचित 'आल्हखंड' वीररस का उत्कृष्ट उदाहरण है। सन् १८५७ ई० के स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी बाबू कुँवरसिंह के जीवनचरित पर लिखा गया 'कुँवरायन' नामक लोककाव्य वीर रस से ओतप्रोत है। राजस्थान के सुप्रसिद्ध वीरों की स्मृति में लिखी गई अनेक लोकगाथाओं में वीररस भरा पड़ा है।

११. लोकसाहित्य में समान भावधारा

भारतीय संस्कृति का जैसा स्वाभाविक, सच्चा तथा सजीव चित्रण लोकसाहित्य में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं। अतः लोकसंस्कृति के वास्तविक स्वरूप के साक्षात् दर्शन के लिये लोकसाहित्य का अनुसंधान अत्यंत आवश्यक है। ग्रामीण

कवि ने अपनी अनुभूतियों को लोकगीतों के माध्यम से व्यंजित किया है। पारिवारिक तथा धार्मिक जीवन के जो मर्मस्पर्शी दृश्य यहाँ उपलब्ध होते हैं उनके दर्शन अन्यत्र कहाँ? सामाजिक तथा आर्थिक समता या विषमता का चित्रण भी बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि जनजीवन को चित्रित करनेवाले चतुर चितेरों ने बड़े संयम से अपनी तूलिका का प्रयोग किया है। सुंदर, रमणीय तथा भव्य दृश्यों को चित्रांकित करने में उनकी तूलिका उतनी ही सफलीभूत दिखाई पड़ती है जितनी भोंड़े तथा भद्दे चित्रों के प्रदर्शन में। लोकसाहित्य में जहाँ आदर्श, सतीसाध्वी, पतिव्रता नारियों का अंकन किया गया है वहाँ ऐसी कर्कशा स्त्रियों का भी वर्णन पाया जाता है जो विधवा होने के लिये सूर्य भगवान् से प्रार्थना तक करती हैं। जहाँ माता और पुत्री का दिव्य तथा स्वर्गीय प्रेम दिखलाया गया है वहाँ सास बहू तथा ननद भावज के दुष्ट व्यवहार का भी वर्णन है। भाई और बहन के निःस्वार्थ, पवित्र तथा निश्छल प्रेम की झाँकी अलौकिक है। कहने का आशय यह है कि लोककवि ने जनजीवन के उभय पक्षों—सुंदर तथा असुंदर—को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। इसीलिये वह समाज का सच्चा दृश्य स्वाभाविक रूप से उपस्थित करने में सफलीभूत हुआ है।

सामाजिक जीवन के साथ ही धार्मिक तथा आर्थिक जीवन का चित्रण भी लोकसाहित्य में उपलब्ध होता है। लोकगीतों में एक ओर यदि जनता के ऐश्वर्य, वैभव तथा संपन्नता का वर्णन किया गया है तो दूसरी ओर अटूट गरीबी, निर्धनता तथा दुःख का भी उल्लेख हुआ है। इस प्रकार जनता के सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक जीवन में अनुभूयमान सुख दुःख, हर्ष शोक, आशा निराशा, राग द्वेष, आदि भावों का सम्यक् चित्रण लोकसाहित्य में प्राप्त होता है।

(१) सामाजिक जीवन—लोकगीतों में पारिवारिक जीवन की अभिव्यंजना बड़ी सुंदर रीति से हुई है। हिंदू परिवार संयुक्त पारिवारिक जीवन का आदर्श उदाहरण है जहाँ पिता पुत्र, माता पुत्री, भाई बहन, सास बहू, पति पत्नी तथा ननद और भावज सभी आनंद से एक साथ निवास करते हैं।

(क) आदर्श सतीत्व—पति पत्नी के आदर्श प्रेम की बाँकी झाँकी हमें लोकगीतों में देखने को मिलती है। इन गीतों में सती स्त्रियों के आदर्श चरित्र का जैसा चित्रण किया गया है वैसा संसार भर के साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। सोने और चाँदी के टुकड़ों के प्रलोभन सती स्त्री को अपने पुण्यपथ से विचलित नहीं कर सकते। कोटि मनोज को लज्जित करनेवाला परपुरुष का अलौकिक सौंदर्य भी उन्हें मोहित नहीं कर सकता। लोकगीतों में ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं जहाँ पुरुषों ने वेश बदलकर अपनी स्त्रियों के सतीत्व की परीक्षा ली है परंतु इस कठिन परीक्षा में भी वे सफलीभूत दिखाई पड़ती हैं।

किसी प्रोषितपतिका सुंदरी स्त्री को देखकर कोई बटोही उसपर मोहित हो जाता है और बहुमूल्य सोना, चाँदी तथा जवाहिरात देकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है। परंतु वह पतिपरायणा स्त्री कहती है कि ओ बटोही! तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतियाँ नष्ट हो जायँ। दुनिया में 'सत' (सतीत्व) छोड़ने पर पत (प्रतिष्ठा) नहीं रहती। बटोही लालच देता हुआ उस स्त्री से कहता है :

डाल भरि सोना लेहु, मोतिया से माँग भरु,
जाति छाँड़ि मोरे सँग लागहु रे की।

इसपर सती स्त्री उसका मुँहतोड़ जवाब देती हुई कहती है :

आगि लागो सोनवा, बजर परे मोतिया रे,
सत छोड़े कइसे पत रहिहे नु रे की॥

इसी प्रकार एक दूसरे लोकगीत में पति द्वारा अपनी स्त्री के सतीत्व की परीक्षा का उल्लेख उपलब्ध होता है।

सतीत्व की यह भावना मानव समाज का अतिक्रमण कर पशुजगत् में भी व्याप्त दिखाई पड़ती है। अवधी के एक लोकगीत में कोई हरिणी रानी कौशल्या से यह प्रार्थना करती है कि वह उसके प्यारे हिरन की खाल को लौटा दें जिसे देखकर वह सांत्वना प्राप्त करेगी। परंतु कौशल्या उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर राम के खेलने के लिये उसकी खँजड़ी बनवाती है। जब जब खँजड़ी बजती है तब तब उसकी आवाज सुनकर दुखिया हरिणी चौंक उठती है और हिरन की याद में दुःखी हो जाती है[1] :

जब जब बाजै खँजड़िया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी ठाढ़ि ढकुलिया के नीचे हिरन के बिसूरई॥

भारतीय इतिहास की यह विशेषता है कि यहाँ अनेकता में भी एकता दिखाई पड़ती है। इस देश में विभिन्न जातियाँ—आर्य तथा अनार्य—निवास करती हैं जो भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलती हैं तथा जिनके सामाजिक संगठनों में भी भिन्नता है। परंतु फिर भी सांस्कृतिक धरातल पर इन सबमें एक मौलिक एकता दिखाई पड़ती है। लोकसाहित्य के क्षेत्र में यह एकता जितनी अधिक दृष्टिगोचर होती है उतनी अन्यत्र नहीं। लोकगीतों में समान भावधारा प्रवाहित हो रही है जिसमें अवगाहन कर जनमन आनंद का अनुभव करता है। संस्कार संबंधी लोकगीतों में यह मौलिक

[1] त्रिपाठी : कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत)

एकता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। जो भाव एक प्रदेश के लोकगीतों में वर्णित हैं उसी प्रकार के भावों की अभिव्यंजना दूसरे जनपद के गीतों में भी मिलती है।

हिंदू धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कारों का वर्णन किया है, परंतु इनमें, से आजकल पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह और गौना ही प्रसिद्ध हैं। किसी गृहस्थ के घर पुत्र का उत्पन्न होना बड़े उत्सव का अवसर माना जाता है। इस समय बड़ा आनंद और उछाह मनाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में इस समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें सोहर कहते हैं। कौरवी में इन गीतों को ब्याई (ब्याही) कहा जाता है[1]। पंजाब में ये गीत होलर के नाम से प्रसिद्ध हैं[2]। मालवा में भी ये इसी नाम से पुकारे जाते हैं। पंजाब के होशियारपुर जिले में इन्हें भुँजने कहते हैं। अवध में इन गीतों को सोहलो या मंगलगीत भी कहा जाता है[3]।

काश्मीर के जम्मू प्रदेश में इन गीतों की संज्ञा बधावा है[4]। राजस्थान में ये जचा के नाम से अभिहित किए जाते हैं[5]। इन गीतों में गर्भिणी की शरीरयष्टि तथा उसके दोहद का बड़ा सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है। प्रसव की पीड़ा का उल्लेख भी कुछ गीतों में पाया जाता है। पुत्र के पैदा होने पर बड़ा उत्सव होता है। एक भोजपुरी लोकगीत में राम के पुत्र लव, कुश के जन्म का समाचार सुनने पर रानी कौशल्या ब्राह्मणों को धन और गरीबों को अन्न देती हुई चित्रित की गई है[6]। मैथिली सोहरों की परंपरा भी बड़ी प्राचीन है। इनमें भी भोजपुरी सोहरों की भाँति दोहद, प्रसवपीड़ा, आनंद और उछाह का वर्णन उपलब्ध होता है। परंतु शृंगार रस की अपेक्षा इनमें करुणा का पुट अधिक मिलता है।

ब्रज में इन गीतों को सोभर, सोहर या सोहिलों कहा जाता है। सोभर वह घर है जिसमें नवप्रसूता स्त्री रहती है। भोजपुरी में इसे सउरि कहते हैं जो संस्कृति के सूतिकागृह का अपभ्रंश रूप है। अवधी प्रदेश की ही भाँति ब्रज में भी पुत्रजन्म के समय विभिन्न अवसरों पर गाने के लिये भिन्न भिन्न गीत प्रचलित हैं[7]। मैथिली, पंजाबी तथा डोगरी लोगों के खानपान, वेशभूषा तथा रहनसहन में भले

[1] हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ५०१
[2] वही, पृ० ५२६
[3] वही, पृ० २०८
[4] वही, पृ० ५५८
[5] वही, पृ० ४४२
[6] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १, पृ० ११६
[7] डा० सत्येंद्र : ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १२२-२३

ही अंतर हो परंतु लोकगीतों में पुत्रजन्म के समय वर्णित भावनाएँ एक ही प्रकार की पाई जाती हैं[1]।

यज्ञोपवीत एक अन्य महत्वपूर्ण संस्कार है जो द्विजातियों के लिये अत्यंत आवश्यक है। इसे 'जनेऊ' भी कहते हैं। पर्वतीय प्रदेश में इसे 'व्रतबंध' कहा जाता है। जिस ब्रह्मचारी बालक का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है उसे 'बरुआ' की संज्ञा दी जाती है। अवधी प्रदेश में जनेऊ के मुख्य गीतों को 'बरुआ' तथा 'भीखी' कहा जाता है। संभव है ब्रह्मचारी को 'बरुआ' कहने के कारण ही इन गीतों को भी 'बरुआ' कहा जाता हो। बालक का जनेऊ बाँस का मंडप बनाकर उसी के नीचे किया जाता है। एक मैथिली गीत में बाँस का मंडप तथा उसमें केले के खंभे लगाने का वर्णन उपलब्ध होता है[2] :

बँसवहि मरवा छवाओल, मोतिए झिनन लागुहे।
केरा केर थंभ धराओल, तामे त कलस धरूहे॥

यज्ञोपवीत संस्कार होने के एक दिन पहले बालक के अभ्यास के लिये कच्चे सूत का धागा पहिना दिया जाता है। इसे 'गोबर जनेऊ' कहते हैं। दूसरे दिन उसका यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न होता है। इस संस्कार के पश्चात् वह गुरुकुल में पढ़ने जाने के लिये भिक्षा की याचना करता है जिसे 'भीख माँगना' कहते हैं। इस समय वह कौपीन धारण करता तथा पलाश का दंड लेता है। गुरुकुल से पढ़कर आने के पश्चात् उसका समावर्तन संस्कार किया जाता है। वह अपने लंबे केशों को कटवाकर सुंदर नवीन वस्त्र पहनता है। यज्ञोपवीत की यह प्रथा उत्तरी भारत में समान रूप से प्रचलित है। विभिन्न प्रांतों के लोकगीतों में इनका वर्णन एक ही समान पाया जाता है[3]।

मानव जीवन में विवाह सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। जो आदिम जातियाँ आज भी सभ्यता की प्राथमिक अवस्था में हैं उनमें भी विवाह-संस्कार अवश्य उपलब्ध होता है। हिंदू समाज में लड़कियों का विवाह एक विषम समस्या बन गई है। इसका प्रधान कारण है तिलक और दहेज की प्रथा। लड़कियों के जन्म का इसीलिये समाज में स्वागत नहीं होता कि उनके विवाह में बड़ी

[1] इन गीतों के लिये देखिए :
हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० २२, ६०, १०७, २०८, २५३, ३०१, ३४१, ३७७, ४०८, ४४२, ४७२, ५०१, ५५८, ५७७,

[2] वही, पृ० २३

[3] वही, पृ० २१, ६२, १११, २१४, ४०१

परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। प्राचीन काल के लोगों ने भी संभवतः इन कठिनाइयों का अनुभव किया था। संस्कृत के किसी कवि ने पुत्री के पिता की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखा है :

पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति,
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

कन्या के पिता को उसके लिये सुयोग्य वर ढूँढ़ने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि सौभाग्य से योग्य वर मिल गया तो तिलक की समस्या सामने आ खड़ी होती है। वर का पिता मनमाना तिलक माँगता है जिसे पुत्रीवाले के लिये देना संभव नहीं होता। किसी प्रकार से तिलक के लिये रुपयों की संख्या निश्चित हो जाने पर वैवाहिक कार्य प्रारंभ होता है। विवाह के कार्यक्रम में सबसे पहला कार्य है वररछा, तत्पश्चात् तिलक और अंत में विवाह। विभिन्न जनपदों में विभिन्न प्रकार की वैवाहिक प्रथाएँ प्रचलित हैं। वैदिक अर्थात् शास्त्र में उल्लिखित प्रथाएँ तो प्रायः समान ही हैं परंतु स्थान तथा देशभेद से लौकिक प्रथाओं में बड़ा अंतर पाया जाता है; उदाहरण के लिये मैथिली तथा पंजाबी वैवाहिक प्रथाओं में मौलिक समानता होते हुए भी कुछ स्थानीय प्रथाओं में अंतर अवश्य उपलब्ध होता है। परंतु मानव हृदय सर्वत्र समान है। अतः लोकगीतों में विवाह के अवसर पर सर्वत्र आनंद, उछाह और उमंग पाया जाता है।

मिथिला में विवाह के गीतों को 'लग्नगीत' कहते हैं। इस अवसर पर 'संमरि' नामक गीत भी गाए जाते हैं जो बड़े ही मधुर और मनोरम होते हैं। 'संमरि' शब्द 'स्वयंवर' का अपभ्रंश रूप है[१]। राजस्थान में विवाह के गीत 'बनड़े' के नाम से प्रसिद्ध हैं जिसका अर्थ 'दूल्हा' होता है[२]। स्थानीय प्रथाओं के कारण इन गीतों के अनेक भेद पाए जाते हैं। वर के चुनाव में राजस्थानी लड़की अपनी भोजपुरी तथा मैथिली बहनों से अधिक चतुर दिखाई पड़ती है। वर चुनने में उसकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है[३]। गढ़वाल में विवाह के गीत 'मांगल' नाम से प्रसिद्ध हैं[४]। ये गीत विवाह के विभिन्न अनुष्ठानों से संबंधित होते हैं। इन गीतों में

[१] राकेश : मै० लो० गी०, पृ० १३२
[२] पारीक : रा० लो० गी०, भाग १, पूर्वार्ध, पृ० १६०
[३] वही, पृ० १६०-६१
[४] हिं० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ६१२

वैवाहिक क्रियाओं के भावात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है। काँगड़ा क्षेत्र में इन गीतों को 'मंगल' कहा जाता है[1]। कश्मीर के जम्मू प्रांत में भी ये इसी नाम से प्रसिद्ध हैं[2]। बघेली लोकगीतों में इन गीतों की संज्ञा 'बनरा' है[3]। कनउजी बोली में विवाह संबंधी गीतों की प्रचुरता है जिन्हें साधारणतया दो भागों में विभक्त किया जा सकता है : (१) वरपक्ष के गीत तथा (२) कन्यापक्ष के गीत। विभिन्न अवसरों पर कन्या तथा वरपक्षों में गाए जानेवाले ये गीत २० प्रकार के होते हैं[4]। भोजपुरी प्रदेश में कन्यापक्ष में गाए जानेवाले लोकगीतों को २४ श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है और वरपक्ष के गीतों को १५ प्रकार में[5]। इसी प्रकार बघेली, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी और अवधी आदि भाषाओं के वैवाहिक गीतों की श्रेणियाँ समझनी चाहिए।

विवाह के गीतों में उल्लास, आनंद तथा उछाह का वर्णन उपलब्ध होता है। बारात को अपने घर आते हुए देखकर कन्या की माता बड़ी प्रसन्न होती है। गाँव के अन्य लोगों को भी आनंद का अनुभव होता है। वर के पिता समधी के पैर तो जमीन पर ही नहीं पड़ते। वह अपने पुत्र के विवाह के महोत्सव पर अपनी शक्ति से बहुत अधिक धन खर्च करता है। गाँवों में यह कहावत प्रचलित है कि 'धन जाइ सादी की बादी' अर्थात् धन का व्यय या तो शादी में होता है अथवा मुकदमें में। भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों में विभिन्न वैवाहिक प्रथाएँ प्रचलित हैं परंतु सबमें प्रसन्नता और आनंद का पुट पाया जाता है[6]।

विवाह के पश्चात् पुत्री की बिदाई के गीतों को 'गौना' या 'बिदा' के गीत कहते हैं। मिथिला में इन गीतों को 'समदाउनी' कहा जाता है। इन गीतों में पुत्री के प्रति माता और पिता का प्रेम उमड़ा पड़ता है। जहाँ भोजपुरी लोकगीत में वर्णित पिता के सतत अश्रुपात के कारण गंगा में बाढ़ आ जाती है वहाँ मैथिली गीत में पुत्री के रोने से नदियों में बाढ़ आने का उल्लेख पाया जाता है। एक गीत में लोककवि ने बेटी के वियोग में बिसूरती हुई माँ और माता की याद में

[5] वही, पृ० ५७७

[6] वही, पृ० ५५८

[7] वही, पृ० २५५

[1] हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ४१०

[2] वही, पृ० ११४

[3] इसके विस्तृत वर्णन के लिये देखिए : हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ०–२३, ६१, ११३, २१६, २५५, ३०२, ३४१, ३७८, ४१०, ४४३, ४७४, ५०२, ५३०, ५५८, ५७७, ६१२।

तड़पती हुई बेटी—दोनों के हृदय को निकालकर रख दिया[1] है। बेटी की बिदाई के अवसर पर मैथिली पिता के रोने से नगर के सभी लोग रोने लगते हैं। माता का क्रंदन सुनकर पृथ्वी भी काँपने लगती है। भाई के रुदन से उसकी 'आँगि' और टोपी भीग जाती है। लोककवि कहता है[2] :

बबा के कनले में नग्र लोग कानल,
अमा के कनले दहलल भुँई रे।
भइया निरबुधिया के आँगि टोपी भींजल,
भउजी के हृदय कठोर हे॥

ठीक इसी प्रकार की भावधारा एक भोजपुरी लोकगीत में प्रवाहित हुई है[3] :

बाबा के रोअले गंगा बढ़ि अइली,
माता का रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भींजे,
भउजी नयनवा ना लोर॥

राजस्थानी भाषा में गौना के गीतों को 'ओलूँ' कहते हैं। इन गीतों के भाव इतने करुण होते हैं कि इन्हें सुनकर, हृदय थामकर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ तो इन्हें गाते समय जोर जोर से रोने ही लगती हैं, पुरुषों की आँखें भी छलछला जाती हैं[4]। एक राजस्थानी गीत में पुत्री की उपमा कोयल से दी गई है। लोककवि कहता है कि ऐ कोयल ! इस वन को छोड़कर तुम कहाँ जा रही हो ? तुम्हारी माता उन्मना हो रही है। छोटी बहन अकेली रो रही है। तेरा बड़ा भाई उदासीन होकर इधर उधर घूम रहा है और तेरी भावज बिलख बिलखकर रो रही है :

बनखंड की ए कोयल ! बनखंड छोड़ कठे चली।
थारी माउजी थोर बिन उणमणा।
थारी छोटी बैनड रोवै अकेलड़ी।
थारो वीरो सा फिरे छै उदास,
बिलखत थारी भावजडी।
बनखंड की ए कोयल ! बनखंड छोड़ कठे चली॥

[1] राकेश : मै० लो० गी०, पृ० १७०
[2] हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० २८
[3] डा० उपाध्याय : भो० लो० गीत०, भाग १, पृ० ७४
[4] पारीक : रा० लो० गी०, भाग १, पृ० १८८

कन्या पक्षी का प्रतीक है। जिस प्रकार एक चिड़िया किसी वृक्ष पर थोड़े दिनों तक रहकर वहाँ से उड़कर दूसरी जगह चली जाती है, उसी प्रकार पुत्री भी अपने पिता के घर में थोड़े दिनों तक निवास कर पति के घर चली जाती है। पंजाब की कोई कन्या अपनी बिदाई के समय अपने पिता से कहती है[1] कि हे पिता जी! मैं तो एक चिड़िया हूँ। मुझे तो एक दिन यहाँ से उड़ जाना है। मेरी उड़ान बड़ी लंबी है। मुझे किसी अनजान देश में उड़कर जाना होगा। ऐ पिता जी! मेरे बिना आपका चौका बर्तन कौन करेगा? मेरी बिदाई के अवसर पर महल में मेरी अम्मा रो रही है :

साँड़ा चिड़ियाँदा चंबा वे, बाबल असी उड़ जाना।
साडी लंबी उड़ारी वे, बाबल के हड़े देश जाना।
तेरा चौका भाँडा वे, बाबल तेरा कौन करे।
तेरा महल दाँ बिच बिच वे, बाबल मेरी माँ रोवै॥

काँगड़ी लोकगीतों में भी कन्या की उपमा कोयल से दी गई है। लोककवि कहता है कि ऐ मेरी वाटिका में रहनेवाली कोयल! तुम इस बगीचे को छोड़कर कहाँ चली जा रही हो? तुम्हारे वियोग में सभी दुःखी हैं। इस रमणीय गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं[2] :

मेरी ए बागदेइ कोयले,
बागे छड्डी कुत्थु चल्ली ए?
तेरियाँ बेलाँ नेजा झाड़े पत्तड़िया,
बागे छड्डी कुत्थु चल्ली ए?
तेरा तोता सोहणा, सबनदा मनमोहणा,
तुध बिनु खाँदा न चूरी।
मेरिया धौलियाँ हीरा, ढालन नैनाँ नीरा,
इन्हा छड्डी तू कुत्थू चल्ली ए।

अवधी लोकगीतों में भी बेटी की उपमा से चिड़िया दी गई है। कोई पुत्री अपने पिता से कहती है[3] :

[1] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ० ७६

[2] हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ५७८

[3] श्री श्रीकृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, पृ० ४५

बाबा, निबिया के पेड़ जिनि काटेउ,
निबिया चिरैया बसेर।
बलैया लेऊँ बीरन।
बाबा बिटियउ जिनि कोउ दुख देय,
बिटिया चिरैया की नाइ।
सब रे चिरैया उड़ि जइहे,
रहि जइहैं निबिया अकेलि।
सब रे बिटिया जइहैं सासुर,
रहि जइहैं माइ अकेलि॥
बलैया लेऊँ बीरन।

एक गुजराती लोकगीत में भी ठीक इसी प्रकार के भाव पाए जाते हैं। गुर्जर देश की कोई कन्या कहती है कि मैं तो हरे भरे जंगल की एक चिड़िया हूँ। उड़कर परदेस चली जाऊँगी। आज दादा जी के देश में हूँ। कल परदेस चली जाऊँगी :

अमे रे लीलुड़ा बननी चर कलड़ी,
उड़ी जाशुँ परदेश जो।
आज रे दादा जा ना देश माँ,
काले जाशुँ परदेश जो॥

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट पता चलता है कि लोकगीतों में लोकसंस्कृति की समान भावधारा प्रवाहित हो रही है। पुत्रजन्म के अवसर पर मैथिली माता को जिस आनंद की प्राप्ति होती है वही आनंद डोगरी या कौरवी माता भी प्राप्त करती है। पुत्री की बिदाई के अवसर पर अवध प्रदेश की माता जिस प्रकार बिलख बिलखकर रोती है उसी प्रकार पंजाबी माता भी करुण क्रंदन करती है। इतना ही नहीं, गुजरात तथा महाराष्ट्र प्रदेश के लोकगीतों का यदि अध्ययन किया जाय तो उनमें भी यही बात देखने को मिलेगी। यही लोकसामान्य संस्कृति की उपलब्धि लोकगीतों की विशेषता है।

लोकगीतों तथा कथाओं में दीनता, निर्धनता, भाई बहन का अटूट प्रेम, पिता की पुत्रवत्सलता, आदर्श सतीत्व, ननद और भावज का शाश्वत विरोध, दारुनिया सास की क्रूरता, आदि विषयों का मर्मस्पर्शी वर्णन उपलब्ध होता है। लोकसाहित्य में भारतीय संस्कृति की वास्तविक एकता दिखाई पड़ती है। जिन्हें भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता का अध्ययन करना हो उन्हें लोकसाहित्य में प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

१२. लोकसाहित्य का महत्व

किसी देश के जीवन में लोकसाहित्य की विशिष्ट महत्ता है। सच तो यह है कि लोक की वास्तविक संस्कृति उसके मौखिक साहित्य में निहित होती है। लोकसाहित्य में धर्म, समाज तथा सदाचार संबंधी बहुमूल्य सामग्री भरी पड़ी है। इसके साथ ही स्थानीन इतिहास तथा भूगोल संबंधी सामग्री भी उपलब्ध होती है। भाषाविज्ञानवेत्ता के लिये तो यह साहित्य अगाध रत्नाकर के समान है जिसमें गोता लगाने पर अनेक अनमोल मोती प्राप्त हो सकते हैं।

लोकसाहित्य के महत्व को साधारणतया छः भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) ऐतिहासिक महत्व
(२) भोगौलिक और आर्थिक महत्व
(३) सामाजिक महत्व
(४) धार्मिक महत्व
(५) नैतिक महत्व
(६) भाषाशास्त्र संबंधी महत्व

(१) ऐतिहासिक महत्व—लोकसाहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है जिसके सम्यक् अनुशीलन तथा अनुसंधान से अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। लोकगीतों तथा लोकगाथाओं में स्थानीय इतिहास का गहरा पुट पाया जाता है जिसके उद्घाटन से हमारे इतिहास की बिखरी एवं विस्मृत कड़ियाँ जोड़ी जा सकती हैं।

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हलदी एक छोटा सा गाँव है जहाँ कुछ काल पूर्व हैहयवंशी क्षत्रिय राज्य करते थे जिनके वंशज आज भी विद्यमान हैं। इन राजाओं की बिहार राज्य के शाहाबाद जिले के डुमराँव के राजघराने से बड़ी तनातनी थी। बहोरन पांडेय बलिया जिले के बैरिया गाँव के एक सुप्रसिद्ध जमींदार थे जो डुमराँव के राजा के मैनेजर थे। एक बार बहोरन पांडेय पालकी में बैठकर हलदो गाँव से होकर कहीं जा रहे थे। इस समय गाँव के लड़के खेल खेलते हुए यह गाना गा रहे थे[१]:

राजा भइले रजुली, बहोरन भइले धुनियाँ।
मारेले दलगंजन देव, दलकेले दुनियाँ॥

[१] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १

अर्थात् डुमराँव के राजा रजुली बहुत छोटे राजा हैं और बैरिया के जमींदार बहोरन पांडेय जुलाहा धुनियाँ हैं; हलदी के राजा दलगंजन देव के प्रताप के कारण सारी पृथ्वी काँपती है। बालकों के इस गीत को सुनकर बहोरन पांडेय अपने मन में बहुत क्रुद्ध हुए और जाकर डुमराँव के राजा से इस कथा को कह सुनाया जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये एक बहुत बड़ी सेना भेजकर हलदी पर आक्रमण कर स्थानीय राजा को परास्त कर दिया। यह एक स्थानीय घटना है जिससे हलदी और डुमराँव के राजाओं के पारस्परिक संघर्ष का पता चलता है।

जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव के पास चाँदा नामक एक गाँव है जहाँ सन् १८५७ ई० में सिपाही विद्रोह के अवसर पर अँग्रेजी सेनाओं के साथ प्रतापगढ़ जिले के कालाकाँकर स्थान के बिसेनवंशी राजा से घनघोर युद्ध हुआ था। अब भी इस गाँव के आसपास इस युद्ध के संबंध में अनेक लोकगीत गाए जाते हैं। एक गीत की एक कड़ी यह है[1]:

कालेकाँकर क बिसेनवा।
चाँदे गाड़े बा निसनवा॥

मुगलों के शासनकाल में किस प्रकार इस देश में अशांति और दुर्व्यवस्था फैली थी उसका चित्रण अनेक लोकगीतों में किया गया है। तुर्कों की कामलोलुपता और स्वेच्छाचारिता की गूँज इन गीतों में सुनाई पड़ती है। किस प्रकार कुसुमादेवी ने मिर्जा के अत्याचारों को सहकर भी अपने सतीत्व की रक्षा की थी और अपने चरित्र की ओजस्विता को प्रकट किया था, यह गावों में आज भी बड़े उत्साह के साथ गाया जाता है। सती कुसुमादेवी का नाम इन लोकगीतों में अमर हो गया है[2]। मिर्जा कुसुमा के पिता को कैदखाने में डालकर जब उसे जबरदस्ती पकड़कर पालकी में लिए जा रहा था तब उसने पानी पीने के व्याज से तालाब के पास जाकर उसमें डूबकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। इस प्रकार उसने अपने सतीत्व की रक्षा की। कुसुमादेवी का यह दिव्य चरित्र भारतीय नारीत्व का ज्वलंत उदाहरण है[3]।

[1] रामनरेश त्रिपाठी : कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत), पृ० ६७

[2] वही।

[3] डा० ग्रियर्सन ने कुसुमादेवी के गीत को रायल एशियाटिक सोसाइटी, इंगलैंड के सदस्यों के सामने पढ़कर सुनाया था जिससे वे लोग बहुत ही प्रभावित हुए थे। यह गीत उन लोगों को इतना प्रिय लगा कि बाद में 'लाइट आव् एशिया' के सुप्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नल्ड ने इसका अँग्रेजी में पद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत किया।

भोजपुरी प्रदेश सदा से अपने वीर तथा पराक्रमी पुरुषों के लिये विख्यात रहा है। अतः शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाले अनेक वीरों की कथा यहाँ लोकगाथा के रूप में गाई जाती है। सन् १८५७ ई० के विद्रोह का उल्लेख, जिसमें भोजपुरी वीरों का विशेष हाथ था, इन गीतों में पाया जाता है। वीराग्रणी बाबू कुँअरसिंह ने जिस वीरता तथा पराक्रम के साथ अँग्रेजों से युद्ध किया था वह इतिहास के पृष्ठों पर अमिट अक्षरों में अंकित है। गीतों में वर्णित उनके बाहुबल की कहानी सुनकर आज भी पाठकों को रोमांच हो आता है। नीचे के एक गीत में कुँअरसिंह की वीरता के साथ ही साथ विद्रोह के कारणों पर भी प्रकाश पड़ता है। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं[1] :

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुँअरसिंह,
ए सुन अमरसिंह भाय हो राम।
चमड़ा के टोड़वा दाँत से हो काटे कि,
छतरी के धरम नसाय हो राम।
बाबू कुँअरसिंह भाई अमर सिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम।
बतिया के कारण से बाबू कुँवरसिंह,
फिरंगी से रेढ़ बढ़ाय हो राम॥

सिपाही विद्रोह संबंधी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं जिनमें कहीं तो मेरठ के सदर बाजार में लूट का वर्णन है तो कहीं अवध की बेगमों पर अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचार का उल्लेख है। अँग्रेजों ने सन् १८५७ में वाजिदअली शाह को अवध की गद्दी से पदच्युत कर लखनऊ से निर्वासित कर दिया था। इस दुःख से दुःखी उनकी बेगमों का यह करुण विलाप कितना हृदयद्रावक है[2] :

गलियन गलियन रैयत रोवे,
हटियन बनिया बजाज रे।
महल में बैठी बेगम रोवैं,
डेहरी पर रोवै खवास रे।
मोतीमहल के बैठक छूटी,
छूटी है मीनाबाजार रे।

[1] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ० ५२
[2] इंडियन ऐंटिक्वेरी, भाग ४०, सन् १९११; पृ० १६५

बाग जमनिया की सैरैं छूटी,
छूटैं मुलुक हमार रे।
जो मैं ऐसी जानती,
मिलती लाट से जाय रे।
हा हा करती, पैयाँ परती,
लेतीं सइयाँ छोड़ाय रे।

महोबा के चंदेलवंशी सुप्रसिद्ध राजा परमर्दिदेव को कौन नहीं जानता। इनकी सेना में बनाफर वंश के दो प्रसिद्ध शूरमा क्षत्रिय थे जिनका नाम आल्हा और ऊदल था। ये अपनी अलौकिक वीरता के लिये विख्यात थे। परमर्दिदेव के—जिनका लोकप्रसिद्ध नाम परमाल था—राजकवि जगनिक ने इन वीरों की गाथा को अपने लोककाव्य का विषय बनाया है। इन दोनों वीरों ने युद्धक्षेत्र में पृथ्वीराज जैसे शूरमा के भी छक्के छुड़ा दिए थे। जगनिक की मूल कृति आल्हखंड आज उपलब्ध नहीं है। यदि यह ग्रंथ प्राप्त होता तो चंदेल और चौहानवंशी राजाओं के इतिहास की बहुत सी बहुमूल्य सामग्री प्रकाश में आ सकती थी। यद्यपि आधुनिक काल में जो आल्हखंड मिलता है उसका बहुत सा अंश 'भट्टभणंत' के रूप में है, फिर भी उस कथा की ऐतिहासिकता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। आल्हा की कथा का निर्माण इतिहास की ठोस आधारशिला पर हुआ है।

उत्तरी भारत में गोपीचंद की गाथा प्रचलित है। बहुत दिनों तक लोग इन्हें एक अनैतिहासिक व्यक्ति समझते थे और इनकी कथा को कविकल्पना की उपज मानते थे। परंतु डा० ग्रियर्सन ने प्रबल प्रमाणों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया है कि ये ऐतिहासिक व्यक्ति थे[1]।

१२वीं शताब्दी में सिद्धराज जयसिंह सोलंकी अनहिलवाड पाटन में राज्य करते थे। इनके यहाँ जगदेव पँवार एक बड़ा स्वामिभक्त तथा वीर क्षत्रिय नौकर था जिसकी गणना आदर्श त्यागियों में की जाती है। स्वयं जयसिंह सोलंकी से स्पर्धा हो जाने पर इसने अपने हाथ से अपना मस्तक काटकर चामुंडा की उपासिका कंकाली को दे दिया था[2]। जगद्देव पँवार की लोकगाथा राजस्थान में अत्यंत प्रसिद्ध है जिसका टेक पद है—'जगदेव भयो एकादानी'। इस गीत से तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

[1] डा० ग्रियर्सन : जर्नल आव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, भाग ५४, सन् १८८५, पार्ट १, पृ० ३५।

[2] पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ८३

राजस्थान पराक्रमी एवं वीर पुरुषों की जन्मस्थली रहा है। यहाँ के वीरों ने जिस अलौकिक शौर्य का प्रदर्शन किया है वह संसार के इतिहास में अद्वितीय है। इन वीरों की गाथाएँ आज भी लोगों के गले का हार हो रही हैं। इन लोक-गाथाओं में अनेक ऐतिहासिक तथ्य भरे पड़े हैं जिनसे राजस्थान के इतिहास के निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टाड ने अपनी पुस्तक ऐनल्स एंड एंटिक्विटीज आव् राजस्थान की रचना में इन लोकगाथाओं का बहुत उपयोग किया है।

राजस्थान में पाबू जी, गोगो जी, आदि ऐतिहासिक वीर तथा त्यागियों की कथा बहुत प्रचलित है। उमादे—जो रूठी रानी के नाम से प्रसिद्ध है—के गीत भी बड़े प्रेम से गाए जाते हैं जिसके संबंध में यह दोहा कहा गया है :

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दो दो गयँद न बंधसी, एकै कंबूठाण॥

इसी प्रकार पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल आदि राज्यों में अनेक ऐतिहासिक लोकगाथाएँ प्रचलित हैं जिनके अध्ययन से प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है। स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में बटोहिया, फिरंगिया आदि जिन लोकगीतों की रचना हुई थी उनसे अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए गए अत्याचारों का पता चलता है।

(२) **भौगोलिक महत्व**—लोकसाहित्य में भूगोल संबंधी विषयों का सांगोपांग विवेचन तो नहीं उपलब्ध होता परंतु भूगोल के विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त होती है। उत्तरी प्रदेश के पूर्वी जिलों के लोकगीतों में गंगा, जमुना, सरयू (घाघरा) और सोन नदियों का नाम बारंबार आता है। शहरों में काशी, प्रयाग, अयोध्या, मिर्जापुर, पटना, हाजीपुर और जनकपुर नाम अधिक पाया जाता है। पूर्व देश (बंगाल), मोरंग देश, और नैपाल का उल्लेख भी कुछ कम नहीं हुआ है। राजस्थान की सुप्रसिद्ध प्रेमगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' से अनेक नगरों की स्थिति का पता चलता है[१]। 'आल्हखंड' में तत्कालीन भूगोल संबंधी प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। इसमें अनेक शहरों के नाम मिलते हैं जो किसी विशिष्ट घटना से संबंधित हैं। उदाहरण के लिये दिल्ली, कन्नौज, महोबा, कालपी, उरई, माड़ौगढ़, बबुरीबन, दसहरपुरवा, बनारस, गाँजर, नरवरगढ़, नैनागढ़, पथरीगढ़, खजुहागढ़, कजरीबन, बिठूर, बौरीगढ़ आदि अनेक स्थानों का उल्लेख किया गया

[१] नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

है। इनके अतिरिक्त हरद्वार, हिंगलाज, गया, गोरखपुर, पटना, बूँदी, राजगृह और बंगाल का नाम भी इसमें आया है।

इनमें से कुछ स्थानों के नाम तो बहुत प्रसिद्ध हैं परंतु कुछ ऐसे भी स्थान हैं जिनका आज पता नहीं लगता। यदि 'आल्हखंड' के भूगोल के संबंध में अनुसंधान किया जाय तो बहुत सी सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

(क) आर्थिक महत्व—लोकगीतों में जनजीवन के आर्थिक पक्ष की झाँकी भी मिलती है। गीतों और कथाओं में सोने की थाली में भोजन करने और आभूषणों की प्रचुरता का वर्णन उपलब्ध होता है। झूमर के गीतों में 'सोने के थारी में जेवना परोसलो' इस टेक पद की आवृत्ति अनेक बार हुई है। इन गीतों में बालों को साफ करने के लिये प्रयोग से लाई जानेवाली कंघी भी सोने की बनी बतलाई गई है। चंदन की लकड़ी से बने हुए पलँग का वर्णन उपलब्ध होता है जो रेशम की रस्सी से बुना गया है। बच्चों का पालना चाँदी का बना हुआ है जिसमें रेशम की डोर लगी हुई है। भोजन के लिये विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्नों तथा पकान्नों का वर्णन पाया जाता है। इन उल्लेखों से पता चलता है कि लोकगीतों में वर्णित समाज धनी तथा समृद्ध था।

लोकगीतों में आर्थिक भूगोल भी पाया जाता है। शौकीन लोग खाने के लिये मगह का ही पान प्रयोग में लाते हैं। आज भी 'मगही' पान अपने सुस्वाद के लिये प्रसिद्ध है। घर की नवागता वधू के पहनने के लिये 'बनारसी साड़ी' मँगवाई जाती है जिसमें जरी का काम किया गया होता है। विवाह के अवसर पर वर (दूल्हा) को परीछने के लिये मिर्जापुर में बने हुए लोढ़े का प्रयोग किया जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मिर्जापुर में आज भी पत्थर के सिल और लोढ़े बहुत सुंदर और मजबूत बनते हैं। विवाह में बारातियों के चढ़ने के लिये हाथी गोरखपुर से मँगवाया जाता है और पटना से उसका झूल बनकर आता है। एक गीत में बुटवल की नारंगी का भी उल्लेख पाया जाता है जो आज भी अपनी प्रसिद्धि अक्षुण्ण बनाए हुए है[१]।

लोकगीतों तथा कथाओं में अनेक प्रकार के वृक्षों, फलों, तथा पुष्पों का उल्लेख हुआ है जिससे हमारे भौतिक भूगोल के ज्ञान की वृद्धि होती है। आम, अनार, महुआ और नीम तो लोकजीवन के चिर सहचर हैं ही, इनके अतिरिक्त लौंग, इलायची नीबू, केला आदि का भी उल्लेख पाया जाता है। करमा जाति

१ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १

के लोकगीतों में उन्हीं वृक्षों का वर्णन हुआ है जो उनके प्रदेश में पाए जाते हैं[1]। इस प्रकार इन गीतों के अध्ययन से स्थानीय भौतिक भूगोल का पता चलता है।

(३) समाज का चित्रण—लोकसाहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है लोकसंस्कृति का चित्रण। लोकगीतों और लोककथाओं में जनजीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का अकृत्रिम तथा वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोकसाहित्य का अध्ययन करना चाहिए। लोककवि मानव समाज को जिस रूप में देखता है वह उसी रूप में उसका वर्णन प्रस्तुत करता है। अतः उसका चित्रण सत्य से दूर नहीं होता। इतिहास के बड़े बड़े ग्रंथों में लड़ाई, झगड़ों तथा राजनीतिक संघर्षों का विवरण भले ही मिल जाय परंतु लोकसंस्कृति के यथातथ्य चित्रण के लिये लोकसाहित्य का अनुसंधान वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। इन लोकगीतों, गाथाओं और कथाओं में मनुष्यों की रहन सहन, आचार विचार, खान पान और रीति रिवाज का सच्चा चित्र देखने को मिलता है। मध्यप्रदेश में करमा नामक जाति निवास करती है। उनके एक गीत का भाव यह है कि 'यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो[2]।'

लोकसाहित्य में समाज का जो चित्रण किया गया है वह उच्च, शिष्ट, सभ्य एवं संस्कृत है। पति पत्नी, भाई बहन, माता पुत्री, पिता पुत्र, ननद भावज और सास बहू के पारस्परिक व्यवहार का जो वर्णन हमारे सामने उपलब्ध होता है उससे भारतीय समाज का सारा चित्र हृदयपटल पर अंकित हो जाता है। भाई और बहन के जिस अलौकिक एवं पवित्र प्रेम का वर्णन लोकगीतों में उपलब्ध होता है उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ? इन गीतों में पुत्री की बिदाई के अवसर पर माता का प्रेमरूपी पारावार हिलोरें मारता हुआ दिखलाई पड़ता है। कहीं माता रो रही है, तो कहीं भाई के रोते रोते उसकी धोती भीग गई है। पिता के आँसुओं की धारा से तो गंगा में बाढ़ ही आ जाती है। इस प्रकार माता, पिता और भाई की गहरी ममता इन गीतों में चित्रित की गई है।

पुत्री का उत्पन्न होना अभिनंदनीय नहीं होता। इसीलिये इसके जन्म के अवसर पर पुत्रजन्म की भाँति न तो सोहर के गीत ही गाए जाते हैं और न उत्सव ही मनाया जाता है। जब वह बड़ी होने लगती है तब पिता को उसके विवाह की चिंता सताने लगती है। वह उसके लिये उपयुक्त वर की खोज में सुदूर देशों में

१ श्रीचंद्र जैन : काव्य में पादपपुष्प, पृ० १६६–१६०

२ डा० एलविन : फोकसांग्स आव् मैकल हिल्स, भूमिका, पृ० १६

जाता है। विवाह की चिंता के कारण न तो उसे दिन में चैन पड़ता है और न रात में नींद लगती है। एक गीत में कहा गया है कि जिसके घर में विवाह करने योग्य लड़की हो भला वह पिता निश्चिंत होकर कैसे सो सकता है[1]? संस्कृत के किसी कवि ने तो कन्या का पिता होना ही दुःखदायी बतलाया है[2]।

पतिपत्नी का अलौकिक तथा दिव्य प्रेम भी इन गीतों में दिखलाया गया है। यह प्रणय उभयपक्ष में समान रूप से प्रतिष्ठित है। जहाँ स्त्री पति के लिये अपने प्राण तक देने के लिये तत्पर है वहाँ पति भी उसके विरह में अत्यंत दुःखी दिखलाया गया है। कोई परदेशी पति घोड़े पर चढ़कर परदेश से लौटता है। पनघट पर पानी भरनेवाली अपनी प्रियतमा के, जो अपने पति को नहीं पहिचानती है, सतीत्व की परीक्षा करने के लिये वह उसे धनधान्य का प्रलोभन देकर उससे अनुचित प्रस्ताव करता है। इसपर वह सती स्त्री उत्तर देती है कि ऐ बटोही! तुम ऐसी अशिष्ट बातें मुझसे मत करो। अन्यथा यदि मेरा परदेशी पति लौटकर घर चला आया तो तेरी जीभ कटवा लूँगी। यह सुनकर वह परदेशी अपने असली रूप में प्रकट हो जाता है। वह स्त्री उसे अपना पति पहिचानकर प्रेमाधिक्य के कारण मूर्छित हो जाती है[3]।

इसी प्रकार 'पपइयो' नामक एक राजस्थानी लोकगीत में पति का अपनी स्त्री के प्रति अकृत्रिम प्रेम दर्शाया गया है। परदेश से आया हुआ पति अपनी प्राणप्रिया को घर में न देखकर व्याकुल हो उठता है। उसकी खून से सनी हुई साड़ी को पहिचानकर, उसकी मृत्यु की आशंका करता हुआ वह फूट फूटकर रोने लगता है।[4]

इन गीतों में जहाँ स्वाभाविक प्रेम की मंदाकिनी प्रवाहित दिखाई पड़ती है वहाँ पारस्परिक कलह, द्वेष, विरोध और संघर्ष का चित्रण भी हुआ है। ननद और

[1] जाहि घर बाबा हो बिटिया कुँवारी,
से कइसे सोवे निरभेद ए।—डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १

[2] पुत्रीति जाता महती हि चिंता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति,
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

[3] रामनरेश त्रिपाठी : क० कौ०, भाग ५

[4] पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ८१-८२
इस गीत के समानभाव के लिये देखिए—मेघाणी : रढ़ीयाली रात, भाग १, पृ० २७ ('नो दीठो')।

भावज का शाश्वत विरोध गीतों में पाया जाता है। ननद अपने भाई से भावज की सदा निंदा करती हुई दिखाई पड़ती है। एक गीत में शांता (राम की बहन) राम से सीता की शिकायत करती हुई कहती है कि वह रावण का चित्र उरेह रही थी। इसके फलस्वरूप राम सीता का परित्याग कर देते हैं[1]।

सास और वधू का संबंध भी इन गीतों में कुछ सुंदर नहीं दिखाई पड़ता। दुष्टा सास अपनी बहू को अनेक प्रकार के कष्ट देती है। वह दिन भर उससे काम करवाती है परंतु खाने के लिये उसे भर पेट भोजन तक नहीं देती। यही कारण है कि गीतों में उसे 'दरुनिया' (दारुण) कहकर संबोधित किया गया है। सौतिया डाह का सजीव चित्रण लोककवि ने अपनी रचनाओं में किया है। इसके साथ ही बाल-विवाह, वृद्धविवाह तथा बहुविवाह का वर्णन भी उपलब्ध होता है।

समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिये बहुत सी उपयोगी सामग्री लोकसाहित्य में प्राप्त होती है। स्थानीय रीति रिवाज, आचार विचार, खानपान, वेशभूषा, रहन सहन आदि का पता इन गीतों से लगता है। इस विशाल देश में बहुत सी जंगली, पर्वतीय, तथा आदिम जातियाँ निवास करती हैं। इन सभी जातियों की सामाजिक प्रथाएँ भिन्न भिन्न हैं। अतः समाजशास्त्री तथा मानवविज्ञानवेत्ता के लिये इन जातियों के मौखिक साहित्य का अध्ययन करना अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा।

(४) धार्मिक महत्व—लोकसाहित्य में जनता की धार्मिक भावनाएँ भी प्रतिबिंबित हुई हैं। गंगामाता, तुलसीमाता, शीतलामाता, तथा षष्ठीमाता, के गीतों में भक्तों के हृदयोद्गार प्रकट हुए हैं। भजनों में संसार की अनित्यता, मानव जीवन की क्षणभंगुरता तथा वैभव की निःसारता का उल्लेख अनेक बार हुआ है। विभिन्न व्रतों के अवसर पर कही जानेवाली कथाओं में धर्म के अनेक गूढ़ रहस्य छिपे पड़े हैं। साधारण जन विभिन्न स्मृतियों में वर्णित विधिविधानों का भले ही न पालन करे परंतु इन कथाओं की शिक्षा से वह अत्यंत प्रभावित होता है। अतः धर्म और नीति की शिक्षा देने के लिये इन लोककथाओं का बड़ा महत्व है।

गंगा और तुलसी की महत्ता भारतीय समाज में सर्वत्र स्वीकृत है। इसकी पुष्टि लोकगीतों से होती है। लोकगीतों के अध्ययन से समाज में प्रचलित विभिन्न देवी देवताओं की पूजा का भी पता चलता है।

धार्मिक जीवन की झाँकी के अतिरिक्त हिंदू पुराणशास्त्र (माइथोलाजी) के अनेक ज्ञातव्य विषयों पर इन गीतों से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। एक गीत में तुलसी

[1] डा० उपाध्याय, भो० लो० गी०, भाग १

के सपत्नी (सौत) होने का उल्लेख पाया जाता है[1]। परंतु किसी पुराण में संभवतः इसकी चर्चा नहीं पाई जाती। अतः पुराणशास्त्र के लिये यह एक मौलिक वस्तु है। तुलनात्मक पुराणशास्त्र के शोधी छात्रों को भी इसमें बहुत कुछ उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

(५) नैतिक आचरण की श्रेष्ठता—लोकसाहित्य में जिस नैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है वह लोकोत्तर और दिव्य है। लोकगीतों और कथाओं के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय समाज का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था। तत्कालीन लोगों का चरित्र सदाचार का निकषग्रावा था। सतीत्व का जो अलौकिक एवं आदर्श स्वरूप इस मौखिक साहित्य में उपलब्ध होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस देश में सती धर्म का पालन बड़ी कठोरता के साथ किया गया है। अनेक ललनाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये अपने कोमल कलेवर की आहुति धधकती हुई ज्वाला में दी है। राजस्थान में प्रसिद्ध पद्मिनी के जौहर की अमर कहानी से कौन परिचित नहीं है? परंतु लोकसाहित्य में अनेक पद्मिनियाँ अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिये आग में कूदकर जल गईं जिन्हें आज कोई जानता भी नहीं। आज इतिहास भी उनके गुणगौरव का गान करने में मौन है। सती शिरोमणि कुसुमादेवी ने किस प्रकार तालाब में डूबकर दुष्ट तथा कामी मुगलों के पंजों से अपने को छुड़ाकर अपने सतीत्व की रक्षा की थी इसका उल्लेख गत पृष्ठों में किया जा चुका है। इसी प्रकार सती साध्वी चंदादेवी अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल की कड़ाही में कूदकर अपने प्राणों का बलिदान कर देती है।[2]

(६) भाषा-शास्त्र-संबंधी महत्व—भाषाशास्त्र की दृष्टि से लोकसाहित्य का महत्व सबसे अधिक है। भाषाशास्त्री के लिये यह अमूल्य निधि है, शब्दवाङ्मय का अक्षय भांडार है। लोकसाहित्य में संचित शब्दावली का अध्ययन भावी भाषाशास्त्रवेत्ता युग युग तक करते रहेंगे। लोकगीतों, गाथाओं और कथाओं में व्यवहृत शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषा-शास्त्र-संबंधी अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं। इनमें प्रचलित शब्दों द्वारा हिंदी के अनेक शब्दों की विकासपरंपरा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। बहुत से ऐसे शब्द वेदों में पाए जाते हैं जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा खड़ी बोली हिंदी में उपलब्ध नहीं होते। परंतु उनका पर्यायवाची (समानार्थक) शब्द लोकभाषाओं में प्राप्त होता है। निम्नांकित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट की जा सकती है :

[1] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १
[2] वही, भाग २

गाय के सद्यःजात बच्चे को वेद में 'धरुण' कहते हैं। भोजपुरी बोली में यह 'लेरुआ' के नाम से पुकारा जाता है। परंतु खड़ी बोली हिंदी में इस अर्थ का वाचक कोई शब्द प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार वेद में गर्भघातिनी गाय को 'वेहद' और वंध्या गाय को 'वशा' कहा गया है। भोजपुरी में क्रमशः इसके लिये 'लड़ाहल' और 'बहिला' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भोजपुरी का 'बहिला' शब्द वैदिक शब्द 'वशा' से ही विकसित हुआ है। हिंदी में इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिये कोई शब्द नहीं पाया जाता। यदि 'धरुण' और 'वशा' शब्दों की निरुक्ति में विकास की परंपरा लिखनी हो, यदि इन शब्दों की जीवनी का पता लगाना हो तो भोजपुरी लोकसाहित्य में प्रयुक्त इन शब्दों से परिचित हुए बिना हमारे अनुसंधान की सरणि में प्रगति नहीं आ सकती। यह एक विशेष बात है कि अनेक वैदिक शब्दों के अपभ्रंश रूपों की सत्ता भोजपुरी में विद्यमान है परंतु संस्कृत और हिंदी में उनका सर्वथा अभाव है। खोज करने पर हिंदी की दूसरी बोलियों—व्रज, अवधी, बुंदेलखंडी आदि—में भी ऐसे अनेक शब्द पाए जा सकते हैं।

अनेक शब्दों की ऐतिहासिक परंपरा को जानने के लिये लोकसाहित्य का अध्ययन अत्यंत उपादेय है। उदाहरण के लिये 'जुगवत' शब्द को लीजिए। लोकगीतों में इसका प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ किसी वस्तु की रक्षा करने के अर्थ में होता है[1]। इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'गुपु रक्षणे' धातु से हुई है जिसका लिट्लकार का भूतकालिक रूप 'जुगोप' बनता है। 'जुगवत' शब्द की व्युत्पत्ति इसी 'जुगोप' से मानी जाती है। खड़ी बोली हिंदी में 'गुपु रक्षणे' धातु से संबंधित कोई क्रिया उपलब्ध नहीं होती। अतः इसकी परंपरा को खोज निकालने के लिये जनपदीय बोलियों में सुरक्षित धातुओं को देखना पड़ेगा। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। संस्कृत की 'लुञ् छेदने' (काटना) धातु की परंपरा 'लुनाई' (कटाई) शब्द में आज भी देखी जा सकती है, परंतु हिंदी में इस प्रकार की किसी धातु का पता नहीं चलता। संस्कृत में 'श्यामा' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया

[1] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग रामचरितमानस में किया है :

अमिय मूरि जिमि जुगवत रहऊँ।
दीपबाति ना टारन कहऊँ॥

जाता है उसी अर्थ में लोकगीतों में भी इसका व्यवहार होता है[1]। परंतु हिंदी के 'साँवली' शब्द ने संस्कृत के मूल अर्थ 'सुंदरी' को छोड़कर 'कालापन' को धारण कर लिया है।

लोकसाहित्य में प्रयुक्त शब्दों को ग्रहण करने से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। उसका भाषाभांडार समृद्ध होगा। नए नए शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों को अपनाने से हमारी राष्ट्रभाषा की भाषाभिव्यंजनी शक्ति बढ़ेगी। गाँवों में ऐसी अनेक जातियाँ निवास करती हैं जिनके पेशे भिन्न भिन्न हैं, जैसे—लोहार, सोनार, बढ़ई, कुम्हार, धोबी, मल्लाह, नाई आदि। ये जिन साधनों या औजारों से अपना काम करते हैं उनके विभिन्न नाम पाए जाते हैं। इन पारिभाषिक शब्दों का संग्रह तथा ग्रहण करना हमारे साहित्य की वृद्धि के लिये मंगलकारी सिद्ध होगा।

लोकसाहित्य के अनंत कोष में कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जिनके भावों के समुचित प्रकाशन में खड़ी बोली असमर्थ है। 'बिराना' एक क्रिया है जिसका अर्थ हिंदी में 'मुँह चिढ़ाना' है। परंतु 'बिराना' का भाव 'मुँह चिढ़ाने' से कुछ भिन्न है। इसी प्रकार 'डाहना' शब्द है जिसके लिये खड़ी बोली में 'जलाना' या 'दुःख देना' का प्रयोग किया जा सकता है। परंतु डाहना का अर्थ इन दोनों शब्दों से अधिक व्यापक और गंभीर है। 'निहुरना' का अर्थ 'झुकना' है। झुकने का प्रयोग किसी भी वस्तु के लिये किया जा सकता है। परंतु 'निहुरना' का प्रयोग विशेषकर मनुष्यों की कमर झुकने के लिये होता है। डा० ग्रियर्सन ने अपनी 'बिहार पीजेंट लाइफ' नामक पुस्तक में बिहार के जनजीवन से संबंध रखनेवाले पारिभाषिक शब्दों का संग्रह बड़े परिश्रम के साथ किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'ग्रामगीत' के भूमिका भाग में कुछ ऐसे विशिष्ट ग्रामीण शब्दों का संकलन प्रस्तुत किया है जिनके पर्यायवाची शब्द हिंदी में उपलब्ध नहीं होते। यदि हिंदी की सभी बोलियों से ऐसे शब्दों का संग्रह किया जाय तो हिंदी का शब्दभांडार कुबेर के कोष के समान अनंत हो जायगा।

(क) लोकसाहित्य की महत्ता के संबंध में कुछ विशिष्ट विद्वानों के विचार—संसार के अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से लोकसाहित्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए अपने विचारों को व्यक्त किया है। ईवलिन मार्टिनेंगो का

[1] तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिंबाधरोष्ठी। मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः॥
—कालिदास : मेघदूत।

तुलना कीजिए :
'हम नाहीं जाइबि परदेस ए साँवरगोरिया।' —लेखक का निजी संग्रह।

मत है कि संसार के समस्त कथासाहित्य का जन्म लोककहानियों से हुआ है तथा समस्त विशिष्ट काव्य का प्रादुर्भाव लोकगीतों से माना जा सकता है[1]। इसी लेखिका ने इसके महत्व के संबंध में लिखा है कि लोककाव्य व्यक्तिगत या सामूहिक तीव्र भावों के प्रकाशन हैं। लोककविता और कथाओं का स्रोत राष्ट्रीय जीवन के अंतरतम से निःसृत होता है। जनता का हृदय इन गीतों और गाथाओं में प्रतिबिंबित रहता है। ऐसा भी समय आया है जब जातीयता या राष्ट्रीयता की गंभीर तथा अतिशय भावना ने संपूर्ण राष्ट्र को लोककवि के रूप में परिवर्तित कर दिया है[2]।

एंड्रू फ्लेचर ने लिखा है कि यदि किसी मनुष्य को समस्त लोकगीतों की रचना का अधिकार मिल जाय तो उसे इस बात की चिंता करने की आवश्यकता नहीं कि उस देश के कानून को कौन बनाता है[3]। इसका भाव यह है कि लोकगीतों और लोकगाथाओं में कानून से भी अधिक शक्ति और प्रभाव है। जर्मनी के महाकवि गेटे की संमति में राष्ट्रीय गीतों तथा गाथाओं का विशेष महत्व यह है कि प्रकृति से उनको सद्यः प्रेरणा प्राप्त होती है। इनमें किसी प्रकार का मिश्रण नहीं होता तथा ये एक निश्चित स्रोत से निकलकर प्रवाहित होते[4] हैं। जे० एफ० कैंपबेल ने लोककथाओं की विशेषताओं का प्रतिपादन करते हुए अपना यह विचार प्रकट किया है कि लोककथाएँ उन लोगों के वास्तविक जीवन का सटीक चित्रण करती हैं जो उन कथाओं को पूर्ण विश्वास तथा सचाई के साथ कहते हैं। अनंत काल से वे ऐसा ही करती आ रही हैं। वर्तमान युग के संबंध में यह बात भले ही सची न हो, परंतु अतीत के संबंध में तो बिलकुल ठीक है। अतएव भूतकालीन विस्मृत जीवनदर्शन के विषय में इनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता

[1] दि फोकटेल इज दि फादर आव् आल फिक्शन ऐंड दि फोकसांग इज दि मदर आव् आल पोएट्री। —मार्टिनेंगो : दि स्टडी आव् फोकसांग्स, पृ० २

[2] पापुलर पोएट्री इज दि रिफ्लेक्शन आव् मूवमेंट्स आव् स्ट्रांग कलेक्टिव आर इंडिवीडुअल इमोशन। दि स्प्रिंग्स आव् लीजेंड ऐंड पोएट्री इशू फ्राम दि डीपेस्ट वेल्स आव् नैशनल लाइफ। दि वेरी हार्ट आव् दि पीपुल इज लेड बेअर इन इट्स सागाज ऐंड सांग्स। देअर हैव बीन टाइम्स ह्वेन ए प्रोफाउंड फीलिंग आव् रेस ऐंड पेट्रिआटिज्म हैज सफाइस्ड टु टर्न ए होल नेशन इनटू पोएट्स। —सी० ई० मार्टिनेंगो : एसेज इन दि स्टडी आव् फोकसांग्स, पृ० ३

[3] इफ ए मैन इज परमिटेड टु मेक आल दि बैलेड्स, ही नीड नाट केअर हू शुड मेक दि लाज आव् नेशन।

[4] 'दि स्पेशल वैल्यू', रोट गेटे, 'आव् ह्वाट वी काल नैशनल सांग्स ऐंड बैलेड्स इज दैट देअर इंस्पिरेशन कम्स फ्रेश फ्राम नेचर, दे आर नेवर गाट अप, दे फ्लो फ्राम ए श्योर स्प्रिंग।' — 'दि स्टडी आव् फोकसांग्स' में गेटे का उद्धृत कथन।

है[1]। डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोकगीतों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कितनी सटीक बात कही है कि लोकगीत उस खान के समान है जिसके खोदने का कार्य अभी प्रारंभ ही नहीं हुआ है। यदि इन गीतों का प्रकाशन किया जाय तो इनकी प्रत्येक पंक्ति में ऐसी बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होगी जिससे भाषाशास्त्र संबंधी अनेक समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं[2]। डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोकगीतों के संबंध में अपना जो विचार प्रकट किया है वही दूसरी भाषा के लोकगीतों के संबंध में भी कहा जा सकता है। लोकगाथाओं की स्वाभाविकता, अकृत्रिमता और सरलता के संबंध में सुप्रसिद्ध लोकसाहित्यशास्त्री तथा अँग्रेज विद्वान् एफ० बी० गूमर का कथन कितना समीचीन है कि 'लोकगाथाओं का महत्व केवल इसी बात में नहीं है कि उनमें आदिम, अकृत्रिम एवं सुंदर काव्योत्तेजना उपलब्ध होती है। वे परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा में ही अपनी अभिव्यक्ति नहीं करतीं प्रत्युत जनसमूह की वाणी द्वारा भी प्रकाशन करती हैं। उनमें किसी प्रकार की गोपनीयता नहीं पाई जाती। जो वस्तु जैसी है उसका यथातथ्य रूप में वे वर्णन करती हैं। वे स्वतंत्र हैं तथा खुली हवा की भाँति ताजी हैं। वायु और सूर्य का प्रकाश उनमें खेल करता है[3]।

सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० वैरियर एलविन लोकसाहित्य के महत्व का वर्णन करते हुए मानवविज्ञानवेत्ता के लिये इसका अध्ययन परम आवश्यक बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि 'लोकगीत केवल इसीलिये महत्वपूर्ण नहीं हैं कि उनका संगीत,

[1] दि टेल्स रिप्रेजेंट दि ऐक्चुअल एव्रीडे लाइफ आव् दोज हू टेल देम विद ग्रेट फाइडेलिटी। दे हैव डन दि सेम, इन आल लाइकलिहुड, टाइम आउट आव् माइंड; ऐंड दैट ह्विच इज नाट ट्रू आव् दि प्रेजेंट इज, इन आल प्रोबेबिलिटी, ट्रू आव् दि पास्ट, ऐंड देअरफोर समथिंग मस्ट बी लर्न्ट आव् फारगाटेन वेज आव् लाइफ।—आइ० एफ० कैंपबेल: हाइलैंड टेल्स।

[2] दि भोजपुरी फोकसांग्स आर ए माइन आलमोस्ट एंटायरली अनवर्क्ड ऐंड देअर इज हार्डली ए लाइन इन वन आव् देम ह्विच, इफ पब्लिश्ड नाउ, विल नाट गिव वैल्यूएबुल ओर, इन दि शेप आव् ऐन एक्समेनेशन आव् फाइलोलाजिकल डिफिकल्टी।—ग्रियर्सन: ज० रा० ए० सो० बं०, भाग ५२, खंड १, सन् १८८३, पृ० ३२

[3] दि एबाइडिंग वैल्यू आव् दि बैलेड्स इज दैट दे गिव ए हिंट आव् प्रिमिटिव ऐंड अनस्वाएल्ड पोएटिक सेंसेशन। दे स्पीक नाट ओनली इन दि लैंग्वेज आव् ट्रेडिशन, बट आलसो विद दि वाएस आव् दि मल्टीच्यूड। देअर इज नथिंग सटल इन देअर वर्किंग ऐंड दे अपील टु थिंग्ज ऐज दे आर। फ्राम वन वाइस आव् माडर्न लिटरेचर दे आर फ्री। ... दे कैन टेल् ए गुड टेल। दे आर फ्रेश विथ दि ओपेन एयर। विंड ऐंड सनशाइन से थ्रू देम।—एफ० बी० गूमर: दि पापुलर बैलेड, पृ० ४१७

स्वरूप और वर्ण्य विषय जनता के जीवन का अंगभूत बन गया है, प्रत्युत उनकी महत्ता इससे भी अधिक है। इन मनोरम गीतों में, इन व्यवस्थित एवं प्रतिष्ठित लेखपत्रों में, हमें मानवविज्ञान संबंधी तथ्यों की प्रमाणीभूत सामग्री उपलब्ध होती है। मानवविज्ञानवेत्ता को अपने सिद्धांतों की सत्यता प्रमाणित करने के लिये लोकगीतों को छोड़कर कोई दूसरा, सच्चा एवं विश्वासपात्र साक्षी उपलब्ध नहीं हो सकता[१]। करमा जाति के लोगों के एक लोकगीत का भाव यह है कि यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो[२]।

१ 'दि फोकसांग्स आर इंपार्टैंट नाट ओनली बिकाज दि म्यूजिक, फार्म ऐंड दि कंटेंट आव् दि वर्स इज इन इटसेल्फ पार्ट आव् ए पीपुल्स लाइफ बट ईविन मोर, बिकाज इन सांग्स, इन चार्म्स, इन ऐक्चुअली फिक्स्ड ऐंड एस्टैब्लिश्ड डाक्युमेंट्स, वी हैव दि मोस्ट आथेंटिक ऐंड अनशेकेबुल विटनेस टु एथ्नोग्रैफिक फैक्ट्स। ... इन मेकिंग अप हिज (एथ्नोलाजिस्ट्स) माइंड ही कैन हैव नो बेटर एविडेंस दैन सांग्स।—डा० वैरियर एलविन : फोकसांग्स आव् छत्तीसगढ़, भूमिका भाग।

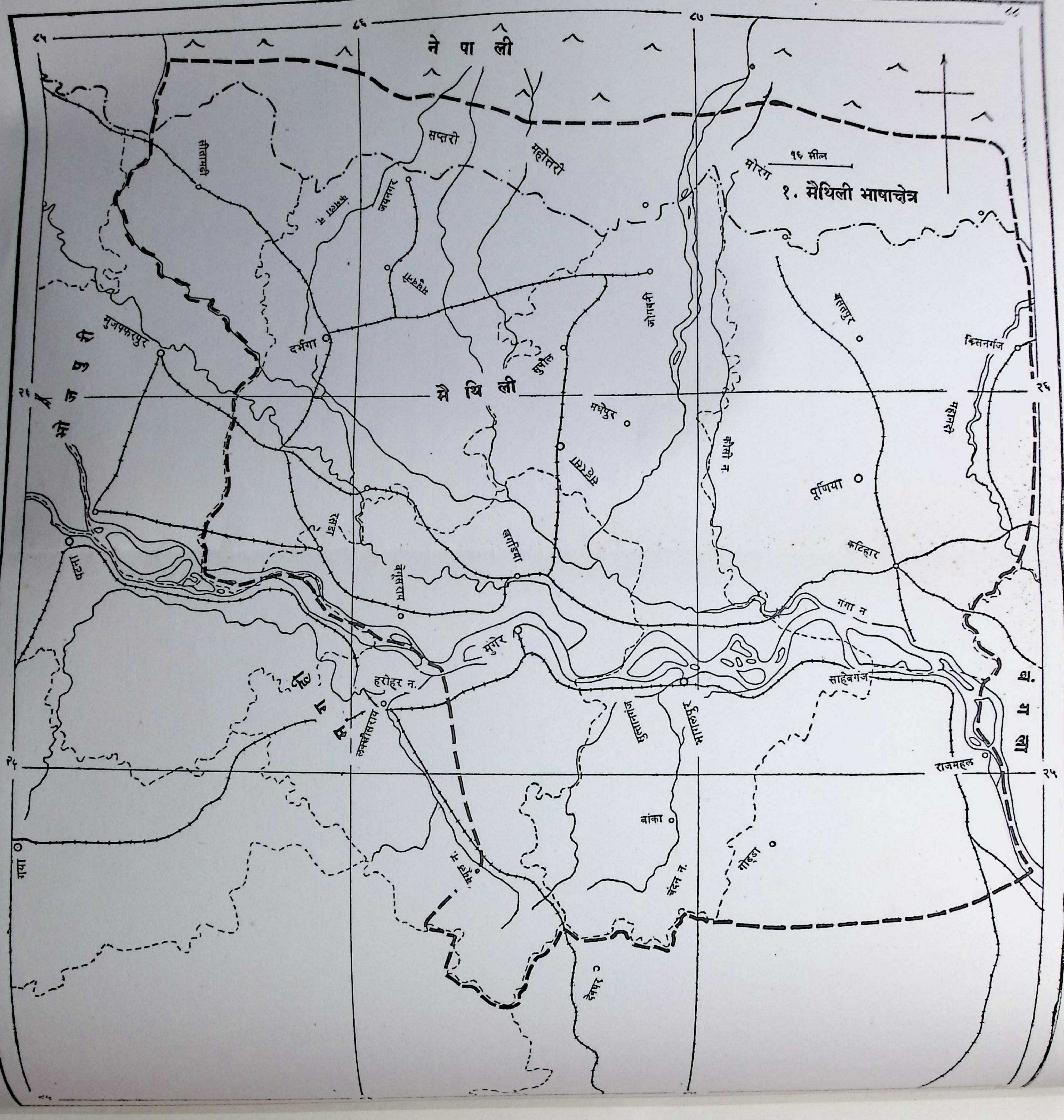
२ इफ यू वांट टु नो दि स्टोरी आव् माई लाइफ, देन लिसन टु माई (करमा) सांग्स। —डा० वैरियर एलविन : वही, भूमिका भाग।

प्रथम खंड

मागधी समुदाय

(१) मैथिली लोकसाहित्य

श्री रामइकबालसिंह "राकेश"


१. मैथिली भाषाक्षेत्र
१६ मील
नेपाली
मैथिली
भोजपुरी
मगही
बंगला
सीतामढ़ी
सप्तरी
महोत्तरी
मोरंग
जयनगर
मुजफ्फरपुर
दरभंगा
मधेपुर
पूर्णिया
कटिहार
किसनगंज
पटना
रसड़ा
बेगूसराय
खगड़िया
मुंगेर
हरोहर न.
लखीसराय
सुल्तानगंज
भागलपुर
बांका
साहेबगंज
राजमहल
गोड्डा
चंदन न.
गंगा न.
गया

१. मैथिली लोकसाहित्य

अवतरणिका

मैथिली मिथिला प्रदेश की भाषा है। मिथिला बिहार राज्य (प्रांत) का वह भाग है जो गंगा नदी के उत्तर तथा भोजपुरी क्षेत्र के पूर्व है। प्राचीन काल में यह एक स्वतंत्र राज्य था। इसका एक नाम विदेह भी था क्योंकि यहाँ के प्राचीन राजवंश का यही नाम था। सुप्रसिद्ध राजा सीरध्वज जनक यहीं के शासक थे। पुण्यश्लोका जानकी इसी मिथिला प्रदेश की पुत्री थीं जिससे इनको 'मैथिली' भी कहते हैं। विदेह नाम का उल्लेख वेदों में भी पाया जाता है। इस वंश में मिथि नामक एक राजा उत्पन्न हुआ था जिसने अनेक स्थानों में अश्वमेध यज्ञ किए। संभव है, इसी के नाम से इस प्रदेश का नाम मिथिला पड़ गया हो। लोगों का यह विश्वास है कि जिस भूमि में इस राजा ने अश्वमेध यज्ञ संपन्न किए उसकी सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूर्व में कोशी नदी और पश्चिम में गंडक नदी थी। इसी पवित्र भूमि का नाम मिथिला पड़ा। याज्ञवल्क्यस्मृति तथा रामायण में इस नाम का उल्लेख पाया जाता है।

उणादि सूत्र के अनुसार मिथिला शब्द की उत्पत्ति 'मंथ' धातु से हुई है। मत्स्यपुराण के अनुसार मिथिल नामक एक बहुत बड़े ओजस्वी ऋषि थे। संभवतः उन्हीं के नाम पर इस प्रदेश का नाम मिथिला पड़ गया। आधुनिक मिथिला प्रदेश में प्राचीन काल के वैशाली, विदेह तथा अंग, ये तीन प्रांत अंतर्भुक्त हैं।

डा० जयकांत मिश्र के अनुसार मिथिला की प्राचीन सीमा के अंतर्गत आधुनिक मुजफ्फरपुर, दरभंगा, चंपारन, उत्तरी मुंगेर, उत्तरी भागलपुर, पूर्णिया जिले के कुछ भाग तथा नैपाल राज्य के रौताहट, सरलाही, मोहतरी तथा मोरंग आदि जिले अंतर्भुक्त हो सकते हैं। प्राचीन तथा मध्ययुग में नैपाल और मिथिला का घनिष्ट संबंध था। रामायण की जानकी के पिता सीरध्वज जनक की राजधानी जनकपुर की स्थिति इस बात को स्पष्टतया प्रमाणित करती है कि अतीत काल में भी नैपाल की तराई का कुछ भाग मिथिला प्रांत के अंतर्गत संमिलित रहा होगा।

मिथिला का एक अन्य नाम 'तिरहुत' भी है जो संस्कृत 'तीरभुक्ति' का अपभ्रंश है। पुराणों तथा तांत्रिक ग्रंथों में इस नाम का उल्लेख पाया जाता है। 'वर्णरत्नाकर' नामक ग्रंथ में भी यह नाम उपलब्ध होता है। आजकल प्रायः दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर जिलों को ही तिरहुत नाम से पुकारते हैं, यद्यपि तिरहुत डिवीजन

(कमिश्नरी) के अंतर्गत इनके अतिरिक्त चंपारन तथा सारन (छपरा) जिलों की भी गणना है ।

मैथिली, जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट होता है, मिथिला निवासियों की भाषा है। इस भाषा का उल्लेख डा० कोलब्रुक के संस्कृत तथा प्राकृत निबंधों में कुछ विस्तार के साथ उपलब्ध होता है।[१] डा० ग्रियर्सन ने कोलब्रुक के इन निबंधों का उल्लेख अपने ग्रंथ में किया है।[२] डा० कोलब्रुक ने अपने निबंध में मैथिली का संबंध बँगला से दिखलाया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि इस भाषा का साहित्य में प्रयोग नहीं होता।

इसके पश्चात् सिरामपुर के मिशनरी लोगों ने अपनी सोसाइटी के १८१६ ई० के ६ठें विवरण (मेम्वायर) में अन्य आर्यभाषाओं से तुलना करते हुए मैथिली का भी विवरण प्रस्तुत किया है। इंडियन एन्टिक्वेरी में इसका दूसरा नाम 'तिरहुतिया' भी उपलब्ध होता है।[३] इसके अतिरिक्त फैलेन, कैलाग, तथा ग्रियर्सन जैसे भाषा-शास्त्र के विद्वानों ने अपने ग्रंथों में इसका विवरण प्रस्तुत किया है। डा० ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' में इस भाषा का जो वर्णन किया है वह अत्यंत प्रामाणिक तथा महत्वपूर्ण है।

यूरोपीय विद्वानों के इन उल्लेखों के अतिरिक्त इस संबंध में जो अन्य सामग्री उपलब्ध होती है उसपर भी विचार करना आवश्यक है। विद्यापति ने कीर्तिलता के प्रारंभ में इसकी भाषा को 'देसिल बअना'[४] या 'अवहट्ट' कहा है। डा० सुभद्र झा के अनुसार 'देसिल बअना' से उस समय की भद्र लोगों की भाषा से तात्पर्य है। अवहट्ट से विद्यापति की पदावली अथवा उनसे एक शताब्दी पूर्व होनेवाले ज्योतिरीश्वर की भाषा से तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसमें विद्यापति ने उन शब्दों का प्रयोग किया है जो बोलचाल की मैथिली से लुप्त हो चुके थे। अवहट्ट से वस्तुतः अपभ्रंश प्राकृत से तात्पर्य नहीं है अपितु यह प्रारंभिक नव्य भारतीय आर्यभाषा का ही एक दूसरा नाम है।[५]

मैथिली की पश्चिमी, पूर्वी, उत्तरी तथा दक्षिणी सीमाओं पर क्रमशः भोजपुरी, बँगला, नैपाली तथा मगही भाषाएँ स्थित हैं। अपने क्षेत्र में मैथिली भाषा मुंडा

[१] एशियाटिक रिसर्चेज, भाग ७, पृ० १९९ (सन् १८०१ ई०)

[२] इंट्रोडक्शन टु द मैथिली डायलेक्ट आव् बिहारी लैंग्वेज ऐज स्पोकेन इन नार्थ बिहार, भूमिका, पृ० १५।

[३] सन् १९०३

[४] देसिल बअना सब जन मिट्ठा।

[५] डा० सुभद्र झा : फार्मेशन आव् मैथिली, पृ० ४४-५१

तथा संथाली इन दो अनार्य बोलियों से मिलती है। मैथिली की प्रधान निम्नांकित बोलियाँ उपलब्ध होती हैं :

(१) आदर्श मैथिली
(२) दक्षिणी ,,
(३) पूर्वी ,,
(४) पश्चिमी ,,
(५) जोलही ,,
(६) केंद्रीय ,,

इनमें से दरभंगा जिले में बोली जानेवाली मैथिली आदर्श समझी जाती है।

मैथिली भाषा की उत्पत्ति मागधी प्राकृत से मानी जाती है। डा० ग्रियर्सन ने अपनी भाषा संबंधी सर्वे की रिपोर्ट में बिहार प्रांत में बोली जानेवाली भाषाओं को बिहारी लैंग्वेज (बिहारी भाषा) नाम दिया है और उसकी तीन बोलियाँ बतलाई हैं—(१) मैथिली, (२) मगही, (३) भोजपुरी। वस्तुतः बिहार की इन तीनों बोलियों के व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् ही डा० ग्रियर्सन इस सिद्धांत पर पहुँचे हैं और उनका यह अनुसंधान अत्यंत महत्वपूर्ण है। परंतु इधर कुछ विद्वानों ने डा० ग्रियर्सन के इस सिद्धांत को भ्रांत सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा० जयकांत मिश्र ने अपनी पुस्तक "ए हिस्ट्री आव् मैथिली लिटरेचर" में डा० ग्रियर्सन के मत का खंडन करते हुए भोजपुरी का संबंध उत्तर प्रदेश से बतलाया है।

बिहारी भाषा की तीनों बोलियों में मैथिली का इतिहास सबसे प्राचीन है। मैथिल कोकिल विद्यापति ने अपने कोकिलकंठ से जिस भाषा में गान गाया हो उस भाषा का महत्व सरलतया समझा जा सकता है। विद्यापति की पदावली ही इस भाषा को अमर बनाने के लिये पर्याप्त है। मैथिली के कवियों की परंपरा दीर्घ काल से अक्षुण्ण चली आती है। आज भी इस प्रांत में अनेक कवि विद्यमान हैं जो बड़ी सरस, सरल तथा सुंदर रचना करते हैं।

मैथिली भाषा प्रायः देवनागरी लिपि में लिखी जाती है परंतु मैथिल ब्राह्मणों की अपनी एक अलग लिपि भी है जो मैथिली कहलाती है[1]। यह लिपि बँगला लिपि से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

१. डा० धीरेंद्र वर्मा : हिंदी भाषा का इतिहास, पृ० ५७

प्रथम अध्याय

गद्य

मैथिली का शिष्ट साहित्य जिस तरह समृद्ध है वैसे ही इसका लोकसाहित्य भी कमनीय और विस्तृत है, यह श्री रामइकबालसिंह 'राकेश' के दो संग्रहों से मालूम होता है। यह गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्य में लोककथाएँ 'खिस्सा' और मुहावरे हैं और पद्य में लोकगाथाएँ 'पवाड़े' और लोकगीत।

पद्य साहित्य की तरह मैथिली के गद्य लोकसाहित्य के संग्रह और प्रकाशन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

१. लोककथा 'खिस्सा'

पूर्णिया से मुजफ्फरपुर, सहरसा से मुंगेर, भागलपुर जिलों तक फैले मैथिली क्षेत्र की भाषाओं में कम अंतर है। शास्त्रीय साहित्य के लिये दरभंगा की भाषा को शिष्ट माना जाता है, पर लोकसाहित्य के लिये ऐसा निर्बंध नहीं है। निम्नलिखित लोककथा मैथिली क्षेत्र के पश्चिमी अंचल पर अवस्थित मुजफ्फरपुर जिले के कुढ़नी थाने के गाँव जगरनाथपुर (मुजफ्फरपुर से १० मील दक्षिण) के निवासी श्री बलराम ठाकुर ने कही है :

(१) फुदगुद्दी

एक फुदगुद्दी रहे। ऊ चराई का गेल। ओकरे एगो चना मिलल। खूटा में दरे गेल। एक दाल गीरल, एक दाल वोही में अटक गेल। ऊ बढ़ई केने गेल औ कहलख :

बढ़ई बढ़ई, खूँटा चीरु। खूँटा में मोरे दाल बा। का खाऊँ, का पीऊँ, का ले परदेस जाऊँ। बढ़ई कहलख कि एगो दाल खातिर हम खूँटा ना चिरब। फुदगुद्दी राजा कने गेल। कहलख :

राजा राजा बढ़ई डाँडू। बढ़ई न खूटा चीरे।···आदि।

राजा कहलख : एक दाल खातिर हम बढ़ई न डाँडब। फुदगुद्दी रानी केने गेल औ कहलख :

रानी रानी, राजा बुझाऊ । राजा न बढ़ई डाडे ।···

रानी कहलख : एगो दाल खातिर हम राजा न बुझाएब । फुदगुद्दी उदास होके सरप कने गेल औ कहलख :

सरप सरप, रानी डसू । रानी न राजा बुझावे ।···सरप कहलख : एगो दाल खातिर हम रानी न डसब । फुदगुद्दी गेल लाठी कने औ कहलख :

लाठी लाठी, सरप पीटू । सरप न रानी डँसे ।···लाठी कहलख : एगो दाल खातिर हम सरप पीटू, न पीटब । फुदगुद्दी गेल आग कने औ कहलख :

आग आग, लाठी जारु । लाठी न सरप पीटे ।···आग कहलख : एगो दाल खातिर हम जाई लाठी जारे ? न जाइब । फुदगुद्दी गेल समुंदर कने औ कहलख :

समुंदर समुंदर, आग बुझाऊ । आग ना लाठी जारे ।···समुंदर कहलख : एगो दाल खातिर हम आग न बुझाएब । फुदगुद्दी गेल हाथी कने औ कहलख—

हाथी हाथी, समुंदर सुखू । समुंदर न आग बुझावे ।···हाथी कहलख : हम एगो दाल खातिर समुंदर सोखू ? न सोखब । फेर फुदगुद्दी गेल जाल कने :

जाल जाल, हाथी बझाऊ । हाथी न समुंदर सोखे ।···जाल कहलख : हम एगो दाल खातिर हाथी न बझाएब । फुदगुद्दी गेल मूसा कने औ कहलख—

मूसा मूसा, जाल काट । जाल न हाथी बझावे ।···मूसा कहलख : हम एगो दाल खातिर जाल न काटेब । फुदगुद्दी गेल बिलाई कने—

बिलाई बिलाई, मूसा धरु । मूसा न जाल काटे, जाल न हाथी बझावे, हाथी न समुंदर सोखे, समुंदर न आग बुझावे, आग न लाठी जारे, लाठी न सरप मारे, सरप न रानी डसे, रानी न राजा बुझावे, राजा न बढ़ई डाढे, बढ़ई न खूटा चीरे, खूटा में दाल बा, का खाऊँ का पीऊँ का ले परदेस जाऊँ ।

बिलाई कहलख : हमरा बुझावे वुझावे जनि कोइ, हम मूसा धरब लोइ । बिलाई के लेके फुदगुद्दी मूसा कने पहुँचल । बिलाई के देखते मूसा डराई के बोलल :

हमरा धरे ओरे जनि कोइ । हम जाल काटब लोइ ।

तीनों पहुँचलन जाल केने । देखते जाल बोलल : हमरा काटे कोटे जनि कोइ । हम हाथी बझायब लोइ । चारो पहुँचलन समुंदर कने । समुंदर देखते बोलल : हमरा सोखे ओखे जनि कोइ । हम आग बुझायब लोइ । पाँचो जने पहुँचलन लाठी कने । लाठी देखते बोलल : हमरा जारे ओरे जनि कोइ । हम सरप पीटब लोइ । छओ जने पहुँचलन रानी कने । रानी देखते बोललिन : हमरा डसे ओसे जनि

कोइ। हम राजा बुझायब लोइ। सातो जने पहुँचलन राजा कने। राजा डेराय के बोलल : हमरा बुझावे ओझावे जनि कोइ। हम बढ़ई डाडाब लोइ। आठो जन पहुँचलन बढ़ई कने। बढ़ई डेराय के कहलख : हमरा डाडे ओडे जनि कोइ। हम खूटा चीरब लोइ। सब लोग खूटा के नगचा पहुँचलन। खूटा कहलख : हमरा चीरे ऊरे जनि कोइ। हम दाल गिरायब लोइ। एतना कहके दाल गिरा देलख। फुदगुद्दी दूना दाल लेके फुरे दिन उड़ गैल।

खिसा खिसगरी खिसा के दू चार टगरी।
हम खटिया तू मचिया। खिसा कइसे होइ।

(२) घड़ियाल

एगो घड़ियाल रहलइ। एक दिन साँझ के नदी से उप्पर सुखलाए बइठल रहलइ। घड़ियाल क सोभाव, ओकरा आँख से लोर सदा गिरइत रहलक। एगो कूकुर ओकरा के रोअत देखलख। मन में दया आइल। ऊ गेल पूछे—'तोहरा कवन दुख परल हउ, जे तू रोअइ ल।' नजिका पाइके घड़ियलवा टप दे ओकरा के लील गेल।

ई कुल रहरी में से एगो सियार देखइत रहल हउ। सियार के बहुत दुख भेल। सोचलख, ऊ तो ओकरा दुख पूछे गेल। ई बदमास से बदला लेवइ चाही।

घड़ियाल ओही समय अंडा परलख नदी के किनारे बलू खोदके। सियरा देखइत रहल हउ। गमे गमे नदी के पानी सुखल गेल। पानी दूर चल गेल। घड़ियाल रहल पानी में। सियरवा रोज उनके एगो अंडा खा जाय। घड़ियलवा देखइत रहे। सुखल में गते गते अबे। तबले सियरवा भाग जाय। अइसे करते करते ओकर सब अंडा खा गेल।

बरसात फेर आ गेल। नदी भर गेल। घड़ियाल सोचलख—ई त हमार कुलि अंडा खा गेल। अब एके मारे के चाही। ऊ पता लगावे लागल कि ई कहाँ पानी पिए छै। नदी के किनारे एगो पीपड़ के गाछ रहइ। सियरवा चुपे चाप उनके अने ही एकंता में पानी पिए। घड़ियाल के पता लग गेल। ओही जगो ऊ पानी में बुडकल रहल पहिले ही से। पीपड़ के सोड़ के उप्पर चढ़के सियार जइसे पानी पिए लागल ह तइसहीं घड़ियलवो दुन्नो हाथ से ओकर दुन्नो आगेलका गोड़ पकड़लख। सियरवा कहलख :

जा हो दोस, तोहा धरे चाही गोड़,
धै लेहला बड़ के सोड़

घड़ियलवा के बुझायल कि साँचे पीपड़ के सोड़ धरा गेल। गोड़ छाड़के सोड़ धै लेलख। अब ले सियरवा भाग के सुखला में चल गेल, औ कहइह :

जा हो दोस तोहरा धरे के चाही गोड़, धै लेल सोड़।

(ख) 'बुझउली' (पहेली)

१—चाक डोले चकमन डोलै। खारा पीपल कबहू न डोले।
ई की भले, 'इंडा इनार'

२—तनी बड़ के खरहा, टुनमुन नाव।
ओपर लादे पचीस मन धान।
चिट्ठी

३—गोड़ तर बरहल बाप रे बाप।
आग

४—तनी बड़के टुइया, पटक देली टुइया।
फूटै न फाटै बाह बाह रे टुइया।
मटर

५—इल्ली देखल दिल्ली देखल देखल सहर कलकत्ता।
एक सहर में ऐसन देखल, फूल के ऊपर पत्ता।
गुम्मा फूल

६—चार चिरइया चार रंग। चारो बेदरंग।
पिंजरा में रख देला। चारो एक्के रंग।
पान

७—एक चिरइया लट। ओकर पाख दुन्नो पट।
ओकर खलरा ओदार। तेकर मास मजेदार।
ऊख

द्वितीय अध्याय

पद्य

१. लोकगाथा 'पवाड़ा'

मैथिली के लोकसाहित्य में वे सभी पवाड़े प्रचलित हैं जो मगही और भोजपुरी में मिलते हैं, जैसे १. कुअर विजयी, २. नैका बंजरवा, ३. लोरिकाइन, ४. राजा ढोलन, ५. बिहुला, ६. आल्हा। किंतु मैथिली भाषाक्षेत्र में उन पर मैथिली भाषा का प्रभाव पड़ा है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से उनका महत्व भी है। इनके नमूने दूसरी भाषाओं में दिए जानेवाले हैं। अतः उनको यहाँ नहीं दिया जायगा।

२. झूमर

झूमर शृंगार रस प्रधान गीत है। भोजपुरी तथा अन्य भाषाओं में भी इस गीत का प्रचलन है। इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

धनि—भोर भेइल हे पिया भिनसरवा भेइल हे।
उठू न सेजरिया से कोइलिया बोलइ हे॥

पिया—कोइलिया बोलइ हे धनी, कोइलिया बोलइ हे।
देहू न मुरेठवा, हम कलकतवा जइबो हे॥

धनि—कलकतवा जइबा हे पिया, कलकतवा जइबा हे।
हम तउ बाबा के बोलाके नइहरवे जइबो हे॥

पिया—नइहरवे जइबा हे धनी, नइहरवे।
जेतना लागल बा रुपैया, ओतना धैके जइहउ हे॥

धनि—रुपैया देबा हे पिया, रुपैया।
जैसन बाबा घर से लैला, ओइसन बनइए दोहउ हे॥

पिया—बनइए देबो हे धनी, बनइए।
मोतीचूर के लडुअवा, खिअइए देबा हे।

धनि—न बनइबा हो पिया, तू न बनइबा हे।
अपना मनवा के बतिया मने रखिया हे॥

तृतीय अध्याय

लोकगीत

१. श्रमगीत

(क) चाँचर—'चाँचर' शब्द का अर्थ है परती छोड़ी हुई जमीन। पावस ऋतु में खेत रोपते हुए कमकर (श्रमिक) दो दलों में बँटकर 'चाँचर' गाते हैं। यह प्रश्नोत्तर के रूप में गाई जाती है। एक दल संमिलित अथवा अर्धमिश्रित स्वर में प्रश्न करता है। दूसरा उसका समीचीन उत्तर देता है। ऊपर से वर्षा होती रहती है और नीचे घुटने भर जल में कमर झुकाए कृषक जमीन को धान से आबाद करते जाते हैं। गाने का सिलसिला बीच बीच में इस जोश खरोश के साथ चलता है कि आकाश का पर्दा फटने लगता है।

१—कौन मासे हरिअर ठूँठ पकरा।
कौन मासे हरिअर धेनु गाय।
कौन मासे हरिअर पातर तिरिया।
कौन मासे गौन केने जाय।
चइत मासे हरिअर ठूँठ पकरा।
भादो मासे हरिअर धेनु गाय।
अगहन मासे हरिअर पातर तिरिया।
फागुन मासे गौन केने जाय।

२—कौन फूल फुलाइ छइ कोठरिया।
कौन फूल फुलाइ छइ अकास।
कौन फूल फुलाइ छइ समुंदर में।
कौन फूल फुलाइ छइ नेपाल।
पान फूल फुलाइ छइ कोठरिया।
कसइलि फूल फुलाइ छइ अकास।
चूना फूल फुलाइ छइ समुंदर में।
कथ फूल फुलाइ छइ नेपाल।

२. ऋतु गीत

(क) मलार (सावन)—'तिरहुति' और अन्य अनेक गीत शैलियों के रहते हुए भी 'मलार' के बिना मिथिला के लोकसंगीत की दुनिया उजाड़ थी।

'मलार' पावस ऋतु में स्त्री पुरुष दोनों गाते हैं। लेकिन, दोनों के गाने के ढंग अलग अलग हैं। औरतें इन्हें गाने के वक्त किसी साजबाज की मदद नहीं लेतीं। हिंडोले पर बैठकर वे संमिलित स्वरों में गाती हैं। पुरुष साजबाज की मदद से गाते हैं, और जब वे पंचम में पूरी आवाज के साथ राग अलापते हैं तब कभी कभी तबले और मृदंग (थाप की चोट से) कड़ककर टूक टूक हो जाते हैं।

इस प्रांजल गीतशैली के कुछ नमूने देखिए :

१—कारि कारि बदरा उमड़ि गगन माझे।
लहरि बहे पुरवइया।
मत बदरा बूँद बूँद झहरह।
घराए पलँग पर भिजत,
कुसुम रँग सड़िया।
रे बदरा मति बरसु एहि देसवा।
रे बदरा बरिसु ललन जी के देसवा।
बदरा हुनके भिंजाव सिर टोपिया रे बदरा।
एक त बैरिन भेल सासु रे ननदिया।
दोसर बैरिन तुहुँ भैले रे बदरा।
मति बरसु एहि देसवा।
बदरा, कहमे सुखएबो मैं लालि चुनरिया।
कहमे सुखएबो नागिन केसिया रे बदरा।
मति बरसु एहि देसवा।

२—कहु ने सिया जी क बतिया हे लछुमन।
भवन छोड़अलौं बनहिं पठअलौं,
बिरह दगध भेल छतिया।
सगरि राति हम बइसि गमअलौं।
नींद गेल हुनि अँखिया।
भाय छथि भवन भाउज छथि बन बन।
केहन कठिन भेल छतिया हे लछुमन।

(ख) फाग—संगीतमय त्योहारों में होली का त्योहार भी महत्वपूर्ण है। होली से तीन चार सप्ताह पूर्व ही संगीत की वेगवती धारा प्रवाहित होने लगती है। चारो ओर उत्साह और चहलपहल होती है। वन उपवन खिल उठते हैं। नसों में बिजली सी दौड़ जाती है। टोले मुहल्ले, बन बाग, खेत खलिहान सभी जगह लोग चहचहा उठते हैं। युवतियों की आँखें आनंद में नाच उठती हैं। फूल चिटखते हैं। भौंरे गुंजार करते हैं, और मधु चू चूकर बरस पड़ता है। होलिकादहन के

दिन गाँव के सभी श्रेणी के लोग मजहबी घरौंदों को लाँघकर इकट्ठे होते हैं और टोले मुहल्ले तथा गली कूचे के कूड़े करकट बटोरकर 'होलिकादहन' के लिये एक निर्धारित स्थान पर संचित करते हैं। घास फूस, खेतों के झाड़ झंखाड़ और लकड़ी के सूखे टुकड़ों के ढेर लगा देते हैं। होली के दिन उनमें आग लगा दी जाती है। संध्या आगमन के कुसुंभी रंग के पर्दे सी लाल लाल लपटें क्षण भर में रात के कलेजे को चीरती हुई दूर दूर तक फैल जाती हैं, और आनंद की मौजों से जनता का हृदयसरोवर लहरा उठता है। उस समय गाँव भर के गवैयों की संगीत महफिलें जमती हैं। वे ढोल, डफ, झाल तथा मृदंग के स्वर में स्वर मिलाकर एक विशेष गतिमय सुर में गाते चलते हैं :

१—नथिया के गूँज टुटि गैल रे देवरा।
मोर नइहरा में अनारी सोनरवा।
रात अन्हारी पिया डर लागे।
पिया परदेश कड़के मोरा छतिया।

२—ब्रज के बसइया कन्हैया गोआला।
रंग भरि मारय पिचकारी।
एइ पार मोहन लहँगा लुटै सखि।
ओइ पार लूटथि सारी।
मँझधार कान्हा जोबन लूटथि।
रँग भरि मारलय पिचकारी।
ब्रज के बसइया कन्हैया गोआला।

८—चले के बटिया चल गेलि कुबटिया,
से गड़ गैल न।
लवँगिया के काँट से गड़ गेल न।
केहि मोरा कँटवा निकालथिन ननदोसिया,
से केहि मोरा न।
से हरतइ दरदिया,
से केहि मोरा न।
देवरा मोरा कँटवा निकालतइ ननदोसिया,
से पिया मोरा न।
से हरतइ दरदिया से पिया मोरा न।

(ग) तिरहुति—'झूमर' और 'सोहर' को यदि हम ग्राम-साहित्य-निर्झरिणी का मधुर कल-कल-नाद कहें तो मिथिला के 'तिरहुति' नामक गीत को फागुन

का अभिसार कहना पड़ेगा। स्वाभाविकता, सरलता, प्रेमपरता का सामंजस्य और उच्च भावों का स्पष्टीकरण—ये 'तिरहुत' की विशेषताएँ हैं :

पिया अति बालक मैं तरुणी।
कौन तप चुकलहुँ भेलहुँ जनी।
पिय लेल गोदी कय चलल बजार।
हटिआ क लोग पुछय के ई तोहार।
देओर ने मोरा ने छोटा भाय।
पूर्व लिखल छल स्वामी हमार।
कि बाट रे बटोहिया तोहि मोर भाय।
हमरो समाद भइया दिह पहुँचाय।
कहिहह बबा के किनय धेनु गाय।
दुधवा पिआय पोसता लड़िका जमाय।

(घ) चैतावर—'चैतावर' गीतशैली की रसीली स्वरलहरी श्रोताओं के मन को पहरों तक डिगने नहीं देती। चैत के महीने में ये एक कंठ से दूसरे कंठ में रूई से रोएँवाले सेमल-पुंख-पत्र की भाँति दल के दल उड़ते फिरते हैं। वसंत ऋतु की मस्ती और रंगीन भावनाओं का अनोखा सौंदर्य इस गीतशैली की अभिव्यक्ति में ताने बाने का काम करते हैं :

१—चैत बीति जयतइ हो रामा।
तब पिया की करे अयतइ।
अमुआ मोजर गेल,
फरि गेल टिकोरवा।
डारे पाते भेल मतवलवा हो रामा।
चैत बीति जयतइ हो रामा।०

२—नइ भेजे पतिया।
आयल चैत उतपतिया हे रामा,
नइ भेजे पतिया।
बिरही कोयलिया सब्द सुनावे।
कल न पड़य अब रतिया हे रामा। नइ भेजे०।
बेली चमेली फूले बगिया में।
जोबना फुलल मोरा अंगिया, हे रामा। नइ भेजे०।

(ङ) साँझ—जब गौएँ अपने थान पर लौट आती हैं, निःशब्द नदी के सूर्य का किनारे प्रकाश धीरे धीरे कम होने लगता है, कुंजों में कलियाँ आँखें मूँद लेती

हैं, संध्याकालीन रंगबिरंगे तारे आसमान में हँसने लगते हैं और थकी माँदी संध्या आकर अपना आसन जमाती है, तब दिन भर के परिश्रम से क्लांत कृषकगण अपनी चौपालों में बैठकर जिन मीठे मीठे गीतों को गाकर चिंतामुक्त होते हैं, उन्हीं का नाम है 'साँझ' :

साँझ लेसाय गेल, फूल फुलाय गेल।
भँवरा लेल बसेरा मलिनिया लोढ़ि लिय।
मालिनि लोढ़ि लोढ़ि भरि लेल दोना।
एक त मलिनिया मृगमद मातलि।
दोसरे भरल फूल दोना।
फूलहिं लोढ़ि लोढ़ि हार जे गाँथल।
लय पहिराओल दुलरुआ।

(च) बारहमासा—पावस ऋतु में जो आनंदोन्मत्त करनेवाले संगीत गाए जाते हैं, वे 'बारहमासा', 'छौमासा' और 'चौमासा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'बारहमासा' में वर्ष भर का, 'छौमासा' में छः महीने का प्राकृतिक सौंदर्यवर्णन और 'चौमासा' में आषाढ़ सावन, भादों और आश्विन महीने का प्रकृतिचित्रण होता है। सावन और भादों महीने में जब आसमान बादलों से आच्छन्न हो जाता है, पेड़ों के ऊपर कोयल कूकने लगती है, मेढक ठुमकियाँ भरता है, और रास्ता कीचड़ से भर जाता है, तब खेतों में धान रोपते हुए मजदूर और घर में हिंडोला डाले हुए ग्रामीण देवियाँ अपनी रसीली तानों से सुधा बरसाने लगती हैं :

१—प्रथम मास अषाढ़ हे सखि,
साजि चलल जलधार हे।
एहि प्रीति कारन सेत बाँधल,
सिया उदेस श्रीराम हे।
सावन हे सखि सब्द सुहावन,
रिमझिम बरसल बूँद हे।
सभके बलमुआ रामा घर घर आयल,
हमरो बलमु परदेस हे।
भादों हे सखि रइनि भयावन,
दूजे अँधेरी रात हे।
ठनका ज ठनके रामा,
बिजुली ज चमके,
से देखि जिय डराय हे।

आसिन हे सखि आस लगाओल,
आसो न पुरल हमार हे।
आसो जे पुर रामा कुबरी सउतिनिया,
जिन कंत राखल लोभाय हे।
कातिक हे सखि पुन्य महीना,
सखि कर गंगा स्नान हे।
सब कोई पहिने पाट पटंबर,
हम धनि गुदरी पुरान हे।
अगहन हे सखि हरित सुहावन,
चारु दिशि उपजल धान हे।
चकवा चकेइया रामा केलि करइअ,
सेइ देखि जिया हुलसाय हे।
पूस हे सखि ओस पड़ि गेल,
भींजि गेल लामि लाभि केश हे।
जाड़ा छेदे तन सुइ सन छुन छुन,
थर थर काँपए करेज हे।
माघ हे सखि ऋतु बसंत आयल,
गेलो जाड़ा के दिन हे।
पिया जं रहितथि कोरवा लगइतथि,
(तब) कटइत जाड़ा हमार हे।
फागुन हे सखि सब रँग बनायल,
खेलत पिय के संग हे।
ताहि देखि मोरा जियरा ज तरसय,
काहि पर डारु हम रंग हे।
चैत हे सखि सभ बन फूले,
फुलवा ज फुलए गुलाब हे।
सखि सभ फूले रामा पिया क सँग में,
हमरो फूल मलीन हे।
बइसाख हे सखि पिया नहिं आयल,
बिरह कुहकत गात हे।
दिन ज कटए रामा रोवत रोवत,
कुहुकत बितए सारि रात हे।
जेठ हे सखि आय बलमुआ,
पूरल मन केर आस हे।

सारि दिना सखि मंगल गावति,
रएन गँवाय पिया साथ हे।

३. त्योहार गीत

(क) मधुश्रावणी (तीज)—मिथिला के अन्य त्योहारों की तरह 'मधुश्रावणी' नवविवाहिता स्त्रियों का एक त्योहार है। मिथिला में ही यह त्योहार मनाया जाता है। यह श्रावण शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। यद्यपि यह त्योहार सावन के ही समान सरस है, फिर भी इसमें एक भयंकर विधि इसलिये की जाती है कि विवाहिता स्त्री दीर्घकाल तक सधवा बनी रहे। नवविवाहिता पूजाविधि के साथ एक जलती बत्ती से दागी जाती है। यदि फोड़े खूब अच्छे आए, तो स्त्रियाँ उन्हें सधवापन का चिह्न समझती हैं :

१—"पर्वत ऊपर सुग्गा मड़राय गेल।
किनि दिय आहे बाबा लाल रंग केचुआ[1]।
बेसाहि दिय आहे माय मोरा चित्रसारी।"
"निर्धन घर गे बेटी तोहरो जनम भेल।
निर्धन घर गे बेटी तोहरो विवाह भेल।
कतय पैबऽ गे बेटी लाल रंग केचुआ।
कतय पैबऽ गे बेटी हम चित्रसारी।"
से हो सुनि अमुक वर चलला बेसाहे।
ओतहिं सँ बेसाहि लेला लाल रंग केचुआ।
ओतहिं सँ बेसाहि लेला ओहो चित्रसारी।
पहिरि ओहिरि कन्या ठाढ़ि भेलि आँगन हे।
देखिय देखिय बाबा लाल रंग केचुआ।
देखिय देखिय माय एहो चित्रसारी।

२—कदलिक दल सन थर थर काँपए।
मधुश्रावणी विधि आजए।
सकल श्रृंगार सम्हारि सजनि सब।
मधुमय सकल समाजे।
कमलनयन पर पानक पट दय।
नागर जखन हे झाँपए।
बध करि हाथ कमल कर बाती।

[1] कंचुकी, चोली।

देखि सगर तन काँपए।
आजु सुहागिनि सह मिलि बइसल।
मुख किय पड़ल उदासे।
कुमर नयन सँ नीर बहावइ।
गाइन गावतु गीते।
बड़ अजगुत थिक मधुश्रावणी विधि।
परम कठिन एहो रीते।

(ख) छठ गीत—छठ, जिसे कोई कोई सूर्यषष्ठी व्रत भी कहते हैं, कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को होती है। यह व्रत मिथिला में स्त्री पुरुष दोनों करते हैं। कहीं कहीं चैत महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को भी यह त्योहार मनाया जाता है। व्रती दिन के चौथे पहर नदी, सरोवर या अपने घर में ही स्नान करते हैं। संध्या को भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त से सूर्य भगवान् को नीबू, केला, नारंगी और मिष्टान्न आदि भोज्य पदार्थों का अर्घ्य देते हैं। प्रातः सूर्योदय होने पर पुनः अर्घ्य देकर अपने सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा देते हैं :

१—"बेरि बेरि बरजह दीनानाथ हे।
बबा हे तिरिया जनम जनि देहु।
तिरिया जनम जब देहु हे दीनानाथ।
बबा हे सुरति बहुत जनि देहु।
पुरुख अमरुख जब देहु दीनानाथ हे।
बबा हे कोखिया बिहुन जनि देहु।
कोखिया बिहुन जब देहु दीनानाथ हे।
बबा हे सउतिन सउत जनि देहु।
सउतिन सउत जब देल दीनानाथ हे।
बबा हे कवन अपराध हम कयलौं।"
"बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला गे।
अबला सास निपन पैर देल।"
"कौन अपराध हम कइली दीनानाथ हे।
बबा कोखिया बिहुन जब देल।"
"बड़ अपराध तुहुँ कएले अबला गे।
अबला ननदी पर हुतका चलओले।"
"कओन अपराध हम कएली दीनानाथ हे।
बबा हे पुरुख अमरुख जब देल।"

"बड़ अपराध तुहुँ कएले अवला गे।
दूध ही कटिअवे पएर धोएलह।"
"कओन अपराध हम कयलि दीनानाथ हे।
बबा हे सुरति बहुत जब देलह।"
"बड़ अपराध तोहुँ कएले अवला गे।
अवला डगरा क बइगन तोड़ि लएले।"

२—काँचहिं बाँस केर गहवर है।
इँगुरे ढेउरल चारो कोन।
भले रे रँग कोहवर हे।
ताहि में जँ सुतलन दीनानाथ।
पिठि लागल छठि देइ हे।
उठावए गेलथिन कोन बहिनो।
आहे उठु भइया भेल भिनुसार।
अरग केर बेर भेल ।
अइसन ननदि दुचार न।
कतहुँ न देखल हे।
आहे आधे रात बोलु भिनुसार।
अरग केर बेर भेल।
उठावए गेलथिन अमा मोरा।
आए उठु बबुआ भेल भिनुसार।
अरग केर बेर भेल। भले रे०।
एहन अमा दु चार न।
अमा आधे रात बोले भिनुसार।
अरग केर बेर भेल। भले रे०।

(ग) स्याम चकेवा—प्रसिद्ध 'छठ' त्योहार की समाप्ति के बाद कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष में 'श्याम चकेवा' के गीत गाए जाते हैं। 'श्याम चकेवा' बालक बालिकाओं का खेल है। मिथिला के कुछ खास खास गाँवों और नगरों में ही यह खेल खेला जाता है। यह मिथिला की विशेषता है। एक ही जिले के कुछ गाँवों में तो यह खेल प्रचलित है, और कुछ गाँवों में इसका लोग नाम तक नहीं जानते :

१—जइसन नदिया सेमार, तइसन भइया असवार।
जइसन केरवा क थंभ, तइसन भइया क जाँघ।
जइसन धोबिया क पाट, तइसन भइया क पीठ।
जइसन रेसम क रेस, तइसन भइया क केस।

जइसन आम क फाँक, तइसन भइया क आँख।
जइसन चन्ना बिरीछ, तइसन भइया हाथ क लाठी।
जइसन जरल जराठी, तइसन चुँगला हाथ क लाठी।

२—सामा खेले गेलों में इंदुशेखर भइया केर टोल।
चंद्रहार हेराइ गेल हे भइया डलवा लय गेल चोर।
चोरवा क नाम गे बहिनी बताए देहु हे मोर।
चोरवा से चोरवा हो भइया अनजानु रइया बरजोर।
गाढे बान्ह बन्हिया हो भइया रेसम केर हे डोर।
जूता चढ़ि मारिह हे भइया करेजवा सालए मोर।

४. संस्कार गीत—

(क) सोहर (जन्म)—पुत्रजन्म के अलावा उपनयन और विवाह संस्कार के उत्सव पर भी 'सोहर' गाए जाते हैं। यद्यपि इसके सिद्धहस्त रचयिताओं ने पिंगल और व्याकरण के नियमों की जगह जगह अवहेलना की है, फिर भी इसकी टेक रागात्मिका वृत्ति से प्रभावान्वित है। 'सोहर' के रचनाकौशल में अधिकतया ग्रामीण स्त्रियों का हाथ है। इसलिये इसकी रचनापद्धति स्त्रीसुलभ कोमलता से संपन्न है और इसका संवादी स्वर सौंदर्यमयी व्यंजना से अनुप्राणित। कभी कभी चाँद की ठंढी रोशनी में बैठकर जब स्त्रियाँ अपने रसीले स्वरों से 'सोहर' गाती हैं, तो समा बँध जाता है :

१—आरे आरे प्रेम चिड़इया झरोखा चढ़ि बोलले रे।
ललना पिया मोरा गेल बिदेस बिदेसे गर छाओल रे।
सासु मोरा निसि दिन मारए ननद गरिआवए रे।
ललना गोतिनि कएल तरमेन बझिनिया गरछाओल रे।
एक हाथे लेलि घइलिया दोसरे हाथ गेरुल रे।
ललना बिरहल पनिया के गैलौं ऊपरे काग बोलल रे।
"किए मोरा कगवा रे बबा अयता किए मोरा भइया अयता रे।
कगवा कओने सगुनमा लए अएले त बोलिया बर सोहावन रे।"
"नये तोरा रानी हे बबा अयता नये तोरा भइया अयता हे।
ललना होरिला सगुनमा लए अइली त बोलिया बर सोहावन हे।"
"जँओ मोरा कगवा रे बबा अयता जँओ मोरा भइया अयता रे।
कगवा तोहरो काटब दुनु लोल त बोलिया बर सोहावन रे।
जँओ मोरा कगवा रे पिआ अयताह होरिला जनम लेत रे।
कगवा सोन में मढ़एबो दुनु लोल त बोलिया बर सोहावन रे।"

पनिया जे भरलों मैं गंगादह ओरो गंगादह रे।
ललना चारो दिसा नजरि खिराओल नयन लोरा ढर ढर रे।
विप्र सरूपे पिया अयलन आगुए भए ठाढ़ि भेल रे।
"ललना कओने कओने दुख तिरिया कओने दुख रोदन हे।"
"सासु मोरा विप्र हे मारए ननद गरियावय हे।
विप्र गोतिनि कएल तरमेन बझिनिया गरछाओल हे।"
"चुपे रहु चुपे रहु तिरिया जनिअ करू रोदन हे।
तिरिया आजुए आओत घरबइया बझिनिया पाप छूटत हे।"

(ख) जनेऊ—इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों की लय, ध्वनि, टेक और ढब छत्र अन्य गीतों की अपेक्षा भिन्न होती है। छंद, भाषा, उपमा, उपमेय साधारण, सहज सादगी से ओतप्रोत होते हैं :

१—समुआ बइसलि थिकौं कौन बाबा, "सुनु बाबा बचन हमार हे।
हमरौ के दिउ बाबा जनेउआ, हमें हएब ब्राह्मण हे।"
"कोना क आरे बरुआ गंगा नहयवह, कोना करब नेमाचार हे।
कोना क बरुआ गायत्री सुनयवह, वंश के हयत उधार हे।"
"नित उठि आहे बाबा गंगा नहायब, नित्त करब नेमाचार हे।
साँझ दुपहरिया बाबा गायत्री सुनायब, वंश के हयत उधार हे।"

२—कथिअहिं मरवा छवाओल, कथिए झिनन लागु हे।
कथिअहिं खम्म गराउ, त कथिए कलस धरू हे।
बँसवहिं मरवा छवाओल, मोतिए झिनन लागु हे।
केरा केर थंभ धराओल, तामे क कलस धरू हे।
केहि जँ मोढ़ा चढ़ि बइसल, केहि मंगल गावथु हे।
ककरहिं हयत जनेउआ, त देव लोग हरसित हे।
मोढ़ा चढ़ि बाशिठ बइसल, कोशिला मंगल गावथु हे।
आहे राम जी के छइन जनेउआ, त देव लोग हरसित हे।

(ग) विवाह गीत—लोकसंगीत के आयोजनों के लिये विवाहोत्सव सर्वोच्चम अवसर है। मिथिला का विवाहोत्सव बड़ा ही मनोरंजक होता है। विवाह में वररक्षा, जिसे कहीं कहीं सगाई भी कहते हैं, से लेकर चतुर्थी कर्म—कंकण छूटने—के दिन तक अनेक विधि-व्यवहार होते हैं। विवाहसंस्कार के पृथक् पृथक् कर्मों में पृथक् पृथक् शैली के गीत प्रचलित हैं। विवाहसंगीत की इन विवध शैलियों में कुछ ऐसे गीत हैं जो वर्णनात्मक हैं, जिनमें केवल तथ्यपूर्ण घटनात्मक वर्णन हैं। कुछ ऐसे गीत भी हैं जिनमें विरहपूर्ण यंत्रणा के आँसू ओस की नन्हीं बूँदों की तरह मोतियों के गोल गोल दाने के रूप में बिखर गए हैं, और कुछ ऐसे हैं जो प्रेम,

करुणा, वैराग्य आदि मनोविकारों के अनेक रंगों से रंजित हैं, और विश्व के नैराश्य-पूर्ण वातावरण से संतप्त आत्माओं का मनोरंजन करते हैं।

विवाह संस्कार की ऋतु आने पर पहले किसी शुभ मुहूर्त में कन्या के हित-कुटुंबी, उसके पिता, भाई या उसकी ओर से नाई और ब्राह्मण जाकर विवाह की बात पक्की करते हैं। वर ठीक कर चुकने पर हाथ में केसर, हलदी, दही और अक्षत लेकर वर के ललाट पर तिलक लगाते हैं।

वर को तिलक चढ़ाने के बाद मंडपनिर्माण और स्तंभारोपण की बारी आती है। मंडपनिर्माण और स्तंभारोपण हिंदू विश्वासों के प्रतीक हैं। ये मंडप बहुत साफ सुथरे होते हैं। इनके स्तंभों पर सुंदर कलापूर्ण काम किया जाता है, मंडप की भूमि प्रायः ढालवाँ होती है, और आसपास की भूमि से एक आध हाथ ऊँची। विवाह के पहले ही दिन मंडप बनकर तैयार हो जाता है। मंडप बनाने की विधि यह है कि उसकी लंबाई और चौड़ाई बराबर रखी जाती है। मंडपनिर्माण में पूर्व दिशा का भी पूरा विचार किया जाता है, ईशान, अग्नि आदि कोणों में मंडप बनाना हानिकर माना जाता है। मंडप में चार दरवाजे होते हैं। दरवाजे मंडप की चारो दिशाओं उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की ओर बनाए जाते हैं। प्रत्येक दरवाजे के आगे एक एक तोरण होता है जो शमी, जामुन या खैर की लकड़ी का होता है। लेकिन जो समर्थ हैं, वे उत्तर का तोरण बरगद का, दक्षिण का गूलर का, पश्चिम का पाकड़ का और पूरब का पीपल का बनवाते हैं। तोरण के दोनों पार्श्व खूबसूरत बेल बूटों और सुगंधित फूल पत्तियों से सजाए जाते हैं।

(१) सामान्य—

१—पिपरक पात झलामलि हे,
बहि गेल तितल बतास।
ताहि तर कोन बाबा पलँगा ओछाओल,
बाबा क आयल सुख नींद हे।
चलइत चलइत अइलि बेटी कोन बेटी,
खटिआ के·पउआ धयले ठाढ़ि हे।
"जाहि घर आहे बाबा धिया हे कुमारि,
से हो कोना सुतथि निचिंत हे।"
अतना बचनिया जब सुनलन्हि कोन बाबा,
घोड़ा चढ़ि भेला असवार हे।
चलि भेल मगह मुंगेर हे।
"पुरुब खोजल बेटी पछिम खोजल।
खोजल मैं मगह मुंगेर हे।

तोहरा जुगुति बेटि वर नहिं भेंटल।
खोजि अएलौं तपसि भिखार हे।"
"निरधन तपसिया हमें न विआहव,
मरि जएबों जहर चबाय हे।"

२—मोर पछुअरवा लवँग केर गछिया,
लवँगा चुअए आधि रात हे।
लवँगा में चुनि चुनि सेजिया डँसाओल।
ईंगुर ढेउरल चारु·कोन हे।
ताहि सेजिया सुतलन्हि दुलहा कओन दुलहा,
संगे भडुअवक धिआ हे।
"आसुर सुतु आसुर बइसु कन्या सुहवे,
घाम सँ चादर होय मइल हे।"
अतना बचनिया जब सुनलन्हि कन्या सुहवे,
रूसलि नइहरवा के जाथि हे।
एक कोस गेलि दोसर कोस गेलि,
तेसर कोस नदि·छछकाल हे।
"आ रे आ रे केवट मलहवा रे भइया।
जल्दी से नइया लय आउ हे।"
"आजु क रतिया सुनरि अतहि गँवाऊ,
बिहने उतारब पार हे।"
"आ रे आ रे केवट मलहवा रे भइया,
अहाँ क बोलि मोहि ने सोहाय हे।
सेजयहिं छाँड़ल कुँअर कन्हैआ,
जइसँ सुरुजव क जोत हे।
एक लेवय आवय आजन बाजन,
दोसर आवय सोजन लोग हे।
तेसर लावन आवय दुलहा सँ कौन दुलहा,
मोहिं मनावन होय हे।"

(२) सम्मरि (स्वयंवर)—'सम्मरि' शैली के गीतों का संबंध स्वयंवर से होने के कारण इनमें तत्कालीन विवाह प्रथा का ही चित्र मिलता है :

१—नगर अयोध्या राज उचित थिक[1],
जहँ बसु[2] दशरथ नंद यो।
राम क जोरी बसथि जनकपुर,
छपन कोटि देल दान यो।
गया नौतब[3] गदाधर नौतब,
काशी नौतब बिस्वनाथ यो।
भितु[8] भुवन एक दानी नौतब,
बासुकि नाग पताल यो।
राजपाट पर राम जी बइसल[4],
भटकि चलु बरिश्रात यो।
श्रठारह छौंहनि[5] बाजन बाजे,
सवा लाखहिं ढोल यो।
जयखन[6] सुनता[7] कतेक बुझओता,
धरू ध्यान धन लोक यो।
पहिल दान कयल तिल कुस ले,
दोसर दान गोदान यो।
तेसर दान कयल शाल दोशाला,
चारिम दान कन्यादान यो।
ऊखर आनल मूसर दे दै,
केहन ढक ढक ताल यो।
आम क पतलव कंगन बान्हल,
ब्रह्मा बेद पढ़ावि यो।
भेल विवाह चलल राम कोबर[8],
सीता ले अँगुरि धरावि यो।

(२) जोग—स्त्रियों में ही इसका चलन है। इसकी विशेषता यह है कि यह बेटी के विवाह के अवसर पर गाया जाता है :

हमरा क जँओ तेजब गुन हाँकब।
जोग देव समधान अधिन कय राखब।

[1] है। [2] रहते हैं, राज्य करते हैं। [3] न्योतूँगा। [4] बैठे। [5] अक्षौहिणी। [6] जिस समय। [7] सुनेंगे। [8] कोहबर।

एको पलक जँओ तेजब गुन हाँकब।
"एहन जोग मोर तेज सेज नहिं छाड़ब।
आरसि काजर पारब निसि डारब।
ताहि लय आँजब आँखि जोग परचारब।
नयनहिं नयन रिझायब प्रेम लगायब।
करब मोरा गरहार हृदय बिच राखब।
भनहिं विद्यापति गाओल जोग लगाओल।
दुलहा दुलहिनि समधान अधिन कय राखल।

(४) समदाउनि—विवाह के बाद जब दुलहिन डोली में बैठकर ससुराल जाने की तैयारी करती है, उस समय मिथिला में एक विशेष शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाउनि' के नाम से प्रसिद्ध है। विदा के समय दुलहिन की माँ, बहन, भावज और उसकी हमजोलियाँ सब उसके गले लिपटकर रोती हैं। उस समय उनके संवेदनाशील गीतों को सुनकर पाषाण से कठोर हृदयवालों की आँखों में भी सावन भादों की झड़ी लग जाती है और वियोगवेदना से उनका हृदय भी फटने लगता है :

१—जइती बड़ि हे दूर,
लगती बड़ि हे बेर।
अँगने अँगने बुलु हँसइत जमाय,
धिआ हे समोधु सासु मन चित लाय।
गैया के बँधितों में खुटा हे लगाय।
बछिया के लेल जाइय भागल जमाय।
जइती बड़ि हे दूर,
लगती बड़ि हे बेर।
गैया जँ हुँकरय दुहान केर बेर।
बेटी क माए हुँकरय रसोइया केर बेर।
"बाट रे बटोहिया कि तुहि मोर भाय।
एहि बाटे देखलो मैं धिआ धी जमाय।"
जइती बड़ि हे दूर,
लगती बड़ि हे बेर।
"देखलौं मैं देखलौं असोकवा तर ठाढ़।
धीआ हकन कानु हँसइय जमाय।
धिअवा के कनइत में गंगा बहि गेल।
दमदा के हँसइत में चादरि उड़ि गेल।"

२--गंगा उमड़ि गेल जमुना उमड़ि गेल,
उमड़ल घोंघा सेमार हे।
एक नइ उमड़ल बाबा कोन बाबा,
आयल धर्म क बेर हे।
"कहिति त आहे बेटी तमुआ तनइति,
आओर रेसम क ओहार हे।
कहिति त आहे बेटी सुरज अरोधितौं,
मोरे बदन न झमाय हे।"
"कथि लागि बबा तमुआ तनाएव,
कथि लागि रेशम ओहार हे।
कथि लागि बाबा सुरज अरोधब,
जयबौं सुंदर बर पास हे।
हम भइया मिलि एक कोख जनमल,
पिअलि सोरहिया क दूध हे।
भइया के लिखइन एहो चउपरिया,
हमरो लिखल परदेस हे।
ककरहि कानल में नग्र लोग कानथ,
ककरहि दहलल भुइँ हे।
कोन निरबुधिया क आँगि टोपी भिंजल,
ककर हृदय कठोर हे।"
"बबा क कनले में नग्र लोग कानल,
अमा क कनले दहलल भुइँ हे।
भइया निरबुधिया के आँगि टोपी भिंजल,
भउजि के हृदय कठोर हे।
केहि जे कहय बेटी नित्य बोलायब,
केहि कहय छौ मास हे।
केहि कहय एतही भय रहथि,
केहि कहय दुर जाऊ हे।
बबा कहथि नित्य बोलाएव,
भइया कहथि छौ मास हे।
अमा कहथि एतही भए रह,
भउजि कहथि दुर जाउ हे।

(५) बटगमनी—

(क) मेला गीत—'बटगमनी' का अर्थ है—पथ पर गमन करनेवाली। यदि आप मिथिला के गाँवों में किसी प्रसिद्ध त्योहार या मेले के उत्सवों पर जायँ, और देहात की ऊबड़ खाबड़ सँकरी पगडंडी पर आँखों में काजल आँजे, सिर पर लहराते हुए बालों की चोटी गूँथे, हाथों में काँच की चूड़ियाँ पहने, घेरदार साड़ी का आँचल कमर में खोंसे और एक खास नाजोअंदाज से गाँव की युवतियों को कंधे से कंधा मिलाकर अपने दर्द भरे लहजों में नशीले नगमे गाते हुए सुनें या वीरान दरिया के किनारे से अपने घरों को लौटती हुई पनहारियों को माथे पर गागर रखे हुए देखें, तो समझ लीजिए कि सावन की तरह रस बरसानेवाला वह गीत 'बटगमनी' है।

१—जनमल लौंग दुपत भेल सजनि गे,
फर फूल लुबधल जाय।
साजी भरि भरि लोढ़ल सजनि गे,
सेजहीं दय छिरिआय।
फुल क गमक पहुँ जागल सजनि गे,
छाड़ि चलल परदेस।
बारह बरिस पर आयल सजनि गे,
ककवा लय संदेस।
ताहीं सँ लट झारल सजनि गे,
रचि रचि कयल सिंगार।

२—कतेक यतन भरमाओल सजनि गे,
दय दय सपथ हजार।
सपथहुँ छल जौं जनितहुँ सजनि गे,
नहिं करितहुँ अँकवार।
आवि जगत भरि भावि न सजनि गे,
क्यों जनु करै प्रतीति।
मुख सो अधिक बुझावथि सजनि गे,
पुरुष क कपटी प्रीति।
बाजथि बहुत भाँति सो सजनि गे,
बचन राखथि नहिं थीर।
तनुक हिया मोरा दगधल सजनि गे,
ज्यों तृण अनल समीर।

गुन अवगुन सम बुझलैन्हि सजनि गे,
बुझलैन्हि पुरुष क रीति ।
अंतहिं यह निरधाओल सजनि गे,
पुरुष क कपटी प्रीति ।

(६) नचारी--'नचारी' के गाने का कोई खास मौसिम अथवा कोई समय नहीं। अंतःपुर में सूनी सेज पर, बेटी के विवाह के अवसर पर, पावस ऋतु में खेतों की मेंड़ पर, संध्या और प्रातःकाल चौपाल में बैठकर प्रायः हर समय 'नचारी' गाते हैं। भुक्खड़ और भिखमंगे साधु समर्थ गृहस्थों के द्वार पर इन्हें गा गाकर भीख माँगते हैं, और शिव की प्रार्थना की ओट में अपनी आर्थिक दुरवस्था का नग्न चित्र खींचकर श्रोताओं में करुणा का भाव जाग्रत करते हैं। इन गीतों में श्रमजीवी किसान और मजदूरों की दर्दभरी आवाज भी सुनने को मिल जाती है।

१—हे भोला बाबा केहन कयलौं दीन ।
खेती पथारी भोला से हो लेल छीन ।
भाई सहोदर से हो भे गेल भीन ।
घर में न खरची बाहर न मिले रीन ।
गाँव के मालिक न पड़ै दइय नीन ।
एके गो लोटा छलइ भाइ भेलइ तीन ।
पनिया पिवइत काल होइय छिनाछीन ।
एके गो बेल बच गैल महाजन लेलक रीन ।
कर कुटुंब सब भेलइ परमीन ।

(७) झूमर—'झूमर' के दो भेद हैं—(१) संदेशात्मक और (२) भावात्मक। संदेशात्मक 'झूमर' में भौंरे, काक, कोयल और पथिकों के द्वारा प्रवासी साजन को विरहिणी की ओर से संदेश भेजे गए हैं और भावात्मक 'झूमर' में रसात्मक अनुभूति और आनंद का साधारणीकरण है। 'झूमरों' को देखने से पता चलता है कि भावात्मक 'झूमरों' की संख्या प्रायः नगण्य है और उनमें कठिनता से दश प्रतिशत रचनाएँ उच्च कोटि की हैं।

१—"पिया हे नइहर में भाई के विवाह,
देखन हम जायव ।
सुन हे प्रान देखन हम जायव ।"
धनि हे धय देहु सिरवा पर हाथ,
कतेक दिन रहव ।
सुन हे प्यारी कतेक दिन रहव ।

"पिया हे नय धरवइ सिरवा पर हाथ,
बरस बिति जयतइ।
सुन अहे प्रान बरस बिति जयतइ।"
"धनि हे करवह सोलहो सिंगार,
के ही के देखलाएव।
सुन हे प्यारी केही के देखलाएव।"
"पिया हे करवइ मे सोलहो सिंगार,
सखी के देखलायव।
सुन अहे प्रान सखी के देखलायव।"
"धनि हे अयतइ मैं जाड़ा के रात,
केही के गोदी सोएव।
सुन हे प्यारी केही के गोदी सोएव।
"पिया हे अएतइ मैं जाडा के रात,
अम्मा के गोदी सोएव।
सुन अहे प्यारे अमा के गोदी सोएव।"
"धनी हे अएतइ में फागुन के बहार,
केहि से रंग खेलब।
"पिया के अएतइ मैं फागुन के बहार,
भउजि सँग खेलब।
सुन अहे प्यारे भउजि सँग खेलब।"
"धनि हे करवइ मैं दोसरो विवाह,
तोही के न बोलाएव।
सुन अहे प्यारी तोही के न बोलाएव।"
पिया हे नइहर में भाइ अयह बकील,
तोही के बँधवाएव।
पिया हे नइहर में भाइ छथ दरोगा।
तोही के पिटवाएब।

(८) ग्वालरि—'ग्वालरि' में गीत शैली में सुघड़ रचनाकौशल के साथ साथ श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा का सुरुचिपूर्ण चित्रण मिलता है :

१—जमुना तीर बसथि बृंदाबन,
संगहिं गेलौं नहाय।
के एहनि कयलन्हि अन्याय,
बंसी लैलन्हि चोराय।

बाँस क पोर तकर एक बंसी,
बंसी लैलन्हि चोराय।
कतय गेलौं किय भेलौं जसुदा,
बंसी दिय ने छोड़ाय।
हम नइ जानी हम नइ सुनली,
बंसी गेलौं हेराय।
पुछिओन्हि अपना हित प्रीति सँ,
बंसी देथु छोड़ाय।

२—आधि रतिया सेज त्यागल,
छीक देल दधि टाँग री।
छीक गुनितहुँ घरहि रहितहुँ,
देव हरलन्हि ज्ञान री।
आगाँ पाछाँ ताकु ग्वालिनि,
केहि दउड़ल आव री।
दउड़ल आवथि ढीठ कान्हा,
हाथ सोभय बाँसुरी।
बाँह सोभइन्हि बाजूबंद,
चरण मेंहदी लाल री।

(६) **जट जटिन**—'जट जटिन' एक ग्रामीण पद्यबद्ध नाटक है जिसमें 'जट जटिन' प्रधान पात्र पात्री हैं। आश्विन और कार्तिक के महीने में खिली हुई चाँदनी की रोशनी में मिथिला के अधिकांश गाँवों में यह अभिनय किया जाता है। इसमें केवल लड़कियाँ और युवती स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। हाँ, पुरुष पात्र 'जट' का अभिनय करने के लिये एक लड़का भी शरीक कर लिया जाता है। लड़के 'जट' का अभिनय करते हैं, और लड़कियाँ 'जटिन' बनती हैं। 'जट' कुमुदिनी के फूल का श्वेत हार और सिर में श्वेत मुकुट पहनकर सुसज्जित होता है। 'जटिन' भी फूल के गहने पहनकर अलंकृत होती है। दोनों पाँच पाँच या छः छः हाथ के फासले पर आमने सामने खड़े होते हैं। उनके अगल बगल (जट जटिन दोनों पक्ष से) प्रायः एक एक दर्जन युवतियाँ पंक्तिबद्ध खड़ी होती हैं, और परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में गीत गाती हुई अभिनय करती हैं।

'जट जटिन' का कथानक संक्षिप्त एकांकी नाटक का सा है। इसमें वैवाहिक जीवन की गुत्थियाँ, सुख दुःख की धूप छाँह, पुरुषों की पाशविकता, बर्बरता, यौवन की विषम समस्याओं की अंतर्ध्वनि आदि जीवन की अनेक अनुभूतियाँ स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुई हैं। 'जट जटिन' की भाषा चुलबुली और विनोदपूर्ण व्यंग्य

लिए है। 'जट', जो खेल का प्रधान पात्र है, 'जटिन' के साथ प्रणयसूत्र में बधने के पूर्व उसके स्वाधीन व्यक्तित्व को कुचल देना चाहता है। दोनों में द्वंद्व उठ खड़ा होता है। अंत में 'जटिन' 'जट' के हाथ की कठपुतली बन जाती है।

जट और जटिन के विवाह का जिक्र छिड़ा हुआ है। दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम है। दोनों प्रणयसूत्र में बँधना चाहते हैं, लेकिन जट एक ऐसी प्रेमिका की तलाश में है जो सभी बातों में उसका अनुसरण करे। उसे उद्धत तथा अल्हड़ प्रेमिका पसंद नहीं। अतः वह विवाह की मनचाही शर्तों को भावी प्रेमिका जटिन के सामने पेश करता है:

जट—नवहिं पड़तउ हे जटिन,
नवहिं पड़तउ हे।
जइसँ नवतइ धान क सिसवा,
वइसे नवबे हे।

जटिन—नहिंए नवबउ रे जटवा,
नहिंए नवबउ रे।
बाबू क दुलारी बेटी,
ऐंठिक चलबउ रे।

जट—नवहिं पड़तउ हे जटिन,
नवहिं पड़तउ हे।
जइसँ नवतइ केर क घौंदवा,
वइसे नवबय हे।

जटिन—नहिंए नवबउ रे जटवा,
नहिंए नवबउ रे।
जइसे चलतइ बाँस क कोंपरा,
वइसे चलबउ रे।

जट—नवहिं पड़तउ हे जटिन,
नवहिं पड़तउ हे।
जइसे नवतइ कौनि क सिसवा,
वइसे नवबे हे।

जटिन—नहिंए नवबउ रे जटवा,
नहिंए नवबउ रे।
जइसे रहतइ पोखर क पानी,
वइसे रहबउ रे।

जट और जटिन दोनों दांपत्यसूत्र में बँध चुके हैं—एक दूसरे से हिलमिल गए हैं। जटिन गहने पहनने को लालायित है। वह अपनी यह माँग जट के सामने पेश करती है :

जटिन—जटा रे, जटिन के मँगवा भेल खाली,
मँगटीकवा तुहुँ कब लयबे रे।
जट—जटिन हे, सोनरा छुउ तोहर इआर।
मँगटीकवा त पेन्हाय देतउ हे।
जटिन—जटा रे, जटिनि क डँड़वा भेल खाली।
सड़िअवा तुहुँ कब लयबे रे।
जट—जटिन हे, बजजा छुउ तोहर इआर।
सड़िअवा त पेन्हाय देतउ हे।
जटिन—जटा रे, जटिनि क हथवा भेल खाली।
चुड़िअवा तुहुँ कब लयबे रे।
जट—जटिन हे, मनिहरवा छुउ तोहर इआर।
चुड़िअवा त पेन्हाय देतउ हे।

३. मैथिली का मुद्रित साहित्य

मैथिली भाषा का मुद्रित साहित्य प्राचीन, प्रचुर तथा विशाल है। संभवतः 'वर्णरत्नाकर', जिसके लेखक कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर हैं, मैथिली का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है। इसकी भाषा में मैथिली का प्राचीन रूप तो सुरक्षित है ही, बँगला आदि पूर्वी भाषाओं के प्राचीन रूप भी इसमें दिखाई पड़ते हैं। विद्यापति की अमर रचना 'पदावली' इस भाषा का देदीप्यमान रत्न है। डा० जयकांत मिश्र ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री आव मैथिली लिटरेचर' में मैथिली के कवियों तथा लेखकों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है जिसका उल्लेख स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं किया जा सकता।

मैथिली लोकसाहित्य का प्रकाशन भी इधर धीरे धीरे हो रहा है। श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' ने मैथिली लोकगीतों का संग्रह तथा संपादन कर मैथिली के लोकसाहित्य की बहुमूल्य सेवा की है[1]। पं० रामनरेश त्रिपाठी की पुस्तक 'कविता-कौमुदी' भाग ५ (ग्रामगीत) में अनेक मैथिली लोकगीत संग्रहीत हैं। श्री देवेंद्र

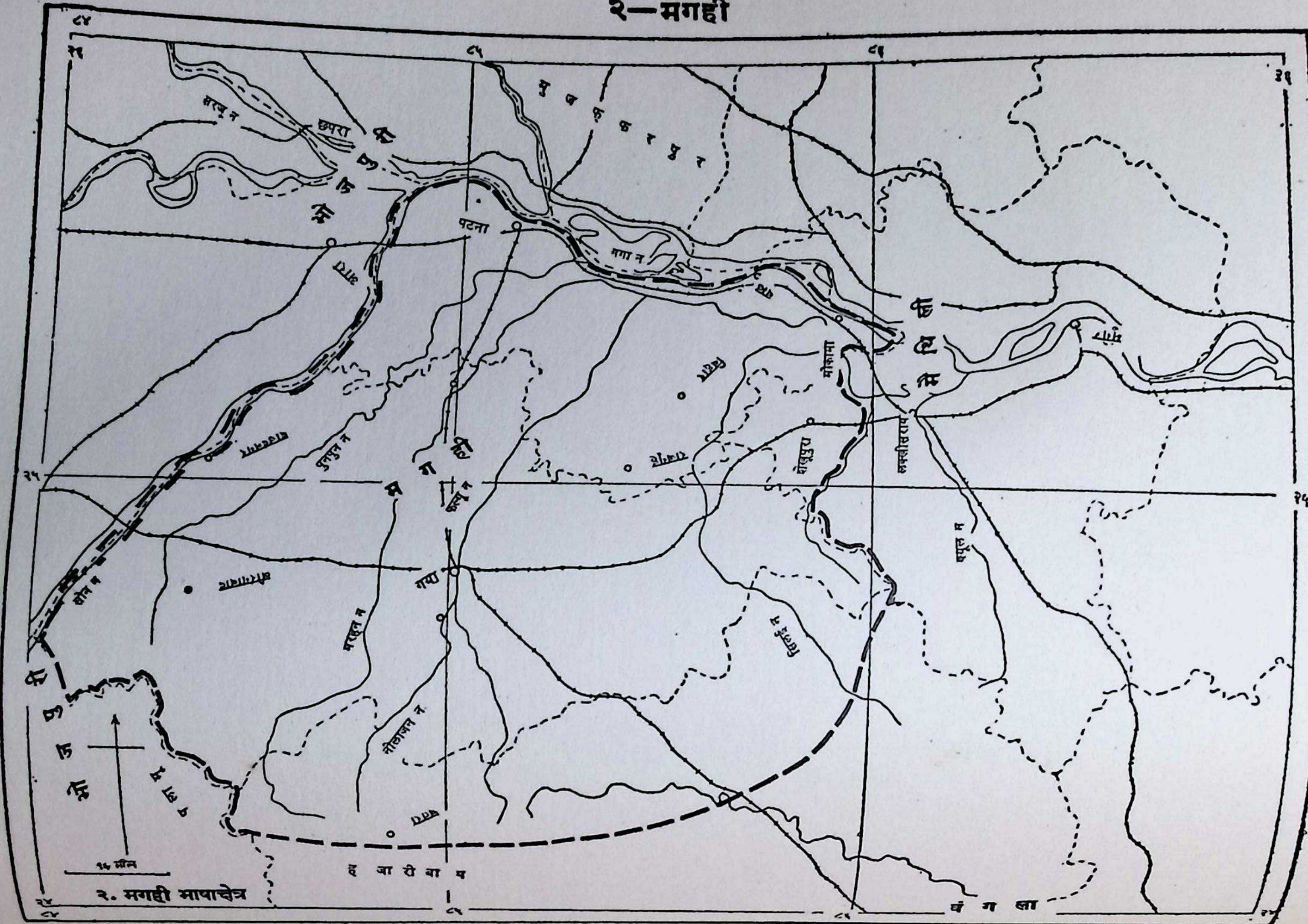
[1] हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग।

सत्यार्थी द्वारा लिखित लोकसाहित्य संबंधी पुस्तकों में मैथिली के अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। मैथिली भाषा में कई एक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिनमें लोकगीत तथा लोककथाएँ नियमित रूप से छपती हैं। प्रयाग में पं० सुधाकांत मिश्र, एम० ए० के प्रयत्नों से मैथिली लोकसाहित्य समिति की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य मैथिली लोकसाहित्य के अप्रकाशित रत्नों को प्रकाश में लाना है। आशा है इस समिति के द्वारा मैथिली के विपुल लोकसाहित्य का संकलन, संपादन तथा प्रकाशन सुचारू रूप से हो सकेगा।

२. मगही लोकसाहित्य

श्रीमती संपत्ति अर्याणी
श्री श्रीकांत मिश्र
श्री रामनंदन

२—मगही



२. मगही भाषाक्षेत्र

प्रथम अध्याय

अवतरणिका

१. सीमा

मगही भाषा प्राचीन मगध तक ही सीमित नहीं है। यह समस्त गया जिला, समस्त पटना जिला एवं हजारीबाग, पलामू, मुंगेर तथा भागलपुर के बड़े भागों में बोली जाती है। छोटानागपुर के उत्तरी पठार में भी मगही प्रचलित है। राँची पठार के पूर्वी किनारे से मानभूमि तक पूर्वी मगही का क्षेत्र है। यहाँ से वह पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और राँची के दक्षिण किनारे होती, उड़ियाभाषी सिंहभूमि के उत्तर में पहुँचकर पुनः आदर्श मगही के रूप में परिणत हो जाती है। संथाल परगना के उत्तर, गंगापार, बँगलाभाषी मालदा जिला है, जिसके पश्चिमी हिस्से पर मगही का अधिकार है। सरायकलाँ और खरसावाँ, बामरा और मयूरभंज में भी पूर्वी मगही बोली जाती है। इस प्रकार मगही भाषाक्षेत्र राँची पठार की तीन दिशाओं—उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण—तक विस्तृत है।

मगही की सीमाओं पर निम्नलिखित भाषाएँ हैं—पश्चिम और उत्तर में भोजपुरी, पूर्व में मैथिली तथा बँगला, दक्खिन में बँगला, संथाली, मुंडा आदि।

२. जनसंख्या

मगहीभाषी जनसमुदाय मगही क्षेत्रों के अतिरिक्त मगहीतर क्षेत्रों में भी बसा है। डा० ग्रियर्सन ने १६०१ की जनगणना के आधार पर मगहीभाषियों के निम्नोक्त आँकड़े दिए हैं :

मगहीभाषी क्षेत्रों में मगहीभाषी	६२,३६,६६७
अन्य मगहीतर क्षेत्रों में मगहीभाषी	२,३१,४८५
आसाम के निचले भागों में मगहीभाषी	३३,३६५
कुल संख्या	६५,०४,८१७

अंतिम जनगणना १६५१ में हुई थी। इसमें कुल एक लाख मनुष्यों ने ही अपनी मातृभाषा के रूप में बिहारी बोलियों के नाम दिए, जिनमें मगहीभाषियों की संख्या सिर्फ ३७२८ दी गई है। लगभग सभी लोगों ने, जिनकी मातृभाषा भोजपुरी, मगही, मैथिली है, अपने को हिंदीभाषी घोषित किया। इसका यह अर्थ नहीं कि बिहार में अब बिहारी बोलियाँ मृत हो चुकी हैं। वस्तुस्थिति यह है कि आज

भी बिहारी अपनी ही बोली बोलते हैं। १९५१ के मगहीभाषियों के आँकड़े, आनुमानिक रूप में, जनगणना के आधार पर दिए जाते हैं।

१९०१ की जनगणना के अनुसार कुल बिहारी बोलनेवालों की संख्या लगभग २,३०,००,००० (भोजपुरी ६७,००,०००, मैथिली १,००,००,००० एवं मगही ६२,००,०००) थी। १९५१ की जनगणना के अनुसार बिहार में कुल हिंदी बोलनेवालों की संख्या लगभग ३,५०,००,००० (इसमें हिंदी, बिहारी एवं उर्दू भाषियों की भी संख्या है)। इस तरह स्पष्ट है, कि पचास वर्षों में बिहारी बोलनेवालों की संख्या २,३०,००,००० से बढ़कर ३,५०,००,००० हो गई (१९५१ में बिहारी भाषाभाषियों ने अपने को हिंदी भाषाभाषी घोषित किया था। बिहार में स्वतंत्र हिंदी भाषा बोलनेवालों की संख्या बहुत कम है। यहाँ के उर्दूभाषी भी घरों में प्रायः बिहारी भाषा का ही प्रयोग करते हैं)। जनसंख्या की आनुपातिक वृद्धि की दृष्टि से अपने क्षेत्र में मगही बोलनेवालों की संख्या ६२,००,००० से बढ़कर १९५१ में करीब ६४,३५,००० हो गई होगी। इसी हिसाब से कुल मगही बोलनेवालों की संख्या ६५,००,००० से बढ़कर १९५१ में ६८,६०,००० हो गई होगी। अगर इस गणना को ठीक मान लिया जाय, तो कुल बिहार की जनसंख्या में मगही बोलनेवालों की संख्या २३.४%, मगही क्षेत्र में कुल हिंदी बोलनेवालों में मगही बोलनेवालों की संख्या ६५.२% और मगही क्षेत्र में कुल जनसंख्या में मगही बोलनेवालों की संख्या ५१.२% होती है।

द्वितीय अध्याय

गद्य

१. कथा

कहानियों का वर्गीकरण वही है जो भोजपुरी आदि में है। कुछ कहानियों के उदाहरण लीजिए :

(१) कउआहँकनी[1]

एक राजा के एगो रानी हल बाकि ओकरा से कोई बाल बुतरू न हल। दुन्नौं परानी बड़ी दुखी रहथ। एक दिन राजा अहेर[2] खेले निकललन से सात दिन पर बहुरलन[3]। रानी पुछलन—एन्ना दिन कन्ने बिलहमोलऽ।[4] राजा कहलन—'हमरा सात रानी आउ हथ, सबही हो लेती तब न तोरा भिर[5] अइती हल।' ई सुन के रानी बड़ी सोस[6] में पर गेलन। एन्ने राजो सोचलन कि अब तो ई जानिए गेल, अब ओहू सब के हिंयईं ले आऊँ। दोसरे दिन सातो सउतिन महल में आ गेलन।

रानी एक दिक अपन दुआरी पर रोइत बइठल हल कि एगो साधु ऐलन आउ रोवे के ओजह[7] पुछलन। रानी कहलन—'साधु बाबा, न हम अन लागी रोवी, न धन लागी, न लछमी लागी, रोव ही बस एगो पुत्तर लागी।' साधु बाबा के हिरदा पसिज गेल आउ राजा के बोला लावे ला कहलन। रानी राजा भिर जा के कहलन—'हमर जान बकसऽ तो एगो बात कहू।' राजा कहलन—'कहऽ।' तब रानी कहलन—'दुआरी पर एगो साधु आयल हथ, से तोरा बोलावइत हथ।

राजा साधु भिर ऐलन तब साधु बाबा कहलन—'राजां, जो तूँ सात आम के एगो घउँचा[8] ले आवऽ, तो हम बाल बच्चा के उपाह[9] कर सकऽ ही।' राजा अपन ला लसगर लेके सगरो से घूम ऐलन बाकि कनहूँ सात आम के घउँचा न मिलल। तब साधु बाबा आम के मोँजर लावे ला कहलन। ई तो तुरते मिल गेल। साधु बाबा मोँजर राजा के हाथ मे देके कहलन—'जा, एकरा पीस के रानी के पिया दऽ, भगवान चाहतन त नौमे महिन्ने फल मिलत।'

[1] पटना जिले से। [2] शिकार। [3] लौटे। [4] विलंब किया। [5] निकट। [6] अफसोस। [7] वजह। [8] गुच्छा। [9] उपाय।

राजा माँजर लेके रनिवास में गेलन। तब रानी कनहीं गेल हलन, से से माँजर सातो सउतिन के देके आउ रानी के देवे लग कहके चल ऐलन। सातो सउतिन माँजर पीसके अपने पी गेलन। रानी आ के पुछलन कि—'राजा कुछ देइयो गेलन है ?' तो सउतिन लोग कह देंलन—'देलन ता हल से हमनी पीस के पी गेली।' रानी का करथ, एहू लौढ़ा सिलउट धो के पी गेलन। भगवान के माया, रानी के गोड़ भारी हो गेल, आउ सातो सउतिन के तनि हरेफो न लगल।

अब रानी के ई भय बेयापल कि हो-न-हो सातो सउतिनियन मिलके हमरा बच्चे न देत। से एक दिन मोका बनाके राजा से कहलन—'हमर गोड़ भारी है, से आउ रानी सब के फुटलियो आँखे न सोहाइत है। हमर अप्पन परान के डर है। बच्चे के कोई उपाह कर दऽ।' राजा एगो घंटी लगवा देलन आ कहलन—'जब कबहीं तोरा कोई जरूरत होय, तूँ एही घंटी बजा दीहऽ, हम चल आयभ।'

सउतिनियन के ई कइस सोहाय ? जब-न-तब घंटिए बजा दे। राजा आवथ, रानी से पूछथ कि 'काहे', तब ऊ कहथ—'कुछ न।' सउतिनियन लुतरी[1] जोड़ देथ—'ई अइसहीं तोरा हरान करे ला बजा दे हो कि।' ई हाल कहिया तक चलत हल। एक दिन राजा गोसा के कह देलन—'जा अब हम घंटी बजौला पर आवे न करभ।

जब लइका होवे ला होयल, तब रानी घंटी बजाके पीट देलक, बाकि राजा न अयलन। रानी बड़की सउतिन से पुछलक कि 'लइका कइसे होवऽ है', तो उ डाह से कह देलक—'चुलहा में गौड़ आउ कोठी में माथा ना के।' रानी बेचारी अइसने कयलक। एने लइका होय लगल आउ ओने सउतिन सब एगो डगरिन बोलाके अपन हाथ के कँगना देलक आ कहलक—'एकर लइका होइते ले जाके मटखान में फेंक आए।' हुआँ से ईंटा माटी के दू गो लौना बना के ले ले आयल आउ रानी भिर रख देलक। बिहनोकी होइते सातो सउतिन गुदाल कर देलन कि रानी तो ईंटा माटी बियायल है। राजा सुनके ऐलन तो बड़ा रंज होयलन। सउतिन सब के सहकौला पर राजा रानी के 'कउआहँकनी' बनाके महल से निकाल देलन।

एन्ने बिहान होइते बाँझ बाँझिन कुम्हार कुम्हइन मटखान में से माटी लावे गैलन तो देखऽ हथ, कि दू गो लइकन खेलइत हथ। ऊ ई दुन्नों के उठाके ले ऐलन आउ पाले पोसे लगलन। हिंया ई दू जौ नित्रम बढ़थ। जब ई कूदे

[1] शिकायत।

खेलाय जुकुर होयलन, तब कुम्हार कुम्हइन बेटा के मट्टी के घोड़ा बना देलन आउ ओकरा रेसम के डोर में बंद के खेले ला दे देलन। बेटी के खेले ला देलन सुपली मउनी। दुन्नो खेलइत खेलइत रोज मटखान पर चल आवथ, आउ घोड़ा के पानी पियावइत गावथ :

माटी के घोड़ा रेसम के डोर,
हिलोर पानी पी, हिलोर पानी पी।
रानी बिआय कहीं ईंटा माटी ?

'कउआहँकनी' रोज गोबर ठोकके हाथ धोवे ला मटखान में आवे, आउ ई सुन सुनके बड़ी छकरित[1] रहे। आखिर एक दिन राजा भिर जाके रानी ई बात कहलक। दोसरा दिन राजा देखे हेलन, तो सच्च देखलन, कि दू गो सुन्नर लइकन ओही गीत गावइत हथ। राजा जाके अपन सातो रानी सबके सुनौलन। ऊ घड़ी तो सउतिन सब चुप रह गेलन, बाकि फिन तुरते खटवास पटवास लेके पर रहलन, कि 'ऊ दुनहुन लइकन के करेजवा पर जब तक हमन्नी न नेहायभ, तब तक अन जल न गरासभ। भुक्खे जान हत देभ।' राजा कुम्हार कुम्हइन से जाके बड़ी कहलन कि—'तोहनी जेतना कहऽ, गाँव गिराँव लिख दिअउ, आउ बदली में दुन्नो बुतरुन के दे दे', बाकी ऊ काहे माने? राजा उदास लौट अयलन। कुम्हार कुम्हइन सोचलन कि राजा के राज में रहके एकरा से कब तक बेर करभ। दुन्नो लइकन के पीठ पर सत्तू के मोटरी बान्ह देलन आउ कहलन—'जा बाबू, चल जा दोसर राज में, हुआँई कमइहऽ खइहऽ, हिंया जान के ठेकान न हो।' ऊ दुन्नो चलइत चलइत एगो नदी के किछारे पहुँचलन। खाय के हिच्छा भेल। बहिन पानी लौलक आउ भाई गमछी पर सतुआ साने लगला। सतुआ सानइत कुछ भुइयाँ में गिर गेल। भुइयाँ में गिरना हल कि धरती फट गेल आउ दुन्नो भाई बहिन ओही में गिर गेल।

कुछ समइया बितला पर भाई एगो आम के गाछी बनके फूटल आउ बहिन केदली के। दुन्नो रोज दू अँगुरी बढ़े। समय पा के केदली फुलाय लगल। एक दिन एगो सुग्गा केदली के एगो फूल लेके उड़ल आउ जाके राजा के पगड़ी पर गिरा देलक। राजा के नाक में घमक गेल तो पगड़ी उतारलन आउ देखथऽ हथ कि एगो बड़ी सुन्नर केदली के फूल गमागम कर रहल है। तुरते माली के बोलावल गेल आउ हुकुम होयल कि जे अइसन केदली के फूल लावत ओकरा इनाम में गाँव गिराँव देल जायत।

[1] चकित।

माली केदली के गाछ खोजइत खोजइत नदी किछारे पहुँचल। ई देखके केदली के भितरी से बहिनी बोलल :

सुनु सुनु अम्मा हो भइया,
अरे बाबू केरा मलिया फुलवा लोढ़े आयल रे की।

एकरा पर आम के भितरी से भाई जवाब देलक :

सुनु सुनु केदली जे बहिनी,
अगे डाँढ़े पाते लगऽ न अकास।

केदली के पेड़ अकास में खिल गेल आउ माली निरास होके लौट आयल। अब राजा पंडित बोलाके जतरा बिचरवौलन कि केकर नाम से फूल लोढ़नई बनऽ हे। पंडित जी राजा के नाम बतौलन आ राजा अपन पूरा लाओ लसगर के साथे लेके नदी किछारे फूल तोड़े पहुँचलन।

इनका देखके केदली बोलल :

सुनु सुनु अम्मा हो भइया,
अरे लावे लसगर बाबू फुलवा लोढ़े आयलन रे की।

एकरा पर आम के भितरी से भाई जबाब देलक :

सुनु सुनु केदली गे बहिनी,
अगे डाँढ़े पाते लगऽ न अकास।

बस केदली अकास खिल गेल आउ राजो निरास लौट गेलन। अइसहीं भिन सातो सउतिनो फूल लोढ़े गेलन, बाकि उनके फूल न मिलल। अंत में कउआहँकनी के नाम से जतरा बनल। ओकरा साफ सुथरा लूगा कपड़ा पेन्हाके पालकी में केदली के पेड़ तर भेजल गेल। कउआहँकनी के देखके केदली बहिनी बोलल :

सुनु सुनु अम्मा हो भइया,
अरे अपने से मइया फुलवा लोढ़े आयल रे की।

ई पर अमवा से भइया कहलक :

सुनु सुनु केदली गे बहिनी,
अगे डाँढ़े पाते भुइयँ में सोहार।

बस केदली भुइयाँ में सोहर गेल आउ कउआहँकनी भर खोइछा फूल तोड़के राजा के गोदी में उभील देलक।

ई देखके राजा के बड़ी अचरज भेल। आखिर एकर रहस पता लगावे ला सोच के एक दिन बड़ी सा बढ़ही लेके राजा नदी किछारे पहुँचल। दुन्नों पेड़ के

डाँढ़-पात कटवा देलन आउ फिन बिच्चे से फरवा देलन। जड़ी के फटना हल कि आम में से भाई आउ केदली में से बहिन निकललन आउ 'बाबूजी, बाबूजी' कहइत राजा के देह में लटपटा गेलन। राजा दुन्नों के अपन जाँघ पर बइठा के सब रहस पूछे लगलन आउ भाई बहिन सुरू से अंत तक के सब बात बता देलन। तइयो राजा एगो परिच्छा लेवेला सोचलन।

राजा हुआँ से लौटके अयलन आउ सातो सउतिन आउ कउआहँकनी के एक धारी में खड़ा करके कहलन : ई दुन्नो लइकन के देखके जेकर छाती से दूध के धार फूटत ओकरे इनकर माय समझल जाय। दुन्नो लइकन सातो सउतिन के अगाड़ी से घूर अयलन, बाकि कुछ न भेल। जब ई कउआहँकनी भिर पहुँचलन तब ओकर दुन्नो छाती से दूध के धार फूटके दुन्नो लइकन पर पर गेल। दुन्नो माय के गेरा में लटपटा गेलन। राजा बूझ गेलन कि कउआहँकनिए इनकर माय है। अब तो पहिले के सब बात समझ में आ गेल।

ओही घड़ी राजा सातो सउतिन के तरहरा भरवा देलन आउ पहिलकी रानी आउ बेटा बेटी साथ सुख चैन से राज करे लगलन।

(२) फौजदारी कचहरी में अपराधी का बयान[1]

हजुर, मैं दकाने बेसी कें मिठाइ बेचे हेलओं। चार टा बाबु आइके मिठाइ केर केतक दर शुधाओलाक[2]। मैं केहलसों, 'सब जिनिसेक टा एक दर नेखेंख[3]। अहें बाबुगुलांय[4] शुनिके केहलाक, 'समे दरबि मिलांय के, एक सेर हामरा के देहाक।' मैं एक सेर मिठाइ देलेंइ, आर आंठ आना दाम खुजलाओं। तखन बाबुगुलांह केहलाक जे, 'हामरा कर संगे पैसा नेखत। अहे लदि[5] ला[6] आहेक। उँहा जाइकें दाम देबेंइ।' मैं भदरान मानुश देखिकें कन्ह[7] निहि केहलओं। ढेर खेन हेलि पयसा निहि देलाक देखिके मैं लदि तक गेर रहुँ, जाइके देखलाओं लाटा[8] सेठिन नेखेइ। ढेर घुर ले थानांइ देखलओं लाटा ढेर घुर गेल आहेक। तेखने मैं पेछांइ दौड़े लागलओं। घड़िटेक[9] बादे[10] मैं लाटा के आँटाओ लाहन[11]। अंटाइ के[12] लाहेक[13] माँझिटा के बाबु गुलाक काथा शुधाओलाहन। लामाँझि[14] कन्ह निहि केहलाक। मैं तखन पानी नाभि के[15] लाटा के टेकलओं[16]। तखन बाबु गुलाँय लाहेक भितर ले बाहराय के मके इ चर[17] केरि के केरलाक, आर दुइटा बाबु,

[1] मानभूम जिले की कुडमाली बोली (ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया, खंड ५, भाग २)। [2] पूछा। [3] नहीं है। [4] बाबू लोग। [5] नदी। [6] नाव। [7] कुछ। [8] नाव। [9] बीस मिनट। [10] बाद। [11] पहुँचकर। [12] पहुँचकर। [13] नाव के पास। [14] नाविक। [15] कूदकर। [16] रोका। [17] चोर।

इँ॰फाँड़ि धार ले एकटा सिपाहि डाका काराइके आनलाक। मैं सिपाहि के सब कथा कुलि के कहि देलेंइ। सिपाहि मर काथा नेहि शुनिके गिरिपटान केरिके[1] आन ले आहे। दाहाइ, धरमाअतार, मँ निहि चरि केड़ ले आहँ। मैं बड़ि गरिब लक[2] मर केउ नेखत, बाबा सत बिचार करिदें, मर कन्ह दश[3] नेखे।

(३) अझला

एगो राजा के बेटा रहे, एगो डोम के बेटा रहे। से दुनों सिकार खेले लगला। राजा के बेटा कहलका कि जे हारे से अप्पन बहिन के बिआहे। राजा के बेटा हार गेल—डोम के वेटा जीत गेल। डोम माँगे लगल राजा के बहिन। राजा के बेटा गेला अप्पन घरे। माय से कहलका कि हम जाही सिकार खेले। अझला बहिन दिया (हारा) खाय भेजा दिह। राजा गेला—बहिनी खइआ लेके गेला। डोम के बेटा पानी न (मँ) उ पनिया न कमल के फूल लेके बैठल हलई। फूल ऊपर मुँह हलई, अपन छुप्पल हलई। अझला कहलक—'भइया हमरा कमल के फूल दऽ। भाई कहलखिन कि जरी सन पानी ह, अपन ले आवऽ।' बहिन पानी न हेललखिन फूल लावे ला। बहिनी कहलखिन—

सुपती (पर तक) पनियाँ लगलो जी भइया, तइयो न पेलूँ कमल के फूल।

भाई कहलक—आउ जो बहिनी, आउ जो।
ठेहुना पनिया लगलो जी भइया, तइयो न पेलूँ॰।
आउ जो बहिनी॰।
कम्मर पनियाँ लगलो जी॰।
आउ जो बहिनी॰।
छाती पनियाँ लगलो॰।
आउ जो बहिनी॰।
मुँह कार पनियाँ लगलो जी॰।
आउ जो बहिनी॰।
नेना कजरवा धोवलई जी भइया, तइयो॰।
आउ जो बहिनी॰।
सिरा के सेनुरा धोवलइ जी भइया॰।
आउ जो बहिनी॰।

डोममा अझला के लेके बैठ रहलई। तब ओकर माय बाप खोज करे लगलई। अझला एगो सुग्गा पोसलके हल। त उ सुगवा गेलई उड़के पोखरिया

[1] कैद करके। [2] मनुष्य। [3] अपराध।

पर। उ कहे लगलई—'अझला गे, तोरा माय कौनऽ हउ, तोरा बाप कौनऽ हउ, तोरा पढ़ल सुगवा सउ कौनऽ हउ, तोरा गुरु परोहित सब कौनऽ हउ, तोरा टोला पड़ोसिन सब कौनऽ हउ।'

अझला बोलल—'सुगवा रे, गोड़ा बान्हल हउ, हाथा छानल हउ, भइया हारल हउ, डोमा जीतल हउ।' सुगवा आके घर कहलकई कि अञ्झा हका पोखरिया न। भइया बप्पा सवारी पर गलई। सुगवा फिनु बोललई—

'अझला गे, तोरा माय का हउ०।'
अझा फिनु कहलकई—गोड़ा बान्हल हउ०।
छतिया पर पत्थर धरल।

अमला वमला, जन वन लगा के पनियाँ उपछावल गेलई। सोना के मछिया पर बैठल हलई अझुला। माय बाप ओकरा लेके घर चल अलखिन। डोमोआ चल गेलई। —नालंदा (जिला पटना)

२. कहावतें (मुहावरे)

(१) नीतिपरक—

(१) दूध बिगड़े बोरसी, पूत बिगड़े गोरखी[1]।
(२) खेती हाथ के, जोरु साथ के।
(३) जर, जोरू, जमीन, झगड़ा के घर तीन।
(४) घर घोड़ा पैदल चले, बात करे मुँह छीन।
थाती धरे दमाद घर, बुरबक के लच्छन तीन॥
(५) खेती, पाँती, बिनती, आउ घोड़ा के तंग।
अपने हाँथे करिहे, तब जीए के ढंग॥
(६) आलस पूत किसाने नासे, चोरे नासे खासी।
लिबलिब आँखे बेसवा नासे, तिमार[2] नासे पासी॥
(७) अन्न धन महाधन, आधा धन गहना।
आउ धन जइसन, खाक धन लहना[3]॥
(८) पहिले लिखे पाछे दे। घटे बढ़े कागज से ले।
(९) चाकरी चकरदम, कमर कसे हरदम।
त रहे हम, न जाय के गम॥

[1] चरवाहा। [2] तिमिर = आँखों का एक रोग, जिसमें कभी अंधेरा और कभी उजाला मालूम होता है। [3] किसी को उधार या कर्ज में दिया हुआ धन।

(१०) सात हाथ हाथी से बचिहऽ, चउदह हाथ मतवाला।
अनगिनती हाथ ओकरा से बचिहऽ,
जे जात के हो फेटवाला॥

(२) मानव-प्रकृति-संबंधी—

(११) अपने लगने चेरिया बाउर,[1] के कूटे सरकारी चाउर।
(१२) अपना ला लाली, दमाद के देली छाली।
(१३) अइँचाताना करे बिचार,
कौसअँक्खा से रहे होसियार।
(१४) धोती मरद, लँगोटे आधे।
गेल मरद जे भगवा साधे।

(३) भोजन संबंधी—

(१५) काम के न काज के। दुस्मन अनाज के।
(१७) रोटी मरद, भाते आधे।
गेल मरद, जे सतुआ साधे॥
(१८) सत्तू पर संख बजे, रोटी पर नीन।
भात पर पलक खुले, ले परोसा तीन॥
(१६) बूँट केराओ एगो दूगो, गोहुम गोड़ा दस।
चाउर चूरा कर फाँका, तब मिले रस॥

(४) जाति संबंधी—

(२०) सड़लो तेली, तो फाँडा में अधेली।
(२१) सड़लो बाभन ता अइँचाताना।
परला मारे तो तीन जाना[2]॥
(२२) तुरुक ताड़ी, बैल खेलाड़ी, बाभन आम, कोइरी काम
(पसंद करऽ हे)।
(२३) तीन कनउजिया, तेरह चुल्हा।
(२४) हाथ सुक्खल, बर्हामन भुक्खल।
(२५) बेलदरवा के बेटिया, न नहिरे सुख न ससुरे सुख।

[1] बावला। [2] जन।

(५) ऋतु और कृषि संबंधी--

(२६) जाड़ा लगलई पाड़ा लगलई, ओढ़ गुदड़ी।
बुढ़िया के दमाद अलई, मार मुँगड़ी॥

(२७) लइकन भिर तो जवई न, जमनकन हई गुरुभाई।
बुढ़वन के तो छोड़वई न, केतनो ओढ़े जाई॥
(जाड़ा कहऽ हे)

(२८) जब पुरवा[1] पुरवइया पावे, ऊँखा खाला[2] नाव चलावे।

(२९) हथिया बरसे चित[3] मँडराए,
घरे बइठल किसान डँड़ियाए।

(३०) एक बैल केकरा ? सारी गाँव जेकरा।
दू बैल केकरा ? कान्हे हर जेकरा।
तीन बैल केकरा ? गारी सुने सेकरा।
चार बैल केकरा ? कान्हे चउँकी जेकरा।
छौ बैल केकरा ? साथ बराहिल जेकरा।
आठ बैल केकरा ? छड़ी छाता जेकरा।

(३१) छौघर[4] कहे कि आऊँ जाऊँ,
सतघर कहे कि मीरे खाऊँ।
अठघर बैला पूरे पूर, नौघर कहे कि राज बइठाऊँ॥

(३२) उदंत छौड़ी दुदंत गाय। माघे भइँस गोसइँए[5] खाय॥

(३३) ओझा कमियाँ[6], बइद किसान, आँड़ू बैल, खेत मचान[7]॥

(३४) सौ चास[8] गंडा[9], सेकरे आधा मंडा[10]।
सेकर आधा तोरी, सेकरो आधा मोरी॥

(३५) लँगटा परल उघार के पाला।

(३६) माल महराज के, मिरजा खेले होरी।

(३७) जइसने बाँस के बाँस बसउल, तइसने बाँस के कोलसुप दउरा।

(३८) जेतना के बीबी न, तेतना के कहारी।

[1] पूर्वा नक्षत्र। [2] गढ़ा। [3] चित्रा नक्षत्र। [4] छ दाँतोंवाला। [5] स्वामी, मालिक। [6] मजदूर। [7] ऊँची जगह पर। [8] जोताई। [9] ऊख। [10] गेहूँ।

तृतीय अध्याय

पद्य

१. लोकगीत

मागधी समुदाय की अन्य दोनों शाखाओं—मैथिली, भोजपुरी—की भाँति मगही में भी लोकगीतों की संपदा परंपरा से सुरक्षित है। ये लोकगीत भी अपनी ओजस्विता और मर्मस्पर्शिता में समान रूप से गुणाढ्य हैं। विभिन्न अवसरों के कतिपय गीत निम्नांकित हैं :

(१) श्रमगीत

(क) जँतसारी—महिलाएँ जाँता पीसने के श्रम को गीतों में घोलकर मधुर बना देती हैं, साथ ही पारिवारिक संबंध के कुछ विशेष क्षणों की याद कर मनोरंजन करती, कुछ शिक्षा भी ग्रहण करती हैं।

निम्नांकित गीत में ननद भौजाई, सास पतोह, माँ बेटी, माँ बेटा, पति पत्नी, सभी के संबंध की विशेषता की एक झलक मिलती है :

परबत ऊपर बसई भइया कुम्हरा,
गढ़ि देलकई सात गो घइलवा हो राम।
सातो रे सौतिनियाँ रामा घइला अलगवली,
छोटकी के फूटलई घइलवा हो राम।
छोटकी ननदिया रामा जंगली छिनरिया,
दउड़ल दउड़ल लूतरी लगलकई हो राम।
मचिया बइठल तूँ ही भइया ए बड़इतिन,
तोहर पुतहू फोरकउ घइलवा हो राम।
खाइयो में लेहींगे बेटी दूध भात कोरवा,
चलि जाहीं भइया हरवहिया हो राम।
हरवा जोतइते तूँ ही सुन मोर भइया,
तोरे तिरिया फोरलन घइलवा हो राम।
चोलिया के कसमकस गे बहिनी, अँचरा के गरमी,
अँचरे सम्हारइत घइलवा फूटल हो राम।
हरवा जोतइते गे बहिनी हर मोर टूटलई,

चउँकिया देइतै करुअरिया हो राम।
हर जोति अयलन, कुदारी पार अयलन,
देहरी बइठलन मनमाँ झामर हो राम।
सब के तिरियवा भइया घर घरुअरिया,
मोर तिरिया चहटो[1] न पइअई, हो राम।
तोहरो तिरियवा हो, बाबू जंगली छिनरिया,
जाह हई नइहरवा के बटिया, हो राम।
खाइयो तो लेहु बाबू दूध भात कोरवा,
करि देबो दोसरो बिअहवा, हो राम।
जुठ कँठ खयलक भइया, कर पइती सूतल,
से तिरिया तजलो न जाहई, हो राम।
बाबा खाहु, भइया खाहु, पुतहु बहुरिया,
कर गन कुँअरा इअरवा, हो राम।
हमरा तो लगई सासू, ससुरे भइँसुरवा,
तोरे होंयतो घरिया के इयरवा, हो राम।

नवविवाहिता पत्नी पर पति की मार, ननद का बीचबचाव, ननद द्वारा भौजाई को भोजन के लिये मनाना और भौजाई का बिगड़ना आदि का चित्रण करनेवाले इस गीत में जाँता पीसने का श्रम भूल जाता है :

अइली गवन से परली जतन[2] में गोविंद जी बिरदाबन में,
सूते के मरम नहीं जानी, गो०
भइया जे मरथिन अपन मेहरिया, गो०
छोटकी ननदिया घरहरिया, गो०
मत मारहु भइया जी अपनी मेहरिया, गो०
तोहर मेहरि सुकुमरिया, गो०
मारभ बहिन गे अपनी मेहरिया, गो०
ढढ़नछु[3] मोरा न सोहाहई, गो०
छोटकी ननदिया, से जागली छिनरिया, गो०
रिन्हलन दूध के जउरिया[4], गो०
खाई लेहु भउजी दूध के जउरिया, गो०
भइया के मरवा बिसराहु, गो०

[1] चहक। [2] यातना। [3] ढंग बनाना, नखड़ा करना। [4] खीर, ईख के रस में बनी खीर।

आगी लगई तोहर दूध के जउरिया, गो०
भइया के मरवा डँड़वा सालई[1], गो०

(२) नृत्यगीत

(क) झूमर—नृत्यगीतों को विविध पर्वों एवं उत्सवों के अवसर पर गाकर नृत्य किया जाता है। इनमें स्वर, ताल एवं लय का ऐसा सामंजस्य होता है कि नृत्य करनेवालों के चरण स्वयं ही गतिपूर्ण हो उठते हैं। 'नृत्यगीत' शीर्षक में वे सभी झूमर, सोहर आदि गीत रखे जा सकते हैं, जो नृत्य के लिये अपेक्षित स्वर एवं ताल से पूर्ण हैं। नटुआ, पमड़िया, बक्खो, बखाइन आदि जातियाँ तो इन नृत्यगीतों के सहारे ही अपनी जीविका चलाती हैं। ये लोग विविध उत्सवों में एकत्र होकर इन गीतों के साथ अनेक भावभंगिमाओं को अभिव्यक्त कर नृत्य करते हैं। महिलाएँ भी इन नृत्यगीतों को गाती एवं नृत्य करती हैं। लोकगीतों पर आधारित नृत्य सजीवता एवं सरसता से पूर्ण होते हैं :

लेमु तोड़े गइलो में, ओहि नेमु गछिया,
मोर ननदिया हे, चुनरी अँटकी नेमु डार ॥
चुनरी उतारे गेल, ससुर मोरे बड़ैता।
मोर ननदिया हे, पगड़ी अँटके नेमु डार ॥
पगड़ी उतारे गेल भँसुर मोर बड़ैता।
मोर ननदिया हे, टोपिया अँटकि नेमु डार ॥
टोपिया उतारे गेल, लहुरा देवरवा।
मोर ननदिया हे, गमछा अँटकि नेमु डार ॥
गमछा उतारे गेल, सामी मोर गइल।
मोर ननदिया हे, झुकिया अँटकि नेमु डार ॥
ऐसन धनिया के मोर, चुनरी फँसौले।
ओहि नेमुआ रे, सबके फँसौले एके डार ॥
ओहि जे नेमुआ के, चुनरी रँगौली।
मोर पियवा हो, चुनरी बड़िय लहरदार ॥
चुनरी पहिरि जब, चलली बजरवा।
मोर पियवा हो, नेटुआ गिरल मुरछाय ॥
किय तोरा नेटुआ रे, ऐलउ झारि झुरिया[2]।
नटुअवा रे किय तोरा बथलउ[3] कपार ॥

[1] पीड़ा करता है। [2] चक्कर। [3] दर्द।

नहीं मोरा अहे समरो, ऐलई भारी भुरिया।
समरो हे, तोहरो सुरति देखि गिरली मुरुछाय ॥

(ख) बगुली नाट्यगीत—'बगुली' मगध का लोकप्रचलित गीतिनाट्य है। शरद् ऋतु के नील गगन के नीचे खुले, विस्तृत मैदान में स्त्रियाँ एकत्रित होकर इस लोकाभिनय में भाग लेती हैं। वस्तुतः आश्विन में गर्मी की तपन, वर्षा के अवरोध एवं जाड़े की ठिठुरन से मुक्त मानव स्वभावतः हर्ष, उत्साह एवं उल्लास से पूर्ण होता है, जिसकी अभिव्यक्ति इन नृत्य अथवा गीतिनाट्यवाले उत्सवों में होती है। इन खेलों के लिये खुला मैदान, सुहावना मौसम और सुखद वातावरण चाहिए। आश्विन में ये सभी सुयोग एकत्र मिल जाते हैं। इसलिये इस समय न केवल बगुली का खेल, प्रत्युत 'जाट जाटिनी', 'सामा चकवा' आदि के भी खेल होते हैं।

'बगुली' नाट्य में एक औरत बगुली की आकृति बनाती है। वह दोनों ओर एकत्रित नारियों के बीच में बैठती है। उसका घूँघट खूब लंबा होता है, जिसमें हाथ डालकर मुँह के पास से चोंच की आकृति बना ली जाती है। उसकी कृत्रिम चोंच निरंतर हिलती रहती है। इसी स्थिति में वह उछलकर एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर जाती है और 'दीदिया' नाम की दूसरी पात्री से उसका गीत में ही संवाद चलता रहता है। 'दीदिया' की आलोचना से रुष्ट होकर वह नदी की ओर बढ़ती है।

अब दूसरा दृश्य उपस्थित होता है। बगुली आतुर स्वर में मल्लाह से नैहर पहुँचाने की प्रार्थना करती जाती है, किंतु मल्लाह क्रमशः अपनी माँग बढ़ाता जाता है। अंत में वह उसका अदेय यौवन माँगता है, जिसे समर्पित करने से वह इंकार करती है। यहीं कथा का अंत होता है। प्रथम दृश्य में बगुली सभी खाद्य पदार्थों का नाम लेती है, एवं उसके साथ अपने लोभ का संबंध दिखाती है; जैसे—'भतवा बनौते मँड़वा पिलियो हे दीदिया।' महिलाओं की फटकार का क्रम भी पूर्ववत् चलता रहता है :

महिलाएँ—कहवाँ के रूसल कहाँ जा हऽ हे बगुलो।
बगुली—ससुरा के रूसल नहिरा जाहि हे दीदिया ॥
महिलाएँ—कौने करनमें नहिरा जाह हे बगुलो।
बगुली—चउरवा छटइते खुदिया खेलियो हे दीदिया ॥
महिलाएँ—तुहूँ तो हऽ बड़ छुछुंदर हे बगुलो ॥
कहवाँ के रूसल कहाँ जा हऽ हे बगुलो।
बगुली—ससुरा क्रे रूसल नहिरा जाहि हे दीदिया ॥
महिलाएँ—कौने करनमें नहिरा जाह हे बगुलो।

बगुली—रोटिया बनौते लोइया खेलियो हे दीदिया ॥
महिलाएँ—तुहूँ तो हऽ बड़ ललचहिया हे बगुलो ॥
बगुली—एहि करनमें नैहरा जाहि हे दीदिया।
महिलाएँ—बगुलो के लोलवा तोरा गड़बो हे बगुलो।
बगुली—तुहूँ तो दो सफरी के बात बोल हऽ हे दीदिया ॥
बगुली—हालि लाहु, हालि लाहु मलहा रे भइया।
जल्दी से पार उतार हो मलहा भइया।
मलाह—हमरा तूँ दे दऽ गोरी, गला के हँसुलिया।
बगुली—ओहु हँसुलिया सासु जी के
देखल हो हे मलहा भइया ॥ जल्दी० ॥
मलाह—हमरा तूँ दे दऽ गोरी, हाथ के कँगनमा।
बगुली—ओहु कँगनमा भैसुर के देखल
हो हे मलहा भइया ॥ जल्दी० ॥
मलाह—हमरा तूँ दे दऽ गोरी देह के गहनमा।
बगुली—ओहु गहनमा ननदी के देखल
हो हे मलहा भइया ॥ जल्दी० ॥
मलाह—हमरा तूँ दे दऽ गोरी सँचली जमनियाँ।
बगुली—सेहु जमनियाँ पियवा के देखल हवऽ
हे मलहा भइया ॥ जल्दी० ॥

(इसी प्रकार विविध आभूषणों एवं वस्त्रों को लगाकर गाया जाता है।)

(३) ऋतु गीत

(क) बरसाती—कृषिप्रधान ग्रामों में वर्षा का स्वाभाविक महत्व रहता है। वर्षा ऋतु में, अतिवर्षण हो या अवर्षण, सभी अवस्थाओं में ग्रामीण महिलाएँ एकत्र होकर गीत गाती हैं :

(१) दइया इंद्र के करहू इंद्र पूजवा हे ना।
दइया गाँव के ठिकुदरवा अनजानू साही ना।
दइया घोड़वा चढ़ल निरखई बदरा हे ना।
दइया मूसरे के धार पनियाँ बरसई हे ना।
दइया उनकर बेटवा अनजानू साही ना।
दइया कुदि फाँदि बान्हथी मोटनिया[1] हे ना।

[1] खेत की मोरी, नाली।

दइया उनकर बेटिया दुलरइतो बेटी ना।
दइया सुपली मउनी खेल हथ धराहर हे ना।
दइया मूसरे के धार पनियाँ बरसई हे ना॥

(२) साँप छोड़लइ अप्पन केंचुल, गंगा मइया छोड़लन अरार।
छोड़लन अनजानु साही अपन जोइया,
लयलन दुलरइतो देई के लाय।
लाजो न लगवे गोसइयाँ, पानी के देहू छछकाल।
देव तोरा छतियो न फाटो, पानी बिनु परलइ अकाल॥

(ख) चौहट—बरसात के दिनों में गाँव की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर 'चौहट' गाती हैं। इसमें तरह तरह के अभिनय किए जाते हैं, और ऐसे गीत भी गाए जाते हैं, जिनमें जँतसारी और झूमर की तरह पारिवारिक जीवन की मधुर झाँकियाँ होती हैं।

(ग) चैता—चैत के महीने में प्रति रात्रि ग्रामीण लोग ढोलक झाल लेकर चैतार गाते हैं। हर गली कूचे में इसकी टेर सुनाई पड़ती है। इसमें भी श्रृंगारिक वर्णन की ही प्रधानता रहती है। चैत महीना फागुन से भी अधिक श्रृंगारिक माना जाता है :

अहो रामा बावा फुलवड़िया में फूल लोढ़े गैली हो रामा॥
गड़ि गेलई कुसुम कन कँटवा हो रामा॥
रामा केई मोरा कँटवा सहेजिए निकालत हो रामा।
केहि मोरा हरतई दरदिया हो रामा॥
अहो रामा बाबा मोरा सहजे में कँटवा निकलतन हो रामा।
सइयाँ मोरा हरतन दरदिया हो रामा॥

निम्नांकित गीत में भाभी देवर का परिहास प्रस्तुत किया गया है :

अहो रामा कोरे[1] रे घइलवा आ कोरे बसनमा हो रामा।
कोरे[2] जमुना बहे पनियाँ हो रामा।
अहो रामा घुट्ठी भर पनियाँ घइलवो न डूबे हो रामा।
कउन मोरा घइलवा डिठियाव[3] हो रामा।
अहो रामा अपिछि अपिछिए घइलवा भरलिअइ हो रामा।
कउन मोरा घइला अलगावत हो रामा।

[1] जो काम में न लाया गया हो, नया। [2] किनारे। [3] नजर लगाना।

अहो रामा घोड़वा चढ़ल आवै हंसराज देवरवा हो रामा।
ओही मोरा घइला अलगावत हो रामा।
अहो राम एक हाँथ हंसराज घइला अलगावई हो रामा।
दोसर हाथे आँचर धरि बिलहमावे हो रामा।
अहो राम छोड़ छोड़ हंसराज हमरी अँचरिया हो रामा।
मोर घरे सासू ननद बड़ी बैरन[1] हो रामा।

(घ) बारहमासा—वर्ष के हर मास के वातावरण का और उसमें बनवासी राम, लक्ष्मण तथा सीता की दशा का चित्रण इस बारहमासे में किया गया है। यह गीत संभवतः उर्मिला से गवाया गया है, जैसा प्रथम पंक्ति से प्रतीत होता है :

पैठैल'तू नारि बइरून बन बालम मोर॥
चइत अयोध्या जलमलन राम।
चन्नन से निपवायभ धाम॥
गजमोतियन से चउका पुरायभ।
सोने कलस पर दीप धरायभ॥
जरे सारी राति॥ पैठैल०॥
बइसाख मास रितु गिरषम लाग।
चलई पवन जइसे बरसई आग।
जइसे जल बिनु तलफई मीन।
सेई गति हमरा केकई जी कीन।
दीन्ह दुख दारुन। पैठैल०॥
जेठ मास लूह लगइत अंग।
राम लखन आउ सिया हथ संग।
रामचंद्र पद कमल समान।
तलफई धरती तपई असमान॥
कइसे पग धरतन॥ पैठैल०॥
असाढ़ मास घन गरजइ घोर।
रटई पपिहरा कुँइकइ मोर।
बिलखथ कोसिला अवधपुर धाम।
भिजइत होयतन लखन सिया राम॥
खड़ तरुवर तर॥ पैठैल०॥

[1] वैरी।

सावन मास सलिसायर[1] नीर।
कइसे का सितला माता धरतन धीर।
नन्हे नन्हे बुनमा बरसि गेलइ नीर।
भीजइत होयतन सिया हो रघुवीर॥
झमकि झरि लावह॥ पैठैल०॥
भादों रइनी भयामन रात।
कड़कई बरसइ जियरा डेरात।
गुंजन गुँजइत फिरई भुअंग[2]।
राम लखन आउ सीता जी संग।
रइन अँधियारी॥ पैठैल०॥
अलल हे सखि, मास कुआर।
धरम करे सबही संसार।
जो घर रहितन लछुमन राम।
बिप्र जेमाके खूब देइती दान॥
थारि भर के मोती॥ पैठैल०॥
आयल हे सखि, कातिक मास।
उठई करेजवा बिरह के फाँस।
घरे घर दीया बारथी नारि।
हमर अयोध्या भेलई अन्हियारि॥
करनि केकई के॥ पैठैल०॥
अगहन कुँअरी जो करितइ सिंगार।
कपड़ा सिया देहती सोने के तार।
पगु पैजनियाँ कुल निस्तार।
सिर पर सोभितई जरिया के पाग॥
गले बैजंती॥ पैठैल०॥
पूस मास रितु बरसे तुसार।
रइनि भेलइ जइसे खाँड़ के धार।
कूसे आसन कइसे सुततन राम।
कइसे के बन में करतन बिसराम॥
भोजन बदरी में॥ पैठैल०॥
माघ मास रितु आयल बसंत।

[1] सलिल सागर = समुद्र के जल जैसा। [2] साँप।

किनका सँग खेलूँ बिना भगवंत ।
ठाढ़े भरत जी ढारथि लोर ।
मोर अजोधा के न हे सिरमौर ॥
बसंत जरो री ॥ पैठैल० ॥
फागुन फाग खेलइती चौरंग[1] ।
चोवा[2] आ चनन लपेटति अंग ।
ठाढ़े भरत जी घोरथी अबीर ।
किनका परछीहूँ बिना हो रघुबीर ॥
अइसन होरी जरो री ॥ पैठैल० ॥

(४) त्योहार गीत

(क) छठ—प्रति वर्ष कार्तिक और चैत्र मास की षष्ठी को सूर्य की पूजा की जाती है। इस अवसर पर सामयिक गीतों से वातावरण को मुखरित करते हुए पंचमी को अस्ताचलगामी और सप्तमी को उदय होते सूर्य को किसी जलाशय के किनारे अर्घ्य दिया जाता है। यह गीत उसी अवसर का है :

सोने खड़उआँ ए दीनानाथ, चनने लिलार ।
चलियो में गेली ए दीनानाथ, गंगा असनान ।
रहिया में मिलली ए दीननाथ, अन्हरा मनुस ।
अँखिया देवइते ए दीनानाथ, भेलो एते देर ॥सोने खड़उआँ०॥
रहिया में मिलली ए दीनानाथ, कोढ़िया मनुस ।
कयवे[3] देवइते ए दीनानाथ, भेलो एते देर ॥ सोने० ॥
रहिया में मिलली ए दीनानाथ, बाँकी तिरियवा ।
पुतवा देवइते ए दीनानाथ, भेलो एते देर ॥ सोने० ॥
सासू मारे हुदुवा ए दीनानाथ, ननद पारे गारी ।
अपनो पुरुखवा ए दीनानाथ, लेवे लुलुआई ॥
चुप रह, चुप रह, गे बाँझी पटोर[4] पोंछ लोर ।
तोहरा हम देवो गे बाँझी गजाधर अइसन पूत ॥
सासू लेले दउड़े ए दीनानाथ, सिंहासन अइसन पात[5] ।
ननदी लेले दउड़े ए दीनानाथ, लोटा भरल पानी ।
अपनो पुरुखवा ए दीनानाथ, लेलकइ दुलार ॥

[1] चौपड़, जिसमें चार रंगों की गोटियाँ होती हैं। [2] कई सुगंधित वस्तुओं का सार, इत्र। [3] काया। [4] लहँगा के साथ ऊपर से ओढ़ा जानेवाला कपड़ा; ओढ़नी। [5] पाटा, पीढ़ा।

(ख) भइया दूज—कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया को भ्रातृद्वितीया मनाई जाती है, जिसमें भाई बहनों के यहाँ जाते हैं और बहनें उनका स्वागत करके पूजन करती हैं। इस अवसर पर अनेक गीत भी गाए जाते हैं, जिनमें से एक यह है :

नदिया किनारे दुलरइतो भइया, खेलथ जूआ सारि[1]।
कन्ने गेल बहिनी दुलरइतो बहिनी, भइया अलथू नेयार[2] ॥
नहिं घर चउरा हे सासू, नहिं घर हे दाल।
कइसे कइसे रखबो हे सासू, भइया जी के मान ॥
कोठी भरल चउरा ए पुतहू, पनबटवे भरल हे पान।
हँसि खेल के रखिहऽ हे पुतहू, भइया जी के मान ॥

(ग) माता मइया—चेचक को 'माता मइया' कहकर संबोधित किया जाता है। जब कोई चेचक के प्रकोप से पीड़ित होता है, तो उसके पास माली झाल बजाकर या घर की महिलाएँ साथ मिलकर माता के गीत गाती और उनसे दया की भीख माँगती हैं :

मिलहुक सातो बहिनियाँ हे मइया,
सातो आलर हे मइया, सातो आलर हे०।
मइया सातो मिलि बगिया देखे जाहुक हे मइया।
का देखू बगिया के रूप हे मइया, हे तरूप हे मइया।
मइया सेनुरे टिकुलिया बगिया भरल हे मइया।
मइया केलवे नरंगिया बगिया भरल हे मइया।मइया मिलहुक०॥
का देखु बगिया के रूप हे मइया, हे सरूप हे मइया।
मइया लड़िके फड़िकवे बगिया भरल हे मइया।
मइया फूलवे आउ पतिए बगिया भरल हे मइया।
मइया धूपए पठरूए बगिया भरल हे मइया।

(५) संस्कार गीत

(क) सोहर (जन्म)—गर्भवती स्त्रियों के प्रसव के पहले और बाद 'सोहर' गाए जाते हैं, जिनमें जचा की विभिन्न स्थितियों और उसके स्वभाव का उल्लेख होता है। इन सोहरों में कितना मनोवैज्ञानिक सत्य है :

एक महीना अब बीतल जी प्रभू, सासू के बोलिया न सोहाहइ जी।
सासू के बाहर करि रक्खभ हे धानी[3], बाबा पियारी तुहूँ संच,
रे धानी मइया पियारी तुहूँ संच हे धानी ॥

१ जूआ। २ न्योता, बुलावा। ३ पत्नी।

दूई महिन्ना अब बीतल जी प्रभू, नंदी के बोलिया न सोहाहइ जी।
नंदी के भेजवइन ससुररिया हे, धानी, बाबा पियारी तुहूँ० ॥
तेसर महिन्ना अब बीतल जी प्रभू, देवर के बोलिया न सोहाहइ जी।
देवर के भेजभ कलकतवा हे धानी, बाबा पियारी तुहूँ० ॥
चौथा महिन्ना अब बीतल जी प्रभू, गोतिनी[1] के बोलिया न सोहा०।
गोतिनी के जुदा करि रखबो हे धानी, बाबा पियारी० ॥
पँचमा महिन्ना बीतल अब बीतल जी प्रभू,
चेरिया के बोली न सोहाहइ जी।
चेरिया के बाहर करि रखभ हे धानी, बाबा पियारी० ॥
छट्ठा महिन्ना अब बीतल जी प्रभू,
ससुरो के बोलिया न सोहाहइ जी।
ससुरो के बाहर करि रक्खभ हे धानी। बाबा पियारी० ॥
सतमा महिन्ना अब बीतल जी प्रभू,
भईंसुर[2] के बोलिया न सोहाई जी।
भईंसुरो कै भेजम नोकरिया हे धानी। बाबा पियारी तुहूँ० ॥
अठमा महिन्ना अब बीतल जी प्रभू, बासियो भात न सोहाए जी।
गया के पेडवा मँगायभ हे धानी। बाबा पियारी० ॥
नौमा महिन्ना अब पूरल जी प्रभू, तोहरो बोलिया न सोहाहइ जी।
लातिए मुक्के तोरा खनभ हे धानी, बाबा पियारी तूहूँ झूठ हे,
धानि मइया दुलारी तूहूँ झूठ हे ॥

(१) संतानकामना—

घरवा से निकलल बँझिनियाँ, सुरुज गोड़ लागलक हे,
सुरुज होवहु न आज्झ सहाय, महल उठे सोहर हे।
जाहुक हे बाँझिन जाहु, सोहर कइसे ऊठत हे ?
मोर भगती न होयत बँझिनियाँ, अप्पन घर जाहुक हे।
सुरुज से उठिके बँझिनियाँ, नागिन कर पइसल हे।
नागिन डँसी लेहु आज्झू मोर परान, जिनगी मोर अकारथ हे।
जाहुक हे बाँझिन जाहुक, तोरे के कइसे डँसभ हे ?
हमहुँ हो जमबई बँझिनियाँ, अप्पन घर जाहुक हे।
रहिआ मैं भेंटलन गंगा मइया, अँचरे लोर पोछलन हे।

[1] पति के भाई की पत्नी। [2] भसुर, जेठ।

बाँझिन मत हतु अप्पन परान, महल उठत सोहर हे।
आधी रात गैलई पहर रात, अउरो पहर रात हे,
जलम लीहलन नँदलाल, महल उठल सोहर हे।

(२) पीपर पीने का गीत—

प्रायः प्रसूता स्त्रियों को ज्वर नष्ट करनेवाली ओषधियाँ दी जाती हैं। दूध में पीपर (औषध) घोलकर सास या ननद पिलाती हैं। इस अवसर पर गाए जाने-वाले गीत को 'पिपरी पिलाने का गीत' कहा जाता है :

पिपरा लेके ससुआ खड़ी, बहु के समुझाई रही,
'पिपरा पी ले बहु'।
पिपरा पियत मोरा ओठ जरे,
जियरा मोर कमल के फूल,
पिपरिआ हम न पिअभ।

(३) बरही पूजने का गीत—

हम नहीं पुजबइ बरहिआ, भइया नहीं अयलन हे।
अँगना बहारिते तूँ चेरिआ, तो सुनऽ न बचन मोरा हे,
चेरिआ, देखी आवऽ हमरो बीरन भइआ, कहूँ चली आवथ हे।
दूर ही घोड़ा हिहिआयल, पोखरिआ घहरायल हे,
गली गली इतर घमकी गेल, भइया मोरा अयलन हे।
मचिया बइठल तोहें सासु जी, सुनह बचन मोरा हे,
अब हम पूजबो बरहिआ, भइआ मोरा अयलन हे।
सासु जी कहमाँ ही धरिअई दउरिया, काहाँ ई सोंठाउर हे,
सासु जी कहमाँ बइठअई बीरन भइया, देखते सोहावन हे।
कोठी कान्हें रखिहअ दउरिया, कोठिले बीच सोंठाउर हे,
बहुआ अँचरे बइठइअइ बीरन भइआ, देखते सोहावन हे।
ओहरी बइठल दुलरइतिन ननदो, मुँह चमकावल हे,
जे कछु कोठिआ के झारन, अँगना के बहाड़न हे।
भउजी सेहे ले के अयलन बीरन भइया, देखते गिलटावन हे।

(ख) मुंडन गीत—मुंडन एक पवित्र संस्कार है। कभी गंगा किनारे, कभी तीर्थस्थान पर, कभी घर में, कभी जग (यज्ञ)—विवाह के अवसर पर भी बच्चों का यह संस्कार होता है। माँ अपनी संतान को गोद में लेकर बैठती है और नाई अपनी कैंची से बच्चे की लट काटता है। बगल में ननद बैठी रहती है और

अपनी आँचल में बच्चे की लट ले लेती है। इसे 'लाबर लेना' कहा जाता है। मुंडन के समय मायके से भाई का 'पियरी' लेकर आना अनिवार्य जैसा है।

सभमाँ बइठल राजा दसरथ, कौसिला अरज करे हे,
राजा राम के करऽ जग मूड़न, एहो सुख देखब हे।
अरहिल बन केरे खरहिल कटायभ,
बृंदाबन के रे बाँस है हे।
सेहो के पहिले माँड़ो छवायभ,
गजमोती चउँका पुरायभ हे।
पहिले होयतो गोबर जनेउआ,
तब होयते बर्हामन जनेउ हे।
एतना सुनिए राजा दसरथ सुनहु न पावल हे,
ललना गाय के गोबर मँगौलन, अँगना लिपओलन हे।
गजमोती चउँका पुरओलन, करब जग मूँड़न हे,
चउँका चनन बइठल कोसिला रानी, आउर दसरथ राजा हे।
सिसुकी सिसुकी बबुआ रोवे, आउर मइया पुकारथ हे।
सुनी सुनी हजमाँ लेलक गोदिआ औ बबुआ के अरज करे हे।
बबुआ एक लबडिया छाँटे दऽ, तब जइहऽ मइया गोदी हे।

सभवा बइठल तोंही बाबा अनजानु बाबा, लावड़ मोर छेंकले लिलार।
आवे दऽ असिनमा से बीते दे समनमा, मुड़ाई देबो बाबू तोहरो लबड़वा।
हजमा जे माँगऽ हइ सोने के नरहनियाँ, देवइते लगऽ हई मोरे सँकोचिया।
फूआ जे माँगऽ हइ सोने के हँसुलिया, देवइते मोरा लगऽ हई संकोचिया॥

(ग) जनेऊ गीत—यज्ञोपवीत संस्कार ब्राह्मणों में बड़ी धूमधाम से किया जाता है। कभी कभी बालविवाह की कुप्रथाओं के कारण जनेऊ और विवाह दोनों संस्कार एक साथ ही कर दिए जाते हैं। मंडप के दिन बच्चे को सूत का जनेऊ अभ्यासार्थ दिया जाता है, जिसे 'गोबर जनेऊ' कहते हैं। विवाह संस्कार की ही तरह जनेऊ संस्कार में भी मँड़वा, छपरा आदि की रस्में अदा की जाती हैं। मंडप आदि के गीत विवाह संस्कार में दिए गए हैं, यहाँ जनेऊ के गीत दिए जा रहे हैं। जनेऊ के अपने लौकिक विधान में 'भिखैना' (भीख माँगने) और कोपीन आदि धारण करने के अलग अलग गीत हैं :

अजोधा में बिलखथी रामचंद्र, 'जनेउआ जनेउआ' करी हे।
हथिन के बेदवा के पंडित मोरा के जनेउआ देतन हे ?
घरवा से बोलथिन दुलरइता बाबा, उनकर दुलरइता बाबा हे।
हम हिअई बेदवा के पंडित, हमहीं जनेउआ देवई हे।

सभमाँ बइठल तोहें बाबा दुलरइता बाबा, कइसे हम वर्हीमन होयभ ?
हम नाहीं जानीं दुलरइता बाबू, पूछी लेहु मामा आपन हे।'
काहाँ से बरुआ आयल, बाबू केकरो दुअरिया धयले ठाढ़
भिच्छा देहु न राम जी।
कासी से बरुआ आयल, बाबू दुअरिया बरुआ ठाढ़े भिच्छा०।
भिच्छा लेइ बहर भेलन दुलरइतो मइया, बरुआ हँसलन मुँह फेर
भिच्छा लेहु न राम जी।

(घ) विवाह गीत—विवाह एक उल्लासमय संस्कार है। मगही लोक-साहित्य में विवाह के गीत अत्यधिक संख्या में मिलते हैं। इन्हें दो भागों में सरलतया बाँटा जा सकता है—(१) लड़के के विवाह गीत और (२) लड़की के विवाह गीत। विवाह संस्कार के अवसर पर अनेक रस्में कुलपरंपरा से होती हैं, जिनके पृथक् पृथक् गीत हैं। लड़के के विवाह गीतों में जहाँ उल्लास और अभिमान की अभिव्यंजना मिलती है, वहाँ लड़की के गीतों में निरीहता, करुणा और सामाजिक विषमता आदि के विसंवादी स्वर सुनाई पड़ते हैं। 'समदन' के गीतों में बेटी की बिदाई का करुण चित्र सामने आता है। शृंगारिक होते हुए भी ये गीत बड़े ही मार्मिक हैं। छेंका से लेकर दोंगा तक गीतों की लंबी परंपरा है।

(१) बेटी—पुत्री के विवाह के लिये वर की खोज में पिता की परेशानियाँ किसे मालूम नहीं। इसी चिंता में पिता पुत्री को ससुराल में जीवननिर्वाह के लिये शिक्षा भी नहीं दे पाता। फिर भी थोड़े में वह बहुत सी शिष्टाचार की बातें बता देता है :

बाबा के अँगना में आलर झालर, झरझर बहलइ बतास।
वाही तरे बैठिके बाबू पलँग डँसावलन, बाबू सूतलन निरभेद॥
कछुआ पहिरि बाहर भेलन दुलरइती बेटी—बाबूजी से बिनती हमार।
जेइ घरे अजी बाबू धिया हई कुँआरी कइसे सूतल निरभेद।
उत्तर खोजलि, दक्खिन खोजलि, खोजलि मगह मनेर।
तोहर सरेखा बेटी बर नहिं मिले, अब बेटी रहबा कुमार।
आहर सुखीए गेलो, पोखर सुखीए गेलो, इंद्र परल हदिकाल।
बाबू जी के छतिया में दलक परिय गेलो, अगे बेटी रहब कुमार।
आहर उमड़ि गेलो, पोखर उमड़ि गेलो, इंद्र परल छछकाल।
बाबू जी के छतिया में चन्नन छलकि गेलो, अगे बेटी होयतो बियाह।
पटना बजरिया बाबू धोतिया बेसहिहऽ तबे जइहऽ मगह मनेर।
सिखहु न पइली बाबू घर घरूअरिया, अउरो रसोइया बेहवार।
तीन भुवन बाबू एको नहिं सीखलि, परत बाबू तोरे सिरे गारि।

सिखि लेहू अगे बेटी घर घरूअरिया, अउरो रसोइया बेहवार।
आँचर खोंसि बेटी भानस पइसिहऽ, करिहऽ रसोइया बेहवार।
पहिले जेमइहऽ बेटी ससुरे भइँसुरवा, तबे खाए सामी अपान।
सामो सरेख बेटी बिरवा[3] लगइह, उनका से रहिहऽ अनंद॥

(२) वर के गीत—

कोइली जे बोले सिरिसी जुड़ी छहिंआ, बाबू चलल ससुरार हे।
अइसन असीस तुहीं दीहऽ रे कोइली, जाइतहीं होवे बिआह हे।
जब रे दुलरइता बाबू ससुरा से चलि अयलन, मइया पुछलन एक बात हे।
मइया अलरी पूछे बहिनी दुलारी पूछे, कहमाँ गमयलऽ दिन रात हे?
दिन गमइली अम्माँ सिरिसी जुड़ी छहिआँ, रात गमइली ससुरार हे।
दुधवा के निकुती बाबू तनिको न दीहला, तुरत चिन्हल ससुरार हे।
दुधवा के निकुत अम्माँ तब हम दीहब, जब धनी लयबो बिआह हे।
हम होयबो अगे अम्माँ सेवकिआ तोहरा, धनी होयतउ दासि तोहार हे।

(३) **पूर्वमिलन**—विवाह निश्चित हो जाने पर वर वधू दोनों ही एक दूसरे को देखना चाहते हैं। इसके लिये उनके अभिभावकों द्वारा अवसर उपस्थित कर दिया जाता है। ये दोनों किस प्रकार मिलते हैं, इसका सुंदर चित्र देखिए;

बाबू के दुलारी बेटी अनजानू[1] बेटी, माँगल डलवा के बिनाए[2]।
फुलवा लोढ़े फुलवरिया जाय।
फुलवा लोढ़इते बेटी के धूप लगल हे, अहे सुतल बेटी अँचरा डँसाय,
ओही फुलवरिया बीचे।
घोड़वा चढ़ल आवइ दुलहा अनजानू दुलहा, ऊपर भए आरसी[3] चलावई।
से उठु उठु मलहोरिन बेटिया हे।
मलिया के जलमल राउर माय बहिनिया, हम ही अनजानू साही बेटिया,
से फुलवा लोढ़े फुलवरिया अइली।
जब तूँही हइन अनजानू साहि के बेटिया, तब हमें हियइ अनजानु साहि के
बेटवा, से तोरे लोभे हिया हम अइली।

[1] यहाँ नाम। [2] डाली लिए चुना हुआ फूल। [3] शीशा, अँगूठे में पहनी जानेवाली एक प्रकार की बड़ी अँगूठी, जिसपर मुँह देखने के लिये शीशा जड़ा होता है।

जब तूँह्न अनजानू साहि के बेटवा, हमे आगे पोथिया विचारह्न,
से रही फुलवरिया बीचे।
पढ़ल लिखल सब मोर हियाँ होयलो, पोथी मोर छुटलइ बनारस,
से तोरा आगे हम भूठ भेली।

(४) पिता-पुत्री-संवाद—वर साँवला है। वधू अपने पिता से इसकी शिकायत करती है, पर पिता श्यामल वर की तुलना महादेव से करता है :

बाबू छोट अँगन बड़ी साँकरी, बाबू ऐतन
सजन सब लोग, कहाँ दल उतरत।
बेटी छोट अँगन बड़ी साँकरी, बेटी ऐतन
सजन सब लोग, मड़उए दल उतरत।
बाबा एक बचन अपने चूकली, बाबा
हमहीं गोरिल, बर सामर मेर[1] मेरावल।
बेटी, सामर सामर जनि कर, बेटी सामरे
ईस महादेव, तोरा में मेरावल।
बेटी, तोहर मइया बड़ी सुघरिन, बेटी
लगवइ तीसी के तेल, तो छाँही सुखावलन।
बेटी, बरवा के मइया बड़ी फूहरी बेटी
बेटी लगवले तेल फुलेल, तो रउदे सुखावलन।

(५) वर-वधू-संवाद—बरात आने पर वरपक्ष और वधूपक्ष में खाने पीने के लिये झगड़ा होता है। अभिमानी वर और मानी वधू का संवाद देखिए :

अहो अहो नरियर बड़े तोर नाम हे,
बड़ रे बिरिछ जानि बइठलूँ मैं छाँह हे।
अजी अजी अनजानू साही[2], तोर बड़ नाम हे,
बड़ से बड़इया जानि जोड़लूँ मैं बाँह हे।
भूखल हाथी घोड़ा पोंछ झटकारइ जी,
भुक्खल सजन लोग बिरवा चिबावइ जी।
हथिया के देबइ एजी तिलचाउर जी,
घोड़वा के देबई लाही लूही दूब जी,
साजन के देवइन एजी दही भात जी।

[1] मेल। [2] वर के पिता।

बइठलन अनजानू साही जाजिम बिछाई जी,
जँघिया पर बइठलन कनियाँ कुमार जी ।
बइठलन अनजानू समधी[1] खरई[2] ओछाई[3] हे,
जँघिया दुलरइतो सुगई लट छिटकाई हे ।
बिगरलन दुलह वर बिरवो पचास हे,
बिरवो न लेहइ कनेया कुमार हे ।
बिरवा न लेई धानी, मूखहूँ न बोलइ हे,
केकर गुमान धानी बिरवा न लेई हे ।
बाबा के गुमान प्रभू बिरवा न लेइ जी,
भइया के गुमान प्रभू मुखहूँ न बोली जी ।
बाबा माई गुमान धानी दिन दुई चार हे,
हमरो गुमान धानी जलमो सनेह हे ।

(६) कोहबर—कोहबर में वरवधू का प्रथम मिलन होता है। वर को रात ही भर रहना है, इसलिये स्वभावतः वह परिवार के सदस्यों का परिचय चाहता है। वधू प्रतीकात्मक भाषा में उनका परिचय देती है :

सोने के चउकिया चढ़ि बइठलन अनजानु दुलहा लाल गलइचा लगाइ।
कब हम देखभ बाग बगइचा, कब हम देखभ ससुरार ।
जाइत देखिहऽ बाग बगइचा, दुअरे देखिहऽ ससुरार ।
मड़वाहि देखली प्यारी दुलरइतो प्यारी, आठो अंग गेलइ जुड़ाई ।
कोहबर बोलथी दुलहा अनजानू दुलहा, प्यारी से बचन बुझाई ।
अजी धानी मामा के हथू, कउन चाची तोहार, कउन हथ भउजी तोहार।
रसे बोलु बिरसे बोलु अजी प्रभु, सुनतन मड़उआ सब लोग।
हमें तूँही अजी प्रभु कोहबर हियई, सुन हम सबे के बताइ ।

उज्जर ओढ़न उज्जर पेन्हन, उज्जर सब बेहवार ।
जिनकर गले तुलसी जी के माला, ओही हथी मामा हमार ।
सबुज ओढ़न सबुज पेन्हन, सबुज सब बेहवार ।
जिनकर नयन झलामल लोरवा, ओहे हथी मइया हमार ।
पीयर ओढ़न, पीयर पेन्हन, पीयर सब बेहवार ।
जिनकर लिलरा झलमल टिकुली, ओहे हथी चाची हमार ।
हरियर ओढ़न हरियर पेन्हन, हरियर सब बेहवार ।

१ वधू के पिता। २ खैर, मूँज की बिंड़ी। ३ बिछाकर।

जिनकर हाथे सोने केरा बलवा, ओहे हथी भउजी हमार।
हँसइत अयलन बिहँसइत गेलन, ओहे हथी बहिनी हमार।
हाथ के बिरवा हाथे सुखी गेलइ, ओहे हथी बहिनी हमार।

(७) दहेज—ब्याह होने पर विदाई के समय ससुर कितना भी दहेज दे, पर वर प्रसन्न नहीं हो सकता। उसे तो अपनी जिद पूरी करानी है। अब वधू भी वर का साथ देती है। पिता इनकी माँगों से कैसी परिस्थिति में पड़ जाता है, यह इस गीत में चित्रित है :

कउन दसरथ लगौलन बाग बगइचा,
कउन दसरथ खेललन सिकार।
कउन जनक जी के धिया हइ कुँआरी,
किनकर अयलइ बरियात।
अनजानु[1] साही लगौलन बाग बगइचा,
अनजानु साहि खेललन सिकार।
अनजानु[2] साहि के धिया हइ कुँआरी,
उनकर अयलइ बरियात॥
सब बरियतिया घमस गढ़ बइठल,
असगरे दुलरुआ बाबू[3] खाड़।
घर से बहर भेजल ससुर अनजानु ससुरा,
चल बाबू लगन दुआर।
जे कुछ खोजबऽ बाबू से सब देबो,
चलऽ बाबू लगवऽ दुआर॥
भेल बियाह घर कोहबर बइठल,
ससुर जी से मिनती हजार।
जे कुछ अजी ससुर जी मनचित लौलऽ,
से कुछ चाही तुरंत।
गइया जे देलूँ भइँसिया जे बाबू,
बरहा बरद धेनु गाय।
एतना संपत बाबू तोरा देली,
काहे अब रूसल दमाद।
कलेसा इड़ोत होई बोलथी दुलरइतो सुगई,
बाबू जी से मिनती हमार।

[1] वर के पिता। [2] वधू के पिता। [3] वर।

जे कुछ अजी बाबू मनचित लाबी,
से सब चाही तुरंत।
गइया जे देलूँ, भइँसिया जे देलूँ,
बरहा बरद धेनु गाय।
एतना संपत बेटी तोरा दे देलूँ,
काहे ला रुसलन दमाद।
गइया जे देल भइँसिया जी बाबू,
बरहा बरद धेनु गाय।
एतना संपति बाबू हमरा दे देल,
सायर[१] ला रूसल दमाद।
सायर सायर जनि बोलू बेटी,
सायर बाबा बुनियाद।
सायर देले बेटी निरधन होयबो,
छुटि जयतो बाबा बुनियाद।
सायर पइती नेहयबो जी बाबू,
अरई[२] सुखयबो लामी केस।
बाट के पूछतई बटोहिया जी,
बाबू के कयले सायर दान।
किनकर धिया हे अति बड़ीभागी,
सायर मिलल दहेज।

(८) **पराती**—विवाह के समय दिन रात के गीतों का ताँता प्रभाती से शुरू होता है, जिसमें पूर्वजों और वर वधू के लिये आशीर्वाद और कुशल मंगल की कामना रहती है :

हे आदित[३] उगऽ न बँड़ेरी साए[४], कउआवा बिरिछ साए।
हे उठ न अनजानु साही[५] के जोइया[६], त दहिया बिरोरहु[७]।
हे दही मोर बढ़ई कुँड़नी[८] साए, घउआ मलहानी साए ?
हे बढ़इन दुलरइतो देई[९] के नइहर, दुलरइतो देइके सासुर।
हे बढ़इन दुलरइतो[१०] दुल्हा सिर पाग,
दुलरइतो[११] देई सिर सेनुर नयन भर काजर।

१ तालाब। २ किनारे। ३ आदित्य। ४ छाते हुए। ५ इस स्थान पर स्वर्गीय पूर्वजों के नाम। ६ जोय, पत्नी। ७ बिलोड़ना, मथना। ८ दूध दही रखने का मिट्टी का बर्तन। ९ वर अथवा वधू का नाम। १० यहाँ वर का नाम। ११ यहाँ वधू का नाम।

(९) बिदाई—बिदाई की बेला है। लड़की अपनी ससुराल के लिये रवाना हो रही है। उस समय चिड़वा से गीत के शब्द काँपते हुए और आँखों से आँसू की बूँदें निकलती हैं :

सुरूज के जोते बाहर भेलन दुलरइतो बेटी, गोरे वदन कुम्हलाय।
पहिले जनइतूँ बेटी तमुआँ तनइतूँ, गोरे बदन कुम्हिलाय।
काहे लागी अजी बाबू तमुआँ तनइतऽ, गोरे वदन कुम्हलाय।
होयतो भिनुसरवा बाबू कोइलरी कुहुँकतो, लगवो सुन्नर बर साथ।
काहे लागी अगे बेटी खोआ खाँड़[1] खिलउलूँ, काहेला पिअवलूँ दूध।
काहे लागी अगे बेटी पुत्र जानि मानलूँ, लगबऽ सुन्नर बर साथ।
जानइत हलऽ जी बाबू धिया हइ कुमारी, लगतइ सुन्नर बर साथ।
काहे लागी अजी बाबू खोआ खाँड़ खिलवलऽ, काहे ला पियवलऽ दूध।
काहे लागी अजी बाबू पुत्र जानि मानलऽ, लगबो सुन्नर बर साथ।
एक कोस गेलइ डाँड़ी[2] दुई कोस गेलई, पहुँचल ससुर जी के देस।
छूटल आटन, छूटल पाटन, छूटल जनकपुर देस।
छूटल भइया के लाखो दुलरिया, छूटल भउजी के संग।
गइया के हँकरे दूहन केरा बेरिया, अम्मा रसोइया केरा बेर।
सखी सब हँकरे मिलन केरा बेरिया, भउजी सुतन केरा बेर॥
बाट के बटोहिया कि तूँहीं मोरा भइया, हमरो समद[3] लेले जाहु।
हमरो समदिया भइया अम्मा समुझाइहऽ, सखी सब भेटें अँकवार॥

(१०) समदन गीत—

अँगना घुरिए घुरी गोधरे दमाद,
बड़ा रे सबेरे सासु धिआ सपराओ।
खाइ लेहु खाइ लेहु बेटी तुँहीं दही भात,
फेन केरे होयतो बेटी, पर केरे आस।
आपन दही भात मइआ रखूँ सिकवा चढ़ाय,
केनमाँ लिहले अम्माँ देलऽ लुलुआय।
चलहिं के बेरिआ बेटी, देल समुझाय,
बजड़ के छतिया बेटी बिहरिओ न जाय।
तूँ परदेसी बेटी, पर केरे आस,
तोहरा रोवइते बेटी, रोवे सनसार।

[1] शक्कर। [2] डोली। [3] संवाद।

(११) गवना—और वही अवस्था गवना अर्थात् द्विरागमन में विदाई के समय भी होती है :

कहाँ के चंदा कहाँ चलल जाय, मोर प्रान हरी,
कहमा के दुलहा गवन कयले जाय, मो०
पुरूब के चंदा पच्छिम चलल जाय, मो०
अजोधा के दुलहा गवन कइले जाय, मो०
सभवा बइठल ससुर अरज करथ, मो०
दिन दुई रहे दहु धियवा हमार, मो०
जब तोरा ससुर जी धिया हथ पियारी, मो०
काहे लागी दान कयलऽ धियवा·अपान, मो०
मचिया बइठल सासू अरज करथ, मो०
दिन दुई रहे दहु धियवा हमार, मो०
जब तोरा सासू जी धिया हथ पियारी, मो०
काहे ला चुनवलऽ खरहिया अपान, मो०
मनसा पइसल सरहज अरज करथ, मो०
दिन दुई रहे दहू ननदी हमार, मो०
जब तोरा सरहज ननदी पियार, मो०
काहे ला मारल दही चटवा हमार, मो०
लटवा छिटइते सखी अरज करथ, मो०
दिन दुइ रहे दहू बहिनी हमार, मो०
काहे लागी छिटलऽ हल लटवा हमार, मो०

(६) धार्मिक गीत

(क) राम जी—समय समय पर ग्रामीण महिलाएँ राम, कृष्ण, महादेव आदि देवताओं के गीत गाती हैं, जिनमें उनके संबंध में प्रचलित कथाओं का उल्लेख होता है। राम के गीत में दशरथ की उँगली में नुकीली लकड़ी गड़ने पर कैकेई द्वारा वरदान माँगने की बात कही गई है :

बँसवा कटावन चललन राजा दसरथ, अँगुरी गड़ल खोपचाल[1] हे।
अँगुरी के दरदे बेयाकुल राजा दसरथ, केकई के परलो हँकार[2] हे।
आहु आहु केकई रानी पलँग चढ़ि बइठहु, हरी लेहु दरद हमार हे।
जउन जउन बर माँगबऽ हे रानी, आजु के माँगल सब होयत।

[1] काँटा। [2] बुलाहट।

नहिं हम माँगिला अनधन सोनमा, नहिं माँगि सहना[1] भंडार हे।
चतुर भरत जी के तिलक चाही, चाहिला राम वनवास जी।
माँगे के रानी बड़ी कुछ माँगलऽ, फाटल हिरदा हमार हे।
सउँसे अजोधा में राम जी दुलरुआ, सेहो कइसे जयतन वनवास हे।
एक कोस गेलन राम जी दोसर कोस गेलन, लगि गेलइ मधुरी पियास,
एही नगरिया भाई हे कोई न बसई, राम जी पियासल जाथ।
अपने महल से बहर भेलन सीता, नूपुर उठे झँझकाल हे।
सोने के गेरुआ[2] गंगाजल पानी, पानी पियहू सिरी राम जी।
केकर हहू तोही नतना परनतनी, केकर हहू तू धीया हे।
केकर कुलवा बियाहल हे सीता, के हथू सामी तोहार हे।
राजा हेमचंद जी के नतनी परनतनी, राजा जनक जी के धीया जी।
राजा दसरथ कुल हमहीं बियाहल, सामी जी हथी सिरी राम जी॥

(ख) निर्गुण—कबीरपंथी धरमदास के बनाए निर्गुण प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के निर्गुण मगही क्षेत्र के कबीरपंथी चमारों द्वारा मृत व्यक्ति की शव-यात्रा में गाए जाते हैं :

रोपली हम आम अमरूदिया हो, एक पेड़ असोक रोपली हे।
सखिया सकलो बगइचवा लगई भेयावन, से एक पेड़ चनना बिनु॥
नहिरा में दस पाँच भइवा, पचिसो भतीजा हथि हे।
सखिया सकलो नइहरवा उदास, से एक बुढ़ी मइया बिनु॥
ससुरा में दस पाँच भइसुरवा, पचिसो देवर हथि हे।
सखिया सकलो ससुररिया हइ उदास, एके पुरखवा बिनु॥
पेन्हली हम बाजूबन बिजउठवा[1], आउ मँगटीका पेन्हली हे।
सकलो गहनमा लगइ सून, बस एक ही सेनुरवा बिनु॥
धरमदास सोहर गावल, गाई के सुनावल हे।
सखिया करहू न अपन बिचार, परम सोहर गावल॥

(७) बालक गीत

(क) लोरी—बच्चे जब रोने लगते हैं तो उन्हें मनाना बड़ा कठिन होता है। उनको खेलानेवाली बहन, माँ या धाय लोरियाँ गा गाकर उन्हें सुलाती या बहलाती हैं। इन लोरियों में मनोरंजन और शिक्षा का सुंदर समावेश होता है :

[1] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। [2] गेरू एक प्रकार की कड़ी मिट्टी होती है, उसी से निर्मित कलश को गेडुआ कहा जाता है।

चान मामूँ, चान मामूँ, हँसुआ द ऽ।
से हँसूवा काहेला ? कतरा[1] कतरावेला।
से कतरवा काहे ला ? गोरुआ ढुकावे ला।
से गोरुआ काहे ला ? चौंतवा पुरावे ला।
से चौंतवा काहे ला ? अँगना लिपावे ला।
से अँगनवाँ काहे ला ? गोहुमा सुखावे ला।
से गोहुमा काहे ला ? मैदवा पिसावेला।
से मैदवा काहे ला ? पूड़िया पकाए ला।
से पुड़िया काहे ला ? भउजी के खियावे ला।
से भउजी काहे ला ? बेटा बिआथे ला।
से बेटा काहे ला ? गुल्ली डंडा खेले ला।
गुल्ली डंडा टूट गेल, बबुआ रूस गेल॥

(८) विविध गीत

(क) झूमर—शादी विवाह के समय अथवा अन्य अवसरों पर गाँव की स्त्रियाँ गोल बनाकर एक दूसरे के हाथ पकड़ लेती हैं और चक्कर लगाती हुई झूम झूमकर झूमर गाती हैं, जिनमें गार्हस्थ्य जीवन के उतार चढ़ाव और पति पत्नी के हास परिहास चित्रित होते हैं। प्रस्तुत गीत में एक वधू अपने और सास के बीच हुआ वार्तालाप एक ग्वालिन को सुना रही है :

ग्वालिन, अँगना में एक पेड़ भँगिया,
सेई भँगपियवा मतवलवा, सुनु ग्वालिन हे।
सरबत घोरि घोरि पिया के पियावलूँ,
सेही पियवा भेलई मतवलवा॥ सुनु०॥
कोरे हँड़ियवा में दहिया जमवलूँ,
इमरित देइके जोरनिया॥ सुनु०॥
होइते परात जब कुड़नी[2] उठावलूँ,
बामे दहिने बोले कगवा। सुनु०॥
मचिया बइठल तुहूँ सासू जी बढइतिन,
कर तनि काग के बिचरवा। सुनु०॥
किया तोरा पुतहू फुटतइ कुड़नियाँ,
किया तोहर दहिया छिटकतई। सुनु०॥

[1] कुट्टी। [2] बर्तन।

नहिं मोरा सासु जी फूटतई कुड़नियाँ,
नहिं मोरा दहिया छिटकतई । सुनु० ॥
बाट के जाइत बटोहिया जे पूछइ,
किया ग्वालिन भाइ रे भतिजवा । सुनु० ॥
नहिं रे बटोहिया भाई रे भतिजवा,
नहिं मोरा लहुरा देवरवा । सुनु० ॥
काँच उमरिया में राम जी जलम लेलन,
मोरा गोदी रोवइ बलकवा । सुनु० ॥
चन्नन कटवैबो, अंगन घेरवैबो,
छुटि जेतो पिया के अवनमाँ । सुनु० ॥
जे मोरा कहतई पिया के अवनमाँ,
देवई में लितहूँ[1] के कँगनमा । सुनु० ॥

पति के प्रति पत्नी के शंकालु हृदय में कौन कौन सी बातें छिपी रहती हैं, वह क्या क्या सोचती है, क्या करने को ठानती है, उसका क्या परिणाम अनुमान करती है, इसका यथार्थ चित्रण अनेक गीतों में हुआ है।

(ख) बिरहा—

पिया पिया रटि के पियर भेलई देहिया,
लोग कहई कि पांडु रोग
गाँमाँ के लोगवा मरमियों न जानऽ हई ।
भेलई न गओनमा मोर
डिहबा, डिहबा[2] पुकारे डिहबलवा[3]
काहे न रखब पत मोर ।
खेतवा बिगारइ खरथूहा[4],
बेटवा बिगार हई पतोह ।
भरल सभवा बिगारऽ हई लबरा लुचवा,
ओहु करई हो भंडूल ।

(ग) अलचारी—अन्य प्रदेशों में इसे 'नचारी' या 'लचारी' कहते हैं। इसमें प्रायः शिव पार्वती का वर्णन होता है। जहाँ इनका वर्णन नहीं होता, वहाँ

१ मूल्यवान् । २ देवस्थान । ३ ग्रामदेवता अथवा पति । ४ एक प्रकार की घास जो खेत नष्ट करती है।

नारी-पक्ष की, पुरुषपक्ष से श्रेष्ठता प्रतिपादित की जाती है। धोबियों के यहाँ अलचारी गाने की विशेष पद्धति है। कठौती, गगरा, गगरी अथवा थाली में दो लकड़ियों से चोट कर गीत के बोल निकालते हैं, पुनः उसी में स्वर मिलाकर गाते हैं। इस कला में ये अत्यंत निपुण होते हैं। गाने में कहीं स्वर, ताल एवं लय का भंग नहीं होता, बर्तनों से निकली ध्वनि से उनका स्वर मिल जाता है।

बुढ़ऊ लागी खिचड़ी पकयली, घिउआ ले सेरा अयली हो राम।
जेहु बुढ़हु सूते खरिहान, कलपी जिया रहहई हो राम ॥ टेक ॥
बुढ़उ लगी खटिया बिछाएली, अउ तोसक लगा ऐली हो राम।
सेहु बुढ़ऊ सूते खरिहान, कलपी० ॥
बुढ़उ लगी तकिया लगा ऐली, पंखा गेला ऐली हो राम ॥
सेहु बुढ़ऊ सूते खरिहान, कलपी० ॥
बनमा काटि बैठबई, छोकनियाँ हम लैबई हो राम।
अहो राम तेही छोकनी बुढ़वा के डेरायब हो राम ॥ कलपी० ॥

चतुर्थ अध्याय

मुद्रित मगही साहित्य

हम मुद्रित मगही साहित्य के दो विभाग कर सकते हैं—एक तो वह जो हिंदी के माध्यम से प्रकाश में आया, और दूसरा वह जो मूल मगही भाषा में प्रकाशित हुआ है।

१. हिंदी माध्यम से हुआ प्रकाशन

हिंदी के माध्यम से सर्वप्रथम आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व कलकत्ते के एक ईसाई मिशनरी प्रेस से मगही व्याकरण की लगभग ७० पृष्ठों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसकी लिपि कैथी थी। उस पुस्तक की एक प्रति श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' (गया) के पास सुरक्षित है। इसके बाद श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा कुछ मगही लोकगीतों के प्रकाशन के अतिरिक्त, १९४२ ई० तक हिंदी में कोई मगही साहित्य प्रकाशित नहीं हुआ। इस बीच हिंदी पत्रपत्रिकाओं में समय समय पर मगही लोकगीत प्रकाशित होते रहे, जिनकी काफी लंबी सूची तैयार हो सकती है। परंतु मगही को साहित्यिक मान्यता सर्वप्रथम १९४३ ई० में प्राप्त हुई, जब मैट्रिक परीक्षा के लिये पटना यूनिवर्सिटी के पद्यसंग्रह में श्री कृष्णदेवप्रसाद द्वारा लिखित 'जगउनी' और 'चाँद' कविताएँ प्रकाशित हुईं। इसके पश्चात् १९५३ ई० में उन्हीं की लिखी एक पुस्तिका 'मगही भाषा और उसका साहित्य' बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशित हुई। सर्वप्रथम मगही-साहित्य-संमेलन, एकंगरसराय के अवसर पर ६ जनवरी, १९५७ को श्री रमाशंकर शास्त्री ने स्वलिखित 'मगही' शीर्षक एक पुस्तिका प्रकाशित करवाई, जिसमें सिर्फ भाषा पर सारगर्भित विचार उपस्थित किए गए थे। हिंदी माध्यम से मगही साहित्य का सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रकाशन १९५७ में हुआ जब बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपादित और अनूदित प्राचीन मगही कवि सिद्ध सरहपा का 'दोहाकोश' प्रकाशित किया।

२. मगही का मौलिक प्रकाशन

मगही भाषा के माध्यम से प्रकाश में आनेवाले मगही साहित्य में लोक-साहित्य और उच्चतर साहित्य पर अलग अलग दृष्टिपात करना उचित होगा।

(१) लोकसाहित्य—मगही लोकसाहित्य में ऐसी बहुत सी छोटी छोटी पुस्तिकाएँ हैं, जिनके गीत और भजन ग्रामीण स्त्री पुरुषों के कंठों में बस गए हैं। ऐसी पुस्तिकाओं में श्रीधरप्रसाद मिश्र की 'गिरिजा-गिरीश-चरित' और 'उमा-शंकर-विवाह-कीर्तन' हैं, जिनमें शिवपार्वती के चरित्र का क्रमबद्ध गान प्रचलित विनोदपूर्ण शैली में किया गया है। इनके अतिरिक्त उनकी 'राम-वन-गमन', 'लंकादहन', 'पनघटलीला', 'गांधी-विरह-लहरी' इत्यादि इक्कीस पुस्तिकाएँ हैं। विभिन्न ग्रामकवियों द्वारा लिखित इस प्रकार की दर्जनों पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिनकी कोई सूची अभी तक तैयार नहीं की गई है।

(२) उच्चतर साहित्य—

(क) कविता—श्री रामप्रसाद सिंह 'पुंडरीक' की मगही कविताएँ १९५२ ई० में प्रकाशित 'पुंडरीक रत्नमालिका' में अन्य हिंदी कविताओं के साथ प्रकाश में आईं। इस पुस्तक के प्रथम दो भागों में हिंदी की और तृतीय भाग में मगही की कविताएँ संगृहीत हुईं। ये कविताएँ लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य की संधिरेखा पर खड़ी प्रतीत होती हैं। एक ओर लोकरुचि को ध्यान में रखकर सोहर, जँतसारी, झूमर, बारहमासा, होली, बिरहा, चैती, कजरी इत्यादि की लय और छंद में लिखी गई धार्मिक और राष्ट्रीय कविताएँ हैं और दूसरी ओर इनके भीतर से झाँकता हुआ साहित्यिक भाव। 'प्रभुसंदेश' में ये कजली की धुन में गाते हैं :

सखि हे, उमड़ि घुमड़ि घन आयल प्रभु संदेशा लेके ना।
मंगल धुनि गंभीर सुनवलक, जागल सूतल भाग,
शीतल मंद सुगंध बुअरिया, उमगावत अनुराग।

और फिर 'रोपनी गीत' में तो शांत रस ही छलका देते हैं :

शान कमंडल में रस लेके, अयलन खेतपती,
"पुंडरीक" हिरदा ठंढायल, होयल शांत मती
दुलवा मागल सजनी।

इधर श्री सुरेश दूबे 'सरस' ने एक मगही कवि 'कासीदास' का पता लगाया है, जिनकी पुस्तक 'खेमराजभूषण' के अंतिम १३ पृष्ठ एक पंसारी की दूकान से प्राप्त हुए। कासीदास बिलारी (पटना) के महंत थे, जिन्होंने मगही में कुंडलियों तथा अन्य प्रकार की छंदोबद्ध कविताओं की रचना की।

(ख) पत्रपत्रिकाएँ—मगही साहित्य का सुव्यवस्थित प्रकाशन एकंगरसराय (पटना) से श्रीकांत शास्त्री के संपादकत्व में 'तरुणतपस्वी' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका के रूप में हुआ, जिसमें खड़ी बोली के साथ मगही गद्य पद्य की रचनाएँ मुद्रित होने लगीं। मगही के गद्य रूप के मुद्रण का यह प्रथम अवसर था। कुछ

दिनों के पश्चात् यही पत्रिका 'मगही' के नाम से निकली और फिर तीन वर्ष तक बंद रहने के बाद १९५२ की फरवरी से 'बिहार-मगही-मंडल' के तत्वावधान में श्रीकांत शास्त्री और रामवृक्ष सिंह 'दिव्य' के संपादकत्व में पटना से निकलने लगी। इसका प्रकाशन बीच में फिर बंद हुआ पर नवंबर, १९५५ से पुनः 'मगही' मासिक पत्रिका के रूप में श्रीकांत शास्त्री और ठाकुर रामबालक सिंह के संपादकत्व में निकलने लगी, जो अभी तक प्रकाशित हो रही है। एक दूसरी मासिक पत्रिका 'महान् मगध' श्री गोपाल मिश्र 'केसरी' के संपादकत्व में, १९५५-५६ में औरंगाबाद (गया) से निकली, जिसके ९-१० अंकों का ही प्रकाशन संभव हुआ। इसमें मगही के साथ मैथिली और भोजपुरी की रचनाएँ भी प्रकाशित हुई थीं। श्रीकांत शास्त्री का एक नाटक 'नया गाँव' भी प्रकाशित हुआ है, जिसे बड़ी लोकख्याति मिली है।

इस बीच १९५७ में ही नेयामतपुर (पटना) से श्री राजेंद्रकुमार यौधेय का 'मगही भाषा के वेआकरन' का प्रकाशन हुआ।

अन्य किसी पुस्तकाकार मुद्रित रचना का पता नहीं। अतः मगही साहित्य का एकमात्र संग्रह उपर्युक्त पत्रिकाओं और मुख्यतः 'मगही' में प्राप्त होता है।

(ग) कथासाहित्य—'मगही' में कहानियाँ सबसे अधिक श्री रवींद्रकुमार की छपीं, जिनमें 'टुरवा', 'मन के पंछी' और 'सम्मे सोआहा' उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में भावुक कहानीकार ने दलित श्रमिक वर्ग के जीवन की मार्मिक और प्रवाहपूर्ण झाँकी देकर समाज की व्यवस्था की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। पं० तारकेश्वर भारती ने अपनी एक कहानी 'मैना काजर' में मनोवैज्ञानिक आधार पर सामाजिक कुरीति के संबंध में अपनी कहानीकला का सुंदर परिचय दिया है। 'तीज के त्यौहार' में सुरेशप्रसाद सिन्हा ने पति पत्नी के प्रेम के उतार चढ़ाव का मनोहारी दिग्दर्शन कराया है। हास्य-व्यंग-विनोद-पूर्ण कहानियों में लक्ष्मणप्रसाद 'दीन' की 'आफत के पुड़िया', 'चार सौ बीस सेन जी' और शिवेश्वरप्रसाद अंबष्ठ की 'अप्सरा से अफसर' नामक कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्री जयेंद्र की 'चंपा' नामक लघुकथा में चंपा फूल से साम्यवाद का प्रचार करवाया गया है। लक्ष्मणप्रसाद 'दीन' का शब्दचित्र 'बिचन दादा' अपने प्रकार का अकेला ही है।

(घ) नाटक—नाटकों में श्रीकांत शास्त्री का 'नया गाँव' ग्रामीण जीवन के नवजागरण का जीता जागता चित्र है और साथ ही एक संदेश भी। प्रो० वीरेंद्रप्रसाद सिंह 'विप्लव' के 'थारी परखाल हइ' एकांकी में एक गरीब परिवार पर तिलक प्रथा के कुपरिणाम की झाँकी मिलती है। श्री उदय का 'सेनुरादान' भी इसी प्रथा पर एक कुठाराघात है। इनके अतिरिक्त प्रो० शत्रुघ्नप्रसाद शर्मा का

'गुरुदक्षिणा', मुन्नीप्रसाद का 'कुबेर के भंडार', 'श्रोकील के परवाना तक' श्रौर शंभुनाथ जायसवाल की 'चलनी दुसलक बढ़नी के' प्रहसन उल्लेखनीय हैं।

३. समसामयिक गतिविधि

मगही काव्य में मुक्तक के अतिरिक्त अन्य काव्यविभागों की सृष्टि नहीं हुई। मुक्तक में अंग्रेजी, संस्कृत श्रौर बँगला से अनुवाद, प्रकृतिचित्रण, तथा ग्रामीण जीवन की झाँकियाँ, संयोग श्रौर वियोगवर्णन तथा हास्य श्रौर व्यंग्य मुख्य रूप से मिलते हैं। मगही कवियों में स्व० कृष्णदेवप्रसाद का नाम सर्वप्रथम श्राता है, जिन्होंने आधुनिक मगही साहित्य की नींव डाली। श्रारंभ में इन्होंने अंग्रेजी से श्रौर फिर संस्कृत से अनुवाद किए। तत्पश्चात् ये मौलिक रचनाश्रों की श्रोर मुड़े। अभी तक इनकी रचनाश्रों का पुस्तकाकार मुद्रण नहीं हुश्रा, पर निकट भविष्य में इसके प्रकाशन का निश्चय हो चुका है। 'मगही' में प्रकाशित 'फागुन के श्रवइया' में वासंती प्रकृति का ये मनोहारी वर्णन करते हैं :

श्राइ गेल मास फगुनवाँ, निरमल स्वच्छ अकास।
सिमर के लाल लाल लुलहुश्रा सुहावन, महुश्रा के पसरे सुवास॥

इन कविताश्रों में इनका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक सुषमा को काव्य में बाँधना श्रौर ग्रामगीतों के छंद लय को जीवित रखना था।

श्रीकांत शास्त्री ने इनकी अनुवाद परंपरा को श्रागे बढ़ाया श्रौर 'एगो मस्त मगहिया' के छद्म नाम से 'सिलवर पेनी' का अनुवाद 'चकमक पानी' के 'एकनिया' शीर्षक में किया। रवींद्र की कविता 'एकला चलो रे' का मगही अनुवाद 'अकेले चलू मनुश्राँ, जो कोई चले ना' विजयगीत के शीर्षक से किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपनी लेखनी विभिन्न विषयों पर दौड़ाई श्रौर विभिन्न रसों का उद्रेक विभिन्न छंदों में किया। परंतु अभी तक इनकी भी कोई कवितापुस्तक प्रकाशित नहीं हुई श्रौर न 'मगही' में ही छपी। इनके तीन गीत बिहार सरकार के पाक्षिक पत्र 'श्रमिक' में मुद्रित हुए।

हिंदी के कतिपय ख्यातिलब्ध कवियों ने अपनी लेखनी मगही की श्रोर मोड़ी। इन कवियों के दो वर्ग किए जा सकते हैं। एक वर्ग में वे हैं, जो खड़ी बोली की कविताश्रों के छंद श्रौर लय में मगही भाषा की कविताएँ लिखते हैं, श्रौर दूसरे वे, जो लोकगीतों के छंद लय में लिखते या नए छंद गढ़ते हैं। प्रथम वर्ग के कवियों की रचनाश्रों में खड़ी बोली की कुछ शब्दावली का मोह है, जिससे शुद्ध मगही की लोच श्रौर कोमलता में कसर रह जाती है। इस वर्ग में हैं श्री रामगोपाल 'रुद्र', गोवर्धनप्रसाद 'सदय', जगदीशनारायण चौबे, इत्यादि। 'रुद्र' जी के गीतों तथा उनकी अन्य कविताश्रों में एक पीड़ित श्रात्मा की सोई कराह है।

'सदय' जी की कविताएँ गीतात्मक नहीं होतीं। वे आज के अंधकार में आनेवाले प्रकाश की तस्वीर दिखलाते हैं :

कोनो साथ न संगी साथी, बुझल हाथ के अपने बाती।
ई रतिया पर भी दिनवाँ के, छूट चुकल है तीर देखइयो ॥
आव कुछ तस्वीर देखइयो ॥

जगदीशनारायण चौबे की 'गाँव किरिंग के' में कल्पना की उड़ान तथा गीतात्मक और सहज सरलता है। ये प्रकृति के मानवीकरण या उसे मानवीय दशाओं में उपस्थित करते हैं। उन्होंने प्रभात के क्रमशः आगमन का सुंदर चित्र खींचा है :

झिलमिल जोत लहर पर बिछुलल,
अगुआनी में आज कदम दल,
झाँक रहल घूघाँ उघार के।
हौले हौले परे लगल अब, सगरो पाँव किरिंग के ॥

दूसरे वर्ग के कवियों में हम लोकगीतों की ही सरलता, कोमलता और भावुकता पाते हैं और लोकगीतों के ही छंद और लय भी। इस वर्ग में रामनरेश पाठक, रामचंद्र शर्मा 'किशोर' और हरिश्चंद्र प्रियदर्शी का नाम उल्लेखनीय है। इनमें रामनरेश पाठक मूलतः गीतिकवि हैं। इनके गीतों में मगही एवं मगही जनपदों की आत्मा कूकती है। उपमा उपमानों की स्वच्छ मौलिकता, प्रकृतिवर्णन और जनजीवन से सहानुभूति इनके गीतों की विशेषता है। प्रकृतिवर्णन के समय ये मात्र लता वृक्षों, कली पुष्पों, खेत खलिहानों और पशु पक्षियों के नैसर्गिक सौंदर्य तक ही अपनी दृष्टि सीमित नहीं रखते, वरन् मानव को भी प्राकृतिक लैंडस्केप का एक आवश्यक अंग मानते हैं और कभी कभी तो प्रकृतिवर्णन करते करते मानव मन के अंतस् की गहराई में डूब जाते हैं।

'अगहन के भोर' में "अमवाँ महुअआ के डहुँगी से कयलकइ चिरई चुरगुन्नी अनोर" गाते गाते गाने लगते हैं :

सिसकइ उ डोली में बइठल कनइया, आगे चलल जाइ कहार।
छुटलइ लड़कइयाँ के सखिया सहेलर, छुटलइ जे बाबा दुआर।
रुपवा में गुनवा में गइया लोभेलइ, कलकइ बिदइया इ मोर,
हो मइया, उतरल इ अगहन के भोर ॥

रामचंद्र शर्मा 'किशोर' के गीतों में लोकगीतों का वातावरण छाया रहता है। 'नैनवाँ के बान गोरी मोरा पर चलावऽ न', 'जबसे जाके तूँ बइठले परदेसवा, सजन मोरा जिया ना लगे', इत्यादि आरंभिक पंक्तियों से ही स्पष्ट है, कि ये प्रेमी

प्रेमिका की मनोदशाओं को सीधे सादे ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हैं। इससे इनकी कविताएँ साधारण जनसमुदाय के हृदय में सीधे उतर जाती हैं।

हरिश्चंद्र प्रियदर्शी भी गीतिकवियों की पंक्ति के कवि हैं और पर्याप्त साहित्यिक कौशलपूर्वक विरहिणी की मनोदशाओं को चित्रित करते हैं :

गते गते बिरहा के पेंसल अगिनियाँ।
करिया बदरिया में जइसे चँदनियाँ।
बिसरे बिसारल न बतिया सुरतिया, कइसे के सुधि बिसराऊँ हे।
कहमा पिया केरा गाऊँ हे ॥

इनके अतिरिक्त श्री रामनंदन, सुरेश दुबे 'सरस', सुरेंद्रप्रसाद 'तरुण', राजेंद्रकुमार 'यौधेय', योगेश्वरप्रसाद सिंह 'योगेश', इत्यादि मगही साहित्य के अपने कवि हैं। 'सरस' के गीतों के रस का स्रोत शुद्ध ग्राम्य प्रकृति और जनजीवन के संमिलित सारे चित्रों में व्याप्त है। कजरी, झूमर, सपना, मधुमास इनकी प्रमुख कविताएँ हैं। झूमर में ये गाते हैं :

बाँधई भउजिया ननदिया के जूड़ा।
उखड़ी समाठ साथ कूटहइ चूड़ा।
धान देख धनिया के उमड़ल जवनियाँ जिया हुलसई।
हुलसई टिकुलिया के चान, जिया हुलसई।

राजेंद्रकुमार 'यौधेय' पर जैसे छायावादी भावधारा हावी हो गई है और वे सूक्ष्म भावों को व्यक्त करना चाहते हैं। इनके छंद और लय खड़ी बोली के भी हैं, और लोकगीतों के भी। इस गीत में छायावादी प्रकृति परिलक्षित होती है :

सखि, रात छितिज के तीर गेली हल हम फूल लावे।
ढुलुआ लगउली छितिज के बन, कदम फूल से भरलइ सरितन।
सखी, लोढ़े लगली निज चीर, गेली हल हम फूल लावे।

'बजरइतिन' के गीत, 'यौवन के गीत यौवनवती के प्रति' और 'बरखा के गीत' इनकी कविताएँ हैं।

श्यामनंदन शास्त्री के 'आवास' में रहस्यवाद का आभास मिलता है, जब वे कहते हैं :

तनल रह हइ जब नील वितान, करऽ हइ जब तारा संकेत।
बिछा रक्खऽ हई चंदा जोत, चमकऽ हई चाँदी बनके रेत।
बहऽ हइ जब अलस बतास, पाइलिक हम ओकर आभास।

इनके अतिरिक्त लक्ष्मणप्रसाद 'दीन' ने 'जिनगी के ठेकान का' में स्वच्छंद छंद का उपयोग किया है। सुरेंद्रप्रसाद 'तरुण' और सरयूप्रसाद 'करुण' की

कविताओं में प्रकृतिवर्णन अच्छा हुआ है। इनके अतिरिक्त कुमारी राधा, यमुनाप्रसाद शर्मा 'ज्वाला', कामेश्वरप्रसाद 'नयन', पार्वतीरानी सिन्हा, धर्मशीला देवी 'शशिकला' इत्यादि मगही कवि भी काव्यसाधना में लीन हैं। 'योगेश' जी की हास्य-व्यंग्य-पूर्ण कविताएँ 'फरह उठेलूँ कि', 'हम लीडर ही, हम नेता ही', 'अप्पन कि कहऊँ कहानी हम' हँसाते हँसाते गहरी चोट कर जाती हैं। आखिरी कविता में आज की बेकारी और शिक्षापद्धति पर कैसी चुटकी है :

हम डगरा के बेगन भेलूँ, पढ़ लिख के बुद्धू बन गेलूँ।
बहतोनी देकर के भी तो, हाँकलूँ कोल्हू के घानी हम।
अप्पन कि कहेऊँ कहानी हम॥

मगही की गतिविधि उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होगी। इनके अलावा आकाशवाणी के पटना केंद्र से मगही एकांकी, संगीत रूपक, नाटक तथा कविताएँ बराबर प्रसारित की जाती हैं। इन नाटकों तथा एकांकियों में श्रीकांत शास्त्री 'सदय', जगदीशप्रसाद यादव आदि की लिखित रचनाएँ काफी प्रशंसित एवं जनप्रिय हुई हैं।

हस्तलिखित नाटकों, रूपकों और एकांकियों को रंगमंचित करने का आयोजन गाँवों में भी होता रहता है, परंतु उनका क्रमबद्ध विवरण उपलब्ध नहीं है।

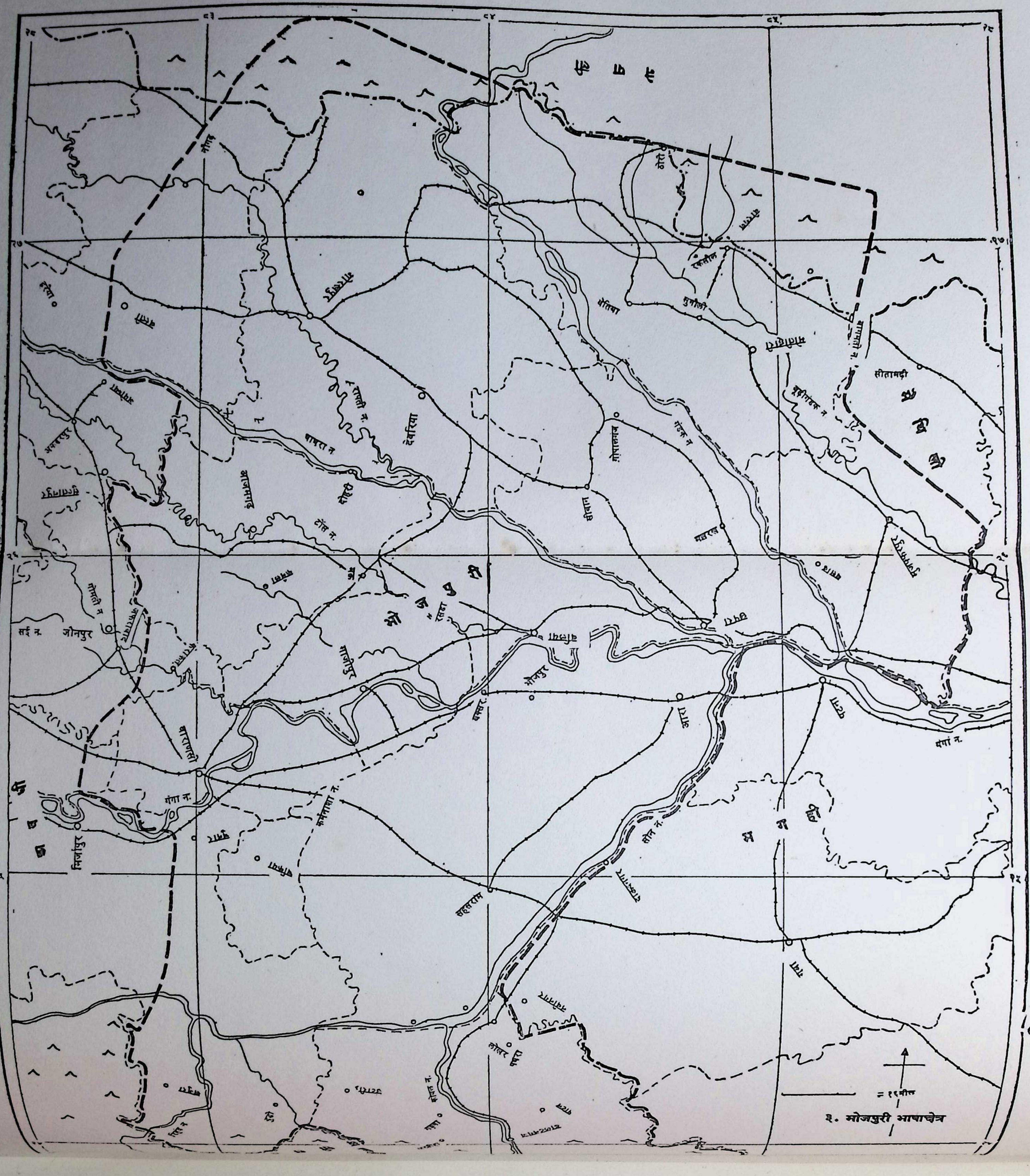
इस प्रकार हम देखते हैं कि मगही साहित्य का गद्य पद्य अत्र एक सुव्यवस्थित ढंग से विकसित हो रहा है और समय की गति के साथ इसके विकास की गति भी तेज होती जा रही है। 'बिहार मगही मंडल' की ओर से तथा इसके प्रोत्साहन से निकट भविष्य में कुछ मगही रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित होनेवाली हैं।

आकाशवाणी तथा सभाओं और गोष्ठियों के लोकभाषा-कवि-संमेलनों में पठित कविताओं से भी मगही काव्य का सुस्पष्ट दिग्भास मिलता है। हिंदी तथा इतर भाषाओं के साहित्यों की शिल्पगत, तथ्यगत और विधागत विभिन्न प्रवृत्तियों एवं प्रयोगों का परिचय भी मिलता है। प्रयोग की दृष्टि से श्रीकांत शास्त्री की 'बरबिका' एवं 'जतकट्टी' कविताएँ सुंदर हैं।

३. भोजपुरी लोकसाहित्य

डा० कृष्णदेव उपाध्याय

३—भोजपुरी



२. भोजपुरी भाषाक्षेत्र

प्रथम अध्याय

अवतरणिका

१. भोजपुरी भाषा

भारतीय आर्यभाषाओं में हिंदी का प्रमुख स्थान है। भोजपुरी इसी की एक प्रधान बोली है। भाषाशास्त्र के विद्वानों ने भारतीय भाषाओं का अनुशीलन कर इन्हें अंतरंग तथा बहिरंग दो भागों में विभक्त किया गया है। अंतरंग भाषाओं की दो प्रधान शाखाएँ हैं—(१) पश्चिमी शाखा और (२) उत्तरी शाखा। पश्चिमी शाखा के अंतर्गत पश्चिमी हिंदी (ब्रज), राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी हैं। उत्तरी शाखा में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी भाषाएँ परिगणित हैं। बहिरंग भाषाओं की तीन प्रधान शाखाएँ हैं—(१) उत्तरपश्चिमी शाखा, (२) दक्षिणी शाखा और (३) पूर्वी शाखा। इस पूर्वी शाखा के अंतर्गत उड़िया, बँगला, असमिया और बिहारी भाषाएँ आती हैं। बिहारी के अंतर्गत तीन भाषाएँ प्रसिद्ध हैं—(१) मैथिली, (२) मगही, (३) भोजपुरी। इस प्रकार भोजपुरी बहिरंग भाषाओं की पूर्वी शाखा के अंतर्गत बिहारी भाषा की एक भाषा है, जो क्षेत्र-विस्तार तथा इसके बोलनेवालों की संख्या के आधार पर अपनी बहिनों—मैथिली एवं मगही—में सबसे बड़ी है।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने मागध भाषाओं का वर्गीकरण तीन भागों में किया है।[1] उनके मतानुसार भोजपुरी का संबंध पश्चिमी मागध समुदाय से है। मैथिली और मगही का संबंध केंद्रीय मागध से तथा बँगला, असमिया और उड़िया का पूर्वी मागध समुदाय से है।

(१) नामकरण—इस भाषा का नामकरण बिहार प्रदेश के शाहाबाद जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के आधार पर हुआ है। प्राचीन काल में भोजपुर उज्जैन के समृद्धशाली राज्य की राजधानी थी, जिनके आधुनिक प्रतिनिधि डुमराँव के राजा हैं। भोजपुर अब अपनी प्राचीन समृद्धि खो चुका है। वह शाहाबाद जिले के बक्सर सबडिवीजन में गंगा के निकट डुमराँव से दो तीन मील उत्तर 'नवका भोजपुर' तथा 'पुरनका भोजपुर' इन दो छोटे छोटे गाँवों के रूप में अवस्थित है।

[1] डा० चाटुर्ज्या—ओ० डे० वे० ले०, भाग १

इसी प्राचीन भोजपुर नगर के आसपास जो भाषा बोली जाती थी, उसका नाम 'भोजपुरी' पड़ गया। डा० सुनीतिकुमार चटुर्ज्या ने 'भोजपुरिया' नाम से इसका उल्लेख किया है, परंतु इसका प्रसिद्ध तथा जनता में प्रचलित नाम 'भोजपुरी' ही है। भोजपुरी प्रदेश में निवास करनेवाले लोगों को 'भोजपुरिया' कहते हैं, जैसा निम्नांकित पद्य में स्पष्ट उल्लिखित है[1] :

भागलपुर के भगेलुआ भइया, कहलगाँव के ठग्ग।
पटना के देवालिया, तीनू नामजद्द।
सुनि पावे भोजपुरिया, त तुरे तीनों के रग्ग॥

(२) **सीमा**—भोजपुरी भाषाक्षेत्र लगभग पचास हजार वर्गमील में फैला हुआ है। इसमें उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर (चुनार), बनारस, गाजीपुर, बलिया, आजमगढ़, जौनपुर (केराकेत), गोरखपुर, देवरिया तथा बस्ती जिले संमिलित हैं। बिहार के आरा, छपरा, चंपारन, पलामू तथा राँची के जिले इसमें आते हैं। प्रिंसिपल मनोरंजनप्रसाद ने इसका विस्तार उत्तरप्रदेश तथा बिहार के चौदह जिलों में बतलाया है[2] :

आरे आवऽ छपरा आवऽ, बलिया मोतीहारी आवऽ।
राँची अउर पलामू आवऽ, गोरखपूर देवरिया आवऽ।
गाजीपुर, आजमगढ़ आवऽ, बस्ती अउरी जौनपुर आवऽ।
मिर्जापुर, बनारस आवऽ, सोना के कटोरी में,
दूध भात लेले आवऽ, बबुआ के मुँह में घुटुक॥

भोजपुरी की सीमा का निर्धारण इस प्रकार से किया जा सकता है—पूर्व में गंगा नदी से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मैथिली है। फिर इस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमांत रेखा दक्षिणपूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर उत्तर घूमकर संपूर्ण राँची पठार और पलामू एवं राँची जिले के अधिकांश भागों में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उड़िया भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा भूतपूर्व जसपुर रियासत के मध्य से होकर राँची पठार के सरहद के साथ साथ दक्षिण की ओर जाती है, जहाँ भूतपूर्व सरगुजा और जसपुर स्टेट की छत्तीसगढ़ी भाषा से इसका

[1] डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिंदीप्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५८

[2] भोजपुरी, वर्ष १, अंक ४, पृ० २१

विभेद होता है। पलामू के पश्चिमी प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले के दक्षिणी भाग में फैलकर गंगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गंगा के बहाव के साथ साथ पूर्व की ओर गंगा पारकर जाती है। इस प्रकार मिर्जापुर जिले के पूर्वी गांगेय प्रदेश में ही इसका प्रचार है।

गंगा पार करके भोजपुरी की सीमा बनारस जिले की पश्चिमी सीमा के साथ साथ जौनपुर जिले के पूर्वी और आजमगढ़ जिले के पश्चिमी भाग के साथ फैजाबाद जिले के आर पार फैल जाती है। टाँडा तहसील में इसका विस्तार सरयू नदी के साथ साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे की श्रेणियों तक बस्ती जिले को अपने में संमिलित कर लेता है। इस विस्तृत भूभाग के अतिरिक्त भोजपुरी तराई की थारू जाति में—जो गोरखपुर और चंपारन जिलों में बसती है—मातृभाषा के रूप में व्यवहृत होती है[1]।

(३) जनसंख्या—भोजपुरी भाषा उत्तरप्रदेश के नौ पूर्वी जिलों—बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, बस्ती तथा आजमगढ़—में बोली जाती है। बिहार राज्य के शाहाबाद, सारन, चंपारन, पलामू तथा राँची—इन पाँच जिलों में इसका व्यवहार मातृभाषा के रूप में किया जाता है। इस प्रकार उत्तरप्रदेश तथा बिहार के इन चौदह जिलों के निवासियों की मातृभाषा भोजपुरी है।

सन् १९५१ ई० की जनगणना के अधिकारियों ने उत्तरप्रदेश के उपर्युक्त नौ जिलों के निवासियों की मातृभाषा को हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू इन तीन भागों में विभक्त किया है[1]। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदुस्तानी कोई भाषा नहीं है। गाँवों में निवास करनेवाले मुसलमान उर्दू नहीं बोलते, प्रत्युत् इन जिलों में बोली जानेवाली भाषा—भोजपुरी—का ही व्यवहार करते हैं। इन जिलों में हिंदी अर्थात् खड़ीबोली नहीं बोली जाती, बल्कि स्थानीय भाषा—भोजपुरी—ही व्यवहृत होती है। अतः यहाँ पर भोजपुरी भाषाभाषियों का जो आँकड़ा प्रस्तुत किया जा रहा है, वह हिंदी, हिंदुस्तानी तथा उर्दू बोलनेवालों की संख्या का योग है।

बनारस डिवीजन के पाँच जिलों—बनारस, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, मिर्जापुर—में हिंदी, हिंदुस्तानी तथा उर्दू बोलनेवालों की संमिलित संख्या है—

हिंदी	—	६१,२३,७०४
हिंदुस्तानी	—	४,४०,७६८
उर्दू	—	२,४४,५०२
		६८,०८,९७४

[1] सेंसस आव इंडिया, पेपर नं० १, १९५४, पृ० ३८ (लैंग्वेजेज—१९५१ सेंसस)

गोरखपुर डिवीजन के चार जिलों (गोरखपुर, देवरिया, बस्ती और आजमगढ़) के भोजपुरी भाषियों की संमिलित संख्या है—

हिंदी	—	८३,३३,७६३
हिंदुस्तानी	—	२,२२,७३०
उर्दू	—	२,६१,७८७
		८८,१८,२८०

बनारस तथा गोरखपुर डिवीजन के भोजपुरी भाषियों का कुल योग है—

६८,०८,६७४
८८,१८,२८०
१,५६,२७,२५४

बिहार राज्य के निम्नोक्त पाँच जिलों में भोजपुरी भाषियों की संख्या इस प्रकार है[1]—

१ शाहाबाद	२,६८८,४४०
२ सारन	३,१५५,१४४
३ चंपारन	२,५१५,३४३
४ राँची	१,८६१,२०७
५ पलामू	६८५,७६७
	१,१२,०५,६०१

उत्तर प्रदेश के नौ जिलों के तथा बिहार के शाहाबाद और सारन जिलों के लाखों व्यक्ति बंगाल के शहरों तथा आसाम के चाय बगानों में कुली का काम करते हैं। इनकी मातृभाषा भोजपुरी है। सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार इन दोनों प्रांतों में उनकी संख्या निम्नांकित है[2]—

बंगाल	१७,७४,७८६
आसाम	१,३५,६८८
	१९,१०,४७४

इस प्रकार भोजपुरी भाषियों की कुल संख्या है—

उत्तर प्रदेश तथा बिहार	२,६८,३३,१५५
आसाम तथा बंगाल	१९,१०,४७४
समस्त योग	२,८७,४३,६२९

[1] सेंसस आव इंडिया, पेपर नं० १ (१९५४), पृ० ४

[2] वही, पृ० ४

बहराइच तथा गोंडा जिलों में निवास करनेवाली थारू नामक जाति के लोग भोजपुरी की उपबोली 'थरुई' बोलते हैं। नैनीताल जिले के रुद्रपुर नामक स्थान के आसपास भोजपुरी भाषियों के अनेक गाँव बस गए हैं। वे वहाँ खेती करते हैं। इनकी संख्या के आँकड़े प्राप्त नहीं हो सके। अतः इनकी संख्या उपर्युक्त 'समस्त योग' में संमिलित नहीं है।

२. उपलब्ध साहित्य

भोजपुरी का मौखिक साहित्य लिखित साहित्य से परिमाण में कई गुना अधिक है। इसमें मौखिक साहित्य का जो संकलन हुआ है, वह विशाल समुद्र की एक बूँद के समान है। अतएव विशालता एवं महत्व की दृष्टि से इसके मौखिक साहित्य का विवेचन पहिले करना समुचित होगा। पश्चात् इसके लिखित साहित्य का परिचय पाठकों को दिया जायगा[1]।

गद्य पद्य में प्राप्त भोजपुरी लोकसाहित्य को प्रधानतः निम्नोक्त भागों में विभक्त किया जा सकता है :

१ गद्य—(१) लोककथा, (२) लोकोक्ति (मुहावरे)।

२ पद्य—(१) लोकगाथा, (२) लोकगीत, (३) मिश्रित।

इनके अतिरिक्त मुद्रित साहित्य में कविता, गद्य, पद्य तथा नाटक मिलते हैं।

मिश्रित विभाग के अंतर्गत पहेलियाँ, सूक्तियाँ, सुभाषित, अर्थहीन गीत आदि आते हैं।

[1] भोजपुरी भाषा के विशेष विवेचन के लिये देखिए :
(१) डा० ग्रियर्सन : लि० स० इ०, भाग ५, खंड २, पृ० ४०–५४ तथा १८६–३२५
(२) डा० उदयनारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
(३) डा० उदयनारायण तिवारी : ओरिजिन ऐंड डेवेलपमेंट आव भोजपुरी लैंग्वेज (अप्रकाशित)।

द्वितीय अध्याय

गद्य

१. लोककथाएँ

(१) वर्गीकरण—भोजपुरी में लोककथाओं का अनंत भांडार भरा पड़ा है। बूढ़ी दादियाँ बच्चों को सुलाते समय सुंदर कहानियाँ सुनाती हैं। गाँव के बूढ़े चौपाल में बैठकर मनोरंजक कथाएँ कहते हैं। जाड़े के दिनों में किसी विशिष्ट व्यक्ति के द्वार पर कउड़ा (तापने के लिये आग) के चारों ओर बैठकर ग्रामीण जन लोककथाओं द्वारा अपना मनोरंजन किया करते हैं।

कथाओं की परंपरा बड़ी प्राचीन है। वेदों में अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं, जिनमें कथा का बीज पाया जाता है। संस्कृत में कथासाहित्य का अपना पृथक् इतिहास है जिसमें बृहत्कथा, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, शुकसप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका आदि संमिलित हैं।

भोजपुरी में जो लोककथाएँ उपलब्ध होती हैं, उनको छह श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) उपदेश कथा
(२) व्रतकथा
(३) प्रेमकथा
(४) मनोरंजक कथा
(५) सामाजिक कथा
(६) पौराणिक कथा

(२) प्रमुख प्रवृत्तियाँ—उपदेश की प्रवृत्ति को लोककथाओं की आत्मा समझना चाहिए। पंचतंत्र तथा हितोपदेश की कथाएँ इसी कोटि में आती हैं। हितोपदेश के रचयिता ने कहा है—'कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते'। 'तिरिया चरित्तर'[1] नामक कथा में स्त्रियों के मायावी चरित्र की ओर संकेत किया गया है। 'मानिकचंद्र' शीर्षक कथा में भाग्य की प्रबलता का उल्लेख है।

हमारे धार्मिक क्रियाकलापों में व्रतों का महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्रियाँ अनंत चतुर्दशी, बहुरा तथा पिंड़िया[1] आदि व्रतों के अवसर पर कथाएँ सुनती हैं।

[1] लेखक का निजी संग्रह

कुँवारी लड़कियाँ प्रातःकाल, जब तक पिंड़िया की कथा नहीं सुन लेतीं, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करतीं। सत्यनारायण तथा त्रिलोकीनाथ की कथा प्रत्येक मांगलिक अवसर पर कही जाती है। इसके अतिरिक्त जीवित्पुत्रिका (जिउतिया), करवा चौथ और गनगौर आदि व्रतों के समय स्त्रियाँ कथाएँ जरूर सुनती हैं।

तीसरी प्रकार की कथाएँ प्रेमात्मक हैं जिनमें माता का पुत्र के प्रति प्रेम, पत्नी का पति से प्रेम, बहिन का भ्रातृप्रेम प्रदर्शित है। इनकी झाँकी इन कथाओं में देखने को मिलती है। एक भोजपुरी कथा में किसी स्त्री द्वारा कुष्ट रोग से पीड़ित पति की अटूट सेवा का उल्लेख मिलता है[1]। मानिकचंद्र की कथा में स्त्री का आदर्श पति-प्रेम दृष्टिगोचर होता है।

कुछ कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन होता है। ऐसी कथाओं को बालकगण बड़े चाव से सुनते हैं। 'ढेला और पत्ती'[1] की कहानी ऐसी ही है। बालकों की कथाएँ अधिकांश इसी कोटि में आती हैं। उपर्युक्त कहानी का अंत इस प्रकार से हुआ है :

ढेला गइले भिहिलाई।
पतई गइले उड़ियाई।
अवरू कथा गइले ओराई।

सामाजिक कथाओं में समाज का वर्णन पाया जाता है। लोकसाहित्य में ऐसी बहुत सी कहानियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें किसी राजा के न्याय की कथा, अर्थाभाव के कारण जनता को कष्ट, बहुविवाह तथा बालविवाह का उल्लेख पाया जाता है। 'लछटकही' शीर्षक कथा में कन्याविक्रय का वर्णन हुआ है।

लोकसाहित्य में पौराणिक कथाओं का भी अभाव नहीं है। शिवि, दधीचि, सत्य हरिश्चंद्र तथा नलदमयंती की कथा को लोग बड़े चाव से सुनते हैं। गोपीचंद्र, भरथरी तथा श्रवणकुमार की कथा भी प्रसिद्ध है। सारंगा सदावृज की कहानी बहुत लोकप्रिय है।

डा० सेन[2] के मतानुसार रूपकथाएँ वे हैं, जिनमें किसी अमानवीय, अस्वाभाविक तथा अद्भुत वस्तु का वर्णन हो। माता अपने बच्चे को पालने में झुलाते समय जो कथाएँ कहती है, वे इसी अंतिम श्रेणी में आती हैं।

शैली—लोककथाओं की शैली बड़ी सीधी सादी है। साधारण वाक्यों को छोड़कर इनमें संयुक्त तथा मिश्रित वाक्यों का प्रायः अभाव पाया जाता है।

१ लेखक का निजी सग्रह।
२ फोक लिटरेचर आव बंगाल ।

कथाकार के संमुख अनायास जो शब्द उपस्थित हो जाते हैं, उन्हीं का प्रयोग वह इन कथाओं में करता है। इनकी कथावस्तु जितनी स्वाभाविक है, भाषा भी उतनी ही अकृत्रिम है।

लोककथाएँ प्रायः गद्य में होती हैं, परंतु किन्हीं में बीच बीच में पद्यों का भी प्रयोग हुआ है, अर्थात् चंपू शैली भी है। कुछ कहानियों में पद्यों की संख्या बहुत अधिक है। 'मानिकचंद्र' तथा 'लछटकही' की कथाओं में हृदय के मार्मिक उद्गार पद्य के रूप में प्रकट हुए हैं।

(३) उदाहरण—

फरगुद्दी (गौरैया) की कथा—एगो फरगुद्दी रहे। ऊ एने ओने घूमत एगो चना पवलस। चनवा के चक्की में दरत ओकर एक दाल खुँटवा में चलि गइल। ऊ जाके बढ़ई से कहलस—

बढ़ई बढ़ई खूँटा चीर। खूँटा में मोर दाल बा।
का खाईं का पिईं, का ले परदेस जाईं।

बढ़ई कहलक—'हाँ, हम एगो दाल खातिर खूँटा चीरे जाईं ?'

फरगुद्दी राजा के दरबार में अरजी लगवलस—

राजा राजा बढ़ई डंडऽ। बढ़ई न खूँटा चीरे।
खूँटा में मोर दाल बा। का खाईं का पिईं। का ले परदेस जाईं।

रजवा कहलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर बढ़ई के डंडब ?'

फरगुद्दी बेचारी रानी के पास पहुँचल, अउर बिनती कइलस—

रानी रानी राजा बुझाव। राजा न बढ़ई डंडे।
बढ़ई न खूँटा चीरे। खूँटा में मोर दाल बा।
का खाईं का पिईं। का ले परदेस जाईं।

रनियो ना मनलस, अउ कहलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर राजा के बुझावे जाईं ?

फरगुद्दी बेचारी साँप के पास पहुँचल अउ कहलस—

साँप साँप रानी डँसऽ। रानी न राजा बुझावे।
राजा न बढ़ई डंडे। बढ़ई न खूँटा चीरै। खूँटा में मोर दाल बा।

साँपो ना मनलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर रानी के डँसे जाईं ?

फरगुद्दी बेचारी लाठी के पास जाइके कहलस—

लाठी लाठी साँप मार। साँप न रानी डँसे। रानी न राजा बुझावै।
राजा न बढ़ई डंडे। बढ़ई न खूँटा चीरे। खूँटा में मोर दाल बा।

उहो नकरलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर साँप के मारे जाईं ?

फरगुद्दी बेचारी आग के पास पहुँचिके कहलस—

आग आग लाठी जलाव । लाठी न साँप मारे । साँप न रानी डँसे ।
रानी न राजा बुझावै । राजा न बढ़ई डंडे । बढ़ई न खूँटा चीरे ।
खूँटा में मोर दाल बा । का खाईं० ।

उहो ना तयार भइल अउ कहलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर लाठी जरावे जाईं ?

फरगुद्दी बेचारी समुंदर के पास पहुँचल अउ कहलस—

समुंदर समुंदर आग बुझावऽ । आग न लाठी जारे ।
लाठी न साँप मारे । साँप न रानी डँसे ।
रानी न राजा बुझावे । राजा न बढ़ई डंडे । बढ़ई न खूँटा चीरे ।
खूँटा में मोर दाल बा । का खाईं ० ।

उहो ना सकरले अउ कहलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर आग बुझावे जाईं ?

फरगुद्दी बेचारीं गइल हाथी के भिरे अउ कहलस—

हाथीं हाथी समुंदर सोख । समुंदर न आग बुझावे ।
आग न लाठी जारे । लाठी न साँप मारे ।
साँप न रानी डँसे । रानी न राजा बुझावे ।
राजा न बढ़ई डंडे । बढ़ई न खूँटा चीरे । खूँटा में मोर दाल बा ।

उहो न तयार भइल अउ कहलस—हाँ, हम एगो दाल खातिर समुंदर सोखे जाइब ?

फरगुद्दी बेचारी निरास होके चिउँटी के पास पहुँचल अउ कहलस—

चींटी चींटी हाथी मार । हाथी न समुंदर सोखे । समुंदर न आग बुझावे ।
आग न लाठी जारे । लाठी न साँप मारे । साँप न रानी न डँसे ।
रानी न राजा बुझावे । राजा न बढ़ई डंडे । बढ़ई न खूँटा चीरे ।
खूँटे में मोर दाल बा । का खाईं० ।

चिउँटी तयार भइल अउ कहलस—तुहूँ छोटी चाक के चिरई, हमहूँ छोटी चाक के चिउँटी । चलऽ हम तोर काम करबि ।

चिउँटी के लिवाइके फरगुद्दी चलल । हाथी दूरे से देखलस अउ सोचलस—ई चिउँटी हमरा सूँड में पइसल, त बिना मउअते मुए के परी । ऊ चिल्लाइ के कहलस—

हम्में मारे ओरे जनि कोई । हम समुंदर सोखबि लोई ।

फरगुद्दी के साथे इहास पारिके हाथी चलल। दूरे से समुंदर देखलस, श्रउ डर के मारे काँपत चिल्लाइल—

हमें सोखे ओखे जनि कोई। हम आग बुझाइब लोई।

आगि चलल फरगुद्दी के साथे धधकत बरत। देखले दूरे से लाठी श्रउ सोचलस—ई त हमे जारि ओरि के छोड़ी। ऊ चिल्लाइके कहलस—

हमें जारे ओरे जनि कोई। हम साँप मारबि लोई॥

साँप चलल फुफुकारत फरगुद्दी के साथ। रानी दूरे से देखलस। ऊ थर थर काँपत बोललस—

हमें डँसे ओसे जनि कोई। हम राजा बुझाइब लोई॥

रानो चलल फरगुद्दी के साथे लाल लाल आँखि कइले। राजा दूरे से देखलस। सोचलस रानी न जाने का करी? डेराइके कहलस—

हमें बुझावे उझावे जनि कोई। हम बढ़ई डंडबि लोई॥

राजा चलल बढ़ई के डंडे। बढ़ई देखलस राजा के खुनुसाइल, डरिके कहलस—

हमें डंडे ओंडे जनि कोई। हम खूँटा चीरबि लोई॥

बढ़ई जाइके खूँटा चीरि देहलस। दाल निकरि आइल। फरगुद्दी ओके लेके परदेस चलि गइल।

जइसे ओकर दिन लौटल, तइसे कहवइया सुनवइया सबके दिन लौटे।

(ख) मानिकचंद—एगो राजा रहले। उनुकरा एगो लड़िका रहे। ओकर नाँव रहल मानिकचंद। राजा ओकर के बड़ा मानसु। बड़ा भइला पर मानिकचंद के बिआह एगो राजा के लड़की से भइल। मानिकचंद पर बिपति परल। उनुकर मेहरारू अपना नइहर चलि गइली। एक दिन मानिकचंद भूलल भटकल एगो सहर में जहाँ उनुकर ससुराल रहे, उहाँ पहुँचले। ओहिजा उ भनसारि झोंके के काम करे लगले। दूबर पातर भइला से लोग उनुकुरा के दुबरा कहे लागल। जब केहू ओहिजा भुजुना भुजावे खातिर आवे, त मानिकचंद कहे लागसु कि—

अन्न बिना हम दुबरा भइली,
दुबरा परल मोर नाँव।
एहि नगरी में पैर पूजवलीं,
मानिकचनर मोर नाँव॥

भोजपुरी की लोककथाओं का संकलन अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यद्यपि अनेक विद्वानों ने इनका संग्रह किया है।

(२) लोकोक्तियाँ—

ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, सूक्तियों आदि का प्रयोग करती है। इससे उनकी वचनचातुरी का पता चलता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से किसी उक्ति में शक्ति आती है और श्रोताओं के ऊपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मुहावरों के द्वारा भाषा में चुस्ती आ जाती है।

लोकसाहित्य में लोकोक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। भोजपुरी लोकोक्तियों का अभी बहुत कम प्रकाशन हुआ है। कुछ वर्ष हुए डा० उदयनारायण तिवारी ने इन लोकोक्तियों को 'हिंदुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित किया था। बिहार के श्री सत्यदेव ओझा भोजपुरी लोकोक्तियों पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं, परंतु उनका संकलन अभी प्रकाश में नहीं आया है। सन् १८८६ ई० में फेलन ने 'डिक्शनरी आव हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स' नामक अपनी पुस्तक में मारवाड़ी, पंजाबी, मैथिली तथा भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह किया था।

भोजपुरी लोकोक्तियों को प्रधानतया चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) स्थान संबंधी लोकोक्तियाँ
(२) जाति संबंधी लोकोक्तियाँ
(३) प्रकृति तथा कृषि संबंधी लोकोक्तियाँ
(४) पशु पक्षी संबंधी लोकोक्तियाँ

(१) स्थान संबंधी लोकोक्तियाँ वे हैं, जो किसी देश, प्रदेश, शहर आदि की विशेषताओं को बतलाती हैं। काशी के विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है[1]—

राँड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी।
इनसे बचे तो सेवे कासी॥

कलकत्ते के संबंध में कहावत है[1]

घोड़ा गाड़ी, नोना पानी, और राँड़ के धक्का।
ए तीनू से बचत रहे, तब केलि करे कलकत्ता॥

(२) जाति संबंधी लोकोक्तियों में भारत की विभिन्न जातियों की सामाजिक विशेषताओं का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मणों के संबंध में कहावत है[1]—

बाभन, कूकुर, नाऊ।
आपन जाति देखि गुर्राऊ॥

[1] लेखक का निजी संग्रह।

भोजनभट्ट ब्राह्मणों के विषय में दूसरी उक्ति सुनिए—

आनकर आटा, आनकर घीव।
चाबस चाबस, बाबा जीव॥

इसी प्रकार बनियों के विषय में कहा जाता है—

आमी, नीबू, बानिया,
गारै ते रस देय॥

(३) प्रकृति—बिजली, आँधी, पानी, आकाश आदि—तथा कृषि के संबंध में जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे ग्रामीण जनता की निरीक्षण शक्ति का पता चलता है। ये लोकोक्तियाँ घाघ और भड्डुरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। ईख के खेत को कितना जोतना चाहिए, इसके विषय में कहा जाता है[1]—

तीन कियारी तेरह गोड़।
तब देखऽ ऊखी के पोर॥

(४) पशु पक्षी संबंधी कहावतों में उनकी पहचान तथा उपयोगिता का उल्लेख होता है। बूढ़ा बैल काम नहीं कर सकता इससे संबंधित उक्ति यह है[1]—

थाकल बैल, गोन भइल भारी।
अब का लदबे ए बेवपारी॥

प्रकीर्ण लोकोक्तियों में गृहस्थ जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। पर पुरुष के संबंध में किसी सती स्त्री की यह उक्ति कितनी सटीक है[1]—

आगे कूबर, पाछे कूबर।
हमरा भतार ले बाड़ा सूघर?॥

लोकोक्तियों की यह विशेषता है कि इनमें समास शैली द्वारा गागर में सागर भरने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणार्थ 'चार कवर भीतर, तब देवता पीतर'[1]। इनकी दूसरी विशेषता अनुभूति और निरीक्षण है। कृषि संबंधी उक्तियाँ ऐसी ही हैं। इनकी तीसरी तथा अंतिम विशेषता सरलता है। लोकोक्तियाँ सरल भाषा में निबद्ध हैं, जिससे सुनते ही इनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। ये गद्य तथा पद्य दोनों में उपलब्ध होती हैं।

(३) मुहावरे—

भोजपुरी मुहावरों में सामाजिक प्रथाओं, विश्वासों तथा परंपराओं का उल्लेख हुआ है। इतिहास की अनेक टूटी हुई कड़ियाँ इनकी सहायता से जोड़ी

[1] लेखक का निजी संग्रह।

जा सकती हैं। लोक संस्कृति का चित्रण भी इनमें पाया जाता है। 'छीपा (थाली) बजाना' एक भोजपुरी मुहावरा है। जिस समय किसी के घर पुत्र पैदा होता है, उस समय थाली बजाई जाती है। 'गँठजोड़ाव करना' दूसरा मुहावरा है, जिसका अर्थ है अभिन्न संबंध। भोजपुरी प्रदेश में विवाह के समय वर कन्या के कपड़ों को बाँधकर गाँठ लगा दी जाती है। इसी को 'गँठजोड़ाव' कहते हैं। विवाह के अवसर पर दोनों पक्षों के पुरोहित वर कन्या के पूर्वजों के नाम तथा गोत्रों का उच्चारण करते हैं जिसे 'गोत्रोच्चार' कहा जाता है। इसी प्रथा से संबंधित एक मुहावरा है— 'गोतरूचार कइल'—अर्थ है, बाप दादों का नाम लेकर गाली देना।

कुछ मुहावरों में पौराणिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों की ओर भी संकेत किया गया है। 'चउथी के चान देखल' मुहावरे का अभिप्राय है निर्दोष व्यक्ति के ऊपर व्यर्थ का दोषारोपण करना। भगवान् श्रीकृष्ण ने एक बार भाद्र शुक्ला चतुर्थी को चंद्रमा का दर्शन कर लिया था। फलस्वरूप उनपर मणि चुराने का दोष लगा।

मुहावरों में शकुनसंबंधी सामग्री भी उपलब्ध होती है। 'सियार फेंकरल' (गीदड़ का बोलना) और 'उरुवा बोलल' (उल्लू का बोलना) ऐसे ही मुहावरे हैं जिनसे अशुभ बात की सूचना मिलती है। 'आँखि फरकल' तथा 'हाथ फरकल' प्रिय के आगमन का सूचक है। 'खड़लिचि देखल' (खंजन पक्षी को देखना) सौभाग्य का परिचायक है।

तृतीय अध्याय

पद्य

१. लोकगाथा

(१) लक्षण—भोजपुरी में दो प्रकार के लोकगीत उपलब्ध होते हैं। पहले वे हैं जिनमें गेयता प्रधान होती है और कथानक प्रायः कुछ नहीं होता। ये गीत छोटे छोटे होते हैं। इस कोटि में संस्कार, ऋतु, श्रम, जातियों तथा देवी देवताओं के गीत आते हैं। दूसरे प्रकार के गीत वे हैं जिनमें गेयता तो अवश्य है, परंतु उनमें कथा का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया जाता है, अर्थात् दूसरी श्रेणी के गीतों में कथावस्तु की ही प्रधानता होती है और गेयता गौण। इन गीतों में आल्हा, विजयमल, लोरकी, नयकवा बनजारा, गोपीचंद भरथरी के गीत प्रसिद्ध हैं। प्रथम प्रकार के गीतों को लोकगीत तथा दूसरी श्रेणी के गीतों को लोकगाथा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पहला गीतिकाव्य है तो दूसरा प्रबंधकाव्य। अंग्रेजी में इन्हें 'फोक सांग्स' और 'फोक बैलेड्स' कहते हैं।[1]

(२) लोकगाथाओं के भेद—भोजपुरी लोकगाथाओं को प्रधानतया तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :

(१) प्रेमकथात्मक गाथाएँ
(२) वीरकथात्मक गाथाएँ
(३) रोमांचकथात्मक गाथाएँ

इनमें प्रथम दो प्रकार की गाथाएँ ही अधिक उपलब्ध होती हैं। प्रेम तो गाथाओं का प्राण ही है। यह प्रेम साधारण स्थिति में नहीं, बलिक विषम वातावरण में उत्पन्न होता है। फलस्वरूप संघर्ष होता है। कुसुमा देवी, भगवती देवी और लचिया की गाथाएँ ऐसी हैं जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम भयानक होता है। बिहुला की कथा प्रेम का प्रबंधकाव्य है। इसमें

[1] विशेष के लिये देखिए—डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

वर्णित उसके अलौकिक रूप को जो भी देखता था वह मूर्छित हो जाता था। बिहुला के अप्रतिम सौंदर्य पर मोहित होकर अनेक नवयुवकों ने उसे पाने का प्रयास किया, परंतु कोई सफल नहीं हो सका। अंत में बाला लखंदर (लक्ष्मीधर) नामक व्यक्ति इसके प्रेम को जीतने में सफल हुआ।' नयकवा बनजारा' भी एक दूसरा प्रणयाख्यान है जिसमें पति पत्नी के प्रेम, संयोग तथा वियोग का वर्णन बड़ी ही मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया है। 'भरथरीचरित्र' में अपने गुरु के उपदेश से राजा भरथरी के घरबार छोड़कर चले जाने का उल्लेख है। उनके विरह में उनकी स्त्री की व्याकुलता का जो चित्रण किया गया है वह बड़ा ही सुंदर है।

वीरकथात्मक गाथाओं में किसी वीर पुरुष के साहस तथा शौर्यसंपन्न कार्यों का वर्णन होता है। वह वीर पुरुष किसी आपद्ग्रस्त अबला का उद्धार करने अथवा न्याय पक्ष की विजय के लिये अपने शत्रुओं से लड़ता हुआ दिखाई पड़ता है। कहीं कहीं किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिये भीषण संग्राम भी करना पड़ता है। वीरकथात्मक गाथाओं में आल्हा का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। 'लोरिकायन' में लोरकी की जीवनगाथा, उसके विवाह तथा वीरता का सुंदर चित्रण है।

तीसरे प्रकार की गाथाएँ वे हैं जिनमें 'रोमांस' पाया जाता है। इनके अंतर्गत 'सोरठी' की प्रसिद्ध गाथा आती है। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार के अनेक बैलेड्स हैं, परंतु भोजपुरी में इनकी संख्या अधिक नहीं है।

(३) कुछ प्रसिद्ध लोकगाथाओं के उदाहरण—भोजपुरी में अनेक लोकगाथाएँ प्रसिद्ध हैं जिन्हें गवैए गा गाकर जनता का मनोरंजन करते हैं। स्थानाभाव के कारण यहाँ इन गाथाओं का विशेष परिचय देना संभव नहीं है, अतः इनका उल्लेख मात्र ही किया जाता है।

(क) आल्हा—इस गाथा का रचयिता जगनिक कवि चंदेल राजा परमर्दिदेव (परमाल) का आश्रित था। इसने बुंदेलखंडी में आल्हा तथा ऊदल की वीरगाथा का वर्णन किया है। परंतु मूल बुंदेलखंडी 'आल्हा' आज उपलब्ध नहीं है। इस सुप्रसिद्ध गाथा के कन्नौजी तथा भोजपुरी पाठ प्रकाशित भी हो चुके हैं। आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व वाटरफील्ड ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया था जिसका कुछ अंश एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल की पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। परंतु अंग्रेजी बैलेड छंद में आल्हा का अनुवाद पूरा करने के पहले ही वाटरफील्ड का देहांत हो गया। डा० ग्रियर्सन ने शेष अंशों के गद्यानुवाद के साथ इस ग्रंथ का संपादन कर 'दि ले आव आल्हा' के नाम से प्रकाशित किया है[1]।

[1] आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित।

इस ग्रंथ में आल्हा की वीरता का वर्णन एक विशेष छंद में किया गया है। यह छंद बाद में इतना लोकप्रिय हुआ कि अनेक लोककवियों ने वीररस के वर्णन के लिये इसको अपनाया। आल्हा विशेषकर वर्षा ऋतु में गाया जाता है। इसके गानेवालों को 'अल्हैत' कहते हैं जो ढोल बजाकर तार स्वर से इसे गाते हैं।

(ख) लोरकी—यह भी वीररसप्रधान गाथा है। इसे 'लोरिकायन' भी कहते हैं। इसमें लोरिक नामक वीर पुरुष का चरित्र वर्णित है। लोरिक की ऐतिहासिकता के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सारनाथ में जो 'धमेक' स्तूप स्थित है उसे 'लोरिक की कुदान' कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वह कोई स्थानीय वीर रहा होगा।

(ग) सोरठी—इसकी कथा रोमांच (रोमांस) से भरी हुई है। सोरठी पैदा होते ही माता पिता उसे पालने में सुलाकर नदी में प्रवाहित कर देते हैं। कोई मल्लाह नदी में से इसे पकड़कर घर ला उसका पालन पोषण करता है। पश्चात् इसका विवाह होता है। इसी कथा को लोककवि ने बड़े ही सजीव शब्दों में गाया है।

(घ) बिहुला बिषधरी—बिहुला की गाथा करुण रस से ओतप्रोत है। चंदू सौदागर के लड़के का नाम बाला लखंदर (लक्ष्मीधर) था। बिहुला के अप्रतिम सौंदर्य पर मुग्ध होकर अनेक व्यक्ति उसका पाणिग्रहण करने के लिये लालायित थे। परंतु किसी को भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। बिहुला को यह शाप मिला था कि विवाह के दिन उसके भावी पति को सर्प काट खाएगा। बाला लखंदर से जिस दिन इसका विवाह होनेवाला था उस दिन सर्पदंश के निवारण के लिये अनेक उपाय किए गए। फिर भी सर्प ने उसे काट खाया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। लोककवि ने बिहुला के विलाप का जो वर्णन किया है वह पाषाणहृदय को भी पिघला देनेवाला है। यही इस गाथा का सर्वोत्तम अंश है। करुण रस की रचनाओं में यह गाथा अद्वितीय है। बंगाल में भी यह कथा थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्राप्त होती है। सर्पों की अधिष्ठातृ देवी 'मनसा' मानी जाती हैं। इनकी स्तुति में 'मनसामंगल' नाम से अनेक ग्रंथों की रचना बँगला में हुई है।

बिहुला ने अपने पति को सर्पदंश से बचाने के लिये बड़ा उपाय किया था। उसने उसके पलँग के चारों पैरों में कुत्ता, बिल्ली, नेवला तथा गरुड़ को बाँध रखा था :

ए राम एक पावा बान्हे कुकुर पलँगिया रे दइवा,
एक पावा बिलइया बान्हे ए राम।

ए राम, एक पावा बान्हले नेउरवा रे दइवा,
एक पावा गरुड़वा बान्हे ए राम ॥
ए राम, चारी पावा चारी गो पहरुवा रे दइवा,
बान्ही बिहुला राखे उहाँ ए राम ।
ए राम, कठिन पहरुवा इह चारू रे दइवा,
कोहबर भितरा राखे ए राम ॥
ए राम, सेजिया के धरे सिरहनवाँ रे दइवा,
अगर चननवा बान्ही ए राम ।
ए राम, इलत बाटे सबही उपइया रे दइवा,
एको बिहुला नाहीं छाड़े ए राम ॥

परंतु इतना उपाय करने पर भी बिहुला बाला लखंदर के साथ सेज पर सो जाती है। उसके बिखरे हुए बाल पलँग के नीचे लटक रहे हैं। इन्हीं बालों को पकड़कर नागिन पलँग पर चढ़ जाती है और बाला लखंदर को डस लेती है। उसके शरीर में धीरे धीरे विष प्रवेश करने लगता है। वह अपनी स्त्री को जगाने की चेष्टा करता है पर वह नहीं जागती :

ए राम, डँसि दिहली बाला के नगिनिया रे दइवा,
डँसि के लुकाई[1] गइली ए राम ॥
ए राम, जब नागिन डँसे बाला के अँगुठवा रे दइवा,
लुती[2] के समान लागे ए राम ॥
ए राम उठले बिहाइ बाला लखंदर रे दइवा,
अँउठा के निहारी देखैं ए राम ॥
ए राम अउँठा में गड़ल तीनि गो दँतवा रे दइवा,
रकत से बोथाइल[3] बाटे ए राम ॥
ए राम तब ले चढ़ नागिनि बिखिया रे दइवा,
चढ़ि बाला के घुठिया[4] गइल ए राम ॥
ए राम, घुठिया से चढ़ि बिखि ठेहुनवा रे दइवा,
ठेहुने से जाँघवा चढ़े ए राम ॥
ए राम, तब बाला जगावे लगले बिहुला रे दइवा,
उठ तिरिया मोर बिहाई[5] ए राम ॥
ए राम, हमरा के डँसेले सरपवा रे दइवा,
बीखि मोर बदनिया चढ़े ए राम ॥

[1] छिपना। [2] चिनगारी। [3] लथपथ। [4] घुटना। [5] विवाहिता।

ए राम, उठि के करो एकर उपइया[1] रे दइवा,
नाहीं त सँघतिया[2] छूटले ए राम ॥
ए राम, बिहुला के जगावे बहुबिधि रे दइवा,
बिहुला के नाहीं निनिया टूटे ए राम ॥
ए राम, बिहुला के जगा के हारे लखंदर रे दइवा,
बिहुला अभागिन नाहीं जागे ए राम ॥
ए राम, बिखिया[3] से मातल[4] बाला रे दइवा,
गिरीत बेहोसवा परे ए राम ॥
ए राम, टुटि गइले बाला के मानिकवा[5] रे दइवा,
मुहें गाजवा फेंकी दिहले ए राम ॥
ए राम, छुटि गइले बाला के परानवा रे दइवा,
बिहुला के निनिया[6] बैरिन भइली ए राम ॥
ए राम, उठलि जे होइती बिहुला अभागिन रे दइवा,
बाला के ना मउतिया[7] होइत ए राम ॥
ए राम, रतिया बितल भइल भोर[8] रे दइवा,
बिहुला के निनिया टूटल ए राम ॥
ए राम, उठेले चिहाई[9] बिहुला अभागिन रे दइवा,
धक से त करेजवा भइले ए राम ॥
ए राम उठि के देखें सामी के हलिया रे दइवा,
देखि के धरतिया गिरे ए राम ॥
ए राम, 'सामी सामी, हाय सामी' कहे रे दइवा,
छाती पीटि रोदनियाँ करे ए राम ॥
ए राम कोहबर में रोवे सती बिहुला ए दइवा,
सुनि लोग दउड़ी[10] आवे ए राम ॥
ए राम, आइके देखल हवलिया रे दइवा,
देखी सब रोदनियाँ[11] करे ए राम ॥
ए राम, परि गइले भारी हाहाकारवा रे दइवा,
अचल घर कोहबरवा[12] माँहि ए राम ॥

१ उपाय। २ संग, साथ। ३ विष। ४ मतवाला। ५ गर्दन। ६ नींद। ७ मौत, मृत्यु। ८ प्रातःकाल। ९ चकित होकर। १० दौड़कर। ११ रुदन, रोना पीटना। १२ वह घर जिसमें विवाह के बाद वरवधू सोती हैं।

ए राम, सुनेले खबरि चाँदू सहुआ रे दइवा,
मुक्का मारि धरतिया गिरे ए राम ॥
ए राम, रोइ रोइ चाँदू सहुआ रे दइवा,
बहु हाँकल[1] डइनिया[2] हइ ए राम ॥
राम, काहाँ तक कहीं हम हवलिया[3] रे दइवा,
देखि सुनि छतिया फाटे ए राम ॥
ए राम, बिहुला के देखि हवलिया रे दइवा,
सगरे के जिया जंतु[4] रोवे ए राम ॥

(ङ) गोपीचंद—गोपीचंद की गाथा समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित है। कुछ लोग पहले इन्हें काल्पनिक व्यक्ति मानते थे, परंतु डा० ग्रियर्सन ने प्रबल प्रमाणों के आधार पर इनकी ऐतिहासिकता सिद्ध कर दी है।[5] डा० ग्रियर्सन के मतानुसार इनके पिता का नाम मानिकचंद था, जो बंगाल के रंगपुर जिले में शासन करते थे। इस जिले के डिमला थाना में मानिकचंद्र के नाम पर एक नगर स्थित था, जो अब 'मयनामतीर कोट' के नाम से प्रसिद्ध है। गोपीचंद की माता मयना या मयनामती जादू की कला में बड़ी सिद्धहस्त थीं। अनेक कारणों से गोपीचंद गृह से विरक्त होकर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं। उनकी स्त्रियाँ अडुना और पडुना विलाप करती हैं, जो बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। गोपीचंद की गाथा गुजरात, बंगाल आदि प्रांतों में भी प्रचलित है। बँगला में 'गोपीचंदेर गान' नाम से इनकी गाथाओं का प्रकाशन कलकत्ता विश्वविद्यालय से हुआ है। भोजपुरी गीत का उदाहरण देखिए :

गुदरी[6] सिआएनि गोपीचंद कन्हिया पर लिहलनि,
अब झपटि के पइठे बखरिया हो ना।
मचिअइ बइठी माई बढ़इतिनि[7],
माई मुख भरि देतुउ असिसवाँ[8] हो ना।
सगरी नगरिया गोपीचंद माँगि जाँच खाएउ हो ना,
बहिनी नगरिया मति जाउउ हो ना।
सगरी नगरिया माँगि जाँच खावइ,
माई बहिनी नगरिया हम जाबइ हो ना।
× × × ×

१ प्रचंड। २ डायन। ३ हालत, दशा। ४ जीव जंतु। ५ ज० ए० सो० बं०, भाग ५३ (१८७८ ई०) खंड १, सं० ३। ६ गुदडी, कंथा। ७ श्रेष्ठ, आदरणीय। ८ आशीर्वाद।

गलिया कि गलिया गोपीचंद बँसिया बजावइ।
अपनी खिरकिया से बहिनी निहारइ[१] हो ना।
जनू बँसिया बाजेला गोपीचंद भइया के हो ना।
तर[२] कइली सोनवा ऊपर तिल चाउर।
अब जोगिया के भीखि नावइ[३] निसरी[४] हो ना।
भीखि नाइ बहिनी मुँहवा निहारइ[५] हो ना।
भइया कवन पापिनिया बनवा दिहसि हो ना।

(च) भरथरी—भोजपुरी प्रदेश में भरथरी की गाथा को 'सांईं' (जोगी) गाते फिरते हैं। ये गोरखपंथी साधु सारंगी बजाकर भिक्षा की याचना करते हैं। राजा भर्तृहरि का नाम संस्कृत साहित्य में कवि और वैयाकरण के रूप में प्रसिद्ध है। इन्होंने नीति, शृंगार तथा वैराग्य शतक रचे। वह भर्तृहरि तथा लोकगीतों के भरथरी एक ही व्यक्ति हैं, यह कहना कठिन है, परंतु दोनों की कथाओं में कितनी ही समानता पाई जाती है। भरथरी भी संसार से उदासीन होकर साधु बन जाते हैं।

(छ) विजयमल—इसमें कुँवर विजयी नामक वीर पुरुष का वर्णन है। आजकल 'कुँवर विजयी' की जो गाथा उपलब्ध है, उसके रचयिता महादेवप्रसाद सिंह हैं।

(ज) राजा ढोलन—इस गाथा में राजा ढोलन के प्रेम का वर्णन है। ढोलन राजा नल के पुत्र थे, जिनका विवाह पिंकलगढ़ के राजा बुध की लड़की 'मारू' से हुआ था। ढोलन परदेश चले जाते हैं, उनके वियोग में मारू पागल हो जाती है। हरेवा और परेवा नामक दो अन्य स्त्रियों से ढोलन का प्रेम हो जाता है, परंतु अंत में वह अपनी स्त्री मारू को पाकर प्रेमपूर्वक उसके साथ रहते हैं। राजा ढोलन की यह गाथा राजस्थान में प्रचलित ढोला मारू की कथा से बहुत मिलती है।

(झ) नयकवा बनजारा—इस गाथा का संकलन तथा प्रकाशन डा० ग्रियर्सन ने एक सुप्रसिद्ध जर्मन पत्रिका में किया है[६]। आजकल इसकी जो गाथा उपलब्ध होती है, उसके रचयिता महादेवप्रसाद सिंह हैं।

(ञ) चनैनी—इस गाथा में चनैनी नामक स्त्री के प्रेम का वर्णन है। संभवतः यह गाथा अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। वाराणसी जिले के नटवाँ

१ देखती है। २ नीचे। ३ देने के लिये। ४ निकलती है ५ देखती है। ६ जे० डी० एम० जी०, भाग ४३ (१८८९), खंड २, पृ० ४६८।

ग्राम निवासी श्री हृदयनारायण मिश्र, एम० ए० से वर्तमान लेखक को यह गाथा प्राप्त हुई है।

(द) बसुमति का गीत—

सिकियाँ चीरि चीरि नइया बनाएउ हो ना।
बसुमति मुँड़वा मींजइ[1] अब चलली हो ना।
अब बाबा के सागरवा मुँड़वा मींजइ हो ना।
मुँड़वइ मींजि बसुमति केसिया झटकइ हो ना।
अब घोड़वा चढ़ल आवेला जयसिंह रजवा हो ना।
अब बसुमति पर परि गइल नजरिया[2] हो ना।
केकरि अइसन तू बारी बिटियवा हो ना।
अब केकरि अइसन तू बहिनियाँ हो ना।
राजा जनक जी के बारी[3] बिटियवा हो ना।
अब होरिलसिंह भइया के बहिनियाँ हो ना।

× × ×

मुँड़िया उठाइ होरिलसिंह चितवइ हो ना।
बहिनी सिर के पगड़िया निचवा धरिउ हो ना।
बहिनी चनना छोड़ाइ करिखवा पोतेउ[4] हो ना।
बहिनी आज तीनिउ कुलवा तू बोरिउ[5] हो ना।
जब हम जनिती बसुमती हमरी पिठिया[6] जनमबू हो ना।
मुँड़िअइ छाँटि गंगा में फेंकिती हो ना।
मुँहवा पटकु[7] देइ जयसिंह हँसइ हो ना।
बसुमति लागि चल हमर गोहनवा[8] हो ना।

२. लोकगीत

भोजपुरी में उपलब्ध लोकगीतों का विभाजन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है, जैसे—(१) संस्कारगीत, (२) ऋतुगीत, (३) त्योहारगीत, (४) रसगीत, (५) जातियों के गीत, (६) श्रमगीत, (७) बालगीत।

अधिकांश लोकगीत संस्कारों से संबंधित हैं। सोलह संस्कारों में पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह मुख्य हैं। प्रत्येक संस्कार के अवसर पर स्त्रियाँ कलकंठ से

[1] धान के लिये। [2] कुदृष्टि। [3] छोटी। [4] लगा दिया। [5] डुबा दिया। [6] पीठ पीछे। [7] वस्त्र, पट। [8] गृह, घर।

गीत गाकर देवताओं को प्रसन्न तथा जनमन का अनुरंजन करती हैं। इन संस्कार-गीतों की संख्या प्रचुर है।

भोजपुरी प्रदेश में विभिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार के गीत गाने की प्रथा है। सावन के मनभावन मास में स्त्रियाँ हिंडोले पर झूलती हुई मधुर स्वर से कजली गाती हैं। वाराणसी तथा मिर्जापुर में कजली के दंगल हुआ करते हैं, जिनमें कजली गानेवाले अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। फागुन का महीना मस्ती का मास है। भोजपुरी की एक कहावत है, जिसका भाव यह है कि फागुन में बूढ़े भी जवान बन जाते हैं। इस मास के गेय गीतों को 'फगुआ', 'चौताल' या 'होली' कहते हैं। चैत में 'चैता' गाया जाता है, जो 'घाँटो' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यद्यपि 'आल्हा' गाने के लिये कोई विशेष ऋतु निश्चित नहीं है, परंतु गवैए वर्षा ऋतु में ही इसे अधिक गाते हैं। स्त्रियाँ विभिन्न व्रतों के अवसर पर गीत गाती हैं। श्रावण शुक्ला पंचमी (नागपंचमी) के दिन नाग (सर्प) देवता की पूजा की जाती है। अतः इनकी स्तुति में गीत गाए जाते हैं। कृष्ण चतुर्थी को बहुरा का व्रत और कार्तिक शुक्ल द्वितीया को गोधन का व्रत किया जाता है। इसी प्रकार कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन छठी (षष्ठी) माता की स्तुति में भी गीत गाए जाते हैं।

रस की दृष्टि से भी भोजपुरी लोकगीतों का वर्गीकरण किया जा सकता है। इनमें सभी रसों की उपलब्धि होती है, परंतु निम्नलिखित पाँच रसों की ही प्रधानता पाई जाती है :

(१) शृंगार रस, (२) करुण रस, (३) वीर रस, (४) हास्य रस, (५) शांत रस।

शृंगार रस के अंतर्गत सोहर, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास आदि के गीत विशेषतः आते हैं। सोहर के गीतों में संयोग शृंगार का सुंदर वर्णन मिलता है। पति के परदेश जाने के कारण स्त्री को जो कष्ट होता है, उससे संबंधित गीतों में वियोग शृंगार की झाँकी मिलती है।

करुण रस के गीतों में गवन, जेतसार, निर्गुन, पूर्वी, रोपनी तथा सोहनी के गीतों की गणना की जा सकती है। यद्यपि उपर्युक्त सभी गीतों में करुण रस की उपलब्धि होती है, परंतु गवना के गीतों में इसकी बाढ़ है।

लोकगाथाओं में वीर रस की प्रधानता पाई जाती है। आल्हा, विजयमल, लोरकी, सोरठी ऐसी ही गाथाएँ हैं। वैवाहिक परिहास के गीतों में हास्य रस की मधुर व्यंजना हुई है। शिव जी की बारात का वर्णन भी कुछ कम हास्यरसोत्पादक नहीं है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता तथा गंगा जी के गीतों में शांत रस उपलब्ध होता है। संध्या समय तथा रात्रि के पिछले पहर (प्रहर) में स्त्रियाँ भजन गाती हैं, जिन्हें क्रमशः 'संझा' और 'पाराती' कहते हैं। इन गीतों में भगवान् की स्तुति होती है। किसी पर्व के अवसर पर स्त्रियाँ जब गंगास्नान को जाती हैं, तब भी 'भजन' गाती हैं, जिनमें वह अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हैं।

कुछ गीत ऐसे हैं, जिन्हें किसी विशेष जाति के लोग ही गाते हैं। अहीर लोग 'बिरहा' गाने में बड़े कुशल होते हैं। अहीरों में विवाह के अवसर पर बिरहा गाने की होड़ सी होती है। दुसाध (हरिजन) लोग 'पचरा' गीत गाते हैं। इसी प्रकार गोंड़ 'गोंडऊ' गीत को बड़ी सुंदर रीति से गाते हैं। तेली 'कोल्हू' के गीत गाने में कुशल हैं। कहेरऊ उस गीत को कहते हैं, जो कहारों में प्रचलित है। धोबी, चमार, गड़ेरिया आदि जातियों के भी अपने अपने गीत हैं।

श्रमगीत काम करते समय गाए जाते हैं। इन गीतों में रोपनी, सोहनी, जँतसार, चर्खा तथा कोल्हू के गीत प्रसिद्ध हैं। काम करते समय गीत गाने से श्रमजन्य थकावट दूर होती रहती है तथा उस काम को करने में मन भी लगा रहता है।

भोजपुरी में कुछ ऐसे भी गीत उपलब्ध होते हैं जिनको किसी भी श्रेणी के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। इसमें झूमर, अलचारी, पूर्वी, निर्गुन, भजन तथा खेल के गीत प्रधान हैं।

(१) संस्कार गीत—

(क) सोहर—पुत्रजन्म के शुभ अवसर पर 'सोहर' (ब्याई) गाए जाते हैं। कहीं कहीं इसे 'मंगल' या 'सोहिला' भी कहते हैं। 'सोहर' की निरुक्ति 'सुघर' शब्द से की जाती है जिसका अर्थ 'सुंदर' है। सोहर छंद में लिखे जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'सोहर' पड़ गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' की रचना इसी छंद में की है।

सोहर को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) पूर्वपीठिका और (२) उत्तरपीठिका। गर्भाधान, गर्भिणी की शरीरयष्टि, प्रसवपीड़ा, दोहद, धाय को बुलाना आदि वस्तुओं का वर्णन पूर्वपीठिका है। पुत्रजन्म के पश्चात् माता पिता का आनंद, ब्राह्मणों को दान देना, गरीबों में धन धान्य वितरण करना आदि उत्तरपीठिका के अंतर्गत आते हैं, जिन्हें 'खेलवना' के गीत कहते हैं। इन

गीतों की परंपरा बड़ी प्राचीन है। आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में रामजन्म के अवसर पर गीत गाने और नाचने का उल्लेख किया है। महाकवि कालिदास ने रघुजन्म के अवसर पर 'सुखश्रवाः मंगलतूर्य निस्वनाः' लिखकर इसकी प्राचीनता को प्रमाणित किया है।

पुत्रजन्म के गीतों में गर्भिणी के 'दोहद' का बड़ा ही सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है। पति इस बात की सदैव चेष्टा करता है कि उसकी स्त्री जिस वस्तु की अभिलाषा करे, वह शीघ्र ही उसे प्राप्त हो।

पूर्वी सोहर के कुछ उदाहरण लीजिए[१] :

सावन की सवनइया[२] आँगन सज डासी ले हो।
ए पिया! फुलवा फुलेला करइलिया[३] गमक मने भावेला हो॥
आरे पातरि पातरि सुनर मुख ढुरहुरि[४] हो।
कवन कवन फलवा मन भावे कहिना समुझावहु हो॥
भातवा त भावेला धानहि[५] केरा, दलिया रहरि केरा हो।
ए प्रभु रेहुआ[६] त भावेला मछरिया, मासु तीतिले[७] केरा हो॥
आरे पातरि पातरि सुनर मुख ढुरहुरि हो।
कवन कवन फलवा भावेला कहि न सुनावहु रे॥
बोलिया त ए प्रभु बोलीलें, बोलत लजाइलें हो।
ए प्रभु फलवा त भावेला नीबुआ, केरवा[८] नरियर भावे हो॥
आरे पातरि पातरि सुनरि मुख ढुरहुरि हो।
सुनरी कवन कापड़ा मन भावे कहिना सुनावहु रे॥
ए प्रभु सड़िया त भावे मलमलवा, लहँगा साटन केरा हो।
ए प्रभु चोलिया त भावेला कुसुम[९] केरा, अवरु ना भावेला हो॥
आरे पातरि पातरि सुनरि मुख ढुरहुरि हो।
कवन संगति नीमन[१०] लागेला, कहिना सुनावहु हो॥
ए प्रभु सांगावा त भावेला सासु संगे अवरु ननद जी के हो।
ए प्रभु झगड़ा त भावेला गोतीनि[११] संगे, गोदिया बालक लेइ हो॥

१ आगे गीतों के उद्धृत उदाहरण लेखक के 'भोजपुरी ग्रामगीत' भाग १, २, से लिए गए हैं। २ सावन की रात। ३ करैला। ४ सुडौल। ५ चावल। ६ रोहू मछली। ७ तीतर। ८ केला। ९ कुसुंभी रंग। १० अच्छा। ११ दयादिन।

एके कोठरिया में दूनो जना, दूनो जना केलि करसू[१] रे।
आरे अँग अँग पीरवा[२] अँगइले[३], केहु नाहिं जागेला रे॥
आरे एक जागे छोटका देवरवा, जिन्हि बँसिया बजावले रे।
आरे एक जागे चेरिया लउँडिया, जिन्हि अँगना बहारेला[४] रे॥
ए चेरिया दुअरा[५] सुतेला सझइतवा[६], बोलाई घरवा देहु नु रे।
ए सझइत रउरा घनि बेदने[७] बेयाकुल, रउरा के बोलावेलि रे॥
पासावा लड़वनी बेल तर आवरु बबुर तर रे।
ए सझइत धवरि[८] पइसेले राजा ओवर, कह ना धनि कुसल रे॥
ए सझइत हँसि हँसि[९] बिरवा लगावेले, मुसुकि[१०] जनि बोलहु हो।
ए सझइत बुझि जाहु आपन अवगुनवा, मुसुकि जनि बोलहु हो॥
ए सझइत मिलि जुलि बन्हली रे मोटरिया[११], खोलत बेरियाँ
अकसर[१२] हो।
छनिया[१३] त रहीत छवाइ दिहतों, लोगवा बटोरि दिहतों हो॥
ए धनिया आजु त कुबति[१४] तोहार, ऊपर परमेसर हो॥

बरिसहु ए देव बरिसहु, मोरा नाहीं मने भावेला हो।
ए देव! मोर पिया नान्हें[१५] केरे बिसनीया रे[१६], अकेला काहा भीजेला हो॥
पहिरि कुसुम रंगे सरिया, चढ़लों अटरिया नु रे।
कि आरे मोरे ललना टपकि रहेला छालि बुनवा[१७]
मोरे निनियों ना आवेला रे॥
सुनबे त सुनबे रे ननदिया, आरे हमरी बचनिया नु हो।
कि आरे मोरे ननदो भइया केरे बोलइतु उहे दरद मोरा जानेले हो॥
सुनबे त सुनबे रे भउजी, हमरी रे बचनिया नु हो।
कि रे भउजी दीन दस आवे देहु आसाढ़वा,
आपन भइया बोलाई[१८] देबि हो॥
ए ननदी कहीतु जहरवा खाइके मरितीं रे,
सइयाँ बिना दुःखवा सहलो ना जाइ हो।
अइलनि भइया अँगनवा, दुवरिया ठाढ़ भइलनि हो॥
आरे ललना धनिया के मुख पियरइले[१९], त अब बंस बाढ़न हो।
आरे धनिया हमरा जो आमा के बोलइतु, त दुःख नाहीं अवहीत हो॥

[१] करते हैं। [२] व्यथा। [३] समा गया। [४] झाड़ती हैं। [५] द्वार। [६] पति। [७] वेदना। [८] दौड़-कर। [९] पान का बीड़ा। [१०] मुस्कराना। [११] गठरी। [१२] अकेला। [१०] छप्पर। [१४] शक्ति। [१५] बचपन से ही। [१६] शौकीन। [१७] बंद। [१८] बुला दूँगी। [१९] पीला हो गया।

माई रउरी हई कुटनहरी[1] बहिनिया पिसनहरि[2] हो।
आरे पियवा रउरा हँई खेतजोतवा,[3] मैं काहि के बोलाइबि हो॥
पतित के हउ तुहूँ धियवा, पतित के बहिनिया नु हो।
कि आरे धनिया पतित के तुहुँ नतिनिया, हम गोठहुल[4] घर देबों हो॥
माई रउरी हइ पंडिताइनि, बहिनिया चधुराइनि हो।
कि आरे पियवा रउरा हइँ सिर साहब, हम बसहर[5] घर लेबों हो॥

*बरिसउ ए देव, बरिसउ गरजि सुनावउ।
देव बरिसउ जवई के रे खेत जवइ जुड़वावउ[6]।
जनमउ ए पूत जनमउ हमइ दुखिया के घरे।
पूत, उजरी नगरिया बसवतऽ[7] हमइ जुड़ववतऽ।
कइसे के जनमउ ए मायौ, तोरे दुखिया घरे।
माया टुटही खटिया ओलरबू[8] तुकारी[9] गोहरइबू[10]।
जनमउ ए पूत, जनमउ हमइ दुखिया घरे।
सोने के खाट सुतइबइ[11], ललना गोहरइबइ।
राम जे सुतइ अटरिया ते पाँय तर सीतल रानी हो।
राम हमरे समइया[12] त अब आइही त गोतिन बोलावइ हो।
होत बिहान[13] पह[14] फाटे त होरिल[15] जनमेनि हो।
उठइ लागे अनध[16] बधइया[17] उठइ लागे सोहर हो।
अँगना बटोरत[18] चेरिया त तेवइया[19] नु हो।
जाइके खबरि सुनावे त राजा सुनइ सुख सोहर हो।
सासु के पठवउ नउवा[20] ननद जी के बरिया[21] नु हो।

(ख) मुंडनगीत—बालक के बड़े होने पर उसका मुंडन (चूड़ाकर्म) संस्कार किया जाता है। इस संस्कार के पहले बालक के बालों को काटना निषिद्ध है। बालक के जन्म के पहले, तीसरे, पाँचवें या सातवें अर्थात् विषम वर्ष में मुंडन होता है।

* पश्चिमी बनारस जिले से संगृहीत।

[1] कुटनी, दुष्टा। [2] पीसनेवाली। [3] खेत जोतनेवाला किसान। [4] उपला रखने का गंदा घर। [5] अच्छा। [6] संतुष्ट करना। [7] बसाना, आबाद करना। [8] सुलाना। [9] तुम कहकर। [10] पुकारना। [11] सुलाना। [12] पुत्र उत्पन्न होने का समय। [13] प्रातःकाल। [14] उषाकाल। [15] बालक, पुत्र। [16] अत्यधिक। [17] बधावा। [18] झाड़ू देती हुई। [19] स्त्री। [20] नाई। [21] बारी।

यह संस्कार किसी तीर्थस्थान, देवस्थान अथवा नदी के किनारे किया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के निवासी प्रायः विंध्यवासिनी देवी के मंदिर (विंध्याचल) में बालकों का मुंडन कराते हैं। माताएँ मनौती मनाती हैं कि पुत्र पैदा होने पर उसका मुंडन देवी के मंदिर में किया जायगा।

भोजपुरी प्रदेश में गाँव की स्त्रियाँ इस अवसर पर बालक के मुंडन के लिये झुंड बनाकर गीत गाती हुई गंगा जी के किनारे जाती हैं। वे नदी के इस किनारे जमीन में खूँटा गाड़कर उसमें मूँज की नई रस्सी बाँध देती हैं, जिसमें आम के पत्ते स्थान स्थान पर बँधे रहते हैं। इस रस्सी को लेकर स्त्रियाँ नाव में बैठकर नदी के उस पार जाती हैं। इस विधि को 'गंगा ओहारना' कहते हैं। फिर नाई (हजाम) बालक के बालों को कैंची से काटता है। यज्ञोपवीत संस्कार के पहले छुरे से बालों को काटना निषिद्ध माना जाता है।

मुंडन के गीतों में कहीं तो कोई स्त्री इंद्र भगवान् से जल न बरसाने की प्रार्थना कर रही है तो कहीं बालक की बुआ अपने भानजे के मुंडन में संमिलित होने के लिये चली आ रही है। कहीं भाई अपनी बहिन से 'लापर परीछने' की प्रार्थना कर रहा है तो कहीं बहिन अपने बड़े भाई अथवा पिता से 'नेग' के रूप में आभूषण माँग रही है।

(ग) जनेऊ के गीत—'जनेऊ' को उपनयन (गुरु के पास लाना) भी कहते हैं। प्राचीन भारत में यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् बालक गुरुकुल में भेज दिया जाता था। वहाँ ब्रह्मचारी के व्रतों का पालन करता हुआ वह अध्ययन करता था। व्रतों का पालन करने के कारण ही इस संस्कार को 'व्रतबंध' भी कहा जाता है।

प्राचीन काल में जनेऊ अपने हाथ से कते सूत का ही होता था। अतः अनेक गीतों में सूत कातकर जनेऊ बनाने का उल्लेख पाया जाता है। इस संस्कार के संबंध में 'शतपथ' ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत वसंत ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में तथा वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिए। परंतु आजकल प्रायः चैत्र मास में ही यह संस्कार संपन्न किया जाता है।

जनेऊ के गीतों में उन विधि विधानों का उल्लेख पाया जाता है जो इस संस्कार के अवसर पर किए जाते हैं। कहीं पर ब्रह्मचारी किसी स्त्री को माता कहकर संबोधित करता हुआ भिक्षा देने की प्रार्थना कर रहा है, तो कहीं वह विद्या पढ़ने के लिये काशी या काश्मीर जाने के लिये प्रस्तुत है। ब्रह्मचारी मूँज की करधनी और पलाशदंड धारण करता तथा खड़ाऊँ पहनता है। अनेक गीतों में ब्रह्मचारी का

पिता जनेऊ के अवसर पर पलाशदंड बनाने के लिये इसकी लकड़ी खोजता फिरता है।[1]

पूर्वी भोजपुरी के कतिपय जनेऊ गीत निम्नांकित है।

ताही बने चलले कवन बाबा, काटेले परास डाँड़ा।
खोजेले मिरिगछाला, हमरा दुलरुवा के जनेव॥
कवनी सुहइया सूत कातेली भल ओटेली।
पुरेले[2] कवनराम जनेऊ कवन बरुआ[3] पहिरसु॥
जानकी सहुइया सुत कातेली भल ओटेली।
पुरेले 'केसवराम' जनेऊ सुगन बरुआ पहिरसु॥
सितवंती सुहइया[4] सुत कातेली भल ओटेली।
पुरेले 'सुरुजराम' जनेऊ उमा बरुआ पहिरसु॥
'अन्नपूर्णा' सुहइया सुत कातेली भल ओटेली।
पुरेले 'मंगलाप्रसाद' जनेऊ 'गोपाल' बरुआ पहिरसु॥

ए जाहि बने सिकियो ना डोलेला बघओ ना गरजेला रे,
ए ताहि बने चलले कवन बाबा,
काटेले पारास डाँड़ा खोजेले मिरिगछाला रे॥
ए हमरा दुलरुवा के जनेव हवे,
काटिले पारास डाँड़ा, खोजिले मिरिगछाला रे॥

चइतहि[5] बरुवा तेजी भयो, बइसाखे पहुँचेला रे।
जइबों में जइबों जाही घरे जाहाँ बाबा कवन बाबा रे॥
उनुकर धोती फिचबों[6], जीहि बाबा नवगुन[7] दीहें रे,
जइबों में जइबों जाही घरे, जाहाँ माय री कवनीदेई रे॥
भीखि देहु माता असीस देहु, हम त कासी के बाभन रे।
एहि भीखिया के कारने हम त छोड़लों बनारस रे॥
ए जाहु हम जनती ए माई, कवन बरुआ अइहें रे,
बालू के खेत जोतइतों, मोतिया उपजइतों[8] रे॥
कंचन थार भरइतों, मोतिया भीखि दीहितों[9] रे॥

[1] डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृ० १६६। [2] पूरना, गाँठ देकर तैयार करना। [3] यज्ञोपवीत का अधिकारी बालक। [4] लड़की। [5] चैत्र। [6] धोती। [7] जनेऊ। [8] पैदा करती। [9] देती।

(घ) विवाह गीत—विवाह सबसे प्रधान संस्कार है। मनुष्य के जीवन में विवाह का जितना महत्व है, संभवतः अन्य संस्कारों का उतना नहीं।

(१) प्रथाएँ—भोजपुरी प्रदेश में कन्या का पिता या भाई वर की खोज में निकलता है। जहाँ किसी वर का पता चलता है, वहाँ जाकर उसके वंश, कुल, गोत्र आदि का पता लगाकर वर कन्या की जन्मकुंडली मिलाई जाती है। पश्चात् लेन देन की बात चलती है। वर का पिता अपनी प्रतिष्ठा, संपत्ति तथा पुत्र की योग्यता के अनुसार कन्या के पिता से 'तिलक' माँगता है। बात पक्की हो जाने पर कन्यापक्षवाले (तिलकहरू) वर को कुछ रुपए, एक जोड़ा यज्ञोपवीत तथा सुपारी देते हैं। इस विधि को 'वररक्षा' (बरइछा) कहते हैं। तिलक के लिये दिन निश्चित हो जाने पर कन्या के पिता, भाई तथा कुटुंबी वर के घर आते हैं। तिलक चढ़ाने का काम कन्या का भाई करता है। इसके पश्चात् विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। उस दिन बराती, कुटुंबी, बंधुबांधव, तथा गाँव के लोग सज धजकर प्रस्थान करते हैं। बारात में हाथी, घोड़ा, ऊँट, नालकी और पालकी सभी होते हैं। बारात में जितने ही अधिक हाथी होंगे, उतनी ही अधिक उसकी प्रतिष्ठा मानी जायगी। इसमें 'सिंगा' (धुतुक) नामक टेढ़े बाजे का होना अत्यंत आवश्यक है। 'धुतू' 'धुतू' की आवाज निकलती है :

तीन टेढ़े टेढ़े।
समधी टेढ़, सींगा टेढ़, नालकी टेढ़।

अर्थात् बारात की शोभा तीन वस्तुओं के टेढ़े होने से ही होती है—(१) समधी, (२) सींगा, (३) नालकी। बारात जब कन्या के घर पहुँचती है तब वहाँ वर की पूजा (द्वारपूजा) की जाती है। इसके पश्चात् बारात किसी शामियाने में अथवा दालान में ठहराई जाती है जिसे 'जनवासा' कहते हैं। जलपान आदि के पश्चात् कन्यापक्षवाले बारातियों को भोजन का निमंत्रण देते हैं, जो 'अइगा' (आज्ञा) कहलाता है। बाद में 'गुरइत्थी' की जाती है, जिसे 'कन्या-निरीक्षण' भी कहते हैं। इस समय वर का बड़ा भाई (भसुर) कन्या को स्पर्श कर उसे आभूषण तथा वस्त्र आदि प्रदान करता है। इस दिन के पश्चात् भसुर का अपने छोटे भाई की स्त्री (भवहि) को छूना निषिद्ध माना जाता है। 'गुरइत्थी' के पश्चात् विवाह का कार्य प्रारंभ होता है, जिसमें सप्तपदी या 'भाँवर फिरना' प्रधान कार्य होता है। बाद में वर को 'कोहबर' में ले जाया जाता है, जहाँ घर तथा गाँव की स्त्रियाँ उससे परिहास करती हैं। दूसरे दिन कन्यापक्षवाले वर-पक्षवालों को वस्त्र तथा रुपए आदि देकर बिदाई करते हैं, जिसे 'मिलनी' कहते हैं। धनीमानी लोग बारात को दूसरे दिन रखकर तीसरे दिन बिदा करते हैं, जिसे

'मर्यादा रखना' कहा जाता है। विवाह के चौथे दिन कंकणमोचन की विधि संपादित की जाती जाती है, जो चौथारी के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) गीतों के भेद—विवाह के गीत वर और कन्या दोनों के घरों में गाए जाते हैं। जिस दिन वर का तिलक चढ़ता है, उसी दिन से इन गीतों का गाना प्रारंभ हो जाता है। वर तथा कन्या दोनों के घरों में गाए जाने के कारण इनके स्वतः भेद हो जाते हैं :

कन्यापक्ष के गीत	वरपक्ष के गीत
१. तिलक के गीत	(१) तिलक के गीत
२. संझा के गीत	(२) सगुन के गीत
३. माँड़ों के गीत	(३) भतवानि के गीत
४. माँटी कोड़ाई के गीत	(४) माँटी कोड़ाई के गीत
५. कलसा धराई के गीत	(५) लावा भुजाई गीत
६. हरदी के गीत	(६) इमली घोंटाई के गीत
७. लावा भुजाई के गीत	(७) हरदी के गीत
८. मातृपूजा के गीत	(८) मातृपूजा के गीत
९. द्वारपूजा के गीत	(९) वस्त्रधारण के गीत
१०. गुरहत्थी के गीत	(१०) मउरि के गीत
११. पोखर खनाई के गीत	(११) परिछावनि के गीत
१२. विवाह के गीत	(१२) डोमकछ के गीत
१३. भाँवर के गीत	(१३) गोड़ भराई के गीत
१४. सिंदूर लगाई के गीत	(१४) कोहबर के गीत
१५. द्वार रोकने के गीत	(१५) कंकन छुड़ाई के गीत
१६. कोहबर के गीत	
१७. परिहास के गीत	
१८. भात के गीत	
१९. गाली के गीत	
२०. वर को उबटन लगाने के गीत	
२१. माड़ो खोलाई के गीत	
२२. बारात की बिदाई के गीत	
२३. कंकन छुड़ाई के गीत	
२४. चौथारी के गीत	

विवाह के गीतों का वर्ण्य विषय बड़ा विस्तृत है। इनमें कहीं तो पुत्री की माता अपनी सयानी लड़की के निमित्त योग्य बर खोजने के लिये आग्रह करती है,

तो कहीं पुत्री अपने पिता से सुंदर वर खोजने के लिये प्रार्थना करती हुई दिखाई पड़ती है। कहीं योग्य वर न मिलने की चिंता से पिता व्याकुल है, तो कहीं पुत्री के पैदा होने के कारण उसकी माता अपने भाग्य को कोस रही है। इन गीतों में बालविवाह का भी वर्णन पाया जाता है। वर की माता अपने पुत्र की छोटी अवस्था को देखकर कहती है, कि मेरा लाल ब्याहने जा रहा है। दूध न पीने से उसके होंठ कहीं सूख न जाँय[1] :

ऊँच रे मँदिल चढ़ि हेरेली कवन देई,
कवन गाँव नियरा कि दूर ए।
हमरा कवन दुलहा बियहन चलेले,
दूध बिनु ओठ सुखाइ ए॥

गीतों में बारात का सज धजकर चलना, वर की वेशभूषा, बारातियों के लिये विभिन्न पकवानों तथा मिष्ठान्नों की तैयारी आदि का उल्लेख भी स्थान स्थान पर हुआ है।

विवाहगीतों में सर्वत्र उत्साह दृष्टिगोचर होता है। कोहबर के गीतों में संभोग शृंगार का वर्णन अधिक हुआ है, जिनमें कहीं कहीं अश्लीलता का पुट भी पाया जाता है। विवाह के अवसर पर भात खाते समय समधी जब तक इन गालियों को नहीं सुनता, तब तक वह अपना यथोचित सत्कार नहीं मानता। यह प्रथा अन्यत्र भी पाई जाती है। पूर्वी भोजपुरी के विवाहगीत नीचे दिए जाते हैं[1] :

बर खोजु बर खोजु बर खोजु रे,
बाबा अब भइलीं बियहन[2] जोग ए।
आरे हामारा के बाबा सुनर बर खोजेले,
हँसे जनि दुअरवा के लोग ए॥
पुरुब खोजलों बेटी पछिम रे खोजलों,
अवरु ओड़इसा[3] जगन्नाथ ए।
आरे तीनों भुवन तुहें बर खोजलों,
कतहीं[4] ना मिले सिरिराम ए॥
पुरुब खोजल बाबा पछिम रे खोजलो,
अवरु ओड़इसा जगन्नाथ ए।

[1] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ० २१९। [2] विवाह। [3] उड़ीसा।
[4] कहीं भी।

तीनों भुवन ए बाबा ! हमें बर खोजलो,
कतहीं ना मिले सिरिराम ए ॥
आरे सात समुंदर ए बाबा सरजू बहत है,
खेलत बाड़े सरजू तीर ए ।
चारु भइया ले सुनर ए बाबा !
खेलेले सरजू का तीर ए ॥

सावन भदउवाँ के नीसु अँधियरिया,
बिजुली चमके ले सारी रात ए ।
आरे सूतल कंत हम कइसे जगइबों,
भइँसी तुरावले छानि[1] ए ॥
बोलिया त ए प्रभु हम एक बोलिलें,
जाहु बोलि सुनि, मनवा लाइ ए ।
आरे भँइसी बेचि ए प्रभु चुरवा[2] गढ़इती,
हम रउरा सोइतों निरभेद ॥
बोलिया त धनि एक हम बोलिलें,
जाहु बोलि सुनि मन लाइ ए ।
आरे तोहि के बेचिए धनि भइँसी लेअइबों,
बछरू चरइबों सारी राति ए ॥
के तोहरा ए प्रभु कुटीही पीसी,
के तोहरा करी जेवनार ए ।
आरे के तोहरा ए प्रभु दुधवा अँवटीहे[3],
के तोहरा जोरन लाइ ए ॥
चेरी बेटी ए धनि कुटीही पीसी,
चेरी बेटी करी जेवनार ए ।
आरे बहिना हामार ए धनि दुधवा अँवटीहें,
आमा मोरा जोरन लाइ ए ॥

लिलिही घोड़वा चेलिक[4] असवरवा,
बाबा का भगती बहुत ए ।
आरे रउरे भगतिया[5] ए बाबा हमें नाहीं भावै[6]
हमें बेटी दुःख बहुत ए ॥

[1] रस्सी । [2] पाटी । [3] गर्म करना । [4] युवक । [5] भक्ति । [6] नहीं अच्छा लगता ।

आवहु बेटी हो जाँघे चढ़ि बइठ,
दुख सुख कह समुझाइ ए।
आरे कवन कवन दुख तोहरा ए बेटी,
से दुख कह समुझाई ए॥
दाल भात बाबा मोरा जे जेवनारवा,
करुवहिं[1] तेल आसनान ए।
आरे लाहारा पटोखा[2] मोरा पहीरनवा,
घीव दूध आसनान ए॥
ऊँच नीवास बेटी काँकरी बोइले,
रन बन पसरेले डाढ़ी ए।
आरे ककरी के बतिया ए बेटी, देखत सुहावन,
ना जानों मीठ कि तीत ए॥
आरे सोनवा जे रहीतु ए बेटी,
फेरु[3] से तुरइती,[4] रूपवा तुखलों ना जाइ ए।
आरे पतवा जो रहीतु ए बेटी,
जो कुल रखबू[5] हमार ए॥
आरे पुतवा जो रहित ए बेटी, फेरू से बियहिती,
तोहि के बियहनों ना जाइ ए।
आरे छोटहि बड़ होइहैं ए बेटी,
जो कुल रखबू हमार ए॥

काहावाँ के हथिया सींगारलि[6] आवेले,
काहावाँ के झीन लाहास[7] ए।
काहावाँ के राजा बियहन आवेले,
माथे मुकुट, मुखे पान ए॥
गोरखपूर के हथिया सींगारलि आवेले,
पटना के झीन लाहास ए।
कासी का राजा रे बियहन आवेले,
माथे मुकुट, मुखे पान ए॥
तड़पि[8] के बोलेले समधी कवन समधी,

[1] कड़वा तेल। [2] वस्त्र। [3] फिर। पुनः। [4] तोड़कर गढ़वाता। [5] रखोगी।
[6] शृंगार क्रिया। [7] झूल। [8] जोर से।

सुनु समधी बचन हमार ए।
कहीतो त ए समधी उधरी पधरबी[1],
नाहीं त बरोही[2] तर ठाढ़ ए ॥
मिनती करि बोलेले समधी,
सुनु समधी बचन हमार ए।
कवन दुलहा के ऊँच छवाइबि[3],
ठाढ़े ही हथिया समाई[4] ए ॥
सुरहिया गाइ के दुधवा रे दुधवा,
अवरु मगहिया ढोलि[5] पान ए।
हमारा कवन दुलहा बियहन चलेले,
पान बिनु ओठ सुखाई ए ॥
ऊँच रे मंदिल चढ़ि हेरेली[6] कवन देई,
कवन गाँव नियरा[7] कि दूर ए।
हमारा कवन दुलहा बियहन चलेले,
दूध बिनु ओठ सुखाई ए ॥
सुरहिया गाइ के दुधवा रे दुधवा,
अवरु मगहिया ढोलि पान ए।
हमारा कवनी सुहवा सासुर चलली,
दूध बिनु ओठ सुखाई ए ॥
ऊँच रे मंदिल चढ़ि हेरेली कवन देई,
कवन गाँव नियरा की दूर ए।
हमरा कवनी सुहवा सासुर चलली,
पान बिनु ओठ सुखाई ए ॥

धाइतइ नउवा रे धाइतइ बरिया,*
धाइ अजोधिया जाउ रे।
ओही रे अजोधिया बसइ राजा दसरथ,
राम के तिलक चढ़ाउ रे।
एक बन गइले दूसर बन गइले,
तीसरे में कुइयाँ पनिहार रे।

१ उलटे लौटना। २ वट वृक्ष। ३ बनाऊँगा। ४ घुस जाय। ५ मगही पान की ढोली।
६ देखती है। ७ नजदीक।
* बनारस जिले से संगृहीत।

मइँ तोंसे पूछउँ कुइयाँ पनिहारिन,
कवन हउअइ दसरथ दुआर रे।
सोने के खंभा रूपे के दरवाजा,
नाम्रा[1] मछिया बिछलाइ रे।
नाम्रा बाहर होइके बइठे राजा दसरथ,
इहइ हउअइ दसरथ दुआर रे।
बाएँ हाथ नउवा चिठिया थमावेला,
दहिने हाथे टेकेला पाँव रे।
चिठिया जबबवा मिलइ राजा दसरथ,
नउवा लवटि घर जाइ रे।
उहवाँ से उठेले राजा रे दसरथ,
झपटि बखरिया[2] के जाइ रे।
हँसि हँसि पूछइ रानी कौसिला देई,
सुनि राजा अरज हमार रे।
कहवाँ के चिठिया पगड़िया तू खोंसे,
बाँचि के हमइ सुनाव रे।
बाउर रानी तू बाउर,
रानी के हरले गियान रे।
बारह बरिस के राम के उमरिया,
कौन बिधि रचीं धमारि हो।
बाउर राजा तू बाउर राजा,
केहु नाही हरला गियान हो।
रघुबर खादी नयन भरि देखबइ,
हिरदय जइहे जुड़ाइ[3] हो।
का देखि झलकइ जाल कइ मछरिया,
का देखि भँवरा[4] मँड़राइ[5] रे।
केकर बोलाए राम गइले ससुररिया[6],
केके देखि राम लोभाइ रे।
जल देखि झलकइ जल के मछरिया,
फूल देखि भँवरा मेंड़राइ रे।

[1] महल। [2] घर। [3] संतुष्ट। [4] भ्रमर। [5] चक्कर काटना। [6] ससुराल।

सासु बोलावे गइले राम ससुररिया,
सीता देखि गइले लोभाइ रे।
उतर चइतवा[1] चढ़त बइसखवा,
लिहले सोपरिया[2] भरि हाथ रे।
हाली[3] बेर[4] के लगन[5] धरावऽ मोरे बाबा,
हम जाइबि बैजनाथ रे।
बिनती से बोलेली कवन देई,
सुन राजा बिनती हमार रे।
घरवइ खनाव राजा सगरा[6] पोखरवा,
घरवइ बाबा बिसुनाथ रे।
मातु पिता कर धोतिया पछारेउ[7],
घर ही बाटें बैजनाथ हो।

(ङ) गवना के गीत—'गवना' (मुकलावा) का अर्थ जाना है। इस अवसर पर कन्या पिता के घर से पतिगृह को गमन करती है, अतः इन गीतों को 'गवना के गीत' कहते हैं। कहीं कहीं विवाह के समय ही पुत्री की बिदाई कर दी जाती है। परंतु जिन लोगों को यह प्रथा नहीं सहती, वे लोग 'गवना' देते हैं। गवना विवाह के बाद तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष में होता है। गवना कराने के लिये वर का पिता नहीं जाता, क्योंकि पुत्रवधू का रोदन सुनना उसके लिये निषिद्ध है।

विवाह के गीतों में जहाँ आनंद और उल्लास का वर्णन होता है, वहाँ गवना के गीतों में विषाद की गहरी रेखा दिखाई पड़ती है। कहीं ससुराल जानेवाली अपनी बहिन की पालकी के पीछे पीछे भाई रोता हुआ जाता है तो कहीं बहिन अपने माता पिता, भाई बहिन को छोड़कर जाती हुई रोती बिलखती दृष्टिगोचर होती है। पुत्री की बिदाई के ये गीत करुण रस से ओतप्रोत हैं[8]:

(पूर्वी भोजपुरी)—

बाँसवा के जरिया[9] सुनरी एक रे जनमली,
सगरे अजोध्या में अँजोर रे।

[1] चैत का महीना। [2] सुपारी। [3] जल्दी। [4] बेला, समय। [5] लग्न, बिदाई का शुभ मुहूर्त। [6] बड़ा तालाब। [7] निचोड़ना। [8] डा० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भाग १, पृ० ७४ [9] नजदीक।

सुनरी धियवा चउकवा चढ़ि रे बइठे,
आमा कावारवा[1] धइले ठाढ़ रे ॥
छाती चुरइली[2] बेटी नयन ढरे लोरवा[3],
अब सुनरी भइलू पराय रे ।
जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहे,
पिहितो[4] मैं मरिच झराई रे ॥
मरिच के झाके झुके धियवा मरि रे जइहें,
छुटि जइते गरुवा[5] संताप रे ।
डासलि[6] सेजिया उड़ासि बलु रे दिहिती,
सामी जी से रहिती छपाई[7] रे ॥
बारल दियरा बुझाई बलु रे दिहिती,
हरि जी से रहिती छपाई रे ।
बुकलि सोंठिया धुरा ही फाँकि लीहिती,
सामी जी से रहिती छपाई रे ॥

पीपर पात पुलइयनि[8] डोले,
नदियन बहेला सेवार ए ।
गंगा अरारे[9] चढ़ि बोलेला दुलहवा,
लेला रमइया जी के नाँव ए ॥
आरे कई धवरे[10] भेंटबि बाग बगइचा,
कई धवरे भेंटबि ससुरारी ए ।
आरे कई धवरे भेंटबि सुहवा पियारी,
देखी नएना जुड़ाई ए ॥
एक धवरे भेंटबि बाग बगइचा,
दुई धवरे भेंटबि ससुरारी ए ।
तीन धवरे भेंटबि सुहवा[11] पियारी,
जे देखि नएना जुड़ाई ए ॥
दुलहा दुलहिनि मिलि एक मति भइली,
दुलहा पूछेला एक बात ए ।
धीरे धीरे बोल ए प्राभु सुनेला,
नइहर के लोग बात ए ॥

[1] कोने में। [2] दूध भरी। [3] आँसू। [4] पी लेती। [5] बड़ा। [6] बिछाई हुई। [7] छिप रहती। [8] शाखा के अंत में। [9] ऊँचा किनारा। [10] दौड़। [11] कन्या।

आरे हम रउरा ए प्राभु कोहबर[1] चलीं,
आमा के देबि चिन्हाई ए।
पीअर ओढ़न, पीयर डासन,
पीयरे मोतिन के हार ए॥
आरे जेकरा हाथे सोने के लोहाँ,
उहे प्राभु आमा हमार ए।
लोहाँवा घुमावेली रोदना पसारेली;
उहे प्राभु आमा हमार ए॥
लालहि ओढ़न लाल ही डासन,
लाले मोतिन केरा हार ए।
जेकरा हाथे सोन ही केरा कंकन,
उहे प्राभु चाची हमार ए॥
हरियर ओढ़न हरियर डासन,
हरियर मोतिन केरा हार ए।
जेकरा गोदी में बालक भल सोभेला,
उहे प्राभु भऊजी हमार ए॥
सबुज ओढ़न सबुज डासन,
सबुजे मोतिन केरा हार ए।
आरे जेकरा लिलारे झमाझमि[2] बिनुली,
उहे प्राभु बहिना हमार ए॥

(पश्चिमी भोजपुरी)

बेटी चलेलि अपने ससुरवा,
सुगना रोवई छाछाकाल[3] रे।
सभवइ बइठे बाबा बढइता[4],
बेटी अरज किहे ठाढ़ रे।
सुगना के राख हो बाबा बहुतइ के दुलारि।
खाइ के देबइ बेटी दूध भात खोरवा,
अँचवइँ[5] के ठंढा पानि रे।
होत भिनुसार बेटी नउवा[6] हम भेजबि,
तोहरा लेबइ बोलाइ रे।

[1] वह एकांत घर जहाँ पति पत्नी विवाह के बाद थोड़ी देर तक साथ रहते हैं। [2] सुंदर।
[3] फूट फूटकर रोना। [4] श्रद्धा का पात्र। [5] हाथ मुँह धोना। [6] नाई।

(च) मृत्यु के गीत—मृत्यु मानव जीवन का अवश्यंभावी अवसान है। इस अवसर पर किया जानेवाला संस्कार अंतिम है। मृत्युगीत दो प्रकार के पाए जाते हैं। पहले में तो मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है और दूसरे में उसकी मृत्यु से उत्पन्न कष्टों का उल्लेख। यदि कोई छोटा बच्चा अकाल में ही कालकवलित हो गया, तो उसकी सुंदरता, भोलापन तथा सरलता का उल्लेख होगा। यदि परिवार में किसी धन कमानेवाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो उसके न रहने से परिवार की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण मृत्युगीत का विषय होता है। स्त्रियाँ तत्काल ही गीतों का निर्माण कर गाती और रोती जाती हैं।

भोजपुरी मृत्युगीतों में मृत व्यक्ति के अभाव से उत्पन्न कष्टों का वर्णन ही प्रधान होता है। स्त्रियों के संतप्त हृदय में जो भाव अनायास आते जाते हैं, वे गीतों में उनका प्रकाशन करती जाती हैं। वे कोई पूरा गीत नहीं गातीं बल्कि मृतक की जो स्मृति मन में आती है, उसकी एक या दो कड़ी ही गाती हैं[४] :

आइ के मऊवतिया[५] गइल बा नियराई।
हमरे सइयाँ के करम, त गइले फूटि॥
फूटि गइल करम परीत[६] भइल खटिया,
हमहूँ रोवेनी सिरहान धइके पटिया॥
कबहूँ ना छुवेले बालम दूबिओ के सटिया[७],
कबहूँ ना भइले हमरो बालम से संघतिया[८]॥
हमरे सइयाँ के करम त गइले फूटि,
यहि बीचे आइके जम्म[९] त लिहले लूटि॥

(२) ऋतुगीत—

(क) कजली (सावन)—सावन के महीने में उत्तर प्रदेश में कजली गाने की प्रथा है। मिर्जापुर की कजली प्रसिद्ध है। काशी में भी कजली गाने का अधिक प्रचार है, जहाँ गवैए दो दलों में विभक्त होकर रात रात भर गाते रहते हैं।

सावन के महीने में हर एक गाँव में—बाग में या तालाब के किनारे—झूले लगाए जाते हैं। इन झूलों को लगाने के लिये बड़ी तैयारी की जाती है। सुंदर रंगीन रस्सी से काठ के चौकोर तख्ते को पेड़ की मजबूत शाखा में बाँधकर लटका देते हैं। इसी सुसज्जित झूले पर बैठकर नर नारी झूलने का आनंद उठाते हैं।

[१] चाँदनी। [२] चिड़िया। [३] दूसरे की। [४] विशेष के लिये देखिए—डा० कृष्णदेव उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका, पृ० ५५। [५] मौत। [६] प्रीति। [७] छड़ी। [८] समागम। [९] यमराज।

कजली का नामकरण श्रावण में घिरनेवाले बादलों की कालिमा के कारण पड़ा है, परंतु भारतेंदु के मतानुसार मध्यभारत के दादूराय नामक लोकप्रिय राजा की मृत्यु के पश्चात् वहाँ की स्त्रियों ने एक नए गीत के तर्ज का आविष्कार किया, जिसका नाम कजली पड़ा।[1] कुछ लोग कजली वन से भी इसका संबंध जोड़ते हैं।

कजली का वर्ण्य विषय प्रेम है। इसमें शृंगार रस के उभय पक्ष की झाँकी मिलती है, फिर भी संभोग शृंगार अधिक पाया जाता है। एक उदाहरण लीजिए[2] :

'आरे बाव बहेला पुरवैया,
अब पिया मोरे सोवै ए हरी ॥ टेक ॥
कलियाँ चुनि चुनि सेजिया डसवलीं,
सइयाँ सुतेले आधी राति, देवर बड़ा भोरे ए हरी।
लवँगा खिलि खिलि बिरवा लगवली,
सइयाँ चाभेले आधी राति, देवर बड़ा भोरे ए हरी।'

जहाँ पतिवियोग का वर्णन है, वहाँ विरहिणी की वेदना करुण रस में बोल उठी है। कजली के गीत बड़े ही सरस, सुंदर तथा मर्मस्पर्शी होते हैं :

बादल बरसे बिजुली चमकै, जियरा ललचे मोर सखिया।
सइयाँ घरे ना अइलैं, पानी बरसन लागेला मोर सखिया ॥
सब सखियन मिलि धूम मचायो मोर सखिया।
हम बैठी मनमारी रंगमहल में मोर सखिया ॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों, जेवना ना जेवे हो।
सखिया साँझ भए, बेरी बिसवे[3], सामी घरे ना अइलैं हो ॥
बोलु बोलु कागवा रे सुलछन बोलिया।
घेरि घेरि आयो रे बादरवा, घाटा कारी कारी ना ॥
बरसे बरसे रे बदरवा, बिजुरी चमके लागलि ना।
काली काली रे अँधेरिया, हरि जी ना अइले ना ॥
कोरी नदियवे[4] सासु दहिया जमवलों[5]।
रचि एक[6] अमरित लावेली जोरनवा[7] ए हरी ॥

[1] डा० ग्रियर्सन : ज० ए० सो० बं०, भाग ५३, खंड १ (१८८४), पृ० २३७। [2] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग २, पृ० १७५। [3] बीत गया। [4] मिट्टी का छोटा बर्तन। [5] जामन [6] जरा सा, थोड़ा सा। [7] दूध को जमाने के लिये उसमें डाला गया खट्टा पदार्थ।

अपने त बेचें सासु गाँव का गोएड़वा[1]।
हरि हरि हमरा के भेजे जमुना पार ए हरी ॥
हरि हरि ना जाइव गोखुला में दही बेचे ए हरी ॥
अपने त बेचें सासु सऊवाँ रे कोदउवा[2]।
हरि हरि हमरा से माँगे झीन[3] गोहुआँ ए हरी ॥
हरि हरि ना जाइबि गोखुला में दही बेचे ए हरी ॥

कइसे खेले जाइबि सावन में कजरिया,
बदरिया घेरि अइले ननदी ॥ टेक ॥
तू त चलल़ू अकेली, तोरा संग न सहेली,
गुंडा घेरि लीहें तोहि के डगरिया ॥
बदरिया घेरि अइले ननदी ॥
कतना जना खइहें गोली, कतना जइहें फंसिया डोरी,
कतना जना पिसिहैं, जेहल में चकरिया[4] ॥
बदरिया घेरि अइले ननदी ।

रुनझुन खोल ना केवड़िया, हम बिदेसवा जइबो ना ॥ टेक ॥
जो मोरे सइयाँ तुहु जइब बिदेसवा, तू बिदेसवा जइबो ना ।
हमरा भइया के बोला द[5] हम नइहरवा जइबो ॥ रुनझुन० ॥
जो मोरे धनिया तुहु जइबू नइहरवा, नइहरवा जइबू ना ।
जतना[6] लागल बा रूपैया, ओतना देइके जइबू ना ॥ रुनझुन०॥
जो मोरे सइयाँ तुहु लेब अब रूपैया, तू रूपैया लेव ना ।
जइसन बाबा घरवा रहनीं, ओइसन करके दीहा ना ॥रुनझुन०॥

(ख) फगुआ (होली)—होली के सुप्रसिद्ध त्योहार के अवसर पर ये गीत गाए जाते हैं। फाल्गुन मास में गाए जाने के कारण ही इनका नाम 'फगुआ' पड़ गया है। होली के समय ये गीत समवेत स्वर से गाए जाते हैं, अतः इन्हें 'होली' भी कहा जाता है। माघ मास की शुक्ल पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन से फगुआ का गाना प्रारंभ किया जाता है, जिसे स्थानीय बोली में 'ताल ठोकना' कहते हैं। परंतु इसके गाने का चरम उत्कर्ष होली के दिन दिखलाई पड़ता है।

होली के बहुत दिन पहिले से ही लड़के सूखी लकड़ी, उपले, काठ आदि लाकर एक निश्चित स्थान पर इकट्ठा करते जाते हैं। होली की पूर्वरात्रि को निश्चित मुहूर्त में इस ढेर में आग लगा दी जाती है, जिसे 'संवत् जलाना' कहते हैं। दूसरे

[1] पास [2] सावाँ, कोदो (बुरा अन्न) [3] पतला अच्छा [4] चक्की [5] बुला दो [6] जितना।

दिन इस ढेर की राख को सिर में लगाया जाता है। दिन के पूर्वाह्न में गीले रंग से होली खेली जाती है, परंतु अपराह्न में सूखे गुलाल अबीर का प्रयोग किया जाता है। इस दिन गाली गाने की भी प्रथा है, जिसमें अश्लीलता का पुट पाया जाता है।

कहीं इन गीतों में राधाकृष्ण के होली खेलने का वर्णन है, तो कहीं अवध में रामचंद्र 'होरी मचा' रहे हैं। एक गीत सुनिए :

ब्रज में हरि होरी मचाई, इतते आवल नवल राधिका उततें कुँवर कन्हाई।
हिलि मिलि फाग परस पर खेलत, सोभा बरनी न जाई॥ ब्रज में हरि०॥

अवध में राम और सीता सोने की पिचकारी के द्वारा आपस में होली खेल रहे हैं[1] :

होरी खेलै रघुबीरा अवध में, होरी॥ टेक॥
केकरा हाथे कनक पिचकारी, केकरा हाथ अबीरा।
राम के हाथे कनक पिचकारी, सीता के हाथ अबीरा।
होरी खेले रघुबीरा अवध में, होरी॥

बन बोलेला मोर हरि हो,
का संगे होरी खेलौं री॥ टेक॥
आम के डारि[2] कोइलिया बोले, बन बोलेला मोर।
का संगे होरी खेलौं री, एक राधे दूजे नंदकिसोर॥
का संगे होरी०॥
आवन आवन सइयाँ कहि गइले, अरुझेले कवनी ओर।
का संगे होरी खेलौं री, एक राधे दूजे नंदकिशोर॥
बन बोलेला मोर हरि हो,
का संग होरी खेलौं री॥

आरे धन्य नगर नैपाल हो लाला,
धन्य नगर नैपाल हो॥ टेक॥
आरे जहवाँ बिराजे पसुपति बाबा,
धन्य नगर नैपाल हो॥
आहो कथिये[3] छवइबो में बाबा के मंदिलवा,
रूपवे छवइबो नैपाल हो।

(ग) **चैता**—चैत्र के महीने में गाए जानेवाले गीत को 'चैता' या 'घाँटो' कहा जाता है। बसंत में 'चैता' की बहार बड़ी आनंददायिनी होती है। नदी के

[1] डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी०, भाग २, पृ० २१९। [2] शाखा। [3] पी जाते हैं।

किनारे, अमराई की शीतल छाया में, मेले में, तथा प्रशांत स्थान में, जहाँ देखिए वहीं, मस्त भोजपुरिया चैता गाने में तल्लीन दिखाई पड़ता है। मधुरता, कोमलता तथा सरसता की दृष्टि से चैता अपना सानी नहीं रखता।

चैता दो प्रकार का होता है—(१) झलकुटिया; (२) साधारण[1]। झलकुटिया चैता उसे कहते हैं जो सामूहिक रूप में झाल कूटकर (बजाकर) गाया जाता है। साधारण चैता वह है जिसे केवल एक व्यक्ति ही गाता है। समवेत स्वर से गाने के लिये गानेवाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहिला दल एक पंक्ति को गाता है, दूसरा दल टेक पद को। झाल तथा ढोल के साथ स्वरलहरी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उत्कर्ष पर पहुँचने पर गवैए भावावेश में आकर घुटनों के बल खड़े हो जाते हैं, 'आहो रामा' की ध्वनि से आकाश गूँजने लगता है। गवैए गाने के जोश में आकर अपनी सुध बुध भी थोड़ी देर के लिये खो देते हैं।

इस गीत को गाने का एक विशेष ढंग होता है। इसकी प्रत्येक पंक्ति के पहले 'अहो रामा' या 'रामा' और अंत में 'हो रामा' आता है ; जैसे :

रामा नदिया के तिरवा चनन गाछि बिरवा हो रामा।

इसके गाने की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें प्रथम अवरोह, फिर आरोह और अंत में पुनः अवरोह होता है। लोकगीतों में उनके रचयिताओं का नाम नहीं पाया जाता। परंतु चैता में बुलाकीदास ने अपना नाम रखा है :

दास बुलाकी चइत घाँटो गावे हो रामा।
गाई गाई बिरहिन समुझावे हो रामा॥

चैता प्रेम के गीत हैं जिनमें संभोग शृंगार की कथा गाई गई है। इसमें कहीं सूर्योदय तक सोनेवाले आलसी पति को जगाने का वर्णन है, तो कहीं पति और पत्नी के प्रणय की झाँकी देखने को मिलती है। कहीं पर ननद और भावज के पनघट पर पानी भरने का उल्लेख है, तो कहीं सिर पर मटका रखकर दही बेचनेवाली ग्वालिनों से कृष्ण जी गोरस माँगते हुए दिखाई पड़ते हैं। संभोग शृंगार का यह वर्णन कितना मर्मस्पर्शी है :

रामा, साँझहि के सूतल, फूटलि किरिनिया, हो रामा॥
तबो नाहिं जागेलें हमरो बलमुआ, हो रामा, तबो नाँही॥
रामा, चुर घींची मरलीं पइरिया घींची मरलीं, हो रामा॥
तबो नाहिं जागेलें सैयाँ अभागा, हो रामा, तबो नाँही॥

[1] डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी०, भाग २, पृ० २३६.

रामा, गोड तोरा लागीला लहुरि ननदिया, हो रामा ॥
रचि एक आपन भैया देहू ना जगाई, हो रामा, रचि एक ॥
रामा, कैसे के भौजी भैया के जगाइबी, हो रामा ॥
हमरो भैया निंदिया के मातल, हो रामा, हमरो भैया ॥
रामा, तोरा लेखे ननदी तोर भैया निंदिया के मातल, हो रामा ॥
मोरा लेखे चान सुरूज दूनो छपित भइलें, हो रामा, मोरा लेखे ॥
रामा, 'दास बुलाकी' चैत घाँटो गावे, हो रामा ॥
गाइ गाइ बिरहिन सखि समुझावे, हो रामा, गाइ गाइ ॥

रामा, नदिया किनरवा मुँगिया बोअवलीं, हो रामा ॥
सेहू मुँगिया फरेले घवदवा[1], हो रामा सेहू मुँगिया ॥
रामा, एक फाँड[2] तुरलीं दोसर फाँड तुरलीं, हो रामा ॥
आइ गइलें खेत रखवरवा, हो रामा, आइ गइले ॥
रामा एक छड़ी मारले दोसर छड़ी मारले, रामा ॥
लूटि लेले, हंस परेउआ[3] दूनो जोबना[4], हो रामा, लूटि लेले ॥
रामा, दास बुलाकी चइती घाँटो गावे, हो रामा ॥
गाइ गाइ बिरहिन सखि समुझावे, हो रामा ॥
आहो रामा, मानिक हमरो हेरइले हो रामा ।
जमुना में, केहू नाहीं खोजेला हमरो पदारथ हो रामा ॥ जमुना में० ॥
आहो रामा, ओही रे जमुनवा के चिकनी रे मटिया,
चलत पाँव बिछिलइले[5], हो रामा ॥ जमुना में० ॥
आहो रामा, ओही रे जमुनवा के करिया पनिया,
देखत मन घबरइले हो रामा ॥ जमुना में० ॥
आहो रामा, तोरा लेखे ग्वालिन मानिक हेरइले ।
मोरा लेखे चान छइतवा[6] हो रामा ॥ मोरा लेखे०॥
आहो रामा, दास बुलाकी चइत घाँटो गावे हो रामा,
गाई गाई बिरहिन समझावे हो रामा, गाई गाई ॥

(घ) बारहमासा—बारहमासा के गाने का कोई समय निश्चित नहीं है, परंतु ये अधिकतर पावस ऋतु में ही गाए जाते हैं। चूँकि इनमें विरहिणी स्त्री के वर्ष के बारहो महीने में होनेवाले कष्टों का वर्णन होता है, अतः इन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। हिंदी साहित्य में 'बारहमासा' लिखने की परंपरा प्राचीन है।

इन गीतों में विप्रलंभ श्रृंगार की प्रधानता है। जिन गीतों में बारहो

[1] गुच्छा। [2] आँचल। [3] कबूतर। [4] स्तन। [5] फिसल गया। [6] अस्त हो गया।

महीनों के विरहजन्य दुःखों का उल्लेख होता है उन्हें बारहमासा, जिनमें छह मास का वर्णन होता है उन्हें 'छमासा' और जिनमें केवल चार महीने का वर्णन होता है, उन्हें 'चौमासा' कहते हैं। बारहमासा का प्रारंभ आषाढ़ मास से होता है। ये गीत हिंदी की अन्य बोलियों में तो उपलब्ध होते ही हैं, इनके अतिरिक्त बंगाल में भी पाए जाते हैं जिन्हें 'बारोमाशी' कहते हैं। मुहम्मद मंसूरुद्दीन द्वारा संपादित 'हारामणि' में इन गीतों का संग्रह हुआ है।

प्रथम मास आसाढ़ हे सखि, साजि चलले जलधार हे।
सबके बलमुआ राम, घर घर अइलें, हमरा बलमुआ परदेस हे ॥
सावन हे सखि! सरब सोहावन, रिमिझिम बरसेले देव हे।
वारि उमरि परदेस बालम, जीअबों[1] कवना अधार हे ॥
भादों हे सखि! रइनि भयावन, सूझले आर ना पार हे।
लवका जे लवके राम, बिजुली जे चमकेला[2], कड़केला जीअरा हमार हे ॥
आसिन हे सखि! आस लगायल, आसो न पूरल हमार हे।
आस जे पूरे राम, कुबरी जोगिनिया के, जिन कंत राखे बिलमाय हे ॥
कातिक हे सखि! पुनित महीना, सखि सब चले गंगा असनान हे।
सब सखि पेन्हें राम पाट पीतांबर, मैं धनि लुगरी पुरानी हे ॥
अगहन हे सखि! अगर सोहावन, चहुँ दिसि उपजेला धान हे।
हंस चकेउआ[3] राम केरि[4] करतु हैं, तइसे जग संसार हे ॥
पूस हे सखि! ओस परतु हैं, भिजेला अँगिया हमार हे।
एक जे भींजे राम नवरंग चोलिया, दूसरे भीजेला लामी केस हे ॥
माघ हे सखि पाला पड़तु है, बिना पिया जाड़ो न जाइ हे।
पिया जे रहितें घरे रुइया भरइतें, खेपि जइतों[5] मघवा के जाड़ हे ॥
फागुन सखि! सब फाग खेलतु हैं, घर घर उड़ेला अबीर हे।
सब सखि खेले राम अपना बलमु संग, हमरो बलमु परदेस हे ॥
चइते हे सखि! चित मोरा चंचल, जिअरा[6] जे भइले उदास हे।
कलिया[7] में चुनि चुनि सेजिया डसवलों, पिया बिनु सेजिया उदास हे ॥
बैसाख हे सखि! बँसवा कटइलो, रचि रचि बँगला छवाई हे।
सुतिहें[8] पिया राम लाली पलँगिया[9], हम धनि बेनिया[10] डोलाई हे ॥
जेठ हे सखि! भेंट भइले, पूरि गइलें बारहमास हे।
रामनरायन, सूरदास गायन, गाइ गाइ[11] सखि समुझाई हे ॥

१ जीऊँगी। २ चमकता है। ३ चकवा। ४ केलि। ५ बिता देती। ६ हृदय। ७ कली। ८ सोएगा। ९ पलँग। १० पंखा। ११ गाकर।

चैत अजोध्या जनमेले राम,
चंदन से कोसिला लिपवली धाम।
गज मोतियन से चौक पुरवलीं[१],
सोना के कलस[२] अवरु धरवलीं॥
बैसाख मास रितु बीख[3] समान,
तलफत[४] धरती अवरु असमान।
जइसे जल बिना तलफेले मीन,
उहे गति मोर केकई कीन॥
जेठ मास लूक[५] लागेला अंग,
राम लखन अवरु सीता संग।
राम चरन पद कमल समान,
तलफेला धरती अवरु असमान॥
असाढ़ मास गरजेला चहुँ ओर,
बोलेला पपीहा कुँहकेला[६] मोर।
बिलखेली[७] कोसिला अवधपुर धाम,
भींजत होइहें लखन सिय राम॥
सावन में सर[८] सायर[९] नीर,
भीजत होइहें सिया रघुबीर।
भूमि गोजरिया[१०] फिरेला भुअंग[११],
राम लखन अवरु सीता संग॥
भादो मास बून बरिसेला अपार,
घरवा के छावेला सकल संसार।
बड़ बड़ बूँन जे बरिसेला नीर,
भींजत होइहें सिया रघुबीर॥
कुआर मास, सखि, धरम के राज,
निति उठि धरम करेला संसार।
एहि अवसर पर रहिते जे राम,
बाभन जेवाँइ दिहिते कुछु दान॥
आइल रे सखि! कातिक मास,
हमरा पर लागल बिरह के फाँस।

[१] चौका लगाना। [२] घड़ा। [3] विष। [४] गरम हो जाना। [५] लू। [६] आवाज करना।
[७] रोती है। [८] तालाब। [९] नदी। [१०] गोजर। [११] सर्प।

घर घर दियवा बारेलि नारि,
हमरि अजोध्या भइल अँधियारि ॥
अगहन कुँआरी करत सिंगार,
कपड़ा सिलावेली सोना के तार ।
पाट पितामर पुलुक[1] समान,
कनक सीस बैजयंती के माल ॥
पूस मास, सखि ! परत टुसार,
रैनि भइलि जइसे खाँड़[2] के धार ।
कुस आसन कइसे सोइहें राम,
बन कइसे करिहें बिसराम[3] ॥
आइल हो सखि ! माघ बसंत,
कइसे जियबि हम बिना भगवंत ।
राम चरन मन लागल मोर,
बैठि भरत जी हिलावेले चौर[4] ॥
आइल, हो सखि, फगुआ उमंग,
चोआ चंदन छिरकेला अंग ।
बैठि भरत जी घोरेले अबीर[5],
केकरा पर[6] छिरकी बिना रघुबीर ॥

(३) त्योहार गीत—भोजपुरी में बहुत से ऐसे गीत पाए जाते हैं, जो विभिन्न त्योहारों तथा व्रतों के अवसर पर गाए जाते हैं, जैसे :

(क) नागपंचमी—श्रावण शुक्ला पंचमी को 'नागपंचमी' कहते हैं। गाँवों में यह 'नागपँचैया' कहलाती है। इस दिन नाग (सर्प) की पूजा की जाती है। पंचमी के प्रातःकाल लड़कियाँ घर की बाहरी दीवार पर चारो ओर गोबर की एक लंबी रेखा खींचती तथा घर के प्रधान द्वार के दोनों ओर सर्प की आकृति बनाती हैं। फिर कटोरे में दूध और धान की खीलें एकांत स्थान में रख दी जाती हैं। लोगों का यह विश्वास है कि इस दिन नाग देवता आकर दूध पीते हैं। जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं उन्हें सर्पदंश का भय नहीं रहता।

नागपूजा भारतवर्ष में अत्यंत प्राचीन काल से प्रचलित है। आज भी बंगाल में सर्पों की अधिष्ठातृ देवी 'मनसा' की पूजा का बहुत प्रचार है। तथा इनकी अनेक स्तुतियाँ रची गई हैं।

[1] अच्छा। [2] खड्ग, तलवार। [3] विश्राम, आराम। [4] चँवर। [5] गुलाल। [6] किसपर।

नागपंचमी के गीतों में नाग की स्तुति पाई जाती है :

जवन[1] गलिया हम कबहूँ ना देखलीं,
उ गलिया देखवलाऽ[2] हो, मोरे नाग दुलरुवा ॥
जे मोरा नाग के गेहूँ भीखि दीहें,
लाले लाले बेटवा बिग्रइहें[3] हो, मोरे नाग दुलरुआ ॥
जे मोरा नाग के कोदो भीखि दीहें,
करिया करिया मुसरी[4] बिग्रइहें हो, मोरे नाग दुलरुआ ॥
जे मोरा नाग का भिखिया ना दीहें,
दुनो बेकति[5] जरि जइहें हो, मोरे नाग दुलरुआ ॥
जे मोरा नाग का भीखि उठि दीहें,
दुनो बेकति सुखी रहिहें हो, मोरे नाग दुलरुआ ॥
जवन गलिया हम कबहूँ ना देखलीं,
उ गलिया देखवला हो, मोरे नाग दुलरुआ[6] ॥

(ख) बहुरा—बहुरा (बहुला) का व्रत भाद्र कृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। इस व्रत की कथा की नायिका बहुला है। स्त्रियाँ इस व्रत को पुत्र की प्राप्ति के लिये करती हैं, अतः बहुरा के गीतों में माता के पुत्र के प्रति अकृत्रिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख हुआ है। परंतु प्रस्तुत लेखक ने बहुरा के जिन गीतों का संकलन किया है उनमें सास और ननद का सनातन विरोध, पति पत्नी के प्रेम आदि विषयों का वर्णन पाया जाता है :

कोरी[7] नदियवें[8] सासु दहिया जमवलीं[9],
रचि[10] एक अमरित[11] लावेली जोरनवा[12] ए हरी ॥
अपने त बेचें सासु गाँव का गोएड़वा[13]।
हरि हरि हमरा के भेजे जमुनापार ए हरी ॥
हरि हरि ना जाइबि गोखुला में दही बेंचे ए हरी ॥
अपने त बेंचे सासु सऊवाँ रे कोदउवा[14]।
हरि हरि हमरा से माँगे झीन[15] गोहुँआ[16] ए हरी ॥
हरि हरि ना जाइबि, गोखुला में दही बेंचे ए हरी ॥

[1] जो। [2] दिखलाया। [3] प्रसव करेंगी। [4] चुहिया। [5] व्यक्ति। [6] प्यारा। [7] बिना प्रयोग में लाई गई। [8] मिट्टी का छोटा पात्र। [9] जमाया। [10] थोड़ा सा। [11] अमृत। [12] दूध को जमाने के लिये उसमें डाला गया दही। [13] नजदीक या पास। [14] मोटा कदन्न। [15] पतला, अच्छा। [16] गेहूँ।

(ग) गोधन—कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को 'गोधन' का व्रत मनाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में इस दिन गोबर से मनुष्य की एक प्रतिकृति बनाकर उसकी छाती पर ईंट रख दी जाती है। मनुष्य की गोबर से बनी इसी प्रतिमा को स्त्रियाँ मूसल से कूटती हैं। गोधन कूटने के पूर्व एक कथा कही जाती है। स्त्रियाँ भटकटैया (एक कँटीला पौधा) और चना एक बर्तन में रखकर अपने घर के समस्त व्यक्तियों को मर जाने का शाप देती हैं, जिसे 'सरापना' कहा जाता है। गोधन कूटते समय जिन व्यक्तियों को मरने का शाप दिया गया है, उन्हें जीवित करने की बाद में प्रार्थना की जाती है।

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहन में पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करना है। इसका वर्णन इन गीतों में भी पाया जाता है। शिकार करने के लिये जब भाई जाता है, तब बहन उसकी सकुशल वापसी की प्रार्थना करती है :

कवन भइया चलले अहेरिया,
कवन बहिनी देली असीस हो ना ॥
जियसु रे मोर भइया,
मोरा भउजी के बाढ़े सिर सेनुर हो ना ॥
मोहन भइया चलले अहेरिया,
पारबती बहिनी देली असीस हो ना ॥
जियसु रे मोर भइया,
मोर भउजी के बाढ़े सिर सेनुर हो ना ॥
छव महीनवाँ के लखिया अलवतियाँ[1] रे ना,
ए लखिया खिरिकिनी[2] पिएले बयरिया[3] रे ना।
घोड़वा चढ़ल तुहु दलसिंह राजावा रे ना,
ए दलसिंह परि गइली लखिया के नजरिया रे ना ॥
का तुहु दलसिंह बंसी लगवले बाड़ हो ना।
तोहरा अइसन हमरा सामी के नोहरिका[4] बाड़े हो ना
आताना बचन दलसिंह सुनही ना पवले हो ना,
ए दल बाबू गोड़े[5] मुड़े तानेले चदरिया हो ना ॥
पइसि जगावेले दल के मइया रे ना,
ए बबुआ उठिके ना कर दतुअनिया रे ना।
कइसे हम उठि आमा तोहरी बचनिया रे ना,
ए आमा मोरी बुधिया छोरेली[6] लखिया रानी रे ना ॥

[1] नवप्रसूता स्त्री। [2] खिड़की। [3] हवा। [4] नौकर। [5] पैर। [6] छीन ली है।

चेरिया जे रहिती दल मरिती गरिअइती[1] रे ना,
ए दल बाबू लखिया के केहू ना जावाबवा देला रे ना ॥

(घ) पिंड़िया—पिंड़िया का व्रत कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अगहन शुक्ल प्रतिपदा तक पूरे एक मास मनाया जाता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोधन की गोबर की जो प्रतिमा बनाकर पूजी जाती है, उसी गोबर में से थोड़ा सा अंश लेकर कुँवारी लड़कियाँ घर की दीवाल पर गोबर की छोटी छोटी पिंडिया और मनुष्य की सैकड़ों आकृतियाँ बनाती हैं। इसके साथ ही उसपर आटा तथा रंग से चित्रकर्म भी करती हैं। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिंड़िया लगाना' कहते हैं। पिंड़िया शब्द 'पिंड' से बना हुआ है, जिसमें लघु अर्थ सूचक 'इया' प्रत्यय लगाकर इसकी निष्पत्ति हुई है।

पिंड़िया के गीतों में भाई बहन का अटूट प्रेम वर्णित है। एक गीत में कोई बहन अपने भाई से कह रही है, कि मैं लड्डू और चिउड़ा से पिंड़ियों को पूजूँगी। हे भइया, यह व्रत मैं तुम्हारे ही लिये कर रही हूँ :

लडुआ चिउरवा से हम पूजबि पिंडियवा हो।
तोहरी बधइया भइया पिंड़िया बरतिया हो ॥
मोरंग देसे तुहु जइह ए राम भइया,
ले अइह ए भइया मोरंगी लडुइया[2] हो ॥
मोरंग देसे तुहु जइह ए राम भइया,
ले अइह ए भइया सुरुका[2] चिउरवा[3] हो ॥
लडुआ चिउरवा से हम पूजति पिड़िअवा हो।
तोहरी बधइया[4] भइया पिंड़िया बरतिया हो ॥
घिवही लडुइया बहिना भइले मँहगवा हो।
छोड़ि देहु ए बहिना पिंड़िया बरतिया हो ॥
सुरुका चिउरवा महँग भइले बहिना हो।
छोड़ि देहु ए बहिना पिंड़िया बरतिया हो ॥
अइसन बोली जनि बोल राम भइया हो।
तोहरी बधइया भइया पिंड़िया बरतिया हो ॥

(ङ) छठी माई के गीत—छठी माता का व्रत (षष्ठीव्रत) कार्तिक शुक्ल षष्ठी को किया जाता है। इस व्रत को केवल स्त्रियाँ ही करती हैं, परंतु मिथिला में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही इसे करते हैं। यह 'डाला छठ' के नाम से प्रसिद्ध है।

[1] गाली देती है। [2] लड्डू। [3] पतला। [4] उपलक्ष।

वास्तव में यह सूर्य भगवान् का व्रत है, परंतु षष्ठी तिथि के दिन किए जाने के कारण यह 'छठी माता' का व्रत कहा जाता है।

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति, उसका दीर्घायु होना है। स्त्रियाँ पंचमी के दिन व्रत रखती हैं और षष्ठी के दिन किसी नदी या तालाब के किनारे जाकर भगवान् भास्कर को अर्घ देने के लिये जल में खड़ी रहती हैं। वे सूर्य से प्रार्थना करती हैं कि आप जल्दी उगिए, जिससे मैं अर्घ दे सकूँ :

दूधवा, घिउवा लेके गवालिनि बिटिया ठाढ़।
फालावा, फूलवा लेले मालिनि बिटिया ठाढ़।
धूपवा, जलवा रे लेके बाभनवा रे ठाढ़।
और हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ॥

पुत्रकामना के ये गीत बड़े मर्मस्पर्शी हैं। कोई बंध्या स्त्री कहती है :

आरे सब के डलियवा ए दीनानाथ ठहरे उठाई।
आरे बाँझि के डलिअवा ए दीनानाथ ठहरे तवाई॥

मिथिला में भी इन गीतों का प्रचार है, जहाँ ये 'छठ के गीत' कहे जाते हैं। भोजपुरी, मगही तथा मैथिली प्रदेशों के इन गीतों में समान भावधारा पाई जाती है :

काचहिं[१] बाँस के बँहगिया, बँहगी[२] लचकति जाइ।
रउरा भाराहा[३] होइना कवनराम, बँहगी घाटे[४] पहुँचाई॥
बाट में पूछेला बटोहिया, ई बँहगी केकरा के जाई।
ते[५] त अन्हरा[६] हव रे बटोहिया, ई बँहगी छठि मइया[७] के जाई॥
हामारा जे बाड़ी छठिय मइया, ई दल[८] उनके के जाई॥

आरे गोडे खरउवाँ[९] ए अदितमल[१०] तिलका लिलार।
आरे हाथावा में सोबरन साँटी[११] ए अदितमल, अरघ[१२] दिआउ॥
ए आमा के कोरा[१३] सुतेले अदितमल, भोरे हो गइल बिहान[१४]।
आरे हाली हाली[१५] उग ए अदितमल, अरघ दिआउ॥
फलावा फूलवा लेले मालिनि बिटिया[१६] ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ॥

[१] कचा। [२] काँवर। [३] बोझ ढोनेवाला, भारवाही। [४] घाट पर। [५] तुम। [६] अंधा। [७] छठी माता। [८] सामान। [९] खड़ाऊँ। [१०] सूर्य। [११] डंडा। [१२] अर्घ। [१३] गोदी। [१४] सबेरा। [१५] जल्दी। [१६] लड़की।

दूधवा, घिउवा[1] लेले गवालिनि बिटिया ठाढ़ ।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ ॥
धूपवा, जलवा रे लेके, बाभानवा[2] रे ठाढ़ ।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआउ ॥
गोड़वा दुखइले रे डाँड़वा[3] पिरइले[4] कब से जे बानि हम ठाढ़[5] ।
आरे हाली हाली उग[6] ए अदितमल, अरघ दिआउ ॥
ए गोड़े[7] खरउवाँ ए दीनानाथ, हाथ में सोबरन के साँटी ।
ए कान्हे जनेउवा[8] ए दीनानाथ, चरन बाटे लिलार ॥
ए सब तिरियवा ए दीनानाथ, छेकेली[9] दुआरी[10] ।
ए सब डलियवा[11] ए दीनानाथ, लिहली उठाई ॥
ए बाँझी[12] के डलियवा ए दीनानाथ, ठहरे ताँवाई[13] ॥
ए छोड़ु छोड़ु ए बाँझिनि, छोड़ु रे दुआरी ।
ए कवना अवगुनवे ए बाँझिनि, छेकेलु दुआरी ॥
ए सासु मारे हुढुका[14] ए दीनानाथ, ननदिया पारे गारी[15] ।
ए संगे लागल पुरुखवा[16] ए दीनानाथ, हमरा के डंडा से मारी ॥
ए असों[17] के कतिकवा ए तिरिया, घरवा चली जाई ।
ए अगीला[18] कतिकवा ए तिरिया, तोरा बेटा होई जाई ॥

(४) जाति संबंधी गीत—कुछ लोकगीत ऐसे हैं जिन्हें विशिष्ट जाति के लोग ही गाते हैं। ऐसे गीतों में बिरहा का विशिष्ट स्थान है। यह अहीर लोगों का जातीय गीत है। इस जाति के लोगों के विवाह में बिरहा गाने की प्रतियोगिता होती है और जो अधिक संख्या में इसे गा सकता है उसकी जीत मानी जाती है।

(क) अहीर बिरहा—'बिरहा' की निष्पत्ति 'विरह' शब्द से हुई है। जान पड़ता है, पहले इन गीतों में केवल विरह का ही वर्णन होता था, परंतु आजकल इनमें संभोग तथा विप्रलंभ दोनों प्रकार के विषयों का चित्रण उपलब्ध होता है। जिस प्रकार हिंदी में बरवै तथा दोहा छंद लघुकाय होने पर भी अपनी चुस्त बंदिश तथा सरस भावधारा से श्रोताओं को रससिक्त कर देते हैं, उसी प्रकार बिरहा लोकगीतों में सबसे छोटा छंद होने पर भी अपनी सुगठित पदावली और चुभती

१ घी। २ ब्राह्मण। ३ कमर। ४ दुख रहा है। ५ खड़ी। ६ उदय हो। ७ पैर। ८ यज्ञोपवीत। ९ रोकती है। १० द्वार। ११ डाली (छबड़ी)। १२ बंध्या। १३ अस्वीकृत। १४ झिड़कती है। १५ गाली। १६ पति। १७ इस साल। १८ अगला वर्ष।

शैली के कारण सहृदयों को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। ये बिरहे बिहारी के दोहों के समान हृदय पर सीधी चोट करते हैं।

बिरहा दो प्रकार का होता है—(१) छोटा तथा (२) बड़ा। छोटा बिरहा 'चरकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका अर्थ है चार कड़ी या चरणवाला पद्य। यही अधिक लोकप्रिय है। लंबा बिरहा गाथा के रूप में होता है। रामायण तथा महाभारत की कथाओं को लेकर अनेक लोककवियों ने लंबे लंबे बिरहों की रचना की है।

अहीर जब अपनी मस्ती में आता है, तभी बिरहा गाता है। किसी लोककवि ने ठीक ही कहा है :

नाहीं बिरहा कर खेती भइया,
नाहीं बिरहा फरे डार।
बिरहा बसेला हिरिदया में ए रामा,
जब उमले तब गाव॥

किसी अभुक्तयौवना नायिका की यह उक्ति कितनी सटीक तथा मर्मस्पर्शिनी है[1] :

पिया पिया कहत पियर भइल देहिया,
लोगवा कहेला पिंडरोग।
गँउवा के लोगवा मरमियों ना जानेला,
भइले गवनवा ना मोर॥

काशी के बाबू रामकृष्ण वर्मा ने, जो कविता में अपना नाम 'बलवीर' लिखा करते थे, बहुत ही सुंदर तथा साहित्यिक बिरहों की रचना 'बिरहा नायिकभेद' नामक पुस्तक में की है। अज्ञातयौवना नायिका का यह उदाहरण लीजिए :

बईद हकीमवा बुलाव कोई गुइयाँ,
कोई लेओ रे खबरिया मोर।
खिरकी से खिरकी ज्यों फिरकी फिरत दुओ,
पिरकी उठल बड़े ज़ोर॥

आधुनिक युग में भी लोककवि की वाणी मौन नहीं है :

[1] डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ० ४४७।

भूखि के मारे बिरहा बिसरि गइल,
भूलि गइल कजरी कबीर।
अब गोरिया के देखिके उभड़ल जोबनवा,
उठेला करेजवा में पीर॥

बिरहों के कुछ और उदाहरण लीजिए :

गोरि गोरि बहियाँ गोरि गोदना गोदावेले।
सुइया साले अल्हर[1] करेज।
अइसन गोदना गोदू रे गोदनरिया।
जइसे चूँनरी रँगेला रँगरेज॥
अमवा के लागेले टिकोरवा, रे सँगिया।
गुलरि फरेले हड़फोर[2]॥
गोरिया का उठले छाती के जोबनवा।
पिया के खेलवना रे होई॥
बगसर से गोरिया अकसर चलली।
भरि माँग मोतिया गुहाई॥
कवना चेलिकवा के परली नजरिया।
मोरि मोतिया गिरेले भहराई॥
कछुई बिअइलिहा कछुआ, ए रामा।
गंगा जी बिअइलिहा रेत॥
छोटि बिटिया त बेटवा बिअइलिहा।
बजर परीना एहि पेट॥
हथवा में डारे बेरउआ[3] रमरेखवा।
गरवा में डारेले रुदराछ[4]॥
ललकी पगरिया बान्हिके इयरवा,
जानी के उढ़रले बा जात॥

(ख) दुसाध पचरा—दुसाध लोग जिन गीतों को बड़े प्रेम से गाते उन्हें 'पचरा' कहा जाता है। जब दुसाधों में कोई व्यक्ति बीमार अथवा प्रेत-बाधा से पीड़ित होता है, उस समय उस जाति का कोई बूढ़ा बुलाया जाता है। वह रोगी को आरोग्य प्रदान करने के लिये देवी का आवाहन करता हुआ 'पचरा'

१ सुकुमार। २ हाड़ फोड़कर, अधिक फल लगना। ३ हाथ का कड़ा। ४ रुद्राच की माला।

प्रारंभ करता है। इन गीतों में देवी की स्तुति ही प्रधान रूप से पाई जाती है। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहता है। पचरा सभी स्थानों पर नहीं गाया जाता। इसके लिये पवित्र स्थान की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि गवैयों का यह विश्वास है कि इस गीत के गाने से देवी स्वयं वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। एक उदाहरण निम्नलिखित है :

कवरूँ देसवा से चलेली भगवती,
पहुँचेली मलिया आवास हो।
किया मोर सेवका बाझेला[1] देवघरवा,
किया जोहे बटिया हमार हो॥
मन के दुखवा से हो प्रेम जोती गंगा डूबे चललीं,
से हो गंगा मोसे घिनाई हो।
उहवाँ[2] से उठलीं बिरिझ[3] बन गइलीं,
कुसवा उखारि डसली सेज[4] हो॥
आरे चलु चलु भगता रे आपन देवघरवा,
करु ना देवघर के सिंगार रे।
कइसे में चली देवी आपन देवघरवा,
बचल[5] बा ठटरी[6] हमार रे॥
रुइया के फाहावा[7] से माँस के सिरिजली,
कानी अँगुरी चीरि डालेली प्रान हो।
घरवा ले अइली देविया देवघरवा,
दिया[8] बाती[9] बार[10] ना भांडार हो॥

गड़ेरिया लोगों के भी निजी गीत होते हैं। इनके एक मुख्य गीत का नाम 'सिउरिया' और दूसरे का 'पड़ोकी मार' है। ये लोग किसानों के खेतों में अपनी भेड़ों को 'हिरा' कर मस्ती के साथ गीत गाते रहते हैं। गोंड़ जाति के लोगों के गीतों को 'गोंड़ऊ' तथा कहारों के गीत को 'कहरवा' कहते हैं। इनमें हास्य रस की मात्रा अधिक होती है। ये लोग 'हुडुका' बाजा बजाते हुए गीत गाते हैं। तेलियों के गीतों—जो कोल्हू के गीत भी कहे जाते हैं—में शृंगार रस की मात्रा अधिक पाई जाती है। इनमें तैलिक जीवन का सुंदर चित्रण हुआ है। चमारों के गीत भी बड़े मनोरंजक होते हैं। इनका प्रधान बाजा 'डफरा' और 'पिपिहरी' है।

१ फँसना, कार्य में व्यस्त होना। २ वहाँ से। ३ घना। ४ बिछाना। ५ बच गया है। ६ अस्थि पंजर। ७ टुकड़ा, एक भाग। ८ दीपक। ९ बत्ती। १० जलाओ।

(५) श्रमगीत—श्रमगीत उन गीतों को कहते हैं जो किसी कार्य को करते समय गाए जाते हैं। श्रमिक वर्ग के लोग जब कोई काम करते हैं, तब वे अपनी थकावट दूर करने के लिये गीत भी गाते जाते हैं। इससे काम में मन लगा रहता है और थकावट भी नहीं मालूम होती। इस प्रकार के गीतों में जँतसार, रोपनी और चर्खा के गीत प्रसिद्ध हैं।

(क) जँतसार—चक्की पीसते समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'जँतसार' कहते हैं। यह शब्द 'यंत्रशाला' का अपभ्रंश रूप है। जाँता के गीतों में करुण रस की अधिकता दिखाई पड़ती है। इन गीतों में कहीं दुःखिनी विधवा का करुण क्रंदन सुनाई पड़ता है तो कहीं बंध्या स्त्री की मनोवेदना। कहीं विरहिणी स्त्री की व्याकुलता का वर्णन है तो कहीं सास के द्वारा बधू की नारकीय यंत्रणा का चित्रण :

चीउरा[1] कूटु चीउरा कूटु सँवरो तिरियावा[2] रे।
आरे हम जइबों सँवरो मगहरे[3] देसवा रे॥
रोइ रोइ सँवरो चीउरा रे कूटेली।
आरे हँसि हँसि उमर[4] बन्हावेले[5] रे॥
कई महीना बबुआ तोहरो रे पाएतवा[6]।
कतेक दिन रहबो बबुआ मगरे देसवा रे॥
छव महीना मातावा रहबों मगह देसवा।
बरीस मातावा रे जइबों मोरँग देसवा रे॥
काहे रे लागि[7] बबुआ जइबो मोरँग देसवा।
काहे रे लागि बबुआ मगहर देसवा रे॥
पान लागि मातावा रे जइबों मगह देसवा।
सुपारि[8] लागि मातवा जइबों मोरँग देसवा रे॥
कथिके[9] सरवते[10] बबुआ भँगबो[11] रे सुपरिया।
आरे कथि कँइची[12] बबुआ कटब पानावा रे॥
सोने के सरवते मातावा भँगबों रे सुपरिया।
आरे रूपे[13] के कँइची मातावा कतरबि पानावा रे॥
जाहु तुहु जाहु बबुआ मगह रे देसवा।
आपन कुसल सब भेजिह नु रे॥

१ चिउड़ा। २ स्त्री। ३ मगध। ४ पति। ५ बँधाया। ६ चरणों के पास। ७ किसलिये। ८ सुपारी। ९ किसका। १० सरौता (सुपारी काटने का औजार)। ११ काटोगे। १२ कैंची। १३ चाँदी।

मरले जनि मरहि बबुआ कटले जनि कटइह।
आरे मुदई[1] बबुआ करिह जारि छारवा[2] रे ॥

बाबा काहे के लवल[3] बगइचा[4], काहे के फुलवरिया लवल ए राम।
बाबा काहे के कइल मोर बियाहावा[5], काहे के गवनवा ए राम ॥
बेटी आमावा चीखन[6] बगइचवा, लोहे[7] फुलवरिया ए राम।
बेटी भुगुते[8] के कइलों तोर बियाहावा, दीन सोचे गवन कइलों ए राम ॥
बाबा सिर मोरा रोवेला रे सेनुर[9] बिनु, नयना कजरवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला रे बालक बिनु, सेजरिया कन्हैया[10] बिनु ए राम ॥
बेटी लागे देहु हाजीपुर के हटिया[11], करम[12] तोर बदलि देवों ए राम।
बाँका काँसवा पीतर सब बदली, करम कइसे बदली ए राम ॥
बेटी सिर तो भरबों रे सेनुर लेइ, नयना कजारवन लेइ ए राम।
बेटी गोद तोरे भरबों रे बालक लेइ, सेजिया[13] कन्हैया लेइ ए राम ॥

तुहुँ त जइब ए बएकल[14], देस परदेसवा ए राम।
हामारा के काहि सउँपी जइब[15], एकेलवा ए राम ॥
ससुरा में सउँपबि माई बापवा, राजावा नु ए राम।
नइहर सहोदर जेठ भइया, पियरवा[16] नु ए राम ॥

\+ + + +

कत धनि लिखेली बियोगवा, एकेलवा ए राम।
देहु ना राजावा रे हमरी, तलबिया[17] ए राम ॥
मोरी धनि अलप[18] बयसवा, एकेलवा ए राम।
बरहो बरिस पर घरवा, एकेलवा ए राम ॥
बर तर ढारे जीरवा[19] बएकल, सेज पर ढरले ए राम ॥
कवन कवन दुख तोरा, ए सँवरिया ए राम।
से दुख कह समुझाई, ए सँवरिया ए राम ॥
ससुर मोरा हउरे[20] ईसर, माहादेव नु ए राम।
सासु मोरी गंगा के गंगाजल, बाड़ी[21] नु ए राम ॥
भसुर मोरे हउरे घिवही[22], लडुइया[23] ए राम।
गोतिनि[24] मोरि मुँहवा, नीहारे[25] ए राम ॥

१ शत्रु। २ राख। ३ लगाया। ४ बगीचा। ५ विवाह। ६ खाना। ७ चुनना। ८ भोग करना। ९ सिंदूर। १० पति। ११ बाजार। १२ भाग्य। १३ पलंग, सेज। १४ पति। १५ सौंपना। १६ प्यारा। १७ तलब, मासिक वेतन। १८ अल्प, थोड़ी। १९ डेरा ढंडा। २० है। २१ हैं। २२ घी का बना हुआ। २३ लड्डू। २४ दायादिनि। २५ देखती है।

आताना[1] ही सुख तोरा बाड़े, ए सँवरिया राम।
लगली नौकरिया काहे छोड़वलू, ए सँवरिया ए राम॥
टेढ़ी पगरिया जब बन्हलसि[2], बएकलवा ए राम।
उलटि के नयनवा नाँहिं चितवेला[3], बएकलवा ए राम॥

केकरे करनवे[4] ए गोपीचंद, हाथ लेल तुमवा[5]।
केकरे करनवे हाथ सोटा[6] हो राम॥
तोहरे पर लिहलीं ए आमा, हाथ केर तुमवा।
कुकुरा[7] मरनवै हाथ सोटा हो राम॥
पुरुब तु जइह ए गोपीचंद, पच्छिम तेजबों।
बहिनी नगरिया ना हम तेजबों हो राम॥
भरि दीन गोपीचंद, माँगी चहि अइले।
साँझि बेरिया बहिना कावारवा[8] ठाढ़े हो राम॥
कुछु देर रुकिके, गोपीचंद बोलले।
हमें कुछु भोजन कारावहु हो राम॥
आँगन बहरइत[9] चेरिया लउड़िया[10]।
जोगीया के भीछा[11] देहि घालहु[12] हो राम॥
तोहारा ही हाथावा ए बहिनी, भीछा नाहि लेबों।
आरे जिन्ही रे, बोलेली, तिन्ही आवसु[13] हो राम॥
तर[14] कइली सोनवा, ऊपर तिल चाउर[15]।
जोगिया[16] के भीछा देबे चलली हो राम॥
तोहार[17] भीछवा ए बहिना, तोहार के बाढ़सु[18]।
हमें कुछु भोजनु करावहु हो राम॥
गुरू भइया कीरिये[19] गोबरधन कीरिये।
घारावा ना सीझली[20] रसोइया[21] हो राम॥
गुरू भइया हमही, गोबरधन हमही।
झूठी किरियवा बहिना खालू[22] हो राम॥
गुरू भइया, तुहु ही गोबरधन तुहु ही।
पिता, माता के नइया[23] बातालावहु[24] हो राम॥

१ इतना। २ बाँध लिया। ३ देखता है। ४ कारण। ५ तुमड़ी। ६ डंडा। ७ कुत्ता। ८ घर के पास। ९ झाड़ू देती हुई। १० लौंडी, दासी। ११ भिक्षा। १२ दे दो। १३ आवें। १४ नीचे। १५ चावल। १६ योगी। १७ तुम्हारा। १८ वृद्धि को प्राप्त करे। १९ शपथ। २० पकाना। २१ भोजन। २२ खाती हो। २३ नाम। २४ बताओ।

पिता के नामवा ए बहिना, होरिलसिंह राजवा।
माता के नामवा, मायेनवा हो राम ॥

पनवा छेवड़ि छेवड़ि[1] भजिया बनौलों।
लौंगन दिहलों धुँअरवा[2] हू रे जी ॥
सठिया कूटि कूटि भतवा रिन्हौलों[3]।
उपरा मुँगीया केरि दलिया हू रे जी ॥
मचिया बइठलि तुहुँ सासु बढ़ैतिन।
भसुरू जेंवना कैसे टारब हू रे जी ॥
आठों अंग मोरि, हे बहुआ नेतेवं ओहारिह।
लुलुआ[4] सरिखहे, जेंवना टारिह हू रे जी ॥
जेंवहिं बइठल भसुरू बढ़ेता।
हेठ[5] ले उपरवा निहारेले हू रे जी ॥
किअ तोर भसुरू जेंवना बिगारली।
किह नुनआ लौली बिसभोरे[6] हू रे जी ॥
नाहिं मोर भवही जेंवना बिगारलू।
नाहिं नुनआ लोलू बिसभोरे हू रे जी ॥
होत भिनुसरवा भसुरू डगवा दिवले।
छोट बड़ चलसु अहेर[7] खेले हू रे जी ॥
सभ केहू मारेला हरिना सावजना।
भसुरू मारेले आपन भइया हू रे जी ॥
मचिया बइठलि तुहुँ सासु बढ़ैतिन[8]।
हमारि टिकुलिया भुइयाँ गिरेला हू रे जी ॥
अइसनि बोलि जनु बोलू बहुरिया।
मोर बसती गइल बाड़े अहेरिया खेले हू रे जी ॥
सभ कर घोड़वा औरत दौरत।
बसती के घोड़वा बिसमाधल[9] हू रे जी ॥
सभकर तरवरिया अलकत झलकत।
बसती तरवरिया रकतें बूड़ल हू रे जी ॥
घरी राति गइल पहर राति गइल।
भसुरू केवड़िया भड़कावे हू रे जी ॥

[1] काटकर। [2] छौंकना। [3] पकाया। [4] हाथ। [5] नीचे से। [6] गलती से। [7] शिकार।
[8] श्रेष्ठ। [9] उदासीन, थका हुआ।

दुर तुहुँ कुकुरा दुरु रे बिलरिया।
नाहिं रे सहर सब लोगवा हू रे जी॥
हम हुँ त बसती सिंघ रजवा हू रे।
मोर बसती जुझले लड़इया हू रे जी॥
कहवाँ मारले कहवाँ लड़वले।
कौना बिरिछिया ओंठघवले[१] हू रे जी॥
बनहीं मरले बनहीं लड़वले।
चनन बिरिछिया ओंठघवले हू रे जी॥
तोहरा छोड़ि भसुरू अनकर ना होइबों।
रचि[२] एक लोथिया[३] देखाव हू रे जी॥
अगिया ले आव हू रे जी॥
जब लक भसुरू आगि आने गइले।
फुफुती[४] से निकले अँगरवा हू रे जी॥
संगहि भइली जरि छुरवा[५] हू रे जी॥

(ख) रोपनी—धान के खेत को रोपते समय 'रोपनी' के गीत गाए जाते हैं। धान रोपने का काम प्रायः मुसहर और चमारों की स्त्रियाँ किया करती हैं। गार्हस्थ जीवन का चित्रण इन गीतों में विशेष रूप से हुआ है। कोई स्त्री ससुराल के कष्टों को निवेदन करती हुई अपने पति से कहती है कि जब से मैं यहाँ आई तब से काम करते करते मेरे शरीर का चमड़ा सूख गया और सुख सपना हो गया। लोकगीतों में पति के प्रति स्त्रियों का विशुद्ध प्रेम तो बहुत मिलता है, परंतु पति का अपनी पत्नी के प्रति गाढ़ प्रेम बहुत कम दिखाई पड़ता है। परंतु रोपनी के गीतों में विशुद्ध स्त्री प्रेम की झाँकी उपलब्ध होती हैं।

मचिया बइठलि तुहु सासु हो बढ़इतिनि।
कहित त[६] आहो ए सासु जी पनिया के जयती नु रे की॥
कइसे तू आहो ए बहुआ, पनिया के जइबू।
ओहि रे नगरिया ससुर, भसुरवा बाड़े नु रे की॥
सासु के कहलकी[७] बहुआ मनबो ना कइली[८]।
चलि भइली पानी भरे कुंइयाँ नु रे की॥
घोड़वा चढ़ल राम मुसाफिर एक आवेले।
एक बून[९] आहो ए साँवरि पनिया पिआव नु रे की॥

१ सुला दिया। २ थोड़ा सा। ३ लाश। ४ साड़ी। ५ जलकर राख। ६ तो। ७ कहना, कथन। ८ नहीं माना। ९ बूँद।

पनिया पिअवली साँवरि दाँतवा झलकवली ।
तोरा संगे आहो मुसाफिर हम बलु[1] चलवि नु रे की ॥
ऊँच झरोखवा चढ़ि बिअही[2] निरेखेली नु रे की ॥
मचिया बइठल ए सासु जी, बढ़इतिनि ।
मोर सामी आहो ए सासु जी, उढ़री[3] ले आवेले नु रे की ॥
खोलहु आहो ए सँवरिया, चूनरी लहँगवा ।
लुगरी[3] पहिरि सुअरि[5] चरावहु नु रे की ॥
जाहु हम जनितीं ए मुसाफिर जाति के हव तू दूसधवा[6] ।
ससुर नगरिया तोहिके फँसिया दिअइतीं[7] नु रे की ॥
जूठ[8] मोर खइलू ए सँवरिया, पीठि लागि[9] सोवलू ।
तब हू ना तुहु जतिया बिचरलू[10] नु रे की ॥
अब तू भइलू ए सँवरिया, मोर पियरी दुसधिनिया[11] ।
सूअरि चराइ कइसों दिनवा काटहु नु रे की ॥

(ग) सोहनी—खेत में व्यर्थ की घास तथा पौधे उग आते हैं। उन्हें अलग कर देने को सोहना (निराना) कहते हैं। इस कार्य को करते समय जो गीत गाए जाते हैं वे 'निरौनी' या 'सोहनी' कहलाते हैं। ये 'निरवाही के गीत' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन गीतों में भी गार्हस्थ जीवन का वर्णन पाया जाता है। कहीं 'दारुनिया' सास अपनी बहू को अनेक प्रकार की यंत्रणा दे रही है, तो कहीं पति अपनी पत्नी के आचार पर संदेह करके उसकी अग्निपरीक्षा कर रहा है।

आमावा महुइया[12] के लगली केवड़िया[13],
लोहवा के लागल जंजीरिया[14] ए बालम ।
खोलहु प्राभु रे बजर केवड़िया,
ओसिए[15] भिजेले लामी केसिया ए बालम ॥
कइसे हम खोलीं धनि बजरे[16] केवड़िया,
मोरा गोदी सवती[17] सँवलिया बालक ।
खोलहु प्राभु रे बजर केवड़िया,
सवती के रूपवा दिखावहु ए बालम ॥

[1] बलिक। [2] विवाहिता। [3] रक्षिता, रखेल। [4] फटा पुराना कपड़ा। [5] शूकरी, सूअर। [6] एक नीच, अस्पृश्य जाति। [7] दिलाती। [8] जूठा। [9] पीठ से सटकर। [10] विचार किया। [11] दुसाध की स्त्री। [12] महुआ। [13] केवाड़। [14] जंजीर। [15] ओस। [16] वज्र, मजबूत। [17] सपत्नी।

का तुहु देखबू धनि सवती के रूपवा,
चानावा सुरुजवा के जोतिया[1] ए बालम ।
ओही भोजपुरवा से लोहवा मँगइबो,
लोहवा के टाँगावा गईंइबो[2] ए बालम ॥
ओही टाँगवा पर सान[3] चढ़इबो,
ओही से जँजीरिया कटइबो ए बालम ।
एक हाथे धरबो में सामी के जुलफिया,
एक हाथ सवती के झोंटवा[4] ए बालम ॥
सवती के छतिया पर सड़क कुटइबों,
लाख आवेला लाख जाला ए बालम ।
सवती के छतिया पर ओखरी[5] धरइबों,
कुटबों कमरिया[6] लाचाकाई[7] ए बालम ॥
सवती के छतिया पर जाँतावा गढ़इबों,
पिसबों लाहाँगवा[8] फहराई ए बालम ॥

आपाना ही माई बाप के रेसमी[9] दुलरुई,
सेर भरि लचिया[10] चबाई गोरिया रेसमी ॥
उपरा ओढ़ेले रेसमी ललकी चुनरिया[11],
नीचवा ओढ़ेले बुटिवाल[12] गोरिया रेसमी ॥
पहिरी ओढ़िय रेसमी चलली बजरिया,
राजावा गिरेला मुरुछाई[13] गोरिया रेसमी ॥
किया तोरे राजावा रे अइली जाड़ा जुड़िया[14],
किया तोरे बथेला[15] कापार गोरिया रेसमी ॥
नाहिं मोरे रेसमी रे अइली जाड़ा जुड़िया ।
नाहीं मोरे बथेला कापार गोरिया रेसमी ॥
तोहरो सुरति देखि हम मुरुछाइली,
जिया[16] मोरे बड़ा हुलसाय गोरिया रेसमी ॥
किया तोरे रेसमी रे साँचवा के ढारल,
किया तोके गहेंला[17] सोनार गोरिया रेसमी ॥
नाहीं हम राजावा साँचावा के ढारल,
नाहीं मोके गहेंला सोनार गोरिया रेसमी ॥

१ ज्योति । २ बनाना । ३ शाण, तेज । ४ बाल । ५ ओखली । ६ कमर । ७ झुकाकर । ८ लहँगा । ९ नाम विशेष । १० इलायची । ११ चादर । १२ बूटेदार । १३ मूर्छित होना । १४ जूड़ी । १५ दुखना । १६ हृदय । १७ गढ़ना ।

माई रे बापवा मोर दिहले जनमवा,
सुरति उरेहे[1] भगवान गोरिया रेसमी ॥

(घ) चर्खा—चर्खे के गीतों में आधुनिकता का पुट पाया जाता है। इन गीतों में राष्ट्रीय आंदोलन के कारण नवभारत का उल्लेख हुआ है। चर्खा कातने से देश की गरीबी दूर होगी, स्वराज्य की प्राप्ति होगी तथा देश समृद्ध बन जायगा, आदि विषयों का वर्णन इनमें उपलब्ध होता है :

सखिया सब मिलि चरखा चलावहु जुग पलटावहु हो ॥ टेक ॥
चरखा के राग सोहावन अति मन भावन हो।
सखिया सब मिलि चरखा चलावहु देस दुख टारहु हो ॥
चरखा के मनहर रूप सुखद छवि छावहु हो।
सखिया घर घर चरखा चलावहु जुग[2] पलटावहु हो ॥
चरखा सुराज[3] के सिंगार[4] से हिय हुलसावन हो।
सखिया बिहँसि बिहँसि सब कातहु, साज सजावहु हो ॥
चरखा सुदरसन चक्र[5] से सोक नसावन हो।
सखिया कातहु मनवाँ लगाइ, त राम गुन गावहु हो ॥
ललना जनम के बधइया[6] से मोद बढ़ावन हो।
सखिया सब मिलि चरखा चलावहु जुग पलटावहु[7] हो ॥

(६) देवी देवताओं के गीत—भोजपुरी प्रदेश में अनेक देवी देवताओं के गीत गाए जाते हैं जिनमें जिनमें शीतला माई, तुलसी जी और गंगा जी के गीत प्रसिद्ध हैं। कहीं कहीं काली मइया और हनुमान जी के गीत भी गाए जाते हैं। जब बालक को चेचक निकलती है, तब उसकी माता इस रोग की अधिष्ठात्री देवी शीतला देवी की पूजा करती है। वह बालक को नीम की टहनी से पंखा झलती है, क्योंकि लोगों का विश्वास है, कि शीतला का निवास नीम के वृक्ष पर है। रोग से बालक को आरोग्य प्रदान करने के लिये उसकी माता गीत गाती है। 'मोर मनवा राखनि हो मइया, कोरा के बालकवा भीखि दी'। जब स्त्रियाँ गंगास्नान के लिये जाती हैं, तब गंगा जी के भक्तिपूर्ण गीत समवेत स्वर से गाती हैं। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा का विशेष माहात्म्य माना जाता है। इस मास में तुलसी माता के गीत विशेषकर गाए जाते हैं। इन गीतों में तुलसी के लक्ष्मी की सपत्नी होने का उल्लेख पाया जाता है।

[1] चित्रित करना। [2] समय। [3] स्वराज्य। [4] शोभा। [5] सुदर्शन चक्र। [6] आनंद। [7] बदल दो।

किसी मनोकामना की सिद्धि के लिये काली जी की मनौती मानी जाती है। मनोरथ सिद्ध होने पर पूजा के अवसर पर इनके गीत गाए जाते हैं। हनुमान् जी, जिन्हें गाँवों में महावीर जी कहते हैं, बल और शक्ति के देवता हैं। इनके बारे में अपेक्षाकृत कम गीत उपलब्ध होते हैं। इन देवी देवताओं के गीतों में भक्ति के उद्गार तथा मंगलकामना का प्रकाशन हुआ है :

आरे उत्तर में सुमिरिलें उत्तर देवतवा,
दखिन में सुमिरों[1] बीर हनुमान हो।
आरे पूरुब में सुमिरिलें पूरुब देवतवा,
चलि भइलीं कमरू[2] का देस हो॥
आरे हूम[3] भइले जाप[4] भइले,
धुववाँ चलेला आकास हो।
आरे लेहु लेहु लेहु ए देबी,
धुँववाँ के बास[5] हो॥
आरे कथि[6] केरा[7] लकड़ी ए बाबा,
आरे कथि केरा घीव हो।
आरे कथि के पलउए[8] ए बाभन,
आरे करेल आहुतिया[9] हो।

(७) बाल गीत—

(क) खेल गीत—बच्चे जब खेल खेलते हैं, उस समय खेल संबंधी गीत गाते हैं। कबड्डी के खेल में 'कबड्डी' 'पढ़ाने' वाला बालक यह गीत गाता है :

'ए कबडिया रेता, भगत मोर बेटा।
भगताइन मोर जोड़ी, खेलबि हम होरी॥'

अथवा

'कबड़ी में लबड़ी पाताल हाहाराई।
चीलिह कउवा हाँक पारे बाघ लरि आई॥'

बालक एक दूसरे की मुट्ठी (मुष्टि) पर अपनी मुट्ठी रखते जाते हैं। उनमें

[1] स्मरण करता हूँ। [2] कामाख्या। [3] हवन। [4] जप। [5] सुगंध। [6] किस। [7] की। [8] पल्लव। [9] हवन।

से एक बालक अपने हाथ रूपी तलवार से उनको काटने का अभिनय करता हुआ यह गीत गाता है :

तार काटो तरकुल काटो, काटो रे वनखाजा।
हाथी पर के घुघुआ, चमकि चले राजा।
राजा के रजइया, बाबू के दोपाट्टा।
हींचि मारो घींचि मारो, मूसर अइसन बेट्टा॥

पशुओं को देखकर बालक मनोरंजन के लिये कभी कभी समवेत स्वर से गाने लगते हैं :

ए ऊटवाँ दुगो बुटवा दे।
भरल बाजार में पइसा ले॥

गीदड़ (सियार) के विषय में उक्ति है :

एक देखि लपटी, दुई देखि भटकी।
तीन देखि चलिहैं पराई।

साँड की 'ककुद्' को देखकर बालक कहते हैं :

साँडावा के पीठि पीठि बदुरी बिआइल जाला।
हे हा हा, हे हा हा, हे हा हा है॥

(ख) लोरी—ये वे गीत हैं जिन्हें माता बालकों को सुलाते समय गाती हैं।

चाना मामा, चाना मामा।
आरे आवऽ पारे आवऽ।
नदिया किनारे आवऽ।
सोना के कटोरवा में।
दूध भात खाए आवऽ।
मोरा बबुआ के मुँहवा में।
दूधवा घुटूकऽऽ॥

(८) विविध गीत—भोजपुरी में कुछ गीत ऐसे भी उपलब्ध होते हैं, जिनका अंतर्भाव उपर्युक्त श्रेणीविभाग में नहीं होता।

(क) झूमर—उक्त गीतों में झूमर, अलचारी, पूर्वी और निर्गुन मुख्य हैं। यज्ञोपवीत, विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर स्त्रियाँ झूम झूमकर समवेत

स्वर से गीतों को गाती हैं, जिन्हें 'झूमर' कहते हैं। ये गीत संभोग शृंगार से लबालब भरे हुए होते हैं। इन झूमरों का भाव जैसा सुंदर और सरस है, भाषा भी वैसी ही चलती हुई है। ये गीत द्रुत गति से गाए जाते हैं। टेक पद की आवृत्ति प्रायः गीत की प्रत्येक पंक्ति के बाद में की जाती है, जैसे :

ना जानो यार झुलनी मोर काहाँ गिरल,
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो,
ना जानो यार झुलनी मोर काहाँ गिरल।

मोरी धानी चुनरिया इतर गमके,
धनि बारी उमिरिया नइहर तरसे ॥ टेक ॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों,
मोर जेंवनवाला बिदेस तरसे ॥ मोरी० ॥
झझरे गेडुववा गंगाजल पानी,
मोर घूँटनवाला बिदेस तरसे ॥ मोरी० ॥
लवँग, इलायची के बीड़ा लगवली,
मोर कूचनवाला बिदेस तरसे ॥ मोरी० ॥
कलिया चुनि, चुनि सेजिया डसवलों,
मोर सूतनवाला बिदेस तरसे ॥ मोरी० ॥

किसी विरहिणी स्त्री की यह उक्ति कितनी सरस है :

पियवा जे चलेला उतर बनिजरिया,[१] कि केई रे छइहैं ना।
मोरा उजड़ल बँगलवा, कि केई रे छइहैं[२] ना ॥ टेक० ॥
घरवा त बाड़ी धनी छोटका रे भइया, कि उहे छइहैं ना।
तोरा उजड़ल बँगलवा, कि उहे छइहैं ना ॥
देवरा के छावल मन ही ना भावे,[३] कि तीलि[४] तीलि ना।
देवरा बूना[५] टपकावे, कि तीलि तीलि ना ॥
जब तुहुँ ए पिया जइब बिदेसवा, कि केई रे सोइहैं ना।
मोरा डासलि[६] सेजिया, कि केई रे सोइहैं ना।
घरवा त बाड़े धनी छोटका देवरवा, कि उहे रे सोइहैं ना।
तोरी डासलि सेजिया, कि उहे रे सोइहैं ना ॥

१ डा० उपाध्याय : भो० लो० गी०, भाग १, पृ० ८१। २ मरम्मत करेगा, छावेगा। ३ अच्छा लगता है। ४ बार बार। ५ बूँद। ६ बिछाई हुई।

देवरा के सोवल मन ही ना भावे कि तीलि तीलि ना।
देवरा डाँड़वा[1] चलावे, कि तीलि तीलि ना॥
जब तुहुँ ए पिया जइब बिदेसवा कि केई रे चभिहैं[2] ना।
मोरा लावल बिरवा, कि केई रे चभिहैं ना॥
घारावा त बाड़े धनी छोटका देवरवा, कि उहे[3] रे चभिहैं ना।
तोरा लावल बिरवा, कि उहे चभिहैं ना॥
देवरा के चाभल मन ही ना भावे, कि तीलि तीलि ना।
देवर मुसुकि[4] चलावे, कि तीलि तीलि ना॥

मैं तो तोरे गले को हार राजावा, काहे को लायो सवतिया॥ टेक॥
जाहु हम रहतीं बाँझ बँझिनियाँ[5], तब आइति[6] सवतिनिया।
राजावा हमरो दो दो है लाल[7], काहे को लायो सवतिया॥
जब हम रहितीं लंगड़ लूझी[8], तब आइति सवतिनिया।
राजावा हमरो सोटा[9] अइसन देह, काहे को लायो सवतिया॥
जब हम रहितीं काली कोइलिया[10], तब आइति सवतिनिया।
राजावा हमरो लाले लाले गाल, काहे[11] को लायो सवतिया॥
मैं तो तोरे गले को हार राजावा,[12] काहे को लायो सवतिया।

एहि पार गंगा रे ओहि पार जमुना, बिचवा चनन रुख[13] ठाढ़ रे।
तेहि तरे किसुना[14] बँसिया बजावइ, बँसिया बजावइ अजगूत[15] रे।
सूतलि रहलेउ सासु सपन एक देखेउ, सपना बड़ा अजगूत रे।
जनुक[16] सासु तोहार पूत अइले, बँसिया बजावइ अनभात[17] रे।
चुप रहु चुप रहु बहुअरि सीतल देइ, तोहार बोली मोही न सोहाइ[18] रे।
बिसरी[19] अगिनिया सीता मति उद्गार[20], छतिया हमार बिदरि[21] जाइ रे।*

(ख) अलचारी—'अलचारी' शब्द लाचारी से बना हुआ है, जिसका अर्थ है विवशता। जब किसी स्त्री का पति उसका कहना नहीं मानता अथवा वह परदेश में जाकर अपनी पत्नी की कुछ भी खोज खबर नहीं लेता, ऐसी लाचारी की अवस्था में ये गीत गाए जाते हैं। अनेक गीतों में पत्नी अपने पति को परदेश जाने के लिये बार बार मना करती है, परंतु वह नहीं मानता है। मैथिली में 'नचारी' गीत उपलब्ध हैं, भोजपुरी 'अलचारी' से इनकी बहुत कुछ समानता पाई जाती है।

[1] कमर। [2] खायगा। [3] वही। [4] मुस्करा करके। [5] बंध्या। [6] आती। [7] पुत्र। [8] लुँज। [9] लाठी। [10] कोयल। [11] किसलिये। [12] पति। [13] वृक्ष। [14] कृष्ण। [15] अद्भुत। [16] मानो। [17] अन्यमनस्क होकर। [18] अच्छा लगना। [19] विस्मृत। [20] उत्तेजित करना। [21] फट जाना। * पश्चिमी भोजपुरी।

निर्गुन—'निर्गुन' के गीत भक्तिभावना से ओतप्रोत रहते हैं। यद्यपि 'भजन' और 'निर्गुन' का वर्ण्य विषय एक ही है, परंतु इन दोनों के गाने की विधि में बहुत अंतर है। निर्गुन की एक विशेष लय होती है। इसमें बड़ी हृदयद्रावकता पाई जाती है। यह सुनने में बड़ा मधुर लगता है और श्रोताओं को रससागर में निमग्न कर देता है। निर्गुन की दूसरी पंक्ति 'आहो रामा' अथवा 'कि आहो मोरे रामा' से प्रारंभ होती है, और 'हो राम' से समाप्त होती है। कबीरदास की अटपटी वाणी 'निर्गुन' के नाम से प्रसिद्ध है। अतः इन गीतों का नाम भी 'निर्गुन' पड़ गया। इनके अंतिम पदों में कबीरदास का नाम प्रायः आता है, जैसे—'गावेले कबीरदास इहे निरगुनवा हो', परंतु इन्हें संतशिरोमणि कबीर की रचना नहीं समझनी चाहिए। निर्गुन के गीतों में रहस्यमयी भावनाओं की व्यंजना हुई है। उदाहरण के लिये :

बाला जोगी बाला जोगी कुववाँ खानेवले,
कि आहो मोरे रामा, डोरिया बरत दिनवा बीतल हो राम ॥
टूटि गइले डोरिया अवरु भसि गइले कुववाँ,
कि आहो मोरे रामा, केकरा दुअरिआ[1] दिनवा[2] काटबि ए राम।
हाथ छूँछ, फाँड़ छूँछ[3], केहू नाहीं बात पूछे,
कि आहो मोरे रामा, केकरा[4] दुअरिया दिनवा काटबि ए राम ॥
नैहर में भाई नाहीं ससुरा में सइयाँ नाँहीं,
कि आहो मोरे रामा, केकरा दुअरिया दिनवा काटबि ए राम।

पिया मोरे गइले रामा पुरुबी बनिजिया।
कि देके गइले ना, एक सुगना खिलौना ॥
कि देके गइले ना।
तोरा के खिअइबों सुगना दूध भात खोरवा।
कि लेइके सुतबों ना, दूनो जोबना के बिचवा ॥
कि लेइके सुतबों ना।
घरी राति गइले, पहर राति गइले।
सुगवा काटे लगले ना, मोरे चोलिया के बनवा ॥
कि काटे लगले ना।
अस मन करे सुगवा भुइयाँ ले पटकितीं।
कि दूजे मनवा ना, मोरे सामी के खिलौना ॥
कि दूजे मनवा ना।

१ द्वार। २ दिन काटना, कष्ट से समय बिताना। ३ रिक्त, खाली। ४ किसके।

उड़ल उड़ल सुगा गइले कलकतवा।
कि जाइके बइठे ना, मोर सामी जी के पगिया॥
कि जाइके बइठे ना।
पगरी उतारि सामी जाँघ बइठवले।
कि कह सुगा ना, मोरे घर के कुसलतिया॥
कि कह सुगा ना।
माई तोहरा कूटनी, बहिनि तोर पिसनी।
कि जइया कइली ना, तोर दउरी दोकनिया॥
कि जइया कइली ना।

(घ) **पूर्वी**—उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार के छपरा, चंपारन एवं आरा जिलों में 'पूर्वी' गीतों का बड़ा प्रचार है। पूर्वी जिलों में गाए जाने के कारण ही इनका नाम 'पूर्वी' (पुरबी) पड़ गया है। छपरा जिले के निवासी महेंद्र मिश्र ने पूर्वी के सैकड़ों गीतों की रचना की है जिनका संग्रह 'महेंद्र मंगल' नामक पुस्तिका में है।

पूर्वी गीतों के गाने की 'लय' बहुत ही मधुर होती है। इन गीतों की भाषा तथा भाव दोनों ही माधुर्य गुण से युक्त हैं। इनमें एक अपूर्व सरसता है जो जनता के मन को अनायास ही मुग्ध कर लेती है। भोजपुरी प्रदेश में इन गीतों का अत्यधिक प्रचार है। विवाह आदि अवसरों पर गवैए इन गीतों को बड़े प्रेम से गाते हैं। इनका वर्ण्य विषय शृंगार है:

सइयाँ मोरे गइले रामा, पुरुबी बनिजिया।
से लेइ हो अइले ना, रस बेंदुली टिकुलिया॥
से लेइ हो अइले ना।
टिकुली मैं साटि रामा बइठली अँटरिया।
से चमके लगले ना, मोर बिंदुली टिकुलिया से चमके०॥
खोलु खोलु धनिया रे बजर केवरिया।
से आजु तोरा ना, अइले सइयाँ परदेसिया॥
से आजु तोरा ना।

(ङ) **पहेलियाँ**—मानव प्रकृति रहस्यात्मक है। जब मनुष्य यह चाहता है कि उसके अभिप्राय को सर्वसाधारण न समझ सके तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, जो सामान्य लोगों की समझ से परे की होती है। संस्कृत साहित्य में पहेलियाँ प्रचुर परिमाण में पाई जाती हैं। हिंदी साहित्य में भी इनकी कमी नहीं है।

भोजपुरी पहेलियों (बुझौअल) का प्रधान उद्देश्य बालकों का मनोरंजन है। दो चार बालक जब एक साथ बैठते हैं तब आपस में 'बुझौवल बुझाते' हैं। एक प्रश्न करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। यदि पहेली हास्यरसोत्पादक हुई तो अन्य एकत्रित बालक खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। उदाहरणार्थ :

एक चिरइया चटनी, काट पर बइठनी।
काठ खाले गुबुर गुबुर, हगेले भुरुकनी॥

सूई में पिरोए गए सूत की उपमा पूँछ से दी गई है :

हती मुठी गाजी मियाँ, हतवत पोंछि।
इहे जाले गाजी मियाँ, धरिहे पोंछि॥

गाँवों में खेत सींचने का काम ढेंकुल से किया जाता है। कुएँ से पानी निकालने के लिये उसे ऊपर नीचे खींचते रहते हैं। लोककवि चिड़िया से उसकी समता करता हुआ कहता है :

आकास गइले चिरई, पाताल गइले बच्चा।
हुचुक मारे चिरई, पियाव मोर बच्चा॥

किसी किसी पहेली में पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख पाया जाता है, जैसे :

स्याम बरन मुख उज्जर काताना।
रावन सीस मँदोदरी जाताना॥
हनुमान पिता कर लेबि।
तब राम पिता भरि देबि॥

कोई पूछता है, कि उड़द का क्या भाव है? उत्तर—रावण (१०) तथा मंदोदरी (१) का सिर है=११ सेर। फिर प्रथम कहता है कि मैं हनुमान पिता—वायु—करके अर्थात् फटककर लूँगा। उत्तर—तब राम पिता (दसरथ) अर्थात् दस सेर मिलेगी।

इसी प्रकार से गणित संबंधी पहेलियों के उदाहरण भी दिए जा सकते हैं।

(च) सूक्तियाँ—गाँवों में बहुत सी सूक्तियाँ लोग समय समय पर कहते हैं जिनका संबंध दैनिक व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं से होता है। ऐसी सूक्तियाँ स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये समुचित भोजन के संबंध में भी होती हैं, जैसे :

खिचड़ी के चार यार, दही, पापड़, घी अचार॥

विभिन्न महीनों में जिन जिन वस्तुओं का सेवन स्वास्थ्य के लिये हितकर होता है उनकी सूची इस प्रकार है :

सावन हर्रे, भादों चीत, कुवार मास गुड़ खा तू मीत।
कातिक मुरई, अगहन तेल, पूस में कर डंड, दूध से मेल।
माघ मास घिउ खिचड़ी खाय, फागुन उठि के प्रात नहाय।
चैत नीम, बैसाखे बेल, जेठ सयन, असाढ़ के खेल॥

भोजन तथा संगीत कभी कभी ही सुंदर बन जाते हैं :

राग, रसोइया, पागरी, कभी कभी बन जाय।

इसी प्रकार से अन्य सूक्तियाँ भी हैं। भोजपुरी की लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, तथा सूक्तियों का कोई भी संग्रह अभी तक पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हुआ है।

चतुर्थ अध्याय

मुद्रित साहित्य

भोजपुरी मुद्रित साहित्य हाल ही में तैयार होने लगा है। कविता, कहानी, उपन्यास सभी लिखे जाने लगे हैं। मुद्रित साहित्य की विविध विधाओं का सामान्य परिचय निम्नांकित है :

१. कहानी

(१) सुमन—भोजपुरी भाषा में कहानी लिखनेवालों में श्री अवधबिहारी 'सुमन' प्रसिद्ध हैं। 'जेहल क सनदि' नाम से इनकी दस कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है[१]। इन कहानियों में 'सुमन' जी ने भोजपुरी समाज का सुंदर चित्रण किया है। तिलक तथा दहेज की प्रथा, बाल एवं वृद्ध विवाह, साधुओं के द्वारा ढोंग कर समाज को ठगने की प्रवृत्ति आदि विषयों को लेकर सुमन जी ने अपनी रचनाएँ की हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल है। स्थान स्थान पर मुहावरों तथा कहावतों का भी प्रयोग हुआ है। 'आतमघात' का एक अंश उद्धृत किया जाता है :

'जमुना घाट पर फूस का पलानी में बइठल बलिराम आपन दुरदसा पर झंखत रहलन। रहि रहि के उनुका मन में उठे कि गरीब भइला से बढ़िके दूसर कवनो भारी पाप नइखे।'

(२) राधिकादेवी—श्री राधिकादेवी श्रीवास्तव मौलिक कथाकार हैं, जिनकी अनेक कहानियाँ 'भोजपुरी' में प्रकाशित हुई हैं। ये घटनाओं की योजना में बड़ी पटु हैं। हास्यरस की कहानियाँ लिखती हैं। इधर 'भोजपुरी' पत्रिका में कई लेखकों की कहानियाँ छपी हैं, जो शिल्पविधि की दृष्टि से अच्छी हैं।

२. लोकनाट्य

नाट्य में गीत, संगीत और नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के साथ संगीत की योजना बड़ा आनंद प्रदान करती है, परंतु यदि इसके साथ ही

१ नया बिहार प्रेस, लिमिटेड, कदमकुआँ, पटना।

नृत्य भी हो तो आनंद की सीमा नहीं रहती। जनता नाटक देखकर जितनी प्रसन्नता का अनुभव करती है, उतनी अन्य किसी वस्तु से नहीं। प्रकाशित प्रमुख रचनाओं और उनके रचयिताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है :

(१) रविदत्त शुक्ल—गत शताब्दी में पं० रविदत्त शुक्ल ने 'देवाक्षर-चरित'[1] नाटक की रचना की थी जो काशी से सन् १८८४ ई० में प्रकाशित हुआ था। नाटक खड़ी बोली में लिखा गया है, परंतु इसके दो तीन अंकों की रचना भोजपुरी में हुई है। इसमें हास्य रस का पुट पाया जाता है। लेखक ने अनेक उदाहरणों द्वारा नागरी लिपि की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

(२) भिखारी ठाकुर—भोजपुरी के लोकनाट्यों में भिखारी ठाकुर का 'बिदेसिया' नाटक अत्यंत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है। इस नाटक को देखने के लिये हजारों की संख्या में दूर दूर से जनता एकत्रित होती है। भिखारी ठाकुर बिहार के छपरा जिले के कुतुबपुर गाँव के निवासी हैं। इन्होंने अपना परिचय देते हुए एक स्थान पर स्वयं लिखा है :

जाति के हजाम, मोर कुतुबपुर ह मोकाम।
छपरा से तीन मील, दियरा में बाबू जी,
पुरुब के कोना पर, गंगा के किनारे पर।
जाति पेसा बाटे, बिद्या नाहीं बाटे बाबू जी॥

इससे ज्ञात होता है, कि इनकी शिक्षा दीक्षा नहीं हुई। परंतु ये प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति हैं। अपनी जन्मजात प्रतिभा के बल से इन्होंने 'बिदेसिया' नामक नाटक की रचना की जिससे जनता में इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। इस नाटक की कथा संक्षेप में इस प्रकार है :

भोजपुरी प्रदेश का कोई पुरुष जीविकोपार्जन के लिये पूर्व देश (बंगाल) को जाता है। वहाँ वह बहुत दिनों तक रहता है तथा अपनी स्त्री एवं बालबच्चों की कुछ भी खोज खबर नहीं लेता। उसकी विरहिणी स्त्री किसी बटोही से अपना दुःख संदेश पति के पास भिजवाती है जिसे सुनकर वह अत्यंत दुःखित होता है और नौकरी छोड़कर घर लौट आता है।

विदेश गए हुए अपने पति को संबोधित करती हुई उसकी पत्नी कहती है[1] :

गवना कराइ सैयाँ घर बइठवले से,
अपने गइले परदेस रे बिदेसिया॥

[1] बिदेसिया नाटक, वाराणसी।

चढ़ली जवनिया बइरिनि भइली हमरी से,
के मोरा हरिहें कलेस रे बिदेसिया ॥
केकरा ले लिखिके मैं पतिया पठइबों से,
केकरा से पठइबों सनेस रे बिदेसिया ॥
तोहरे कारन सैयाँ भभुती रमइबों से,
धरबों जोगिनियाँ के भेस रे बिदेसिया ॥
दिनवाँ बितेला सैयाँ बटिया जोहत तोर,
रतिया बितेला जागि जागि रे बिदेसिया ॥

× × × ×

पति के बहुत दिनों तक घर न आने पर वह विरहिणी कहती है :

आमावा मोजरि गइले लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराला रे बिदेसिया ॥
एक दिन बहि जइहें जुलुमी बयरिया से,
डार पात जइहें भहराइ रे बिदेसिया ॥
झमकि के चढ़ली मैं अपनी अँटरिया से,
चारों ओर चितवों चिहाइ रे बिदेसिया ॥
कतहूँ ना देखों रामा सैयाँ के सुरतिया से,
जियरा गइले मुरुझाइ रे बिदेसिया ॥

भिखारी ठाकुर का यह नाटक इतना लोकप्रिय है कि इसके अनुकरण पर अनेक लोककवियों ने इसी नाम से कई नाटकों की रचना की है। पहले स्वयं भिखारी ठाकुर विवाह के अवसर पर इस नाटक का अभिनय किया करते थे, परंतु अब उनके शिष्यगण इसका प्रदर्शन करते हैं। अनेक लोक अभिनेताओं ने बिदेसिया नामक नाटक मंडली की स्थापना की है और वे भिखारी का शिष्य होने में गर्व का अनुभव करते हैं। भोजपुरी प्रदेश में लोकनर्तकों तथा अभिनेताओं का एक संप्रदाय सा बन गया है जो बिदेसिया नाटक का अभिनय करते हुए अपनी नृत्य कला का भी प्रदर्शन करता है। 'बिदेसिया' को नाटक नहीं बल्कि नृत्य-नाट्य समझना चाहिए।

(३) राहुल सांकृत्यायन—महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भोजपुरी में अनेक नाटकों की रचना की है। इन नाटकों का उद्देश्य जनता की गरीबी का वर्णन, समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा तथा द्वितीय महायुद्ध के समय जापान

तथा जर्मनी द्वारा किए गए अत्याचारों का चित्रण करना है। राहुल जी ने निम्नलिखित आठ नाटक लिखे हैं[1] :

(१) नइकी दुनिया, (२) जुनमुन नेता, (३) मेहरारुन के दुरदसा, (४) जोंक, (५) ई हमार लड़ाई, (६) देस रच्छक, (७) जपनिया राछछ, (८) जरमनवा के हार निहिचय।

इन नाटकों के नामों से ही इनके वर्ण्य विषय का पता लग जाता है। विद्वान् लेखक ने सीधी सादी परंतु चलती हुई भाषा में अपने भावों को प्रकट किया है। राहुल जी ने इन नाटकों की रचना कर भोजपुरी नाटककारों के लिये पथप्रदर्शन का कार्य किया है।

(४) गोरखनाथ चौबे—ने 'उल्टा जमाना' शीर्षक नाटक की रचना की है जिसमें उन्होंने आधुनिक समाज में सुधार के नाम पर फैली हुई बुराइयों का चित्रण सुंदर रीति से किया है। चौबे जी की भाषा बड़ी सरस तथा मुहावरेदार है। इन्होंने भोजपुरी लोकोक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग किया है।

(५) रामविचार पांडेय—इधर बलिया के डा० रामविचार पांडेय ने 'कुँवरसिंह' नाटक की रचना की है। इसमें सन् १८५७ ई० के प्रसिद्ध वीर बाबू कुँवरसिंह की वीरता का वर्णन बड़ी ओजपूर्ण भाषा में किया गया है।

(६) रामेश्वरसिंह—भोजपुरी के नाटककारों में प्राध्यापक रामेश्वरसिंह 'काश्यप' का विशिष्ट स्थान है। आप पटना के बी० एन० कालेज में प्राध्यापक हैं। आपका लिखा हुआ 'लोहासिंह' नाटक बड़ा ही प्रसिद्ध है। लेखक ने इसमें हास्यरस का अच्छा चित्रण किया है जिसे पढ़कर पाठक लोटपोट हो जाता है। राष्ट्रपति द्वारा यह पुरस्कृत भी हो चुका है।

३. कविता

(१) संत कवि—भोजपुरी प्रदेश में अनेक ऐसे संत कवियों का प्रादुर्भाव हुआ है जिन्होंने अपने हृदय के उद्गारों को प्रकट करने के लिये इसी भाषा को अपना माध्यम बनाया है। इन संतों की वाणी अभी पूर्णतया प्रकाशित नहीं है, परंतु जो ग्रंथ प्रकाश में आए हैं उनसे इनकी कविता की मनोरमता का परिचय मिलता है।

भोजपुरी साहित्य में संत कवियों का विशिष्ट स्थान है। इन संतों ने अपनी मातृभाषा में ही भक्ति के गीत गाए हैं। इन संतों में कबीर का नाम सर्वश्रेष्ठ है,

[1] किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित।

जिन्होंने भोजपुरी में भी कुछ पदों की रचना की है। कबीर ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी बोली 'पूरब' की है जिससे उनका अभिप्राय भोजपुरी से ही है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने कबीर की भाषा के संबंध में लिखा है कि जहाँ उन्होंने अपनी भाषा 'भोजपुरिया' का प्रयोग किया है वहाँ अवधी तथा व्रजभाषा के रूप भी दिखाई पड़ते हैं[1] :

कबीरदास ने भोजपुरी में थोड़े से ही पदों की रचना की है जिनमें एक प्रसिद्ध पद है :

कनवा फराइ जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाइ जोगी होइ गइले बकरा।
कहेले कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवा बान्हल जइबे पकरा॥

(क) धरमदास—धरमदास के विषय में कहा जाता है कि ये कबीर के शिष्य थे। बेलवेडियर प्रेस (प्रयाग) से 'धरमदास जी की शब्दावली' प्रकाशित हुई है। इनकी कविता में रहस्यवाद की झलक दिखाई पड़ती है। भाषा सीधी सादी है। एक उदाहरण निम्नांकित है[2] :

कहवाँ से जीव आइल, कहवाँ समाइल हो।
कहवाँ कइल मुकाम, कहवाँ लपटाइल हो॥
निरगुन से जोव आइल, सरगुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो॥

(ख) शिवनारायण—संत शिवनारायण का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में हुआ था। इन्होंने जिस संप्रदाय को चलाया वह 'शिवनारायणी मत' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है, जो हस्तलिखित रूप में विद्यमान हैं। इनके 'गुरु अन्यास' ग्रंथ का निर्माण सं० १७६१ वि० (१७३४ ई०) में हुआ था, जिससे इनके समय का पता चलता है। इन्होंने दोहा, चौपाई में अपना ग्रंथ लिखा है, परंतु कहीं कहीं जँतसार का भी प्रयोग किया है।

(ग) धरनीदास—ये बिहार के सारन जिले के 'माँझी' गाँव के निवासी तथा स्थानीय जमींदार के दीवान थे। एक दिन दफ्तर में काम करते समय इन्होंने वहाँ फैले हुए कागजों पर एक घड़ा पानी उड़ेल दिया। कारण पूछने पर इन्होंने बतलाया कि जगन्नाथ पुरी में भगवान् के वस्त्रों में आग लग गई है, उसे बुझाने

१ ओ० डे० वे० ले०, भाग १।
२ धरमदास जी की शब्दावली, पृ० ६३, शब्द ३।

के लिये ही मैंने ऐसा किया है। पता लगाने से यह घटना सच निकली। उसी दिन से इन्होंने दीवानगिरी छोड़ दी। इस संबंध में इनकी उक्ति प्रसिद्ध है :

राम नाम सुधि आई।
लिखनी अब ना करबि ए भाई ॥

इनके 'प्रेमप्रगास' नामक ग्रंथ की रचना सन् १६५६ ई० में हुई थी। अतः इनका आविर्भावकाल १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

बाबा धरनीदास कवि थे। इन्होंने दो ग्रंथों की रचना की है—(१) शब्द-प्रकाश, (२) प्रेमप्रगास। ये ग्रंथ माँझी के पुस्तकालय में हस्तलिखित रूप में विद्यमान हैं। इनकी कविता में कबीर की ही भाँति रहस्यवाद की झलक दिखाई पड़ती है। 'प्रेमप्रगास' की पंक्तियाँ ये हैं[1] :

बहुत दिनन्ह पिया बसल बिदेस।
आजु सुनल निजु आवन सँदेस ॥
चित्र चित्रसरिया में लिहल लिखाई।
हिरदय कँवल धइलो दियरा लेसाई ॥
प्रेम पलँग तहाँ धइलो बिछाई।
नख सिख सहज सिंगार बनाई ॥

(घ) लक्ष्मी सखी—ये बिहार के सारन जिले के अमनौर गाँव में पैदा हुए थे। इनका समय २०वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनके पिता का नाम मुंशी जगमोहनदास था। लक्ष्मी सखी का नाम लक्ष्मीदास था, परंतु सखी संप्रदाय का अनुयायी होने के कारण इनके नाम के आगे 'सखी' शब्द अभिन्न रूप से लगा हुआ है।

इन्होंने चार ग्रंथों की रचना की है—(१) अमर सीढ़ी, (२) अमर कहानी, (३) अमरविलास, (४) अमर फरास। लक्ष्मी सखी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'अमर सीढ़ी' है जो इनके अन्य ग्रंथों से बड़ा है। इनकी कविता बड़ी सरस, मधुर तथा मर्मस्पर्शी है। ऐसा ज्ञात होता है कि इस संत कवि ने अपना हृदय ही निकालकर अपनी कविता में रख दिया है। ये प्रेममार्ग के अनुयायी परम भक्त कवि थे। इनकी कविता का एक उदाहरण लीजिए :

मने मने करीले गुनावति हो, पिया परम कठोर।
पाहन पसीजि पसीजि के हो, बहि चलत हिलोर ॥

[1] इनके विशेष वर्णन के लिये देखिए—डा० उपाध्याय : भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन।

जे उठत बिसय लहरिया हो, छने छने में घँघोर।
तनिको ना कनखि नजरिया हो, चितवत मोर ओर॥
तलफीले आठो पहरिया हो, गति मति भइली भोर।
केहु ना चीन्हेला अजरिया हो, बिनु अवधकिसोर॥
कइसे सहीं बारी ऐ उमिरिया हो, दुख सहस कठोर।
'लछिमी सखी' मोरा नाहीं भावेला हो, पथ भात परोर॥

(ङ) सरभंग मत—इधर बिहार के चंपारन जिले में एक विशेष संप्रदाय के संत कवियों का पता चला है जिनके मत का नाम 'सरभंग' है। इस संप्रदाय के साधु 'औघड़ बाबा' कहकर पुकारे जाते हैं। इस संप्रदाय में अनेक संत कवि हुए हैं जिनमें से कुछ के नाम हैं—भिनकराम, भिखमराम, सनाथराम, बेखनराम, टेकमनराम, मँगरूराम, भुश्रालराम आदि। इन महात्माओं के मठ इस जिले के विभिन्न स्थानों में पाए जाते हैं।

सरभंग संप्रदाय के अनुयायी निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं। ये हठयोग में भी विश्वास रखते हैं। इन लोगों में से कुछ बहुत अच्छे कवि हुए हैं, परंतु अभी तक इनकी कृतियों का सम्यक् अध्ययन तथा विवेचन नहीं हो पाया है। इस संप्रदाय के कवियों ने भोजपुरी में अपनी रचना की है। एक उदाहरण लीजिए[1] :

चलु मन हो गंगा जी के तीरा।
इंगला पिंगला नदिया बहत है, बरसत मति जल नीरा।
अनहद नाद गगन धुनि बाजे, सुनत कोई जन धीरा।
सुखमन देह में कमल फुलइले, तहवाँ बसे रघुबीरा।
सिरी भिनकराम स्वामी पावेले निरगुन ग्यान गंभीरा॥

(२) आधुनिक कवि—

(क) बिसराम—भोजपुरी के आधुनिक कवियों में बिसराम का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। इनका मन पढ़ने में नहीं लगता था। अतः इनकी शिक्षा विशेष नहीं हो सकी। युवावस्था में अकाल में ही इनकी स्त्री कालकवलित हो गई। इससे इनके कविहृदय को बड़ी चोट लगी।

बिसराम ने कविहृदय प्राप्त किया था। इनकी प्रतिभा बिरहों में रूप में व्यक्त

१ विशेष के लिये देखिए—डा० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, 'पाटल', मार्च-मई, ५४ ई०; दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह : भोजपुरी कवि और उनका काव्य।

हुई है। इनके केवल २०–२५ बिरहों का पता अब तक चल सका है। परंतु ये ही इनकी काव्यकुशलता, प्रकृतिनिरीक्षण तथा स्वाभाविक वर्णन को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं। इनकी कविता में शब्दाडंबर न होकर हृदय की तीव्र वेदना की अनुभूति पाई जाती है।

अपनी मृत पत्नी का शव श्मशान जाते हुए देखकर बिसराम के हृदय में जो दुःख हुआ उसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है :

आजु मोरी घरनी निकरली मोरे घर से।
मोरा फाटि गइले आल्हर करेज॥
राम नाम सत हो सुनि मैं गइलौं बउराई।
कवन रछसवा गइले रानी के हो खाई॥
सूखि गइले आँसू नाहीं खुलेले जबनियाँ।
कइसे के निकारों मैं तो दुखिया बचनिया॥

अपनी प्रियतमा से मिलने के लिये कवि तमसा नदी से प्रार्थना करता है :

मोरी हड़ियन के माता उहवाँ ले जइह।
जहवाँ उनुकर हड़ियन के रहे चूर॥

बिसराम की अंतिम अभिलाषा कितनी मर्मस्पर्शी है।

(ख) रामकृष्ण वर्मा—काशीनिवासी श्री रामकृष्ण वर्मा बड़े ही साहित्यिक जीव थे। सरसता तथा मधुरता इनके जीवन में कूट कूटकर भरी थी। इन्होंने 'बिरहा नायिकाभेद' नामक पुस्तिका लिखी है जिसमें बिरहा छंद में नायिकाभेद का वर्णन किया गया है। कविता में इनका नाम 'बलबीर' था। इन्होंने भोजपुरी में साहित्यिक बिरहों की रचना की है। खंडिता नायिका का वर्णन कितना सटीक है :

ओठवा के छोरवा कजरवा, कपोलवा,
पे पिकवा के परली लकीर।
तोरी करनी समुझि के करेजवा फाटत,
दरपनवाँ निहारो 'बलबीर'॥

मध्या नायिका का यह चित्रण देखिए :

लजिया के बतिया मैं कइसे कहौं भउजी,
जे मोरा बूते कहलो ना जाय।
पर के फगुनवा के सिइली चोलिया में,
असों ना जोबनवा अमाय॥

(ग) तेग अली—ये बनारस के ही रहनेवाले थे। इन्होंने बनारसी बोली (पश्चिमी भोजपुरी) में 'बदमाश दर्पण' नामक पुस्तिका की रचना की[1]। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें बनारसी लोगों की बोली का सच्चा स्वरूप दिखलाई पड़ता है :

> हम खरमिटाव कइली है रहिला चबाय के।
> भेंवल धरल बा दूध में खाझा तोरे बदे ॥
> जानीला आजकल में झनाझन चली राजा।
> लाठी, लोहाँगी, खंजर औ बिछुआ तोरे बदे ॥

(घ) दूधनाथ उपाध्याय—ये बलिया जिले के दया छपरा गाँव के निवासी थे। जीवन का अधिकांश भाग इन्होंने मिडिल स्कूल की हेडमास्टरी में बिताया। ठेठ भोजपुरी में बड़ी सुंदर कविता करते थे। इन्होंने तीन पुस्तिकाओं की रचना की—(१) भरती के गीत, (२) गो-विलाप-छंदावली, (३) भूकंप पचीसी। 'भरती के गीत' अधिक प्रसिद्ध है, जो प्रथम महायुद्ध के अवसर पर भारतीय जनता को सेना में भरती होने को प्रोत्साहित करने के लिये लिखी गई थी। उन दिनों इस पुस्तिका का बड़ा प्रचार था। कवि अपने भाइयों से सेना में भरती होने की 'अपील' करता हुआ कहता है :

> हमनी का सब जीव जान से मदति करि,
> दुहुट जरमनी के नहट कराइबी।
> जीव देइ, जान देइ, धन देइ, अन देइ,
> देह देइ, गेह देइ, मदति पठाइबी।
> भरती होखे मिलि जुलि अब फउदि में,
> कुल खानदान सब घर के सिखाइबी।
> दूधनाथ हमनी का सब केहू जाइ अब,
> जरमन फउदि के माँटी में मिलाइबी ॥

(ङ) रघुबीरनारायण—इनका जन्म बिहार के छपरा जिले के नया गाँव में हुआ में हुआ था। अभी हाल ही में इनका स्वर्गवास हुआ है। रघुवीर-नारायण जी की एकमात्र प्रधान रचना 'बटोहिया' गीत है जिससे इनको बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इस गीत में राष्ट्रीयता कूट कूटकर भरी हुई है। प्रत्येक पंक्ति में भारत के अतीत गौरव का चित्र अंकित है। भोजपुरी प्रदेश में 'बटोहिया' का

१ लहरी प्रेस, काशी से प्रकाशित।

गीत 'बिदेसिया' की ही भाँति प्रसिद्ध है। इस गीत में भारत का जो चित्र खींचा गया है वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। इसकी कुछ कड़ियाँ हैं :

सुंदर सुभूमि भइया भारत के देसवा से,
मोरे प्रान बसे हिमखोह रे बटोहिया।
एक ओर घेरे रामा हिम कोतवालावा से,
तीन ओर सिंधु घहरावे रे बटोहिया॥
× × × ×
सोता के बिमल जस, राम जस, कृष्ण जस,
मोरे बाप दादा के कहानी रे बटोहिया।
गंगा रे जमुनवा के निरमल पनिया से,
सरजू झमकि झहरावे रे बटोहिया॥

इस गीत को अन्य नवयुवक कवियों को प्रेरणा देने का भी श्रेय प्राप्त है।

(च) मनोरंजनप्रसाद—ये छपरा में राजेंद्र कालेज के प्रिंसिपल हैं तथा बड़े ही सरल और सहृदय व्यक्ति हैं। ये खड़ी बोली तथा भोजपुरी दोनों में अच्छी कविता करते हैं। इनका 'फिरंगिया' गीत बड़ा प्रसिद्ध है जो असहयोग आंदोलन के समय गाँव गाँव और घर घर में गाया जाता था। मनोरंजन बाबू को 'फिरंगिया' की प्रेरणा 'बटोहिया' से प्राप्त हुई थी। इस गीत में अँगरेजों द्वारा देश के शोषण तथा जलियाँवाला बाग के अत्याचारों का सजीव वर्णन है। पंजाब के हत्याकांड का चित्रण बड़ा मर्मस्पर्शी है :

आजु पंजाबवा के करिके सुरतिया से,
फाटेला करेजवा हमार रे फिरंगिया।
भारत की छाती पर, भारत के बचवन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरंगिया।
दुधमुँहा लाल सब बालक मदन सम,
तड़पि तड़पि देले जान रे फिरंगिया॥

(छ) डा० रामविचार पांडेय—आप उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी हैं तथा वैद्यक का कार्य करते हैं। भोजपुरी में आपकी सुंदर कविता होती है जिसके कारण आपको 'भोजपुरीरत्न' की उपाधि दी गई है। इनके 'कुँवरसिंह' नाटक का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। इनकी कविताओं का संग्रह 'बिनिया बिछिया' के नाम से प्रकाशित हुआ है। पांडेय जी की काव्यभाषा बड़ी प्रांजल तथा सरस है। आपने मुहावरों का समुचित प्रयोग किया है। 'अँजोरिया' शीर्षक इनकी कविता बड़ी प्रसिद्ध है जिसका एक पद्य इस प्रकार है :

टिसुना जागलि सिरिकिसुना के देखके।
त आधी रतिए खा उठि चलली गुजरिया।
चान का नियर मुँह चमकेला राधिका के।
चम चम चमकेला जरी के चुनरिया॥
चकमक चकमक लहरि उठावे ओमें।
मधुरे मधुर डोले कान के मुनरिया।
गोखुला के लोग ई त देखिके चिहइले कि।
राति में आमावासा क ऊगलि अँजोरिया॥

पांडेय जी की कविताओं में भावगांभीर्य के साथ ही शब्दयोजना का सुंदर सामंजस्य दिखाई पड़ता है।

(ज) पं० रामनाथ पाठक 'प्रणयी'—भोजपुरी के उदीयमान कवियों में 'प्रणयी' जी का विशेष स्थान है। इनकी कविताओं के दो संग्रह 'कोइलिया' और 'सितार' प्रकाशित हो चुके हैं[1]। 'प्रणयी' जी की रचनाओं में प्रकृति का सुंदर चित्रण उपलब्ध होता है। ग्रामीण प्रकृति का सजीव वर्णन इनकी विशेषता है। इसके साथ ही शब्दों की सुमधुर योजना में ये अपना सानी नहीं रखते। गरीब जनता के शोषण तथा क्रंदन ने इनकी कविता में स्थान प्राप्त किया है। फिर भी ये प्रधानतया ग्रामीण प्रकृति के कवि हैं। 'पूस' मास के निम्नांकित वर्णन में कवि ने किसानों के जीवन का सजीव चित्र उपस्थित किया है[2]:

आइल पूस महीना अगहन लौट गइल मुसकात।
थर थर काँपत हाथ पैर जाड़ा पाला के पहरा।
निकल चलल घर से बनिहारिन ले हँसुवा भिनसहरा॥
धरत धान के थान अँगुरिया, ठिठुरि ठिठुरि बल खात।
आइल पूस महीना अगहन, लौट गइल मुसकात॥
ढोवत बोझा हिलत बाल के बाज रहल पैजनियाँ।
खेतन के लछिमी खेतन से उठि चलली खरिहनियाँ॥
पड़ल पथारी पर लुगरी में लरिका बा छेरियात।
आइल पूस महीना, अगहन लौट गइल मुसकात॥
राह बाट में निहुरि निहुरि नित करे गरीबिन बिनिया।
हाय! पेट के आग चुराले भागल सुख के निनिया॥

[1] भोजपुरी कार्यालय, आरा (बिहार)।

[2] 'भोजपुरी', वर्ष ३, अंक ४।

पलक गिरत उड़ि जात फूस दिन हिम पहाड़ बड़ रात।
आइल पूस महीना, अगहन लौट गइल मुसकात ॥
लहस उठल जव गहुँम बूँट रे, लहसल मटर, मसुरिया।
बाज रहल तीसी तारी पर छबि के मीठ बँसुरिया ॥
पहिरि खेंसारी के सारी साँवरगोरिया अँठिलात।
आइल पूस महीना, अगहन लौट गइल मुसकात ॥

'प्रणयी' जी ने जनजीवन में प्रवेश कर गाँव की प्रकृतिदेवी को देखा है। यही कारण है कि इनके वर्णन में इतनी सजीवता है। इनकी दूसरी कविता 'शरद' है, जिसकी प्रथम पंक्ति 'आइल शरद सुहावन' सचमुच बड़ी सुहावनी है। 'शीतल मधुर बयार चलल झिरझिर रस से मदमातल' को पढ़कर मन मस्त हो जाता है।

(झ) **प्रसिद्धनारायण सिंह**—ये बलिया के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं। इन्होंने 'बलिया जिले के कवि और लेखक' नामक पुस्तक लिखी है। देशप्रेम की उमंग में आकर ये कविता भी करते हैं, जिसमें राष्ट्रीयता का पुट प्रधान रहता है। प्रसिद्धनारायण जी की कविता में वीर रस का अच्छा परिपाक पाया जाता है। सन् १६४५ ई० में पं० जवाहरलाल नेहरू के बलिया आगमन पर इन्होंने 'जवाहर स्वागत' नामक कविता लिखी थी, जिसमें १६४२ ई० में बलिया में अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों का रोमांचकारी वर्णन है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

बेपीर पुलिस बेरहम फौज, डाका डललिन बेखौफ रोज।
गुंडाशाही के रहल राज, रिसवत पर कइले सभे मौज ॥
उफ जुलुम बढ़ल जइसे पहार।
गाँवन पर दगलनि गन मशीन, बेंतन सन मरलनि बीन बीन।
बैठाइ डार पर नीचे से, जालिम भोकलन खच खच संगीन ॥
बहि चलल खून के तेज धार।
घर घर से निकलल त्राहि त्राहि, कोना कोना से आहि आहि।
गाँवन गाँवन में लूट फूँक, मारल, काटल, भागल, पराहि ॥
फिर कौन सुने केकर गुहार ॥

(ञ) **महेंद्र शास्त्री**—ये बिहार के छपरा जिले के निवासी एवं बड़े सरल तथा मधुर प्रकृति के व्यक्ति हैं। आपकी कविता का वर्ण्य विषय जनता की गरीबी, किसानों की दुर्दशा, समाजसुधार और राष्ट्रप्रेम है। 'चोखा' तथा 'आज की आवाज', आपकी कविताओं के ये दो संग्रह प्रकाशित हो चुके

है[1]। शास्त्री जी ने समाज की खिल्ली भी इन कविताओं में उड़ाई है। कहीं कहीं तीखा व्यंग्य भी दिखाई पड़ता है। गरीब किसान का यह चित्रण कितना सजीव है :

बकुला नियर इनकर टाँग, खैनी खाले माँग माँग।
सउसे पेट, छोट बा छाती, गिनलीं इनकर बाती बाती।
मुँह से बीड़ी छूटेना, खर्ची कहियो जूटे ना।
लरिका होला साले साल, नाद निकलल पिचकल गाल।
टी० बी० के होइहैं सिकार, अइसन इनकर कारबार॥

(ट) श्यामबिहारी तिवारी—बिहार प्रांत के बेतिया जिले के निवासी तिवारी जी भोजपुरी में अच्छी कविता करते हैं। 'देहाती दुलकी' नाम से इनकी कविताओं का संकलन तीन भागों में प्रकाशित हो चुका है[2]। आपका कविता में उपनाम 'देहाती' है। 'देहाती' जी ने देहाती दुनिया का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। कृषक जीवन की कठिनाइयाँ, आर्थिक कष्ट, समाज में विषमता आदि विषयों को आपने कविता में स्थान दिया है। हास्य तथा शृंगार दोनों रसों का पुट इनकी रचनाओं में पाया जाता है। ग्रामीण स्त्री की मनोभिलाषा का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :

मनवा अइसन मोर करत बा, हमहूँ नाँचीं कजरी गाईं।
अपना सामसुनर के आगे, उनुका के मन भर ललचाईं।
जे रोगिया के भावे, काहे ना बैदा फुरमावे।
नाच गुजरिया, कजली गावे॥

(ठ) चंचरीक—'चंचरीक' जी ने 'ग्राम गीतांजलि' की रचना की है[3] जिसमें सोहर, बारहमासा, बिरहा, पूर्वी आदि छंदों में आधुनिक विषयों का वर्णन किया गया है। चर्खा के ऊपर कविता है :

झुर झुर बहति बयरिया ननदिया हो।
फर फर डोले मोर चरखवा हो जी।
सुनु सुनु हमरो बचनिया भउजिया हो।
हमहू साथवा कतबे चरखवा हो जी॥

(ड) रणधीरलाल श्रीवास्तव—रणधीरलाल जी भोजपुरी के नवयुवक कवि हैं। इन्होंने 'बरवै शतक' की रचना की है, जिसमें सरस तथा मधुर भाषा में

१ राहुल पुस्तकालय, महाराजगंज (सारन) से प्रकाशित।
२ सागर प्रेस, बसवरिया, जिला चंपारन।
३ ठाकुर महातम राव, रेती चौक, गोरखपुर।

सौ कविताएँ बरवै छंद में लिखी हैं। इसमें ग्रामीण उपमानों की योजना के साथ ही भोजपुरी मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया गया है। भाषा चलती एवं सरल है। शुक्लाभिसारिका का यह वर्णन लीजिए :

टह टह उगलि अजोरिया, ठहरे ना आँखि।
पहिरि चलैलीं लुगवा, बकुला पाँखि ॥

आलसी पति का चित्रण इस प्रकार किया गया है :

बीतलि राति चुचुहिया, बोलन लागि।
पहवो फाटल पियवा, अब तू जागि ॥

विरहिणी स्त्री का चित्रण :

बिरह अगिनिया छतिया, धधके मोर।
गलि गलि बहेला करेजवा, अँखियन कोर ॥

(ढ) रामेश्वरसिंह 'काश्यप'—नाटककार के रूप में काश्यप जी का वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। यह उच्च कोटि के कवि भी हैं। बेतिया भोजपुरी कवि संमेलन में इन्होंने सभापति के पद से अपना भाषण पद्य में ही दिया था। इनकी भाषा में जोश तथा जीवट है। कुछ पद्य उपर्युक्त भाषण से यहाँ दिए जाते हैं :

फक्कड़ कबीर के बोली में बोलेवाला,
ई भोजपूर बिद्रोह, आग के पुतला ह।
चउदहो जिला चिंघाढ़ उठे मिल एक बार।
तब ओकर आगे सँउसे दुनिया कुछ ना ह ॥
जब भोजपूर के बिखरल तागद मिल जाई,
जब उमगी चढ़ल जवानी से छनके मस्ती।
तब ओकरा खातिर बहुत छोट बा आसमान।
तब ओकरा खातिर बहुत छोट बाटे धरती ॥

(ण) हृदयानंद तिवारी 'कुमारेश'—ये बलिया जिले के रेवती ग्राम के निवासी हैं तथा कविता में अपना नाम 'कुमारेश' रखते हैं। तिवारी जी भोजपुरी के उन उदीयमान नवयुवक कवियों में हैं जिन्होंने वीररस का पल्ला पकड़कर कविता में जान डाल दी है। सन् १९४२ ई० में बलिया जिले में अँग्रेजों द्वारा जो अत्याचार हुआ उन्हीं घटनाओं को लेकर इन्होंने एक वीररसात्मक खंडकाव्य 'क्रांतिदूत' की रचना की है। इस काव्य का नायक कौशलकुमार है जो स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हो गया था। 'कुमारेश' की कविता ओजगुण से परिपूर्ण है। कहीं कहीं शब्दयोजना के प्रयास में भाव दब से गए हैं। वीररस के अतिरिक्त

तिवारी जी शृंगार रस की भी रचनाएँ करते हैं, जिनमें 'आजु मुसुकाइल मना वा' कविता प्रसिद्ध है।

इन चंद पृष्ठों में भोजपुरी के कुछ प्रसिद्ध कवियों का ही संक्षिप्त परिचय दिया जा सका है। हम अन्य कवियों का केवल नामोल्लेख भर कर संतोष करते हैं। 'अशांत', सुरेंद्र पांडेय, भुवनेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव, रामवचनलाल, रमाकांत द्विवेदी 'रमता', शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', रामशृंगार गिरि 'विनोद', रामज्ञान पांडेय, सरयूसिंह 'सुंदर', मोती बी० ए०, 'विप्र' जी, 'राहगीर' जी आदि प्रसिद्ध हैं। महादेवप्रसाद सिंह ने 'लोरिकायन', 'बालालखंदर', 'नयकवा बनजारा' की कथाओं को लेकर कविता की है जो केवल वर्णनात्मक है।

दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हबड़ा (कलकत्ता). तथा गुल्लूप्रसाद केदारनाथ बुक्सेलर, कचौड़ी गली, वाराणसी से भोजपुरी भाषा में अनेक अज्ञात कवियों की छोटी छोटी पुस्तिकाएँ निकली हैं, जिनमें वृद्ध विवाह, बाल विवाह, स्त्रियों में पर्दे का विरोध, नवयुवकों का व्यसन, विवाह में तिलक दहेज की प्रथा आदि का वर्णन है। काव्य की दृष्टि से इन पुस्तकों का विशेष महत्व नहीं है परंतु गाँवों में इनका बड़ा प्रचार है। इनमें से कुछ नाम ये हैं—'झरेलवा झरेलिया बहार', 'पूर्वी का परी', 'चंपा चमेली की बातचीत,' 'प्यारी सुंदरी वियोग,' 'गारी मनोरंजन', 'मेला घुमनी', 'गंगा नहवनी', 'ननदी भउजिया', 'नैहर खेलनी' आदि।

परिशिष्ट

(लोक-साहित्य-संग्रह)

भोजपुरी के लोकसाहित्य के संग्रह का श्रीगणेश यूरोपीय विद्वानों ने किया, जिनमें से अधिकांश इस देश में सिविल सर्विस में होकर आए थे। ऐसे विद्वानों में सर जार्ज ग्रियर्सन का नाम मुख्य है जिन्होंने आज से अस्सी वर्ष पूर्व भोजपुरी लोकगीतों के संकलन का कार्य प्रारंभ किया था। इन्होंने रायल एशियाटिक सोसाइटी (इंगलैंड) की शोधपत्रिका में भोजपुरी गीतों के संग्रह के साथ ही उनका अंग्रेजी अनुवाद भी छपाया था। इसके साथ ही कठिन शब्दों पर भाषातत्व संबंधी टिप्पणियाँ भी दीं। डा० ग्रियर्सन द्वारा लिखे गए लेख हैं :

(१) सम बिहार फोक सांग्स—जे० आर० एस०, भाग १६ (१८८४ ई०), पृ० १९६।

(२) सम भोजपुरी फोक सांग्स—जे० आर० एस०, भाग १७ (१८८६ ई०), पृ० २०७।

(३) फोक लोर फ्राम ईस्टर्न गोरखपुर—जे० ए० एस० बी०, भाग ५२ (१८८३ ई०), पृ० १।

(ह्यूजर फ्रेजर ने गीतों का संग्रह किया था, जिसका टिप्पणियों के साथ संपादन ग्रियर्सन ने किया है।)

(४) टू वर्शन्स आव दि सांग आव गोपीचंद—जे० ए० एस० बी०, भाग ५४ (१८८५ ई०), पार्ट १, पृ० ३५।

(५) दि सांग आव विजयमल—जे० ए० एस० बी०, भाग ५३ (१८८४ ई०), पार्ट ३, पृ० ६४।

(६) दि सांग आव आल्हाज मैरेज—इंडियन एंटीक्वेरी, भाग १४ (१८८५), पृ० २०६।

(७) ए समरी आव दि आल्ह खंड—वही, पृ० २२५।

(८) सेलेक्टेड स्पेशिमेंस आव दि बिहारी लैंग्वेज—दि भोजपुरी डाइलेक्ट, दि गीत 'नायका बनजरवा'—जेड० डी० ए०, भाग ४३ (१८८६), पार्ट २ पृ० ४६७।

(१०) दि सांग आव मानिकचंद—जे० ए० एस० बी०, भाग १३, खंड १, सं० ३ (१८७८ ई०)

इस लेख में गोपीचंद की कथा का बँगला रूप दिया गया है तथा इसकी ऐतिहासिकता पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। डा० ग्रियर्सन ने इन शोधपूर्ण लेखों को लिखकर विद्वानों का ध्यान लोकसाहित्य की ओर आकर्षित किया, जिससे प्रेरित होकर अन्य अंग्रेजी अफसरों ने भी इस दिशा में योगदान दिया।

ए० जी० शिरेफ ने 'हिंदी फोक सांग्स' नामक पुस्तक में भोजपुरी के कुछ गीतों का संग्रह कर अंग्रेजी में उनका अनुवाद किया है जो हिंदी मंदिर, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है :

इधर कुछ विद्वानों ने भोजपुरी लोकगीतों का संग्रह और संपादन वैज्ञानिक ढंग से किया है :

(१) **डा० कृष्णदेव उपाध्याय**—भोजपुरी लोकगीत, भाग १।

इसमें सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, परिहास, गवना, जाँत, छठी माता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा, कजली, चैता, बिरहा, भजन आदि १५ प्रकार के २७१ गीतों का संकलन है।

(२) **डा० कृष्णदेव उपाध्याय**—भोजपुरी ग्रामगीत, भाग २।

इस पुस्तक में सोहर, जोग, सेहला, विवाह, बहुरा, पिड़िया, गोधन, नागपंचमी, जँतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, डफ, चैता, सोहनी, रोपनी, बिरहा, कहँरऊ, गोंड गीत, पचरा, निर्गुन, देशभक्ति, पूर्वी, पाराती और भजन इन

पचीस प्रकार के ४३० गीतों का संकलन है। पुस्तक के अंत में भाषाशास्त्र संबंधी टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

(३) **दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह**—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस[१]। इसमें १६ प्रकार के सैकड़ों गीतों का संकलन है।

इनकी दूसरी पुस्तक का नाम है भोजपुरी के कवि और उनका काव्य[२]। इस पुस्तक में भोजपुरी के कवियों का इतिवृत्त देकर उनकी कविताओं का संग्रह किया गया है। लेखक ने ऐसे कवियों का पता लगाया है, जो अभी तक अज्ञात थे।

(४) **डब्लू० जी० आर्चर तथा संकठाप्रसाद**—भोजपुरी ग्राम्य गीत[३]। इस संग्रह में प्रधानतया विवाह के गीतों का संकलन है। ग्रंथ में केवल गीतों का मूल पाठ दिया है।

(५) **रामनरेश त्रिपाठी**—त्रिपाठी जी ने भोजपुरी गीतों का कोई पृथक् संग्रह प्रकाशित नहीं किया है। परंतु इनके संकलनों—'कविता कौमुदी' भाग ५ (ग्रामगीत), 'हमारा ग्रामसाहित्य' तथा 'सोहर' में भोजपुरी के अनेक गीत दिए गए हैं। श्री देवेंद्र सत्यार्थी की पुस्तकों में भी भोजपुरी के दो चार गीत पाए जाते हैं।

भोजपुरी लोककथाओं का अभी तक कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने ३०० लोककथाओं का संकलन किया है। बिहार के श्री गणेश चौबे ने ४०० लोककथाओं का संग्रह तथा अध्ययन किया है जिससे अनेक सामाजिक तथ्यों का पता चलता है। इसके साथ खेती संबंधी पारिभाषिक पदावली का संग्रह कर राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना को दिया है। अनेक शोधपत्रों तथा पत्रिकाओं में इनके लेख प्रकाशित हो चुके हैं। ये 'इंडियन फोकलोर' पत्रिका के संपादक मंडल में हैं। लोकगीतों के उत्साही संग्रहकर्ता तथा लेखक हैं। परंतु अभी तक आपका संग्रह प्रकाश में नहीं आया है। आरा की 'भोजपुरी' पत्रिका में अनेक लोककहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, परंतु उनका पुस्तकाकार रूप देखने में नहीं आया है।

इधर भोजपुरी लोकसाहित्य के संबंध में गवेषणात्मक ग्रंथ भी लिखे गए हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन'[४] में भोजपुरी साहित्य के वर्गीकरण, लोकगीतों तथा गाथाओं की विशेषताओं एवं कथाओं की शिल्पविधि पर प्रचुर प्रकाश डाला है। डा० उपाध्याय का दूसरा ग्रंथ

१ हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

२ राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

३ बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना से प्रकाशित (१९४३ ई०)।

४ हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

'लोकसाहित्य की भूमिका'[1] है जिसमें लोकसाहित्य के सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। इनका तीसरा ग्रंथ 'भोजपुरी और उसका साहित्य' है जिसमें इस साहित्य का संक्षेप में विवरण है[2]। डा० उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोकसंस्कृति का अध्ययन' में जनजीवन से संबंध रखनेवाले समस्त विषयों का सम्यक् विवेचन किया है। 'भोजपुरी लोकसंगीत' में इन्होंने भोजपुरी लोकगीतों की स्वरलिपि भी प्रस्तुत की है।

डा० सत्यव्रत सिंह का शोधनिबंध भोजपुरी लोकगाथाओं पर लिखा गया है। डा० विश्वनाथप्रसाद ने भोजपुरी के ध्वनितत्वों का अध्ययन किया है। डा० उदयनारायण तिवारी ने भोजपुरी भाषा की गंभीर मीमांसा 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में की है।[3] इनके शोधनिबंध 'ओरिजिन ऐंड डेवलपमेंट आव दि भोजपुरी लैंग्वेज' में भोजपुरी का विद्वत्तापूर्ण विवेचन हुआ है। तिवारी जी ने भोजपुरी कहावतों, मुहावरों और पहेलियों का भी प्रकाशन किया है।[4] इधर श्री बैजनाथसिंह 'विनोद' ने 'भोजपुरी लोकसाहित्य : एक अध्ययन' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें भोजपुरी साहित्य के विभिन्न अंगों का सुंदर विवेचन किया गया है।

इस प्रकार भोजपुरी लोकसाहित्य पर जितना अधिक शोध तथा संकलन कार्य अभी तक हुआ है उतना हिंदी क्षेत्र की किसी भी अन्य भाषा में नहीं।

[1] साहित्य भवन, प्रयाग।
[2] राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
[3] बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
[4] 'हिंदुस्तानी' (प्रयाग) की सन् १९३९, ४१ तथा ४२ की फाइलें देखिए।

द्वितीय खंड

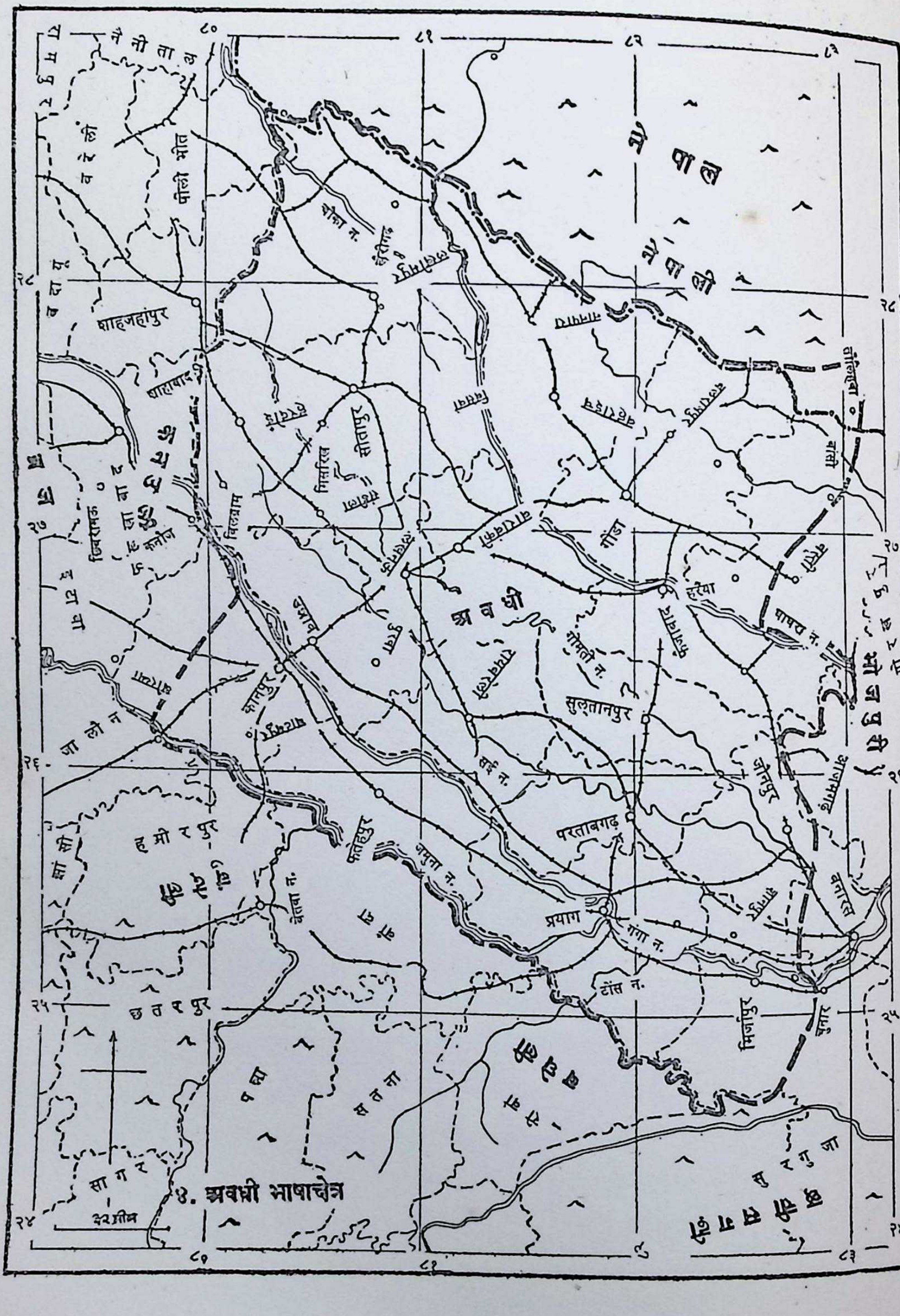
अवधी समुदाय

[illegible]

[illegible]

(४) अवधी लोकसाहित्य

श्री सत्यव्रत अवस्थी


नैनीताल
पीलीभीत
शाहजहांपुर
नेपाल
नेपाली
सीतापुर
बिलग्राम
कन्नौज
गोंडा
अवधी
गोमती न.
सुलतानपुर
कानपुर
जालौन
हमीरपुर
फतेहपुर
जमुना न.
परताबगढ़
प्रयाग
गंगा न.
टोंस न.
जौनपुर
बनारस
मिर्जापुर
चुनार
भोजपुरी
छतरपुर
सागर
सुरगुजा
४. अवधी भाषाक्षेत्र

प्रथम अध्याय

अवधी भाषा

अवधी उस क्षेत्र की भाषा है, जो कोसल के नाम से वाल्मीकि के शब्दों में मुदित स्फीत महान् जनपद था। वाल्मीकि रामायण के कारण कोसल और उसकी राजधानी अयोध्या युगों से भारत में प्रसिद्ध है।

१. सीमा

अवधीभाषी क्षेत्र के उत्तर में हिमालय (नेपाल), पूर्व में भोजपुरीभाषी प्रदेश, दक्षिण में बघेली और पश्चिम में बुंदेली और कनउजी के क्षेत्र हैं। बघेली और छत्तीसगढ़ी वस्तुतः अवधी से ही संबद्ध भाषाएँ हैं।

अवधी प्रदेश में अवध के पूरे ग्यारह जिले, हरदोई के अधिकांश भाग, फतहपुर, इलाहाबाद का पूरा जिला और कानपुर के अकबरपुर तथा डेरापुर तहसीलों को छोड़ सारा जिला, चुनार और दुद्धी तहसीलों को छोड़ मिर्जापुर का सारा जिला, केराकत तहसील को छोड़ जौनपुर का सारा जिला एवं बस्ती का हरैया तहसील संमिलित है। इसका क्षेत्रफल साढ़े पैंतीस हजार वर्गमील और आबादी ढाई करोड़ के करीब है जिसका विवरण इस प्रकार है :

जिला या तहसील	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या (१९५१ ई०)
१ कानपुर (अकबरपुर, डेरापुर तहसीलों को छोड़कर)	१, ६०८	१५, ४२, ४६०
२ फतेहपुर	१, ४६१	६, ०८, ९८५
३ इलाहाबाद	२, ८३६	२०, ४८, २५०
४ मिर्जापुर (चुनार, दुद्धी तहसीलें छोड़)	२, ८१६	६, ४४, ५१२
५ जौनपुर (केराकत तहसील छोड़)	१, ३१३	१२, ५८, ८८८
६ बस्ती (हरैया तहसील)	५००	३, ६४, ३७६
७ लखनऊ	९८९	११, २८, १०१
८ उन्नाव	१, ८०२	१०, ६७, ०५५
९ रायबरेली	१, ७५५	११, ५६, ७०४
१० सीतापुर	२, २०७	१३, ८०, ४७२

११ हरदोई (शाहाबाद तहसील छोड़)	१, ७७५	१०, ४६, ७०७
१२ खेरी	२, ६६७	१०, ५८, ३४३
१३ फैजाबाद	१, ७०४	१४, ८१, ७६६
१४ गोंडा	२, ८४२	१८, ७९, ४८४
१५ बहराइच	२, ६३६	१३, ४६, ३३५
१६ सुल्तानपुर	१, ७१०	१२, ८२, १६०
१७ प्रतापगढ़	१, ४४७	११, १०, ७३४
१७ बाराबंकी	१, ७३४	१२, ६४, २०४
१६ नेपाल तराई	१, ००० (?)	१७, ००, ००० (?)
योग	३५, १०८	२, ३६, ६७, ५६६

२. अवधी का ऐतिहासिक विकास

ऋग्वेद में कोसल का नाम नहीं आया। ऋग्वेदिक आर्यों का भूगोल दिल्ली में यमुना के पास आकर समाप्त हो जाता था। उसके तीन चार सौ वर्षों बाद ब्राह्मण काल में आर्यों का बढ़ाव कोसल से बहुत दूर आगे विदेह (तिरहुत) तक हो गया था। पर, उस समय के प्रभावशाली जनपद कुरु और पंचाल (कनउजी ब्रजभाषी प्रदेश का अधिकांश) थे। लेकिन आर्यों के आने से पहले कोसल भूमि निर्जन नहीं थी। मंगोलायित मोन् ख्मेर (किरात) और निषाद बहुत पहले से यहाँ रहते थे और उनके भीतर बहुत संभव है, सिंधु उपत्यका की संस्कृति-वाले प्राग (द्रविड़) यहाँ पहुँच चुके थे। इनकी भाषाएँ भी यहाँ बोली जाती थीं, पर आठवीं नवीं सदी ईसा पूर्व में आर्यों के यहाँ पहुँचने के बाद कुछ ही शताब्दियों में वह लुप्त हो गईं। भाषा के तौर पर बुद्ध के समय (ईसा पूर्व पाँचवीं छठी सदी) में यहाँ की प्रायः सारी जातियाँ एक हो चुकी थीं। रक्त-संमिश्रण भी पिछली तीन सहस्राब्दियों में इतना हुआ कि अब मूल जातियों का पता लगाना भी मुश्किल है। मोन् ख्मेर या तो और जातियों में मिल गए या थारू के नाम से नेपाल की तराई में अब भी मौजूद हैं। निषादों का अधिक रक्त रखनेवाली जातियों में अब कुछ ही ऐसी रह गई हैं जिनमें काले रंग की अधिकता है। द्रविड़ अधिक संस्कृत थे, वह भी दूसरी जातियों में हजम हो गए।

(१) अवध नाम—कोसल की पुरानी राजधानी साकेत थी। कोई उससे युद्ध करके पार नहीं पा सकता था, इसलिये 'देवानां पूरयोध्या' के अनुसार साकेत नगरी का विशेषण अयोध्या था, जिसे क्रमशः मुख्य नाम बना लिया गया। अंततः साकेत नाम कम और अयोध्या अधिक प्रसिद्ध हो गया। अश्वघोष भी साकेत के नाम से परिचित थे। बुद्ध के समय में भी इसे साकेत ही कहा जाता था। बुद्ध से कुछ समय पहले राजधानी साकेत से श्रावस्ती चली गई। वहीं पर बुद्ध का सम-

कालीन और समवस्यक राजा प्रसेनजित् रहता था। श्रावस्ती उस समय भारत की सबसे बड़ी नगरी थी। कोसल सबसे बड़ा राज्य था जिसमें काशी जनपद भी शामिल था। पूर्व गंडक (नदी) तक के शाक्य, कोलिय, मल्ल आदि आठ गण-राज्य उसको अपना प्रभु मानते थे। बुद्ध के समय ही मगध का पल्ला भारी होने लगा था। कोसल से मगधराज अजातशत्रु ने दो एक बार छेड़छाड़ भी की, पर प्रसेनजित् के रहते कोसल का अत्यनिष्ट नहीं हुआ। आगे संभवतः अजातशत्रु ने ही अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी ने कोसल को हड़प लिया। अब उसका कोई राजा नहीं था। इसी समय, जान पड़ता है, प्रदेशपाल या रठिक की राजधानी साकेत हो गया। तो भी, श्रावस्ती का महत्व बराबर रहा और वह प्रायः हजार वर्ष तक एक बड़ी भुक्ति (प्रदेश) के नाम से प्रसिद्ध रही। गुप्तों के काल में भी श्रावस्ती भुक्ति थी, हर्षवर्धन के मधुवनवाले ताम्रपत्र में भी श्रावस्ती भुक्ति है, सारन जिले के दिघवा दुबौली में मिले प्रतिहारों के ताम्रपत्रों में भी श्रावस्ती भुक्ति का उल्लेख है। वैसे, चौथी सदी के अंत तक, फाहियान् के समय, श्रावस्ती उजाड़ हो गई थी।

पर वाल्मीकीय रामायण (ई० पू० दूसरी शताब्दी) में ही साकेत अल्प-प्रचलित हो गया था, वहाँ बार बार अयोध्या के नाम से उसका उल्लेख किया गया है। वही अयोध्या श्रावस्ती भुक्ति की राजधानी रही। प्राकृत और अपभ्रंश काल में इसका उच्चारण 'अउधा' या 'अउहा' हो गया, जो आरंभिक तुर्कों (गुलाम वंश) के समय भी मशहूर अवध या अउध वलायत थी। उसका वली सारे तुर्क काल तक अउध (अवध) में रहता था। आज अयोध्या और फैजाबाद के कहने से मालूम होता है, कि दोनों अलग अलग शहर रहे। लेकिन १८वीं सदी के मध्य में अवध में नवाबी स्थापित होने से पहले फैजाबाद का नाम भी नहीं था। अयोध्या के ही एक भाग को अपनी राजधानी बनाते समय अवध के नवाब ने अवध को 'फैजाबाद' नाम दिया। लखनऊ अब भी अवध नगरी के सामने विशेष महत्व नहीं रखता था। जिस तरह वलायत और सूबे का नाम अवध था, उसी तरह वहाँ की भाषा को अवधी कहा जाता था। यह स्मरण रखना चाहिए कि गोस्वामी तुलसीदास जी अयोध्या फैजाबाद को अवध के नाम से ही जानते थे।

पहले की जातियों की भाषाएँ अभी प्रचलित ही थीं, जब कि आर्यों का एक जन (कबीला) कोसल इस भूमि में आया। सप्तसिंधु (पंजाब) के पाँच मूल जनों और एक दर्जन से ऊपर शाखाजनों में से किसके साथ कोसलजन का संबंध था, यह कहना कठिन है। कुरु प्राचीन पंचजनों में से पुरुओं के वंशधर थे। पंचाल में पाँचों जनों ने अपना घर (आल) बनाया था। कोसलों ने बहुत विस्तृत भूमि अपनाई थी, जिसमें प्रायः सारा वर्तमान अवध संमिलित था। जनपदों और भाषाओं की सीमा समय समय पर बदलती रहती है। मूल या उत्तर कोसलवाले बढ़ते हुए

बघेलखंड और छत्तीसगढ़ तक फैल गए। छत्तीसगढ़ का नाम ही पीछे दक्षिण कोसल पड़ गया। इसी तरह मल्ल (भोजपुरी भाषी क्षेत्र) उनके पूर्व में हिमालय की तराई से बढ़ते हुए छोटा नागपुर तक पहुँच गए। उन्होंने यद्यपि वहाँ अपना नाम नहीं छोड़ा, पर उनकी भोजपुरी (नगपुरिया) भाषा आज भी वहाँ बोली जाती है।

कोसल जनपद का जिस तरह नाम बदलकर राजधानी के कारण अवध हो गया, वैसे ही वहाँ की भाषा कोसली अवधी कही जाने लगी। अवधी के क्रमविकास को देखने से मालूम होता है, कि ब्राह्मण उपनिषद् के काल की बोलचाल की वैदिक भाषा बुद्धकाल में (छठी पाँचवीं सदी ई० पू०) में कोसली पालि के रूप में परिणत हो गई (यहाँ पालि से हमारा अभिप्राय बुद्धकाल में उत्तर भारत में बोली जानेवाली सभी भाषाएँ हैं)। कोसली पालि से कोसली (अवधी) अपभ्रंश का विकास हुआ। अवधी अपभ्रंश से ही अवधी भाषा निकली है। वैदिक भाषा का अंत ई० पू० छठी सदी के आसपास में और पालियों का अंत ईसवी सन् के आरंभ के साथ हुआ। कोसली प्राकृत ईसवी सन् से आरंभ होकर छठी सदी के मध्य में समाप्त हुई। तब से बारहवीं सदी के अंत तक अवधी अपभ्रंश रही।

वैदिक और आरंभिक पालि काल में कोसल बहुत महत्वपूर्ण प्रदेश रहा। पर, पीछे वह सदा रट्ठिकों, उपरिकों, बलियों (राज्यपालों) द्वारा शासित रहा, इसलिये उसकी भाषा का कोई महत्व नहीं था। प्राकृत काल में शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री प्राकृतों का बहुत गौरव के साथ उल्लेख आता है। उनका कुछ साहित्य और व्याकरण भी मिलता है। पर कोसली प्राकृत का कुछ नहीं मिलता। कुछ विद्वान् अटकल लगाते हैं कि कोसली प्राकृत को ही पीछे अर्धमागधी कहा जाने लगा जिसमें मूल जैन धर्मग्रंथ लिखे गए। यह अटकल ही है। त्रिपिटक की पालि को भी कुछ विद्वान् विकृत कोसली कहते हैं। वस्तुतः राजनीतिक महत्व कम होने के कारण कोसल की भाषा की पूछ नहीं रह गई। ईसा की आरंभिक शताब्दियों में शूरसेन में मथुरा शकों की राजधानी रही, इसलिये शौरसेनी प्राकृत का महत्व बढ़ गया। गुप्तों की राजधानी मगध में पटना थी, इसलिये वहाँ की मागधी प्राकृत का भी मान बढ़ा। गुप्तों के उपरिक और महासेनापति कन्नौज में रहते थे, पीछे सारे उत्तरी भारत की राजधानी या सांस्कृतिक केंद्र होने के कारण वहाँ की प्राकृत और फिर अपभ्रंश का सिक्का बैठा। शायद महाराष्ट्री कान्यकुब्ज प्रदेश की प्राकृत थी। साहित्यिक अपभ्रंश तो निश्चय ही यहीं की भाषा थी। शौरसेनी और महाराष्ट्री में बहुत कम अंतर है। यही बात उनकी उत्तराधिकारिणी अपभ्रंशों की संतान कनउजी और व्रज में भी देखी जाती है।

(२) अवधी भाषा—अवधी की माता अवधी (कोसली) अपभ्रंश, मातामही कोसली प्राकृत, प्रमातामही कोसली पालि और वृद्धप्रमातामही वैदिक

भाषा थी। किरात, निषाद और द्रविड़ भाषाओं ने धाइयों के तौर पर इस भाषा के निर्माण में योगदान किया।

प्रायः दो हजार वर्ष तक अवधी (कोसली) की पूछ नहीं रही। तुर्कों के तीन वंश जब दिल्ली पर शासन करते रहे तो उनका एक वली (राज्यपाल) अवध (अयोध्या) में रहता था। १४वीं शताब्दी के अंत में तुगलक वंश जब छिन्न भिन्न हुआ तो उसके एक वली ने अवधी क्षेत्र के जौनपुर नगर को राजधानी बनाकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया जो एक शताब्दी तक बना रहा। जौनपुर का यह एक शताब्दी का काल हमारे सांस्कृतिक, साहित्यिक, कला तथा दूसरे कामों के लिये अत्यंत महत्व रखता है। जौनपुर की सल्तनत एक समय बुलंदशहर से दरभंगा तक फैली हुई थी। जौनपुर ने अवधी और भोजपुरी भाषियों के बल के कारण दिल्ली से स्वतंत्र होने में सफलता पाई थी। उसने ही पहले पहल शरीयत का अवलंब छोड़कर मिट्टी का अवलंब लिया। शेरशाह उसी से मिट्टी की महिमा का पाठ पढ़ अकबर का अदृश्य शिक्षक बना।

चाहे कोसली (अवधी) भाषा कितनी ही उपेक्षित रही हो, पर जौनपुर के साथ उसका भाग्य जाग उठा। जौनपुर के शासन में ही कुतबन और मंझन ने अवधी में सुंदर कविता की, जिसपर लोकभाषा की छाप होते हुए भी वह उच्चतर साहित्य में गिनी गई। यह भी कोई आकस्मिक बात नहीं है, जो कि उन्हीं के समकालीन तथा जौनपुर के एक सामंत राजा के दरबारी विद्यापति ने अपनी भाषा (मैथिली) में पहले पहल कविता की। जायसी पहले जौनपुर दरबार के ही कवि थे, जिन्होंने अपनी 'पद्मावत' शेरशाह के शासन में समाप्त की। यह तो निर्विवाद है, कि जौनपुर में लोकभाषा में काव्य सबसे पहले रचे गए। अवधी के बाद सूरदास और उनके साथियों ने ब्रज को अपनी कविता का माध्यम बनाया। तुलसी दोनों में कविता कर सकते थे, परंतु, उन्होंने अपना महान् ग्रंथ 'रामचरितमानस' अवधी में ही लिखा। यद्यपि अवधी में समय समय पर कविताएँ लिखी जाती रहीं, लेकिन सारे उत्तरी भारत में ब्रज की धाक जम गई, और १९वीं सदी के अंत तक काव्य-क्षेत्र में उसी का एकच्छत्र राज्य रहा।

शिष्ट साहित्य के साथ साथ लोकसाहित्य की परंपरा अवधी में बराबर चलती रही। आज भी अवधी का लोकसाहित्य बहुत समृद्ध है। अफसोस है, कि भंगुर कंठों के साथ उसे नष्ट होने से बचाने के लिये काफी प्रयत्न नहीं हो रहा है।

द्वितीय अध्याय

लोकसाहित्य

१. लोकसाहित्य के मुख्य स्वरूप

साहित्य की ही भाँति लोकसाहित्य के भी तीन मुख्य रूप क्रम से गद्य, पद्य और चंपू (गद्य-पद्य-मिश्रित रूप) में उपलब्ध होते हैं। पद्य साहित्य के अंतर्गत लोकगीत, लोकगाथा, गीतकथाएँ और लोकोक्तियाँ तथा गद्य साहित्य के अंतर्गत कुछ लोकनाट्य और लोककथाएँ आती हैं। इन सभी रूपों के अवधी क्षेत्र में अनेक भेद प्रभेद प्रचलित हैं। यहाँ पर उन्हीं का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

(१) गद्य

अवधी गद्य के दो रूप मिलते हैं, (क) लोककथा (कहानी), (२) मुहावरे।

(क) लोककथाएँ—अवधी क्षेत्र की लोककथाएँ कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। लोकसाहित्य के इतिहास में इनका प्रमुख स्थान अपने आप बन चुका है। इसके साथ ही अवधी क्षेत्र की लोककथाओं ने साहित्य को प्रभावित करने के साथ ही बाहर से आनेवाले मुसलमान सूफी साधकों के हृदय पर सबसे पहले अपना प्रभाव डालकर यह सिद्ध कर दिया कि वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। 'इंद्रावती' और 'पद्मावती' की कथाओं ने प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा के विकास में सहयोग प्रदान कर अपना ऐतिहासिक महत्व सुरक्षित करने के साथ ही हिंदी का विस्तार किया।

लोककथाएँ दैनिक जीवन में मनोरंजन करने के साथ ही समाज को अनुभवशील बनाती हैं। इतना ही नहीं, समय और परिस्थिति के अनुकूल ये कथाएँ लोकजीवन की आलोचना भी करती हैं। लेकिन, इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आधुनिकतम परिस्थितियों में उत्पन्न होने पर भी इनकी शैली में कुछ बातें ऐसी रहती हैं, जो इन्हें लोकशास्त्र से संबद्ध प्रमाणित किया करती हैं। वैज्ञानिक शब्दावली में लोककथाओं के इस तत्व को अभिप्राय (मोटिफ) कहते हैं। इन्हीं अभिप्रायों के माध्यम से लोककथा अपने को प्रामाणिक और प्रभावशाली बनाती है। इन्हीं अभिप्रायों के आधार पर लोककथाओं का अध्ययन किया जाता है।

(१) कथाओं का वर्गीकरण—अवधी लोककथाओं को दो विभागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले विभाग के अंतर्गत वे कथाएँ आती हैं जो किसी अवसरविशेष पर कही जाती हैं। इन कथाओं में व्रत संबंधी कथाएँ आती हैं और दूसरे विभाग के अंतर्गत शेष सभी कथाएँ। दूसरे विभाग को सुविधानुसार अन्य कई उपविभागों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे :

(१) सृष्टि की कथाएँ, (२) देवताओं, अतिमानवों, भूतों, चुड़ैलों की कथाएँ, (३) चमत्कार की कथाएँ, (४) साहस की कथाएँ, (५) ठगी और धोखे की कथाएँ, (६) जाति विषयक कथाएँ, (७) पशु पक्षियों एवं पेड़ पौधों की कथाएँ, (८) हाजिरजवाबी एवं चालाकी की कथाएँ, (९) लोकोक्तियों से संबद्ध कथाएँ, (१०) ऐतिहासिक अनुश्रुतियाँ, (११) पहेली और यौन संबंधी कथाएँ। इनमें से कुछ का विवरण आगे दिया जा रहा है :

(२) प्रमुख कथाओं की विशेषताएँ—

(क) ठगी और धोखे की कथाएँ—इन कथाओं के दो स्वरूप अवधी क्षेत्र में उपलब्ध होते हैं। पहले प्रकार की कथाओं में नायक को ठग लिया जाता है और दूसरे प्रकार की कथाओं में नायक ही ठग अथवा धोखेबाज होता है। अवधी क्षेत्र में इस प्रकार के ठगों का कार्यक्षेत्र प्रायः चपरघटा का नाला रहता है। इसके साथ ही बैरगिया नाले का भी उल्लेख मिलता है। चपरघटे के नाले के संबंध में तो अवधी प्रदेश में प्रायः यह कहा जाता है कि 'दिल्ली की कमाई चपरघटे में गँवाई'। बैरगिया नाले को गीतों में भी स्थान मिल गया है। एक गीतकथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

बैरगिया नारा जुलुम जोर, नौ पथिक नचावैं तीनि चोर।
जब तबला बाजे धीन धीन, तब एकु के ऊपर तीन तीन॥

इस प्रकार ठगी और धोखे की कथाओं में मूलाभिप्राय के साथ ही अवधी क्षेत्र में प्रचलित ठगी प्रथा से संबद्ध अनेक कथाएँ मिल गई हैं जिनका अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

(ख) जाति विषयक कथाएँ—अवधी क्षेत्र में निवास करनेवाली विभिन्न जातियों के संबंध में एक दूसरे की प्रतिक्रियाओं का इन कथाओं में आकलन हुआ है। एक कथा के आधार पर चारो जातियाँ ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से उत्पन्न हुई हैं, किंतु उनकी उपजातियों की अपनी अपनी उत्पत्ति कथाएँ हैं। इसके साथ ही विभिन्न जातियों के गुण, स्वभाव आदि से संबद्ध कथाएँ भी प्रचलित हैं। इन कथाओं में ब्राह्मण को पोंगा, ठाकुर को ढिल्लर, कायस्थ को झूठा और तिकड़मी तथा नाई को चतुर बतलाया गया है। कोरी और अहीर प्रायः मूर्खता के प्रतीक माने गए हैं।

किंतु, लोककथाओं में सभी जातियों की प्रशंसा भी मिलती है। इस प्रकार इन कथाओं के विषय जातियों के गुण, स्वभाव और उत्पत्ति तक ही सीमित रहते हैं।

(ग) पहेली और यौन संबंधी कथाएँ—पहेली में नायक किसी पहेली को सुलझाता है या श्रोताओं के समक्ष पहेली उपस्थित कर उसे उनके निर्णय के लिये छोड़ देता है। अवधी क्षेत्र में मुसलमानों के प्रभाव से इस वर्ग में आनेवाली हातिमताई की अनेक कथाएँ प्रचलित हो गई हैं। वैसे अवधी क्षेत्र में बैताल संबंधी कथाएँ अत्यंत प्राचीन काल से प्रचलित हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि अवधी लोककथाओं की प्रधान प्रवृत्तियाँ मानव की आदिम जिज्ञासावृत्ति के साथ विकसित हुई हैं। इन जिज्ञासाओं का समाधान मनुष्य ने अपनी कल्याण की भावना से किया है। यही कारण है कि लोककथाओं का नायक अपने प्राणों को दूसरे स्थान पर सुरक्षित रखकर निश्चिंत हो जाता है। इसी के साथ वह सात समुद्रों के पार जाकर वहाँ से अपनी माँ के लिये बहू लाता है। यह बहू और कोई नहीं, सिंहलद्वीप की रानी पद्मिनी होती है। देवता समय पर उपस्थित होकर मनुष्य को उसकी सफलता का मार्ग बतलाते और कभी कभी उसकी सहायता भी कर देते हैं।

अवधी क्षेत्र की लोककथाएँ सुखांत होती हैं। इसके साथ ही उनके अंत में सबके मंगल की कामना भी रहती है। व्रत संबंधी कथाओं में कहनेवालों को भी पुण्य मिलता है। कथा कहने और सुनने से पुण्य होता है, इसीलिये व्रत संबंधी कथाएँ कही और सुनी जाती हैं। अवधी लोककथाओं में पुराणों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण, जातक, जैन शास्त्र से संबद्ध कथाएँ तो उपलब्ध होती ही हैं, इनके साथ ही पंचतंत्र, कथासरित्सागर, बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी तथा हितोपदेश की कथाएँ भी प्रचलित हैं।

इन कथाओं में अवधी क्षेत्र के नायक नायिकाओं के विविध शृंगार, साज-सज्जा, त्योहार, पनघट, बाग बगीचा, हाट बाट, महल अटारी, छप्पन प्रकार के व्यंजन, शिकार, चौपड़, पासा आदि खेलों का वर्णन हुआ है, जिससे यहाँ की सांस्कृतिक चेतना के विकासक्रम का ज्ञान होता है। अवधी क्षेत्र की ये कथाएँ मुख्यतः गद्य में हैं, किंतु कुछ कथाएँ गद्य-पद्य-मिश्रित रूप में भी प्रचलित हैं। इन कथाओं के कहनेवालों के कई संप्रदाय हैं। एक प्रकार के लोग कथाक्रम को गद्य से और दूसरे प्रकार के लोग पद्य से जोड़ते हैं। इस प्रकार कथा कहने में तात्विक दृष्टि से अंतर हो जाता है।

सामान्यतः कथा कहनेवाला पदों को सस्वर कहने के साथ गीतों को मोहक स्वर में गाता है। यद्यपि कथाएँ अवधी में रहती हैं, तथापि उनके अंतर्गत आनेवाले उच्च वर्ग के पात्र प्रायः खड़ी बोली या अपनी विशिष्ट भाषा में बात करते हैं। यह

भाषा, कहनेवाले के ज्ञान पर आश्रित रहती है। फिर भी, इतना तो कह ही सकते हैं कि इनमें संस्कृत नाटकों की परंपरा सुरक्षित है जिसमें स्त्रियाँ, दास दासियाँ एवं जनसामान्य प्राकृत में वार्तालाप करते थे और शिक्षित तथा उच्च वर्ग संस्कृत में। हाँ, इन कथाओं में देवी देवता अवधी का ही प्रयोग करते हैं। इसके साथ ही पेड़पौधे तथा पशुपक्षी अवधी में बातें करते हैं और जब कभी वे अपनी भाषा में बोलते हैं तो पक्षीभाषा के विशेषज्ञ कथा कहनेवाले महाशय उसका अवधी रूपांतर कर देते हैं।

अवधी क्षेत्र की गद्य-पद्य-मिश्रित कथाओं में 'ढोला हजारी' (राजा नल), 'सारंगा सदावृज', 'एकादशी की कथा', 'राजा सरवन' (श्रवणकुमार), 'राजा-हरिश्चंद्र', 'ध्रुवकुमार', 'राजा भरथरी' तथा इसी प्रकार की अन्य अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। संकलनों के अभाव में इन कथाओं का पूरा पूरा विवरण नहीं दिया जा सकता।

इन लोककथाओं के अतिरिक्त अनेक गीतबद्ध कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इनमें अधिकांश को स्त्रियों के गीतों में स्थान प्राप्त है। सावन के झूले के गीतों में भी कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त छोटी छोटी गीतकथाएँ बालकों को बहलाने के लिये भी कही जाती हैं। इन कथाओं की विशेषता यह है कि आवश्यकतानुसार इनका आकार प्रकार घटा बढ़ा लिया जाता है। उदाहरणार्थ बच्चों को सुलाने के लिये 'एक तरइया तो तो-तो, वोहके गाँव बसे को को' कही जाती है। इसका कथानक मात्र इतना है—एक तारा चमक रहा है, इसके गाँव में कौन कौन बसे। वहाँ पर तीतर और मोर बस गए। वृद्धा स्त्रियों को चोर उठा ले गए। चोरों ने खेती की और अन्न उपजाया। वृद्धा स्त्रियाँ खा खाकर पहलवान बन गईं। वे रोजाना मन भर पीसती थीं और मन भर खाती थीं। अंत में वे चोरों के यहाँ से तारे के गाँव में पुनः लौट आईं। किंतु यदि बालक इतने से नहीं सोता तो कहानी आगे बढ़ती है। अवधी क्षेत्र में इस प्रकार की अनेक कहानियाँ कही जाती हैं।

लोकगीतों की तरह लोककथाओं का संग्रह और अध्ययन अभी अवधी क्षेत्र में नहीं हुआ। अतः उनकी विकासात्मक स्थितियों के आधार पर उनका विवरण नहीं दिया जा सकता।

(३) कतिपय उदाहरण—

(१) बरखा, पाप अउर पुन्य—गंगा जी के आवैं ते पापिन का बड़ा फायदा भा। जो कोउ गंगा नहाय ल्यात उइ तरिके बैकुंठे पहुँचि जात रहा। ई तरा तेसरग लोक माँ मनइन के आबादी बाढ़े लागि। तब एक दिन भगवान जमराज

का बोलाय कै पूँछेनि कि जमराज जी, का कलजुग खतम होइगा ? जमराज बोले—भगवन् ! कलजुग अबै कइसे खतम होइ जाई, अबै तौ सुरुआते भय है। तब भगवान कहेनि—जौ कलजुग नाहीं खतम भा आय तौ सरग माँ भीड़ काहे लगे लागि है। का अब सबै धरमात्मा पैदा होय लाग हैं।

जमराज कहेनि—महराज ! धरमात्मा मनइन का तो आजु कालि नाँव निसान तक नाहीं आय। पै गंगा जी के नहाए ते सबै पापी तरि जात हैं। येही के मारे आजुकाल्हि सरग लोक माँ भीड़ होय लागि है।

भगवान बोले—यो तो गंगा बड़ा गड़बड़ करि रही है। उइ तौ करम का बिधानै मिटाय द्याहै। जाव औ जल्दी से गंगा जी का लेवाय लाव।

गंगा जी आईं तौ भगवान बोले कि सुना है कि तुम सबके पाप एकट्ठा करि रही हो ? गंगा बोलीं—भला हम पापन का एकट्ठा करिके का करिबे। हम तौ पापन का धोयके बहाय देइत है। सब पाप समुद्दर लइ जात है।

गंगा कै बात सुनिकै भगवान तुरतै बरुण देउता का बोलवाय पठएनि। बरुण देवतौ आयगे। तब भगवान बोले कि बरुण जी ! सुना है, तुम सबै मनइन के पाप एकट्ठा करि रहे हो।

बरुण बोले—हम का करी भगवान ? ई गंगा जी सबके पाप धोय लउती हैं औ हमरे ह्यन छाँड़ि जाती हैं। पै हमहूँ पापन ते डेरात हन। येही के मारे सब पापन का सुरजन का दइ देइत है।

भगवान इंद्रौ का बोलवाएनि। इंद्र के अउतै भगवान बोले कि देउतन के राजा होइकै तुम पाप एकट्ठा करि रहे हो। का तुम्हैं यो नहीं मालूम आय कि पापी चहे देउता होय चाहै मनई, सरग लोक माँ नहीं रहि सकत आय ?

इंद्र बोले—महाराज ! यो तो हम जानत हन, औ येही के मारे हम उइ पापन का वोही पापिन के घर माँ फिर बरसाय आइत है।

इंद्र कै बात सुनिकै भगवान का संतोषु भा औ तब उइ जमराज ते बोले—महराज ! यो तुम्हईं गड़बड़घोटाला कीन हउ। अब तुम्हहीं येहका पव्यारौ। किरपा करिकै ई पापिन का फिर ते धरती माँ छाँड़ि आव ; काहे ते, पाप गंगा के नहाए ते नहीं, अच्छे करमन ते खतम ह्वात हैं। अब किरपा करिकै अइस भूल न कीन्हेंव।

(२) सबते छोटि कहानी—एक ढ्याला रहै औ एकु रहै पत्ता। उइ दूनौं आपस में सलाह कीन्हेंनि कि बखत जरूरति एकु दुसरे के काम अइबे। ढ्याला कहेसि कि जब पानी आवय तब तुम हमैं बचैहौ औ जब आँधी आई तौ हम तुम्हैं बचइबे। दइव गति अइस भै कि आँधी पानी दूनौं साथै आयगै। आँधी ते पत्ता उड़िगा औ पानी ते ढ्याला गलिगे। कथा रहै सो होइगै।

(३) सबते बड़ी कहानी—एकु राजा रहे। वो कहानी सुनै का बड़ा सौखीन रहे। वो राजा राज माँ डुग्गी पिटवाय दीन्हेंसि कि जो कोऊ हमका एतनी बड़ी कहानी सुनाई कि हम सुनत सुनत हारि जाब तो हम वोहका आधा राज दइ द्याब। लेकिन जो सुनावेवाला हमका हारी न मनवाए पाई तो वोह क्यार मूँड़ काटि लीन जाई।

केतन्हेंव कहानी सुनावै का आए। कोऊ एकु दिन सुनाएसि, कोऊ दुइ दिन सुनाएसि, लेकिन राजा का हारी न मनाय पाएनि। फलु यो भा कि उनका मूँड़ काटि लीन गा।

आखिर माँ एकु जने आवा औ कहेसि कि हम राजा का कहानी सुनइबे। मंत्री लोग वोहका बहुत समझाएनि कि काहे का अपन जान द्यावा चहत हो? अच्छा है कि कुसल ते अपने घरे लउटि जाव। मुला वो एकु न माना। आखिर माँ वो राजा के पास पहुँचाय दीन गा।

राजा साहब ठीक ते बइठिके ओहसे कहेनि कि अब अपनी कहानी सुरू करौ। लेकिन एकु बात जानि लेव कि जो तुम हमका हारी न मनवाए पइहौ तो तुम्हार मूँड़ काटि लीन जाई। वो कहेसि कि हमैं मंजूर है। लेकिन सुनती वेरिया हुँकारी भरत जाएव। राजा बोले—बहुत अच्छा। तब कहानी सुनावैवाला अपन कहानी सुरू कीन्हेंसि :

एकु रहे राजा। वो राजा अपनी परजा का खूब मानत रहे। एक दिन वो राजा मन माँ सोचेसि कि जो हमरे राज माँ अकाल परा तौ का होई? कुछ सोचि समझि के वो तुरतै अपने मंत्रिन का हुकुम सुनाएसि कि लाखु क्वास चौड़ी औ लाख क्वास ऊँचि एकु बखारी बनवावौ। जब वा बनि जाय तौ वोहमाँ चाउर भराय दीन्हेंव। राजा का हुकुम; तुरतै काम लागि गा। कुछ दिनन माँ बखारी बनिके तइयार होइगै औ वोहमाँ चाउर भरि दीन गै।

इतना सुनिके राजा बोले—फिरि का भा?

वो फिर कहेसि—अब राजा का कउनिउ चिंता न रहे। लेकिन उइ बखारी माँ एकु छेदु होइगा। उई छेदे ते एक दायँ माँ एकुइ चिरइया घुसि औ निकरि सकति ती। चिरैंवन का ई छेदे का पता लाग गा। तब का रहै; देस देस ते चिरइयाँ आय गईं। इतना सुनिके राजा बोले—तब का भा?

वो कहेसि—'औ फिर एकु चिरइया उइ छेदे ते घुसी, एकु दाना लइके फुर्र होइगे।

राजा कहेसि—फिर का भा?

वो कहेसि—फिरि एकु चिरइया एकु दाना लइके फुर्र होइगै।

राजा कहेसि कि यो फुर्र फुर्र का करत हौ ? अब आगे कहानी कहौ।

वो जवाबु दीन्हेंसि—अबै आगे कइसे कहब, अबे तो बखारी खाली ही नहीं भै आय।

राजा या बात सुनिकै जानिगा कि या कहानी हमरी जिंदगी हू भरे माँ खतम न होई। तब लाचार हुइकै उइ हारी मानि लीन्हेंनि अउर वोहका आधा राज दइ दीन्हेंनि। ई तरा ते कथा रहे सो होइगै।

(ख) लोकोक्तियाँ और मुहावरे—

(१) सामान्य विवेचन—भाषा मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से मधुर बन जाती है। इसके साथ ही उसमें शक्ति और चमत्कार का समावेश हो जाता है। मुहावरों और लोकोक्तियों में अंतर है। लोकोक्ति अपने आपमें पूर्ण होती है और मुहावरे वाक्यों के अंश होते हैं। अतः लोकोक्तियों का स्वतंत्र प्रयोग अपने अभीष्ट अर्थ की व्यंजना कर देता है, किंतु तात्विक दृष्टि से कहावत और लोकोक्ति में अंतर है। कहावत व्यक्ति की उक्ति होती है किंतु लोकोक्ति व्यक्ति की उक्ति होकर भी व्यक्तित्वविहीन होती है। लोक के अनुभवनिकष पर खरी उतरने के बाद ही कोई उक्ति लोकोक्ति बन पाती है। किंतु यहाँ पर हमें अवधी लोकोक्तियों की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना है। अतः यहाँ पर उनके विकासक्रम पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

अवधी क्षेत्र की लोकोक्तियों को प्रवृत्तियों की दृष्टि से हम कई भागों में विभक्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिये कुछ लोकोक्तियाँ ऐतिहासिक घटनाओं अथवा कथानकों से संबंधित रहती हैं, यथा—'घर का भेदी लंका ढावे।' इस लोकोक्ति का संबंध विभीषण के ऐतिहासिक चरित्र से है। ऐतिहासिक घटनाओं और कथानकों के अतिरिक्त कुछ लोकोक्तियाँ कथाओं के आधार पर निर्मित होती हैं। 'उलकी के टाँड़' इसी प्रकार की लोकोक्ति है। इस लोकोक्ति के पीछे जो कथा प्रचलित है वह इस प्रकार है—उलकी नामक स्त्री ने 'टाँड़' (एक आभूषण) बनवाया। वह चाहती थी कि लोग उसके टाँड़ों की प्रशंसा करें, किंतु किसी ने उसके टाँड़ों की ओर ध्यान ही न दिया। अंततोगत्वा उलकी ने अपने घर में आग लगा दी। आग बुझाने के लिये गाँव के स्त्री पुरुष एकत्र हो गए। उलकी पानी फेंकते समय अपने टाँड़ों पर भी हाथ लगाती जाती थी। उस समय किसी की दृष्टि उसके टाँड़ों पर पड़ी। उसने पूछा—'बुआ, ये टाँड़ कब बनवाए ?' बुआ ने उत्तर दिया—'अगर पहले ही यह बात पूछ लेती, तो मैं घर में आग ही क्यों लगाती ?' तब से जब कोई व्यक्ति दिखावा करता है तो उसे 'उलकी का टाँड़' की लोकोक्ति से लज्जित किया जाता है।

इस प्रकार की अनेक कहावतें अवधी क्षेत्र में उपलब्ध होती हैं जिनमें वर्षा आदि से संबंधित अनुभवों का संकलन किया गया है। इस क्षेत्र में घाघ और भड्डरी की कहावतें काफी प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त अवधी क्षेत्र में दैनिक जीवन के अनुभूत तथ्यों के आधार पर निर्मित होनेवाली अगणित लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। इनके भेदों प्रभेदों का विवेचन करना तभी संभव हो सकता है जब इनका संकलन कर लिया जाय। फिर भी, सामान्य रूप से लोकोक्तियों की सभी प्रवृत्तियों और प्रकारों का अवधी क्षेत्र में प्रचलन है। इन लोकोक्तियों पर जातीय भावनाओं का भी प्रभाव पड़ा है। 'ब्राह्मण साठ बरस तक पोंगा रहता है', 'सब जातें तो पीर हैं, दो जातें बेपीर; अग्गरवाला बानियाँ, बेईमान अहीर'; 'अहि अहीर सम जानिए, अहि से कठिन अहीर, अहि बाचा से बँधत है, बाचा काट अहीर।' आदि इसी प्रकार की लोकोक्तियाँ हैं।

(२) अवधी लोकोक्तियाँ—अवधी क्षेत्र की बहुप्रचलित लोकोक्तियाँ निम्नांकित है :

१–आँखिन कै आँधर नाम नयनसुख।
२–बीछी कै दवाई न जानै, सँपवा के बिलुका माँ हाथ घुस्यारै।
३–आजी के आगे अजियउरे की बातैं।
४–की हंसा मोती चुगैं, की भूखन मरि जायँ।
५–नई नाउनि, बाँस कै नहन्नी।
६–भइँस के आगे बीन बाजै, भइँस ठाढ़े पगुराय।
७–नौ कै लकड़ी नब्बे खर्च।
८–आप न जावैं सासुरे, अउरन का सिख देयँ।
९–अपन मन चंगा तौ कठउती माँ गंगा।
१०–कहाँ राजा भोज, कहाँ गुजुवा तेली।
११–करिया बाभन ग्वार चमार, इनते सदा रहै हुसियार।
१२-तीन कनउजिया त्यारा चूल्हा।
१३–आपन करनी पार उतरनी।
१४–देही माँ ना लत्ता, पान खायँ अलबत्ता।
१५–जनम भरे के कमाई चपरघटा माँ गँवाई।
१६–कंगाल गुंडा खलीती माँ गाजर।
१७–काम के न काज के दुसमन अनाज के।
१८–पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।
१९–कायथ का बच्चा कभी न सच्चा।

२०–चहै बारू ते निकरै तेल, चहै बब्बुर माँ लागै बेल ।
खान पान चहै करै सुरक्का, पै यतबार ना करै तुरक्का ।
२१–सूक़बार के बादरी रहै सनीचर छाय ।
ऐसा बोलै भड्डुरी बिन बरसे नहिं जाय ।
२२–तीतुरपंखी बादरा, बिधवा काजर रेख ।
उइ बरसैं उइ घर करैं, यामें मीन न मेख ।
२३–रहिमन बिपदाहू भली, जौ थोड़े दिन होय ।
२४–एक मास दुइ गहना, राजा मरे कि सहना ।
२५–आमा नीबू बानियाँ, गर दाबे रस देयँ ।
कायथ कौआ करहटा, मुरदा हू से लेयँ ।
२६–खेती पाती बीनती औ घोड़े की तंग ।
अपने हाथ सम्हारिए, चहै लाख ज्वान होय संग ।
२७–गया वह मर्द जिसने खाई खटाई ।
गई वह नार जिसने खाई मिठाई ।
२८–आठ कोस लग मिलै जो काना ।
घर का लउटैं चतुर सुजाना ।
२९–चिड़ियन माँ कउआ, मनइन माँ नउआ ।
३०–परु मरीं सास, यासों आए आँस ।

(ग) लोकनाट्य—

(१) विकास और वर्गीकरण—अवधी लोकनाट्य का कब और कैसे विकास हुआ, यह नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना तो कहा ही जा सकता है कि आदिम मानव ने अपने विकास के प्रथम चरण में ही इस कला को स्थापित कर लिया था। कठपुतलियों के विकास के पूर्व मनुष्य ने जंगली पशु पक्षियों को अपनी नाट्यकला में सहयोगी का स्थान प्रदान किया था। वर्तमान काल में अवधी क्षेत्र में होनेवाले बंदर और भालू के खेल इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

बंदर और भालू ने नाट्यकला के क्षेत्र में उस समय प्रवेश किया था जब उसमें किसी प्रकार के कथानक का विकास नहीं हुआ था। एकमात्र मनुष्य का अनुकरण करना ही इनके नाटकों का कथानक होता था जो आज भी प्रचलित है। बंदर और भालू मदारी के आदेश पर अभिनय प्रारंभ करते हैं और मदारी (जो सूत्रधार, स्थापक और निर्देशक का कार्य एक साथ करता है) उनके अभिनय की व्याख्या करता जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि पशु पक्षियों ने लोकसाहित्य के प्रत्येक अंग और रूप के विकास में अपना सहयोग दिया है।

लोकनाट्य का आदिम रूप कठपुतलियों का नाच है। कठपुतली के नाच में मुख्यतः मुगलकालीन दरबारों का सजीव चित्रण रहता है। इसके साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला जाता है। अध्ययन की दृष्टि से अवधी क्षेत्र के लोकनाट्यों में रामलीला, रासलीला, नौटंकी तथा जातीय स्वाँगों का प्रमुख स्थान है।

(२) प्रचलित प्रमुख स्वरूप—

(क) रामलीला—रामलीला रामायण के आधार पर निर्मित हुई है। धार्मिक विचारधारा से संबंधित होने के कारण अवधी क्षेत्र में इसका काफी प्रचार है। रामलीला का मंच मैदान में तैयार किया जाता है। पात्रों के अनुरूप अलग अलग स्थान भी बना दिए जाते हैं और बीच में रामायण मंडली बैठती है। रामायण मंडली रामायण का सस्वर पाठ कर कथानक को आगे बढ़ाती है। बीच बीच में पात्रों में भी संवाद होता रहता है। आवश्यकतानुसार पात्र बीच बीच में दर्शकों से भी बातें कर लेता है। इस प्रकार इस लोकनाट्य में किसी प्रकार के बंधन दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी रामलीला का एक प्रसंग 'धनुषयज्ञ' के नाम से प्रचलित है। धनुषयज्ञ में होनेवाला लक्ष्मण और परशुराम का संवाद काफी लोकप्रिय है।

(ख) रासलीला—मथुरा तथा ब्रज प्रदेश के प्रभाव से अवधी क्षेत्र में रासलीला का भी अत्यधिक प्रचार है। रासलीला में कृष्ण से संबंधित अनेक लीलाओं का अभिनय होता है। भाषा की दृष्टि से रासलीला को अवधी क्षेत्र का नहीं कहा जा सकता, किंतु प्रचलन और लोकभावना की दृष्टि से रासलीला अवध का महत्वपूर्ण लोकनाट्य और मंच का एक रूप है।

(ग) नौटंकी—यदि रामलीला और रासलीला धार्मिक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, तो नौटंकी सामाजिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। नौटंकी वस्तुतः गीतिनाट्य है। तख्तों से निर्मित ऊँचे मंच पर पात्र पहले से ही आकर बैठ जाते हैं। फिर क्रम से अपने अपने स्थान पर खड़े होकर अभिनय का प्रारंभ करते हैं। नौटंकी में अभिनय के नाम पर नाटकीय मुद्राओं का साधारण प्रदर्शन होता है। कथानक पद्यात्मक संवादों से आगे बढ़ाया जाता है। इसके साथ ही जनता के अनुरोध पर कभी कभी किसी किसी अंश का पुनः प्रदर्शन होने लगता है। इनका कथानक साधारण जनरुचि के आधार पर निर्मित होता है। यही कारण है कि इनमें अश्लीलता का भी समावेश पाया जाता है। नौटंकी अवधी क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रचलित लोकनाट्य है।

(घ) स्वाँग—विभिन्न जातियाँ, विशेष रूप से कहार, चमार और धोबी

अपने यहाँ विवाहादि अवसरों पर स्वाँग करते हैं। ये स्वाँग खुले रंगमंच पर होते हैं। दर्शकों के बीच अपनी अनोखी वेशभूषा में इसके पात्र आकर बैठ जाते हैं। ये लोग छोटी छोटी कहानियों को अभिनीत करते हैं और अपने अभिनय के माध्यम से उच्च वर्ग के लोगों पर व्यंग्य भी करते हैं। स्वाँगों में नाच और गाने की प्रधानता रहती है। इनमें भोंडे मजाकों का भी समावेश रहता है।

उपर्युक्त नाट्यरूपों में अभिनय और कथानक आदि नाट्यतत्वों को महत्व न देकर जनसाधारण की रुचि और भावना को महत्व दिया जाता है। यही कारण है कि रामलीला जैसे लोकनाट्य में भी आधुनिक समस्याओं का समावेश कर दिया गया है। रामलीला का प्रदर्शन पर्दों और रंगमंच की सहायता से होने लगा है। इस प्रकार के प्रदर्शन में पटाक्षेप होने पर विदूषक आधुनिक वेशभूषा में उपस्थित होकर लोगों का मनोरंजन करता है। अतः हम कह सकते हैं कि अवधी क्षेत्र में प्रचलित लोकनाट्यों की स्थिति अभी भी अविकसित अवस्था की प्रतीक है।

२. पद्य

अवधी लोकपद्य के दो मुख्य भेद हैं—(१) लोकगाथा (पँवाड़ा) और (२) लोकगीत।

(क) पँवाड़ा—पँवाड़ा नामक गीतों की अवधी में बड़ी विचित्र स्थिति है। किसी किसी स्थान पर इन्हें पँवाड़ा कहा जाता है। किंतु अन्य अनेक स्थानों पर इन गीतों को जँतसार, निरवाही और कोल्हू के गीतों के अंतर्गत गाया जाता है। लोकसाहित्य में पँवाड़ा ही गीतों का वह रूप है जिसमें किसी घटना का संपूर्ण वर्णन मिलता है। लोकगीतों में तो कथानक का संपूर्ण विकास नहीं होता। अवधी क्षेत्र में तात्विक दृष्टि से जो पँवाड़े मिलते हैं, उनमें श्रवण, शिवपार्वती, भरथरी, चंद्रावली, कुसुमा आदि के चरित चित्रित हुए हैं।

पँवाड़े लोकशैली और उसके उद्देश्य का अत्यंत मार्मिक और सफल निर्वाह करते हैं। कथा प्रारंभ में सुखद परिस्थितियों के बीच विकसित होती है। कथा के विकास के साथ ही एक ऐसी समस्या उत्पन्न होती है जो नायक अथवा नायिका के समक्ष उसके आत्मसंमान का प्रश्न उपस्थित कर देती है। इस समस्या का समाधान आत्मसंमान की रक्षा से होता है, भले ही नायक अथवा नायिका को इसके लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़े।

(१) कुसुमा—उदाहरणस्वरूप यहाँ पर कुसुमा से संबंधित पँवाड़े को रखना अनुपयुक्त न होगा। यह पँवाड़ा अवधी क्षेत्र में जँतसार के गीतों में मिल गया है, किंतु तात्विक दृष्टि से इसे पँवाड़ा ही कहा जायगा।

कुसुमा कंघी और कटोरा लेकर अपने बाबा के तालब में स्नान करने जाती है। वहाँ पर मिरजा उसे देख लेता है और उसकी सुंदरता पर मुग्ध हो जाता है। वह कुसुमा के पिता जिवधन तथा उसके भाई भोजमल से कहता है कि कुसुमा की शादी उसके साथ कर दी जाय। जिवधन और भोजमल के यह कहने पर कि उसकी शादी बचपन में ही हो चुकी है, मिरजा नाराज हो जाता है और उन्हें बंदी बनवा लेता है। कुसुमा मिरजा से कहती है कि यदि तुम मेरी सुंदरता पर मुग्ध हुए हो और मुझसे शादी करना चाहते हो तो मेरे पिता के लिये हाथी और भाई के लिये घोड़े खरीद दो :

हँसि हँसि मिरजा हो घोड़वा बेसाहैं हो,
रोइ रोइ चढ़े बीरन भइया हो राम।
हँसि हँसि मिरजा हो डँडिया फँनावैं,
रोइ रोइ चढ़ै कुसुमा बहिनी हो राम।

कुसुमा रोकर डोली में बैठ गई। डोली आगे बढ़ी और तीसरे वन में जाकर पहुँची। तीसरे वन में बाबा का तालाब था। कुसुमा ने डोली रोकने के लिये कहा :

तनी एक डँडिया छिपावो भइया कहरा,
बाबा के सगरवा पनियाँ पियबे हो राम।

मिरजा ने कहा—इस तालाब का पानी गंदा है। मेरे तालाब का पानी स्वच्छ है। कुसुमा ने उत्तर दिया :

तुम्हरे सगरवा राजा नित उठि पियबे हो,
बाबा के सगरवा दूलहभ होइहैं हो राम।

और तब आत्मसंमान की रक्षा के प्रश्न ने अपना मार्ग पा लिया। कुसुमा पानी पीने बैठी :

यक घूँट पीए दुसर घूँट पीए हो,
तीसरे गई हैं तरबोरवा हो राम।

कुसुमा ने डूबकर जान दे दी और इस प्रकार अपने कुल और आत्मसंमान की रक्षा की। मिरजा ने जाल डलवाया, किंतु :

रोइ रोइ मिरजा हो जलवा बहावैं हो,
बाझी आवय घोंघवा सेवरवा हो राम।
हँसि हँसि भोजमल जलवा बहावैं हो,
बाझी आई नाके के नथनिया हो राम।

कुसुमा डूब गई, पर भोजमल भाई प्रसन्न है, क्योंकि उसकी इज्जत बच गई। उसकी बहन की नाक की नथ उसके हाथ में है, जिसके साथ उसके कुल की प्रतिष्ठा सुरक्षित है।

(२) **चंद्रावली**—चंद्रावली का पँवाड़ा 'कुसुमा' से मिलता जुलता है। इसका कथानक इस प्रकार है—सात सखियों के साथ चंद्रावली पानी लेने के लिये निकली। मार्ग में मुगल का डेरा था। मुगल ने उसे अपने यहाँ बंदी बनाकर छिपा दिया। चंद्रावली ने चील्ह से कहा—'तुम मेरी मौसी लगती हो, अतः मेरे माता पिता तथा भाई आदि को हमारे बंदी होने का समाचार जाकर दे आओ।' उसने तोते से कहा—'मेरे बंदी होने का समाचार मेरे माता पिता तथा भाई तक पहुँचा दो।' तात्पर्य यह कि चंद्रावली ने किसी प्रकार अपने बंदी होने का समाचार अपने घर पहुँचवा दिया। भाई, पिता तथा पति ने आकर मुगल को काफी लालच दिया और चंद्रावली को छोड़ देने के लिये कहा, किंतु मुगुल ने उसे छोड़ना स्वीकार नहीं किया। तब चंद्रावली ने पिता, भाई तथा पति से कहा—'आप जायँ, मैं सबके संमान की रक्षा करूँगी।' पिता और भाई तो रोकर लौटे, किंतु पति को दुःख न था। उसने सोचा, मैं यहीं ऐसी पचास शादियाँ कर सकता हूँ। सबके वापस लौट जाने पर चंद्रावली ने कहा—'मुगल के लड़के, खाना मँगाओ। मुझे भूख लगी है।' मुगल का लड़का भोजन की सामग्री लेने गया और चंद्रावली ने तेल डालकर अपने शरीर में आग लगा ली। मुगल के लड़के को काफी पश्चात्ताप हुआ। कौरवी की 'चंद्रावली' इसी प्रकार की है। इससे भिन्न दूसरा 'चंद्रावली' पँवाड़ा इस प्रकार है :

चंद्रावली[1]

कउनी की राति कोइलरि सबदा सुनावै हो, कवनि रतिया।
सुंदरि अँगना बटोरैं हो, कवनि रतिया।
आधे की रतिया कोइलरि सबदा हो सुनावै, भोरहिं रतिया।
सुंदरि अँगना बटोरैं हो, भोरहिं रतिया।
कउने की जुनिया चंद्रा करै असननवा, हो कवनि जुनिया।

१ संग्रहकर्ता : डा० शिवगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, डी० फिल्०, प्राध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय। गायिका : श्रीमती रामरती देवी 'गुरु जी', जाति ठाकुर (राजपूत), आयु ६० वर्ष, प्रतापगढ़ की रहनेवाली, अधुना प्रयाग निवासिनी। यह पँवाड़ा इन्होंने अपनी नानी से सीखा था, जिनकी आयु गदर (१८५७ ई०) में २० वर्ष थी।

चंद्रा जायँ सागर पानिया, कवनि जुनिया ?
भोरहीं की जुनिया चंद्रा करै असननवा हो, भोरहिं जूनिया ।
चंद्रा जायं सागर पनिया, भोरहिं जूनिया ।
सगरा नहायँ देहियाँ मलिमलि धोवैं, गगरिया भरि ना ।
चंद्रा धरैं कगरवा, गगरिया भरि ना ।
जैसे नंगी हो कटरिया, लपाकति आवै ना ।
वैसे चंद्रा के देहिया, लपाकै लागी ना ।
घोड़वा चढ़ा एक आवै हो तुरुकवा, झुकति आवै ना ।
उनके माथे कै पगरिया, झुकति आवै ना ।
उनके ढाल तरवरिया, गिरति आवै ना ।
केकरी तु अहो सुंदरि धेरिया हो पतुहिया, कवन छैला ।
केकै अहो सुंदरि रनिया, कवन छैला ।
जेठ बैसखवा की भुँभुरि छुड़ापै, तुमसे भरावै गोरिया ।
ऊ तो दोहरा घैलवा भरावै गोरिया ।
अपनिन माया के धेरिया हो तुरुकवा, अपनी सासु जी कै ना ।
मैं तो सुंदरी पतोहिया, अपनी सासु जी कै ना ।

पँवाड़ों की रूपरेखा ऐतिहासिक सी प्रतीत होती है, किंतु इनमें वर्णित घटनाएँ कितनी ऐतिहासिक हैं, यह बतलाना कठिन है । फिर भी, इन कथाओं की लोकप्रियता लोकनायकों के चरित्र पर प्रकाश डालती और लोक में प्रतिष्ठित शाश्वत मूल्यों का निदर्शन कराती है ।

(ख) लोकगीत—

(१) सामान्य परिचय—लोकगीत, लोकसाहित्य का सबसे प्रधान रूप है । लोकभाषा के गीतों को, जिनमें लोकजीवन प्रतिबिंबित होता है, लोकगीत कहा जाता है । यह स्मरण रखने की बात है कि लोकगीतों का संबंध एकमात्र लोकभाषा से न होकर लोकजीवन (धर्म, कर्म, विश्वास आदि) से होता है । अतः लोकभाषा के उसी गीत को लोकगीत की संज्ञा दी जा सकती है, जिसमें लोकजीवन प्रतिबिंबित हुआ हो । लोकगीत प्रायः संक्षिप्त और भावप्रधान होते हैं । इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनकी व्यापकता में संनिहित है । जीवन की प्रत्येक अवस्था का प्रत्येक स्तर और अवसर गीतों से मुखरित रहता है । गीतों का विस्तार मानव के जन्म से मृत्यु तक है । यही कारण है कि इनमें हमारे राग विराग तथा ह्रास विकास का इतिहास छिपा रहता है । इन गीतों में संनिहित जीवनचेतना को जानने और पहचानने के लिये उनके अनेक प्रकारों से परिचित होना आवश्यक है ।

(२) उदाहरण—

(१) ऋतुगीत

(क) कजली—सावन के महीने में अवधी क्षेत्र में कजली गाने की प्रथा है। इन गीतों में प्रधानतः प्रेम का वर्णन होता है तथा विप्रलंभ और संभोग दोनों प्रकार का शृंगार रहता है। इनमें कहीं पतिव्रता के प्रेम का वर्णन होता है, तो कहीं ननद भावज के हास परिहास का। कजली में कहीं कहीं करुण रस की भी मार्मिक व्यंजना पाई जाती है। कजली गीत झूला झूलते समय गाए जाते हैं। अवधी क्षेत्र की एक लोकप्रिय कजली निम्नांकित है :

बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान।
काहु खायँ शिवशंकर बाबा,
काहु खायँ भगवान,
बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान।
भाँग धतूरा शंकर खावैं,
लड्डु वन भोग लगै भगवान,
बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान।
काहु पिएँ शिवशंकर बाबा,
काहु पिएँ भगवान, बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान।
विष माहुर शिवशंकर पीएँ,
गंगजमुन भगवान, बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान।
काहु सोवैं शिवशंकर बाबा,
काहु सोवैं भगवान, बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान।
बाघंबर शिवशंकर सोवैं,
तोसक सोवैं भगवान, बन में बाज रही बाँसुरिया,
छुटि गयो शंकर जी का ध्यान॥

(ख) सावन—कजली की ही भाँति सावन में झूला झूलते समय अवधी क्षेत्र में एक प्रकार के और गीत गाए जाते हैं जिन्हें 'सावन' कहते हैं। इन गीतों

का नाम महीने के ही नाम पर रखा गया है। सावन नामक गीतों में कहीं उल्लास है तो कहीं पर करुणा की अभिव्यक्ति मिलती है। इन गीतों के विषय सुख दुःख के रंगों से मानव जीवन की अनेक भावात्मक स्थितियों का चित्रांकन करते हैं। सावन के गीतों के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से कुछ गीत 'पँवाड़ा' शैली के हैं, फिर भी उन्हें पँवाड़ा न कहकर 'सावन' ही कहा जाता है। इन गीतों का आगे परिचय दिया जायगा।

बरिन बरिन जल चुए खोरिन काँदव कीच।
कवने निरमोहिया कय धेरिया ससुरे म सावन होय,
लागो रे महीना सावन का।
कवने बरन तोरी माय कवने बरन तोरे बाप।
कवने बरन राजा बिरना जिनि तोरी सुधिया न लेई,
लागो रे महीना सावन का।
कंकड़ बरन तोरी माया पत्थर बरन तेरो बाप।
लोहा बरन राजा बिरना जिन तोरी सुधिया न लीन,
लागो रे महीना सावन का।
जमुना बरन मोरी माया गंग बरन मेरो बाप,
सुरज चंद्र राजा बिरना लवटिहैं लागत मास असाढ़।

(ग) होली (रेखता)—होली के अवसर पर गाए जानेवाले गीत होली, फाग, फगुआ और चौताल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस अवसर पर अवधी क्षेत्र में रेखता नामक गीत भी गाए जाते हैं। रेखता अवधी प्रांत की अपनी निजी विशेषता है। रेखता गानेवाले लोग हाथों में मोरछल लिए रहते हैं और गीत के ताल के साथ ही उसे दूसरे हाथ से ठोंकते रहते हैं। यह परंपरा क्यों और कैसे चली, इस संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। पर यह परंपरा अपने वर्तमान रूप में काफी क्षीण हो चुकी है।

होली के गीतों में कहीं राधा कृष्ण के होली खेलने का वर्णन है, तो कहीं शिव को होली खेलते दिखाया गया है। होली के गीतों में शृंगार रस की ही प्रधानता रहती है। इसके साथ ही प्रकृति के मनोहर रूपों का वर्णन भी मिलता है। होली उमंग और उत्साह का त्योहार है। अतः इस अवसर के गीतों में एक विशेष प्रकार की मादकता रहती है। लेकिन होली में जहाँ एक ओर उल्लास और उमंग की लहर दिखलाई पड़ती है, वहीं दूसरी ओर विरह वेदना के चित्र भी देखने को मिल जाते हैं। किसी नवयौवना स्त्री का पति विदेश चला गया है और वह समय पर लौटकर नहीं आया। इसी समय होली का त्योहार आ जाता है। तभी वियोगिनी स्त्री गा उठती है :

पिया बिन बैरिन होरी आई।

इस प्रकार होली के गीतों में हास विलास के साथ ही वियोग और विरह की भी क्षीण किंतु हृदयद्रावक धारा प्रवाहित होती है। होली के गीतों में रामायण और महाभारत का लोकप्रचलित रूप भी उपलब्ध होता है। रेखता नामक गीतों में दशावतार की कथा, कंपनी कालीन स्थिति और शासनव्यवस्था तथा अन्य अनेक प्रेमपूर्ण प्रसंगों का वर्णन उपलब्ध होता है :

गोरी लाल ही लाल दिखावे ललन ललचावै।
अधर लाल पै पान लाल है लाल ही माँग भरावै।
टीका लाल भाल पर सोभित प्यारी बेंदी में लाल लगावै,
ललन ललचावै।
लहकदार नग लाल मूँदरी, चूँदरि लाल सुहावे।
फूल गुलाब लाल हाथन धरि, गोरी नैना में नजर मिलावै,
ललन ललचावै।
गोल कपोल लोल अति सुंदर चोली ललित लुभावै।
कसि मृदु लाल बाल छातिन पर गोरी लाल निहाल करावै,
ललन-ललचावै।
दै गले बाँह ललित मोहन को प्यारी पलंग बिठावै।
कृष्ण कन्हाई कामरस बाढ़त गोरी गाल पै गाल धरावै,
ललन ललचावै।

फाग

प्रभु ने ऐसी रेल बनाई।
तन की गाड़ी मन कर अंजन क्रोध की आग जलाई।
पानी रुधिर अपार भरो है मन का बेग लै जाई,
साँस की सीटी बजाई।
नाड़ी तार सम खबर लेन को दसहुँ द्वार पहुँचाई।
इंद्रिन के तहँ बने स्टेसन सान की घंटी बजाई,
धर्म की खेप लदाई।
उत्तम मध्यम अधम तीन हैं दरजे इसके भाई।
धर्माधर्म के टिकट बँटत हैं पाप पुण्य पहुँचाई,
सुनौ तुम कान लगाई।
जीव आतमा बइठे एहि माँ टिकस अपन देखलाई।
देखैंवाला वह जगदीसुर जिसने रेल बनाई,
कहैं सतगुर समझाई।

रेखता (होली)

चक्र सुदरसन राम का रखवाली पर ठाढ़ ।
किरपा होय रघुनाथ की सो पढ़ौं दसौ औतार ।
अवतार राम पहिले जब मच्छ का धरे ।
संखासुर मारि राम कोप हैं करे ।
रघुबर के सेवकन का दुख कभी ना परे ।
मालिक हैं दीनबंध हार गरब का करे ।
सब देव करैं जै जै औ करैं बंदगी ।
फिर एक बार बोलो जै रामचंद्र की ॥
औतार राम दूसर जब कच्छ का धरे ।
जब मथि समुद्दर का राम रतन लै कढ़े ।
देवुता बोलाय रघुबर अम्रित का पिआए ।
तेरौ रतन को बाँटि दीनबंध कहाए ।
सब देव करैं जै जै औ करैं बंदगी,
फिर एक बार बोलो जै रामचंद्र की ॥

(घ) बारहमासी, छमासा और चौमासा—पावस ऋतु में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें बारहमासा, छमासा तथा चौमासा कहते हैं। इन गीतों में विरहिणी की वेदना की अभिव्यक्ति पाई जाती है। वर्ष भर के बारह अथवा छह महीनों में होनेवाले दुःखों का वर्णन इन गीतों का प्रधान विषय होता है, इसीलिये इन्हें बारहमासा अथवा छमासा कहते हैं। चौमासा नामक गीतों में वर्षा ऋतु के चार महीनों में होनेवाले विरहिणी के कष्टों का वर्णन रहता है (चौमासा अवधी में वर्षा ऋतु का ही एक पर्याय है) ।

बारहमासा नामक गीतों में विरह की विशेषता रहती है। अतएव यदि इनको 'विरहमासा' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। 'पद्मावत' में अवधी के महाकवि जायसी ने नागमती का विरहवर्णन बारहमासा की ही शैली में किया है। इससे प्रतीत होता है कि अवधी क्षेत्र में बारहमासा गाने की प्रथा काफी पुरानी है।

उपर्युक्त गीत यद्यपि वर्षा ऋतु में ही गाए जाते हैं तथापि अन्य ऋतुओं में इनके गाने का निषेध नहीं है। मन में उमंग आने पर इन्हें कभी भी गाया जा सकता है। पति के परदेश जाने पर बारह, छह अथवा चार महीनों में होनेवाली नई नई वस्तुओं और बातों का तथा पत्नी के क्लेशमय जीवन का विशद वर्णन इन गीतों की अपनी विशेषता है। इन गीतों में वर्णित विरहिणी को अपने

उजड़े हुए जीवन के साथ प्रकृति के सौंदर्य में सामंजस्य नहीं दिखलाई पड़ता। उसे भादों की रात भयावनी और माघ का महीना मतवाला प्रतीत होता है :

ताकत रहिउँ मधुबन की डगरिया,
कोउ नहीं सूझि परै सजनी।
लागो असाढ़ चहूँ दिसि बरसै,
भरि आए ताल नदिय सगली।
ठाढ़े सोच करैं ब्रिजबाला,
कुबरी सौतिया सों अब न बनी।
सावन सखियाँ डाले हैं हिंडोला,
चुनि चुनि मोतियन माँग भरी।
तुम जो कहौ हरि अइहैं बिरिज माँ,
अजहुँ न आए मोरे स्याम धनी।
क्वारे स्याम हमें छल कीन्हा,
प्रीति करी उन कुबजा से।
तुम नँदलाल जनम के कपटी,
इतना कपट कियो हमसे।
कातिक निरमल उगे हैं चंद्रमा,
रैन लगै संसार भली।
जइसे तारा छिटके गगन माँ,
चंद चकोर ऐसी मैं जो बनी।
अगहन सखियाँ चीर पहिन कै,
डारे गलबहियाँ स्वावैं बलम के,
उनकी क्या सुखनींद बनी।
पूस की रैन हमैं नहिं भावै,
सुनि सुनि पिया को बियोग भरी।
एसे निरमोहिया का कोउ समुझावै,
खायकै कनी मरजाब नहीं।
माह की रैन उन्हें भावै सजनी,
जिनके पिया नित घर ही रहें।
अली री बसंत मैं कइसे मनाओं,
हमरे पिया परदेस गए।
फागुन में फरकन लागी अँखियाँ,
अब कुछु आगम जानि परे।

आवनि के सगुन विचारो बाई ननदी,
पिया आवन की कौन घरी।
चैत मास बन फूले हैं टेसू,
ऊधौ लिखी घर आवन की।
अजहुँ न आए माई किन बेलमाँए,
यहै अंदेसा लागि रही।
वैसाख मास बयस मोरी बारी,
आपु न आए स्वामी मधुबन से।
राति बिराति माँ बिरहा सतावै,
बिरहा की हूक लगी तन में।
जेठ मास एकु रथ हम दीखा,
पवन के संग उड़ात भली।
सूरस्याम प्रभु हरि के मिलन को,
सखियाँ तौ मंगल गाय रहीं।

(२) श्रमगीत—

(क) जँतसार—आटा पीसने की चक्की को अवधी क्षेत्र में जाँत अथवा जाँता कहते हैं। चक्की पीसते समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'जँतसार' कहते हैं। जँतसार वास्तव में यंत्रशाला का प्रतीक है, जिसका अर्थ है वह शाला या घर जिसमें जाँत रखा गया हो या रखा जाता हो। ये गीत आटा पीसने की थकावट दूर करने के लिये गाए जाते हैं।

जँतसार के गीतों में स्त्रियों की मानसिक वेदनाओं का बड़ा ही सुंदर चित्रण रहता है। इन गीतों में प्रियविहीना दुखिया विधवा का करुण क्रंदन बड़े ही मार्मिक रूप में चित्रित रहता है। इसी प्रकार इसमें वंध्या स्त्री की मनोवेदना भी लक्षित होती। इनमें यदि कहीं विरहिणी की व्याकुलता का वर्णन रहता है, तो कहीं सास द्वारा बहू को दी जानेवाली नारकीय यंत्रणा का चित्रण। संक्षेप में, करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसंग होते हैं उन सबकी अवतारणा इन गीतों में हुई है। सावन के गीतों की ही भाँति जँतसार के गीतों में भी पँवाड़े संमिलित रहते हैं :

जँतवा न डोले बेनुलिया न हाले हो ना।
रामा किलिया पकरि सुंदरि रोवे हो ना।
बाहर से आवै लछिमन देवरवा हो ना।
के तुहै मारै भौजी केन गरिआवै हो ना।

भउजी तोहरी मारै बहिन गरिआवै हो ना।
माता तोरी मारै बहिन गरिआवै हो ना।
देवरा धन तोरा गोहुँआ पिसावै हो ना।
छाँड़ि देव जँतवा कि छाँड़ि देव गोहुँआ हो ना।
भौजी नदी तीरे बसहि गोड़ियवा रे ना।
नदिया के तीरे गोड़ियवा मड़इया रे ना।
रामा छाँड़ि के भागे देवरवा रे ना।
दिन भर गोड़ियवा रे नइया चलावै हो ना।
राम समवाँ का लावै मछरिया हो ना।
लैकै मछरिया जब लौटे गोड़ियवा हो ना।
रामा धोउबू कि नाय मोरी रनियाँ हो ना।
रोग मोरा धोवै बलइया मोरी धोवै हो ना।
गोड़िया छूटि जइहै हाथै कै मेहनियाँ हो ना।
काटि धोय जब लावय गोड़ियवा हो ना।
रामा सिझिबू कि नाय मोरी रनियाँ हो ना।
रोग मोरा सीझै बलइया मोरी सीझै हो ना।
गोड़िया गोरा बदन कुम्हिलइहै हो ना।
बनय चोनय जब लावय गोड़ियवा हो ना।
रामा जेंवबू कि नाय मोरी रनियवाँ हो ना।
रोग मोरा जेंवै बलइया मोरी जेंवै हो ना।
रामा छूटि जइहै दाँत कै बतिसिया हो ना।
जेंय कै जब लवटय गोड़ियवा हो ना।
अब सोउबू कि नाय मोरी रनियवाँ हो ना।
रोग मोरा सोवै बलइया मोरो सोवै हो ना।
गोड़िया तोहरे पसिनवाँ चोलिया भीजैं हो ना।

(ख) सोहनी (निराई) के गीत—आषाढ़ के बोए हुए खेत जब अच्छी तरह जम जाते हैं तब सावन में खेत की घास और व्यर्थ के पौधों को खुरपी से निकालकर फेंक देते हैं। इस कार्य को सोहनी अथवा निराई कहते हैं। यह कार्य प्रायः चमारों के घर की स्त्रियाँ करती हैं। स्त्रियाँ निराई का काम करती हुई थकावट दूर करने के लिये गीत गाती जाती हैं।

इन गीतों में प्रायः कोई संक्षिप्त कथानक होता है। यही कारण है कि ये गीत अन्य गीतों की अपेक्षा बड़े होते हैं। इनमें कहीं मुगलों के अत्याचार का वर्णन रहता है, तो कहीं उनसे लड़कर किसी अबला के उद्धार की कथा रहती है।

कहीं सास द्वारा बहू के सताए जाने का वर्णन है, तो कहीं पति के द्वारा पत्नी के आचरण पर विश्वास न कर उसकी अग्निपरीक्षा का उल्लेख है। किसी किसी गीत में सौतिया डाह की झलक भी देखने को मिल जाती है। इसके साथ ही उन गीतों में दिव्य सतीत्व का उल्लेख पाया जाता है। इनकी लय ध्वनि बड़ी मोहक होती है, जिसे सुनकर श्रोता का मन इनकी ओर स्वाभाविक ढंग से आकर्षित हो जाता है :

ऊँचे कुँअना कै नीची जगतिया।
रामा पनियाँ भरै यक बँभनियाँ रे ना।
घोड़े चढ़ा आवा एक राजा का पुतवा हो ना।
बाँभनि एक बुन पनियाँ पिअउती हो ना।
कइसे क पनियाँ पिआवौं राजापुतवा हो ना।
राजा जतिया त मोरी जोलहनियाँ हो ना।
नाके सोहे नथिया त काने में करनफूल।
बाँभनि जतिया छिपाय जोलहनियाँ हो ना।
पनियाँ पिआवत के झलकी बतिसिया हो ना।
जोलहिन लागो न हमरे गोहनवाँ हो ना।
जोलहिन तोहका राखब जइसे घिउ गागरि हो ना।

× × ×

अपनी महल से उनके बियही निहारे हो ना।
सासू तोरा पूता ओढ़रि लै आवय हो ना।
चुप रहु बिअही तु चुप रहु बिअही हो ना।
रामा ओढ़री से गोबरा कढ़ौबै हो ना।
गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुरियाँ हो ना।
सासू कौने हाथे गोबरा मैं काढ़ौं हो ना।
कुसुम क सरिया छोड़ ओढ़री हो ना।
ओढ़री पहिरि ले फटही लुगरिया हो ना।
लुगरी पहिरि धन गोबरा काढ़े हो ना।
जीरा अइसी फुफुनी दिउलिया अइसी मथिया हो ना।
सासू कउने मूँड़े गोबरा मैं ढोऊँ हो ना।

× × ×

गोहुँआ कै रोटिया अरहरि कै दलिया हो ना।
रामा जेंवना बनावैं ओहि बिअहि हो ना।
माई आजु के जेवनवाँ नाहीं बना हो ना।

मकरा कै रोटी करै बथुश्रा कै सगवा हो ना।
रामा जेवना बनावे उहे श्रोढ़री हो ना।
जेंवन बइठे उनहीं रजपुतवा हो ना।
माई श्राजु के जेंवनवाँ खूबै बना हो ना।
श्रोढ़री बिश्राही करैं झोंटि क झोंटा हो ना।
रामा राजा बैठि डेहरी झंखे हो ना।
कवनि का मारौं माई कौनि का निसारौं हो ना।
बिश्रही का मारो पूत बिश्रही निसारौं हो ना।
श्रोढ़री का तिलरी पहिरावौं हो ना।
केकर नइया मइया पार लगावौं हो ना।
मइया केका बोरौं मँझधरवा हो ना।
श्रोढ़री के नइया बेटा पार लगाश्रो।
बिश्रही का बोरौं मँझधरवा हो ना।
सोने का टकवा मैं तोका देवौं हो ना।
गोड़िया श्रोढ़री के परवा लगावौ हो ना।
बिश्रही के नइया प्रभु परवा लगावैं हो ना।
रामा श्रोढ़री कै बूड़य मँझधरवा हो ना।
श्रोढ़री के ननऊँ दहिजरऊ के नाती हो ना।
रामा बिश्रही के घर मा मनाश्रो हो ना।

(ग) कोल्हू के गीत—देहात में ईख से रस निकालने के लिये कोल्हू का प्रयोग किया जाता है। कोल्हू चलाते समय लोग सर्दी को भुलाने की चेष्टा करते हैं। ईख से रस निकालने के श्रतिरिक्त तेल निकालने के लिये भी कोल्हू का उपयोग किया जाता है। इस श्रवसर पर तेली भी कोल्हू के गीत गाते हैं। इस प्रकार कोल्हू के गीत अधिकतर कुर्मी तथा तेली गाते हैं। कोल्हू के गीत प्रेम, विरह श्रौर करुण रस के भांडार हैं। इन गीतों में तेलियों के पेशे का भी उल्लेख पाया जाता है :

मोर कौड़ी क लोभी फिरौ घर का।
बेरिया की बेर तुहैं बरजौं नयकवा कि हमका गाहन दे लिश्राय।
गँठिया जोरि तोरि बरधी लदउबै कि डेरवा प भोजना बनाय।
ऊपरा से छोंड़बय घियना की धरिया कि श्रँचरा से झलबै बयार।
जौ धन होतिव बेइलिया क फुलवा लेतेवँ पगड़िया लगाय।
तू धन श्रहिउ बारी बयसवा की हँसिहैं संघाती लोग।
बेरिया क बेरि तोहैं बरजौं नयकवा कि उतर बनिज जिनि जाहु।
उतर क पनियाँ जहर बिष माहुर लागय करेजवा म घाय।

पानी पियत राजा तुम मरि जइहौ हम धना होवय अनाथ।
दँतवा कटाय पिया कोठवा पटउबे छतिया क वजर केवार।
दोनों नैन बिच हटिया लगउबे घरही करौ रोजगार।
अँवरि बँवरि के कोल्हुआ रे नयका बेल बँवुर कै जाठि।
जठिया के ऊपर ढेकुवा पिहीके वइसे पिहीके जिया मोर।
आधी रात पीतम ठोंकेनि कँधेलिया कि छतिया कुहूकै मोर।
चुटिकी काट छोटकी ननदी जगावै तोर बनिजरवा बनिज का जाय।
जेकरि ऊँचि नजरिया रे नयका औ कुलवंतिन जोय।
ते काहे जइहैं बनिज बिदेसवा घरही सवाई होय।

(३) मेला के गीत—अवधी क्षेत्र के देहातों में जहाँ देवस्थान (देवी देवताओं के मंदिर) हैं वहाँ प्रायः सप्ताह के किसी एक निश्चित दिन मेला लगता है। इन मेलों में आसपास के गाँवों के नर नारी एकत्र होते हैं। मेले में आनेवाली स्त्रियाँ रास्ते भर गीत गाती हैं। इन्हीं गीतों को 'मेला के गीत' कहा जाता है। इन गीतों में देवी देवताओं की कृपा का वर्णन, राम, कृष्ण अथवा अन्य किसी देवता के चरित्र से संबंधित कथानक आदि रहता है। अवधी क्षेत्र में जो गीत इस अवसर पर गाए जाते हैं, उनसे लोक की उदार धार्मिक नीति का ज्ञान होता है। स्त्रियाँ अपने बच्चों की मंगलकामना के लिये किसी भी देवता की पूजा करने को तत्पर रहती हैं। हिंदू स्त्रियों के स्वर अल्ला मियाँ की बारादरी देखने के लिये उत्सुक हैं। उनके स्वरों से अल्ला मियाँ के दर्शनों का विधान वर्णित होता है :

चलौ देखि अइयै अल्ला के बारादरी।
अल्ला मियाँ माँ का का चढ़त है,
नीबू नौरंगी छोहारा गरी ॥ चलौ० ॥

इस प्रकार मेला के गीतों की उपासना का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है जो धर्म और समाज की अप्राकृतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर लोकधर्म की व्याख्या करते हैं।

(४) संस्कार गीत—लोकजीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि धर्म ही लोकजीवन का प्राण है, तो अत्युक्ति न होगी। हमारे धार्मिक जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा संपूर्ण जीवन संस्कारमय है। जन्म के पूर्व भी हमारे लोकजीवन में कुछ महत्वपूर्ण संस्कारों की स्थापना की गई है जिनका अपना महत्व है। इस प्रकार के संस्कारों में गर्भाधान तथा पुंसवन मुख्य हैं। वैदिक साहित्य में पुंसवन संस्कार के अवसर पर गाए जानेवाले मंत्रों का उल्लेख मिलता है। आज भी अवधी क्षेत्र में उपलब्ध लोकगीतों में

संस्कार संबंधी लोकगीतों की संख्या सबसे अधिक है। अवधी भाषा भाषी क्षेत्र की जनता विशेष रूप से ग्रामों में ही रहती है और नगरों की अपेक्षा वहाँ के जीवन में धार्मिक भावनाओं का प्राधान्य और प्राबल्य है। अतः अवधी क्षेत्र के लोकगीतों में संस्कार संबंधी लोकगीतों की अधिकता सर्वथा स्वाभाविक है। इसके साथ ही इनकी अधिकता और प्रधानता का एक कारण यह भी है, कि इनका संबंध लोकमानस के उत्साह और आनंद से है। आगे विभिन्न संस्कारों से संबंधित लोकगीतों का परिचय दिया जा रहा है।

(क) जन्मगीत—अवधी क्षेत्र के लोकगीतों के उपलब्ध स्वरूपों की दृष्टि से पुत्रजन्म संस्कार सबसे पहला और प्रधान है। इस अवसर पर अवधी क्षेत्र में गाए जानेवाले गीतों में सोहर सर्वाधिक प्रचलित है। लेकिन सोहर के अंतर्गत समाविष्ट होनेवाले अन्य गीत भी अवधी क्षेत्र में 'साध', 'सरिया', 'रोचना', 'पालना', 'कठुला', 'झुनझुना' अथवा 'खेलवना', 'बधाई', 'लचारी' तथा 'छठी' के नाम से प्रचलित हैं।

(१) सोहर—मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अवसर जन्म का होता है। इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को प्रधानतः 'सोहर'[१] कहते हैं। सोहर को 'सोहली' अथवा 'मंगलगीत' भी कहा जाता है। यही कारण है कि अवधी लोकगीतों में सोहर के लिये कहीं कहीं पर 'मंगल' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ एक सोहर की अंतिम दो पंक्तियाँ हैं :

जो यह मंगल गावइ गाइ सुनावइ हो।
सो बैकुंठे जाय सुनइया फल पावइ हो।

अवधी के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में जन्म और विवाह के अवसर पर स्त्रियों से 'मंगल' अथवा 'मंगलगीत' ही गवाया है। यथा :

गावहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।

सोहर को सोहिलो भी कहा जाता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। यह 'सोहिलो' शब्द कदाचित् संस्कृत शब्द 'शोभन' से व्युत्पन्न हुआ है। इस अवसर के गीतों को 'सोहर' की संज्ञा संभवतः छंद के नाम पर दी गई है, क्योंकि इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों के छंद को भी सोहर ही कहते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार सोहर का संबंध 'सौर गृह' से है, किंतु यह चिंत्य है।

१ 'सोहर' की सीमा पश्चिम में 'कनउजी' तक है।

सोहरों में पिंगल का नियंत्रण नहीं उपलब्ध होता। इसका प्रमुख कारण इनका स्त्रियों द्वारा रचा जाना है। रचना में मात्राओं की समता और अंत्यानुप्रास पर भी ध्यान नहीं दिया जाता। लेकिन गाते समय स्त्रियाँ इनके छोटे बड़े पदों को बराबर कर लिया करती हैं। अवधी क्षेत्र के अनेक सोहरों में तुलसीदास का नाम उपलब्ध होता है, किंतु इन्हें रामायण के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की रचना के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि तुलसीदास जी ने रामललानहछू में जिन सोहरों की रचना की है उनमें अंत्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है। उनके द्वारा रचित सोहरों के प्रत्येक पद की मात्राएँ भी समान हैं और इस प्रकार उनका सोहर छंद तथा काव्यशास्त्र के नियमों से नियंत्रित है।

सोहर प्रायः बारह दिनों तक गाए जाते हैं और जब बालक का बरही संस्कार समाप्त होता है, तभी इन गीतों का गाना भी समाप्त होता है। पुत्रजन्म के अवसर पर यदि पिता परदेश में हो तो उसके यहाँ संदेश भेजने की प्रथा है। इस संदेश भेजने को अवधी क्षेत्र में 'रोचना' अथवा 'लोचना' कहते हैं। पिता संदेशवाहक को द्रव्य दान करता है। अवधी क्षेत्र में सोहर पुत्रजन्म के अतिरिक्त उपनयन और विवाह के अवसर पर भी गाए जाते हैं।

अवधी क्षेत्र के सोहरों का प्रधान वर्ण्य विषय प्रेम है। रस की दृष्टि से इनमें शृंगार और हास्य की प्रधानता रहती है। इसके साथ ही सोहर गीतों में करुण रस के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। सामान्यतः सोहर में आनंद और उल्लास का ही वर्णन रहता है। इसीलिये इनका प्रधान विषय प्रेम और शृंगार है। बालक पति पत्नी के पारस्परिक प्रेम और आकर्षण का परिणाम होता है। यही कारण है कि अनेक सोहरों में पति पत्नी के प्रेम का चित्रण उपलब्ध होता है। लेकिन, इसके साथ ही स्त्रियों की करुण दशा के चित्र भी सोहरों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। अनेक सोहरों में बंध्या के मन की व्यथा सजीव हो उठी है। अधिकांश सोहर जचा बचा से संबंधित होते हैं, किंतु ऐसे सोहरों की भी संख्या कम नहीं है जिनमें जचा बचा से संबंधित प्रसंगों का सर्वथा अभाव रहता है। इस प्रकार के सोहरों में मन की शाश्वत करुणा का भाव मूर्त हो उठा है। किन्हीं किन्हीं सोहरों में देशप्रेम की भी झलक मिल जाती है।

संक्षेप में पुत्रकामना, बंध्यापन से निराश स्त्री द्वारा आत्महत्या करने का प्रयत्न, देवर भाभी का अनुचित संबंध, पति का परस्त्री, विशेष रूप से मालिन से, अनुचित संबंध, ननद भाभी के झगड़े, पति का परदेश में होना और देवर से पुत्रोत्पत्ति, नेग, ननद, देवरानी, जिठानी तथा सास से झगड़ा, रविवार के व्रत को पुत्रप्राप्ति के लिये साधना, बधाई तथा खुशी मनाना आदि सोहर के सामान्य

वर्ण्य विषय हैं। इसके अतिरिक्त अवधी क्षेत्र के सोहरों में गर्भावस्था तथा जचा के नखशिख का वर्णन भी बड़े विस्तृत तथा रोचक ढंग से हुआ है।

सोहर

जो मैं जनतिउँ कि लवँगरि यतना महकबिउ।
लवँगरि रँगतिऊँ छयलवा के पाग सहरवा माँ गमकत।
अरे अरे कारी बदरिया तुहइ मोरि बादरि हो।
बदरी जाय बरसौ वोहि देस जहाँ पिय छाए हैं हो।
बाउ बहै पुरवइया त पछुआ झकोरइ हो।
बहिनी देहेव केवड़िया ओढ़काइ सोवउँ सुख नींदरि हो।
की तू कुकुर बिलरिया सहर सब सोवइ हो।
की तू ससुर पहरुआ केवड़िया भड़कावहु हो।
ना हम कुकुरा बिलरिया न ससुर पहरुआ हो।
धन हम अहीं तोहर नयकवा बदरिया बोलाएसि हो।
आधी राती बीति गई बतियाँ निराई राति चितियाँ हो।
बारह बरस का सनेह जोरत मुरगा बोलइ हो।
तोरों मैं मुरगा के चोंच गटइया मरोरउँ रे।
मुरगा काहे किहेव भिनसार त पियहिं जगाएहु रे।
काहे का तोरबिउ चोंच गटइया मरोरबिउ रे।
रानी होइगै धरमवाँ के जून त भोर होत बोलेउँ रे।

(२) साध (दोहद)—'साध' नामक गीत सोहरों के ही अंतर्गत आते हैं। इनके गाने का ढंग भी सोहर के ही समान है। गर्भ धारण करने के पश्चात् प्रत्येक स्त्री के मन में अनेक प्रकार की इच्छाएँ जाग्रत हुआ करती हैं। इन इच्छाओं की पूर्ति करना परिवार के लोग अपना कर्तव्य समझते हैं। प्रथम बार जब स्त्री गर्भ धारण करती है तो सभी संबंधी 'सधौरी' देते हैं। इस सधौरी में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, खाने की वस्तुएँ तथा वस्त्राभूषण आदि रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार गर्भ के पाँचवें मास के उपरांत सधौरी देता है।

अवधी क्षेत्र में सधौरी को उत्सव के रूप में मनाया जाता है और अवसरानुकुल इन साधों (साध के गीतों) को गाया जाता है। सधौरी के गीत विशेष रूप से उस समय गाए जाते हैं जब गर्भवती स्त्री के मायके से पँचमासा या सतमासा आता है। पँचमासा तथा सतमासा अवधी क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रथा है। गर्भवती स्त्री के मायके के लोग जब गर्भ के संबंध में सुनते हैं तो प्रसन्न होकर अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण तथा मिठाइयाँ इत्यादि भेजते हैं। इनमें गर्भवती स्त्री के

पति, सास और ससुर के लिये भी वस्त्राभूषण रहते हैं। आजकल पँचमासा तथा सतमासा की सुंदर प्रथा गर्भवती स्त्री के सास ससुर का अधिकार बन गया है।

इसी अवसर पर तथा कभी कभी बच्चों की वर्षगाँठ पर ये साध (दोहद) के गीत विनोद के लिये गाए जाते हैं। इनमें से कुछ गीत अत्यंत अश्लील हैं। ये गीत सोहरों की ही भाँति अत्यधिक मात्रा में प्रचलित हैं। इनमें स्त्री की इच्छा तथा उनकी पूर्ति के वर्णन के साथ ही पति पत्नी का व्यंग्यविनोद भी चित्रित रहता है।

(३) सरिया—यद्यपि सोहर और सरिया नामक गीतों का संबंध जन्मसंस्कार से ही है, फिर भी दोनों के छंदविधान तथा गाने के ढंग में अंतर है। पुत्रजन्म के अवसर पर सर्वप्रथम सरिया गीत गाए जाते हैं। यद्यपि इनका प्रचलन धीरे धीरे समाप्त होता जा रहा है, फिर भी अवधी क्षेत्र में कहीं कहीं पर सरिया गीत अभी उपलब्ध हो जाते हैं। इन गीतों में पुत्रजन्म के पूर्व जच्चा की पीड़ा, पति का दाई को लिवाने जाना, दाई के नखरे करना और अनुनय विनय के पश्चात् पालकी से आना, नेग न मिलने पर झगड़ना, जच्चा का दाई को धमकियाँ देना तथा अंत में भली भाँति पुरस्कृत होने पर आशीष देते हुए जाना आदि वर्णित रहता है :

सरिया

सरिया खेलंते कवन रामा, रानी के कवन रामा।
कहाँ सारी खेलिए मेरे लाल ?
सरिया तो धरहु उठाय तो झुडुले बिरिछ तरे।
तमोली की हटिया मेरे लाल।
तुम्हें रानी बोलती मेरे लाल।
एक पाँव धरेनि डेहरिया तौ दूसर पलंग पर लइ धना कंठ लगाइ—
लाज सरम केरी बात,
सकुच केरी बात मरद आगे का कहौं मेरे लाल।
मोरा तोरा अंतर एक कपट जिया नाहीं—भेद जिया नाहीं—
कहौ दिल खोलिकै मेरे लाल, कहौ समुझाईकै मेरे लाल।
बावाँ कूल मोर कसके, दहिन मोर साले,
मारे पँजरवा कै पीर, चतुर दाई चाहिय मोरे लाल।
सुघर दाई चाहिय मोरे लाल।
दाई के देस नहिं जान्यों कोस नहिं जान्यों,
सुघर दाई कहाँ बसै मेरे लाल।
चतुर दाई कहाँ बसै मेरे लाल।

पूछो न माया बहिनियाँ, सगी पितिअनियाँ, कुआँ पनिहरियाँ,
सहर के लोग से मेरे लाल।
नगर के लोग से मेरे लाल।
ऊँचा सा नग्र अयोध्या हरे बाँस छावा,
अगर चंदन का है रूख चंपे केरी डार, गुलाब सुहावन मेरे लाल।
अगिले के घोड़वा रामचंद्र पछिले लखनलाल,
पछिले भरत जी उलल बछेड़वा सत्रुघन रामा।
दाई भाई लेन चले मेरे लाल, सुघर दाई लेन चले मेरे लाल।
टटवा भाई लेन चले मेरे लाल, सुघर दाई लेन चले मेरे लाल।
सो एत्ती राती आए मेरे लाल।
केहिके हो तुम नाति केहिके बेटा, कौनी बहुरिया के नाह—
सो सोवत जगइए मेरे लाल।
बाबा के हम नाति (जसरथ) 'कवन' के रे बेटा,
हम घर रनियाँ गरभ सन दरद बहुत हवै मेरे लाल।
तो चलहु बुलावतीं मेरे लाल।
दाई तौ बैठि पलंग चढ़ि, अंजन मंजन कीन्हें,
सोरहौ सिंगार कीन्हें, नैन कजरु दीन्हें।
माँग सेंदूर भरे, मुखहु तंबोलु खाए, बोलत गरब भरी मेरे लाल,
उतरु नहिं देति है मेरे लाल।
तेरी घना हथवा कै साँकरि, मुँह कै फोहार।
देई नहिं जानति मेरे लाल, अदरु नहिं जानति मेरे लाल।
मेरी घना हथवा के गहबरि मुख मिठबोलनी
देई भल जानति मेरे लाल।
कि तोरी माया पिरवानी, बहिनि दुख पइए मेरे लाल।
माया कै अदरु न जान्यो, बहिनी रजन घर,
पान फूलु ऐसी रनियाँ तो दर्द बहुत हवै मेरे लाल।

(४) रोचना (लोचना)—पति के परदेश होने पर संदेश भेजने की प्रथा थी। इसी प्रथा को अवधी क्षेत्र में 'रोचना' ('लोचना') कहते हैं। रोचना भेजने की प्रथा अपने प्रारंभिक रूप से काफी परिवर्तित हो गई है। आजकल यदि पुत्र का जन्म अपने पिता के घर होता है तो नाई उसके मामा तथा नाना के पास यह सुखद संदेश लेकर जाता है और यदि पुत्रजन्म ननिहाल में होता है तो ननिहाल का नाई बाबा और पिता के घर जाकर रोचना देता है। रोचना पुत्रजन्म का समाचार भेजने का एक दूसरा प्रकार है जो यातायात की असुविधा के कारण

किसी समय में एक अनिवार्य अवश्यकता थी और आज वही अवश्यकता अनावश्यक होने पर भी रूढ़ बनी रह गई है। इस अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'रोचना' कहते हैं। नामभेद के अतिरिक्त रोचना और सोहर गीतों में अन्य किसी प्रकार का अंतर नहीं पाया जाता। इन गीतों में नाई के रोचना लेकर जाने और पुरस्कृत होकर लौटने का वर्णन रहता है।

(५) बधाई—पुत्रजन्म होने पर शिशु की बुआ 'बधाई' लेकर आती है। बधाई में बच्चे के लिये वस्त्राभूषण तथा खिलौने रहते हैं। इस बधाई के उपलक्ष में बुआ को शिशु के पिता की ओर से नेग के रूप में बधाई और प्रेम के अनुरूप धन मिलता है। यह बधाई जन्म के दिन से लेकर अन्नप्राशन के दिनों के बीच में आती है। इस अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें बधाई कहा जाता है। इन गीतों में बधाई के सामान, जिसे 'बधावा' कहते हैं, के वर्णन के साथ ही भाई बहन के प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण रहता है। अन्य बातों में ये गीत सोहर के ही समान होते हैं।

(६) छठी—छठी पुत्र उत्पन्न होने के छठे दिन मनाई जाती है। कुछ घरों में एक दो दिन का हेर फेर हो जाता है। छठी का उत्सव पुत्रजन्म के बाद सबसे महत्वपूर्ण उत्सव होता है। इस दिन कुटुंबियों को सपरिवार निमंत्रित किया जाता है और उन्हें कच्चा भोजन (रोटी, दाल, चावल) खिलाया जाता है। इस दिन के भोजन की सबसे बड़ी विशेषता उड़द की दाल के बने हुए बड़े होते हैं। इसीलिये छठी के बड़े (कहीं कहीं पर चावल) खाने की लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

इस अवसर पर छठी का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अनेक देवी देवताओं—सूर्य, चंद्र, गंगा, यमुना तथा गृहदेवता एवं ग्रामदेवता—के चित्र अंकित किए जाते हैं। इन सब चित्रों के मध्य में माँ और पुत्र का चित्र अंकित किया जाता है। इस छठी के चित्र की पूजा सबसे पहले कुटुंब का सबसे अधिक आयुवाला व्यक्ति करता है। उसके बाद परिवार के सभी लोग इसे पूजते हैं। इस अवसर पर 'छठी' के गीत गाए जाते हैं :

> **पूजत छठिया स्याम सुंदर ब्रजराज कुँअर की,**
> **बहुत बिधि पूजा बनाई।**
> **पहिले तो पूजे दसरथ मोतिन थारू भराए।**
> **फिर तो पूजे रानी कौसिल्या देई मोतिन माँग भराइ।**
> **फिर तो पूजै बाबा सबै जनै मोतिन थारु भराइ।**

इन गीतों में चरुआ चढाई, पिपरी पिसाई, काजल लगवाई तथा बंशी बजवाई आदि कार्यों के नेग माँगने तथा इन कार्यों के संपादित होने का वर्णन छठी

अथवा उसके किसी कृत्यविशेष से संबंध नहीं रखता। इन गीतों में कहीं कहीं पर अत्यंत करुण चित्र अंकित मिलते हैं।

(ख) पसनी—बालक को जिस दिन पहली बार अन्न खिलाया जाता है, उसे अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। इस अवसर पर प्रायः सोहर ही गाए जाते हैं। इन गीतों में खीर की व्यवस्था में परेशान कुटुंबियों तथा भाई के न आने के कारण उदास जच्चा का वर्णन पाया जाता है। कुछ गीतों में सभी इष्ट मित्रों को निमंत्रित करने की उत्सुकता तथा उन्हें निमंत्रण भिजवाने की चिंता का वर्णन हुआ है। इस अवसर के गीत अवधी क्षेत्र में उपलब्ध तो होते हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत कम है। वस्तुतः इस अवसर पर सोहर ही अधिक गाए जाते हैं।

(ग) मुंडन और कर्णबेध—बालक के कुछ बड़े होने पर उसके गर्भ के बाल उतरवा दिए जाते हैं। यह संस्कार चूडाकर्म संस्कार कहलाता है जिसे अवधी में 'मुंडन' कहा जाता है। यह संस्कार बालक की तीन, पाँच अथवा सात साल की आयु में होता है। सात वर्ष की अवस्था के भीतर ही यह संस्कार प्रायः कर दिया जाता है। 'मुंडन' किसी तीर्थस्थान, नदी के किनारे अथवा देवस्थान के समीप किया जाता है। ठीक इसी प्रकार इन्हीं अवस्थाओं में कर्णबेध संस्कार होता है। बालक के कान छेदकर उनमें सोने की बालियाँ पहना दी जाती हैं। अवधी क्षेत्र के लोक-समाज में पुत्रजन्म की ही भाँति ये अवसर भी प्रसन्नता के होते हैं, अतः इन अवसरों पर खूब गीत गाए जाते हैं। इन गीतों को अवधी क्षेत्र में क्रमशः 'मूँड़न' और 'छेदन' कहा जाता है, किंतु अन्नप्राशन की भाँति इन अवसरों पर भी सोहर ही अधिक गाए जाते हैं। यही कारण है कि 'मूँड़न' और 'छेदन' नाम के गीत सीमित संख्या में उपलब्ध होते हैं :

जौ पूता रहतेऊ बार अउर गभुआर।
सोने के छुरवा गढ़ावैं बाबा तुम्हार।
सोने के छुरवा गढ़ावैं तो दादा तुम्हार।
जौ पूता रहतेऊ बार अउर गभुआर।
सोने के छुरवा गढ़ावैं तो चाचा तुम्हार।
फूफा तुम्हार, जीजा तुम्हार, नाना तुम्हार।
जौ पूता रहतेऊ बार अउर गभुआर।
सोने के छुरवा गढ़ावैं तो बाबा तुम्हार।
गभिनी हिरनिया न मारैं बाप तुम्हार।
लाल पियर न पहिरैं माया तुम्हार।
जौ पूता रहतेऊ बार अउर गभुआर।

(घ) जनेऊ के गीत—अवधी क्षेत्र में जनेऊ तथा विवाह दो प्रधान

संस्कार समझे और माने जाते हैं। जनेऊ के मुख्य गीतों को 'बरुआ' तथा 'भीखी' कहा जाता है। बरुआ नामक अवधी लोकगीतों में इस संस्कार से संबंधित अनेक कृत्यों का वर्णन पाया जाता है। यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी किसी स्त्री को माता कहकर 'भीख' माँगता है, तो कहीं पर वह काशी अथवा काश्मीर जाने के लिये तत्पर दिखाई देता है। इस अवसर पर पलाश का दंड, मूँज की कौपीन तथा मृगछाला धारण करना पड़ता है। इन सभी बातों का 'बरुआ' गीतों में उल्लेख हुआ है। कई गीतों में सूत कातने तथा यज्ञोपवीत बनाने का भी वर्णन है। कुछ गीतों में यज्ञोपवीत की सामग्री एकत्र करने के लिये पिता की बेचैनी का भी उल्लेख हुआ है।

यज्ञोपवीत आनंद का अवसर माना जाता है, इसीलिये इन गीतों में प्रधान रूप से आनंद और उत्साह की ही अभिव्यक्ति मिलती है, यद्यपि कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें रस की अभिव्यक्ति हुई है। 'भीखी' नामक गीतों में बटु द्वारा भिक्षा माँगने का वर्णन रहता है :

गलिया के गलिया पंडित घूमै हथवा पोथिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरुआ जेंवत होइहैं,
पंडित बेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल घमाके, दइव अस गरजे।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेऊ ॥
गलिया के गलिया नाऊ घूमैं हथवा किसबतिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ।
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरुआ जेंवत होइहैं,
पंडित बेद पढ़ैं रे।

(१) **देवी के गीत**—कुछ दिन पूर्व से ही शुभ मुहूर्त में जनेऊ की तैयारियाँ प्रारंभ हो जाती हैं। इसी प्रारंभ को अवधी क्षेत्र में 'गीत निकलना' अथवा 'धान गीत' कहते हैं। धान गीत के अवसर पर गेहूँ आदि खाद्यान्नों को साफ किया जाता है। इस अवसर पर काम करते समय स्त्रियाँ देवी के गीत गाती हैं। इन गीतों के साथ ही कहीं कहीं पर सोहर भी गाए जाते हैं :

देवी का गीत

आवनि की बलिहारी मैया तेरे आवन की बलिहारी।
उइ देवी निकर्सीं हाथ लीन्हे बढ़नी सहस कलस सिर भारी।
लाल घँघरिया मइया पेरी ओढ़निया, वोहिमाँ लागि किनारी।

सेतुआ राव कुआँरिन खावा, बुढ़ियन खाँड़ सोहारी।
बासी भात चहूँ जग पूजा, ऊपर सिखरन ढारी।
लंगुरे नाव खेइ लइ आवौ, बूड़त नाव हमारी।
सात सुपारी मैया धजा नारियल, यह लेओ भेंट हमारी।

(२) तेल चढ़ाने तथा सिलपोहनी के गीत—तेल चढ़ाने की प्रथा जनेऊ और विवाह दोनों में संपन्न होती है। बरुआ अथवा वर के मातृपूजन के दिन तेल चढ़ाया जाता है। अविवाहित कन्याएँ दूब (दूर्वादल) से तेल चढ़ाती हैं। ब्रह्मचारी को तेलमर्दन का निषेध है। अतएव जनेऊ के एक दिन पूर्व तेल आखिरी बार अच्छी तरह से लगा दिया जाता है। इस अवसर पर होनेवाले मातृ-पूजन को स्त्रियों की भाषा में 'माईं मंतरा' अथवा 'मायन' कहते हैं। माईंमंतरा 'मातृनिमंत्रण' का रूपांतर है। इस दिन समस्त पुरखों (पूर्वजों) का नांदीमुख श्राद्ध होता है और सभी मातृकाओं का आवाहन करके उनकी पूजा की जाती है।

पुरखों के नांदीमुख श्राद्ध के लिये कुल की सधवाएँ उड़द की दाल पीसती हैं। इसी की बरियाँ अथवा पिंड बनाकर उनका श्राद्ध किया जाता है। कुल के समस्त पुरखों के श्राद्ध के लिये कुल की समस्त सधवाओं का सक्रिय सहयोग नितांत आवश्यक है। दाल पीसने की इस प्रथा को 'सिलपोहनी' कहा जाता है। इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को 'तेल और सिलपोहनी' के गीत कहा जाता है :

तेल

अरी आनिनि बानिनि तेलिनि रानी,
कहाँना का तेलु संचान्यो आय।
तिल केरा तेल सरस केरी घानी,
अरे तेलु चढ़ावैं कवन देई रानी।
जो भाँख्या भँटवरिया दीख्यों,
उइ भाँटा उठि हाट बजार,
जिनि कवन रामा ख्यालत देख्यों,
उइ रे कवन रामा चौके बईठि।

(३) माँड़व के गीत—मंडपस्थापन के दिन जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'माँड़व के गीत' कहते हैं। जनेऊ और विवाह दोनों में ही मंडपस्थापन के दिन ये गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में मंडप की सजावट आदि का वर्णन रहता है।

(ङ) विवाह के गीत—विवाह जीवन के सभी संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध है। मनुस्मृति में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख हुआ है। किंतु अवधी

क्षेत्र में जितने भी इस अवसर के गीत संगृहीत किए गए हैं, उनमें केवल ब्राह्म और दैव विवाहों की ही चर्चा उपलब्ध होती है। वैसे तो समाज में गांधर्व विवाह भी हुआ करते हैं, किंतु अवधी क्षेत्र के गीतों में इसका उल्लेख नहीं प्राप्त होता। विवाह के अवसर पर कई प्रकार के शास्त्रोक्त एवं लौकिक कृत्यों का संपादन किया जाता है और प्रायः प्रत्येक अवसर पर गीत गाया जाता है।

इन गीतों को दो प्रधान वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—वर के घर गाए जानेवाले गीत और वधू के घर गाए जानेवाले गीत। वधूवाले गीत अत्यंत सरस, मधुर और प्रायः करुण-रस-पूर्ण होते हैं। विदाई के अवसर पर गाए जानेवाले विदा गीत तो इतने हृदयद्रावक होते हैं कि उन्हें सुनकर हृदय विदीर्ण होने लगता है।

इसके विपरीत वरपक्ष के गीत हर्षोत्पादक एवं शोभा तथा श्री से पूर्ण होते हैं। इनमें वर के संबंधियों का उल्लास तथा अवसरविशेष की धूमधाम का ही वर्णन विशेष रूप से पाया जाता है। देशप्रथा के अनुसार विवाह संबंधी विभिन्न विधियों के समय गाए जानेवाले वर तथा वधूपक्ष के अवधी लोकगीतों के कई रूप (प्रकार) उपलब्ध होते हैं। कन्या के यहाँ तिलक, कलसधराई, हरदी, लावा भुजाई, मातृपूजा, द्वारपूजा, विवाह, भाँवर, सोहाग, द्वार रोकने, परिहास (कोहबर), भात, वर उबटन, बिदाई, कंगन आदि के गीत होते हैं और वरपक्ष में तिलक, सगुन, मौर, वस्त्रधारण, हरदी, मातृपूजा आदि के गीत। इनमें से कुछ गीत ऐसे हैं जो बारात आने अथवा जाने के पूर्व गाए जाते हैं और कुछ बारात लौटने के बाद। बारात आते और उसके लौटते समय गाए जानेवाले 'परिछन' के गीतों में अंतर है। यदि पहले में हर्ष है, तो दूसरे में चिंता। इस अवसर के कुछ गीत उभय कुलों (वर और कन्या) में गाए जाते हैं।

विवाह के समय गाए जानेवाले अवधी लोकगीतों का वर्ण्य विषय अत्यंत विस्तृत है। इनमें कहीं पुत्री के विवाह के लिये पिता चिंताग्रस्त है तो कहीं पर अपने पिता से सुंदर और योग्य वर खोजने की प्रार्थना करती हुई पुत्री चिंतित हुई है। कहीं पर माता अपने पति को पुत्री के लिये वर खोजने को प्रेरित करती है, तो कहीं योग्य वर न मिलने की चिंता से व्याकुल पिता दिखाई देता है। कहीं माता पुत्री-जन्म के कारण अपने भाग्य को कोसती है, तो कहीं पर बाजा बजने का उल्लेख है। किसी किसी गीत में माता अपने जामाता से पुत्री को सुखपूर्वक रखने की प्रार्थना करती हुई चित्रित की गई है।

कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें कन्या वर से विवाह करने की प्रार्थना करती है। इसके विपरीत कुछ में वर कन्या से विवाह करने की प्रार्थना करता है। यद्यपि आज के समाज में ये दोनों ही प्रथाएँ अप्रचलित हैं, फिर भी प्राचीन प्रथाओं के

अवशेष के रूप में इनका उल्लेख अवधी गीतों में उपलब्ध होता है। विवाह के गीतों में बालविवाह और वृद्धविवाह की भी कहीं कहीं चर्चा की गई है। इसके साथ ही दहेज प्रथा तथा उससे उत्पन्न परिस्थितियों का भी उल्लेख हुआ है।

कोहबर के गीतों में परिहास के अनेक अवसर और प्रसंग उपस्थित होते हैं। इन गीतों में हास्य रस का अच्छा पुट रहता है। इस अवसर के गीतों में भाई बहन के अकृत्रिम प्रगाढ़ प्रेम का भी वर्णन हुआ है। बहन अपने बेटे अथवा बेटी के विवाह में अपने भाई और भौजाई को निमंत्रित करती है। भाई 'पहँधावन' (बहन और बहनोई के लिये लाए जानेवाले वस्त्राभूषण) लेकर आता है और उस समय बहन का हृदय प्रेम से गद्‌गद् हो जाता है। 'ज्योनार' गीतों में खाद्य पदार्थों की लंबी सी सूची रहती है। भले ही ये वस्तुएँ बनाई न जायँ, फिर भी बारात के भोजन करते समय इन वस्तुओं को गीतों के माध्यम से गिना दिया जाता है।

अवधी क्षेत्र में इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों के नाम इस प्रकार हैं: पेरी तथा भात, नाखुर (नहछू), तेलु, गौन्याही (कहीं कहीं इन्हें सुहाग कहा जाता है), द्वारचार, भाँवर, बाती, गालियाँ, ज्योनार, परिछन, बनरा, बनरी, नकटा, घोड़ी और सेहरा।

(१) पेरी तथा भात—प्रत्येक मांगलिक संस्कार के अवसर पर भाई का 'पियरी' लाना नितांत आवश्यक है। 'पियरी' वस्तुतः पीली धोती को ही कहा जाता है। इसी पियरी को पहनकर बहन पूजा करती है। पियरी को कहीं कहीं पर 'भात' भी कहा जाता है। मंडपस्थापन के दिन भाई बहन को पियरी लाकर देता है। इसी अवसर पर 'पेरी' तथा 'भात' नामक गीत गाए जाते हैं।

(२) नाखुर—नाखुर को नहछू भी कहते हैं। नाखुर में महावर लगाने के पहले पैर के नाखून काटे जाते हैं। विवाह में मातृपूजन के दिन वर का नाखुर होता है, तब महावर लगाया जाता है और उसके बाद विवाह के लिये वर घर से प्रस्थान करता है। इसी अवसर पर 'नाखुर' एवं 'निकासी' के गीत गाए जाते हैं। कन्याओं का भी नाखुर होता है, किंतु नाखुर के गीत नहीं गाए जाते।

(३) तेलु—वर और कन्या को तेल चढ़ाने के अवसर पर तेलु नामक गीत गाए जाते हैं।

(४) गौन्याही अथवा सुहाग—जिस दिन बारात आनेवाली और रात को भाँवरें पड़नेवाली होती हैं उसी दिन प्रातःकाल टोले मुहल्ले की स्त्रियाँ कन्या को लेकर गाती हुई गहुरानी न्योतने निकलती हैं। कन्या के सिर पर लाल खारुए का कपड़ा दादी या माता छत्र या वरद हस्त के रूप में रखकर घर घर ले जाती हैं। इस समय प्रत्येक घर की एक सुहागिन अपनी माँग से उसके माँग में घूरिया या

सूखा सिंदूर लगाती है। जो स्त्री कन्या के माथे पर सिंदूर लगाती है वह उस दिन उपवास करती है। रात को सभी स्त्रियाँ पुनः एकत्र होकर मंडप के नीचे जाती हैं और पुनः कन्या की माँग में सिंदूर लगाती हैं। इसी अवसर पर गौन्याही अथवा सुहाग नामक गीत गाए जाते हैं।

(५) **द्वारचार**—जब बारात की अगवानी हो जाती है और वह कन्या के दरवाजे पर आ जाती है, उस समय द्वारचार के गीत गाए जाते हैं।

(६) **भाँवर**—नाम से ही स्पष्ट है कि ये गीत भाँवरों से संबंधित हैं। जिस समय भाँवरें पड़ती हैं उसी समय भाँवर नाम के गीत गाए जाते हैं :

> **लाई डारो भइया लाई डारो, मैं तो बहिनि तुम्हारि।**
> **पहिली भँवरिया के घुमतें, भइया अबहूँ तुम्हारि।**
> **दुसरी भँवरिया के पैठत, दादुलि अबहूँ तुम्हारि।**
> **तिसरी भँवरिया के पैठत, भइया अबहूँ तुम्हारि।**
> **चौथी भँवरिया के पैठत, भइया अबहूँ तुम्हारि।**
> **पँचईं भँवरिया के पैठत, दादुलि अबहूँ तुम्हारि।**
> **सतईं भँवरिया के पैठत, दादुलि भइनि परारि।**

(७) **बाती**—विवाह हो जाने अर्थात् सप्तपदी के पश्चात् वर और कन्या को उस कोठरी या कक्ष में ले जाया जाता है जहाँ घर की कुलदेवी होती हैं और मातृपूजन के दिन मातृस्थापना की जाती है। वहाँ एक दीपक जलाया जाता है, जिसमें पृथक् पृथक् दो बत्तियाँ जला करती हैं। कन्या की भावजें अथवा परिवार की स्त्रियाँ वर से इन दोनों ज्योतियों को मिलाने की प्रार्थना करती हैं। वर इन ज्योतियों को मिलाकर एक कर देता है। इस प्रकार पति पत्नी की आत्माओं के मिलन की यह प्रथा समाप्त होती है। इस अवसर पर बाती तथा कोहबर के गीत गाए जाते हैं :

> **लाल तुम काहे न मिलयो बाती।**
> **कि तोको सिखई माता बहिन तोरी,**
> **कि तोको सिखयो बराती।**
> **बीतति सारी राति, लाल काहे न मिलयो बाती!**
> **न हमका सिखईं माया बहिन,**
> **न हमका सिखए बराती।**
> **सिखईं हमका जनकपुर की नारि,**
> **जो हमरे संग जाती, लाल काहे न मिलयो बाती।**
> **तुलसीदास बलि आस चरन की,**

तुम्हरे दरसन को ललचाती।
लाल तुम काहे न मिलयो बाती।

(८) **गालियाँ तथा ज्योनार**—विवाह में कलेवा तथा बारात के खाने के समय गालियाँ गाई जाती हैं। गाली नामक गीत हास परिहास का सृजन करने के साथ ही अपने नाम को भी सार्थक करते हैं। ये गालियाँ रागद्वेष से मुक्त, प्रेम की प्रतीक मानी जाती हैं। इसी अवसर पर 'ज्योनार' नामक गीत गाए जाते हैं, किंतु इन गीतों में गालियों के स्थान पर सुरुचिपूर्ण स्वादिष्ट भोजनों के नाम गिनाए जाते हैं :

नन्हीं नन्हीं बुँदियन मेंह बरसि गयो आँगन परिगे काई जी।
तहवाँ कवन बहिनी रपटि परी हैं मैं जान्यों नजरानी जी॥
है कोऊ रसिया बैद वा देखे पातुरिया की नारी जी।
हमरे कवन रामा मेहरी के दुखिया उइ भल देखैं नारी जी॥
नारी देखत पहुँचा धरि लीन्हेंनि चलो धना सेज हमारी जी।
जब धरि दीन्हेनि एकु ठइँ कौड़ी कूकुरि ऐसी बुबुआनी जी॥
जब धरि दीन्हेनि लौंगन का बटुवा लौंग खाओ मेरी प्यारी जी।
जब धरि दीन्हेनि पान का डिब्बा पान खाओ मेरी प्यारी जी।
जब धरि दीन्हेनि मोहरन के थैली रहसि गरे लपटानी जी॥

(९) **परिछन**—जब बहू विवाह के पश्चात् अपने ससुर के द्वार पर पहुँचती है तब उसकी सास परिछन करके तथा पानी ढालकर गृहप्रवेश कराती है। इसी अवसर पर ये गीत गाए जाते हैं।

(१०) **बनरा और बनरी**—बनरा शब्द का संस्कृत शब्द 'वर' तथा 'वरण' से संबंध है। इसी का स्त्रीलिंग शब्द 'बनरी' अथवा 'बन्नी' है। ये गीत संस्कार प्रारंभ होने से लेकर अंत तक गाए जाते हैं।

(११) **नकटा**—यह शब्द 'नाटक' से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। बारात जाने के बाद वरपक्ष के घर पर रात्रि को खूब धूमधाम रहती है। जब तक बारात वापस नहीं आती तब तक प्रत्येक रात्रि में टोले मुहल्ले की स्त्रियाँ एकत्र होकर बड़े ही मनोरंजक नाटक, स्वाँग और प्रहसन करती हैं। ये स्वाँग अधिकतर गीतमय होते हैं। गीत भद्दे प्रकार के हास्य और मनोरंजन से भरे रहते हैं। इन्हीं गीतों को 'नकटा' और पूरे कार्यक्रम को 'नकटौरा' (खोडिया) कहा जाता है :

पिया माँगे गौना मैं नादान।
सइयाँ के बोलाए से मैं ना बोलूँ।
यार के बोलाए से बोलूँ जैसे मैना।

सइयाँ के इशारे से मैं ना देखूँ।
यार के इशारे से डोलें दोनों नैना।
सइयाँ के सोवाए से मैं ना सोऊँ,
यार के सोवाए से लिपट जाऊँ छतिया।
पिया के खिलाए से मैं ना खाऊँ,
यार के खिलाए से खाऊँ जैसे मैना।

(१२) घोड़ी—घोड़ी नामक गीत विवाह संस्कार समाप्त होने पर गाए जाते हैं। ये भी प्रायः विनोदपूर्ण होते हैं। इनमें बनरा के रूप का वर्णन होता है, किंतु बनरा बिना घोड़ी के नहीं होता और इन गीतों में घोड़ी की प्रशंसा भी खूब होती है। प्रायः घोड़ी शब्द सांकेतिक रूप में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ किसी संदर्भ में समधिन और किसी में नई विवाहिता स्त्री का होता है। इन गीतों से किसी विशेष परंपरा का संकेत नहीं मिलता, फिर भी विनोद एवं मनोरंजन के ढंग और रीति के संबंध पर इन गीतों से काफी प्रकाश पड़ता है।

(१३) सेहरा—सेहरा बाँधना मुसलमानी प्रथा है। फिर भी सेहरा का थोड़ा बहुत प्रचार कायस्थों में पाया जाता है। सेहरा की प्रथा से 'सेहरा' नामक गीत हिंदू समाज में अधिक प्रचलित और प्रिय हैं। सेहरा एक प्रकार की फूल की झालर है जिसे वर के माथे से बाँध दिया जाता है और झालर उसके मुख पर पड़ी रहती है। इन गीतों में वर की साजसज्जा का ही वर्णन पाया जाता है।

(च) गौना—गौने के गीतों को विवाह के गीतों से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों ही अवसरों पर अंत में 'विदागीत' गाए जाते हैं। विवाह के समय गाए जानेवाले 'विदागीत' और गौने के गीत वस्तुतः एक ही हैं। इन गीतों का प्रधान विषय ममतामयी माता, परिचित स्नेही बंधुओं और सखियों तथा प्रेमी पिता से बिछुड़ना रहता है। इन गीतों में बिछोह तथा करुण रस के चित्र अपनी संपूर्ण मार्मिकता के साथ चित्रित पाए जाते हैं।

(छ) मृत्यु संस्कार—मनुष्य जीवन का अंतिम संस्कार मृत्यु है। यद्यपि मृत्यु संस्कार मानव जीवन का एक विशेष संस्कार है, फिर भी शोक और विषाद से पूर्ण इस अवसर पर कोई विशेष क्रिया संपादित नहीं की जाती। हाँ, जब किसी अत्यंत वृद्ध की मृत्यु होती है, तब यह इतने दुःख का अवसर नहीं रह जाता। लंबी आयु पाकर मरनेवाला व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली समझा जाता है और उसका विमान अर्थात् अर्थी निकाली जाती है। ऐसे अवसरों पर साधारणतः गीतों का विधान नहीं मिलता। फिर भी कुछ गीत उपलब्ध होते हैं, जो निर्गुण से भिन्न नहीं कहे जा सकते। 'बिछुरत प्रान काया अब काहे रोई हो' कबीर के इस आध्यात्मिक उपदेश को सुलतानपुर (अवध) के कबीरपंथी समाज ने ज्यों का त्यों

मृत्युगीत के रूप में अंगीकार कर लिया है और इस भजन को वे लोग अर्थी के पीछे चलते हुए उसी प्रकार गाते हैं जैसे आम तौर से हिंदू समाज में 'रामनाम सत्य है' की धुन लगाई जाती है :

मृत्युगीत

बिछुरत प्रान काया अब काहे रोई हो।
कहत प्रान सुनो मोरी काया,
मोर तोर संग न होई हो।
हम तो जाब अब दुसरी महल में,
तोहरी कवनि गति होई हो।
खाट पकरि कै माता रोवय,
बाँह पकरि सग भाई।
लट छिटकाए तिरिया रोवै,
हंसा की ह्वइगै बिदाई हो।
पाँच पचीस बराती आए,
लै चल लै चल होई।
चार जने मिल खाट उठावैं,
फूँकि दिए जस फाग की होली।
तीन दिना तक तिरिया रोवै,
मास एकु सग भाई।
जनम जनम का माता रोवै,
जोहत आस पराई।
कहत कबीर सुनौ भाई संतो,
यह गति सबहि की होई।

(५) धार्मिक गीत—

(क) शीतला के गीत—शीतला चेचक को कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि यह बीमारी देवी के प्रकोप से उत्पन्न होती है। यही कारण है कि अवधी क्षेत्र में चेचक के छाले निकलने को 'देवी का निकलना' और चेचक को 'देवी' कहा जाता है। अतः चेचक की बीमारी फैलने पर स्त्रियाँ पूजा पाठ करती और गीत गाती हैं। इन गीतों में मालिन का प्रायः उल्लेख होता है, क्योंकि मालिन ही देवी की प्रधान सेविका है। कहीं कहीं शीतला को बंगालिन देवी कहा गया है। इसका प्रधान कारण मध्य युग तथा आधुनिक युग के बंगाल का शक्ति का उपासक होना है। अतएव शक्ति की प्रतीक शीतला माता को बंगालिन कहा गया है। इन गीतों में

चेचक से पीड़ित बालक को स्वास्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना रहती है। इसके साथ ही शीतला माता को अत्यंत दयालु रूप में चित्रित किया गया है।

शीतला के अतिरिक्त अवधी क्षेत्र में तुलसी, देवी तथा षष्ठी व्रत के गीत प्रचलित हैं। इनका संग्रह अभी तक नहीं हो पाया है। जो थोड़े से गीत संकलित हुए हैं उनके आधार पर इनकी विवेचना की जा सकती है :

निमिया के डरिया माता डारी हो हिंडोलवा,
कि झूली झूली ना।
माता गावै लागीं गीतिया कि झूली झूली ना।
झूलत झूलत मइया भई हैं पियासी,
मइया हेरे लागी माली फुलवरिया की ना।
भीतर हौ कि बाहर मालिन,
बूना एक पनिया पिआवौ हो ना।
कइसे के पनिया पिआवौं मोरी जननी ?
कि मोरे गोदना बाटे तोरे होरिलवा हो ना।
बालक लेटाके मालिन पाटी के खटोलवा,
कि बूना एक पानी पिआवो हो ना।
कहवाँ हो बाटे माता सोने का घइलना,
कि बाएँ हाथेन लिहीं रेसम डोरिया
हो बाएँ हाथे ना।
पनिया पिईं उनका जियरा जुड़ाने,
माता देन लागीं मालिन का असीस हो ना।
जिए तोरा मालिन गोदे के बलकवा हो,
कि मालिन तोहरा नाम अमर कर देवय,
कि माली तोहरा ना।

(ख) निर्गुण—भक्तिभावना से ओतप्रोत गीतों को, जिनमें प्रधानतः संसार की नश्वरता का वर्णन रहता है, निर्गुण गीत कहते हैं। अवधी क्षेत्र में गाए जानेवाले भजनों तथा निर्गुण गीतों के वर्ण्य विषय प्रायः समान होते हैं। किंतु इन दोनों के गाने के ढंग में अंतर है। निर्गुण की अपनी एक विशेष लय होती है जिसे अवधी क्षेत्र में 'बैरगिया धुन' कहते हैं। निर्गुण गीत अत्यंत सुंदर होते हैं।

निर्गुणों और लोकगीतों के निर्गुणों के वर्ण्य विषय प्रायः एक ही हैं। अतः लोक में प्रचलित निर्गुणों के रचयिता कबीर ही माने जाते हैं। लेकिन, यह ठीक नहीं है क्योंकि दोनों प्रकार के निर्गुणों की शैलियाँ भिन्न हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि लोकप्रचलित गीतों को महत्व देने के लिये जिस प्रकार सूर और

तुलसी का नाम जोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार इन गीतों में कबीर का नाम जोड़ दिया गया है।

अवधी क्षेत्र के इन गीतों में प्रायः भक्तिभावना का ही उल्लेख हुआ है। ईश्वर को प्रियतम मानकर माधुर्य भाव की भक्ति की परंपरा संतों में प्राचीन काल से ही विद्यमान है। यही भाव निर्गुण गीतों में स्थान स्थान पर मिलता है। जिस प्रकार निर्गुणी संतों ने आत्मा परमात्मा के लिये अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है, वैसे ही प्रतीक इन निर्गुण गीतों में भी उपलब्ध होते हैं। इनका प्रधान विषय ईश्वर पर विश्वास तथा संसार की निस्सारता का वर्णन है :

नैहरवा हमका नहिं भावय।
साईं की नगरिया परम अति सुंदर जहँ कोउ जाय न आवय।
चाँद सुरुज जहँ पवन न पानी को सँदेस पहुँचावय।
दरद यह साईं को सुनावय।
आगे चलौं पंथ नहिं सूझय पीछे दोष लगावय।
केहि बिधि ससुरे जाउँ मोरी सजनी बिरहा जोर जनावय।
बिषय रस नाच नचावय।

भजन

अवध सइयाँ मेरी छाँड़व न बहियाँ।
ना साधुन की संगति करी है, नहिं बिप्रन को दई गइयाँ।
अवध छयल पिया तुमसे कहति हौं, तुम बिन चैन परति नहिं आय।
तुम जानत सबके अंतस की, तुमसे तो छयल छिपति नहिं आय।
भवसागर माँ डूबी जाति हौं अबकी बेर गहव बहियाँ।
तुलसीदास भजौ भगवाना, बारंबार परौं पइयाँ।

(६) बाल गीत—

(क) लोरी—बच्चों से संबंधित गीतों के अंतर्गत वे गीत आते हैं जिन्हें बालकों के मनोरंजन के लिये गाया जाता अथवा जिन्हें स्वयं बालक गाते हैं। पहले प्रकार के गीतों को 'लोरी' अथवा 'पालने के गीत' कहा जाता है। लोरियाँ बच्चों को खिलाते और सुलाते समय तथा उनका मुँह धोते समय प्रसन्न रखने के लिये गाई जाती हैं। लोरियों के कुछ गीत ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जिनका कुछ अर्थ नहीं होता क्योंकि ये किसी विशेष प्रयोजन से नहीं गाए जाते। इनका एकमात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है।

लोरियों की ही भाँति दूसरे प्रकार के भी गीत होते हैं। इन गीतों में कहीं

अपनी बहादुरी का दावा रहता है, तो कहीं चुप बैठे साथियों को उत्तेजित किया जाता है। इस प्रकार के गीतों में कभी कभी बालक की जाति पर भी व्यंग किया जाता है :

लै लै री माई श्याम का कनियाँ।
मतले हैं लाल गोद नहिं आवैं,
पियहिं न दूध रहैं न मोरी कनियाँ।
बिमलि बिमलि पगु धरैं धरनि माँ,
झूलैं न पलना आवैं न मोरी कनियाँ।
हाथेन-पाएन चूरा सोहै,
गरे सोहै कंद करन सोहै फेनियाँ।
नील कै झँगुलिया तन माँ सोहै,
सिर माँ तौ सोहै टोप बैजनियाँ।
कौन सवतिया कै नजर लगी है,
रोय रोय ललन गवाँई सारी रतियाँ।

(ख) खेल—इसके अतिरिक्त कुछ खेल के गीत हैं। खेल गीत से प्रारंभ होते हैं और गीत के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार के खेलों में 'मछरी मछरी कैत पानी' अवधी क्षेत्र में सबसे अधिक प्रचलित है।

अक्कड़ बक्कड़ बंबे बो।
अस्सी नब्बे पूरे सौ।
बाग झूलैं बगझुलियाँ झूलैं।
सावन मास कोलइँदा फूलैं।
फूल फूल फुलवाई को।
बाबाजी की बारी को।
हमका दीन्हेनि कच्ची।
अपना लीन्हेनि पक्की।
पट्ट घोड़ा पानी पी जाची है।

(७) विविध गीत—

(क) पहेली और बुझौवल—पहेली का प्रयोग अवधी में समस्या के रूप में होता है। अतः इस आधार पर हम कह सकते हैं कि पहेली वस्तुतः एक समस्या का नाम है। कुछ विद्वानों ने पहेली और बुझौवल को समानार्थक माना है, किंतु मेरी दृष्टि में यह बात उचित नहीं है। बुझौवल शब्द की व्यंजना से स्पष्ट है कि 'बुझौवल' नामक साहित्यिक रूप में प्रश्न के साथ ही उसके समाधान का

बोध करानेवाले तत्व भी वर्तमान रहते हैं। पहेली शब्द से इस प्रकार की कोई व्यंजना नहीं होती। फिर भी यदि हम पहेली और बुझौवल को एक ही मान लें, तो भी हम कह सकते हैं कि अवधी क्षेत्र में पहेली अथवा बुझौवल के नाम से उपलब्ध होनेवाले लोकसाहित्य के प्रधान रूप से दो भेद हैं।

प्रथम रूप के अंतर्गत वह लोकसाहित्य आता है जिसमें प्रश्नोत्तर रहता है, किंतु उसके समाधान के संकेत नहीं रहते। दूसरे रूप के अंतर्गत प्रश्न के साथ ही उसके समाधान के संकेत भी संनिहित रहते हैं।

पहेली और बुझौवलों को भी कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रश्नों के स्वरूप और उनके संबंधों को देखकर उन्हें निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है :

(१) प्रकृति संबंधी

(२) पौराणिक वृत्तांतों से संबंधित

(३) दैनिक अवश्यकताओं से संबंधित

(४) जीवजंतुओं से संबंधित

प्रकृति संबंधी पहेलियों में वे पहेलियाँ आती हैं जिनका संबंध संस्कृति के विभिन्न रूपों से है; यथा—'एक थार मोती से भरा, सबके सर पर औंधा धरा' (अर्थात् आकाश)। यह प्रकृति से संबंधित है। इसी प्रकार पौराणिक मान्यताओं के आधार पर अनेक पहेलियाँ हैं। उदाहरण के लिये अवधी क्षेत्र की एक पहेली है जिसका अर्थ है कि अपने पति के साथ सोने पर दूसरे पुरुष के पैर उसके लग जाते हैं। इस पहेली के निर्माण में भृगु और विष्णु के वृत्तांत का उपयोग किया गया है। इसी प्रकार दैनिक आवश्यकताओं और जीवजंतुओं से संबंधित अनेक पहेलियाँ प्राप्त होती हैं।

पहेलियों का विकास मानव के ज्ञान के क्रमिक विकास के साथ ही हुआ प्रतीत होता है। अवधी क्षेत्र की पहेलियों को देखने से ज्ञात होता है कि पहेलियाँ प्राचीन शास्त्रार्थ पद्धति का लोकप्रचलित रूप हैं :

१—साधू के घर साधू आए बिना बीज के दो फल लाए।
या तो ज्ञानी करौ विचार नहीं ज्ञान का करौ सँभार।
—विश्वामित्र, जनक तथा राम लक्ष्मण।

२—तीन नैन षट चरन हैं दुइ मुख जिभ्या एकु।
तेहि समुहे तिय ना चलै पंडित करैं विवेकु।
—शुक्र और उनका वाहक मेंढक।

३–ब्याह भयो ना भई सगाई, पिता पुत्र से भई लड़ाई ।
—हनुमान और मकरध्वज ।

४–पिया बजारे जात हौ चीजें लइयो चारि ।
सुवा, परेवा, किलहँटा, बगुला की उनहारि ।
—पान, सुपारी, कत्था, चूना ।

५–हम भी खावा तुम भी खायौ बड़ी अच्छी चीज ।
आसपास रब्बी हवै बीच माँ खरीफ ।
—कचौड़ी ।

(ख) जाति संबंधी गीत—

(१) अहीर (बिरहा)—विभिन्न विद्वानों के मतानुसार बिरहा अहीर जाति का अपना निजी गीत है। किंतु अवधी क्षेत्र में बिरहा नामक गीत अन्य जातियों में भी प्रचलित हैं। जाति के ही साथ वे मजहब की सीमा पार कर मुसलमानों तक में प्रचलित हो गए हैं।

घास काटते, गाय चराते, विवाह करने के लिये बारात में जाते समय एवं लाठी लेकर खेत रखाते समय सर्वत्र अहीर और गड़रिए बिरहा गाकर अपनी थकावट दूर करते हैं। इन बिरहों का साहित्यिक मूल्य न होने पर भी जनता की भीतरी आकांक्षाओं और विचारों का प्रतीक होने के कारण इनका अत्यधिक महत्व है।

विरहवर्णन का प्रधान माध्यम होने के कारण इन गीतों को 'बिरहा' कहा जाता है। इन गीतों में विप्रलंभ श्रृंगार का सुंदर चित्रण रहता है। पति के वियोग में बिरह से तड़पती हुई नायिका, प्रियतम की प्रतीक्षा करनेवाली स्त्री, प्राणवल्लभ के परदेश चले जाने के कारण शरीर का प्रसाधन न करनेवाली स्त्री की दशाओं का चित्रण बिरहों में विशेष रूप से पाया जाता है। जहाँ इन बिरहों में हृदय की कोमल भावनाओं का चित्रण हुआ है, वहीं इन गीतों में वीरता एवं साहसपूर्ण कार्यों का भी उल्लेख हुआ है। अवधी क्षेत्र में दो प्रकार के बिरहे पाए जाते हैं—पहला चार कड़ीवाला बिरहा कहलाता है और दूसरे में रामायण, महाभारत या भरथरी आदि की कथाएँ रहती हैं। बिरहा गाने का एक विशेष राग होता है। अवधी क्षेत्र में मुसलमानों में प्रचलित बिरहे 'हक्कानी बिरहा' कहलाते हैं। इनमें संसार की असारता दिखलाने के साथ ही पाँचो समय नमाज पढ़ने तथा उसके लाभों का वर्णन है :

बहु भए संत तीरथ जग माँ ।
सीतापति का ध्यान धरौ, गिरजापति का सुमिरौ मन माँ ।
अंबरीख, हरिचंद भए, मोरूधुज भक्ति कीन घर माँ ।

ध्रुव, प्रह्लाद, सुदामा, मीरा, शबरी गुफा अजब बन माँ।
काशीपुरी, अयोध्या, तीरथ बैजनाथ, लोधेश्वर माँ।
नींबसार, मिसरिख, मथुरा, सिरीकृसन चरित बिंद्राबन माँ।
बद्रीनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ, रामेसुर माँ।
पुरी द्वारिका अजब बनी, हरद्वार बनी गंगातट माँ।
चित्रकूट पैसन्नी धारा, भरतकोट जस बेदन माँ।
ब्यास भक्ति माँ, शुक्राचार बरदान लियो त्रेता जुग माँ।
बावन, परसराम, नरसिंह भै भोजन कीन बिदुर घर माँ।
सूरदास, रैदास, कबीरा, तुलसी नारि ज्ञान संग माँ।
उज्जैनपुरी जहाँ निरंकार, भरथरी गुफा जहँ संत जमा।
कोटेश्वर, ओंकारनाथ, नर्वदेश्वरी नासिक जी माँ।
पंचबटी अन्या मुलि जादू सरिभंगा मिलिगे हरि माँ।
रिखी पलटुमुनि भै पारासिक, सिद्धिनाथ, नागेश्वर माँ।
कुली कलींजर, नीलकंठ है मूरति बनी थी सतजुग माँ।
प्रलयकाल एक मालकंठ है मूरति बनी अगम जल माँ।
रिखी पलटुमुनि भै दुरबासा, तुलसी नारि ज्ञान संग माँ।
बालमीकि, ब्रह्मावर्त खूँटी, भै गौरी गणेश तन माँ।
महाबीर अंजनीकुँवर जिन चरित कियौ हरि कै संग माँ।
भै सुग्रीव, भभीषन, भारत, नारदमुनि झूठे फुर माँ।
जत्रिउंट, उमसि भागीरथ गढ़क संत पूरे जन माँ।
भीष्म पितामह, दोनाचारि, हरि मिलै पताल कपिल मुनि माँ।
हिंगलाज, दुरगा जनि मइया, बरनि कियो दाने जुग माँ।
सालिगराम, भए सिंही रिखि, विश्वामित्र महामुनि माँ।
कस्सिस गुडिर भै लोढ़े रिखि, भै काकभुसिंड चतुर गुन माँ।
तब गावल छोरु बनै ना इनमाँ लेत बनै कोउ नर तन माँ।
तुलसीदास भजौ भगवाना बलदेव ने गाय कही जग माँ।

(२) कहरवा—कहारों में जो गीत गाए जाते हैं वे अन्य जातियों में भी प्रचलित हैं। किंतु कहारों का एक रागविशेष है जिसे 'कहरवा' कहते हैं। कहार लोग पालकी ढोते समय, विवाह के अवसर पर तथा स्वाँग करते समय तरह तरह के गीत एक ही लय और ध्वनि में गाते हैं और उन्हें कहरवा कहते हैं। गीत गाते समय ये 'हुड़क' नामक बाजे का प्रयोग करते हैं। 'कहरवा' गीतों में फूहड़ तथा कर्कशा स्त्रियों के चित्रण के साथ ही शृंगार के संयोग तथा वियोग पक्ष का मार्मिक वर्णन मिलता है:

काया की नगरिया ते गगरिया भरिकै लाव रे।
काया के अंदोलवा माँ सुरतिया डोरि लगाव रे।
नवनारी पनिहारी ठाढ़ी, परिगा पूरा दाँव रे।
दिल दरियाई कुआँ भरो है, ताते भरि भरि लाव रे।
सब्द घैलवा माथे धरिकै, हौले हौले आव रे।
गगन अटारी ऊँचे चढ़िकै, धाखै जग का भाव रे।
काम दिवानी आगे ठाढ़ी, टारै नाहीं पाँव रे।
साहब कबीरा भरि भरि लावैं संतन का पिआव रे।
जरा मरण का संसय म्याटै ऐसा कहरा गाव रे।

(३) चमारों के गीत—चमारों में विशेष रूप से निर्गुण गीत प्रचलित हैं। किंतु स्वाँगों में ये लोग अनेक प्रकार के गीत गाते हैं जिनमें मानव जीवन की आशा आकांक्षाओं के विविध भाँति के चित्र उपलब्ध होते हैं।

(४) धोबियों के गीत—अवधी क्षेत्र के धोबियों के गीत बिरहा नामक गीतों के समान होते हैं, केवल उनके गाने के ढंग में थोड़ा अंतर रहता है। इन गीतों में इनके पेशे तथा जीवन की कठिनाइयों का ही चित्रण प्रधान रूप से होता है। अवधी क्षेत्र के धोबी गीतों के साथ सूप और गागर का वाद्य रूप में प्रयोग करते हैं। सूप और गागर से निकली हुई ध्वनि वाद्यवादन के समान होती है।

(५) पचरा—पचरा नामक गीत दुसाधों में प्रचलित है। इनका विश्वास है कि समस्त आधिभौतिक दुःख पचरा गाकर दूर किए जा सकते हैं। दुसाध लोग राहु की पूजा करते और सुअर की बलि देते हैं :

छोटी छोटी छोहरिन के बाँस कै डेलरिया की फुलवा लोढ़ौ ना,
देबी मलिया फुलवरिया की फुलवा लोढ़ौ ना।
केकरि होउ तुहुँ छोटी छोटी छोहरी की फुलवा लोढ़ौ ना,
देबी हमरी फुलवरिया की फुलवा लोढ़ौ ना।
हम तो होई सातौ बहिनी कै छोहड़िया की फुलवा लोढ़ौ ना,
मलिया तोहरी फुलवरिया की फुलवा लोढ़ौ ना।
जौ तुहूँ हौ अकोतरि मइया कै छोहड़िया की काऊ लइकै ना,
देबी देसवा माँ पाइठिउ काऊ लइके ना।
भइँसन सेंदुरा लदायों अरे मलिया हो की यस लइके ना,
शलिया देसवा माँ पइठिउँ की यस लइके ना।

(ग) जोगटोन—

(१) जवारा—दीवाली के दो दिन बाद गाँवों में 'जमघट' होता है, जिसमें अहीर और गड़रिए एकत्र होकर दीवारी (हाथों में लकड़ी लेकर एक दूसरे को मारना और बचाव करना) खेलते हैं। सामान्यतः दीवाली के समय अहीर और गड़रिए बिरहे ही गाते हैं, किंतु जमघट के अवसर पर ये लोग 'जवारा' गाते हैं।

'जवारा' गीतों का संबंध देवी देवताओं से है। जमघट के स्थान पर उस दिन एक सुअर और एक गाय लाई जाती है। गाय प्रारंभ में सुअर को मारती है और बाद में 'दीवारी' ('देवारी') खेलनेवाले उसको मारना प्रारंभ करते हैं। सुअर चीख चीख कर मर जाता है। इसी चीख के साथ 'जवारा' नामक गीत गाए जाते हैं।

'जवारा' गीतों का पूरा लाभ उठाने के लिये कुछ लोग अपने शरीर के विभिन्न अंगों में मिट्टी चिपका कर उसमें जौ बो देते हैं। इस प्रकार उनके हाथों और पैरों में जौ उग आते हैं। संभवतः इसी जौ उगाने की परंपरा के ही कारण इन गीतों का नाम 'जवारा' पड़ा है :

मइया समुंद ताल गहरे भए हो माय।
मइया कै जोजन गहरे भए हो माय।
मइया कै जोजन मरिजाद ताल गहरे भए ताल गहरे भए।
मइया नौ जोजन गहरे भए हो माय,
मइया दस जोजन मरिजाद ताल गहरे भए ताल गहरे भए।
मइया काहे की नइया बनी हो माय,
मइया काहे की खेवनार ताल गहरे भए ताल गहरे भए।
मइया चंदन की नइया बनी हो माय,
मइया हरे बाँस खेवनार ताल गहरे भए ताल गहरे भए।
मइया को धौं नइया बैठिए हो माय,
मइया को धौं खेवनहार ताल गहरे भए ताल गहरे भए।
मइया देबी नइया बैठिए हो माय,
मइया लंगुरा हैं खेवनहार ताल गहरे भए ताल गहरे भए।
मइया समुंद ताल गहरे भए हो माय।

(२) पाटनि—यह गीतमंत्र उस समय गाया जाता है जब देहात में किसी को साँप काट लेता है। जब किसी को साँप काटता है तब उलटा ढोल बजा दिया जाता है। ढोल की धमक सुनते ही 'पाटनि' गीत जाननेवाले को

सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति के पास दौड़कर पहुँचना होता है क्योंकि दूसरों के काम न आने से मंत्र प्रभावहीन हो जाता है।

'पाटनि' के गीत भिन्न भिन्न गुरुओं की परंपरा में विकसित होने के कारण आपस में काफी भिन्न हैं। ये गीत सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति के कानों के पास उच्चतम स्वर से गाए जाते हैं। इन गीतों में गुरुमहिमा और उनकी कृपा से अस्सी कोस से सर्पों के विष की खीर बनाकर खा जाने का उल्लेख रहता है। इन्हें अवधी क्षेत्र में 'पाटनि' कहते हैं :

> **गुरसत गुरसत गुरै मनइयै।**
> **गुरै नीर गुर सायर शंकर।**
> **गुर लिखनी गुरतंत्र मंत्र।**
> **गुर बसैं निरंजन।**
> **गुर जिन होम जापना कीजै।**
> **गुर बिन शाम दिया ना दीजै।**
> **गुर मिलैं बड़ी भाग सेवा ना चूकै।**
> **शृंगी फेरौं दस भुवन।**
> **रोकौं दसौं दुआर।**
> **एहि दिसि फूली केतकी।**
> **वोहि दिसि फूले टेस।**
> **दूनौ फूल उठाय कै।**
> **परसैं राजा बासुक देव।**
> **उठ चेतु संभार राम कहु रे।**

(घ) दीवारी—

> **घनघन घनघन घंट बजावैं, अउर करैं नकजपना।**
> **देउतन के मुँह छनकी छाँड़ैं, खाय जायँ सब अपना॥**
> **सब मनइन का भाई मानै, दुनियाँ का लेय घर मानि।**
> **का पूजा कै रहे जरूरति ओहका मिलैं सति भगवान॥**

(ङ) लोकोक्तियाँ—कवि की उक्तियाँ भी लोक में गृहीत होकर लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाया करती हैं, यथा—'जाको राखै साइयाँ, मारि सकय ना कोय' अथवा 'होइहै वहै जो राम रचि राखा' आदि लोकोक्तियाँ इसी प्रकार की हैं। अवधी क्षेत्र में जो लोकोक्तियाँ प्राप्त होती हैं, उन्हें संक्षेप में हम निम्नलिखित वर्गों में रख सकते हैं :

१—ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित

२—लोककथाओं के आधार पर निर्मित

३—जातीय भावना पर निर्मित

४—प्रकृति से संबंधित

५—दैनिक जीवन के आधार पर निर्मित

६—कवि की उक्तियाँ जो लोकोक्तियाँ बन गई हैं

किंतु लोकोक्तियों की यह सूची परिपूर्ण नहीं है और न इसके अंतर्गत सभी प्रकार की लोकोक्तियों को समाविष्ट किया जा सकता है।

शैली की दृष्टि से लोकोक्तियाँ गद्यात्मक और पद्यात्मक इन्हीं दो रूपों में पाई जाती हैं, यथा—सौ सोनार की ना एक लोहार की; आँखिन के आँधर नाम नयनसुख, आदि गद्यात्मक कहावतों के उदाहरण हैं। इसी प्रकार 'सीख तौ वाकौ दीजिए जाको सीख सुहाय। सीख न दीजै बाँदरा, जो घर बए का जाय।' अथवा 'उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान।' आदि पद्यात्मक कहावतों के उदाहरण हैं। संक्षेप में अवधी क्षेत्र की लोकोक्तियों के स्वरूप और उनकी प्रवृत्तियों का यही रूप है।

तृतीय अध्याय

मुद्रित साहित्य

१. लोक जनकवि

(१) स्वर्गीय पढ़ीस जी—स्वर्गीय पढ़ीस जी का वास्तविक नाम पं० बलभद्र दीक्षित था। पढ़ीस जी वर्तमान अवधी के युगप्रवर्तक कवि थे। द्विवेदी युग के अवसानकाल से ही उन्होंने अवधी में काव्यरचना प्रारंभ कर दी थी। यद्यपि पढ़ीस जी के पूर्व पं० प्रतापनारायण जी मिश्र ने भारतेंदु युग में अपनी बैसवाड़ी में एक दो रचनाएँ की थीं, फिर भी उन्हें अवधी का प्रथम कवि नहीं माना जा सकता, क्योंकि उनके काव्य का अधिकांश क्षेत्र खड़ी बोली के अंतर्गत आता है। वर्तमान युग के अवधी कवियों में पढ़ीस जी प्रतिभा, काव्यशक्ति और भाषा तथा भाव की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण कवि सिद्ध होते हैं। लोक की मंगलकामना से प्रेरित होकर ही उन्होंने अपने काव्य का सृजन किया है। उन्होंने लोक के विद्रोही स्वर को अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है। उनकी भाषा सीतापुर की विशुद्ध अवधी है। वे भाषा के स्वाभाविक रूप को सुरक्षित रखने के प्रबल समर्थक थे। यही कारण है कि उनके काव्य में तत्सम शब्दों का बहुत कम प्रयोग उपलब्ध होता है।

लोकगीतों की सरलता और स्वाभाविकता पढ़ीस जी के काव्य में सर्वत्र उपलब्ध होती है। हास्य और व्यंग के साथ ही गंभीर चिंतन को भी उनके काव्य में स्थान मिला है। अंग्रेजी शिक्षा के दुष्प्रभाव से वे भली भाँति परिचित थे। यही कारण है कि उनकी कई रचनाओं में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभावों को ग्रहण करनेवाले शिक्षित लोगों पर व्यंग मिलता है, यथा :

बलिहार भयन हम उइ ब्यरिया,
तुम याक बिलाइति पास किह्यउ,
अभिलाखइँ खुब खुब पूरि गईं
जब याक बिलाइति पास किह्यउ।

बजरा का बिरवा तुम भूल्यउ,
का आइ कन्याला तुम पूँछ्यउ,
छुगरी का भेड़ी कइसि कह्यउ,
जब याक बिलाइति पास किह्यउ।

बिल्लाइ मेहरिया बिलखि बिलखि,
साथे की बँदरिया निरखि निरखि,
यह गरे म हड्डी तुम बाँध्यउ,
जब याक बिलाइति पास किह्यउ।

हम चितई तुमका मुलुरु मुलुरु,
मलिकिनी निहारयँ मुकुरि मुकुरि,
तुम मुँहि माँ सिरकुटु दाबि चल्यउ,
जब याक बिलाइति पास किह्यउ।

हास्य और व्यंग के अतिरिक्त मनुष्य की दुर्बलताओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिव्यक्त करने में पढ़ीस जी पूर्णतया कुशल थे।' समाज के शोषित वर्ग का चित्रण 'चरवाहु', 'घसियारिन', 'फिरियाद' आदि अनेक कविताओं में अत्यंत व्यंजक और सुंदर ढंग से हुआ है। पढ़ीस जी का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित ही रह गया है। उनका एक संग्रह 'चकल्लस' के नाम से प्रकाशित रूप में उपलब्ध होता है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि पढ़ीस जी लोकसाहित्य और लोकजीवन, दोनों के ही अत्यधिक समीप थे।

(२) वंशीधर शुक्ल 'रमई काका'—शुक्ल जी का जन्म लखीमपुर जिले के अंतर्गत मन्यौरा ग्राम में सं० १६६१ वि० में हुआ था। आप लोकभाषा अवधी और लोकभावनाओं के सहज गायक हैं। आज के अवधी कवियों में शुक्ल जी का स्थान सर्वोपरि है। अवधी काव्य के वर्तमान युग के प्रवर्तक कवि पढ़ीस जी आपकी काव्यप्रतिभा से अत्यंत प्रसन्न और प्रभावित थे। पढ़ीस जी शुक्ल जी से आपसी बातचीत में प्रायः कहा करते थे कि यद्यपि अवधी काव्यरचना का प्रारंभ मैंने किया है, तथापि जो रस तुम्हारी कविता में है, वह मेरी कविता में नहीं है। आपने अवधी काव्य में भाषा, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से जितने प्रयोग किए हैं, उतने अन्य किसी कवि ने नहीं किए। शुक्ल जी हास्य और व्यंग के अद्वितीय कवि हैं। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, शासन और धर्म के वे जन्मजात आलोचक हैं। वस्तुस्थिति के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त कर असत्य पर व्यंग कसना शुक्ल जी का स्वभाव है और यही कारण है कि शासन सत्ता से संबंधित लोगों से उन्हें सदैव संघर्ष करना पड़ा है। आपने पढ़ीस जी के साथ रेडियो में रहकर अवधी में अनेक कविताएँ, नाटक, कहानी और फीचर लिखे हैं। लेकिन, शुक्ल जी का साहित्य प्रकाशित नहीं हो पाया है। साहित्य सृजन करने के साथ ही आपने ४५० पहेलियों, १०० लोककथाओं, ५०० लोकगीतों और अवधी के ४५०० शब्दों का संग्रह किया है। यह सामग्री भी अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई है।

अवधी की वर्तमान बृहत्त्रयी में शुक्ल जी की भी गणना की जाती है।

शुक्ल जी ने अवधी में जितना लिखा है, उतना बहुत कम लोग लिख पाते हैं। यहाँ पर उदाहरणस्वरूप उनकी एक कविता दी जा रही है, जिसका शीर्षक 'म्यूजिक कांफ्रेंस' है :

कक्कू हम सुनेन पंडितन ते संगीतौ बेदै के समान।
मोहन, आकर्षन, बसीकरन, रामौं रीझैं सुनि मधुर तान।
दुखिया दुख भूलै गीत सुनै, सुखिया सुख भूलै गीत सुनै।
हरहा गोरू चिरइउ नाचैं, फुलबगियौ फूलै गीत सुनै।
सोचेन दुनियाँ का तार तार गाना गावै सुरताल भरा।
मुल सही रूप रागिनी क्यार अबलौं हमका ना समुझि परा।
मुँहमेहरा एक कहिसि हमसे लखनऊ माँ खुला मदरसा है।
जेहिमाँ असिली रागिनी रागु रोजइ खेलैं नौदरसा हैं।
आचार्य सिखावैं देवी सीखैं लरिका औ लरिकउनू सीखैं।
बी० ए०, एम० ए०, बाबू, बीबी, भाँड़ौ सीखैं, रंडिउ सीखैं।
हम पता लगाएन मालुम भा अब जलसा सालाना होई।
जेहिमाँ मशहूर गवैयन का ऊँचा ऊँचा गाना होई।
सोचेन सबते बढ़िया मौका चलि परेन रेल का टिकसु लिहेन।
सब राति जागतै बीति भोरहरी राति लखनऊ पहुँचि गएन।
देखेन कुर्सिन पर बैठ सहरुवा पंजाबी कोइ बंगाली।
कोइ दरिहल कोई सफाचट्ट बोतलैं पिए आँखी लाली।
मेहरारू बैठी मनइन माँ दुबरी सुथरी छोटी मोटी।
कोई भाँटा कोइ टिमाटर असि कोइ बिसकुट कोइ डबलरोटी।
देखेन आगे के तखतन पर बैठी बनि ठनिके चंद्रमुखी।
ना जानि सकेन को घरवाली ना जानेन को मंगलामुखी।
रोंवा रोंवा अँगरेजी रँगु काँधे धोती हाथे चुरवा।
कुछुके तौ हाथ पाँव करिया, मुल मुँह चीकन मुरवा मुरवा।
फिरि याक पुकारिस मुन्नु मुन्नु अब रामकली गाई जाई।
बजि उठा तँबूरा घुन्नु घुन्नु सुर भरे लगी शीलाबाई।
हम दूरि रहेन खसकति खसकति जब बहुत नगीच पहुँचि आएन।
औ साँस बाँधिकै सुने लगेन तब कुछ कुछ बोलु समुझि पाएन।
फिरि याक परी गावै बैठी, चिकनी चमकीली चटकदार।
जबहें रेंहकी तंबूर पकरि मानौं गर्दभ सुर पर सवार।
फिरि याक नजाकति चेंहकि उठे, धींचौ मरोरि मुँह मटकाइनि।
सें सें रें रें में में पें पें उइ बड़ी मसक्कति ते गाइनि।

फिरि नाचु भवा शंभू जी का उइ नस नस देहीं फरकाइनि।
अपने नैनन बैनन सैनन ते, कामकलोलैं समुझाइनि।
सुकुमारी ही ही करति जायँ सुकुमारी सी-सी करति जायँ।
सी सी ही ही के बीच मजे की खूब निगाहैं लड़ति जायँ।
जेहिका नारदु योगी गाइनि, श्रीकृष्ण, ब्यास, शंकर गाइनि।
वहिकर ई मेहरा दुवै चले जेहिका बिरलै त्यागी पाइनि।
हम आँखि बनाए पथरीली कालिज की लीला तकति रहेन।
उइ जो कछु अंटु संटु बक्किन सबु मनु मुरझाए सुनति रहेन।
आखिर हम यहै समुझि पाएन राजन का यही मनोरंजन।
अँगरेजन केर इशारे पर पहिरावैं अँगरेजी कंगन।
सरकारी पिट्ठुन का करतब रुपया लूटैं कृषिकारन तैं।
अगिली संतानैं पतित करैं ई कालिज के उपकारन तैं।
यहिते समाज का कौन लाभु उल्टा मेहरापनु बढ़त जाय।
एकतौ है कोढ़ गुलामी का दुसरे यह खाझौ परति जाय।
चाहे कोई कत्तौ बक्कै, मुल हमें खुलासा देखि परा।
हम पूँछ उठावा देखि लिहा सारे घर माँ मादा निकरा।

(३) दयाशंकर दीक्षित 'देहाती'—देहाती जी कानपुर के कोरसवाँ नामक मुहल्ले के निवासी हैं। आप वर्तमान अवधी के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। जहाँ तक प्रतिभा का प्रश्न है, आप 'पढ़ीस' जी तथा वंशीधर शुक्ल 'रमई काका' आदि अवधी कवियों में से किसी से कम नहीं हैं। किंतु आपकी रचना अधिकतर दोहा छंद में होती है। आपकी भाषा सामान्य जनता में प्रचलित अवधी और आपकी कविता का प्रधान गुण व्यंग है। आपने घाघ की शैली में नीति विषयक कुछ रचनाएँ की हैं, जो आज की परिस्थितियों के अनुकूल वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डालती हैं। यथा :

बतकट चाकर पौकट जूत।
चंचल बिटिया बंचर पूत।
नटखति तिरिया लागै भूत।
कहै दिहाती रखियो याद।
इनकी धोय गई मर्याद।

कहना न होगा कि देहाती जी की उपर्युक्त कविता घाघ कवि की रचनाओं के ही समान है। देहाती जी की लोकप्रचलित शैली की अधिकांश रचनाएँ कवि-संमेलनों के माध्यम से काफी ख्याति पा चुकी हैं, किंतु उनकी एक भी प्रकाशित रचना अभी तक देखने को नहीं मिली।

(४) मृगेश जी—मृगेश जी बाराबंकी के निवासी हैं। अवधी के तरुण कवियों में आपका अपना स्थान है। आपकी 'किसान शंकर' नामक कविता काफी ख्याति पा चुकी है। उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं :

हमहूँ किसान तुमहूँ किसान
या संगति जुरी जुगाधिनि से यू नाता जुग जुग का पुरान
हम जोतिहा तुम जोतिहर बाबा
दूनौ बेदर बेघर बाबा
हमरे काँधे पर हर कुदारि
तुम बने सदेहौ हर बाबा।
ख्यातन माँ धूरि उड़ाई हम तुम भसम मले घूमौ मसान।
हम योगी जोगी तुम अपने
दूनौ के घर जन कयू जने
हमरिउ पसुरी पसुरी निकसी
तुमरिउ छाती·पर हाड़ जने
हम फटही कथरी माँ सोई, तुम खाल ओढ़िकै धरौ ध्यान।

(५) श्री लक्ष्मणप्रसाद 'मित्र'—मित्र जी का जन्म सीतापुर के हिंडोरा नामक स्थान में सन् १९०६ में वैश्य कुल में हुआ था। आपने अवधी के माध्यम से आल्हा, बारहमासा तथा भजनमाला आदि की रचना की है। पढ़ीस जी की रचनाओं से ·प्रभावित होकर मित्र जी ने अवधी में रचना प्रारंभ की थी। 'बुढ़भस', 'सोमवारी', 'सराध की श्रद्धांजलि', 'घूस का जन्म', 'मड़ए की धूम', 'प्रेमलीला','सिलहारिनी', 'बहू की सीख', 'तशरीफ', 'दो खेतों की कहानी' आदि आपकी रचनाएँ हैं। काव्य के अतिरिक्त आपने 'बाण शय्या' नामक नाटक भी अवधी में लिखा है। उदाहरण के लिये उनकी 'जागरण बेला' नामक रचना से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं :

भोरु ह्वैगा भोरु ह्वैगा, जागु रे जड़ भोरु ह्वैगा।
जागरन का जगत मा ऊषा सुनहरा थार लाई।
पौन पुरवइया प्रभाती का मधुर सुन गुनगुनाई।
ताल भीतर कमलिनी मुसका उठी फिरि खिलखिलाई।
चहक चारिउ बार चाह भरी चिरैयन केरि छाई।
राम सीताराम, सीताराम धुनि का जोरु ह्वैगा। जागु रे०।
उठी बुढ़िया सासु खरभर सरस भावा निरस भाखी।
सकपकाय उठी बहुरिया अंगु ऐंडति मलत आँखी।

कलिन पर गुंजारि भँवरा भोरु ह्वैगा दिहिन साखी।
नाउ का ज्यहिके न आरसु रसु चली चूसै नमाखी।
साहु सूरज चलि परे चंदा तिरोहित चोरु ह्वैगा। जागु रे०।

उपर्युक्त कविता लोक में विशेष रूप से प्रचलित 'प्रभाती' शैली में लिखी गई है। मित्र जी की अधिकांश रचनाएँ लोकशैली के अनुरूप प्रतीत होती हैं। वर्तमान युग के अवधी कवियों में मित्र जी ने सर्वाधिक लोकशैली को गृहीत किया है।

(६) युक्तिभद्र दीक्षित—दीक्षित जी स्व० पढ़ीस जी के पुत्र और अवधी के श्रेष्ठ कवि हैं। आप सन् १९२७ ई० में सीतापुर जिले के अंतर्गत अंबर-पुर नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। आपकी एक भी रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई है। फिर भी कविसंमेलनों तथा रेडियो के माध्यम से आपको काफी ख्याति मिल चुकी है। आपने अधिकांश रचनाएँ लोकप्रचलित छंदों अथवा शैलियों में की हैं। लोक की मूल कला एवं भावना का जितना सुंदर समावेश आपकी रचनाओं में हुआ है, उतना अवधी के अन्य किसी तरुण लेखक में नहीं। आपने लगभग १५० कविताएँ, १५ गीत कथाएँ, १५ संगीतरूपक और लगभग १५० नाटकों की रचना की है। इनके अतिरिक्त लगभग १००० लोकगीतों का संग्रह कर उन्होंने अपनी रुचिविशेष का परिचय दिया है। लगभग तीन वर्षों से आप आकाशवाणी, प्रयाग से संबद्ध हैं।

युक्तिभद्र जी दीक्षित योग्य पिता की योग्य संतान हैं। आपने अपनी पैतृक परंपरा का काव्य में पूरा पूरा निर्वाह किया है। आपकी रचनाओं में हास्य, व्यंग्य और गंभीरता आदि विभिन्न भावात्मक काव्यप्रवृत्तियों का समावेश हुआ है।

(७) 'लिखीस' जी—'लिखीस' जी का उपनाम 'पढ़ीस' जी के उपनाम के अनुकरण पर रखा गया। 'लिखीस' जी हास्य और व्यंग की रचनाएँ करते हैं। उनके काव्य को पढ़ने से पाठक को पढ़ीस जी तथा रमई काका का स्मरण हो आता है। शैली की दृष्टि से पढ़ीस जी, रमई काका और 'लिखीस' जी में काफी साम्य है। उनकी एक कविता 'उइ को आहीं' से यहाँ पर कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं :-

मुँह खोले सबके मुँह लागैं, खाँसै का बहुत उपाव करैं।
मनइन ते भरी जवानी माँ, ब्वालैं घालैं ठेहलाव करैं।
खुब बनी ठनी सिंगारु किहे, राहिन ते पूछैं हाँ नाहीं।
ककुआ सहरन माँ गली गली, बइठी ठाढ़ी उइ को आहीं।

(८) श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा—श्रीमती सिनहा खड़ी बोली की ख्यातिप्राप्त लेखिका हैं। आपने अवधी में भी कविताएँ लिखी हैं। आपकी

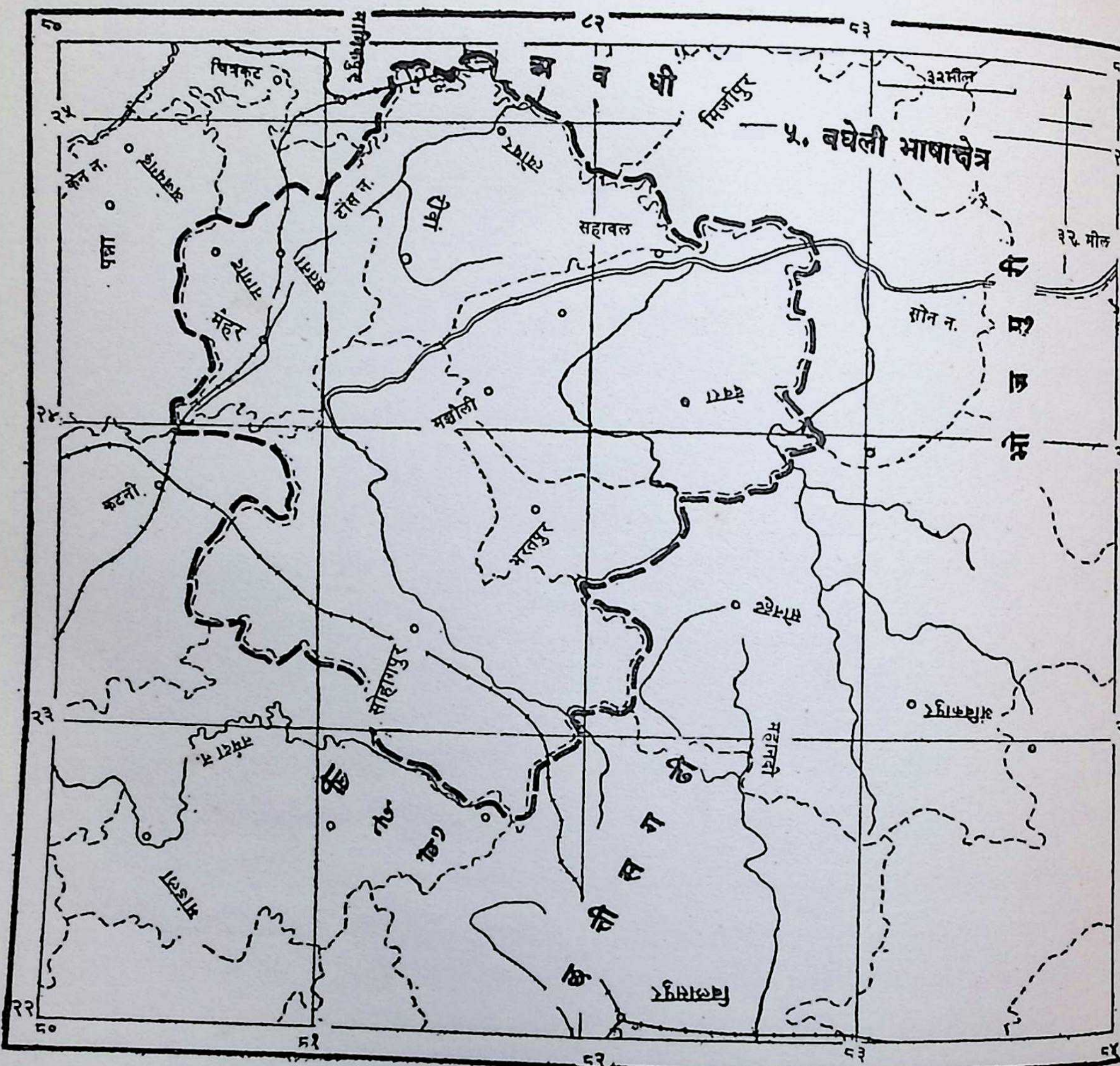
कविता की भाषा बैसवाड़ी अवधी है, किंतु उसमें यत्रतत्र खड़ी बोली का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। आपने अवधी रचनाओं में साहित्यिक एवं लोकप्रचलित दोनों ही शैलियों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ उनके एक निरवाही गीत की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं :

झमाझम बरसौ काले मेघा।
खेतनमाँ बरसो, तालन माँ भरि दियौ।
माटी का छुइके सोने कि करि दियौ।
अइस रस बरसौ काले मेघा।
धरती हरियावै महिमा हम गावैं।
पातिन पातिन पर आस फलि आवै।
अइस रस बरसौ काले मेघा।

(५) बघेली लोकसाहित्य

श्रीचंद्र जैन

५—बघेली



५. बघेली भाषाक्षेत्र
अवधी
मिर्जापुर
चित्रकूट
रीवां
सहावल
मंहर
पन्ना
कटनी
मझौली
सोहागपुर
सोन न.
महानदी
केन न.
टोंस न.
३२ मील

प्रथम अध्याय

अवतरणिका

१. क्षेत्रफल, जनसंख्या

डा० उदयनारायण तिवारी ने बघेली बोली की भाषागत सीमाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है :

'बघेली के उत्तर में दक्षिणी-पश्चिमी (इलाहाबाद की) अवधी तथा मध्य मिर्जापुर की पश्चिमी भोजपुरी बोली जाती है। इसके पूरब में छोटा नागपुर तथा बिलासपुर की छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र है। इसके दक्षिण में बालाघाट की मराठी तथा पश्चिम-दक्षिण में बुंदेली का क्षेत्र है। बघेली भाषाभाषियों की संख्या चालीस लाख से ऊपर है[1]।'

रीवाँ राज्य का क्षेत्रफल लगभग १३,००० वर्गमील था। यह २२°३०′ और २५°१२′ उत्तरी अक्षांश तथा ८०°३२′ और ८२°५१′ पूर्वीय देशांतर के मध्य में था।

ग्रियर्सन के मतानुसार बघेली बोलनेवालों की संख्या (सन् १९२१ में) निम्नलिखित है :

(१) शुद्ध बघेली बोलनेवाले	... ...	३६,९२,१२६
(२) पश्चिम में मिश्रित बघेली बोलनेवाले	...	८,२४,८००
(३) दक्षिण में टूटी फूटी बघेली बोलनेवाले	...	९५,८३०
		४६,१२,७५६

आजकल बघेली बोलनेवालों की संख्या १,६०,००,००० बताई जाती है[2]।

बघेलखंड की ऐतिहासिक गरिमा का उल्लेख महर्षियों एवं इतिहासकारों ने विस्तार के साथ किया है। इसके अनेक तीर्थ हमारी धार्मिकता के प्रमाण हैं। अमरकंटक, बांधवगढ़, चित्रकूट, गोर्गी (गोलकी) आदि पावन स्थल बघेलखंड की पवित्रता के तथा भारतीय बहुमुखी धार्मिक संस्कृति के अमर स्मारक हैं। पटनी देवी का मंदिर, बम्हनी, क्योटी चंदरेह, नरो, मनगवाँ, सुपिया, मड़वा, भमरसेन

[1] हिंदी और हिंदी की बोलियाँ, डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० २८१।

[2] जनपद, खंड १, अंक १, पृष्ठ ६३, अक्टूबर, १९५२।

आदि स्थानों के शिलालेख एवं ताम्रपत्र इस भूप्रदेश के शासकों की कीर्ति के साक्षी हैं। माड़ा और सिलहरा की गुफाएँ, भरहुत का स्तूप (ध्वस्त), बैजनाथ का मंदिर, गोलकी किला (भग्नावस्था में), विराटमंदिर (सोहागपुर), अमरकंटक के मंदिर आदि बघेलखंड की अलौकिक स्थापत्य कला के प्रतीक हैं। कालिंजर और बांधवगढ़ के सुप्रसिद्ध दुर्ग इसी भूखंड के गौरवचिह्न हैं। यहाँ के हीरा, गज और व्याघ्र सदैव प्रख्यात रहे हैं। इस भूप्रदेश में चिरकाल तक अनेक राजवंशों ने राज्य किया है। बांधवगढ़ के मघों और त्रिपुरी के कलचुरियों के शासनकाल का इतिहास विविध महत्वपूर्ण है। बघेल शासकों के राज्यकाल की शूरता, शासनपटुता, प्रजावत्सलता, विविध-धर्म समन्वयता, साहित्य-संगीत-कलानुरागिता आदि की गौरवशालिनी अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। एक समय इन बघेल शासकों का राज्यविस्तार उत्तर में गंगा यमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक था। ब्रिटिश राज्यकाल में स्थापित बघेलखंड एजेंसी के अंतर्गत रीवाँ, नागौद (मैहर), सोहावल (कोठी), बरौंधा (चौबथना) जागीर एवं कामता रजौला का एक साथ उल्लेख हुआ। ये सब राज्य और जागीरें किसी समय रीवाँ राज्य का ही अंश थीं।

२. संग्रह कार्य

बघेली लोकसाहित्य (लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा आदि) मौखिक रूप में मिलता है। इसका संकलन कुछ लोक-साहित्य-प्रेमी विद्वानों द्वारा किया जा रहा है। अन्य जनपदीय लोकसाहित्य के ही समान बघेली साहित्य प्रचुर एवं सरस है। समय समय पर प्रकाशित होनेवाले दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक तथा त्रैमासिक पत्रपत्रिकाओं में इस प्रदेश के कतिपय विद्वानों के जो लोकसाहित्य विषयक सुंदर लेख निकले हैं, वे बघेली साहित्य के अध्ययनार्थ विशेष उपयोगी हैं :

१—भारतभ्राता (साप्ताहिक), २—शुभचिंतक (साप्ताहिक), ३—प्रकाश (साप्ताहिक), ४—मधुकर (पाक्षिक), ५—बांधव (मासिक), ६—विंध्यभूमि (मासिक), ७—भास्कर (साप्ताहिक), ८—विंध्यवाणी (साप्ताहिक), ६—विंध्याचल (साप्ताहिक), १०—विंध्यप्रदेश (मासिक), ११—विंध्यभूमि (त्रैमासिक), १२—विंध्यवार्ता (साप्ताहिक), १३—विंध्यशिक्षा (मासिक), १४—दैनिक जागरण, १५—अभिज्ञान (प्रकाशन बंद), १६—विंध्य पंचायत (प्रकाशन बंद), १७—विंध्य भारती (प्रकाशन बंद), १८—दैनिक आलोक, १६—सरपंच, २०—लोकवार्ता (प्रकाशन बंद)।

विंध्यप्रदेश की इन पत्रपत्रिकाओं ने बघेली लोकसाहित्य के संकलन एवं समीक्षात्मक अध्ययन में विशेष सहयोग दिया है। सर्वश्री लाल भानुसिंह जी बाघेल, कृष्णवंशसिंह जी बाघेल, सैफुद्दीन, पं० रामभद्र गौड़, पं० गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री,

लखनप्रतापसिंह उरगेना, प्रो० भगवतीप्रसाद शुक्ल, प्रो० राजीवलोचन अग्निहोत्री, मोहनलाल श्रीवास्तव, पं० सुधाकरप्रसाद द्विवेदी, हरिकृष्ण देवसरे, पं० मदनमोहन मिश्र आदि के बघेली लोकसाहित्य विषयक लेख हिंदी की पत्रपत्रिकाओं में आज भी प्रकाशित हो रहे हैं। प्रो० भगवतीप्रसाद शुक्ल (दरबार कालेज, रीवाँ) पी-एच० डी० के लिये बघेली लोकसाहित्य पर शोध कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत निबंध में प्राप्त आपकी सहायता के लिये मैं कृतज्ञ हूँ। विस्तृत क्षेत्र में व्यवहृत होनेवाली बघेली बोली का प्रभाव हिंदी के महाकवि धरमदास, कबीर, जायसी, गोस्वामी तुलसीदास, पद्माकर, रहीम आदि के काव्य पर भी पड़ा है। केलोग के ग्रामर (व्याकरण) में बघेलखंडी भाषा पर प्रकाश डाला गया है। सन् १८२१ में बाइबिल का अनुवाद बघेली बोली में हुआ था।

द्वितीय अध्याय

गद्य

१. बघेली लोकसाहित्य के विविध रूप

बघेली लोकसाहित्य गद्य और पद्य में मिलता है, गद्य में लोककथाएँ (कहानियाँ), कहावतें और मुहावरें हैं, पद्य में लोकगाथाएँ (पँवाड़े) और लोकगीत।

(१) गद्य—बघेली गद्य अपनी कथाओं, कहावतों, मुहावरों के रूप में विविध, प्रचुर और सुंदर है। संक्षेप में इनका परिचय नीचे दिया जा रहा है :

(क) लोककथाएँ—बघेली लोककथाओं का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है—(१) विषयानुसार (२) उद्देश्यानुसार।

विषयानुसार भेद—(१) पशु-पक्षी-संबंधी, (२) राजा-रानी-संबंधी, (३) देवी-देवता-संबंधी, (४) जातिसंबंधी, (५) भूत-चुड़ैल-संबंधी, (६) जादू-टोना-संबंधी, (७) साधु-पीर-संबंधी आदि।

उद्देश्यानुसार भेद—(१) रंजनात्मक, (२) उपदेशात्मक।

(ख) कहावतें—कहावतों में निम्नांकित मुख्य भेद दृष्टिगोचर होते हैं :

(१) खेती संबंधी, (२) स्वास्थ्य संबंधी, (३) नीति संबंधी, (४) जाति संबंधी, (५) धर्म संबंधी, (६) व्यवयास संबंधी, (७) कथात्मक।

२. उदाहरण

बघेली लोककथाओं और कहावतों के उदाहरण निम्नांकित है :

(१) काँटा से मारकाट—मुकुंदपुर रीमा राज केर एक प्रसिद्ध पुरान गाँव है। इहाँ के बेदौलिहा औ परसोखहन बाम्हन प्रसिद्ध हैं। महाराज रघुराजसिंह के समय (१८५४-८० ई०) मा परसोखहन मा कँधई औ बदौलिहन मा लालजी और लालजी के चार लड़िका—मूले, उदंगल, दलथी औ पिरथी—अच्छे लड़ैया जमान रहें। उआ समय माँ आपन जिउ बचामइ के निता, सब कोऊ लकड़ी पटा खेलत रहा औ हथियार बाँधत रहा। ऐई बेदौलिहा परसोखहन मा एक साधारण बात के निता पूरा संग्राम होइगा रहा। ओही केर कथा मुकुंदपुर के पुजेरी बाल-

मीकप्रसाद के बताए मुताबिक 'बांधव' के पाठकन के मनोरंजन के निता लिखी जाति है :

एक दिन बदौलिहन के घर केर मेहेरिया नदी नहाय गईं। लौटत मा कँधई परसोखहा मैंने नचकौनू तिवारी के घर के लगे, पिरथी के दुलहिन के गोड़े माँ काँटा गड़िगा। तब उन्‍्ना गारी दै के कहिनि कि 'काँटा बोय राखिसि है'। घर के भीतर से इया गारी नचकौनू सुनिन औ बिना चीन्हें जाने गारिन माँ एक उत्तर दिहिन। तौ इया सुनि के साथ केर उपदेस देत घरे चली गईं। पै पिरथी के दुलहिन से नहीं रहिगा। जब पिरथी कहिन नहाई के डाढ़ी ऐंछे, तब उन्‍्ना बोलिन कि 'डाढिन भर तो हैं'। पिरथी कहिन कि 'काहे, और का नहीं आय ?' तब उन्‍्ना गारी कै हाल बताइस। इया सुनि के पिरथी साँग लैके नचकौनू के मारे का दौरि परे। नचकौनू केमरा ओमरा दै के, कौनौ तरे से आपन जिउ बचाइन। कँधई कहीं गे रहैं। जब आए, इया सब सुनिन, तब दुइ चार जने बड़े मनइन का लैके लालजी के घरे जाय नचकौनू से छमा मँगाइन। लालजी सयान के तरह छमा दिहिन, पै पिरथी केर क्रोध नहीं गा। नचकौनू बचि के रहे लागे औ पिरथी दलथी ताडे लागें। एक दिन नचकौनू का सबेरे बकिया गाँव जाय का रहा। दूदी पाँड़े कैसो के पता पाइस, तौ पिरथी हन से बताय दिहिस। दलथी पिरथी रातै नचकौनू के गैल (बहरा) मा जायके लगिभे। बड़े सकारे नचकौनू जब पहुँचे और झाड़े होइके बहरा मा पानी लेय लागे, तब दलथी पिरथी नचकौनू का साँग और तरवार से मारि डारिनि और लुके छिपे घरे चले आएँ। कँधई का जब पता लाग कि दलथी पिरथी हथियार बाँधे ओही कैत से आए हैं जौने कैत नचकौनू गे रहैं, तब उनका हेरे चले। बहरा मा नचकौनू का फटा फटा पाइन तौ कपड़ा मा बाँधि के उठाय लै आए औ आगी दिहिन। जब आगी दै चुके, तब कँधई इया परतिज्ञा किहिन कि 'जब भर नचकौनू के मारैवाले का न मारि लेब, तब भर न जनेव पहिरब और न नहाब।' इया घटना के कुछै दिन पाछे महाराज रघुराजसिंह शिकार खेलै मुकुंदपुर आएँ। तब कँधई का बोलाय के समझाइन, जनेव पहिरवाइन, औ गाँववालेन का आज्ञा दिहिन, कि इनकर औ बेदौलिहन केर सामना न होय पावै।

इया तरे से कुछ दिन बीता। एक बेर ताजिया के समय मा तमासा देखे के निता परसोखहा और बेदौलिहा दूनौ जने पहुँचे। ताजिया देखत देखत, जब कँधई के सामने बेदौलिहा आएँ, तब कँधई कहिनि कि—'इनहीं कहि दे, दूरी रहैं।' तब तमासा के प्रबंधक मुसलमान लोग कहिन कि 'अब तमासौ होइगै, लालजी कक्का, तूँ सबका लैके घरे जा।' लालजी जाय का तयार भै, तब दूदी पाँड़े कहिस कि 'एतन झरियारे का को टटिया देत है।' इया सुनि के सब

तमासगीर दूरी दूरी होइगें। कँधई के तरफ उनकर भतीज और नचकौनू केर काका रहा। बेदौलिहन मा लाल जी औ उनकर चारौ लड़िका रहैं। सब तरवार औ साँग लए रहैं। कँधई औ पिरथी आमने सामने आएँ, तब दूनौ जने साथे आपन आपन तुपक दागिन। पै लड़ाई बंद करे के बिचार से बकुली बेहना कँधई के तुपक मा हाथ मारि दिहिस। एसे कँधई केर निसाना खाली गा, पै पिरथी केर गोली कँधई के छाती के लगे कहीं लगिगै औ कँधई झमे लागे। इया देखिके कँधई केर भतीज बोला कि 'काका कहत तौ रहे हैं कि एक बेर गोलिउ के मारे न मरब।' इया सुनि के कँधई 'आँय' कहिके सँभरि के खड़े होइगे। तब पिरथी समझिन कि हुकि गैन औ तरवार लेके दौरे। कँधई तरवार ढाल मा रोकिन, पै मूड़े मा थोर का तरवार गड़िगै। आँखी मा रक्त आवे लाग, तब अँगोछी से मुड़ेठा साफा समेत बाँधिके फेर तयार होइगे। तब फेर पिरथी कँधई पर तरवार चलाइन। इया दाय कँधइउ मारे का झुके, तब पिरथी केर हाथ कँधई के काँधा मा परा। कँधई नटई से उनके हाथ का एतने जोर से दबाय लिहिन कि ओही छोड़ावे मा दूनौ जने के ढोसा ढोसी होय लाग। एतने मा पिरथी केर गोड़ गड़वा मा परिगा। तब कँधई बहेरा केर हाथ मारिन तो पिरथी केर घाँघर खुलिगा। गिरि परे।

कँधई क्रोध के मारे पिरथी के लहास मा बैठिगे। भाई केर मरब देखिके दलथी दौरे औ झुकिके कँधई पर तरवार चलाइन। कँधई बैठेन बैठ फेर बाहेरा केर हाथ मारिनि, तो दलथी केर पेट फाटिगा, गिरिगे। तब तीसर भाई मूले लाठी लेके दौरे औ कँधई पर लाठी चलाइन। तब कँधई उहे बाहेरा के हाथ से उनहूँ का समाप्त कै दिहिन। चौथ भाई उदंगल दौरे, तो बीचे मा नचकौनू केर काका साँग मारि दिहिस। तब ऊ साँग पेट मा छेदे भागे औ नेरे के जोलहन के घर मा मरे जाय। लड़िकन का इया तरे से जूझत देखिके लालजी काहू के तरवार लैके चले, तब कँधई कहिनि कि 'तुम सयान हा, न आवा'। लालजी कहिनि कि 'निरबंस के दिहा, अब हम का करब ?' इया कहिके तरवार मारिनि, तब कँधई उनकर तरवार ढाल मा आड़िके, साथे अपनौ मारिन तौ लाल जी के मुहें मा लाग औ गिरिगे। इया तरे से लालजी औ लालजी के चारो लड़िका जब जूझिगैं, तब लड़ाई बंद होइगै। कँधई का बैठ देखिके सब कोउन उनके पास गै औ कहै लागे, कि 'अब घरे चला'। तब कँधई पूछिन कि 'अब नहीं आय कोऊ'। तब सब जने बताइन कि 'अब कोऊ लड़ैवाला नहीं आय'। तब कँधई कहिन कि 'नचकौनू का उरिन होइ गैन कि नहीं ?' सब कहिन कि 'हाँ, उरिन होइ गए।' तब आपन मिरजाई रुकेलि के गोली केर घाव देखाइन औ कहिनि कि 'समरभूमि काहे छोड़ौते हौ ?' एके साथे गिरि परे औ मरिगै। इया तरे से कँधई केर कबंध लड़ा और कलह कांड काल बना।

इया लड़ाई केर बहुत बड़ी विशेषता इया है कि प्राचीन आदर्श के अनुसार

धर्मयुद्ध भै। दूनौ पच्छ के कैश्रौ जने रहे, भाई भाई का जूझ देखत रहे, पै दुइ जने एक साथ कोऊ काहू पर आक्रमण नहीं किहिन। बेदौलिहा लोग पहिले दुइ दुइ जने अकेले नचकौनू का मारिन जरूर, पै फेर खुली लड़ाई मा धर्मयुद्ध केर नियमौ अच्छा निबाहिन।

यद्यपि महाभारत बहुत बड़ा युद्ध भा रहा, पै उहौ द्रौपदी के केश कथें से भा रहा औ इया लड़ाई बहुत छोट भै, पै पिरथी के पत्नी के 'काँटा कथे' से भै[1]।

(२) बाप पूत—एकै रहै बाम्हन। उनके एक ठे लड़कै भर रहे, बस। एक रोज बाम्हन कहिन कि 'चल दादू, कहौं दुसरे देस माँ चली हुँअई रहब'।

चलत चलत जब उँई एक जंगल माँ पहुँचे, त बहुत कसके पियास लाग। ओहिन जंगल माँ एक ठे तालाब रहे, जेमा खूब चिरई बोलती रहैं।

या सोचके उँई दूनों जन चल दिहिन। हुँआ देखिन कि एक ठे मंडिल बनी रहे। मंडिल माँ देखें त कोऊ न रहे। जब केमरा खोलके भितरे गे, त देखिन कि खूब कुठिला भरे हैं। उनमा घी, दूध, दार, चाउर, दाख, मुनक्का सब भरा रहे।

पुन हुँअई चुल्हवा माँ आगी सुलगाइन अउर खाए का दार भात बनाय के खूब पेट भर खाइन। एक ठे चाउर केर कुठिला थोड़का खाली रहै। ई दूनौ जन यह सोचके कि कोऊ आई जरूर, जेखर सब डेरा रक्खा है ओहिन माँ दूनों जन घुसिगे।

कुछ बार माँ एक ठे दानव आवा। व चुल्हवा माँ एक हाँडा दूध चढ़ाइस अउर ओहिन माँ चाउर सक्कर अउर दाख मुनक्का सब डार दिहिस। जब चुरिगा, तब एकठे बड़ी भारी परात माँ परस के खाय लाग।

तब बम्हनऊ केर लड़का कहिस 'दादा महूँ माँगौं'? त दादा बोला—'नहीं बे। खवइहे का?' पै लड़का केर जिउ न माना। तब बाप खिसियाय उठा अउर बोला—'माँग ससुर कए त।' लड़का कहिस—'हमहूँ का।'

य सुनिके दानव चारों कइत निहारिस, अउर फेरि जब दुसरइया घोराइस त दानव उठिके भाग दिहिस।

तब पंडितऊ अउर पंडितउ केर लड़िका निकरे अउर सब खाय लिहिन। दानव भागत चला जात रहा, त एक ठे लोखड़ी मिली। त कइत ही कि 'काहे भगे जात हए दानव भाई'।

[1] लेखक—लाल श्री भानुसिंह बाघेल, 'बांधव', वर्ष २, अंक ७, ८, ९।

दानव कहिस कि हमरे हिंयन 'हमहूँ का' घुसा है। त लोखड़ी कहिस कि 'चल मैं ओही मार डरिहौं।' जब दूनौ जने आए, तब देखिन त सब साफ रहे। लोखरी पूँछिस कि 'कहाँ है ?'

तब दानव कहिस कि 'हटवौ, व कुठली माँ घुसा है।' लोखड़ी उही कुठली माँ पूँछ डार के भिमाँमें लाग कि कोऊ होई त फँसि जई। लोखड़ी केर पूँछ लड़का के मूँड माँ खटर खटर लागे। जब ओसे न सहा गा, तब कहत है कि 'दादा खीचों।' दादा बोले—'नहीं बे। व खाय लेई।' पै लड़का से न रहा गा अउर व लोखड़ी के पूँछ का धै खैंचिस। लोखड़ी मार एकई ओकई मूँड़ पटके जाय। एत्ते माँ ओखर पूँछ उखड़ि गै। त उँई दुनहूँ (दानव अउर लोखरी) भगे अउर लोखड़ी कहिस कि "कहत है 'हमहूँ का' घुसा है। य नहीं कहे कि 'पूँछ उखार' आय बइठ लाग है।"

एत्ते माँ जब दूनों जन भगे चले जाँय त पंडितऊ अउर पंडित केर लड़का निकरे त दुआरे माँ एक ठे बेल केर बिरवा रहै। त ओमैं चढ़िगे। ओमैं खूब बड़े बड़े बेल पके रहे। एत्ते माँ दानव खूब एक बाघ लिहै चला आवै कि ओहीं बघउनन से खवाय डारब।

जब बाघ आए तब चार पाँच ठे बाघ भीतर घुसिके हेरि आए, पै कोऊ न मिला। तब कहिन कि 'कोऊ त नहीं आय'। पुन सब बाघ दुवारे माँ बइठके सहुँचाय लागे। एत्ते माँ पंडित केर लड़का बोला कि 'दादा मारौं ?' पै दादा 'नाहीं' कइ दिहिस। लड़का बड़े चुलबुलिहात रहै। न माना। व एक ठे बेल उचाय कै मरबै भा। त एक के कपार माँ जायके लागत बेल छरिआयगा। एतनेत माँ सलगे बाघ कहिन कि 'मुँड़फोड़' आय, अउर मारे डरन के भाग दिहिन।

पुन ई दूनो जन बाप पूत मजे से उतरे अउर खूब धन डेरा लइके घर चले आए। अउर किस्सा रहै त खतम होइगे[1]।

(३) कहावतें (कहनूल)[2]

१–आँधर के आगे रोवै। आपन दीदा खोवै॥
(निर्दय के आगे अपनी करुणकथा कहना व्यर्थ है।)

[1] हरिकृष्ण देवसरे, 'विंध्य भूमि', लोकसंस्कृति अंक, १५ अगस्त, १९५५।
[2] बघेली में कहावत को उक्खान तथा कहनूत कहते हैं।

२–आँखी न कान, कजरौटा नौ नौ ठे ।
(अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह ।)

३–आवै न जाय, दादा गुलेल लइदे ।
(जिस वस्तु का उपयोग नहीं जानना, उसकी प्राप्ति के लिये हठ करना ।)

४–आँजी न सहैं, फूटी भले सहैं ।
(अल्प हानि को न सह अधिक क्षति को सह लेना ।)

५–घर के लड़का गोही चाटैं । मामा खायँ अमावट ॥
(घरवालों का अनादर और संबंधियों का सत्कार ।)

६–नाम लखेसुरी, मुँह कुकुर कस ।
(नाम के अनुसार गुण न होना ।)

७–आँपन देखि न देय, दूसरे का लात मारे ।
(अपनी भूल पर ध्यान न देकर दूसरे को दोषी बताना ।)

८–भागमान का हर भूत जोते ।
(भाग्यशाली की सहायता परमात्मा भी करता है ।)

९–उजरै गाँव पेड़की सुआसिन ।
(उजड़े गाँव में पक्षी ही रहते हैं ।)

१०–सेत का चंदन घिस मोरे नंदन ।
(दूसरे की वस्तु का अपव्यय करना ।)

(४) मुहावरे—

१–पेल भागब—सिर पर पैर रखकर भागना ।
२–सटक जाना—अवसर पाकर भाग जाना ।
३–मुँह चोराउब—काम से जी चुराना ।
४–आँखी निपोरब—आँख दिखाना ।
५–लोखरिआब—बहुत लाड़ प्यार दिखाना ।
६–सउँज लगाउब—बराबरी करना ।
७–लुरखुरिया करब—चापलूसी करना ।
८–लउनी लगाउब—लालच देकर फँसाने की चेष्टा करना ।

तृतीय अध्याय

पद्य

१. पँवाड़ा

अन्यान्य उत्तर भारतीय लोकसाहित्य की भाँति बघेली में भी पँवाडों का विशिष्ट स्थान है। पूरे कथानक की योजना के कारण पँवाड़े जनमन, लोकरुचि, और रीतिनीति का विस्तारपूर्वक परिचय उपस्थित करते हैं। इसी कारण लोक-साहित्य की अन्य किसी विधा की अपेक्षा पँवाड़ों द्वारा उसका साक्षात्कार अधिक परिपूर्ण रूप में किया जा सकता है। नीचे उद्धृत पँवाड़े द्वारा इस कथन की सत्यता सिद्ध होती है :

(क) नैकहाई केर जुज्झ—

किटहा केर प्रतापसिंह ठाकुर, रीमाँ से चले हैं रिसाय।
किटहा केर प्रतापसिंह ठाकुर, राजा से करैं जवाब॥
'हम न रहबै रीमाँ माँ राजा, काल्ह पूना सितारा जाब'।
किटहा केर प्रतापसिंह ठाकुर राजा से करैं जवाब॥
पहुँच गए हैं पूना सितारा, लाग नौकरो जाय।
किटहा केर प्रतापसिंह ठाकुर, रीमाँ केर करै बखान।
'रीमाँ सहर अति सुंदर लागै, बँगला बने हैं दरियाब।
चंदन केर खँभियाँ लागि हैं, हीरन जड़े हैं जड़ाव॥
गढ़ बांधव केर कोटा कंजरी, देखबे जोग नहीं आय'।
पूना सतारा केर बोलत है नयकवा, ठाकुर से करत है जवाब॥
'रीमाँ सहर अति सुंदर लागै, मोहीं देखबे का है अति साध।'
'चउरा केर ऊपर कचहरी लागै, खलवा चुकुल मति आय॥
पैसा बढ़ा है बांधव मा नायकवा, चला गढ़ घेरी जाय।
कोउ राज पन्ना कै घेरैं, कोउ घेर लिहिन गुजरात॥
नायक कहैं 'हम रीमाँ का घेरब, चला लेई डाँड़ भराय'॥
'घोघर घाट भयानक लागै, झिरिया है बिष कइ धार।
गढ़ रीमाँ केर हैं बाँके बघेला, तोर कटिहैं मूँड़ जोराय'॥
'घोघरे मा करबै कुल्ला मुखरिया, झिरिया मा करब असनान।
रंगमहल मा खाबै खिचरिया, मोतिया महल सोउनार॥'

२. लोकगीत

लोकगीतों का वर्गीकरण सुगम नहीं है। फिर भी साधारणतः निम्नांकित विभाजन सुविधाजनक है :

(१) संस्कार गीत
(२) देवी देवताओं के गीत
(३) ऋतुओं के गीत
(४) प्रेमगीत
(५) बालगीत
(६) विविध
  (क) ऐतिहासिक गीत
  (ख) कथात्मक गीत
  (ग) याचकों के गीत
  (घ) घरेलू कार्यों के गीत
  (ङ) नृत्य गीत
  (च) राष्ट्रीय गीत
  (छ) विशेष अवसरों के गीत
  (ज) मंत्रगीत
  (झ) जातिविशेष के गीत
(७) पहेलियाँ

(१) संस्कार गीत—

(क) जन्मगीत (सोहर)—

एक फूल फूलइ रे मथुरा, त दूसर अजुधिया हो।
(अब) तीजउ फूल फूलइ हो कासी, चउथ मोरे आँचल हो॥
साहेब, अँचला बिछाइ पइँया लागे,
अरज कछु करितेउँ हो।
कोह्न का दिहे दुइ चार, त कोह्न का दस पाँच हो,
पै मोहिं राखेउ ललचाइ त एक ललन बिनु,
त एक खेलन बिनु हो॥
अमवा फरा हइ गउद, अमिली झपकियन हो।
रामा तिरिया का राखे ललचाइ, त अपने करम गुन हो।

× × × ×

भुइँआ पड़े हइँ नंदलाल,
भुइँआ पड़े कि सुख सोभइ।
कि नंदलाल भुइयाँ पड़े हइँ॥
जाइ कहो मोरे बारे ससुर से,
जलदी चमाइन को लामइ,
कि नंदलाल भुइँया पड़े हइँ॥
जाइ कहो मोरे बारे जेठर से,
जलदी खटोलना मँगामइँ,
कि नंदलाल भुइयाँ पड़े हइँ॥
जाइ कहो मोरे बारे देवर से,
जलदी से तुपका चलामइँ,
कि नंदलाल भुइयाँ पड़े हइँ।
जाइ कहो मोरे बारे बलम से,
जलदी से पटना लुटामइँ,
कि नंदलाल भुइँया पड़े हइँ।

(ख) मुंडन संस्कार गीत—

हँसि बोलि पूछयँ फलाने[1] राम फूफू, कउने गहनमाँ कै साध।
झलरिया नेउछावरि हो।
राँग पितल पहिरै बानिन, अउ कलवारिन,
बेटा पियर मोहरवा कै साध, झलरिया० ॥
हँसि बोलि पूछयँ ओन्हाई राम फूफू, कउने कपड़वा कै साध।
झलरिया० ॥
लाल पियर पहिरै बानिन, अउ कलवारिन,
बेटा सेत कपड़वा कै साध झलरिया नेउछावरि हो।

(ग) जनेऊ गीत—

जउने बन सिंकिया न डोलइ, कोइली न बोलइ हो।
तउने बन होइले दुलेरुवा, हेरइँ मृगछाला हो।
हेरैं मिरगा नाहिं पामइँ, बनइँ बन भटकइँ हो।

[1] अमुक (यहाँ नाम रहता है)।

घाम लागइ सिर घाम, पायँन लागइ भुँभर हो।
अरे अरे बपवा फलाने राम, बरुआइ छत्र तनावा हो।
सोनेन छत्र तनउवइ, रूपेन पिढ़ली मँगउवइ हो।

(घ) विवाह गीत—

१. बनरा—

बना कै लम्मी लम्मी कैसैं, गोलारी अँखिया रे।
ससुरारी से मउरी आवइँ, दुइ दुइ जोड़ा ये रे।
पहिरउ पहिरउ रे हजारी, दुलहा का छबि लागइ रे।

२. कन्यादान—

थारी जे काँपइ गेडुआ जे काँपइ,
काँपइ कुसा केरि डारि।
मँड़ए मा काँपइँ बाबा उन्हैसिंह[1],
देत कुमारी का दान॥
मँड़ए मा काँपइँ बपना फलाने[1] राम,
देत कुमारी का दान॥
मँड़ए मा काँपइँ कक्का फलाने[1] राम,
देत कुमारी का दान॥
मँड़ए मा काँपइँ भइया फलाने[1] राम,
देत बहिन का हो दान॥
गंगा केर पानि, सुपानि हो,
कलस भर लामइँ हो।
देत उन्हैसिंह[1] दान सबइ कोइ बानइ हो।

३. भाँवर—

पहिली भँवरि फिरि आइउँ, बाबा अबहूँ तुम्हारी हौं हो।
दुसरी भँवरि फिरि आइउँ, बाबुल अबहूँ तुम्हारी हौं हो।
तिसरी भँवरि फिरि आइउँ, पितिया अबहूँ तुम्हारी हौं हो।
चउथी भँवरि फिरि आइउँ, भइया अबहूँ तुम्हारी हौं हो।
पँचईं भँवरि फिरि आइउँ, नाना अबहूँ तुम्हारी हौं हो।

[1] अमुक (यहाँ नाम लेते हैं)।

छठईं भँवरि फिरि आइउँ, आजी अबहूँ तुम्हारी हौं हो।
सातौ भँवरि फिरि आइउँ, माया अब भइनुँ पराई हौं हो।

× × ×

धिया मोरि आज सँकलपों, त जियरा बिरोगहि हो।
भितर से माया रोवइँ, त बहिरे से बाबुल हो।
धिया मोरी भई हैं पराई, त जियरा बिरोगहि हो।

४. बिदा गीत—

ई सुवनन का अइसन पालेन, जइसे चना कइ दार।
पै ई सुवनन मेरे कान न मानइ, उड़ि जंगल का जायँ।
ई ललना का अइसन पालेन, काँचेन दूध पिआय।
पै ई ललना मोर कान न मानइ, चढ़ि ससुररिया जायँ।
ई ढेरियन का अइसन पालेन, काँचेन दूध पियाय।
पै ई ढेरिया मोर कान न मानइ, चलि रे बिदेसेयँ जायँ।

(२) धार्मिक गीत (भजन)—

ऊँची महलिया निहल दुअरिया, सेवक ठाढ़ दुआर हो माँ।
खोल दे केमार दरस दे माता, सेवक ठाढ़ दुआर हो माँ।
तोहि दरस ना देबे पापी, लौट घरै तूँ जा हो माँ।
कउन पाप हम कीन्हेंन माता, मोको देय बताय हो माँ।
आवै कहै लरिकइयाँ बालक, आए बुढ़ाइँ बार हो माँ।
तोहि दरस ना देबे पापी लौट घरै तूँ जा हो माँ।
जीभ चढ़ावै कहि गए लबरा, बाँह चढ़ाए आय हो माँ।
तोहि दरस ना देबे पापी, लौट घरै तूँ जा हो माँ।

(३) ऋतुगीत—

(क) कजली (सावन)—

सदइँ न फूलइ भउजी रमतरोइया,
पै सदहू खेलन हम जायइ हो ना।
काहे का मोरि भउजी अँखिया घुरेरिउ,
पै हम धना बन कै चिरइउ हो ना।
तबइ तो कह्या भइया नेरे बिअहबइ,
पै जाय बिआह्या गुजराति हो ना।

आज की रइन बापउ तोंहरे मँड़इया,
पै काल्ह बिदेसिया साथउ हो ना।
काल तौ मोरे भइया लंका के गलियाँ,
पै रहिहौं बिसूर बिसूरिउ हो ना।
अरे तन चूक डोलिया छिमाइव रे कहरवा,
पै देखि लेतिउँ भइया कई बगइचिउ हो ना।
तन चूका डोलिया छिमावइ रे कहरवा,
पै देखि लेतिउँ मामा कै सगरवउ हो ना।

(ख) फाग—

अमरइया मा कोइली बोली करै।
सुन सुगना रे।
रंगभरी मोरी देहियाँ गमना माँगै रे।
अमरइया मा कोइली बोली करै ॥ सुन० ॥
रंगभरी मोरी चोलिया, गमना माँगै रे ॥ सुन० ॥

(ग) बारहमासी—

अगहन धनियाँ सरम से, पूसैं अलसानी हैं हो।
अब माघ महीना बेनीमाधव, मकर नहानी हैं हो।
फागुन मा फगुआ खेलबै, चइत नौमी रहबै हो,
अब बैसाख मा फूली कुसुमियाँ, त पियरी रँगउबै हो।
जेठ महीना बरा पुजबै, असाढ़ मोरिला बोलिहैं हो,
अब सावन गड़बै हिंडोलवा, सबै सखि झुलबै हो।
भादों महीना तीजा रहिबै, कुँवार दान देबै हो,
अब कातिक दियना जलउबै, अ तुलसी जगउबै हो।

(४) प्रेमगीत—

(क) दादरा—

कउने छैलवा केर नार,
झमाझम पनियाँ का निकरी।
धौं तैं आही सँचवा कइ ढारी,
धौं तोहि गढ़े सोनार ॥ झमाझम० ॥
माई बाप मिलि जनम दिहिन तैं,
सूरति दिहिग भगवान ॥ झमाझम० ॥

(ख) बिरहा—

आमा कच्छ पानी,
बनायों चोंगी।
चिरई तोरे कारन, भयों जोगी॥
लंबी सड़किया कै गोला बजार।
मोहिं लइदे चुनरिया मैं बागउँ बजार॥
लोटा कै पानी छलक नहिं जाय।
पतरइला कै बोली, अलख नहिं जाय॥

बिरहा घाट मा बिरहा बिटउना।
मैं बिरहन पनिहार।
बिरहा बिटउना सनकी चलावै,
गागर गिरी दहार॥

(ग) टिप्पा—

कहैं बहादुर सुना काका।
अभिमानै बहोरा बंस राखा॥
घन अमरैया बिडर पाती।
कुँदरू अस गाला, नरम छाती॥
छोटी छोटी टोरिया, मनावे देउता।
कबै अइहैं बिदेसी, करब नेउता॥

(५) बालगीत—

इनगिन भिनगिन, भइँसा तिनगिन,
नाथ नेवर, बजी घनेवर।
सालिग सुप्पा, बैल का रुप्पा,
बैलन बैल लड़ाय दे,
फुरफुंदा घोड़ कुदाय दे,
फुरफुंदा मारी लात, गिरी अधिरात।

(६) जनजातिक गीत—

बघेलखंड में लगभग ३,७०,३६५ जनजातिक लोग बसते हैं। इनकी सभ्यता, संस्कृति एवं भाषा पृथक् अस्तित्व रखती है। इनकी कुछ उपजातियाँ ये हैं: (१) अगरिया, (२) बैगा, (३) भुमिया, (४) गोंड़, (५) कँवर, (६) खैरवार, (७) माँझी, (८) मवासी, (६) पनिका, (१०) पाव (पवरा), (११) बड़िया, (१२)

बियार, (१३) सौंर। ये परम संतोषी लोग दैवी शक्ति में विशेष विश्वास रखते हैं। सुख दुःख में ये सदैव अपने देवताओं का स्मरण करते हैं और उनकी आराधना में अपने जीवन की कमाई दिल खोलकर खर्च करते हैं। इनके देवी देवता हैं : (१) बड़कादेव, (२) निंगोदेव, (३) घनमासदाउ, (४) दुलहादेव, (५) मसानदेव, (६) सरसाने, (७) बघौत, (८) भैंसासुरदेव, (९) बाबा, (१०) देवी, (११) मरी, (१२) कालिका, (१३) सारदादेवी, (१४) कालीदेवी, (१५) सीतलादेवी, (१६) घरौरिया बाबा, (१७) दुरसिन, (१८) बँदरिया, (१९) चिरकुटी, (२०) चंडी, (२१) अष्टभुजादेवी, (२२) फूलमती, (२३) लोढ़ामाई, (२४) अलोपन, (२५) मरकाम, (२६) नोटिया, (२७) कोरीम, (२८) खुसेरा, (२९) टेकमा, (३०) पोया, (३१) मरपाची, (३२) सराई, (३३) नैताम, (३४) ओइमा, (३५) मोइमा, (३६) मराबी, (३८) धुरवा, (३९) सरपटिया, (४०) चिचमा आदि[1]।

ये अर्धशिक्षित और अर्धबुभुक्षित लोग अपने सीमित जीवनसाधनों में ही आनंद मनाते हैं। इनके गीत और नृत्य वास्तव में मौलिक और इनके जीवन के इतिहास हैं। उनमें गहराइयाँ हैं। ये शीतकाल की रातें मादर के स्वरों में गा गाकर बिता देते हैं। इनके मुख्य लोकगीत हैं :

(१) करमा, (२) सैला, (३) सुआ, (४) सजनी, (५) ददरिया, (६) भजन, (७) बंबुलिया, (८) बिरहा, (९) रीना, (१०) फाग, (११) मरमी, (१२) दोहा, (१३) पहेली, (१४) बाल-क्रीड़ा-गीत, (१५) कथागीत, (१६) पालने के गीत, (१७) संस्कार गीत, (१८) दुर्भिक्ष के गीत, (१९) स्वदेशप्रेम के गीत।

इनके प्रिय लोकनृत्य हैं :

(१) करमा, (२) सैला, (३) सुआ, (४) अटारी, (५) हिंगाला, (६) नैनगुमानी।

करमा नृत्य के भेद हैं :

(१) झूमर, (२) लँगड़ा, (३) लहकी, (४) ठाढ़ा, (५) रागिनी।

सैला नृत्य के भेद हैं :

(१) लहकी, (२) गोछमी, (३) ढिमरा, (४) शिकार, (५) बैठकी, (६) चमका, (७) चक्रमार, (८) डंडा।

इनकी कहानियाँ भी बड़ी मनोरंजक होती हैं। रात में अपने बच्चों को पास

[1] 'रीवाँ राज्य के गोंड़', माधव विनायक किबे, 'लोकवार्ता' :

बैठाकर जब ये कथाएँ कहने लगते हैं, तो भयावह रातें भी सुखप्रद हो जाती हैं[1]। यहाँ कुछ ऐसे गीत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं जो बघेली बोली में हैं। बघेलखंड के कुछ भागों में ऐसी जनजातियाँ बसती हैं जिनकी बोली बघेली है, यद्यपि इसमें गोंड़ी बोली का पुट देखने को मिल जाता है। कुछ विद्वानों ने इनकी भाषा को 'गोंड़ी बघेली' नाम दिया है। कुछ आदिवासी ऐसे भी हैं, जो छत्तीसगढ़ी प्रभावित गोंड़ी बोलते हैं।

(क) करमा—

ऐ हे हे हाय पतरैला जवान, देखे मा लागे सुहावन रे।
कउन फूल फूले लुहिलुहिया हो,
कउन फूल फूले मनलाल।
कउन फूल फूले रस डोमरी,
जहाँ छइला करे दरबार।
राई फूल फूले लुहिलुहिया ओ,
सेमर फूले मन लाल।
महुवा फूलेया रस डोमरी, हो,
जहाँ छइला करे दरबार।
देखे मा लागे सुहावन रे।

(ख) नैनजुगानी—

नैनजुगानी बालम जिंदगानी है थोड़ा।
घर मा बोले घर कै चिरइया,
बन मा बोले नेवरा।
खिरकिन तोर मित्रा बोले
जुरिगा सनेहा रे।
नैनजुगानी बालम जिंदगानी है थोड़ा॥

आदिवासियों के गीतों से भी बघेली लोकसाहित्य की निधि में वृद्धि हुई है। माँदर, टुमकी, झुमकी, छल्ला आदि के मधुर स्वरों में गाए जानेवाले ये गीत बड़े ही प्रिय लगते हैं।

१ विशेष अध्ययन के लिये देखिए : 'विंध्य प्रदेश के आदिवासियों के लोकगीत', सं० श्रीचंद्र जैन, प्रकाशक–मिश्रबंधु, जबलपुर; 'आदिवासियों की लोककथाएँ', ले० श्रीचंद्र जैन, प्र० आत्माराम ऐंड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली।

गरीबी ने इनके जीवन को बहुत कुछ शुष्क बनाया है, फिर भी ये प्रसन्न रहते हैं। सभी जनजातियों की मान्यताएँ एक सी नहीं हैं। उनके लोकाचारों और पूजापद्धतियों में भेद हैं, आमोद प्रमोद के साधन भी समान नहीं हैं।

(ग) पहेलियाँ—गद्यात्मक पहेलियाँ भारतीय लोकजीवन की अविच्छेद्य अंग हैं। बालकों और वयस्कों का इनसे मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक तथ्यों से परिचय भी होता है। दैनंदिन जीवन की अनेक उपयोगी बातों की शिक्षा इन पहेलियों से अनायास सुलभ होती है। बघेलखंड में मुख्यतः निम्नांकित विषयों की पहेलियाँ पाई जाती हैं :

(१) पशुपक्षी संबंधी, (२) वृक्ष-फल-फूल-मूलादि संबंधी, (३) शरीरावयव संबंधी, (४) सूर्य-चंद्र-नक्षत्रादि संबंधी, (५) खाद्य सामग्री संबंधी, (६) वस्त्राभूषण संबंधी, (७) लेखन सामग्री संबंधी, (८) अस्त्रशस्त्र संबंधी, (९) व्यवसाय संबंधी, (१०) धातु-काष्ठ-चर्मादि-निर्मित वस्तु संबंधी, (१२) गृहोपयोगी पदार्थ संबंधी, (१३) क्षुद्र जीवजंतु संबंधी, (१४) विरोधाभासात्मक, (१५) जलाशय एवं पर्वत संबंधी, (१६) देवी देवता संबंधी, (१७) पूजन-सामग्री संबंधी, (१८) अग्नि पवन संबंधी आदि।

कतिपय पहेलियाँ उदाहरणार्थ निम्नांकित हैं :

१–अत्थर पर पत्थर, पत्थर पर जंजाल।
मोर किहानी कोई न जाने, जाने भइया लाल।—नरिअर
(नारियल)

२–अत्थर पर पत्थर, पत्थर पर कूँड़ी।
पाँचो भइया लौटि जा, हम जइत हन बहुत दूरी।–कउर (कौर)

३–अरिआ माँ लोलरिया नाचै।—जीभ।

४–अगर कगर दौरिया।
बीच माँ बहुरिया॥—दार (दाल)

५–सरकत आवै, सरकत जाय।
साँप न होय बड़ दँइदर आय॥—लजुरी (रस्सी)

६–उज्जर बिलैया, हरियर पूँछ।
तुम जाना महतारी पूत॥—मूरी (मूली)

७–एक बाल घर भर बूसा।—दिया (दीपक)

८–एक सींग के गोली गाय।
जेतनै खवावै, ओतनै खाय।—जेतवा (चक्की)

९–एतने बड़े सिट्टी मा एक ठे ढेला।—सूरिज (सूर्य)

१०–एक लीन्हिन, दुइ फेंकिन।—मुखारी (दतौन)

चतुर्थ अध्याय

कविपरिचय

बघेली के कवि—लोकभाषाओं का महत्व कम नहीं है। संबंधित जनपद की सांस्कृतिक अभिवृद्धि के लिये जनपदीय बोली का प्रयोग अनिवार्य है। कुछ बोलियाँ विद्वानों के संपर्क से इतनी समृद्ध बन जाती हैं कि उनको हम भाषा कहकर संमानित करने लगते हैं। स्वतंत्रता के बाद लोकसाहित्य के प्रति जनता और शासन का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है, यह लोकसंस्कृति के समुत्थान के शुभ लक्षण हैं।

अनेक कवि बघेली में रचनाएँ कर रहे हैं जिनमें इस प्रदेश की भावनाएँ और मान्यताएँ व्यक्त होती हैं। प्रांत में शिक्षा का माध्यम पहले से ही हिंदी (खड़ी बोली) है, अतः बघेली कवियों की संख्या अत्यधिक न होकर सीमित है, फिर भी सरस्वती के इन आराधकों ने अपनी काव्यसर्जना से बघेली साहित्य की जो श्रीवृद्धि की है, वह सब प्रकार से स्तुत्य है। यहाँ स्थानाभाव के कारण थोड़े से कवियों की काव्यसाधना का ही संक्षिप्त परिचथ दिया जा रहा है।

१. मधुर अली

महाराज रघुराजसिंह (शासनकाल वि० सं० १९११-१९३७) के समकालीन महात्मा मधुर अली के कुछ पद्यबद्ध पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें बघेली का लालित्य झलकता है। (भरतपुर निवासी प्रसिद्ध साहित्यकार) लाल श्री भानुसिंह बाघेल के प्रपितामह लाल श्री जयदेवबहादुर सिंह जी के नाम लिखित एक पत्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है[1] :

चौबोला—श्री जयदेव दहन सब लायक, सुखदायक गुन तेरे।
हेरे रामकृष्ण करि जहँते, वहँते दुख नहिं मेरे॥
जब लगि रहैं रामपुर माँही, तब लगि पत्र पठाए।
हाल हवाल तुम्हारी दादू, तब से कछू न पाए॥

[1] 'बांधव', मई, १९४३

चौपाई—तहँ ते चलि बघड़े को आयन। आनँद यहाँ बहुत कम पायन॥
सेवक सुखद तहाँ अलबेला। जैप्रकास तेहि नाम बघेला॥
पुनि बधवार दीख हम जाई। तहँ की अब का करौं बड़ाई॥
आपन सुखी हाल लिखि दीजै। आनँद रहौ रामरस पीजै॥

दोहा—कठिन काम अइसन परो, पान बिना अवतात।
गाम करब अब को कहै, कढ़त न मुँख से बात॥
पौष बदी तिथि नौमि को, औ ससिवार पुनीत।
पावन पत्र लिखाय कै, पढ़ै दिहाँ करि प्रीत॥

२. पंडित हरिदास

बघेली बोली के लोककवियों में पं० हरिदास जी अग्रगण्य हैं। इनका जन्म संवत् १६३४-३५ में गुढ़ (रीवाँ) में हुआ। इनसे पूर्व होनेवाले बघेली जनकवियों का पता नहीं चला है। आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। कृषि ही जीविका का साधन थी। कहा जाता है, अपना नाम भी नहीं लिख सकते थे, लेकिन कविता करने की आपको धुन थी। चलते फिरते कविता कर लेते थे। आपकी कविता का विषय था गुढ़ ग्राम की दैनिक घटनाएँ अथवा ग्रामवासियों का स्वभावचित्रण। हास्य रस अधिक प्रिय था। रीवाँ राज्य की ओर से आपको दो रुपए मासिक वृत्ति मिला करती थी। आपका काम था, कष्टहर महादेव के मंदिर में स्थापित वीणा-पुस्तक-धारिणी भगवती के आलय में दीप जलाना। गुढ़ निवासियों को पं० हरिदास की अनेक कविताएँ आज भी कंठस्थ हैं।

३. नजीरुद्दीन सिद्दीकी-'उपमा'

इनका जन्म सन् १८६६ में रामनगर (रीवाँ) में हुआ। रचनाओं में 'उपमा भजनावली' और 'बहारे कजली' प्रसिद्ध हैं। मुसलमान होने पर भी आपकी भक्तिविषयक भावनाएँ अधिक उदार थीं। उर्दू शैली एवं शब्दों से प्रभावित आपकी भाषा सरल और प्रभावोत्पादक है। बघेली में भी आपने बहुत कुछ लिखा है। ग्राम्य जीवन के प्रति विशेष प्रेम के कारण ग्रामीणों की दशा सुधारने में आपने जो प्रयास किए हैं वे स्मरणीय हैं। १६४२ में आपकी मृत्यु हो गई। 'बेईमान परोसी' शीर्षक आपकी कविता बहुत प्रसिद्ध है :

'बेइमान परोसी'

खाब न देखि सकैं मनई के,
रहैं लार चिचुआवत।

बने नसान खोड़े सा एकठे,
सेतै रहैं लगावत।
आपन खाय कमाई कोऊ,
इनहीं लागै नागा।
उजड़त रहैं परोसी फइले,
भा कोलिया के बाघा।
लड़िका पुतउन का भिरुहामैं,
बने सलाही पक्के।
उल्टा सीध बतामैं लेखा,
डेरा मारैं ठगके।
सुनहर पाए नेति छाड़िकै,
टारैं टटिया फरकी।
बारी तापि लेंय जड़हाए,
कइ दिन अइसन सरको।
मेहरी मनुस लड़े जो घर माँ,
अपना करैं पचौरी।
बगुला भगत रहैं मन मारे,
चोरन केर सँघाती।···

४. हाफिज महमूद खाँ

इनका जन्म रीवाँ के उपरहटी मुहल्ले में संवत् १६६४ में हुआ। रीवाँ के प्रसिद्ध वैद्य पं० जानकीप्रसाद आयुर्वेदाचार्य के संसर्ग में आने से श्री महमूद खाँ की रुचि हिंदी काव्य के अध्ययन की ओर हुई और उन्होंने हिंदी के प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं का बहुत समय तक अध्ययन किया। कई राजकीय विभागों में काम करने के बाद अब आप अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। सामाजिक कार्यों में संलग्न रहते हुए आप कविता भी करते रहते हैं। आपकी कविता पढ़ने की शैली आकर्षक है। बघेली में लिखी गई आपकी रचनाओं में मीठी चुटकियाँ रहती हैं।

५. बैजनाथप्रसाद 'बैजू'

श्री बैजू बघेलखंड के प्रसिद्ध लोककवि हैं। इनका जन्म सतगढ़ ग्राम (हुजूर तहसील, रीवाँ) में आश्विन सुदी ४, संवत् १६६७ को हुआ। बहुत समय तक अध्यापक रहने के पश्चात् अब आप जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्यालय में कार्य कर रहे हैं। बघेलखंडी को अपने काव्य का माध्यम बनाकर आपने उसके सरस रूप को साहित्यसंसार के आगे रखा। बघेलखंड की संस्कृति एवं सभ्यता के सुंदर

चित्र आपकी कविता में मिलते हैं। ग्रामीण जनता की भावनाओं को आपने समीप से देखा है। बघेली लोकजीवन का मार्मिक चित्रण आपके काव्य की विशेषता है। आपकी भाषा शुद्ध बघेली है और शैली में प्रवाह है। 'बैजू की सूक्तियाँ' आपकी रचनाओं का संग्रह है। इसका यहाँ की जनता में विशेष प्रचार है। वर्षा होने पर किसानों की व्याकुलता बढ़ जाती है और साधनहीनता उनमें कसक पैदा करती है। उदाहरण देखिए :

किसानी

जउने दिन तैं बरसा पानी, तब किसान चौआने।
का करी अब का करी अब, अइसन कहि बिललाने॥
मनई भगिगैं सगले आसौं, बरदौ कम हैं दुइठे।
सुना सपूतराम, कुछ करिहा, गुजर नहीं है बइठे॥

६. पं० गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री, साहित्यरत्न

आपका जन्म फाल्गुन कृष्ण ४, बुधवार, सं० १६७२ को करी ग्राम (जिला सतना, मध्यप्रदेश) में हुआ। आपकी शिक्षा मैट्रिक तथा संस्कृत में मध्यमा तक हुई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य भाषाओं का भी आपने ज्ञान प्राप्त किया है। साहित्यरत्न होकर कई वर्षों तक आपने अध्यापक के रूप में कार्य किया। पुरातत्व एवं इतिहास का अध्ययन किया है। रीवाँ के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'भास्कर' के संपादन का भी कार्य आपने किया है। आपकी कविताएँ हिंदी की प्रसिद्ध पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। विंध्यप्रदेश सरकार ने भी कई रचनाओं को पुरस्कारों द्वारा संमानित किया है। भाषा प्रौढ़ एवं प्रांजल है। ठेठ बघेली शब्दों का इनमें सुंदर प्रयोग हुआ है।

रचनाएँ—१. विंध्यप्रदेश का इतिहास, २. सोहावल राज्य का इतिहास, ३. कसौटा के बघेलों का इतिहास, ४. प्रलाप (कवितासंग्रह), ५. रानी कै रिस (खंडकाव्य), ६. रिमहाई बोली (व्याकरण) आदि २१ पुस्तकें आपने लिखी हैं।

'रानी कै रिस' नामक कविता में महारानी कुंदनकुमारी के साहस का वर्णन है। उसका कुछ अंश उदाहरणार्थ उद्धृत है :

रानी कै रिस

रानी बोली सुन रे मुनियाँ,
आज लड़ै हम जाब।
जब तक नायक का ना मारब,

तब तक कुछू न खाब ॥
कहिदे अबहिन सबै जने से—
अंगड़ खंगड़ सब लेयँ ।
लड़ैं मरै का हमरे खातिर,
पीठ न कोऊ देयँ ॥
राजा बइठैं भीतर घुसिके,
मूँड़ ओढ़ उइँ लेयँ ।
लहँगा चुरिया पहिरैं मन भर,
औ सेंदुर दै लेयँ ॥
खालसा, डाँवड़ी सबै चलैं,
हाथी माँ हम चढ़बै ।
रीमाँ जियत न देबै ओही,
काल कि नाँईं लड़बै ।
देखित हैं हम कइसन नायक,
रीमाँ का धौं जीती ।
ओही पाई तो अबै अबै,
मार मूर के रीती ॥
ले लइजा तैं बीरा अबहिन,
ड्यौढ़ी माँ धइ देइ ।
बीर होयँ ते पान उठामें,
इहै बात कहि देइ ॥
नहिं तौ उलटैं जायँ घरै सब,
अब मेंछा मुड़वामैं,
मनुस कहामैं कै नाँव छोड़
मेहरिया कहवामैं ।

७. श्री सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू'

"सैफू" का जन्म रामनगर (रीवाँ) में सन् १९२३ में हुआ। बघेली लोकसाहित्य के संग्रह एवं अध्ययन में श्री सैफू पटवारी विशेष परिश्रम करते हैं। इनको हिंदी, उर्दू और अरबी का अच्छा ज्ञान है। आयुर्वेद का अध्ययन करके आपने कुछ समय तक वैद्य के रूप में जनता की सेवा भी की है। ग्रामों में रहकर आपने ग्रामीण भाइयों की दीनावस्था का जो परिचय प्राप्त किया, वही आपके काव्य का विषय है। प्रारंभ से ही आपकी प्रवृत्ति साहित्यिक रही है। अपने पिता से काव्य प्रेरणा पाकर श्री सैफू सरस्वती की आराधना में संलग्न हैं।

रचनाएँ—१. सैफूविनोद, २. श्री कुंदनकुँवरि, ३. आदर्श त्यागी, ४. भजनावली, ५. चरणचिह्न।

कलियुग की अनीति का चित्रण आपने 'कलऊ केर अनेत' नामक कविता में गहरी अनुभूति के साथ किया है। खड़ी बोली एवं बघेली में आप खूब लिख रहे हैं। 'सैफूविनोद' में 'आजकल के मेंसेरुअन की दशा' वर्णित है। उदाहरण देखिए :

कलऊ केर अनेत

उढ़री[1] पामैं दूध मलाई,
बेही बिआही माठा।
राँड़ भाँड़ रसगुल्ला मारैं,
अहिवाती[2] का लाटा[3]॥
घर के लड़िका भरैं पैंयगिन,
मामा मारैं नेउता।
खायँ अरक्ता[4] चिली सोहारी,
होम न पामैं देउता॥
बहिला[5] गाय उड़ावैं सानी,
लगता[6] पामैं डंडा।
बिना दूध के रकरा[7] लगामैं,
रबड़ी मारैं पंडा॥
मूस छछूँदर अँतर[8] लगामैं,
मनई तेल न पामैं।
तानसेन के राग न फूटै,
बाँदर माँगल गामैं॥
पढ़े लिखे मुँह फोर बागैं,
मूरुख होयँ सभागी।
नंगा रोज मेहरिया राखैं,
गिरहत भा बैरागी॥

८. रामेश्वरप्रसाद मिश्र, एम० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न

आपका जन्म २५ दिसंबर, सन् १९२५ को बम्हौरी ग्राम, जिला सतना में हुआ। इस समय आप इंटर कालेज, दतिया (मध्यप्रदेश) में संस्कृत के प्राध्यापक

[1] रखेज। [2] सौभाग्यवती। [3] महुए का गोला (निकृष्ट मिठाई)। [4] अचार। [5] बाँझ। [6] दूध देनेवाली। [7] बछड़ा। [8] इत्र।

हैं। समय समय पर बघेली में लिखी हुई आपकी कविताएँ पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। स्वतंत्रता दिवस पर लिखी हुई आपकी कविता में राष्ट्रप्रेम का सुंदर चित्रण हुआ है :

स्वतंत्रता दिवस

भइलो, स्वतंत्र हम भयन आज।
अब सुना बिदेसी हमरे पर, कबहूँ काऊ करिहैं न राज।
छोटे से लै नेहरू जी तक,
सहरन गाँवन औ पुरवन तक।
पंडित से पूर बरेदी तक,
भुज से देवन के सुरपुर तक।
सुध बुध कोहू का है न आज। भइलो, स्वतंत्र० ॥
फहरई तिरंगा सब जाघा।
सबसे ऊँचे मा सानदार।
होई भारत अइसन हमार।
मानी जइसे सब विश्व हार।
होई हमार यह देश ताज। भइलो, स्वतंत्र० ॥
सब यही देस के घर घर माँ।
मीलें चलिहैं सब काम बनी।
औ सस्त मिली सब चिनी तेल।
या देश फेर से स्वर्ग बनी।
अब ब्लैक मारकेट को न काज। भइलो, स्वतंत्र० ॥

९. ब्रजकिशोर निगम 'आजाद'

इनका जन्म १५ जून, १९२८ को रीवाँ में हुआ। कई वर्षों तक पुलिस विभाग में काम करने के पश्चात् आजकल मध्यप्रदेश सचिवालय में हैं। कहानियाँ, सवाइयाँ तथा प्रहसन लिखकर श्री आजाद सरस्वती माता की सेवा कर रहे हैं। बघेली में लिखी हुई आपकी रचनाएँ कविसंमेलनों में बड़े चाव से सुनी जाती हैं। 'चुनाव-घोषणा-पत्र' तथा 'अउँठा छाप बनाम चुनाव' शीर्षक आपकी कविताएँ बहुत लोकप्रिय हैं। इनमें झूठे वायदों और चुनाव की कथाएँ वर्णित हैं। अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से कविताएँ सरस बन गई हैं :

चुनाव-घोषणा-पत्र

जउनै कहब्या हम तउन करब,
जब होब मनिस्टर एहिं दारी।

हम सड़क-खंडजन माँ सबतर,
निर्लोट सिंचाउब सैंट अँतर ॥
मजरेट कहइहैं सब चाकर,
मुफ्ती सब का बँगला मोटर।
रेडियो, फेन, कुर्सी, हीटर,
गर्मी, सर्दी, बरसात छाँड़ि।
खुलिहैं दफ्दर सब सरकारी ॥

१०. जगदीशप्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी इस प्रदेश के उदीयमान कवि हैं। इनका जन्म ढावा (मऊगंज तहसील, जि० रीवाँ) में सन् १९२९ में हुआ। प्रचार से दूर रहकर आप लिखते हैं। इस समय आप जूनियर हाई स्कूल, पाँती के प्रधानाध्यापक हैं। बघेली कवियों में आपका नाम संमान के साथ लिया जाता है। आपकी भाषा में लोच है, शब्दों का सुंदर चयन भावानुकूल होता है। आपकी एक प्रसिद्ध कविता 'वोट देइ के पहिले सबखा जानि लेई का चाही' यहाँ उद्धृत की जाती है :

वोट देइ के पहिले

सुना हो मैकू भैया, आसँउ बोट परी तू जाना।
बोट के लाने बनि बनि हितुआ, एँहीं ऐह तू माना ॥
बात बनाइ कहउ जब लागहिं, रहीं न एक खोटाई।
मालुम हमखा तुमखा होई, इनमा नहीं छोटाई ॥
हम तूँ देखन कइउ साल से, यहाँ कबौं ना आए।
कहत फिरत हैं सेवा करबे, बातन मा भरमाए ॥

११. मोहनलाल श्रीवास्तव, बी० ए०

श्री मोहनलाल जी उदीयमान कवि हैं। इनका जन्म शहडौल (मध्यप्रदेश) में १९३४ में हुआ। दरबार कालेज, रीवाँ से बी० ए० पास करके आजकल आप गवर्मेंट हाई स्कूल, उमरिया में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। आपकी रचनाओं में मौलिकता, सरसता, प्रकृतिचित्रण एवं ग्राम्य जीवन विषयक अनुभूतियाँ रहती हैं। साहित्य को आप लोकोन्मुखी मानते हुए उसमें जनभाषा और जनजीवन को अंकित करना चाहते हैं। (१) 'मन्सुख के महिमा', (२) 'सजन आवत होइहैं', (३) 'कोइलिया बोलै', (४) 'घुमड़ आई कारी बदरिया' नामक आपकी कविताएँ मधुरिमा के रंगीन भावों से भरी हुई हैं।

१२. रूपनारायण दीक्षित, बी० ए०

दीक्षित जी इस प्रदेश के उदीयमान कवि हैं। इनका जन्म रीवाँ में १९३६ में हुआ। लोकसाहित्य के विशेष प्रेमी होने के कारण आप बहुत समय से बघेली में कविताएँ लिख रहे हैं। संगीत में आपकी अधिक अभिरुचि है। मधुर स्वर से गाई गई आपकी कविताएँ कविसंमेलनों में सहज ही श्रोताओं को आकृष्ट कर लेती हैं। प्रकृतिचित्रण आपके गीतों में सरसता के साथ हुआ है।

अगहनियाँ गीत

रे......अगहनवा आया।
मन भाया।
अँगना माँ छाया—अगहना रे।
फूली धनियाँ, भूली सरसों।
ललाके गेंदा मोरे भाई।
अगवानी का ठाढ़ सबै लै,
ओस बूँद जयमाला।
भई भोर किरनन को डोला, धीरे धीरे धोया रे।
अगहना आया रे॥

१३. रामबेटा पांडेय 'आदित्य'

श्री रामबेटा पांडेय का जन्म ग्राम किटहरा (सतना) में १९३८ ई० में हुआ। आप प्रतिभासंपन्न कवि हैं। बघेली में आप खूब लिख रहे हैं। आपकी भाषा सरल और शैली में प्रवाह है। 'बुढ़ऊ कै बात' शीर्षक कविता में आपने आधुनिक सभ्यता के प्रति गहरा व्यंग्य किया है :

बुढ़ऊ कै बात

कउन जमाना तबै रहा अब, कउन जमाना होइगा।
नेम धरम सब छाँड़ि दिहिन हैं भे कुलब्वारन टोरवा।
सबके आगे लाग खेलामै, आपन बिटिया लड़िका।
अँगुरी पकड़ बाप के आगू, रोज घुमावैं फरिका।
लाज छाँड़ि मेहरी से ब्वालैं, होइगे म्याहर पक्के।
करी का अब दादू कइलेंय, अधरम खूब हचक्के।

१४. कुंतीदेवी अग्निहोत्री

इनका जन्म माघ बदी ११, वि० सं० १९६७ को हुआ। ये रीवाँ के प्रसिद्ध साहित्यकार पं० गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री की बड़ी बहू हैं। बघेली में लिखी आपकी

कविताएँ विशेष सरस होती हैं। 'धाकड़ राजा' कविता में रीवाँ नरेश श्री वेंकटरमणसिंह का उल्लेख है :

धाकड़ राजा

बेंकट राजा बड़े बहादुर, घोड़वा खूब बेसाहैं।
इगिड़ तिगिड़ जो उनसे बोलै, ओहिन का तव गाहैं॥
एक समै माँ हरिहर खेतै, पहुँचे सइना लीन्हैं।
सोचिन मनमाँ अबना लउटब, बिना कुछू हम कीन्हैं॥
एक दिना मेला माँ देखिन, गाय कसाई मारैं।
बायँ बायँ उइँ चिल्लायँ खूब, आँती उनखर फारैं॥
राजा चटपट दउर परे तब, बोलिन पकड़ा इनका।
जे कुछ बोलैं पकड़ नीक के, हटबी पीटा तिनका॥

परिशिष्ट

(१) प्राचीन साहित्य—'संगीतसार' नामक संगीत के प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता एवं संगीतसम्राट् तानसेन रीवाँनरेश महाराजा रामचंद्र के दरबारी गायक थे। यहीं पर उन्हें एक एक ध्रुपद पर कई लाख टंक पुरस्कार में मिले थे।[1] साहित्य संगीत के महान् आश्रयदाता बांधवेश महाराजा रामचंद्र ने ही प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम के एक दोहे पर मुग्ध होकर उनके पास किसी विप्र के सहायतार्थ एक लाख रुपए भेजे थे[2]।

रीवाँ नरेश जयसिंह, विश्वनाथसिंह तथा रघुराजसिंह स्वयं अच्छे साहित्यकार थे। उन्होंने हिंदी एवं संस्कृत में पुष्कल साहित्य की सर्जना की है। इनके रचित ग्रंथ निम्नस्थ हैं[3] :

जयसिंह की रचनाएँ (हिंदी)	विश्वनाथसिंह की रचनाएँ (संस्कृत)	रघुराजसिंह की रचनाएँ (संस्कृत)
१–त्रयवेदांत प्रकाश	१–आनंदरघुनंदनम्	१–जगदीशशतक
२–निर्णयसिद्धांत	२–राधावल्लभीय संतभाष्य	२–गद्यशतक
३–गंगालहरी	३–संगीतरघुनंदन	३–राजरंजन
४–अनुभवप्रकाश	४–सर्वसिद्धांत	४–रघुपतिशतक
५–कृष्णसिंगार तरंगिनी	५–रामपरत्वटीका	५–विनयमाला

[1] वीरभानूदय काव्य, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
[2] चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवधनरेश। जापर विपदा परत है सो आवत इहिं देस।
[3] 'संस्कृत साहित्य को बांधव नरेशों की देन', प्रो० राजीवलोचन अग्निहोत्री, पृष्ठ १४७

६–चतुश्लोकी भागवत	६–तीर्थराजाष्टक	६–रामाष्टयाम
७–हरिचरितामृत[1]	७–राममंत्रार्थनिर्णय	७–गद्यशतक
आदि	८–वैष्णवसिद्धांत	८–शंभुशतक आदि १३ ग्रंथ
	९–भक्तिप्रभा आदि २३ ग्रंथ	
	(हिंदी)	(हिंदी)
	१–आनंदरघुनंदन नाटक	१–रामस्वयंवर
	२–मृगयाशतक	२–भक्तमाल
	३–साकेतमहिमा	३–आनंदांबुनिधि
	४–विनयमाल	४–जगन्नाथशतक
	५–आनंदरामायण	५–विनयपत्रिका
	६–गीतावली	६–रघुराजविलास
	७–कृष्णावली	७–परमप्रबोध नाटक
	८–परमधर्मनिर्णय	८–पदावली
	९–विचारसार	९–एकमानचरित
	१०–मेघराज	१०–भ्रमरगीत आदि १७ ग्रंथ[3]
	११–ध्यानमंजरी	
	१२–आदिमंगल	
	१३–तत्वप्रकाश आदि ५८ ग्रंथ[2]	

इस भूभाग के ऐतिहासिक महत्व का श्रेय दो राजवंशों को विशेष रूप से प्राप्त है। प्रथम कलचुरी हैं, जिन्होंने इस पूरे प्रदेश को एकता के सूत्र में बाँधकर यहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता में अपनी विशेषता को अंकित किया। द्वितीय बाघेल (बघेल) हैं जिन्होंने कलचुरि राज्य की समाप्ति पर उत्पन्न अराजकता का दमन करके अपने शासन को स्थापित किया और छिन्न भिन्न भागों का पुनः एकीकरण करके अपने शौर्य और शासनपटुता का परिचय दिया। यही बघेलवंशीय राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परंपरा लगभग ६०० वर्षों तक चली और विन्ध्यप्रदेश के निर्माण में (सन् १९४८) योग देती हुई सन् १९५६ में विशाल मध्यप्रदेश में लीन हो गई।

१ 'जयसिंहदेव की रचनाएँ', प्रो० राजीवलोचन अग्निहोत्री, 'विंध्यभूमि' (साहित्य अंक), जून १९५६, पृष्ठ २३, तथा 'विंध्य के नरेश कवि', प्रो० श्रीचंद्र जैन, 'अजंता', जनवरी ५७

२ देखिए 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ २४४

३ वही, पृष्ठ ५७८

(२) प्राचीन राजकीय लेखादि—बघेली का क्षेत्र विस्तृत है, फिर भी इसका लिखित साहित्य बहुत कम उपलब्ध है। यहाँ के शासकों एवं निवासियों ने इस बोली का अपने दैनिक कार्यों में भी उपयोग किया है। राज्य संबंधी कागजपत्र देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने लोकप्रिय शासन में बघेली का समादर किया और समय समय पर प्रदत्त दानपत्र को इसी बोली में लिखा एवं लिखवाया। आज भी इस प्रांत के रहनेवाले बहुसंख्यक ग्रामनिवासी पत्र, दस्तावेज, निमंत्रण आदि में बघेली का उपयोग करते हैं। यहाँ कुछ प्रतिलिपियाँ दी जा रही हैं जो उक्त कथन का समर्थन करती हैं :

राजादेशपत्र—

(क) पंडा लेख—

मुहर

सिद्धि श्री महाराजाधिराज श्री महराज श्री राजबहादुर वीरभद्रसिंघजु देव श्री मथुरा जु अस्नान करै आऐ (।) सो तीर्थ प्रभुताइ पं० श्री मथुरिया कमले चौबे को लिषि दीन्ह (।) जो कोउ हमरे बंस को आवै सो इनको मानै मिति फागुन वदि २ भोमे का संवत् १६२३ के साल मथुरा मुकाम (।)

—पं० रघुनाथ जी शास्त्री से प्राप्त।

(ख) भूमिदान—

सरकार बहादुर दर्बार रीवाँ नजराना कबूल कै के जाधा जेकर बेवरा नीचे लिखा है (,) रहाइस केर मकान या दूकान अथवा तेही संबंधी निस्तार खातिर बकस देब मंजूर किहिन और नजराना कै रकम कुल बिंतिहा के तरफ से सरकारी खजाना माँ दाखिलौ होइगै है। सौ ते मुछे या पाट के जरिए जाधा नीचे लिखे मुताबिक मय घर हाता वगैरः जो कजाच कोनौ हो हकूक मालिकाना आसाइस बगैरा सहित और हर तरह के भार ते मुक्त दर्बार से ऊपर लिखे मतलब खातिर······ बल्द······साकिन······का बकसीदा कीन जाति है (।) का या पाट बर हुकुम बकसीदा कीन जाधा पर मुताबिक कानून और रिवाज रियासत मालिकाना कब्जा और अमल दखल करै का और इंतकाल करे का और पुस्त दर पुस्त भोग करै का हक हासिल (।) सो या पाट सनदन आज के मिती का व दस्तखत व मोहर दर्बार से अता कीन जात है।

दस्तखत मिनजानिब दर्बार

दस्तखत पानेवाले का
पाट जाधा कै
३५

(ग) रसीद—

॥ श्री ॥

रसीद लिख दीन श्री जोसी श्रीकृष्णराम सुदामाराम पांडे का अएकी जौन सवा सत्ताइस कै टीप हमार तुम्हरे नाम रही तौन जमा भै ब्याज के भरि पायेन औ नेम्हा पोषरिहा गहन रहा तौने माँ हमार वास्ता कुछ नहीं, तुम्हार बहाल कै दीन औ बाढ़ी कोदौ जौन हमार पामन रही, तौन दाम दाम कै भरि पाएन (।) ...मिती सामन बदि १४, सं० १६५३ के।

(३) ग्रंथ एवं ग्रंथकार—रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथसिंह (शासन-काल वि० सं० १८६०-१६११) रचित कई ग्रंथ हैं[1] जिनमें से 'परमधर्मनिर्णय' तथा 'विश्वनाथप्रकाश' (अमृतसागर) बघेली में लिखे गए हैं। इनके कुछ उद्धरण निम्नांकित हैं :

'मांस केर यह अर्थ है की जेकर मांस हम खात हैं, ते हमारौ मांस खाई। औ वर्ष वर्ष माँ जे अस्वमेध करत है, सो वर्ष भर औ जो मांस नहीं षात तेका बराबर पुन्य है। (परमधर्मनिर्णयः, पृष्ठ ५५, वस्ता १३ नं० स्टाक ११६) 'अथ प्रथम रोगविचार। रोग केका कही। जेमा अनेक प्रकार की पीड़ा होई तेका रोग कही। सो रोग दुई प्रकार का है—एक तो कायक है, दूसरा मानस है। सरीर माँ है सो कायक। तेका व्याधि कही। मन ते जो उत्पन्न होइ तेका मानसिक व्याधि कही। सो ये दोऊ रोग बात पित्त कफ ते उपजत हैं।'—(विश्वनाथप्रकाश अमृत सागर, पृष्ठ १)

महाराजा जयसिंह, महाराजा विश्वनाथसिंह एवं महाराजा रघुराजसिंह की रचनाओं में बघेली का विशेष पुट है, तथा इन नरेशों के समकालीन हिंदी कवियों की रचनाओं में बघेलखंडी का प्रभाव सुगमता से देखा जा सकता है[2]।

स्वर्गीय पं० भवानीदीन शुक्ल ने वाल्मीकि रामायण के बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर, लंका एवं उत्तर, सात कांडों की टीका (भाषार्थ) बघेली में की है। ये सब टीकाएँ पं० रामदास पयासी (देवराजनगर, सतना) के पास हैं[3]। खोज करने पर बघेली के अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध हो सकते हैं।

[1] 'विंध्य के नरेश कवि', श्रीचंद्र जैन, 'अजंता', जनवरी १६५७।

[2] 'विंध्य-साहित्य-संकलन', प्राचीन विंध्य के आधुनिक कवि, विंध्य शिक्षा' अक्टूबर, ५६ तथा रीवाँनरेश महाराजा रघुराजसिंह के समकालीन कवि, लेखक श्रीचंद्र जैन, 'विंध्यभूमि' (साहित्य अंक), जून ५६।

[3] काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा संचालित अप्रैल, ५५ से सितंबर, ५५ की खोज में इन ग्रंथों को विवृत किया गया, विंध्य शिक्षा, वर्ष ४, अंक ३, पृ० ६६।

(ग) रसीद—

॥ श्री ॥

रसीद लिख दीन श्री जोसी श्रीकृष्णराम सुदामाराम पांडे का अएकी जौन सवा सत्ताइस कै टीप हमार तुम्हरे नाम रही तौन जमा भै ब्याज के भरि पायेन औ नेम्हा पोषरिहा गहन रहा तौने माँ हमार वास्ता कुछ नहीं, तुम्हार बहाल कै दीन औ बाढ़ी कोदौ जौन हमार पामन रही, तौन दाम दाम कै भरि पाएन (।) ···मिती सामन बदि १४, सं० १६५३ के ।

(३) ग्रंथ एवं ग्रंथकार—रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथसिंह (शासनकाल वि० सं० १८६०-१६११) रचित कई ग्रंथ हैं[1] जिनमें से 'परमधर्मनिर्णय' तथा 'विश्वनाथप्रकाश' (अमृतसागर) बघेली में लिखे गए हैं। इनके कुछ उद्धरण निम्नांकित हैं :

'मांस केर यह अर्थ है की जेकर मांस हम खात हैं, ते हमारौ मांस खाई। औ वर्ष वर्ष माँ जे अस्वमेध करत है, सो वर्ष भर औ जो मांस नहीं षात तेका बराबर पुन्य है। (परमधर्मनिर्णयः, पृष्ठ ५५, वस्ता १३ नं० स्टाक ११६) 'अथ प्रथम रोगविचार। रोग केका कही। जेमा अनेक प्रकार की पीड़ा होई तेका रोग कही। सो रोग दुई प्रकार का है—एक तो कायक है, दूसरा मानस है। सरीर माँ है सो कायक। तेका व्याधि कही। मन ते जो उत्पन्न होइ तेका मानसिक व्याधि कही। सो ये दोऊ रोग बात पित्त कफ ते उपजत हैं।'—(विश्वनाथप्रकाश अमृत सागर, पृष्ठ १)

महाराजा जयसिंह, महाराजा विश्वनाथसिंह एवं महाराजा रघुराजसिंह की रचनाओं में बघेली का विशेष पुट है, तथा इन नरेशों के समकालीन हिंदी कवियों की रचनाओं में बघेलखंडी का प्रभाव सुगमता से देखा जा सकता है[2]।

स्वर्गीय पं० भवानीदीन शुक्ल ने वाल्मीकि रामायण के बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर, लंका एवं उत्तर, सात कांडों की टीका (भावार्थ) बघेली में की है। ये सब टीकाएँ पं० रामदास पयासी (देवराजनगर, सतना) के पास हैं[3]। खोज करने पर बघेली के अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध हो सकते हैं।

[1] 'विंध्य के नरेश कवि', श्रीचंद्र जैन, 'अजंता', जनवरी १६५७।

[2] 'विंध्य-साहित्य-संकलन', प्राचीन विंध्य के आधुनिक कवि, विंध्य शिक्षा' अक्टूबर, ५६ तथा रीवाँनरेश महाराजा रघुराजसिंह के समकालीन कवि, लेखक श्रीचंद्र जैन, 'विंध्यभूमि' (साहित्य अंक), जून ५६।

[3] काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा संचालित अप्रैल, ५५ से सितंबर, ५५ की खोज में इन ग्रंथों को विवृत किया गया, विंध्य शिक्षा, वर्ष ४, अंक ३, पृ० ६६।

(क) संत धर्मदास—बघेल शासकों को महात्मा कबीर का आशीर्वाद प्राप्त था। महाराज रामचंद्र कबीर के शिष्य धर्मदास से संबंधित थे। यही धर्मदास छत्तीसगढ़ी कबीरपंथी शाखा के प्रवर्तक थे। राजघराने में कबीरपंथी परंपरा महाराजा विश्वनाथ सिंह के समय में पुनरुज्जीवित हुई। इन्होंने कबीर बीजक की टीका की। दरबार में प्रचलित 'साहब सलाम' की व्यवस्था संभवतः उसी समय से प्रारंभ हुई[1]। शासकों की भावनाओं से जनता का प्रभावित होना स्वाभाविक है। बघेली लोकगीतों में कबीरपंथी सिद्धांतों का विशेष प्रभाव मिलता है। अमरकंटक में 'कबीर चौरा' एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ के आदिवासियों के गीतों में संत कबीर द्वारा प्रचारित धार्मिक मंतव्यों का समावेश है। संत कबीर की रहस्यवादी प्रवृत्ति प्रसिद्ध है। उनकी उलटवासियाँ पंडितों को भी चकित कर देती हैं। गुरुभक्ति की प्रधानता संत-मत की विशेषता है।

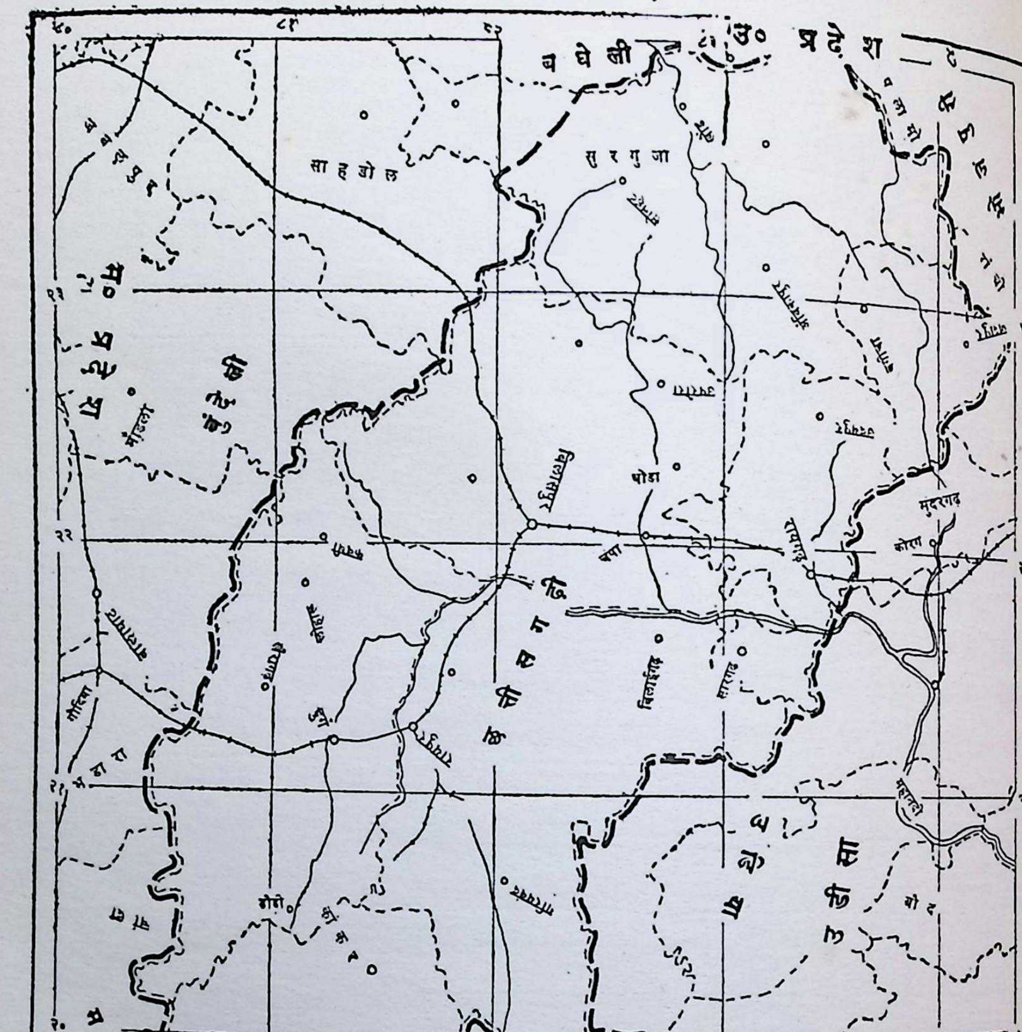
[1] 'विंध्य प्रदेश का इतिहास, भूमिका, पृष्ठ ५, साहित्यरत्न पं० गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री।

प्रो० अख्तर हुसेन निजामी, एम० ए० (अध्यक्ष, इतिहास विभाग, दरबार कालेज, रीवाँ), प्रो० भगवतीप्रसाद शुक्ल, एम० ए० (हिंदी विभाग) तथा लाल श्री कृष्णवंश सिंह बाघेल का मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने यह निबंध लिखने में मुझे सहायता दी है। श्रीमती करुणा-कुमारी शुक्ल एवं बहन सुशीलादेवी सक्सेना ने मुझे गीतसंग्रह में विशेष सहयोग दिया है, अतः मेरे धन्यवाद की अधिकारिणी हैं। —लेखक।

६. छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य

श्री दयाशंकर शुक्ल

६--छत्तीसगढ़ी



६. छत्तीसगढ़ी भाषाक्षेत्र

(६) छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य

१. अवतरणिका

(१) सीमा—छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश में १८° उत्तर अक्षांश और २४° उत्तर अक्षांश तथा ८०° पूर्वी देशांतर और ८४° पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल ५२६५० वर्गमील है और जनसंख्या ६८, ६६, ८४० है। इसके अंतर्गत मध्यप्रदेश के रायगढ़, सुरगुजा, बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग तथा बस्तर जिले आते हैं।

(२) ऐतिहासिक दिग्दर्शन—प्रागैतिहासिक काल में मध्यप्रदेश का बहुत सा भाग दंडकारण्य कहलाता था। पीछे इसका पूर्वी भाग महाकोसल या दक्षिण कोसल कहलाने लगा। इसका यह नाम उत्तर या मुख्य कोसल (अवध) से भिन्नता प्रकट करने के लिये ही दिया गया। महाकोसल नाम कब पड़ा, इसका पता नहीं। दक्षिण या महाकोसल का विशेष भाग इस समय छत्तीसगढ़ कहलाता है। नाम के संबंध में ऐसा कहा जाता है कि किसी समय ३६ गढ़ होने के कारण इस प्रदेश का नाम छत्तीसगढ़[1] पड़ा। हैहयों के समय में ये गढ़ बढ़कर ४२ हो गए थे, तब भी इस प्रदेश का नाम छत्तीसगढ़ ही बना रहा।

मध्यप्रदेश के प्राचीन इतिहास की दृष्टि से छत्तीसगढ़ का विशेष महत्व है। प्रायः प्राचीन ऐतिहासिक घटनाएँ इसी भूभाग पर घटी हैं। एतद्विषयक ऐतिहासिक सामग्री इस भूभाग से प्राप्त हुई है। आज भी महाकोसल के वन, गिरि कंदरा तथा खंडहरों में पाए जानेवाले प्राचीन चिह्नों से इसके सांस्कृतिक गौरव का पता चलता है। आज का उपेक्षित छत्तीसगढ़ किसी समय संस्कृति और सभ्यता का पुनीत केंद्र था। वस्तुतः आदिकालीन मानव सभ्यता इसी वन्य भूभाग में पनपी। अरण्य में निवास करनेवाली ४५ से भी अधिक जातियों को आज भी इस

[1] रायबहादुर डा० हीरालाल कहते हैं—'कदाचित् छत्तीसगढ़ चेदीशगढ़ का अपभ्रंश न हो। रतनपुर के राजा चेदीश कहलाते थे, जैसा कि अभी बिलासपुर जिले के अमोदा ग्राम में एक ताम्रपत्र मिला है, जिसके अंत में 'चेदीसस्य संवत् ८३१' अंकित है। यह रतनपुर के राजा प्रथम पृथ्वीदेव का दानपत्र है। जब सन् १००६ ईसवी में इन राजाओं का चलाया संवत् चेदीस कहलाता था, तो कालांतर में उनके दुर्ग या गढ़ों को चेदीसगढ़ कहना असंभावित नहीं जान पड़ता। धीरे धीरे कालांतर में उसका 'छत्तीसगढ़' रूप ग्रहण करना कोई असाधारण बात नहीं।

—'मध्यप्रदेश का इतिहास'।

प्रदेश ने सुरक्षित रखा है। उनके सामाजिक आचार व्यवहार में भारतीय संस्कृति के वे तत्व परिलक्षित होते हैं जिनका उल्लेख गृह्यसूत्रों में आया है। इनके संगीत विषयक उपकरण, आभूषण एवं नृत्यपरंपरा में आर्य संस्कृति की आत्मा झलकती है। यहाँ पर सुसंस्कृत कला का विकास भले ही बाद में हुआ हो, पर आदिमानव सभ्यता, लोकशिल्प एवं ग्रामीण रुचि के प्राकृतिक प्रतीक बहुत से मिलते हैं। इनमें इतिहास, और मूर्तिकला के चिह्न मिलते हैं।

२. गद्य

(१) लोककथाएँ—

(क) सामान्य विवेचन—विषयवस्तु और गठन की दृष्टि से छत्तीसगढ़ी लोककथाएँ दो प्रमुख वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। सार्वदेशिक और स्थानीय।

अधिकांश छोट छोटी कथाएँ सार्वदेशिक श्रेणी की हैं, क्योंकि उनमें पाए जानेवाले कथातत्व तथा मूल भाव सामान्यतः सारे भारत और संसार की अन्य भाषाओं में भी मिलते हैं। कहानी कहनेवाले व्यक्ति यदा कदा स्थानीय और सामयिक रंग मिलाकर इन्हें रोचक बनाने का यत्न अवश्य करते हैं।

सामयिक तत्वों का जीवन अत्यंत अल्प होता है और जैसे ही तात्कालिक घटनाओं की नवीनता और रोचकता कम होती है, वे लोककथाओं में से निकल जाते हैं। स्थानीय तत्व उनसे कहीं अधिक दीर्घजीवी होते हैं।

इसके विपरीत अनेक कथाएँ प्रायः पूर्णतः स्थानीय हैं। इनमें सार्वदेशिक कथाओं एवं किंवदंतियों का अद्भुत संमिश्रण मिलता है।

कुछ लोककथाओं में दैनिक जीवन की प्रतिनिधि परिस्थितियाँ भी चित्रित दिखाई पड़ती हैं, जिनसे हम छत्तीसगढ़ी जातियों के जीवन की वास्तविकता को समझ पाते हैं। छत्तीसगढ़ी लोककहानी एक ओर सीधे सादे घरेलू जीवन से और दूसरी ओर जादू टोने, देवी देवताओं आदि की काल्पनिक स्थितियों से संबंधित है। प्रकृति के साथ जीवन का तादात्म्य छत्तीसगढ़ी लोककथाओं की विशेषता है।

कथा के मध्य में कहावतों एवं पहेलियों का प्रसंगानुकूल उल्लेख इन लोककथाओं की विशिष्टता है। कुछ कथाएँ अनुभव की यथार्थता के कारण कई कहावतों की जननी हैं। कथाओं के आधार पर ही कुछ कहावतें सूत्र रूप में बनी हैं।

कुछ कथाओं में छत्तीसगढ़ी आदिवासियों की भूत प्रेत, जादू टोना विषयक मान्यताओं का परिचय मिलता है। वहाँ उनके देवी देवताओं के भी दर्शन होते हैं। कथाओं में स्थान स्थान पर लोकविश्वास और लोकसंस्कृति की झलक पाई जाती है।

छत्तीसगढ़ी लोकतत्व की जटिलता यहाँ की लोककथाओं में भी स्पष्टतः परिलक्षित होती है, क्योंकि उनमें आदिम से लेकर आधुनिक युग तक के स्तर का समावेश हुआ है।

संक्षेप छत्तीसगढ़ी कथाओं का विशिष्ट गुण है।

(ख) उदाहरण—कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं :

(१) सुख की खोज

देवारी तिहार के गरुवा[1] मन ला खिचरी खवाथें। तब अइसने एक पइत एक ठन पड़वा[2] खिचरी खाइस। फेर ओकर पेट नइ भरिस। ओ हर मने मन गुनिस, कहूँ में हर मनखे होतेंव, ता अइसन खिचरी मोला रोजेच खाय बर मिलतिस।

अउ ओ हर हिमालय परबत माँ जाके गल गे।

सिरतोनेच पड़वा हर एक बाह्मन घर माँ जनम लिस। बिहाव होइस। लइका बच्चा होइन। फँसगे चिल चिल माँ। गुनिस, इहू जनम माँ मोर उवार नइए कइके।

अउ ओ हर फेर हिमालय माँ जा के गल गे।

अब ओ हर देवता होइस अउ ओकार करा ले सुख दुख घलो परा गिन[4]।

(२) अकास धरती

एक दिन कोल्हिया[5] हर मने मन गुनिस के सब्बो दुनिया के बिहाव होए है, फेर धरती अउ अकास के बिहाव नइ होइसे। में हर इनकर बिहाव कराहूँ। अइसन बिचार के ढोलिया[6] मेर गिस अउ बात मढ़ा के[7] लहुटिस।

बने दिन देखके कोल्हिया हर बिहाव रचाइस। ढोलिया आगे। ओकर ढोल के अवाज ला सुनके दुरिहा[8] ले कोल्हिया मन आइन अउ अब्बड़ मंद पिइन। उनकर मंद के पियते पियत धरती अउ अकास बिहाव बर सकलागे[9]। देवता मन कोल्हिया मेर आइन अउ कहिन :

'अइसन झन करव। काबर कहूँ धरती अउ अकास जुरिया जाहीं त जम्मा[10] मनखे मन मेटिया[11] जाहीं अउ धरती हर सुन्ना हो जाही।' कोल्हिया कहिस—'कहूँ में हर बिहाव ला रोक दों, त मोला का मिलही।

[1] जानवर। [2] भैंसा। [3] सचमुच ही। [4] दूर हो गए। [5] सियार। [6] ढोल बजानेवाला। [7] तय करके। [8] दूर दूर से। [9] पास आ गए। [10] सब। [11] मिट जायँगे।

देवता कहिस—'में हर सब्बो दुनिया ला तोला राज करे बर दे देहूँ।' कोल्हिया हर बिहाव ला रोक दिस आउ धरती अउ अकास नइ जुरे पाइन। ओ दिन ले कोल्हिया मन सब्बो दुनिया माँ बगर गे हैं, अउ उनकर नरियाव[1] दुनिया भर माँ छा गे है।

(३) मूरख कौआ

एक कौआ अउ सल्हइ[2] मन मितान बदिन[3]। कुछ दिन बीतगे त सल्हइ हर दू ठन गार[4] पारिस। कौआ हर कहिस—'में हर एला खाहूँ।' सल्हइ कहिस—'जा पहिली अपन चोंच ला पानी माँ धोके आ, तहाँ ले खा लेबे।' कौआ हर जलकुंड मेर पानी बर गेइस फेर रखवार हर नइ पियन देइस अउ कहिस—'माटी के घइला[5] ले आ, अउ जी भरके पानी माँ अपन चोंच ला धोले।'

कौआ हर कुम्हार मेर गेइस, अउ कहिस—
डुमतेंव पानी, धोतेंव चोंच, खातेंव चिरइ के चोहला[6],
मटकातेंव चोंच।'

कुम्हार कहिस—'जा माटी लान दे, में हर घइला बना दू हूँ।'

कौआ हर भिंभौरा[7] मेर गेइस, अउ कहिस—
भिंभोरा के कहेंव, भिंभोरा भइया, देते माटी,
बनातेंव घइला, डुमतेंव पानी, धोतेंव चोंच,
खातेंव चिरई के चोहला, मटकातेंव चोंच।

भिंभोरा कहिस—'जा हरिना ले कहिबे, वो हर तोर बर माटी काँड़ दिहि।'

कौआ हर हरिना मेर गेइस अउ कहिस—
हरिना के कहेंव हरिना भइया, कोड़तेच माटी
बनातेंव घइला, डुमतेंव पानी, धोतेव चोंच,
खातेंव चिरई के चोहला, मटकातेंव चोंच।

हरिना कहिस—'जा तें हर कुकुर ला ले आ। वो हर मोला धरही[8] अउ तें हर मोर सींग ले माटी कोड़ लेबे।'

कौआ हर कूकुर मेर गेइस अउ कहिस—
कुकुर के केहेंव, कूकुर भइया, धरतेस हिरना,
कोड़तेंव माटी, बनातेंव घइला, डुमतेंव पानी,

१ चिल्लाने की आवाज। २ मैना। ३ मित्र होना। ४ अंडे देना। ५ घड़ा। ६ अंडे बच्चे। ७ टीला। ८ पकड़ना।

धोतेंव चोंच, खातेंव चिरई के चोहला, मटकातेंव चोंच।

कूकुर कहिस—'जा मोर बर दूध ले आन। ओकर पिए ले मोला बल आ जाही, अउ में हर हरिना ला धर लेहूँ।'

कौआ हर गइया मेर गेइस अउ कहिस—
गइया कहेंव, गइया बहिनी,
देते दूध, पीतिस कुत्ता, धरतिस हिरना,
कोड़तेंव माटी, बनातिस घइला, डुमतेंव पानी,
धोतेंव चोंच, खातेंव चिरई के चोहला,
मटकातेंव चोंच।

गइया कहिस—मैं हर घास नइ खाए हवँ। घास ले आन अउ दूध दुह ले।

कौआ हर घास मेर गेइस अउ कहिस—
घास के कहेंव, घासे भइया,
खवातेंव गइया, देतिस दूध, पियातेंव कूकुर,
धरतिस हिरना, कोड़तेंव माटी, बनातिस घइला,
डुमतेंव पानी, धोतेंव चोंच, खातेंव चिरई के चोहला,
मटकातेंव चोंच।

घास कहिस—जा लोहर मेर ले हँसिया ले आ, अउ मोला लू[1]।

कौआ हर लोहार करा गेइस अउ कहिस—
लोहरा के कहेंव, लोहरा भइया,
देते हँसिया, लूतेंव काँदी, खातिस गइया,
देतिस दूध, पीतिस कूकुर, धरतिस हिरना,
कोड़तेंव माटी, खातेंव चिरई के चोहला,
मटकातेंव चोंच।

लोहार पूछिस—'लाल लेबे ते करिया'।

कौआ कहिस—'लाल।'

लोहार पूछिस—'कामा धरबे'।

कौआ कहिस—'घेंच[2] माँ बाँध दे।'

लोहार हर लाल लाल हँसिया कौआ घेंच माँ बाँध देइस, अउ कौआ हर जर बरके राख होगे।

[1] काटना। [2] गर्दन।

(२) कहावतें (मुहावरे)

कहावतें लोकक्तियों का एक अंग हैं। ये निश्चय ही विशेष अभिप्राय से प्रचलित होती हैं। छत्तीसगढ़ी कहावतों में हमें साधारणतः चार दृष्टियाँ मिलती हैं :

(१) एक दृष्टि है पोषण की—यदि किसी व्यक्ति ने कोई बात देखी या सुनी है तो वह उसकी पुष्टि में कोई बात कहकर अपने निरीक्षण पर प्रमाण की छाप लगा देता है। इस प्रकार विशेष से सामान्य की पुष्टि करता है। यथा :

(१) बोकरा के जीव जाय, खवइया बर अलोना।
(२) तेली घर तेल होथे, त पहाड़ ल नइ पोते।
(३) अँधवा के सट सट, लग जाय त लगी जाय।

(२) दूसरी दृष्टि है शिक्षण की। शिक्षण संबंधी कहावतों में कोई न कोई सीख और नीति का उपदेश रहता है :

(४) पर तिरिया के मुख नइ देखौं
फूटे बँधवा माँ पानी नइ पियौं।
(५) बिन आदर के पाहुना, बिन आदर घर जाय।
गोड़ धोय परछी माँ बैठे, सुरा बरोबर खाय।
(६) कौआ के रटे ले ढोर नइ मरै।
टिटही के दरी, सरग नइ रोकावै।
(७) पीठ ल मार ले, पेट ल झन मार।

(३) तीसरी दृष्टि है आलोचना की :

(८) घर माँ नाग देव, भिंभौरा पूजे जाय।
(९) गोंड का जाने कढ़ी के सवाद।
(१०) आए देवारी राउन रोवै।
(११) अड़हा बैद परानघातिका।

(४) चौथी दृष्टि है सूचना की। ऐसी कहावतों में ऋतु, खेल, व्यवसाय, व्यवहार आदि की सूचनाएँ रहती हैं। ये ज्ञानवर्धक कहावतें होती हैं। जो बातें यों ही याद नहीं रह सकतीं, वे कहावतों के रूप में याद रहती हैं :

(१२) गाँव बिगाड़े बाम्हना, खेत बिगाड़े सोमना[1]।
(१३) राँड़ी के बेटी, अउ डहर के खेती।
(१४) धान, पान अउ खीरा, ए तीनों पानी के कीरा।

[1] एक घास।

(१५) नींदे कोड़े के खेती अउ गाँथे के बेटी।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ी कहावतों में ज्ञान, शिक्षा, उपदेश, दृष्टांत, व्यंग तथा समाज और जीवन के विविध क्षेत्रों पर मार्मिक कथन और चुभनेवाली उक्तियाँ मिल जाती हैं।

यहाँ छत्तीसगढ़ी लोकोक्तियों की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना अनुचित न होगा। लोकोक्ति साधारणतः लघु होती है। 'जौन बोही, तौन लूही' चार शब्दों की उक्ति है, जो 'जो करै, सो पाए' के भाव को प्रकट करती है। किंतु, लघु होना ही इसका नियम नहीं है। कभी कभी किसी कहावत में लंबे पूरे वाक्य तक होते हैं, यथा :

(१६) दुलहिन बर पतरी नइए, बजनिया बर थारी।
(१७) कनखजूरा के एक गोड़ टूटे ले कुछू नइ होय।
(१८) माँग के खाए बर अउ हाट में डकारे बर।

किसी किसी में एक नहीं अनेक भाव एक साथ साम्य अथवा वैषम्य के आधार पर एकत्र कर दिए जाते हैं, जिससे कहावत बहुत लंबी हो जाती है। यथा :

(१९) सौ मतवाला हालैं फूलैं। बहुमत परैं उतानी।
एकमत के कोलिह बिचारा। डगरे डगर परानी।

कहावतें गद्य में तो होती ही हैं, पद्य में भी होती हैं। पर, अधिकांशतः कहावतों के निर्माण में मूल तंत्र होता है दुःख सुख का वह तत्व जिसमें पूर्ण लय का संगीत नहीं होता, उसका एक लयांश ही रहता है, यथा :

(२०) घर राखे, छेना थापै।
(२१) गठरी कै रोटी, पनही कै गोटी ॥

३. पद्य

(१) पँवाड़े—छत्तीसगढ़ी पँवाड़े प्रबंधगीतों में रहते हैं। ये गीत किसी न किसी कहानी को लेकर चलते हैं। मूलतः ये कहानियाँ ही हैं, पर गेय हैं अतः गीत का आनंद इनमें आता है, जिससे कहानी और भी रोचक हो जाती है।

वीरों के पँवाड़ों (वीरगाथाओं) में किसी न किसी वीर का चरित्र रहता है। यों भले ही इनकी कथावस्तु पूर्णतः ऐतिहासिक न हो, पर कथावस्तु का केंद्र-बिंदु अवश्य ऐतिहासिक होता है।

(क) राजा वीरसिंह—छत्तीगढ़ी वीरगाथाओं में सर्वप्रचलित 'राजा वीरसिंह की गाथा' है। गाथा लंबी है। जादू मंतर, जोगी जोग आदि के आधार पर गाथा चलती है। रानी का अपहरण भी जोग से होता है। रानी एक जोगी को

भिक्षा देने जाती है और वह रानी को मक्खी बनाकर हर ले जाता है। फिर रानी की खोज, राजा का रानी से भेंट, राजकुमारी से ब्याह, जितनपुर में ब्याह, माँ से भेंट, जोगी का रहस्य, मदनसिंह की मृत्यु, तीनों रानियों की खोज, जोगी को मारना, माता पिता के साथ प्रस्थान आदि का वर्णन है। मध्यकालीन मूढ़ विश्वासों से भरपूर यह वीरगाथा है। उदाहरण के लिये इसकी कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं :

रानी का अपहरण

दुरजन जदुहा मोर भिच्छा माँगे बर आवै।
वीरसिंह राजा गए हैं कचेरी ॥ १ ॥
डाँड़े ला खँचइ के गए हैं।
डाँड़े ला नहाक के दान झनि करिबे ॥ २ ॥
सात झन चेरिया ढेलवा झुलथे।
जय सीताराम कहिके जोगी पहुँचगे ॥ ३ ॥
बीच अँगना में आके किंदर बजावे।
किंदरा ला सुनते है रानी रमुलिया ॥ ४ ॥
जातो ओ जातो चेरिया भिच्छा देइ देबे।
सोने के थारी में चेरिया भिच्छा देवन लागे ॥ ५ ॥
दुरजन जदुहा करा भिच्छा ला मड़ावे।
तोरे हाथ के चेरिया भिच्छा नइ पावौं ॥ ६ ॥
रानी रमुलिया के हाथे ले दान पाहूँ।
रोवत चेरिया महलों में चले जाथे ॥ ७ ॥
गोरिया मुँह के चेरिया कइसे करिया होगे।
मोर हाथ के जोगी भिच्छा नइ झोंकिस ॥ ८ ॥
तोर हाथे के रानी दाने ला घर ही।
घर घर घर रानी रोवथे रमुलिया ॥ ९ ॥
पाँचे महीना के है बाबू मदनसिंह।
सास ला कहे दाई सास हमारे ॥ १० ॥
बाबू मदनसिंह के लेहू सँभारे।
भिच्छा देए बर में चलि जाथों ॥ ११ ॥
सौन के थारी में रानी भिच्छा धरन लागे।
बाबा के आगू मैं जाके मढ़ावे ॥ १२ ॥
डाँड़ नहाक के तैं दान रानी करि दे।
डाँड़ नहक थे अब रानी मोर कैना ॥ १३ ॥
थैली ले हेरथे, लाली पिंउरी चाउँर।

रानी ला चाउँर मारन लागे ॥ १४ ॥
माछी बना के भुजा में बइठारे।
घकर लकर जोगी मिरगा के छाली ॥ १५ ॥
अब तो सकेल के भागन लागे।
घर घर चेरिया छोहरिया मन रोथें ॥ १६ ॥
पलँग में रोवथे बाबू मदनसिंह।
सतखंडा महल में रानी ओ डोकरिया ॥ १७ ॥
कोठा में रोवे मोर भूरी ओ भैंसी।
सिंह दरवाजा में झूली ओ कुतरनी ॥ १८ ॥
वीरसिंह राजा कचेरी ले आवे।
आज के महल में है काबर उदासी ॥ १९ ॥
घर में आके वीरसिंह पूछन लागे।
रानी रमुलिया तोर पत्तो कहाँ है ॥ २० ॥
ऐती ओती बेटा घरेच में होही।
महल ता जाके वीरसिंह देखे ॥ २१ ॥
बाबू मदनसिंह पलँग में रोवंथे।
ना रानी दीखे ना कैना दीखे ॥ २२ ॥
कहाँ गे है माता ओ जल्दी बता दे।
ना अन्न खाहूँ, ना पानी पीहूँ ॥ २३ ॥
कहाँ गे है माता ओ रानी रमुलिया।
बहू के हालत बेटा काला बतइहौं ॥ २४ ॥
कहाँ के जोगड़ाह बेटा माछी बना के लेगे ॥ २५ ॥
अतका ला सुनथे राजा मोर वीरसिंह।
जल्दी में जल्दी धमनिहा बजा के ॥ २६ ॥
जातो धमनिहा कोतवाल ला बलावे।
दौड़त दौड़त धमनिहा जावन लागे ॥ २७ ॥
तौला बलाथे जी फुसऊ गँड़वा।
राजा ह तोला भइया जल्दी बलाथे ॥ २८ ॥
दौड़त दौड़त भइया गाँड़ा चले आथे।
काहे कारन राजा हमला बलाए ॥ २९ ॥
गाँवे हाँका गँड़वा तेंहर दे दे।
रानी के खोज में मैं ही चले जइहौं ॥ ३० ॥
रैयत किसाने ला मैं लइ चलिहौं।
हाथ भर हथेना धरे कोतवाल है ॥ ३१ ॥

धरे है माँदर अली गली में ठोंके।
चलो भैया चलो तुम राजा के बलावे ॥ ३२ ॥

(ख) देवी देवता के गीत—स्थानीय देवी देवताओं की गाथाओं के अंतर्गत देवी प्रमुख हैं। इन प्रबंधगीतों में देवी के पराक्रम का उल्लेख रहता है। गीत आरंभ करने के पहले देवी की वंदना की जाती है, जैसे :

केवल मोर माय, केवल मोर माय।
आहू जगत के सेवा में हो माय।
बेटी होतेंव तो मैं आरती उतारतेंव।
सुन माता मोर बात, सुनथव मोर बात।
दूध चढ़ातेंव कारी कपिला के जातेंव दरबार।
मैं तो जातेंव दरबार, दूध चढ़ातेंव माता सितला में।
मोला देबे बरदान, देबे बरदान।
पान टोरतेंव सुंदर बँगला के, मैं जातेंव दरबार।
मैं तो जातेंव दरबार, पान चढ़ातेंव माता सितला में।
मोला देतिस बरदान, देतिस बरदान।

निम्नलिखित गाथा में ऐतिहासिक तथा लोकतत्वों का विचित्र संमिश्रण है। अकबर गढ़ दिल्ली से प्रकाश देखते हैं और बीरबल से कहते हैं, प्रकाश का पता लगाओ। बीरबल नेगी को भेजते हैं। नेगी वापस आकर सूचना देता है कि वह प्रकाश देवी के स्थान पर हो रहा है। अकबर बीरबल को भेजते हैं कि देवी को दरबार में हाजिर करो। बीरबल देवी के पास पहुँचते हैं और अकबर का संदेश सुनाते हैं। देवी कुपित हो उठती हैं। बीरबल काँपने लगते हैं। उधर राजभवन में अकबर पर देवी का प्रकोप टूट पड़ता है। अकबर पूजा की सामग्री तैयार करके देवी के स्थान पर पहुँचते हैं और देवी को प्रसन्न कर कृपा का पात्र बनते हैं :

किया तोर डाहीवाला डाही लेसत है, किया धोबिया लेसे राख।
किया जंगल माँ आगि लगे हे, गढ़ डिल्ली भए अँजोर ॥
कहे राजा अकबर सुनो बीरबल, डिल्ली भए अँजोर।
कहे नेगी बीरबल, सुनो राजा अकबर, न डाहीवाला न डाही लेसत ए।

× × ×

दसौ अँगुरिया बिनती करौं डंड सरन लागौं पाँव।
जा जा तैं जा बीरबल, डिल्ली सहर मँ राजा ल देबे बताय।
छोड़ दीहि राजा गरब गुमान।
नष्ट कर देहौं राज पाट ल, कर देहौं राज बिराज।

छोड़ दीहि राजा गरब गुमान।
थक थक राजा काँपे, काँपे बत्तीसों दाँत।
राजभवन मँ गिरगे राजा, नेगी को करे बुलाय।
जल्दी पालकी साजौ नेगी,
सरहो सिंगार बरहो लंकार राजा घरे, पालकी मँ रखे मँगाय।
अगिन चीर क कपड़ा मँगाए, नरियर पान सुपानी।
धजा लिने मँगाय।
हिंगलाज के धरे रस्ता राजा हिंगलाज बर जाय।
एक कोस रेंगे दुइ कोस रेंगे, तीसर रेंगे हिंगलाज पहुँचे जाय।
ऊँचे सिंहासन बैठे जगतारन, चौंतीस नजर लगाय।
जब मुख बोले माता भवानी, सुन रुखमिन मोर बात।
कहवाँ के घटा उठत है, कहवाँ के रन धूर।
नोहय माता करिया घटा, नोहय माता रन धूर।
डिल्ली सहर के राजा अकबर, माता मिलन बर आय।
ओतका बचन ल सुनै जगतारन, ठूके बजरु कपाट।
जाई पहुँचगे राजा अकबर, नई पावे घर न द्वार।
किंदर किंदर के खोजय राजा अकबर, नई पावे घर न द्वार।
दसों अँगुरिया बिनती करौं, डंडा सरन लागौं पायँ।
मुख मँ तीरिन चाबेउ माता गल मँ डारेव पटुका।
डंडा सरन लागौं पाँय।
दरसन दे दे माता, दरसन दे दे, टुट गे गरब गुमान।
ओतका बचन सुनै हिंगलाज भवानी, खोलय बजरु कपाट।
लेके राजा भेंट चढ़ावें, डंडा सरन लागौं पाँय।
तोला नई जानत रहेवँ दाई, मोर टुटगे गरब गुमान।
देव तोर सेउक पाटी तीर के माता, चरनों में राखँव लगाय।
जीवो तुम जीवो राजा अकबर, जीवो लाख बरिस॥

(ग) **श्रवणकुमार**—पौराणिक गाथाओं के अंतर्गत 'सरवन' की गाथा प्रमुख है। 'सरवन' के गीत में श्रवणकुमार के प्रसिद्ध चरित्र का उल्लेख है। श्रवण की स्त्री का चरित्र सदोष चित्रित किया गया है। वह दुभाँति करनेवाली स्त्री थी। एक ही पात्र में दो प्रकार के भोजन तैयार करती थी। एक पति के लिये, दूसरा सास ससुर के लिये। तब श्रवणकुमार माता पिता दोनों को काँवर में रखकर तीर्थाटन करने जाता है। दशरथ के बाण से उसकी मृत्यु हो जाती है। इसपर दशरथ को अंधे माता पिता शाप देते हैं।

इस गाथा के कुछ अंश उद्‌धृत हैं—

सरवन के बोल्यों, सरवन मोर बंधू।
लानी बिहावै, कुलाछन जोय।
हरके न मानै, जो बरजै न मानै।
लाती बिहावै, कुलाछन जोय।
नारी के बोलै, कुलाछन जोय।
जाय कुम्हार ले, हाँड़ी गढ़राय।
सरवन चतुर सुजान पिता ल, गर में बाँध चले भाई।
डउकी डउकी पद पनिया चले, चलथे कुम्हरा के दुकाने।
कुम्हरा के कहेंव सुन भाई कुम्हरा, मोर बर हँड़िया गढ़ई देबे।
पइसा के लोभी कुम्हरा भइया, एक हँड़िया के दुइ खंड बनइ देबे।
एक मोहड़ा एक परइ लगा देबे, एक मँ चुरें खट्टा मेहरी,
अउ एक मँ निर्मल खीर।
अँधवा ल देथे खट्टा मेहरी, सरवन ल निरमल खीर।
अइसे से दिन कुछु बीतन लागे, अँधवा गए दुबराय।
मन में सरवन सोचन लागे, मोर पिता कइसे गए दुबराय।
एक दिन सरवन सोचन लागे, थारी लीन पलटाय।
खट्टा मेहरी ल सरवन खाथे, अँधवा निर्मल खीर।
मन में अँधवा करे बिचार, सुन सरवन मोर बात।
आज खाएवँ मैं पेट भर खीर, सरवन जीयो लाख बरीस।
घर के चूँदी मारन लागे, अंगन दिए निकार।
घर ले सरवन चलन लागे, बढ़ई घर पहुँचे जाय।
बढ़इ के केहेंव सुन गा बढ़ई, मोर बर बहिंगा अइके बना दे,
बीच लुरे कमल के फूल, हाथे में टँगिया धरे बढ़ई, बनके घर डहार।
जाय बन में पहुँचन लागे, खोजे चंदन के झाड़।
एक टँगिया जब मारै बढ़ई, दु टँगिया के घाव।
तीन टँगिया मारे बढ़ई चंदन गिरे अरराय।
छोल छाल के बढ़ई, चिलफी दिए निकार।
अइसे बहिंगा बनाइस बढ़ई, लुरे कमल के फूल।
अंधी अंधा ल काँवर में जोरे, अँधवा मरे पियास।
नीचे रखिहौ किन बाघ खाही, ऊपर बाज मेंड़राय।
अइसे से बिचार के सरवन, रूखे में दिए ओरमाय।
घर के तुमड़ी ले पूत सरवन, पानी के खोजन चले जाय।

जाय जंगल बिच में पानी भरन लागे, भुड़ भुड़ भुड़ भुड़ तुमड़ी बाजे,
दसरथ खेले सिकार।
बान तान के दसरथ मारे, सरवन गिरे अरांय।
मन में दसरथ सोचन लागे, मोला लागे अपराध।
मिरगा के मोरहा माँचा ल मार्यौं, मोला हइता आय।
घर के पानी चले राजा दसरथ, अँधवा दीन्ह जवाब।
खटा महेरी मोर बने रहय, मोला चुप तें पानी पियाय।
अतका बचन ल सुनै राजा दसरथ, दसरथ दीन्ह जवाब।
मिरगा के भोरहा में माँचा ल मारेंव, मही तोला पानी पियाएवँ।
अतका बचन ल सुन के अँधवा, सुन दसरथ मारे बान।
मोर बेटा ल तें मारे, अउ तें मोर झोले सराप।
तुलसिदास रघुवर से, हरि से ध्यान लगाय।
मोर पुत्र ल तें मारें, तोर पुत्रक होहै बनवास॥

(२) लोकगीत

(१) नृत्यगीत—छत्तीसगढ़ी समाज का प्रेम सबसे अधिक छंद और ताल पर है। लोकनृत्यों की सृष्टि में नृत्यगीत उद्दीपन का काम देते हैं। छत्तीसगढ़ के प्रायः प्रत्येक लोकनृत्य के अपने अपने गीत हैं। लोकनृत्य प्रायः उत्सवों से संबंधित होते हैं और उनका स्पष्ट इंगित या तो भूमि की उत्पादनशक्ति का आह्वान होता है या उत्पादनशक्ति के उपकारों के लिये कृतज्ञता का ज्ञापन। ये नृत्य व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक होते हैं। छत्तीसगढ़ी लोकनृत्यों में नृत्य की वह पद्धति प्रबल रूप से विद्यमान है, जिसमें अंगसंचालन का भावाभिव्यक्ति से कोई संबंध नहीं होता। नृत्यों में शास्त्रीय आधार का अभाव है। यहाँ के लोकनृत्यों का विकास स्वच्छंद गति से हुआ है। वे देशज हैं। लोकनृत्यों में धार्मिक प्रवृत्ति की तृप्ति की भावना का भी प्राबल्य लक्षित होता है।

छत्तीसगढ़ी नृत्य और गीत की चर्चा करते हुए सहज ही माँदर, डफला, ढोलकी, झाँझ, बाँस, बाँसुरी और घुँघरू आदि के चित्र उभरते हैं। गीत और नृत्य की गोष्ठी और समागम गाँव गाँव बारहो मास चलता है।

(क) नारी गीत—छत्तीसगढ़ी गीत और नृत्य की परंपरा लोककला की बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करती है। सुआ नृत्य छत्तीसगढ़ी स्त्रियों का सर्वाधिक प्रिय नृत्य है। इसमें वे वृत्ताकार गोल चक्कर में झुक झुककर तालियाँ बजाती हुई गीत गाती हैं। वृत्त के मध्य में एक टोकरी में सुए की मृत्तिका की प्रतिमा रख ली जाती है। वे बारी बारी से अपने पैरों पर पूरा बोझ डालकर अगल बगल डोलती हैं। इसके साथ सुआ गीत गाती हैं। इन गीतों में नारीजीवन के सुख दुःख के सजीव

चित्र मिलते हैं। कुमारियाँ 'पीवा' गीतों के साथ यही नृत्य करती हैं, विशेषकर आषाढ़ और श्रावण महीनों में।

प्रस्तुत सुआ गीत में ससुराल में नारीजीवन के दुःखों का चित्रण किया गया है। भाई बहन को दुःखों से त्राण दिलाने के लिये उसे बिदा कराने पहुँचता है। वहाँ पर बहन के दुःख और ग्लानिपूर्ण जीवन से परिचय भी प्राप्त करता है।

(ख) सुआ गीत—

कौन चिरइया मोर चीतर काबर रे सुवना,
कि कौन चिरइया उजर पाँख।
सुआ मोर कौन चिरइया उजर पाँख॥
भरही चिरइया मोर चीतर काबर,
बकुला चिरइया उजर पाँख रे।
सुअना बकुला चिरइया उजर पाँख॥
कौन चिरइया मोर सुख सोवय निंदिया,
कौन चिरइया जागय रात।
मोर सुअना कौन चिरइया जागय रात॥
भरहीं चिरइया सुख सोवै निंदिया,
ओ सुअना बकुला जागय सारी रात।
मोर सुवना०॥
करर करर करै कारी कोइलिया रे सुवना,
कि मिरगा बोले रे आधी रात।
मिरगा के बोली मोला बड़ सुख लागे रे सुवना,
कि सुख सोवैं बसती के लोग।
एक नइ सोवथे मोर गाँव के गँउटिया रे सुवना,
कि जेकर बहिनी गए परदेस।
चिट्ठी लिख लिख बहिनी भेजत है रे सुवना,
कि मोरो बंधु आवे लेनहार।
कैसे के जावँ बहिनी तोरे लेवन बर रे सुवना,
कि नदिया छेंके हे मँझधार।
डोंगहा ला दे दे भइया दस रुपिया रे सुवना,
कि तो जल्दी नहकाही नदी पार।
पो दे दाई पो दे दाई कोंढ़ा भूसा के रोटी रे सुवना,
कि बहिनी लेवन बर जावँ।
उहाँ कहाँ जाबे बेटा बहिनी लेवन बर रे सुवना,

कि उहाँ परे हावे बजर दुकाल।
तोर बर परे दाई बजर दुकाल रे सुवना,
कि मोर बर सम्मे सुकाल।
रोटी पोवाई के भइए तियार रे सुवना,
कि बहिनी घर बर घाय लमाय।
एक कोड़ा मारथे दूसर कोड़ा मारथे रे सुवना,
कि घोड़ा पहुँचे नदिया के पार।
डोंगहा के कइहौं मोर भइया के मितनवा रे सुवना,
कि मोला जल्दी नहका दे नदी पार।
आज के दिन भइया रहि बसि जावे रे सुवना,
कि भौ मैं काल नहकाहौं नदी पार।
का तो खवावे भइया का तो पियावे रे सुवना,
कि का तो ओढ़ावे सारी रात।
दिन के खवइहों भइया खाँड़ मिसरिया रे सुवना,
कि रात के ओढ़ाहौं भवँरजाल।
रात के सोवत मोर भइगे बिहान रे सुवना,
कि डोंगहा ला पूछे एक बात।
काहेन के तोर डोंगा बने है रे सुवना,
के काहेन के केलवार।
सरई सेगौना के डोंगा बने है रे सुवना,
आमा गउद केलवार।
नाहकि नहकाई के तो भइगे तयार रे सुवना,
एक कोड़ा मारथे दूसर कोड़ा मारथे रे सुवना,
कि पहुँचे तरइया के पार।

(ग) पुरुषगीत—छत्तीसगढ़ के पुरुषों के नृत्यों में 'डंडा' और 'पंथी' नृत्य प्रमुख हैं। इन्हें पुरुष गाते और उसी लय में अपना डंडा दूसरों के डंडों पर मारते हैं। उनकी संमिलित ध्वनि बड़ी अच्छी लगती है। एक व्यक्ति 'उइ' 'उइ' कहते हुए संकेतध्वनि देता जाता है, जिसपर नाचनेवाले अपनी गति बदल मंडलाकार खड़े हो जाते हैं।

डंडा गीत की एक वंदना और एक गीत इस प्रकार है :

पहिली सुमिरौं गनपति गौरा, दूसर महदेवा,
फेर लेंव गुरु के नावँ।
कंठ बिराजे सरसती माता भूले अच्छर देय बताय,

जो अच्छर सुधि बिसरैहौं, लेइहौं गुरु के नावँ।
पाटी परा ले मोती भरा ले, झुमका लू रे मज पाट,
रैया रतनपुर अनमन जनमन, गौने जाय मलार।

(घ) मँड़ई गीत—पुरुषों के लोक-नृत्य-गीतों में मँड़ई गीत का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन छत्तीसगढ़ की रावत जाति का बड़ा उत्सव आरंभ होता है जो पूर्णिमा तक चलता रहता है। इन दिनों रावत सज धजकर, ध्वजा फहराते, बाजे गाजे के साथ नाचते हुए अपने यजमानों के यहाँ जाते हैं। नृत्य के साथ साथ वे बीच बीच में दोहे कहते जाते हैं :

बालक पन में एक सुअना पोसवँ, बिपता में उड़ जाई।
उड़ उड़ सुअना मंदिर में बइठे, पिंजरा में आग लगाई ॥ १ ॥
कारी बन के कारी चिरैया, कारी खदर चुन खाय।
पाथर फोर के पानी पिए, मियना चढ़ि घर जाय ॥ २ ॥
धरि के मंदोदरि थारी में कलेवना, चली सिया के पास।
उठि उठि सीया भोजन करि ले, करिहौ लंका के राज ॥ ३ ॥
नहिं धरीं तोर थारी कलेवना, नहिं करों लंका के राज।
बाँस भिरा मैं मरि हरि जइहौं, लगि जाहूँ राम के साथ ॥ ४ ॥
पाँव पदुम सिर मुकुट बिराजे, चार भुजा रघुराई।
दुइ भुजा के कुकुत करले, जबहिन दूध पियाई ॥ ५ ॥

(ङ) करमा—पुरुषों के नृत्यों में छत्तीसगढ़ में 'करमा' का बहुत ऊँचा स्थान है। दंतकथा है कि 'कर्म' नाम का कोई राजा था। उसपर विपत्ति पड़ी। उसने मानता मानी और नृत्यगान शुरू किया, जिससे उसकी विपत्ति दूर हो गई। उसी समय से 'करमा' नृत्य प्रचलित हुआ। 'करमा' जनजीवन के हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है। 'करमा' नृत्यगीतों में मस्ती, सजीवता, सरसता तथा संगीत का अद्भुत मिश्रण मिलता है :

चोला रोवत है राम बिन, देखे परान।
दादर झाँवर झोंड़ी ढूँढ़ौं, डोंगर बीच मँझाय।
सबे पतेरन तोला ढूँढ़ौं, कहाँ लुकै है जाय।
चोला रोवत है राम बिन देखे परान।
माया ला तैं कस कै टोरे, सुरता मोर भुलाई।
मोर मड़इया सूनी करके, कहाँ करे पहुँनाई।
चोला रोवत है राम बिन देखे परान।
ए आँखी में नींद न आए, हिरदे भइगे सूना।
डोंगरी डहरी तोला ढूँढ़ौं, विपदा बढ़गे दूना।

चोला रोवत है राम, बिन देखे परान ॥

× × ×

करिया सियाही कागन लिखना गा ।
तलफ गै चोला कब मिलना रे ।
प्रेमी—न कुछ बोलै न कछू बताए हो हाय ।
कैसे मा दुबधा समाय, तलफ गै ।
न कछू बोले न कछू बताए हो हाय ।
प्रेमिका—कैनपटी दिन जाथै कैनपटी चंदा हो हाय ।
कैनपटी तारा समाय, तलफ गै । न कछू० ।
प्रेमी—घर भीतर आग लगै धुँवा नहीं आवे होय ।
कैसे माँ आँसू बहाय, तलफ गै । न कछू० ।
प्रेमिका— लौकी की बेला करेला की पाती हो हाय ।
ढाका बिना कुम्हलाय, तलफ गै । न कछू० ।
दोनों—दिया की बाती औ चंदा की जोति हो हाय ।
रात भए जल जाय तलफ गै । न कछू० ।

(३) ऋतुगीत

(क) बारहमासी—

चंदन अउर सुगंधन हो, गले पुहुप के हार ।
मोतियन करथे सिंगार हो, गले पुहुप के हार ।
जेठे महिना गे लिख पतिया भेजथे, आवत लगिगे असाढ़ हो ।
सावन बुँदिया क भइया रिमझिम बरसे, भादो में गाहर गंभीर ।
कुँवार महिना गा भइया नम्मी दसेरा,
लँगुरे धजा फ़हराए, गा भइया ।
कातिक महिना वो धरम कर दिन, तुलसा में दियना जलाए गा ।
अगहन महिना गा वो अगम कर दिन हे, पूस में मारे तुसार हो ।
माघ महिना गा घन असुआ जो मोरे, फागुन उड़ए गुलाल ।
चैत महिना घन बन टेसू फुलत है, बैसाख में कुंज निबारे हो ।
गले पुहुप के हार ॥

(ख) होली—प्रस्तुत 'होली' गीत में फागुन को आगामी वर्ष के लिये निमंत्रित किया जा रहा है :

फागुन महराज, फागुन महराज, अबके गए ले, कब आवे ।
अरे कउन महीना हरेली, अउ कउन महीना तीजा तिहार ।

अरे कउन महीना नम्मी दसहरा, अउ कउन महीना दिया जलाय।
अरे सावन महीना में हरेली, भादों तीजा रे तिहार।
कुँवार महीना नम्मी दसहरा, कातिक दिया जलाय।
फागुन महीना फागुन आए महराज, अबके गए ले, कब आबे,
फागुन महराज।

(४) प्रणयगीत

(क) ददरिया—छत्तीसगढ़ी प्रणयगीतों में ददरिया प्रमुख है। ददरिया लोकगीत विरह की घड़ियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये गीत हमें उस घड़ी की कल्पना करने के लिये विवश करते हैं, जब यौवन की मादक घड़ियों के बीच परदेश जानेवाले प्रियतम के चरणों में किसी बाला ने अपने अश्रुओं की प्रेमांजलि बिखेरकर सिसकियों में डूबती हुई आवाज से कहा होगा :

कुँआ के पानी, कुँआसी लागे।
परदेसी चले जाबे, रोआसी लागे।

और गदराए गालों से फिसलकर एक बूँद गिरी होगी। बार बार प्रियतम की याद तड़पाती होगी और रह रहकर झूठे वादे याद आते होंगे। निर्मोही प्रियतम को उलाहना देती हुई वह कहती होगी :

आमा गिराएवँ, खाहुँच कहिके।
कइसे दगा देय राजा, आहुँच कहिके।
फुटहा मँदिर में, कलस तो नइए।
दू दिन के रे अवइया, दरस तो नइए।
तरी फतोही, उपर कुरता।
राजा रहि रहि के आथे, तुम्हर सुरता।

अपने जाते हुए प्रियतम से उसने वादा करा लिया था :

कुरता सलूका, सी देबे दरजी।
दया मया राखबे, राजा, तुम्हर मरजी।

पर प्रियतम वादा भूल गए। उनकी छवि आँखों में झूलती रहती है :

उड़त चिरइया ला, मार पारेंव तीर।
कइसे खिंचब राजा, तुम्हर तसबीर।

प्रियतम के बिना नींद भी उड़ गई है :

आमा के पेड़ माँ बोले ला मइना।
नींद बैरी नइ आवे तुम्हर किरिया।

मारे ला मछरी, घरे ला सेहरा।
आँखी माँ झुलथे राजा के चेहरा।

साँझ के सूनेपन में प्रियतम का अभाव और भी खटकता है :

संझा के बेरा, कउआ तो करे कावँ।
तैं पिरित ला बढ़ाके, चली दिहे गावँ।

ददरिया सरलहृदय ग्रामीणों के प्रणय का जीता जागता चित्र उपस्थित करता है। इस गीत की भावप्रवणता के संबंध में कहा गया है :

टठिया माँ बासी, गदोरिया माँ नून।
मैं गावत हौं ददरिया, तैं खड़े खड़े सुन॥

(ख) बाँस—'बाँस' छत्तीसगढ़ी का प्रेमविषयक अन्य लोकगीत है। 'बाँस' से बनाए हुए वाद्य के साथ लययुक्त स्वरों में यह गाया जाता है। प्रस्तुत 'बाँस' लोकगीत में पति पत्नी का हास्यमुखरित वार्तालाप है :

पत्नी—दिने गँवाए राजा कमरा अउ खुमरी, राति गँवाए पापी नींद।
कारी धन ला वेच डारवँ राजा, अब सूत न गोड़ लमाय॥
पति—कारी धन ला बेचवँ रानी, बेचवँ तहूँ ला घलाय।
बेची बूचा के भयो तयार, ठोकों ओ ठौर पचास।
पत्नी—कौन तोर करही राजा रामे रसोइया, कौन रचे जेवनास।
कौन तोर करही राजा पलँग बिछौना, कौन जोहे तोर बाट॥
पति—मैया रचे मोर रामे रसोइया, बहिनी रचे जेवनास।
सुलखी चेरिया ह मोर पलँग बिछाही, मुरली जोहे मोर बाट॥
पत्नी—मैया तुँहर राजा मर हर जाही, बहिनी पठोहूँ ससुरार।
सुलखी चेरिया ल मैं हाटे माँ बेचौं, मुरली बोहावों मँझधार॥
पति—मैया राखों मैं गोरी अम्मर खवाइके, बहिनी राखों छै मास।
सुलखी चेरिया ला मैं बाँध छाँद राखों, मुरली राखों जिव के साथ॥

(५) त्योहार गीत

छत्तीसगढ़ के त्योहार गीतों में देवी के गीतों का प्राधान्य है। चैत्र तथा आश्विन में 'जँवारा' तथा 'माता सेवा' के गीत गाए जाते हैं तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक 'गौरा' गीत। श्रावण मास में 'हरियाली' त्योहार छत्तीसगढ़ की स्त्रियों में बड़ा प्रचलित है, जिसे 'भोजली' भी कहा जाता है।

(क) नवरात गीत—'जँवारा' और 'माता सेवा' के गीतों में देवी की प्रार्थना, स्तुति, उसके स्थान, शोभा तथा पराक्रम का वर्णन रहता है। प्रस्तुत गीतों में देवी की प्रार्थना तथा स्तुति की गई है :

सँवागा ले आरती हो माय, सँवागा ले आरती हो माय।
हिंगलाज के तीस पतंग, जहाँ भवानी तोर उत्पन्न।
आसन मार सिंगासन बइठे, लिंबू लाट सदाफल लटके।
आइसु ई कुंजनिवारी, तोला लुटे नरियर के बारी।
झोफा झोफा फरे सुपारी, सँवागा ले ले आरती हो माय।
ब्रह्मा पूजे महादेव पूजे, करे महादेव सेवा, माय।
चक्र चलावत अर्जुन आए, सब देवता के सरदारे हो माय।
सँवागा० ॥
अपन माँ जेठे धनही कोदाई, धन माँ जेठे गाए हो माय।
तिरिया माँ जेठ सिता जानकी,
जग माँ जलापा माये हो माय ॥ सँवागा० ॥

(ख) गौरा के गीत—'गौरा' छत्तीसगढ़ की रावत जाति की स्त्रियों का त्योहार है। 'गौरा' और 'गौरी', नामक देवी देवता का आह्वान किया जाता है और विधिपूर्वक उनकी मृत्तिका की मूर्ति स्थापित कर कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक अनवरत अनुष्ठान होते रहते हैं। इस प्रसंग में देवी देवताओं की वंदना के गीत भी गाए जाते हैं :

एक पतरी रैनी झैनी, राय रतन दुर्गा देवी।
तोर सीतल छावँ माय, तोर सीतल छावँ माय।
जागो गवरी जागो गवरा, जागो सहर के लोग।
झाँई झूँई फुले झरे सेजरी बिछाय।
सुनव सुनव मोर ढोलिया बजनिया।
सुनव सुनव मोर गाँव के गौंठिया,
सुनव सुनव सहर के लोग ॥ जागो० ॥

(ग) भोजली गीत—भोजली त्योहार छत्तीसगढ़ की स्त्रियों को विशेष उमंग एवं आमोद प्रमोद का अवसर देता है। भोजली गीतों में देवी की प्रार्थना और स्तुति के गीत तो रहते ही हैं, साथ ही पारिवारिक जीवन का चित्रण भी रहता है, विशेषकर भाई बहिन के पारस्परिक स्नेह का, जैसे :

बहिन—तेलिन कलारिन के होवथे उझवना गा,
मोरो उझवना ल करि देबे भैया गा,
मोरो उझवना ल करिदे।
धीमिक धीमिक मोर बाजन बाजे हो,
कहवाँ के बाजा तो आय रोहिला ओ,
कहवाँ के बाजा तो आय।

भाई—तेलिन कलारिन के होवथे उभवना ओ,
ऊँहे के बाजा आय रोहिला ओ,
ऊँहे के बाजा आय।

बहिन(हंडी से)-कहवाँ के मरका ये दे तोर जनामन रे,
कहवाँ ले लिहे अवतार,
रोहिला वो कहवाँ ले लिहे अवतार।

हंडी—करिया भिंभोरा दीदी मोर जनामन ओ,
कुम्हरा घर अवतार,
रोहिला ओ कुम्हरा घर अवतार।

बहिन (सूप से)—कहवाँ रे सूपा ये दे तोर जनमन रे,
कहवाँ ल लिहे अवतार,
रोहिला कँहवा ल लिहे अवतार।

सूप—पहार परबत दीदी मोर जनामन ओ,
कँड़रा घर अवतार,
दिदी ओ, कँड़रा घर अवतार।

बहिन(ताँत से)-कहवाँ रे ताते ओदे तोर जनामन रे,
कहवाँ ल लिहे अवतार रोहिला ओ,
कहवाँ ल लिहे अवतार।

ताँत—कारी रे गैया ये दे मोर जनामन ओ,
ओ घसियारे घर अवतार,
रोहिला ओ घसियारे घर अवतार।

बहिन—भैया के केहेंव मोर भैया हमार गा,
मोर उभवना ल करि देते भैया गा,
मोर उभवना ल करि देते।

भाई—ना करसा नइए बहिनी,
न टुकना हावे वो,
मँई तो जैहों बजारे,
बहिनी वो मँई तो जैहों बजारे।
उहाँ ले लानिहों नोंनी करसा,
अउ टुकना वो,
तोरो उभवना ल करि दिहों बहिनी वो,
तोरो उभवना ल करि दिहों।

माँ से—छोटे वो बहिनी के करथों उझवना वो,
मोरो बर बाजा बना दे दाई ओ,
मोरो बर बाजा बना दे।

माँ—ना मरका नइए बेटा ना सूपा नइए रे,
चले जाबे बावन बजार,
बेटा रे, चले जाबे बावन बजार।
उहाँ ले लानबे बेटा मरका अउ सूपा रे,
तेंहर बाजा ल बना लेबे,
बेटा रे तेंहर बाजा ल बना लेबे रे।

सखियों से—ठाढ़े ठाढ़े डँड़इया मोर बड़ रँगरेली,
औ चढ़े लिमन के डार,
रोहिला चढ़े लिमन के डार।
लिमुवा के डारा मोर टूटि फूटि जइबे,
तिरनी गए ले छरियाय।
कोन सकेले तोर मुठा भर तिरनी,
वो कोन सकेले लामा केस,
रोहिला वो कोन सकेले लामा केस।
सैंया सकेले तोर मुठा भर तिरनी,
ओ भइया सकेले लामा केस,
रोहिला ओ भइया सकेले लामा केस।
कामा सुखाबो तोर मुठा भर तिरनी ओ,
कहाँ सुखावो लामा केस, रोहिला०।
आँड़ा सुखाबो तोर मुठा भर तिरनी।
ओ भुँइया सुखावो लामा केस, रोहिला ओ०।

बहिन—पाठे में रहितिस मोर नरसिंग बिरसिंग,
वो जउने उतारतिस मोर भार,
रोहिला ओ जउने०।
कका के बेटा मोर चाता के छइहाँ गा,
बड़ा के बेटा उतारे भार, ओ बड़ा।
किया मोला देबे भैया चुरा पैरी गहना गा,
का देबे मोला दुहा गाय भैया गा।
का देबे मोला भैया सुता गहना गा,
का देबे तैं मोला काने के खिनवा भैया गा०।

भाई—तोला देहौं दीदी मैंह सुराँ सुता खिनवाँ वो,
तोला दिहौं दीदी दूहा गाय।

बहिन—टूटि फुटि जइहे भैया सुता सुराँ गहना गा,
किया तोर लिहौं मैं तो नाँव भैया गा०।
उझर मुझर जाहे भैया दसो तोर गाँवै गा,
जुग जुग एहिवात भैया गा०।

(६) संस्कार गीत

(क) सोहर (जन्म) गीत—छत्तीसगढ़ी जन्म के गीतों में सोहर प्रधान है। प्रस्तुत सोहर में देवकी और यशोदा के वार्तालाप का चित्रण करते हुए देवकी की व्यथा और यशोदा की नारीसुलभ करुणा का चित्रण किया गया है :

प्रथम चरन पद गाँवव में, चरन मना लेतेवँ ओ।
बहिनी मोर बिघन हरन गन राज, सोहर ला मय गावत हाँव ओ।
एक धन अँगिया के पातर, दुसर में हावय गरभवती ओ।
ललना, मोर अँगना में चढ़त लजाय, सासें जी पुकारथे ओ॥
सास मोर सुते है ओंसरिया, ननंदि तो अटरिया में ओ।
ललना, मोर सैंया हा सुते हे महल में, मैं कइसे के जगावौं ओ॥
झपकी चलतैवं अटरिया, खिड़की ल झाकतेंव ओ।
ललना, मोर छोटे देवर निरमोही, बंसी ला बजातिस ओ॥
देवकी रानी गरभ में रहे, मन मन में गुनय सोचय हो।
ललना कइसे के राखवँ ये गरभ ला, कंस तो फुस्लहा हावय ओ॥
साते पुत्र रामे दिस, पिछे सकल कंस हर लिए हो।
बहिनी आठे तो गरभ में, अब तोरेच भरोसा कइसे राखवँ ओ॥
घर ले निकलय दसोदारानी, सुभ दिन सावन हो।
बहिनि चल जमुना जल पानी, तो सातो सखी आगू पाछू हो॥
मूँड़ पर घड़ा लिए रेसम सूत डोरी लिए हो, बहिनी मोर दसोदा रानी।
पानी कइसे जावय वो सातो सखी आगू पिछू हो॥
कोनो सखी हाथ धोवय, कोनो सखी मुँह धोवय हो।
बहिनी कोनो सखी पार ल जब देखय, तो देवकी रानी रोवय हो॥
दसोदा रानी मन मँ गुनय, अऊ सोचन लागय हो।
बहिनी में कइसे ओ नहकवँ, जमुना धार, जमुना तो बैरिन भए हो॥
इहाँ कुछु नाँव नहीं, कोनो घाट के घटोइया नइए हो।
बहिनी मैं कइसे के नहकवँ जमुना घाट, देवकी ला पार नहकइतेंव हो॥

भिरके कछोरा मुड़उघरा, पानी में समाइ गए हो।
बहिनी मोर जाइके पूछते सखी, देवकी ला पूछन लागय हो॥
क्या तोरे ससुर दूर बसे, क्या घर दूर हावय वो।
बहिनी तोर क्या सैंयाँ हावय बिदेसी, काहे दुख रोवत हावय हो॥
नहीं मोर ससुर दूर बसे, नहीं घर दूर हावय वो।
बहिनी नहीं मोर सैंयाँ बिदेसी, कोखे के दुख ला मैं गावथँव वो॥
सात पुत्र राम दिए, सकल कंस हर लिए हो।
बहिनी मोर आठवें गरभ में, तोरेच भरोसा कइसे साहवँ वो॥
चुप चुप देवकी में काम करि आइहँव वो।
बहिनी अपने बालक ला मैं तो देवत हवँ वो, तोरो जीव हावय वो॥
नून अउ तेल के उधारी होथे, अउ पइसा के उधारी होथय हो।
बहिनी मोर कोंख के उधारी नई होवे तो, कैसे धीरज बाँधव हो॥

(ख) **विवाह गीत**—छत्तीसगढ़ में जन्म के बाद विवाह ही प्रमुख संस्कार है। इसमें कुछ विधियाँ तो शास्त्र और पुराणों के अनुसार होती है और कुछ लौकिक, परंतु लौकिक आचारों का ही प्राधान्य होता है। इन्हीं में हमें लोकगीतों का परिचय मिलता है।

प्रमुख वैवाहिक आचार तथा गीत नीचे दिए जा रहे हैं :

(१) **चुलामाटी (मँटकोरा)**—गाँव के तालाब में स्त्रियाँ मिट्टी लाने जाती हैं, जिससे घर में चूल्हा बनाती हैं। घर लौटकर धान कूटती हैं—दूल्हे के लिये पाँच पायली और दुल्हन के लिये सात पायली। यह गीत गाते हुए स्त्रियाँ मिट्टी खोदती हैं :

तोला माँटी कोड़े ला नइ आवे मीत धीरे धीरे।
तोर कनिहा ला ढील धीरे धीरे।
जतके पोरसय ओतके ला लील धीरे धीरे।

(२) **तेलचघी**—चौक पूरा जाता है। गाँव भर को नेवता दिया जाता है। तेल में हल्दी घोलकर सुआसिनें दूल्हा और दूल्हन को चुपड़ती हैं। यह कार्य दोनों के घर में अलग अलग होता है। स्त्रियाँ गीत गाती हैं :

एक तेल चढ़िगे हो, हरियर हरियर,
मँड़वा माँ दुलरू तोर बदन कुम्हिलाय।
राम लखन के तेल ओ चढ़त है, करँवा के दियना होवै अँजोर।
हरियर हरियर मोर मँड़वा में दुलरू वो, काँचा तिला के तेल।

दद‌ा तोर लानिथय हरदी सुपारी वो, दाई आनय तिला के तेल।
कोन चढ़ाथय तोर तन भर हरदी वो, कौन देवय अँचरा के छाँव।
फूफू चढ़ावय तोर तन भर हरदी वो, दाई देवय अँचरा के छाँव।
राम लखन के मोर तेल चढ़त हवे, बाजा के सुनव तुम तान।

(३) मायमौरी—सुआसिनें रोटी बनाती हैं जिसे दूल्हा और दूल्हन के हाथ में रखकर सूत से बाँध देती हैं—दूल्हे के लिये पाँच बार और दूल्हन के लिये सात बार—दूल्हे के हाथ में पाँच रोटी और दुलहिन के हाथ में सात रोटी। दूल्हा दुलहिन मड़वे के पास रोटी रख देते हैं। स्त्रियाँ गीत गाती हैं :

देव धामी ल नेवतेंव, उन्हूँ ल न्योत्यों।
जे घर छोड़िन बारे मोरेन, ता घर पगुरेन हो।
माता पिता ला न्योत्येन, उन्हूँ ल न्योत्येन।

इसी प्रकार कुटुंब के सब पुरखों और देवताओं को निमंत्रित किया जाता है।

(४) नहडोरी—बारात विदा होने के पहले नहडोरी होती है। दूल्हा को नहला धुलाकर नए वस्त्र पहनाए जाते हैं। ढेड़हा दूल्हे को मंडप की पाँच बार परिक्रमा करवाता है और उसके शरीर को कपड़े से ढँककर हाथ में कंकन बाँधता है। स्त्रियाँ गीत गाती हैं :

देतो दाई, देतो दाई असी ओ रुपैया, सुंदरि ला लानत्यों बिहाय।
सुंदरि सुंदरि रटन धरै बाबू , सुंदरि के देस बड़ दूर।
तोर बर लानिहों दाई, रँधनी परोसनी, मोर बर घर के सिंगार।

(५) परघनी—स्त्रियाँ बारात की अगवानी करने जाते समय यह गीत गाती हैं :

बड़े बड़े देवता रेंगत हैं बरात, बरमा महेस।
लिलिहंसा में रामचंद्र चघथ हे, अउ लछिमन चघे सिंग बाघ।
लहसत रेंगत डाँड़ी अउ डोलवा, नाचत रेंगथे बरात।
के दल रेंगथे मोर हाथी अउ घोड़वा, के के दल रेंगथे बरात।

(६) भाँवर—भाँवर के समय स्त्रियाँ यह गीत गातीं हैं :

कामा उलोथे कारी बदरिया, कामा ले बरसे बूँद !
सरग उलोथे कारी बदरिया, धरती माँ बरसे बूँद।
काकर भीजै नवरँग चुनरी, काकर भींजे उरमाल।
सीता के भीजै नवरँग चुनरी, राम के भींजे उरमाल।

कैसे के चिन्हँव सीता जानकी, कैसे चिन्हँव भगवान।
कलसा बाँहे चिन्हेंव सीता जानकी, मकुट खोचैं भगवान।
कामा मैं चिन्हँव सीता जानकी, कामा मैं चिन्हँव भगवान।
जामत चिन्हेंव अटहर कटहर, मौरत चिन्हँव आमा डार।
चउक माँ चिन्हेंव सीता जानकी ला, मटुक माँ चिन्हेंव राम।
आगू आगू मोर राम चलत है, पीछू लछिमन भाई।
अउ मझोलग मोर सीता जानकी, चित्रकूट बर चले जाई।

(७) **गारी**—समधी, दामाद और बरातियों के भात खाते समय स्त्रियाँ गारी गाती हैं :

काकर बर सीताराम, काकर बर भेजों सलाम।
छोटकी ल कहि देबे, सिरी सीताराम।
बड़की ल कहि देबे, दोहरी सलाम।
सावन में फूले सावन करेलिया राम, भर भादों में कुसियार।
पाँच गड़ेरी तोर मइके में छोड़े राम, दस चले हे ससुरार।
डिड़ुवा ल गरजे मोर कारी नागिन, आड़ा ल बोले भिंगराज।
मड़वा ल गरजै मोर सातों सुहासिन, देखे सहर के लोग।
माठा ल चमके मोर भूरी भैंस राम; कोठा ल चमके कलोर।
मड़वा ल मोर चमके समधिन छिनरिया, देखें सहर के लोग।

(८) **विदा गीत**—छत्तीसगढ़ के इस छोटे भूभाग ने भारतीय साहित्य-देवता को जहाँ सुख दुख और मिलन विरह की भाव भरी गीतलहरियाँ भेंट की हैं, वहाँ बेटी की बिदाई प्रसंग के आँसू भरे दर्दीले गीत भी दिए हैं। आज भी गाँव में छोटी उम्र में ही विवाह हो जाता है। शासकीय विधान चाहे जो भी हो, माता पिता तो किसी तरह अपनी संतान के हाथ पीले कर शीघ्रातिशीघ्र ऋणमुक्त होना चाहते हैं। ब्याह हो जाता है, लड़की रोक ली जाती है। वर्ष दो वर्ष की अवधि के बाद आखिर एक दिन आता है जब माँ आँसुओं में डूब जाती है। पिता का मन भी मोह की परिधि में असहाय सा होने लगता है। भाई बहिनें बच्चों की तरह सिसकने लगती हैं। सहेलियाँ आ जुटती हैं और गाती हैं :

निक निक लुगरा निमार ले ओ दाई, बेटी के आगे लेवाल।
बेटी पठौवत कइसे ओ दाई मोर, आँसू में होगे बेहाल।
छुटिगे नौनी के महतारी ओ, कामे बुता होगे भारी ओ।
चारे दिना तैं तो खीझै गजब दाई, मया गजब तैं तो करे ओ।
नौनी के घर आज टुटगे ओ दाई मोर, बाहिर में घर ला बनाही ओ।

नौनी के जोरना ला जोरि दे ओ दाई, रोवथय डंड पुकारे ओ।
नौनी ह पहुना कस होगे दाई, बेटी के बिदा तैं ह करि दे ओ।
दाई के रेहेवँ मैं तो राजदुलारी, दाई रोवय तोर महल ओ।
अलिन गलिन दाई रोवयथय, मोर ददा रोवय मूसरधार ओ।
बहिनी बिचारी रोवजय, मोर भइया ह दंड पुकारे ओ।
तुम धन रहव अपना महल में ओ, दुख ला देहू सब भुलाए ओ।
दुनिया के एकइ रीत ये ओ, पुरखा दिए है चलायँ ओ।

सहानुभूति से मन भर आता है। लड़की किसी तरह मौन हो कहती है :

रेहेवँ में दाई के कोरा ओ, अँचरा में मुँह ला लुकाए ओ।
घर अपन जावब बहिन ओ, झनि करो सोच विचारे ओ॥
ददा मोर कहिथे कुँआ में धँसि जइतेंव,
बबा कथे लेतेंव बैराग ओ बेटी।
किया बर ददा कुँआ में धसि जइबे, किया बर बबा लेबे बैराग।
बालक सुअना पढ़ंता मोर ददा, मोला झटकिन लावे लेवाय।
बाट के महुआ डिन डोलवा मोर कका, मोला झटकिन आबे लेवाय।
छोटे हौं सारी बचन पियारी अगा मोर भाँटो,
मोला झटकिन आबे लेवाय।
भरे दरबार ले भाई बोले अओ मोर बहिनी, छिन भर कोरवा न लेंव।
गोदी के हमावत ले मोर गोद में रैहे,
अब आज ले भए बिरान अओ मोर बहिनी।

(७) धार्मिक गीत

(क) भजन[1]—

मैं न जियौं बिन राम ओ माता, मैं न जियो बिन राम।
भल राम लखन सिय बन पठबाए, नाहिं किए भल काम।
भल होत भोर हमुही बन जइहैं, अवध रहुहैं केहि काम।
राम बिना मोर गद्दी है सूना, लखन बिना ठकुराई।
सिया बिना मोर मंदिर सूना कौन करे चतुराई।
कपटी कुटिल कुबुद्धि अभागी, कौन हरे तोर ज्ञान।

[1] संग्राहक श्री नारायणलाल परमार, 'प्रतिभा', नवंबर, १९५६, पृ० ५१-५३.

भला सुर नर मुनि सब दोस देवत हैं,
नाहिं किए भल काम, ओ माता । मैं० ॥

(ख) संतसाहित्य—

छत्तीसगढ़ी के संतसाहित्य से कितना ही अंश लुप्त हो चुका है, पर कितनी ही पोथियाँ घरों, मंदिरों और मठों में अब भी पड़ी हुई हैं।

इस साहित्य पर विभिन्न धार्मिक मतों की छाप है। इसका बहुत सा अंश अलिखित और मौखिक अथवा गेय है। संतसाहित्य विशेषतः निर्गुण है। छत्तीसगढ़ी में ब्राह्मणविरोधी धर्मों—कबीर पंथ और सतनाम पंथ—की प्रधानता रही है। कबीर साहब के चौतरे यहाँ अधिक पाए जाते हैं। कवर्धा को कबीर छाप का रूपांतर माना जाता है। छत्तीसगढ़ी से प्रभावित कबीर की वाणी देखिए :

अटकन मटकन दही चटाकन, लउहा लाटा बन के काँटा।
सावन माँ बुंदेला पाकय, चर चर बिटिया खाई।
गंगा ले गोदावरी, आठ नागर राजा,
कोलहान सींग पागा।

(१) धनी धर्मदास—ये बाँधोगढ़ नगर के कसौंधन बनिए थे। इनके जन्म का समय वि० सं० १४१८–४३ के बीच माना जाता है। इनकी बानी कबीर साहब की बानी में ही मिल गई है। धर्मदास जी की गद्दी छत्तीसगढ़ के कवर्धा स्थान में थी। बारह पीढ़ियों के बाद विरोध उत्पन्न हो जाने से छत्तीसगढ़ में इसकी दो शाखाएँ हो गईं। अब प्रधान गद्दी रायपुर के निकट दामाखेड़ा में है। धर्मदास जी की कविता में छत्तीसगढ़ी का अत्यधिक प्रभाव है :

जमुनियाँ की डारि मोरि तोड़ देव हो।
एक जमुनियाँ के चौदह डारि, सार सब्द लेके मोड़ देव हो।
काया कंचन अजब पियाला, नाम बूटी रस घोर देव हो।
सुरत सुहागिन गजब पियासी, अमरित रस में बोर देव हो।
सतगुरु हमरे ज्ञान जौहरी, रतन पदारथ जोरि देव हो।
धरमदास की अरज गुसाईं, जीवन की बंदी छोर देव हो।

(२) संत घासीदास—सतनामी पंथ के प्रचारक भुड़कुड़ा (गाजीपुर) के भीखा साहेब और बाराबंकी जिले के जगजीवन साहब थे। जगजीवन साहेब का परलोकवास सन् १७६१ में हुआ। इस पंथ का प्रचार छत्तीसगढ़ में श्री संत घासीदास ने किया, जो सन् १८५० तक जीवित रहे। यद्यपि इन्हें हुए अभी सौ ही साल बीते हैं, फिर भी न तो उनकी बानी और न उनके संबंध में कोई निश्चित तथ्य ही मिलता है :

चल हंसा अमरलोक जाबो, इहाँ हमर संगी कोनो नइए।
एक संगी हावय घर के तिरई, देखे माँ हियरा गुड़ाथे।
वोह्न तिरई हवय बनत भर के, मरे माँ दुसर बनाथे।
एक संगी हवय कूखे के बेटवा, देखे माँ घोसा बँधाथे।
वोह्न बेटा हवय बनत भर के, वहु आए ला बहुराथे।
एक संगी हवय धन अउ लछमी, देखे माँ चोला लोभाथे।
धन अउ लछमी बनत भर के, मरे माँ ओह्न तिरियाथे।
एक संगी परभू सतनाम है, पावी मन ला मनाथे।
जियत मरत के सबो दिन संगी, ओह्न सरग अमराथे।

(८) बालक गीत

(क) **खेल गीत**—छत्तीसगढ़ी बालकों के कुछ विशिष्ट खेल हैं जिनमें वे गीतों का प्रयोग करते हैं। यहाँ पर उनके कुछ मनोरंजक खेलों का उल्लेख किया जा रहा है :

(१) **डाँडी पौहा**—इस खेल में पूरा एक दल रहता है। मैदान में एक गोल घेरा खींचा जाता है। दल में से कोई एक लड़का घेरे के बाहर खड़ा रह जाता है और शेष सब घेरे के अंदर आ जाते हैं। घेरे के बाहर खड़ा लड़का गीतात्मक ध्वनि से कहता है :

कुकरुँस कूँ !
घेरे के सब लड़के—काकर कुकरा ?
बाहरवाला लड़का—राजा दसरथ के।
घेरे के सब लड़के—का चारा ?
—कनकी कोड़हा।
—का खेल ?
—डाँड़ी पौहा।
—कोन चोर ?
—रामू...

घेरे के बाहर खड़ा लड़का भीतर खड़े किसी भी लड़के का नाम लेगा। नाम लेते ही सब लड़के घेरे के बाहर हो जायँगे, केवल वही लड़का रह जायगा। अब घेरे के बाहरवाले लड़के भीतर आ आकर भीतर के लड़के को चिढ़ाएँगे। वह उन्हें छूने का प्रयत्न करेगा। छू लेने पर बाहरवाला लड़का घेरे के भीतरवाले लड़के की जाति का हो जायगा। उसे बाहर जाकर लड़कों को छू छूकर

अपने भीतरी दल को बढ़ाने का अधिकार रहता है। इस तरह जब तक घेरे के बाहर के सब लड़के न छू लिए जायँ, खेल चलता रहता है।

(२) भौंरा—

लाँवर में लोर लोर, तिखुर में झोर झोर।
हंसा करेला पान, राय झूम बाँस पान, सुपली में बेल पान।
लट्टर जा रे भौंरा, मुन्नर जा रे भौंरा।

(३) खुडुआ (कबड्डी)—

खुडुवा डुडुवा नाँगर क पत्ती।
भेलवा गोदों तोर चेथी चेथी।
\+ \+ \+
अंदन बंदन चौकी चलिहारी बेल,
मारों मुड़का फूटे बेल।
तीन ढुढ़वा तिल्ली तेल,
घर घर बेचाय तेल।
× ×
अंदन कटोरी के, बंदन पिसान।
का रोटी राँधव, बर कर पान।

खेल खेल में कभी कोई बालक खेलना नहीं चाहता तो अन्य लड़के उसके सिर की कसम रख देते हैं। वह लड़का अगर कसम की महत्ता को स्वीकार न कर खेल के लिये तैयार नहीं होता, तब कोई एक लड़का कहता है :

नदिया के तीर तीर पातर सूत,
नि मानबे तो अपन बहिनी ल पूँछ।

आशय यह रहता है, कि यदि तू शपथ की महत्ता को नहीं समझ सकता, तो जा, अपनी बहिन से पूछ आ।

लड़का अपनी बहिन से पूछने तो नहीं जाता, पर दल में यदि कोई उसका घनिष्ट मित्र हुआ, तो वह उससे यह कहलवा लेता है :

नदिया के तीर तीर पान सुपारी,
तोर किरिया ला भगवान उतारी।

इस तरह कसम का बोझ हट जाता है और उस लड़के को खेलने के लिये विवश नहीं किया जाता।

(ख) लोरी

छत्तीसगढ़ी में प्रचलित लोरियों में कुछ ये हैं—

निंदिया तोला आवे रे, निंदिया तोला आवे रे।
सुति जावे सुति जावे, बाबू सुति जावे रे।
झनि रोवे झनि रोवे, बाबू झनि रोवे रे।
तोर दाई गै है बाबू, मउहा बिने बर रे।
तोर ददा गै है बाबू, खेत कोड़ारे रे।
कोन तोला मारिन बाबू, कोन तोला पीटिन रे।
कोन तोला अँगुरी क बाबू, छइहाँ देखाइन रे॥
चंदा मामा आवनी, दूध भात खावनी।
बाबू के मुँह में गप के, नोनी के मुँह में गप के।

(६) विविध गीत

(क) बीरम गीत—इस गीत पर 'देवार' जाति की स्त्रियों का एकाधिपत्य है। ये स्त्रियाँ गीत गा गाकर भिक्षा माँगती हैं। गीत के साथ से हाथ हिला-हिलाकर चूड़ियाँ भी बजाती हैं :

लीम तरी ठाढ़े हे अरतिया बरतिया, बररी घूमत हे निसान।
हई हई रे मोरे बीरम बररी घूमत है निसान, लीम तरी०।
वो मोरो दाई बर तरी दुलरू दमाद।
हई हई रे मोरे बीरम, बरतरी दुलरू दमाद।
पाँचो भाई के एके ठिन बहिनी,
वो मोरो दाई में तो जावत हो धीयाँ अकेल,
हई हई रे मोरे बीरम, में तो धीयाँ जावत हो अकेल।
दाई ददा के इँदरी जरत है भौजी के जियरा जुड़ाय।
हई हई रे मोरे बीरम, भौजी के जीयरा जुड़ाय।
एसों के मान गौन भिन देहौ, वो मोरो दिहे ल आन पठाय।

(ख) नचौरी गीत—नचौरी गीतों में प्रणय के संयोग वियोग की स्थितियों का एवं कहीं कहीं नारी की विरहव्यथा का मार्मिक चित्रण मिलता है। उदाहरण है :

ओ दिदी मोर पिया गे परदेस,
न कीनो आवे, न कीनो जावे, न भेजे संदेस। पिया गे परदेस।
काकर बर में हर मेहँदी रचावों, काकर बर सँवारौं केस।

काकर बर में हर भात साग राँधौं, पिया बसे दूर देस।
ना भाथे ओकर बिन मोला दिदी,
मोर सास ससुर के देस। मोर पिया० ॥

(ग) लोकोक्तियाँ—छत्तीसगढ़ी हाना, कहिनी, कथा, काहरा, जनौवल जनसाधारण की वे उक्तियाँ हैं जिनके द्वारा बुद्धिविलास का आनंद अथवा बुद्धि-परीक्षा की जाती है। ये बुद्धिमापक भी हैं और मनोरंजक भी। संस्कृत में इन्हें 'ब्रह्मोदय' कहा जाता था। भारत में ब्रह्मोदय का प्रचलन वैदिक काल से चला आता है। अश्वमेध यज्ञ में अश्व की बलि से पूर्व होता और ब्राह्मण ब्रह्मोदय पूछते थे। इन्हें पूछने का अधिकार केवल इन दोनों को ही था। शायद यही कारण है कि छत्तीसगढ़ी होना, कहिनी, कथा, धंधा, जनौवल में कहीं कहीं राजा और ब्राह्मण का संबोधन हमें मिलता है। छत्तीसगढ़ में इनका आनुष्ठानिक प्रयोग विवाह आदि अवसरों पर भी होता है, अतः इन्हें 'धंधा जनौवल' भी कहा जाता है। श्वसुर वधू तथा पंडित पंडिताइन के धंधा जनौवल में बुद्धिविलास की भावना प्रमुख रूप से पाई जाती है। 'पंडाइन कस दोहरा पंडित करो विचार' ऐसी ही भावना से ओतप्रोत है। बुद्धिपरीक्षा के हेतु कही गई पहेलियों में कहीं 'पंडित करो विचार' कहकर बुद्धि-परीक्षा का आग्रह किया जाता है, कहीं 'जान मोर हाना, चल मोर देस' कहकर चतुर व्यक्ति को अपना लेने की स्वीकृति का आग्रह किया जाता है, कहीं 'ये कहिनी त जान लेवे, त जावे अपन डेरा' कहकर बिदाई के सत्कार भाव का प्रदर्शन किया जाता है और कहीं 'ए कथा ला बताके बहुरिया, तें जाहा पानी', 'ए कथा ला जान लेहा ससुर, तब उठाहा कउरे' या 'कहिनी ल जान के, पूत उचाहा कउर' कहकर इष्ट से अनुरोध किया जाता है। कहीं 'न जाने ते चाबे नहना' कहकर कुत्सित गर्हणा का भाव व्यक्त किया जाता है और कहीं उत्तर का संकेत दे देने पर भी यदि बुद्धिपरीक्षा में सफलता नहीं मिलती, तो 'जौन न जाने तेखर नाके ला काट' कहकर अपमान भरे दंड की धमकी दी जाती है।

छत्तीसगढ़ में पहेली कहने की विशेष प्रथा थी। छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के कवि गोपाल मिश्र ने इस संबंध में 'खूब तमाशा' ग्रंथ में इस प्रकार लिखा है :

जोरा जरब जरब की पहरैं, जोबन जोर उनाई।
पावस बीर बहूटी छूटी, किंधौं राइ मनुराई।
कंचन बेली सबै सहेली, कहैं पहेली छाजैं।
सहर राजपुर राजसिंघ के जीति नौबतैं बाजैं।

छत्तीसगढ़ी में हाना, कहिनी, कथा, काहरा, जनौवल, बिसकुटक आदि लोकोक्तियों के विभिन्न रूप हैं। ये गद्य और पद्य दोनों में होती हैं।

छत्तीसगढ़ी पहेलियों के विश्लेषण से विदित होता है कि वे साधारणतः उन्हीं विषयों पर आश्रित हैं जो ग्रामीण वातावरण से घनिष्ट संबंध रखते हैं। सबसे अधिक विषय घरेलू वस्तुओं से संबंधित हैं। भोजन संबंधी वस्तुओं को भी घरेलू समझा जाय तो पहेलियों के दो तिहाई भाग इसी वर्ग में आते हैं। व्यवसाय संबंधी विषय विशेष नहीं हैं। खेती के भी गिने चुने विषय ही हैं। अन्य व्यवसायों में कुम्हार और कोरी की कुछ वस्तुओं को पहेलियों का विषय बनाया गया है। प्राणियों में अधिकाधिक जीवों का उल्लेख हुआ है। पशुओं पर कम पहेलियाँ हैं।

पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन नहीं है। वह ऐसा वर्णन है, जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा वस्तु के उपमान के रूप में आता है।

यह स्वाभाविक ही है कि गाँव की पहेलियों में ऐसे उपमान ग्रामीण वातावरण से ही लिए जायँ—ये उपमान सामान्यतः सात वर्गों में बाँटे जा सकते हैं :

(१) खेती संबंधी, (२) भोजन संबंधी, (३) घरेलू वस्तु संबंधी, (४) प्राणी संबंधी, (५) प्रकृति संबंधी, (६) अंग प्रत्यंग संबंधी, (७) पौराणिक तथा अन्य विशेष व्यक्ति अथवा घटना से संबंधित।

पहेलियों की रचनाशैली के मुख्य रूप निम्नांकित हैं :

(१) सूत्र प्रणाली के रूप में,
(२) नपे तुले शब्दों में,
(३) तुकांत रचना में,
(४) लय भरे गीत में,
(५) छंदों के रूप में।

भोजन में मिठाइयों का उल्लेख कम है। प्रकृति संबंधी शब्दों की सूची भी लंबी है। खेती संबंधी वस्तुओं में नागर, बन, गेहूँ, गन्ना आदि का प्राधान्य है। वाद्यों में शंख, माँदर, बाजा आदि का उल्लेख है। नगरों के नामों में प्रायः छत्तीसगढ़ के रतनपुर, रायपुर, बिलासपुर आदि हैं। सितलैया आदि व्यक्तिवाचक नाम भी आए हैं। अनेक शब्द निरर्थक होते हुए भी अर्थद्योतक शब्दों की भाँति प्रयुक्त हुए हैं। ये किसी वस्तु के भाव मात्र की ओर संकेत करते हैं।

(घ) पहेलियाँ—छत्तीसगढ़ी पहेलियों में उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है वह अस्पष्ट होता है, पर संकेत इतना निश्चित होता है कि यथासंभव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध हो ही नहीं सकता, यथा :

डबरा तेखर ऊपर सुरसुरी, तेखर ऊपर जुगजुगी।
ओखर ऊपर सुनसुनी। पहाड़ ऊपर रूख जामे।
और ऊपर चिरइ बइठे।

इसमें जो चित्र प्रस्तुत होता है, उसमें नाक, आँख, कान, सिर के बाल, तथा जूँ के स्पष्ट भाव संकेतों से नहीं लक्षित होते। अतः पहेलियों में जहाँ वस्तु की व्याख्या और चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं, वहाँ उन चित्रों में अभिप्रेत वस्तु की ओर से दूसरी ओर ध्यान ले जानेवाले शब्दों का भी संयोजन होता है।

लाल घोड़ा ह बैला ल कुदाथे।

इस पहेली में अग्नि को लाल घोड़े के उपमान से अभिहित करने में अग्नि की ओर ध्यान आकर्षित करने की अपेक्षा उसकी ओर से ध्यान विकर्षित करने की प्रवृत्ति मिलती है। अग्नि को लाल घोड़ा और धुएँ को बैल किसी अलंकार प्रणाली द्वारा नहीं माना जा सकता।

दृष्टिकूटों पर रची पहेलियाँ भी प्रचलित हैं, यथा :

नंद बबा के नौ सौ गाय।
रात चरत दिन बेड़े जाय। —(तारे)

कहीं कहीं पहेलियों में अद्भुत आश्चर्य वृत्त रहता है। पहेलीकार स्वयं इस भाव को व्यक्त करता है। हुक्के की कार्यप्रणाली पर आश्चर्य प्रकट करते हुए वह कहता है :

ए गावँ माँ आगी लगे, वो गावँ माँ कुआँ,
पान पतई जरगे, गोहार पारे कुआँ।

हुक्के की आश्चर्यमय कार्यप्रणाली को व्यक्त करनेवाली यह पहेली है। कहीं कहीं इसी आश्चर्य के साथ हास्य थी प्रस्तुत होता है :

कारी गाय करंगा जाय।
ढीले बछरू लंका जाय।

इसमें बंदूक की प्रक्रिया का हास्यमय चित्र दिया गया है। ओले के संबंध में आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा गया है :

तैं राँधे न मैं राँधे, चुर कैसे गिस।
तैं खाए न मैं खाए, सिरा कैसे गिस।

कभी कभी पहेलियों में लोकमानस यौन-वृत्ति-परिचायक शब्दचित्र और क्रियाएँ भी उपस्थित करने में नहीं हिचकता। यह यौन भाव बहुत ही परोक्ष रूप में मिलते हैं। कान की बाली के लिये एक पहेली है :

कुकरी के मूँड़ी अँदौरी बरी।
तोर चटके, मोर हालत हे।

सिल और लोढ़े के संबंध में यह कथन

'तैं सूतत हस, मैं हलावत हों'

बहुत कुछ वैसा ही है।

कुछ विशेष प्रकार की पहेलियाँ भी होती हैं, जो दृश्य या घटनाविशेष की ओर संकेत करती हैं :

बिना पाँव के अहिरा भइया,
बिना सींग के गाय।
अइसन अजरज हम नइ देखेन,
खारन खेत कुदाय।

एक विशेष दृश्य को देखकर रची गई है। अहीर सर्प की ओर और बिना सींग की गाय मेंढक की ओर संकेत करते हैं।

मेंढक, सर्प और गिरगिट पर लिखी गई यह पहेली भी चित्रात्मक है :

बिन पूँछी के बछिया ल देख के, खोदवा राउत कुदाइस।
खेत के मुँड़ पर बइठ के, बिन मूँड़ के राजा देखिस।

धान से मुर्रा फोड़ने का दृश्य इस प्रकार चित्रित किया गया है :

बीच तरिया माँ कोकड़ा फड़फड़ाय।

पौराणिक तथा अन्य विशेष व्यक्ति अथवा घटना से संबंधित पहेलियाँ भी हैं, जैसे :

खैर सुपारी बँगला पान, डौका डौकी के बाइस कान। अथवा
खटिया गरथे तान बितान, दू सुतसइया बाइस कान।
—रावण मंदोदरी।

पहाड़ ऊपर तुतरू बोले दमकत निकरे राजा।

पहेलियों में कुछ विशेष व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग किया गया है, यथा—रामनाथ, जड़खुर, बेलासा, फूलमती आदि। कुम्हड़े के लिये कहा गया है :

जड़खुर ददा, बेलासा दाई।
फूलमती बहिनी भंदर माई।

पलाश वृक्ष के लिये कहा गया है :

पेड़ ओकर थाबक थूबक, पान ओकर थारी।
बेटी ओकर स्यामसुंदर, देह ओकर कारी।

जूते के संबंध में 'लूलू' शब्द का प्रयोग देखिए :

आए लूलू जाए लूलू, पानी ल डरांय लूलू।

भोज्य वस्तुओं के संबंध में कुछ पहेलियाँ देखिए :

छिछिल तलैया माँ डूब मरै सितलैया। —(पूड़ी)
दिखत के लाल लाल, छुअत मँ गुजगुज।
थोरको खाके देखौ, त चाब दिहि बुबु॥ —(मिर्च)

प्रकृति संबंधी शब्दों में सूर्य, चंद्र, तारे, छाया, आकाश, पाताल, चाँदनी, वृक्ष तथा बेलों के लिये उपमान प्रायः ग्रामीण वस्तुओं से चुने गए हैं :

माँझ तरिया माँ नून के गठरी। —(चाँदनी)
पर्रा भर लाई, अकास माँ बगराई। —(तारे)
बीच तरिया माँ कंचन थारी। —(पुरइन पात)

वाद्यों के संबंध में कुछ पहेलियाँ हैं :

काँधे आय काँधे जाय।
नेग नेग माँ मारै जाय।

४. मुद्रित साहित्य

सन् १८९० ई० में श्री हीरालाल काव्योपाध्याय ने सर्वप्रथम 'छत्तीसगढ़ी व्याकरण' की रचना की जिसका अनुवाद सर जार्ज ग्रियर्सन ने जर्नल आव् एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल के जि० ३०, भाग १ में सन् १८९० में प्रकाशित कराया। छत्तीसगढ़ी के सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री लोचनप्रसाद पांडेय द्वारा आवश्यक संशोधन एवं परिवर्धन किए जाने के पश्चात् मध्यप्रदेश शासन ने इसे पुनः प्रकाशित किया।

छत्तीसगढ़ी में जिन विद्वानों ने सर्वप्रथम रचनाएँ कीं उनमें सर्वश्री लोचनप्रसाद पांडेय, शुकलालप्रसाद पांडेय तथा श्री सुंदरलाल शर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

श्री लोचनप्रसाद पांडेय ने बालसाहित्य अधिक लिखा है। इनकी छत्तीसगढ़ी कविताओं का संग्रह 'भुतहा मंडल' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

श्री शुकलालप्रसाद पांडेय की 'गीयाँ' कवितापुस्तक मिश्रबंधु कार्यालय, जबलपुर से प्रकाशित हो चुकी है।

श्री वंशीधर पांडेय ने 'हीरू के कहिनी' (१९२६) नामक कहानी लिखकर छत्तीसगढ़ी में गद्यलेखन का प्रवर्तन किया।

श्री सुंदरलाल शर्मा ने छत्तीसगढ़ी 'दानलीला' (१९२४) लिखकर सारे

छत्तीसगढ़ में हलचल सी मचा दी थी। इस पुस्तक का इतना प्रचार हुआ कि इसके प्रकाशन के कुछ ही समय पश्चात् अनेक लेखकों ने इसपर आधारित अन्य पुस्तकें लिखीं। इनमें 'नागलीला' और 'भूतलीला' प्रमुख हैं।

श्री कपिलनाथ मिश्र की 'खुसरा चिरई के बिहाव' का छत्तीसगढ़ी बाल-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। हास्यरसप्रधान एवं अक्षरबोध की पुस्तक होने के कारण इसका पर्याप्त प्रचार हुआ।

छत्तीसगढ़ी के राष्ट्रीय कवियों में श्री गिरिवरदास वैष्णव तथा श्री कुंज-बिहारी चौवे के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री वैष्णव की राजनीतिक कविताओं का संग्रह 'छत्तीसगढ़ी सुराज' (१९३५) के नाम से प्रकाशित हुआ था। श्री चौवे की कविताओं में छत्तीसगढ़ के शोषित किसान मजदूर वर्ग का चित्रण है।

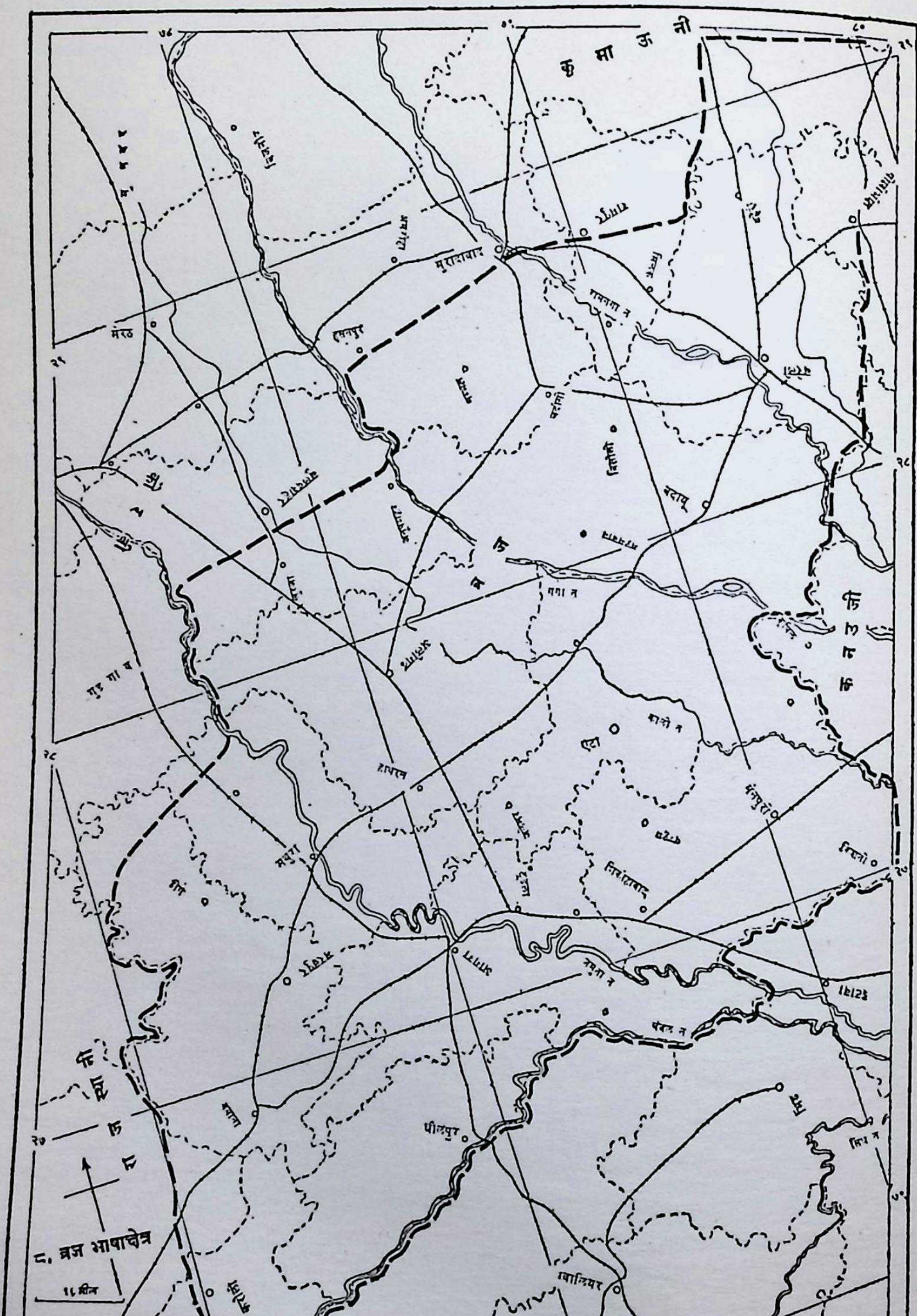
श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने देवी के गीतों का एक संग्रह 'श्री मातेश्वरी सेवा के गुटका' के नाम से प्रकाशित कराया था।

छत्तीसगढ़ी की अन्य पुस्तकों में

श्री गोविंदराव विट्ठल की 'नागलीला' (१९२७),
श्री गयाप्रसाद बँसेढ़िया की 'महादेव के बिहाव' (१९४५),
श्री पुरुषोत्तमलाल की 'कांग्रेस आल्हा' (१९३८),
श्री द्वारकाप्रसाद तिवारी 'विप्र' की 'कछू काही' तथा
'सुराज गीत' (१९५०),
श्री श्यामलाल चतुर्वेदी की 'राम बनवास' (१९५४),
श्री किसनलाल ढोटे की 'लड़ाई के गीत' (१९४०)
तथा 'गीता उपदेश' (१९५४)

विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश साहित्यकार छत्तीसगढ़ी में साहित्यसृजन कर रहे हैं, पर छत्तीसगढ़ में किसी समर्थ प्रकाशनकेंद्र के अभाव के कारण अधिकांश साहित्य मुद्रित नहीं हो पाया है। सन् १९५५ में रायपुर में 'छत्तीसगढ़ी शोध संस्थान' नामक संस्था की स्थापना की गई है। इस संस्था ने अप्रैल, १९५५ से 'छत्तीसगढ़ी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ किया है। 'छत्तीसगढ़ी' पत्रिका ने छत्तीसगढ़ी के साहित्यकारों में प्राणप्रतिष्ठा की है और उसके द्वारा छत्तीसगढ़ी के साहित्यसृजन तथा प्रकाशन का कार्य द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है।

८—व्रज



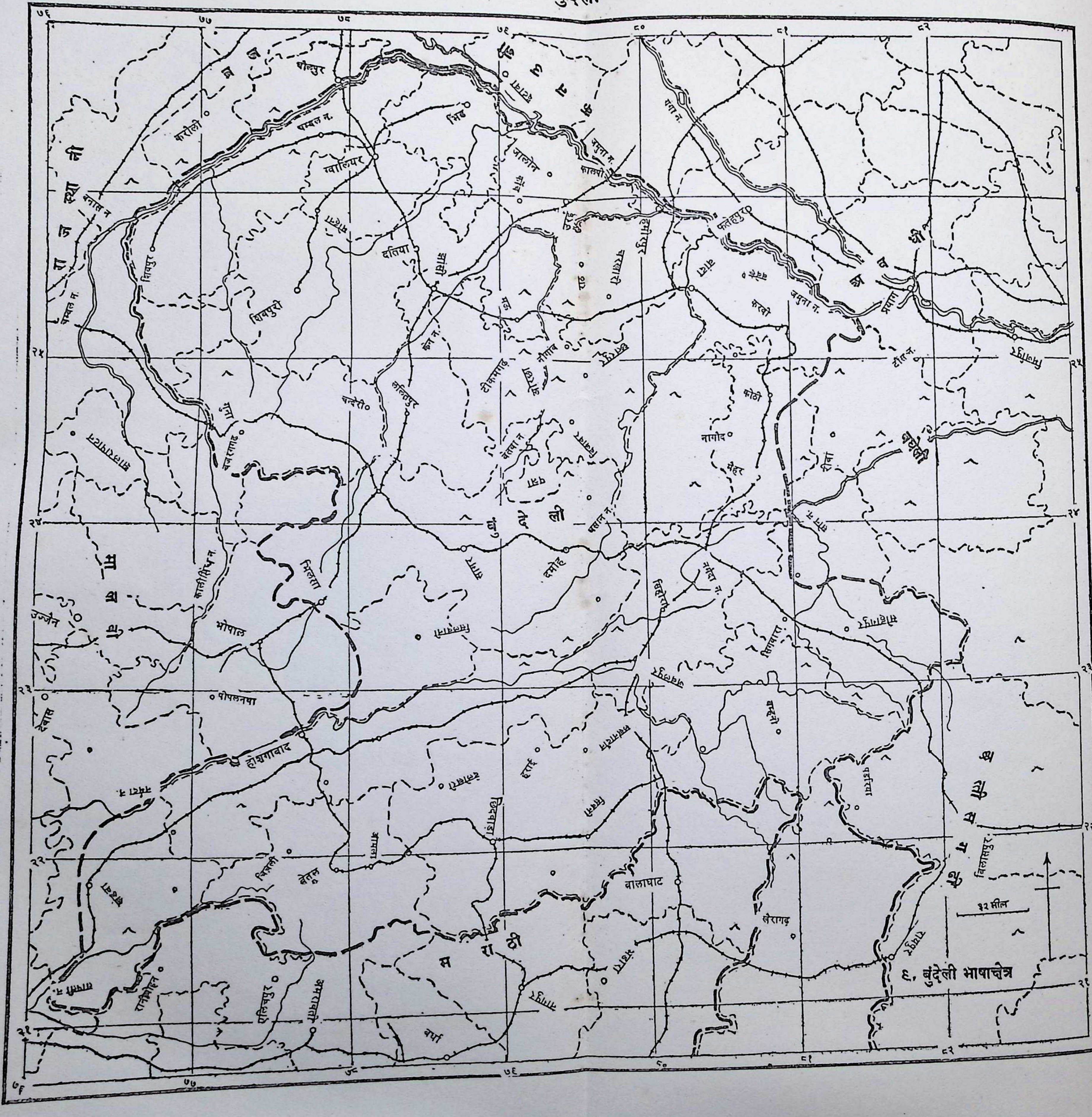
८. व्रज भाषाक्षेत्र

तृतीय खंड

ब्रज समुदाय

७. बुंदेली लोकसाहित्य

श्री कृष्णानंद गुप्त


राजस्थानी
ब्रज
धौलपुर
करौली
चम्बल न.
ग्वालियर
भिंड
जालौन
कालपी
जमुना न.
दतिया
झाँसी
शिवपुरी
गुना
चन्देरी
ललितपुर
टीकमगढ़
नौगाँव
फतेहपुर
प्रयाग
बघेली
कोठी
नागौद
मैहर
बुंदेली
सागर
दमोह
भोपाल
उज्जैन
होशंगाबाद
बेतूल
बालाघाट
खैरागढ़
मराठी
बिलासपुर
वर्धा
३२ मील
६. बुंदेली भाषाक्षेत्र

(७) बुंदेली लोकसाहित्य

अवतरणिका

१. बुंदेली प्रदेश और उसकी जनसंख्या

बुंदेली भाषा शौरसेनी प्राकृत और मध्यदेशीय (कान्यकुब्जीय) अपभ्रंश से विकसित हुई ब्रज और कनउजी भाषाओं की सहोदरा है। इसके उत्तर में ब्रज और कनउजी, पूर्व में अवधी और उसकी सहोदरा बघेली तथा छत्तीसगढ़ी, दक्षिण में मराठी मालवी, पश्चिम में मालवी और राजस्थानी प्रदेश हैं।

बुंदेली की जनसंख्या (१९५१) इस प्रकार है [रायसेन (९३, १५, ३५८) और सतना (५, ५५, ६०३) सीमांती जिले हैं, जिनमें क्रमशः मालवी और बघेली भी बोली जाती है]:

जिला	जनसंख्या
१. ग्वालियर	५, ३०, २९९
२. भिंड	५, २७, ९७८
३. भेलसा (विदिशा)	२, ९३, ०२३
४. गुना	५, ०५, २६८
५. शिवपुरी	४, ७६, ०९२
६. दतिया	१, ६४, ३१४
७. टीकमगढ़	३, ६६, १६५
८. छतरपुर	४, ८१, १४०
९. पन्ना	२, ५८, ७०३
१०. सागर, दमोह	९, ९३, ६५४
११. जबलपुर	१०, ४५, ५९३
१२. मंडला	५, ४७, ६२०
१३. होशंगाबाद, नरसिंहपुर	८, ४७, ८९८
१४. बेतूल	४, ५१, ६५५
१५. छिंदवाड़ा, सिवनी	१०, ८०, ४९१
	८६, ६६, ८९३

२. ऐतिहासिक विकास

ब्रज और कनउजी बुंदेली की सहोदराएँ हैं। तीनों का विकास वैदिक (छांदस), पांचाली शौरसेनी पालि, पांचाली शौरसेनी प्राकृत और पांचाली शौरसेनी (मध्यदेशीय) अपभ्रंश से क्रम से हुआ है। वस्तुतः हिमालय की तराई से लेकर सतपुड़ा के समीप तक कनउजी-ब्रज-बुंदेली के रूप में एक ही भाषा प्रवाहित है। अपभ्रंश काल—छठी से बारहवीं सदी तक—में यहीं की शिष्ट भाषा सारे उत्तर भारत की विशेषतः और सारे भारत की सामान्यतः अंतर्प्रांतीय या राष्ट्रीय भाषा रही, जिस तरह से आज हिंदी है। यदि तुर्कों ने दिल्ली की जगह कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया होता, तो इसमें संदेह नहीं, आज हिंदी नहीं, बल्कि यही कान्यकुब्जीय भाषा सारे भारत की राष्ट्रभाषा होती। दिल्ली के केंद्र बनने पर उसके आसपास की कौरवी भाषा को हिंदी या उर्दू के रूप में स्थान मिला। दो शताब्दियों के दिल्ली के शासन के बाद १४वीं शताब्दी के अनंतर जब दिल्ली छिन्न भिन्न हुई, तो उसके स्थान पर कई राज्य स्थापित हुए जिनमें हिंदी क्षेत्र में जौनपुर, ग्वालियर और मालवा मुख्य थे। तीनों ने स्थानीय साहित्य और कला के विकास में सहयोग दिया। ग्वालियर के तोमर राज्य ने इसके लिये विशेष कार्य किया। संगीत आदि के साथ एक शिष्ट साहित्य का निर्माण वहाँ आरंभ हुआ जिसको ग्वालियरी भाषा के साहित्य के नाम से अभिहित किया गया। सूर आदि के प्रादुर्भाव के पहले ग्वालियरी नाम ही प्रचलित था, जिसे कृष्णभक्ति काव्य की धारा ने ब्रज का नाम दे दिया। ग्वालियरी का मतलब बुंदेलखंडी ही है, इसमें संदेह था। इस नामपरिवर्तन से बुंदेलीभाषियों को क्षोभ होता है। क्षोभ करने की जगह पर उन्हें कनउजी, ब्रज और बुंदेली की एकता को सामने रखना चाहिए। यदि इन भाषाओं में कुछ अंतर है, तो आखिर बुंदेली में भी कहीं अंतर मिलते ही हैं—पाँच कोस पर भाषा में अंतर आता ही है।

३. उपलब्ध साहित्य

समृद्ध बुंदेली लोकसाहित्य अभी बहुत कम ही लिपिबद्ध हो सका है। यह गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्य में लोककथाएँ और लोकोक्तियाँ या मुहावरे तथा पद्य में पँवाड़े और लोकगीत समृद्ध हैं।

प्रथम अध्याय

गद्य

१. लोककथा

बुंदेली साहित्य में लोककथाओं की अतुलनीय संपदा है। मनोरंजन, नीतिकथन और उपदेश इन लोककथाओं का मूल उद्देश्य है। उदाहरणार्थ 'कोरी कौ भाग' नामक लोककथा नीचे दी जा रही है :

(१) कोरी कौ भाग—ऐसें ऐसें कौनऊँ गाँव में एक कोरी रत् तो। बाको एक लरका हतो। बाको बियाव तो भौत दिनाँ भमे तब हो गओ तो, अकेलें अपनी ससरारे बो अबै नों तब हो गओ तो। सो एक दिना बानैं अपनी मताई सें कई के मताई, गाँव के सब जनें तौ अपनी अपनी ससरारे जात, अकेलें मैं कभऊँ नईं गओ। सो तुम गैल के लानैं मोखों कलेवा बना दो। मैं भोरइँ उठ कें जैवँ।

जा सुनकें मताई नें कई—बेटा, तुमाई मंसा है तौ जावँ हम कौन रोकें। अकेलें एक बात को धिमान राखियो कै गैल में बड़न के आगें नियोर कै चलियो और जाँ अथओ हो जाय उतै फिर आगे ना चलियो। उतइँ पर रइयो।

लरका ने मताई की जा बात मान लई और भोरईं कलेवा लैकें अपनी ससरार खों चल दओ।

सो मोड़ा जई बात कत् कत् आगें चलन लगो।

चल्त चल्त गैल में बाखों एक खेत मिलो। बामें ज्वाँर बाजरा ठाँड़ो तो। ज्वाँर के पेड़ ऐन ऊँचे ऊँचे हते। उनैं देख्कें बाखों अपनी मताई की जा बात को खबर हो आई कै बेटा बड़न के साँमूँ नियोर कैं चलियो। सो जा सोचकैं बाने अपनी मुँड़ी नैंचा लई और निउरे निउरे खेत में होकैं जान लगौ। संजोग की बात कै उतइँ मेड़ पै ठाढ़ो तौ खेत धनी। बानें जानीं कै जौ तौ कौनऊँ चोर आय। सो जाकें उतइँ बानैं कोरी के मोड़ा खों पकर लवँ और बाको खूब मार लगाई। मोड़ा चिल्लाय के बोलो—महाराज मोखों न मारो। मैं कौनऊँ चोर उचक्का नोइँ। मैं तौ अपनी ससरारे जा रवँ। चलती बिरियाँ मोरी मताई नै कई ती कै बड़न के साँमूँ नियोर के चलियो। सो महाराज, मैं ज्वार के खेत में होकें नियोर के जा रवँ तो।

खेत के मालिक ने जान लइ कै जौ तौ कौनऊँ बज्र मूरख आय। सो बानैं

बाखों छोड़ दवँ और कई कै देख, गैल में झर्र फर्र झर्र फर्र करत जइए। जा बात बानें जासें कई कै जा तराँ से खेत की चिरइयाँ भग जैयँ।

कोरी को मोड़ा गैल में झर्र फर्र, झर्र फर्र करत आगैं चलन लगो। कछू दूर गओ हुइए कै बाखों एक बहेलिया मिलौ। उतै बो अपनौ जाल फैलाएँ चिरइयाँ फँसा रओ तो। कोरी के मोड़ा खौं झर्र फर्र करत देखकैं बाखों बड़ी खीस उठी। पकर के मारबे खों तैयार हो गवँ। अकेलैं जब असली किस्सा बाखों मालूम परो तो बोलौ—जा ससरे, अब आगें कत जइए, 'एक एक में दो दो फँसे।'

कोरी कौ मोड़ा इनइँ लबजन खों दौराउत् भवँ आगें चलन लगो। गैल में उते सें आ रए ते कछू कैदी। वे हालऊ जेल सें छूटकें आ रए ते। कोरी के मोड़ा की जा बात सुनकैं वै पैलऊँ तौ बापे भौत गुस्सा भए, फिर बोले—'जा ससरे, अब आगें कत जइए राम करे, ऐसो कोऊ खों न होय।'

सो मोड़ा जई बात कत् कत् आगें चलन लगौ। चल्त चल्त बो एक राजा के राज में पोंचौ। उतै बा दिना राजा कै कुँवर की बरात जा रह ती। बाजे बज रए ते। आतिसबाजी जल रई ती। कऊँ कठपुतरियन कौ तमासौ हो रवँ तो। कऊँ बेड़नी नाच रई ती। मतलब जौ कै जाँ देखो ताँ धूमधाम हो रइ ती और जिए देखौ सो हँसत खेलत जा रवँ तो। ऊसेइ में कोरी कौ मोड़ा जा कत भवँ उतै से निकरो—'राम करे ऐसो कोऊ खों न होय।' राजा के सिपाइयन ने जब जा बात सुनी तौ पैलैं तौ बाखों उननें खूब धुनको, जैसें रूई धुनकी जात, और फिर पकर कैं राजा के लिंगा लै गए। राजा खों जब सबरो किस्सा मालूम परौ, तौ बे जान गए कै अरे जौ तो कौनऊ भौत सूदरो आदमी है। बाखों उननें तुरतइँ सिपाइन के हात से छुड़वा दवँ, और कई, जा ससरे अब आगे कत् जइए—ऐसो नितइ होय।

सो कोरी को मोड़ा जइ कत भवँ आगें चलन लगो। होत् होत् ससरार कौ गाँव लिंगा आ गवँ। पै जब बो ससरार के घर लिंगा पौंचो, तो उत्तेइ में सूरज डूब गवँ। जा देखकैं वाखों अपनी मताई की जा बात की खबर हो आई, कै बेटा जाँ सूरज डूब जायँ, उतै तुम फिर आगैं गैल न चलियो। सो बो उतइ अपनी ससरार के घर के पछारूँ पर रवँ।

रात में बाकी सास बरा बना रइ ती। बानैं जैसेइ पैलो बरा करइया में डारो कै बौ बिथुल गवँ। सास नै कई—'जौ तो पैलोइ बरा टेड़ो हो गवँ।' कोरी के मोड़ा ने जा बात सुन लइ। भुनसारें उठकैं ससरार पौंचो। सास नै बाकी बड़ी आवभगत करी और पूछी, 'बेटा तुम इतै कबै आ गए थे।' मोड़ा ने जवाब दवँ, 'मैं तो रात केइँ इतै आ गवँ तौ जब तुम कै रइ तीं कै पैलोई बरा टेड़ो हो गवँ।' बाकी जा बात सुनकें सास खों बड़ो अचंभो भवँ, और बानें जान लई कै हमाय

लाला तौ जरूर बड़े हुसयार हैं। पराए घर कौ भेद जान लेत। होत होत जा बात गाँव भर में फैल गई के कोरी कौ सगो बड़ो हुसयार है।

बई दिना का भवँ के एक धोबी के गदा खो गए। भौत ढूँढ़े, नईं मिले। तब कोरी के लड़िका के लिंगा आकें बानें कई—'महाराज, हमने सुनी के अपुन भौत हुसयार हैं। हमाए गदा खो गए। बता देवँ तौ बड़ी किरपा हुइए।' संजोग की बात के भोरई जब बो कोरी कौ मोड़ा दिसा फराकत होबे खेत में बैठो हतो तब बानें कछू गदा तला कुदाइँ खों जात देखे ते। सो बानें कई—'जा, तोरे गदा तला के पार पै चर रए। उतै जाकें ढूँढ़।' धोबी जब उतै पौंचे तौ साँचऊँ बाके सब गदा उतै मिल गए। अब का हतो। गाँवन गाँवन जा बात कौ सोर हो गवँ के एक कोरी कौ सगौ बड़ौ जानकार है। खोई बस्त बता देत।

संजोग की बात कै उतै के राज में जौन राजा हते सो उनकी रानी कौ नौलखा हार खो गवँ। भौत तलास भई, पै कऊँ बा हार कौ पतो नइँ चलो। होत होत कोऊ ने राजा सें कई कै महाराज, एक कोरी कौ सगो है। बाकी बड़ी तारीफ सुनी जात कै बो तीनऊँ काल की सब बता देत। सो न होय तो बुलाकें बाकी परिच्छा लै लइँ जाय। जा बात के सुनतइँ राजा नै बई बखते सिपाई दौराए और कोरी के सगे खौं बुलवा कैं कई कै हमाई रानी कौ हार खो गवँ, सौ कै तौ तुम अबइँ पतौ लगाकें बतावँ के कितै है; बता देवँ तौ इनाम मिले। और कै नईं, तौ फिर तुमाइ घिंची काट डारी जैयँ।

जा बात सुनकें कोरी के मोड़ा कै होस उड़ गए। अकेलें भीतरइँ भीतर मन खों समजा कें बानें कई—'महाराज, मौखों रात भर की मौलत मिल जाय। भोरइँ हार कौ पतौ मैं देवँ।'

राजा ने रात भर की मौलत बाखों दै दई। अकेलें महलन में सें बाखों कितऊँ बाहर नइँ जान दवँ। उतइँ वाके खाने पीने और सोने को सब इंतजाम करवा दव।

कोरी कौ मोड़ा खा पी कैं अपनी कुठरिया में जा परो। अकेलें चिंता के मारें वाकौं नींद नईं आई। रात भर वो जोई बर्रात रवँ—'आ जा री सुखनिंदिया, भोर कटै तोरी घिंचिया।'

बई कुठरिया के लिंगा, एक दूसरी कुठरिया में, महलन की एक दासी परी सो रइ ती। बाको नावँ सुखनिंदिया हतो और बई ने वो नौलखा हार चुरावँ हतो। सो बाने कोरी के मोड़ा की बात जब सुनी तौ वाकौ आदो लोऊ छनक गवँ। वानें जान लई के जाखों अवस्स करकैं चोरी कौ पतौ लग गवँ है। सो भोर होत-नइँ बा कोरी के मोड़ा के लिंगा पौंची और बाके पाँवन पै गिरकैं बोली—'महाराज,

मोरो कसूर माफ करो। हार मैंने चुरावँ है। नरदा के लिंगा जौन पथरा है सो बाके तरें धरो है। पै मोरी जिंदगी सो अपुन के हात में हैं। मोरो नावँ राजा के आगें न लियो। नइँ तौ मैं मारी जैवँ।' जा बात सुनकैं कोरी कौ मोड़ा मनई मन भौतइ प्रसन्न भवँ। सचऊँ अब बाकी खुसी कौ का पूछने तौ। तनक भेल भए राजा के सिपाई जब बाखों बुलावन आए तौ बानैं अकड़ कैं कइँ—'बा। न कुल्ला, न बुखारी, पान न सुपारी। चलो साब, राजा बुलाउत। जाव, अबै नइँ आउत, कै दियो।''

तनक में फिर सिपाई बुलावे आए। तब लौं कोरी कौ मोड़ा हात मों धोकैं तैयार होकैं बैठ गवँ तो। राजा के सामूँ जाकैं बानें कई—'महाराज, हार कौ पतौ मैंने लगा लवँ। वो नरदा के लिंगा पथरा के नैंचें धरो। सो आप उठवा मँगवावँ।

राजा ने जब उतै तलास करखों आदमी भेजौ, तो उतै सचऊँ हार धरो तो, जैसें कोऊ ने अबइँ उठाकैं धर दवँ होय। हार पाकें राजा बड़े खुसी भए और कोरी के सगे खों, भौत इनाम दैकें उनने बिदा करो[1]।

२. कहावतें

हमें एक बुंदेलखंडी कहावत बहुत पसंद है—उड़ौ चुन पुरखन के नावँ। क्या बढ़िया बात है। चक्की पीसते समय जो चून उड़ा वह पुरखों को अर्पित। पूर्वजों का इससे अच्छा और क्या सत्कार हो सकता है? इसी के जोड़ की एक और कहावत है—दान की बछिया के कान नहीं होते। शब्दों का अंतर है, अन्यथा बात वही है। ऊपर यदि कहा गया है कि बिना कान की बछिया के त्याग में हमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती, उसे हम सहर्ष दूसरों को दे देते हैं, तो वहाँ मानों दान-ग्रहीता को यह सदुपदेश दिया गया है, कि दान की बछिया हमेशा बिना कान की होती है। उसके कानों अथवा दाँतों की परीक्षा करना अपनी मूर्खता का परिचय देना है।

इन कहावतों में, जिन्हें हम देहाती कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट हुए हैं। हम तो उनको ग्रामीण जनता का दर्शन शास्त्र कहते हैं। अपने ढंग से मानव जीवन और समाज की आलोचना करना और हँसना ही मानों उनका एक उद्देश्य है। जीवन का एक ही सत्य उनमें अनेक प्रकार

[1] उच्चारण के संकेत :

(१) रत् तो में तों का उच्चारण ओ और औ के बीच का होगा, जैसे अँगरेजी 'डॉक्टर' में ओ का।

(२) गवँ, भवँ आदि में वँ का उच्चारण व और वों के मध्य का होगा।

(३) करो में इसी प्रकार रो का उच्चारण रो और रौ के बीच का होगा।

से व्यक्त हुआ है। एक ही भाषा में किसी एक ही भाव वा विचार को प्रकट करने-वाली अनेक कहावतें आपको मिलेंगी। बिना कान की बछिया का दान तो उतना विलक्षण नहीं, और न आपत्तिजनक ही है। उसका तो फिर भी कुछ न कुछ उपयोग है। परंतु मरी बछिया के दान की कल्पना तो हमारे लिये अशक्य है। हम कह नहीं सकते कि किस काल के किस भलेमानुस ने इस प्रकार के दान द्वारा 'मरी बछिया बाभन के नावँ' वाली कहावत को चरितार्थ किया। परंतु हम इतना जानते हैं कि मानव प्रकृति बड़ी विचित्र है। दुनिया में ऐसे आदमियों की कमी नहीं जो 'मरी बछिया' की मुसीबत दूसरों के गले मढ़कर त्यागी और दानशील बनने का ढोंग करते हैं।

उदाहरणार्थ कतिपय छत्तीसगढ़ी कहावतें निम्नांकित हैं :

१. अबै तो बिटिया बापई की। =अभी कुछ नहीं बिगड़ा, काम अब भी सँभाला जा सकता है।
२. अधिक स्याने की बाँसे सें उड़ाई जात। बाँसा=नाक की हड्डी।
३. असी कोस ससरार, गैंबड़े सें काँछ खोलें।
४. अपनी अपनी[1] परी आन, को जावे कुरयाने[2] कान[3]।
५. अथाई[4] के लोग टिड़कना[5], और नकटा नाऊ।
६. अड़की ऊँट लगो[6] पे अड़की तौ चइए।
७. अँसुआ न मसुआ, भैंस कैसे नकुआ[7]।
८. अकल बिन पूत लठेंगर[8] से, लरका बिन बऊ डेंगुर[9] सी।
९. आँख फूटी पीर निजानी[10]।
१०. आँजी तो न सहें, फूटी सहें।

[1] अपनी अपनी विपत्ति। [2] कोरियों का मुहल्ला (कोरी=बुनकर)। [3] कहने। [4] महल्ले के लोगों के बैठने का स्थान। [5] तिनकनेवाला, चिढ़नेवाला। [6] लगा है अर्थात् बिकता है। [7] रूठे हुए लड़कों के प्रति उक्ति। [8] लकड़ी का लंबा कुंदा, लट्ठ। [9] मरकहे ढोरों के गले में डाल दी जानेवाली लकड़ी, जिसमें वे सिर उठाकर मार न सकें; कोई भार-स्वरूप वस्तु। [10] शांत हुई।

द्वितीय अध्याय

पद्य

१. लोकगाथा (पँवाड़ा)

(१) **जगद्देव**—बुंदेलखंड की ग्रामीण जनता में एक विशेष प्रकार के धार्मिक गीत प्रचलित हैं, जो माता के भजन कहलाते हैं। ये देवी या महामाई की पूजा के अवसर पर प्रायः सर्वत्र गाए जाते हैं। ढीमरों, कोरियों और काछियों में इनका विशेष प्रचार है। अधिकांश गीत देवी की स्तुति से संबंध रखते हैं। ये प्रायः छोटे होते हैं। किंतु कुछ ऐसे लंबे गीत भी हैं जिनमें देवी के किसी प्रसिद्ध भक्त अथवा वीर पुरुष का कीर्तिगान होता है। ये लोकगाथा या पँवारे के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पँवारों को हम वीरगाथा का नाम दे सकते हैं। मुहावरे में पँवारा शब्द लंबी कथा के लिये प्रयुक्त होता है। बहुधा कहते हैं—'क्या पँवारा गा रहे हो ?' अतएव पँवारे का लंबा और बड़ा होना आवश्यक है। वास्तव में मराठी में पोवाड़ा या पँवाड़े का अर्थ ही वीरगाथा है। बुंदेलखंड में जो पँवारे प्रचलित हैं, उनमें प्रायः मालवे के परमार राजाओं का, विशेषकर भोज और जगद्देव का वर्णन है। अतएव संभव है, परमार या पँवार से ही यह पँवारा शब्द बना हो।

यहाँ हम जगद्देव का पँवारा दे रहे हैं। यह वही जगद्देव है जिसके विषय में मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड में भी अनेक गीत और किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि उसने गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह के यहाँ जाकर नौकरी की थी। लखटकिया की जो अनेक कथाएँ हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं वे प्रायः जगद्देव से संबंध रखती हैं। 'रासमाला' के अनुसार जगद्देव मालवा के राजा उदयादित्य (१०५६-८७ ई०) का पुत्र था। उदयादित्य अपने भाई भोज की मृत्यु के बाद मालवे का राजा हुआ। किसी घरेलू षड्यंत्र के कारण जगद्देव को मालवा छोड़ गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के यहाँ जाकर नौकरी करनी पड़ी। वहाँ वह अठारह वर्ष तक रहा। उसके बाद जब जयसिंह ने धार पर चढ़ाई करने का उपक्रम किया तो वह पुनः अपने पिता के पास आ गया।

[1] संग्रहकर्ता हरजू कोरी, अवस्था २२ वर्ष, शिक्षा हिंदी मिडिल तक, निवासस्थान गरौठा, झाँसी।

इस घटना में कितनी सचाई है, यह कहना कठिन है। किंतु इसमें संदेह नहीं कि जगद्देव अनेक किंवदंतियों और गाथाओं का नायक बना हुआ है। उसके नाम के अनेक पँवारे हमने सुने हैं। अभी तक उसके विषय में लोगों ने अनेक कल्पनाएँ कर रखी थीं, और यह स्पष्ट नहीं था कि वस्तुतः वह कौन था। किंतु निजाम राज्य में प्राप्त एक शिलालेख से उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो गई है।

प्रस्तुत गीत लोकगाथा का एक अत्युत्तम उदाहरण है। लोकगाथाओं को ग्रामगीतों की संज्ञा देना और उनके अंदर कवित्व और उच्च भावों की खोज का प्रयत्न करना संगत नहीं है। यह चेष्टा निरर्थक ही नहीं, हानिकारक भी है। ग्रामगीत प्रायः छोटे होते हैं और रचनाकाल की दृष्टि से वे आधुनिक भी हो सकते हैं। किंतु लोकगाथाओं की परंपरा पुरानी होती है। लोकवार्ता के अध्ययन की दृष्टि से ऐसी लोककथाएँ ही महत्वपूर्ण मानी जानी चाहिए जो सर्वसाधारण में मुखाग्र प्रचलित हों और जिनकी रचना अपने आप ही खेतों और खलिहानों पर हुई हो। लोकगाथा के कुछ विशेष लक्षण हैं। ऊँची अँटारियाँ, चंदन किवार, दूधा के लड्डुआ सोने के कलस, कंचनझारी, गंगाजल पानी, इन सब का प्रायः उनमें बाहुल्य रहता है। स्थानों की दूरी सदैव वनों की संख्या से प्रकट की जाती है। यह संख्या तीन होती है। शब्दों और वाक्यों को प्रायः दुहराया जाता है। लोकगाथाओं के अज्ञात निर्माताओं की कल्पना अपने सीमित ज्ञान एवं पारिवारिक परिस्थिति और अवस्था को लाँघकर बाहर नहीं जाती। इसीलिये उपमा और उत्प्रेक्षा का वहाँ बहुधा अभाव होता है। वर्णन में सादगी और स्वाभाविकता होती है।

जगद्देव के इस पँवारे में तीन नाम ऐसे आए हैं जिनकी खोज हमारी सामर्थ्य से बाहर है। एक नाम तो है घरमासन। उसे नगरकोट का राजा बताया गया है। दूसरा है दलपंगर। वह हूलानगर का राजा है। ये शब्द हमें विचित्र भले ही जान पड़ें, किंतु हम उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। गीत के अंदर जिस प्रकार काश्मीर को कसामीर कहा गया है, उसी प्रकार दलपंगर और हूलानगर भी वास्तविक शब्दों के अपभ्रंश हो सकते हैं।

हम इतना और कह देना चाहते हैं कि हरजू कोरी ने गीत को जैसा लिखा हम उसे वैसा ही दे रहे हैं। अंत की दो एक कड़ियाँ छूटी हुई जान पड़ती हैं क्योंकि कथाविश्राम अचानक हुआ है :

कसामीर काह छोड़े भुमानी नगरकोट काह आई हो ओ माँ।
कसामीर कौ पापी राजा सेवा हमारी न जानी हो, माँ।
नगरकोट[1] घरमासन राजा कर कन्या बिलमाई हो, माँ।

[1] काँगड़ा।

कन्या कर बिलमावेवारो राजा, पलना डार झुलाई हो, माँ।
पलना डार झुलावेवारो राजा, मुतियन चौक पुराए, हो, माँ।
मुतियन चौक पुरावेवारो राजा कंचन कलस धराए हो, माँ।
देवी जालपा राजा घरमासन खेलें पाँसासार हो, माँ।
कौना के पाँसे रतन सँवारे, कौना के पाँसे लाल हो, माँ।
देवी के पाँसे रतन सँवारे घरमासन के पाँसे लाल हो, माँ।
पैले पाँसे डारे घरमासन, परो न एकऊ दाव हो, माँ।
दूजे पाँसे डारे भुमानी, परे पचीसऊ दाव हो, माँ।
हँस हँस पूँछे भइया लँगरवा, को हारो को जीतो हो, माँ।
हार चलो घरमासन राजा, जीती मोरी आद भुमानी हो, माँ।
मन सें चली मोरी आद भुमानी, सात समुद खाँ जाय हो, माँ।
सात समुद पै डोले भुमानी, डोले बरन छिपाए हो, माँ।
मलहा मलिहा टेरें भुमानी मलहा के नाव लियाओ हो, माँ।

(२) कारसदेव—कारसदेव बुंदेलखंड की पशुपालक जाति के एक वीर देवता हैं, विशेषकर उन जातियों के जो गाय और भैंस पालती हैं अथवा पशु ही जिनकी आजीविका के मुख्य साधन हैं। इस तरह की जातियों में यहाँ अहीर और गूजर ही मुख्य हैं। इसलिये हम कारसदेव को अहीरों और गूजरों का देवता कह सकते हैं। बाहर की बात हम नहीं जानते, किंतु बुंदेलखंड में सभी जगह, जहाँ गाय, भैंसें होती हैं, वहाँ इस देवता के चबूतरे (देहरे) पाए जाते हैं। ईंटों के △ इस प्रकार के दो छोटे से घर चबूतरे पर बने रहते हैं। इनमें से एक तो कारसदेव और दूसरे उनके भाई सूरपाल होते हैं। कहीं कहीं मूर्ति के रूप में एक बटइया (गोल मटोल छोटी पथरिया) रखी रहती है और कहीं उनके चरणचिह्न देहरे पर अंकित रहते हैं। पास में मिट्टी के दो चार घोड़े रखे होते हैं। बाँसों में लगी सफेद कपड़े की झंडियाँ (ध्वजाएँ) फहराया करती हैं। इसी स्थान पर प्रत्येक महीने की कृष्ण चतुर्थी और शुक्ल चतुर्थी को अहीर, गूजर रात्रि में आकर इकट्ठे होते हैं। इनमें एक 'घुल्ला' होता है, अर्थात् वह व्यक्ति जिसके सिर पर कारसदेव की सवारी आती है। घुल्ला के पास ऊन की बनी 'सेली' (छोटी रस्सी) और नीम के भौंरे रखे रहते हैं। कारसदेव की सवारी जब घुल्ला के सिर आती है तब वह इस रस्सी को उठाकर 'हूँ' 'हूँ' की आवाज करता हुआ पीठ पर इधर उधर मारता और उछलता रहता है। सवारी के आह्वान के लिये डमरू और घुँघरू लगी हुई ढोलक पर—जो ढाँप या ढाँक कहलाती है, और जो प्रायः पीतल या मिट्टी की बनी होती है—एक विशेष प्रकार के गीत गाए जाते हैं। ये गोट कहलाते हैं। इनमें कारसदेव एवं कुछ अन्य वीर पुरुषों का यशोगान और उनके अद्भुत एवं अलौकिक साहसिक कार्यों का

वर्णन होता है। 'गोटया' (गोट गानेवाला) ढोलक को अपने पैरों पर रखकर एक ओर एक लकड़ी और दूसरी ओर हाथ से बजाता और गोटें गाता जाता है। जिस व्यक्ति के सिर पर कारसदेव आते हैं वह लोगों की बिनती सुनता, उनकी झाड़ फूँक करता, उन्हें अपने नाम की 'भभूत' (भस्म) देता है। गोटया के अतिरिक्त और भी गानेवाले गोट गाया करते हैं। दो तीन बजे रात तक लोग इकट्ठे रहते हैं। देहरे के पास अकसर बबूल का वृक्ष देखने में आता है, जिसका संबंध कारसदेव की मृत्यु से बताया जाता है। इनकी पूजा में एक नारियल, पाव-डेढ़-पाव बताशा, 'निशान' (सफेद पताका, जो बाँस की लकड़ी में पिरोई रहती है), सेंदुर, धूप, कपूर, घी, लगता है। मीठे तेल का दीपक जलता रहता है। इसके अतिरिक्त सवा सेर माँग, जिसमें आटा, दाल, घी, गुड़ आदि संमिलित रहते हैं, दिया जाता है। साधारणतया प्रत्येक प्रार्थी एक नारियल अथवा कुछ बताशा देहरे पर चढ़ाने के लिये ले जाता है। उस सवा सेर सामान को वह व्यक्ति जिसके सिर पर कारसदेव की सवारी आती है, पकाता, स्वयं खाता तथा उपस्थित लड़कों को खिलाता है।

गाँव में, जहाँ विशेषतया अपढ़ जनता रहती है और ज्योतिषी ब्राह्मणों का अभाव होता है, लोग कारसदेव के चबूतरे पर ढाँप बजती हुई सुनते हैं तो निश्चय कर लेते हैं कि आज चौथ का दिन है। गोटों में कारसदेव का वर्णन है। उन्हें लिखाने के लिये अहीर लोग सहज में तैयार नहीं होते। सुना तो देते हैं, लिखने नहीं देते। जब मैंने बहुत हठ की, तो कहने लगे, कारसदेव की गोट काली वस्तु से कभी नहीं लिखनी चाहिए। मैंने कहा, मैं हरी, नीली, लाल पेंसिल से लिखूँगा। परंतु अंत तक उनका उत्तर मिलता गया कि गोट कभी लिखाई नहीं जाती। सेवा करो और सीख लो।

उनके लिये वे पवित्र देवतानी (देवता विषयक) गीत हैं। इसलिये चौथ के सिवा किसी और दिन न तो वे उन्हें गाएँगे ही, और न किसी को कभी सुनाएँगे। धार्मिक गीतों या कहानियों के विषय में इस प्रकार की निषेधात्मक भावना सभी देशों की पिछड़ी हुई जातियों में देखने में आती है।

'गोट' शब्द संस्कृत गोष्ठ का अपभ्रंश है और इसके उच्चारण से ही हमें सहसा अतीत के ऐसे काल का स्मरण होता है, जब हमारे पूर्वज गाय भैंस पालते थे और नई नई चरागाहों की खोज में निरंतर विचरण करते रहते थे। यह गोष्ठ शब्द गोस्थान या गोचर भूमि का द्योतक है। अपनी उस आदिम अवस्था में मनुष्य अकेला नहीं था। वह गिरोह बनाकर रहता था। इसलिये उसके ढोर जब हरे भरे चरागाहों में फैलकर आनंद से नई नई दूब चरते थे तब वह एक जगह इकट्ठा होकर बैठ जाता, आमोद प्रमोद करता, हँसता खेलता और आश्चर्य से चकित हो सृष्टि के गूढ़ रहस्यों पर विचार करने की चेष्टा भी करता था।

इस तरह गोष्ठ शब्द केवल गायों के मिलनस्थान का ही नहीं, अपितु आदमियों के एक जगह मिलकर बैठने के स्थान का भी द्योतक हुआ। उसी से गिरोह या कुल का सूचक 'गोष्ठी' शब्द बना। जब तक गोष्ठ में गौएँ चरती थीं तब तक सब लोग गोष्ठीबद्ध होकर, अथवा यों कहिए कि एक गोष्ठी या कुल के सब लोग इकट्ठे होकर, बैठते थे। हम अपने उस प्राचीन अभ्यास को अब भी नहीं भूले हैं। गोष्ठी में बैठना और वार्तालाप करना हमें अब भी अच्छा लगता है। अतीत के उस युग में मनुष्य का प्रत्येक कार्य उसकी धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था। आमोद प्रमोद भी उसके लिये देवी देवताओं को मनाने या पूर्वजों की आत्माओं को संतुष्ट करने का एक साधन था। एक जगह बैठकर वह गप शप नहीं करता था, बल्कि कुछ ऐसे कार्य करता था जिससे उसके पार्थिव जीवन की कुछ कठिनाइयाँ हल हों। इसलिये यदि वह गीत भी गाता था तो अपने देवताओं के या कुल के किसी पूर्वपुरुष के। ये गीत उसकी 'गोष्ठी' के गीत थे, जो अब केवल 'गोट' बन गए हैं। आश्चर्य की बात है कि बुंदेलखंड के अहीरों और गूजरों ने मानव समाज की एक बहुत प्राचीन संस्था को आज तक ज्यों का त्यों जीवित रखा है। गोट शब्द अपने पुराने अर्थ में ज्यों का त्यों उनके देवता के साथ संबद्ध है। अन्य प्रांतों के अहीरों और गूजरों में भी गोटों का प्रचार है या नहीं, यह खोज का विषय है। संभव है, उनके देवता दूसरे हों। किंतु उनके धार्मिक गीतों में यदि गोट भी है, तो कहना चाहिए कि वे सच्चे अर्थ में हमारे पशुपालक पूर्वजों के वंशधर और उनकी संस्कृति के वाहक हैं।

इन गोटों को हम अहीरों का पौराणिक काव्य कहते हैं, क्योंकि उनमें उनके देवता कारसदेव की जन्म से लेकर मृत्यु तक की पूरी कथा गाई गई है। सन् १९३६ में मैं अपने निवासस्थान गरौठा में था, तब अपने पड़ोसी दीना चौकीदार से मैंने कुछ गोटें ली थीं—उसे इस बात का पूरा विश्वास दिलाकर कि इन्हें न तो हम छापेंगे और न किसी को सुनाएँगे ही। यदि वह हमसे नाराज न हो, तो यहाँ हम उस काव्य का वह अंश पाठकों के मनोविनोदार्थ उद्धृत करना चाहते हैं, जहाँ राजू गूजर की बेटी ऐलादी दूध की नौ मन की खेप अपने सिर पर रखे, गाय भैंसों के बछेड़ों को साथ लिए अपने घर की खोरों से बाहर निकलती है और राजा के हाथी से उसकी मुठभेड़ होती है। हमारा विश्वास है, कारसदेव इससे रुष्ट नहीं होंगे, बल्कि दीना पर उन्हें प्रसन्न होना चाहिए कि उसके द्वारा हम सबको उसके पूज्य देव की गौरवगाथा पढ़ने का अवसर प्राप्त हो रहा है :

डगरी ऐलादी अपने खोरन द्वार, हो ओ।
करवावै दौनिया बगरन माँझ, हो ओ।
ढीलैं पड़ैला भुवरी भैंस कौ, हो ओ।

ढीलैं बछला नगनाचन गाय कौ, हो ओ ।
को जो लगावे वाकी मनकिया भैंस, हो ओ ।
को जो लगावे वाकी नगनाचन गाय, हो ओ ।
गोरे लगावें वाकी मनकिया भुवरी भैंस, सो हो ओ ।
राजू लगावें नगनाचन गाय सो, हो ओ ।
जब ऐलादी ने धर लई नौ मन दुधवा की खेप, हो ओ ।
डुरया लए पड़ैला भुवरी भैंस के, हो ओ ।
डुरया लए बछला नगनाचन गाय के, हो ओ ।
डगरी भवानी उरद बजार सो, हो ओ ।
मद कौ भारौ हथिया डोलत् तो वा आड़ी गैल, हो ओ ।
तब महतिया[1] सें बोली भवानी, हो ओ ।
अरे, भैया मोरे, कका कहौं कै बीर सो, हो ओ ।
हथिया हटा लेजौ मोरी आड़ी गैल कौ, हो ओ ओ ।
झँझकै पड़ैला भुवरी भैंस कौ, हो ओ ।
तड़पै बछला नगनाचन गाय कौ, हो ओ ।
छलकै मेरी दुधुवा की दुहेली खेप, हो ओ ।
हथिया हटा ले भैया, मोरी आड़ी गैल सें, हो ओ ।
हथिया पै कौ महतिया दै रओ ऐलादी खों जुवाब सो हो ओ ।
तेरे सँग की बिटियाँ कढ़ गईं दो दो बार, हो ओ ।
तैं गलियन में रारैं बिटिया जिन बढ़ाइयो, हो ओ ।
ना तोरा बछला कहिए नगनाचन कौ, हो ओ ।
डोर पकरकैं झँझक लैयँ हो ओ ओ ।
ना कहिए पड़ैला मनकिया भुवरी भैंस कौ, हो ओ ।
जौ हथिया कइए मेरौ रजन दरबार कौ, हो ओ ।
अरी सिर्रियानौं[2] हथिया बाईजू,
जौ मेरे बस कौ ना रओ, हो ओ ।
अरे हथिया पै कौ महतिया,
हथिया तोरे बस कौ ना होए हो ओ ।
तौ हथिया पै की जंजीरें नैंच खौं दै सरकाय, हो ओ ।
मैं हथिया हटा लओं आड़ी गैल सों, हो ओ ओ ।
जब हथिया पै के महतिया नैं जंजीरें नेचे खाँ दई सरकाए, हो ओ।

[1] महावत । [2] मस्त, पागल ।

(३) अमानसिंह—राछरों की बात हुई। परंतु इनके अतिरिक्त एक और विशेष प्रकार के लंबे वर्णनात्मक गीत वर्षा ऋतु में आपको सुनने को मिलेंगे, जिनकी रचना कौटुंबिक जीवन की किसी काल्पनिक घटना अथवा किसी ऐतिहासिक अनुश्रुति के आधार पर हुई है और जिन्हें सच्चे अर्थ में 'राछरे' कहना चाहिए। इस प्रकार के लंबे कथागीतों में अमानसिंह का राछरा बुंदेलखंड में बहुत प्रसिद्ध है। शायद ही कोई ऐसी ग्रामवृद्धा हो, जिसे इस राछरे की दो चार पंक्तियाँ कंठस्थ न हों और जिसने श्रावण के महीने में भूले पर अथवा प्रातःकाल चक्की पीसते समय इसके प्रारंभ के कुछ बोल जीवन में कभी न गाए हों। अमानसिंह पन्ना नरेश हृदयशाह के पौत्र और छत्रसाल के प्रपौत्र थे। जान पड़ता है, उनकी कोई एक बहिन जालौन जिले में अकोड़ी घगवाँ नामक स्थान के ठाकुर प्रानसिंह धँधेरे को ब्याही थी। किसी विषय को लेकर साले बहनोई में कड़ा वैमनस्य पैदा हो गया और बात यहाँ तक बढ़ी कि अमानसिंह ने बहिन के भविष्य और लोकनिंदा की कोई परवा न कर बहनोई का वध कर डाला। इसी घटना को लेकर किसी लोककवि ने अपनी कल्पना का रंग चढ़ा अमानसिंह के राछरे की रचना की है। विभिन्न स्त्रियों के मुख से मैंने इस राछरे के विभिन्न पाठ सुने हैं। वास्तव में लोकगीतों की यह एक विशेषता है कि गानेवालों की रुचि और कल्पना के साँचे में ढलकर इक ही गीत विभिन्न रूपों में हमारे सामने प्रकट होता है। अतः किसी लंबे कथागीत का शुद्ध और सही पाठ स्थिर करना बड़ा कठिन है। मेरे पास जो पाठ है उसके कुछ अंश पाठकों के मनोरंजनार्थ यहाँ दिए जाते हैं। सखियों के साथ नवविवाहिताएँ आनंदपूर्वक गीत गाती हुई हिंडोरे भूल रही हैं। परंतु अमानसिंह की बहिन को अभी तक कोई लिवाने नहीं गया। वह अभी ससुराल ही में है। उसकी माँ उसे लिवा लाने का आग्रह करती हुई अपने पुत्र से कहती है :

सदा न तुरइया फूले अमाना जू, सदा न सावन होय।
सदा न राजा रन चढ़े, सदा न जोबन होय।
राजा मोरे असल बुंदेला को राछरौ।
सबको बहिनियाँ भूलें हिंडोरा, तुम्हारी बहिन बिसूरे परदेस।
नौआ पठै दो, बमना पठै दो, बइआ जू कौ दिन धर आए।
राजा मोरे असल बुंदेला को राछरौ।
हम बिदेसे ना जाएँ माई, नौआ खाँ गलियाँ बिसर गईं।
बमना खाँ गई सुध भूल, राजा मोरे प्राना धँधेरे कौ राछरौ।
किनको तुम बेटा लैहो कजरियाँ, किनके छुओ दोई पावँ।
बहिन सुभद्रा की लैबूँ कजरियाँ, उनई के लटक छूबूँ दोई पावँ।
राजा मोरे असल बुंदेला को राछरौ।

२. लोकगीत

बुंदेलखंड के लोकगीतों को उनके विषय और गाने के अवसरों की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

१. ऋतुगीत, २. श्रमगीत, ३. त्योहारगीत, ४. संस्कारगीत, ५. यात्रागीत, ६. धार्मिक गीत, ७. बालगीत, ८. विविध गीत।

(१) ऋतुगीत

(क) सावन—

(१) सैर—वर्षा ऋतु में, विशेष कर श्रावण तथा कजली के अवसर पर ये गाए जाते हैं।

पाठे के ऊपर अब झिरना झिरें, बेला कली उतराय।
पाई घरिल्ला रे डूबो ना, मोरो परदेसी प्यासो जाय।
कारी बदरिया री तोहि सुमरों, पुरवई परों री तिहारे पावँ।
आज तो बरस जा एरी कनवज में, मोरे कंता घरे रे जायँ।

(२) राछरे—ये वर्षा ऋतु में गाए जानेवाले स्त्रियों के गीत हैं। प्रायः स्त्रियाँ प्रातःकाल चक्की पीसते समय भी राछरे गाती हैं। बुंदेलखंड के लोकगीतों में राछरे अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। ये वर्षा ऋतु में आषाढ़ श्रावण में गाए जाते हैं। यों पुरुष भी राछरे गाते हैं। परंतु मुख्य रूप से ये स्त्रीगीत हैं और स्त्रियों के पारिवारिक जीवन के सुख दुःख एवं हर्षविषाद से ही इनका विशेष संबंध है। सावन का सुहावना महीना आने पर नवविवाहिता युवती का ससुराल से मायके आने के लिये ललक उठना, भाई का अपनी बहिन को उसकी ससुराल से लिवाने जाना, बहिन का अपने भाई के आगमन की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा करना, ननद और भावज की आपस की चुहल और नोंक झोंक, तथा प्रत्येक विषय में लड़की का ससुराल के लोगों की तुलना में अपने माता पिता और भाई की बड़ाई करना, उनके लिये यश और धन की कामना करना, इन गीतों के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। नवयौवना बालिकाओं की कोमल अभिलाषाओं और आकांक्षाओं से संबद्ध होने के कारण राछरे प्रायः बड़े करुण होते हैं। फिर भी आनंद और उल्लास का स्वर उनमें खोने नहीं पाता। एक राछरा है :

बदरिया रानी बरसो बिरन के देस।
काँनाँ से आई कारी बदरिया, कानाँ बरस गए मेह।
अग्गम दिसा सें आई बदरिया, पच्छिम बरस गए मेह।
बदरिया रानी बरसो बिरन के देस।

किनकी जो भर गईं ताल पुखरियाँ, किनके भरे बेला ताल।
ससुरे की भर गईं ताल पुखरियाँ, बिरन के भरे बेला ताल।
किनकी जो जुत गईं डँड़िया ठिकरियाँ, किनके जुत गए कछार।
ससुरे की जुत गईं डँड़िया ठिकरियाँ, बिरना के जुत गए कछार।
किनकी बुव गईं जुनई बाजरा, किनकी जो साठिया धान।
ससुरे की बुव गईं जुनई बाजरा, बिरन की साठिया धान।
किनके जो नींदे घर के निदइया, किनके जो नींदत मजूर।
ससुरे के जो नींदें घर के निदइया, बिरन के नींदत मजूर॥

(३) फाग—ये बसंत ऋतु के अथवा ठीक कहिए तो होली के गीत हैं। ये कई तरह की होती हैं—चौकड़याऊ, छंदयाऊ, डिड़खुरयाऊ, साखी की इत्यादि। ईसुरी की चौकड़याऊ (चतुष्पदी) फागें प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रायः चार कड़ियाँ होती हैं, कहीं कहीं पाँच भी। ईसुरी ने ही सबसे पहले ये चतुष्पदी फागें कहीं। ये सब नरेंद्र छंद में बँधी हैं जो भारतीय संगीत की रीढ़ हैं। यह छंद २८ मात्राओं का होता है, १६ और १२ के बीच यति और अंत में गुरु होता है। फागों में केवल इतनी विशेषता है कि प्रथम पंक्ति में १६ मात्राओं के पहले चरण के साथ १२ मात्राओं के दूसरे चरण का अनुप्रास मिला दिया जाता है।

छंदयाऊ फागों को छंदशास्त्र में बाँधना कठिन है। इसमें पहले टेक, फिर छंद की पंक्तियाँ और अंत में एक पंक्ति रहती है जो उड़ान कहलाती है। इनके विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। साखी की फाग में पहले दोहा और अंत में टेक रहती है।

डिड़खुरयाऊ फागों में केवल एक पंक्ति रहती है।

उत्तर भारत की ख्यालबाजी की तरह बुंदेलखंड में भी फाग कहने का बड़ा रिवाज रहा है। फागों के फड़ जमते थे जो तीन तीन, चार चार दिनों तक लगातार चलते थे। एक टोली की ओर से एक रंग की फाग कही जाती, तो दूसरी टोली तुरंत फाग कहकर उसका उत्तर देती। जो टोली उत्तर न दे पाती, वह हारी हुई मानी जाती।

बुंदेलखंड के फाग कहनेवालों में ईसुरी, गंगाधर, भुजबल और ख्याली का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। ईसुरी की भाँति भुजबल अपने सांगीत या छंदयाली फागों के लिये प्रसिद्ध है।

१. चौकड़याऊ

(क) ईसुरी—(संवत् १८९१-१९६६, जन्मस्थान झाँसी जिले में मऊ रानीपुर के निकट मेंड़की)

बखरी रहिमत है भोर की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।
बे बंदेज बड़ी बेबाड़ा, जीमें दस दुआरे की।
किवार किवरिया एकउ नइयाँ, बिना कुंची तारे की।
ईसुर चाय[1] निकारौ जिदना,[2] हमें कौन उबारे की[3]।

(ख) गंगाधर—

बूँदा दएँ बेंदी के नैंचे, प्रान लेत है खैंचे।
नैंचें आड़ लगी सेंदुर की, दमकत भौंयँ दुबींचें।
गुड़ीं तीन माथे में परतीं, बैठो दाब रँगीचें[4]।
कह गंगाधर बीदन बीदी, पल भर पलक न मीचें।

(ग) ख्याली—

तोरी बेइंसाफी आँसी, सुनौ राधिका साँसी।
कायम करी रूप रयासत में, अदा अदालत खासी।
सैनन के सम्मन कटवाए, चितवन के चपरासी।
मन मुलजिम कर लियो कैद में, हँस हथकड़ियाँ गाँसीं।
कवि ख्याली बेगुना लगा दइ, दफा तीन सौ ब्यासी।

(घ) खूबचंद—

मोती धन्न तोय मुख चूमत, रहत कपोलन झूमत।
दै ठोकर ठोड़ी के ऊपर, ठसक भरो नित घूमत।
बेसर बीच बास तैं पायो, चलत हलत दै लूमत।
खूबचंद तैंही बड़ भागी, मुख पर करत हकूमत।

(२) साखी की फाग—

भली करी मोरे दाऊजू दुआरैं बसाए बेईमान।
ठाढ़ें निरखें पींड़री बैठे में गोरे गाल।
जुबन की घातें लगाएँ गलयारे में।
सबके सैयाँ नियरे बसैं मो दुखनी के दूर।
घरी घरी कैं चाहत हौं, कै हो गए पीपरामूर॥
हम खाँ आवें हिलोरैं समुद कैसीं।

[1] चाहे। [2] जिस दिन। [3] सुभीते की। [4] लकीरें।

(ग) बारामासी—

चैत मास जब लागै सजनी, बिछुरे कुँवर कँनाई।
कौन उपाय करौं या ब्रिज में, घर अँगना न सुहाई।
बैसाख मास जब लागै सजनी घामें[1] जोर जनाई।
पलँग सिजरियाँ मोय नींद न आवे, काँन कुँवर घर नाईं।
जेठ मास जब लागे सजनी, चहुँ दिस पवन झकोरै।
पवन के ऊपर अगन[2] उड़त है, अंग अंग कर टोरै।
असाढ़ मास जब लागे सजनी, चहुँ दिस बादर छाए।
मोरा बोले पपीरा बोले, दादुर बचन सुहाए।
सावन मास सुहावन मइना, रिमिक झिमिक जब बरसै।
काँन कुँवर कौ गड़ौ हिंडोला, झूलन खों जिय तरसै[3]।
भादों मास भयंकर मीना, चहुँदिस नदियाँ बाढ़ी।
अपुन तौ ऊधौ पार उतर गए, मैं जमुना जल ठाड़ी।
क्वाँर मास की छुटक चाँदनी, बाढ़े सोच हमारे।
घर होते नैनन भर देखते, अउतन कंठ जुड़ाते।
कातिक मास धरम के मइना, कौन पाप हम कीनें।
हम सी नार अनाथ छोड़कें, कुबजा खों सुख दीनें।
अगहन मास अगम[4] के मइना, चलौ सखी ब्रिज चलिए।
कै हँसिए नँदलाल लाड़ले सों, के जमुना दौ[5] धँसिए।
पूसन[6] चुनरियाँ बाँहन आईं, तलक तलक भई दुबरी।
प्रेम प्रीत की फाँस लगी हैं, जे लालन की कुबरी।
माघ मास में ढूँढ़ो मधुबन, ढूँढ़ीं बिंद्रा कुंजें।
जिन कुंजन में लाल खेलत्ते, नाहर[7] होय होय गुंजें।
फागुन मास फरारे[8] मइना, सब सखि खेलैं होरी।
जगन्नाथ की बारामासी, गावैं नंदकिसोरी।

(२) श्रमगीत

(क) रामारे—

कार में गेहूँ बोते समय गाए जानेवाले ये किसानों के गीत हैं, जो 'रामारे' या 'रामा हो' की टेक के साथ गाए जाते हैं, इसीलिये इनका नाम 'रामारे' पड़ गया। इसका एक उदाहरण निम्नांकित है :

[1] घाम। [2] अग्नि। [3] पा०-काँन कुँवर की खुटें कजरियाँ देखन खों जिया तरसे। [4] आगमन, पा० आवन। [5] दह, कुंड, सं०-ह्रद। [6] पूस में। [7] सिंह। [8] ताजे।

रामा होओ ओ ओ......।
काना बाजी मुरलिया, भाई रे कहाँ परी झनकार। रामा०।
गोकल बाजी मुरलिया, भाई रे मथुरा परी झनकार। रामा०।
सो इत राधा उझक गईं लयँ मथनिया हाथ। रामा०।
जरियो बरियो तोरी मुरलिया भाई रे, मरियो बजावनहार। रामा०।
कच्चे से दइया बिलुर गए, नैनूँ न आए मोरे हात। रामा०।
ठंडे से पानी गरम धरियो, नैनूँ उठा लो हात।

(ख) बिलवारी—अगहन में ज्वार की फसल काटते समय का गीत है।

दैहों दैहों कनक उर दार सिपाई रा डेरा करो रे मोरी पौर में।
अरी हाँ हाँ री सहेलरी, कँहना गए तोरे घरबारे,
कँहना गए राजा जेठ ?
लरकनी ऊँचे महल दियला जारे।
वे तो का हौ ल्यावें तोरे घरबारे, का हो ल्यावें राजा जेठ।
घुँघटा पै लिखियो बारे देवरा, मोरो हँसत खेलत दिन जाय।
कुड़रन लिखियो बारी ननदिया अरी गगरी धरे सँकुच जाय।
तिन्नी[२] पै लिखियो मोरी अरी सौतनियाँ, उठत बैठत दिन जाय।

(३) त्यौहार गीत

(क) नौरता के गीत—

ए बाबुल दूरा जुनइया जिन बइयो, सो को हो रखाउन जाय।
ए बेटी तुमईं हँमाई लाड़ली, सो तुमईं रखाउन जाव।
ए बाबुल नायँ सें जातन जाड़ो लगत है, मायँ सें आउतन घाम।
कै बेटी मोरी मायँ लगा देउँ इमली अम्मा, नायँ भरा देउँ रजइया।
कै बाबुल दूरा जुनइया०।
कै बाबुल नायँ सें जातन भूँक लगत है, मायँ सें आउतन प्यास।
कै बेटी नायँ सें जातन पुरी पका देउँ,
मायँ खुदा देउँ बेला ताल। कै बाबुल०।

[१] रामा रे, दिनरी, बिलवारी आदि की धुनें ही अलग अलग होती है, गीतों के विषय या गठन में कोई भेद नहीं होता।

[२] धोती की चुन्नट, जो आगे खोंसी जाती है।

कै बाबुल कौनाँ लिख दए घरई कै अँगना, किए लिखे परदेस।
कै बेटी भइया भुजाई खाँ घरई के अँगना, तुमें लिखे परदेस।
कै बेटी मरै बो नउआ मरै बो बमना करम लिखे परदेस।
कै बाबुल ना मरै बो बमना ना मरै बो नउवा, करम लिखे परदेस।
कै बाबुल कगदा होय तौ बाँचियो, करम न बाँचे जायँ।
कै बाबुल कगला होय तौ पाटियो, करम न पाटे जायँ। कै बाबुल०।
कै बाबुल धन होय तौ बाँटियो, करम न बाँटे जायँ।
कै बाबुल दूरा जुनइया जिन बइयौ, को हो रखाउन जाय।

(ख) दिवारी के गीत—

ये दीवाली के अवसर पर गाए जानेवाले गीत हैं जिन्हें विशेषकर अहीर लोग ही गाते हैं। दिवारी के गीतों में एक ही पद रहता है और वह टिमकी और नगरिया आदि बजाकर गाया जाता है। गायकों के साथ एक नर्तक रहता है, जो रंग बिरंगे धागों की जाली से बनी घुटनों के नीचे तक लटकती हुई पोशाक पहने रहता है। इसमें अनेक फुँदने रहते हैं जो नृत्य के समय चारो ओर घूमते और बड़े सुहावने लगते हैं। नर्तक अपने हाथों में मोरपंख के मूठे लिए उचक उचककर नाचता तथा ऊँची तान खींचकर गाता है। 'दिवारी' एक अजीब राग है। केवल सुनकर ही उसकी विशेषता का कुछ आभास मिल सकता है। पहले सब मिलकर अपना हाथ उठाकर एक दोहा कहते हैं। जैसे ही गाना बंद हुआ, जोर से ढोल बज उठता है।

दिवारी के इन गीतों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रायः पहेलियाँ भी गाई जाती हैं। पहले पहेली गाकर फिर उसका उत्तर भी पहेली में सुनाया जाता है। जैसे :

प्रश्न–कब कब घरनी नें काजर दए और कब कब करे सिंगार। हो ओ।
उत्तर–जेठ के महीना काजर दए, असाढ़ करे सिंगार। हो ओ।

(ग) कार्तिक के गीत—

ये कार्तिकस्नान के स्त्रियों के गीत हैं।

सुन मुरली की टेर, अचक रईं राधा, सुन मुरली की टेर।
होत भोर राधा पनियाँ कों निकरीं, गऊअन टिलन की बेर।
छोड़ो कन्हैया प्यारे बाहँ हमारी, हम घर सास कठोर।
कहा करे सास, कहा करे ननदी, चलो कदम की ओट।

(घ) चैत्र के गीत—

चैत्र महीने में जितने सोमवार पड़ते हैं उनमें जगन्नाथ जी की पूजा की जाती है। यह पूजा जगन्नाथ पुरी से लाए गए बेत और कलश की होती है। इसमें निम्नलिखित गीत गाया जाता है :

भले बिराजे जू उड़ीसा जगन्नाथ पुरी में, भले बिराजे जू।
कबसें छोड़ी मथुरा बिंद्राबन, कबसें छोड़ी कासी।
झारखंड में आन बिराजे, बिंद्राबन के बासी।
तुम तो भले बिराजे जू।
अठारा पारे[1] चौकी लागें, जात्री जान न पावैं।
गूजरिया कौ झारौ लीनौ, नागा लट्ठ बजावैं। तुम तो०।
नील चक्र पै धुजा बिराजै, माथें सोहे हीरा।
स्वामी आँगें सेवक नाचै, कै गए दास कबीरा। तुम तो०।

(४) संस्कारगीत

(क) जन्म—

(१) सोहर[2]—ये पुत्रजन्म के गीत हैं। पुत्रजन्म के दिन विशेष रूप से बसोरनें आकर ढोलक पर सोहर गाती और नाचती हैं। उसके बाद सोहर उठने के दिन भी बसोरनें आतीं हैं, और उनके साथ ही जात बिरादरी तथा पड़ोस की स्त्रियाँ भी गाने में भाग लेती हैं :

ऐसी गरबीली नाइन, लाल को नरा न छीने।
हतिया चढ़े मोरे ससुर जु बुलावें, हतिया चढ़ न आवे। ऐसी०।
घोड़ा चढ़े मोरे जेठ जु बुलावें, घोड़ा चढ़ न आवे। ऐसी०।
उँटला चढ़े मोरे देवरा जु बुलावें, उँटला चढ़ न आवे।
डोला सजाय मोरे सैयाँ जु गए हैं, तुरतइँ डोला चढ़ आवे।
नाइन लाल कौ नरा न छीनें।

(ख) विवाहगीत—

(१) भाँवर का गीत

पहली भाँवर जब फेरियो[3] बेटी, अबहुँ हमारी जू।
दूजी भाँवर जब फेरियो बेटी, अबहुँ हमारी जू॥

[1] पहरे। [2] सोहर नाम है, पर सोहर की धुन कनउजी से मैथिली तक ही सीमित है।
[3] फेरी गई।

तीजी भाँवर जब फेरियो०।
चौथी भाँवर जब फेरियो ०।
पाँचई भाँवर जब फेरियो०।
छठईं भाँवर जब फेरियो०।
सतईं भाँवर जब फेरियो बेटी, हो गइ पराई जू॥

(२) वरपक्ष का गीत

हँस हँस पूँछैं माय जसोदा, कैसी बनी ससरार। मोरे लाल।
ससुर हमारे चारउ देस के राजा, सास जमुनजल नीर।
हमरे सारे घुड़ला कुदावें, सरजें[1] तपतीं रसोई, मोरे०।
जेठी सारी अधिक पियारी, परसल दूध बयारी।
छोटी सारी अधिक पियारी, देत कका जू की गारी।मोरे०।
बहुआ तुमारी ऐसें बनी है जैसे मढ़ भीतर लिखी चितसार।
चार दिना खों गए ससुरारे, आन सराई ससरार।
नौ दस मास गरभ में राखौ, तोऊ न कई मातारी, मोरे०।
तीते सें[2] लाला सूके में पारो, तोऊ न कई मतारी, मोरे०।
हमाए गए को माता बड़ो दुख पायो, तो जनम न जैबूँ ससरार।
हमाए कहे को बिलख जिन मानो, नित उठ जाव ससरार।
पाँच टका पानन खाँ लै लो, नित उठ जाव ससरार, मोरे०।

(३) बिदाई गीत

जाओ साजन घर आपने।
चलन चलन साजन कहैं, राजा आजुल चलन न देयँ।
कराओ साजन जू सें बीनती।
चलन चलन साजन कहें, राजा का कुलन चलन न देयँ।
कराओ साजन जू०।
दान जो देओं साजन दाम जो, सतलर देओं, साजन पचलर देओं,
इक नईं देओं अपनी धीया जिन बिन घर होय बिसूनो।
दानईं छोड़ो साजन दाम जो, सतलर छोड़ी साजन पचलरऊ,
इक नईं छोड़ों तुमरी धिया जिन बिन बरात बिसूनी।
गुबरा पाथन कों धीया न दीनी, पै तपने को रामरसोइ,
कराओ साजन०।

[1] सरहजें। [2] गीले कपड़ों पर से।

बाबुल की बेटी भौती लाड़ली मैया के बसत पिरान, कराओ साजन०।
काकुल की बेटी मोरी लाड़ली, काकी रानी के बसत पिरान,
कराओ साजन० ।

(५) धार्मिक गीत

(क) माता के भजन—

माई तोरे मड़ पै बादर ऊनए हो माय ।

अगम सें बादर ऊनए मोरी माता, सो पच्छिम बरस रए मेव ।माई०।
कौना की भींजी मैया सुरँग चुनरिया,सो कौना की पचरँग पाग ।माई०।
देवी जू की भींजें सुरँग चुनरिया, सो लँगुड़े की पचरँग पाग ।माई०।

(ख) यात्रा के गीत—

ये तीर्थयात्रा के गीत माघ में गाए जाते हैं। शांत और श्रृंगार का एक अपूर्व संगम इनमें देखने को मिलता है। प्राचीन काल में जब रेल नहीं थी, तब पैदल ही लोग प्रयाग, काशी, गया और जगदीशपुरी जैसे दूरस्थ तीर्थों की यात्रा किया करते थे। उस समय इन गीतों को गाकर वे मार्ग की थकान दूर करते जाते थे। आज भी जहाँ रेल का प्रचार नहीं है, वहाँ निकट के मेले या तीर्थस्थलों के लिये जाते समय यात्री लोग ये गीत गाते हैं।

इन गीतों को कहीं कहीं रमटेरा और कहीं टिप्पे भी कहते हैं। रमटेरा (राम+टेरा) अर्थात् ऐसे गीत, जिनसे राम का स्मरण करने में सहायता मिले। टिप्पे का अर्थ है मंजिल। लंबी यात्रा में चार चार, पाँच पाँच कोस तक इन गीतों का क्रम चलता रहता है और उस धुन में ही यात्रियों की मंजिल पूरी हो जाती है। इसीलिये इनका नाम टिप्पे पड़ा। ये गीत अधिकांश में दो दो चार चार कड़ियों के रूप में होते हैं। अधिकतर एक दोहा होता है और फिर उसके अंत में एक लंबी टेक होती है, जिसको उच्च स्वर में दुहराते और मात्रा के सपाटे भरते जाते हैं।

जब यात्रियों की संख्या अधिक होती है, तो उनकी टोलियाँ बन जाती हैं, और उस समय, कुछ गीत ऐसे भी हैं जो प्रश्नोत्तर के रूप में गाए जाते हैं। एक टोली एक दोहा गाती है, तो उसके जवाब में दूसरी टोली एक दूसरा दोहा।

यहाँ इन गीतों के नमूने दिए जाते हैं :

राम नाम कहबो करौ रे, मोरे प्यारे, जब लौं घट में प्रान ।
कबहुँ कै दीनदयाल के रे, मोरे भइया, भनक परेगी कान ।
हो भजन बोलो सिया रघुबर के रे, भजनहिं में लगा दो बेड़ा पार हो ।

(५) बालगीत

बालक बालिकाओं के खेल संबंधी अनेक गीत इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। इनके सामान्य परिचय और उदाहरण निम्नांकित हैं :

(क) बालिकाओं के गीत—

(१) मामुलिया—भादों के महीने में (कहीं कहीं क्वार के कृष्णपक्ष में भी) बुंदेलखंड की बालिकाएँ एक रोचक गीतमय खेल खेलती हैं जो कुँवारी लड़कियों के किसी प्राचीन अनुष्ठान का अवशेष जान पड़ता है। इसे 'मामुलिया' कहते हैं। इसके लिये कोई विशेष तिथि या वार निश्चित नहीं है। प्रायः संध्या समय यह खेला जाता है।

खेल के लिये आँगन के बीच में थोड़े से स्थान को गाय या भैंस के गोबर से चौकोर लीपा जाता है। गोल चौक पूरकर बबूल की एक काँटेदार हरी शाखा बीच में रोप दी जाती है। यही 'मामुलिया' कहलाती है। पहले हल्दी और चावल से उसकी पूजा की जाती है, फिर उसके प्रत्येक काँटे में एक एक फूल खोंसकर उसे नाना प्रकार के रंग बिरंगे फूलों से सजाया जाता है। फिर भुने हुए चने, ज्वार के फूले, फूट, ककड़ी आदि का प्रसाद चढ़ाकर सब लड़कियाँ मामुलिया की परिक्रमा करती हैं। तत्पश्चात् उसे उखाड़कर नदी या तालाब में ले जाकर सिरा दिया जाता है।

लड़कियाँ यह सब करती हुई जो गीत गाती हैं, उनमें से कुछ यहाँ दिए जा रहे हैं :

(२) पूजन गीत—

चीकनी मामुलिया के चीकने पतौआ, बरा तरें लागी अथैया।
कै बारी भौजी बरा तरें लागी अथैया।
मीठी कचरिया के मीठे जो बीजा, मीठे ससुर जू के बोल।
करई कचरिया के करए जो बीजा, करए सास जू के बोल।
कै बारी बैया, करए सास जू के बोल।

(३) सुअटा—मामुलिया के बाद नवरात्र के दिनों में लड़कियाँ एक दूसरा खेल खेलती हैं जो 'सुअटा' या 'नौरता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके संबंध में यह दंतकथा प्रचलित है कि सुअटा नाम का एक दानव था। वह कन्याओं का अपहरण किया करता था। उसके अत्याचारों से दुखी होकर लड़कियों ने दुर्गा की शरण ली और व्रत रखना प्रारंभ किया। दुर्गा ने प्रसन्न होकर उस दानव का वध किया। तभी से लड़कियाँ यह व्रत मनाती चली आ रही हैं।

१४५ यह व्रत या खेल नवरात्र की प्रतिपदा से लेकर नवमी तक चलता है। दीवार पर पहले दिन ही मिट्टी से थोपकर सुअटा की मूर्ति बनाई जाती है। उसके दाएँ बाएँ चंद्रमा और सूरज बनाए जाते हैं।

प्रति दिन सुअटा का आवाहन किया जाता है और उसके आने के लिये गैल लीप दी जाती है। साथ ही उसके आने के स्थान को भी लीपकर उसमें रंग बिरंगे चौक पूरे जाते हैं।

प्रथम चार दिन तो लड़कियाँ दूध और पानी से सुअटा को पूजती हैं, शेष पाँच दिन दूध और कुम्हड़े के फूलों से। इन पाँच दिनों में प्रत्येक लड़की अपनी गौर की मूर्ति बनाकर लाती है। सुअटा के साथ उसकी भी पूजा अष्टमी के दिन संध्या समय होती है। उस दिन लड़कियाँ उबले हुए चने लाती हैं जिन्हें मसूसा कहते हैं। सुअटा को भोग लगाकर 'मोरी गौर कौ पेट चिरानौ सबेरे लडुआ हप्पूँ' कहकर खाती हैं। दूसरे दिन नवमी को पूजा के लिये विशेष पकवान—खुरमे और अठवाई (मैदा की छोटी छोटी कुरकुरी सिंकी आठ पूड़ियाँ) अपने अपने घर से बनवाकर लाती हैं। इन्हें मलियों में भरकर सुअटा और गौर की पूजा की जाती है।

(४) कायँ डालना—प्रातःकाल पूजा के जो गीत गाए जाते हैं उनमें लड़कियाँ बारी बारी से अपनी सब संगिनों के पिता का नाम लेती हैं। इसे 'कायँ डालना' कहते हैं। केवल कुँवारी लड़कियों की ही कायँ डाली जाती है। विवाहिता लड़कियाँ विवाह के पश्चात् विशेष रूप से पूजा करके नौरता उजै लेती अर्थात् उसकी पूजा करना छोड़ देती हैं।

अष्टमी के दिन लड़कियाँ एक कोरे घड़े में चारो ओर छेद करके उसमें दीपक रख, अपने सिर पर लेकर, मुहल्ले में घूमती हैं। इसे 'रिरिया' या कहीं कहीं 'झिझिया' निकालना कहते हैं। इस समय वे प्रत्येक घर के सामने जाकर गीत गाती हुई दच्छिणा माँगती हैं। कहीं तो अन्न और कहीं नगद पैसे उनको मिलते हैं। उससे मिठाई खरीदकर सब लड़कियाँ आपस में बाँटकर खा लेती हैं।

प्रातःकाल नौरता की पूजा के समय तो लड़कियाँ नाना प्रकार के गीत गाती ही हैं, संध्या को भी नौरता के पास इकट्ठी होकर गाती और खेलती हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं, दुर्गापूजा को ही लड़कियों ने खेल के रूप में अपना रखा है। बाहर के अनेक तत्व उसमें इस प्रकार मिल गए हैं कि उनके मूल रूप को पहचानना कठिन है।

यह सुअटा महिषासुर जान पड़ता है। संभव है, आर्येतर जातियों से

यह पूजा लड़कियों के अनुष्ठान के रूप में आई हो जो अब बिलकुल ही एक खेल बन गई है।

काएँ डालते समय का गीत :

हिमांचल जू की कुँवरि लड़ामंती नारे सुअटा।
गौरा बेटी नेरा तो अनइयो नौं दिना नारे सुअटा,
दसमें दिन करियो सिंगार ;
फलाने जू की कुँवरि लड़ामंती नारे सुअटा,
फलानी[1] बेटी, नेरा तो अनइयो बेटी।
नौं दिना नारे सुअटा दसमें दिन करियो सिंगार।
(इसी प्रकार सबका नाम ले लेकर काएँ डाली जाती हैं।)

(ख) बालकों के गीत

(१) खेल के गीत—

बाबूलाल बाबूलाल तेल की मिठाई।
दतिया की गैल में कुतिया नचाई।
कुतिया मर गई, कर लई लुगाई ॥

हल्कू टल्कू तीन तगा। मताई मलंगू बाप पदा ॥

हीरा बीनें कीरा, मकुंदे बीनें बेर।
गुरखुरू को काँटौ लग गओ, सब बगर गए बेर ॥

नथू नथोले। नग नग पोले। हुक्का सी तोंद चिलम से पोले।

पचू पाँच रोटी खायँ, आदी हारे लै जायँ।
कौआ चोंट चोंट खायँ, पचू लोट लोट जायँ।

(२) टहूके (छोटे कथागीत)—

अल्ल में गई, दल्ल में गई।
दल्ल में से लाकड़ ल्याई।
लाकड़ मैंने डुक्को दीनीं।
डुक्को मोय कोचो[2] दीनीं।

[1] यहाँ किसी लड़की का नाम लिया जाता है।
[2] कुचइया, छोटे आकार की मोटी रोटी।

कोचो मैंने कुम्हरै दीनीं ।
कुम्हरा मोय मटकी दीनीं ।
मटकी मैंने अहीरै दीनीं ।
अहीर मोय भैंस दीनीं ।
भैंस मैंने राजै दीनीं ।
राजा मोय रानी दीनीं ।
रानी मैंने बसोरे[1] दीनीं ।
बसोर मोय ढुलकी दीनीं ।
बाज मोरी ढुलकी टामक टूँ ।
रानी के बदलें आई तूँ ।

(ग) लोरी

झुला दो मैया स्याम परे पलना ।
काहू गुजरिया की नजर लगी है उलक बुलक दूध डारें ।
राई नोंन उतारौ जसुदा खुसी भए ललना । झुला दो मैया० ।
काहे के मैया बने हैं पालना, काहे के झुलना ।
सोनो को तो बनौ है पालना रेसम कौ झुलना ।
मात जसोदा लेत बलैयाँ जुग जुग जिओ ललना ।
झुला दो मैया० ।

(घ) जातियों के गीत

(१) चमारों का गीत—

आज दिखानी नइयाँ मोहनियाँ लाल ।
बागा ढूँढ़े बगीचा ढूँढ़े बैठी कौन डरैयाँ लाल ।
पुरा ढूँढ़े, मुहल्ला ढूँढ़े, बैठी कौन बखरियाँ लाल ।
कोटवा ढूँढ़े अटारी ढूँढ़े, बैठी कौन अथैयाँ लाल ।

(२) धोबियों का गीत[2]—

मोय चुनरिया ले दो भले से देवरा ।
चुनरी उपजे नानी कोटरा लुंगी गरौठा माँझ । भले से० ।

[1] बसोरिनें बाँस के बरतन बनाने के अतिरिक्त पुत्रजन्म तथा शादी विवाह के अवसर पर गाने बजाने का काम करती है ।

[2] धोबियों का यह गीत सूपा, गदई, राठी, गगरी के साथ गाया जाता है ।

(ङ) हास्य गीत

डुकरा तोखों मौत कितऊँ नैयाँ।
डुकरा की खाट मरैला[1] में डारी,
मरैला के भूत लगत नैयाँ।
डुकरा की खाट बमीठे[2] पै डारी,
करिया नाग डसत नैयाँ। डुकरा तोखों०।
डुकरा की खाट मड़ैया में डारी,
टूट बड़ेरा गिरत नैयाँ।
डुकरा की खाट नदी पै डारी,
आउत नदी बउत नैयाँ। डुकरा तोखों०।

(च) पहेलियाँ

अँधयारे घर में दई कौ छिटका।—रुपया
अगल बगल तक्का। बीच में भगोले कक्का।—अर्गल, बेंड़ा
अँधयारे घर में ऊँट बलबलाय।—चकिया
अम्म गड़े, दो खम्म गड़े, गढ़ी के राजा कूँद परे।—पैखाना
अँधयारे घर में दो बहुएँ बैठीं।—कुठिया[3]
अपुन तो कारी केवला सी।
बिटियाँ जाईं पठोला सी॥—कड़ाही और पूड़ी
अधिक गुलगुली अधिक सुकुवार।
माझैं टिकुली, ढिग ढिग[4] बार॥—नेत्र
अस खाने बस खाने।
बखत परे पै माँग खाने॥—अजवाइन[5]
अटारी पै सें उतरी, मड़ो[6] में पेट रै गओ[7]।—रोटी[8]
अदाफल मीठो सदाफल मीठो, नीबू कौ फल खाटो।
ऐसो फल ल्याइयो ककाजू जाके ऊपर काँटो॥—ककोरा साग

[1] श्मशान। [2] बमीठा, दीमक का भीटा। [3] रसोई घर में सामान रखने के लिये ये अगल बगल दो बनी होती हैं। [4] किनारे किनारे। [5] बच्चा होने पर यह खानी ही पड़ती है। [6] मढ़ा, अटारी के नीचे का कोठा। [7] गर्भ रह गया। [8] तवे से नीचे उतराकर रोटी आग पर सेंकने के बाद फूल जाती है।

८. ब्रज लोकसाहित्य

डा० सत्येंद्र

प्रथम अध्याय

अवतरणिका

१. सीमा

व्रज की सीमाओं पर पश्चिम में राजस्थानी, पश्चिमोत्तर में कौरवी, उत्तर में कुमाऊँनी, पूर्व में कनउजी, दक्षिण में बुंदेली के क्षेत्र पड़ते हैं। इनमें कनउजी और बुंदेली दोनों मध्यदेशीय अपभ्रंश की संतानें तथा व्रज की सहोदराएँ हैं। इन भाषाओं में प्रायः कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है, सिवाय दक्षिण में चंबल के, जो बहुत दूर तक व्रज को बुंदेली से अलग करती है।

२. क्षेत्रफल

व्रज क्षेत्र उत्तर प्रदेश और राजस्थान राज्यों में बँटा है। इसका क्षेत्रफल (वर्गमील) और जनसंख्या (१९५१ ई०) निम्नलिखित है :

जिला	क्षेत्रफल (वर्गमील)		जनसंख्या (१९५१)	
(क) उत्तर प्रदेश—				
१. बरेली		१, ५९२		१२, ६६, २३३
२. रामपुर (आंशिक)		३८४		२, १५, २०७
मिलक तहसील	१५६		९३, २५१	
शाहाबाद	१६७		९१, ८०३	
टाँडा	६१		३०, १५३	
३. मुरादाबाद (आंशिक)		१, ६८३		१२, ४३, ६६६
मुरादाबाद तहसील	३१६		३, ६८, ४७	
हसनपुर तहसील	५६९		२, ३८, ६७	
संभल तहसील	४७५		३, ४१, ५२१	
बिलारी तहसील	३३३		२, ६४, ६५१	
४. बदाऊँ		२, ०१४		१२, ५१, १५२
५. बुलंदशहर (आंशिक)		९१५		७, २६, ९४५
अनूपशहर तहसील	४५६		३, ८६, ७४६	
खुर्जा तहसील	४५९		३, ४०, १९९	

६. अलीगढ़	१, ६५०	१५, ४३, ५०६
७. एटा	१, ७१३	११, २४, ३५१
८. मैनपुरी	१, ६४७	६, ६३, ८६०
६. आगरा	१, ८६०	१५, ०१, ३६१
१०. मथुरा	१, ४५६	६, १२, २६४
योग	१६, २१४	१, ०७, ८१, ६०५

(ख) राजस्थान में—

११. भरतपुर

१२. धौलपुर

१३. करौली

३. ऐतिहासिक विकास

आज ब्रज-बुंदेली-कनउजी एक दूसरे के बहुत समीपस्थ सहोदर बहिनें हैं। इससे पता लगता है कि अपभ्रंश काल (५५०-१२०० ई०) में इनकी समानता और भी अधिक रही होगी। स्थानीय कुछ मामूली भेद के साथ उस समय इन तीनों भाषाओं के विशाल क्षेत्र में एक ही मध्यदेशीय अपभ्रंश की प्रधानता रही। प्राकृत काल (१-५५० ई०) की आरंभिक तीन शताब्दियों में शूरसेन जनपद की नगरी मथुरा उत्तर भारत की सबसे महत्वपूर्ण नगरी थी। यही शक क्षत्रप की राजधानी थी, यही उस समय सर्वोत्कृष्ट कला का केंद्र थी। यही कारण है जिससे शौरसेनी प्राकृत का इतना महत्व बढ़ा। शौरसेनी प्राकृत की औरस पौत्री ब्रजभाषा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। पालि काल (६०० ई० पू०) के आरंभ में उत्तर भारत के १६ जनपदों में शूरसेन भी एक था। उस समय यहाँ की कोई स्थानीय 'पालि' रही होगी। पूर्व वैदिक काल या ऋग्वेद के समय शूरसेन जनपद का न पता लगता है, न यहाँ तक आर्य पहुँचे थे। उत्तर वैदिक काल में कुरु और पांचाल की प्रधानता थी। आज पांचाल का पश्चिमी भाग ब्रजभाषी तथा पूर्वी भाग कनउजीभाषी है। हो सकता है, उस काल में शूरसेन में वैदिक पांचाली भाषा बोली जाती हो।

ब्रज का विकास उत्तर वैदिक > शूरसेन पांचाल की पाली > शौरसेनी प्राकृत > शौरसेनी अपभ्रंश के द्वारा हुआ। प्राकृत काल में तथा हाल की पिछली चार शताब्दियों में उसका महत्व बढ़ा।

द्वितीय अध्याय

गद्य

१. लोककथा

व्रज में लोककथा के कहने के कई अवसर और कई प्रकार हैं। एक अवसर तो अनुष्ठान विषयक होता है। विविध त्योहारों पर स्त्रियाँ विविध व्रत आदि का अनुष्ठान करती हैं और उस समय कहानी सुनना अनिवार्य होता है। ऐसे अवसर पर कही जानेवाली कहानियों को आनुष्ठानिक कहानी कहा जा सकता है। फिर, कहानियाँ कहने का एक अवसर वह होता है जब कोई बड़ा बूढ़ा अथवा बड़ी बूढ़ी दादी या नानी बच्चों के मनोरंजन, जिज्ञासातृप्ति, ज्ञानवर्धन और मन बहलाने के लिये अथवा खाली समय को काटने के लिये कहानियाँ सुनाती हैं। ऐसी कहानियों को बहुधा 'नानी की कहानी' कहा जाता है। इसी प्रकार पुरुषों में कोई कथा कहने के इतने शौकीन होते हैं कि अवसर मिलने पर अधियानों अथवा चौपालों पर बैठकर रोचकता और आनंद के लिये कहानी सुनाते हैं। इन्हें 'चौपाल की कहानी' कह सकते हैं। इसके बाद ऐसे अवसरों पर भी कहानियाँ कही जाती हैं जब किसी चर्चा के बीच में कोई दृष्टांत या उदाहरण देने की आवश्यकता प्रतीत होती है। ऐसे ही अवसर उस समय भी कहानी के उपयुक्त समझे जाते हैं, जब ढोला या आल्हा जैसे बड़े गीतों में पहरी समाप्त होने पर गानेवाला विश्राम का अवसर निकालता है। उस समय वह कोई मनोरंजक कहानी कहकर लोगों को ऊबने नहीं देता। अवसरों की उपयोगिता की दृष्टि से समस्त लोककथाओं को सात वर्गों में बाँटा जा सकता है—१. देवकथा, २. चमत्कारों की कहानी, ३. कौशल की कहानी, ४. जान जोखिम की कहानी, ५. पशु पक्षी की कहानी, ६. बुझौवल की कहानी, ७. जीवट की कहानी।

इन समस्त कहानियों को हम चार प्रकारों में बाँट सकते हैं :

(१) **आनुष्ठानिक**—ये व्रतों आदि के अवसर पर कही सुनी जाती हैं; इनका संबंध स्त्रियों से होता है।

कार्तिक में प्रत्येक दिन की एक स्वतंत्र कहानी होती है, अन्य देवी देवताओं की भी कहानियाँ कही जाती हैं। भैयादूज, अहोई आठें, करवा चौथ, स्याहू, आस भैया प्यास भैया, अनंत चौदस, गणपूजा आदि ऐसे अवसर हैं जिनपर कहानी सुनना अनिवार्य है।

(२) **विश्वासगाथाएँ**—किसी भी कार्य के लिये कारणनिरूपिणी ऐसी कहानियाँ प्रचलित हैं जिनपर कहनेवाला पूर्ण विश्वास करता है और जिन्हें अंग्रेजी में ईटियोलाजिकल कहा जा सकता है।

(३) **नीतिकथाएँ**—ऐसी कहानियों में अवसरोपयोगी कोई शिक्षा निहित होती है जो अवसर विशेष के लिये ही बनाई गई प्रतीत होती हैं।

(४) **मनोरंजन संबंधी**—ऐसी कहानियाँ जो मनोरंजन के काम में आती हैं अर्थात् जिन्हें नानी या दादी बच्चों को सुनाती हैं या चौपाल पर बैठकर कहानी सुनानेवाला श्रोताओं को सुनाता हैं।

व्रज में लोकमानस का व्यापक रूप उसकी लोककथाओं में ही अभिव्यक्त होता है। लोकमानस में भी एक कोटिक्रम होता है। अतः हमें व्रज की कहानियों में एक वर्ग ऐसी कहानियों का मिलता है जिनमें अत्यंत पुरातन अवशेष पाए जा सकते हैं। अधिकांश त्योहारों या व्रतों की आनुष्ठानिक कहानियाँ इसी वर्ग की होती हैं। ये कहानियाँ स्त्रियाँ बड़ी निष्ठा से कहती सुनती हैं। 'नागपंचमी' की कहानी उदाहरणार्थ निम्नांकित है :

नागपंचमी

एक गाम में एक लुगाई ई है। ब्वाके पीहर में कोई हतु नाओ। एक दिनाँ की बात। एक करियल स्याँपु एक घर में ते भाजिकैं आइ रह्यो ओ, ब्वा स्याँपु के पीछें ई पीछें एक आदिमी डंडा हात में लएँ ब्वाइ मारिबे कूँ आइ रह्यो ओ। करनी को खेल, बु लुगाई ब्वाँई बखत घूरे पै कतना भरिकैं कूरो डारिबे आई। स्याँप पै ब्वाई तसुं आइयो। ब्वाने वाके ऊपर अपनो कतना दाबि दीयौ। सबु आदिमी तौ हटि गए। बु म्वाँई ठाड़ी रही। स्याँप ने कही—'आजु ते तू मेरी धरम की बैहन और मैं तेरो भैया।' लुगाई ने कही—'भैया, मेरे पीहर में कोई हतू नाएँ। आजु ते तेरो ही घरु मेरो पीहरु। सामन में मोइ लैबे कूँ अइयो।'

सामन आयौ। सब भैया अपनी बहिनिन्नें लैबे कूँ आए। स्याँपु ऊ अपनी धरम की भैनिऐ लैबे कूँ आयौ। बहिन् नें खूबु आदरु भावु कर्यौ। डलिया कोथरी करी। स्याँप नैं डलिया कोथरी तौ अपनी पीठि पै बाँधी औरु अपनी धरम बैहनिऐ लैकें चलि दीयौ। एक करील के नीचे ब्वाकी बाँबी ई। बाँबी के ऊपर ब्वाने अपनी बहिन उतारी। राति भई और बु सोइ गई। स्याँपु अपनी सोउती बहिनिऐ भीतर लै गौ। म्वाँ बड़े बड़े महल बनि रहे। मनिन के दीए जरि रहे। बु स्याँपु सबु स्याँपन को सरपंचु ओ। कुनबा ब्वाकौ बड़ौ ओ। एक बूढ़ी माँ, इकु बाप और भौतु से भैया ए। जब सबु स्याँपु बाहिर चले जाएँ तब बु बूढ़ी माँ कहै—'बेटी

अपने भैया भतीजन कूँ दुधु सिराइ दै।' बु रोजु कटोरन में दूधु सिराइ दओौ करै। नैंक खटका कर दे। व्वाइ सुनिकें सबु स्याँप आइ जाइँ।

एक दिनाँ की बात। हौंनी बलमान। दूध तातौ रहिगौ औरु व्वाने खटका करि दीयौ। केतौ बिन्ने दूधु पीयौ सोई सबके भौंह पजरि गए। छोटे छोटे स्याँप तौ रिस्याए। परि वा पंच स्याँप और व्वाकी माँ ने सबु चुप्पु करि दीए।

सामन बीति गयो। सनूनोंऊ हैगो। व्वाने अपने सबु भैयान कें राखी बाँधी। लुगाई ने कही कि भैया अब मोइ जान दे। स्याँपु ने कही कि मैं मेहमान पै खबरि करिवे जातूँ। उनई के संग तोइ बिदा करूँगो। स्याँपु महमानें संगई लिवाइ लायौ। बड़ी खातिरदारी करी। बिदा को समैया आयो। बिदा में स्याँप ने अपनी बहिन ऐ एकु मनिन कौ हारु दीयौ और बु दोऊ बिदा है गए। स्याँप ने कही कै भैना, अब मैं तोइ लैवे कूँ आऊँ तबई आइ जइयौ। भैनिनें कही कि अच्छा।

महमान बिदा होंती पोत अपनों एकु दुपट्टा भूलि आयौ। बु रस्ताई में ते दुपट्टा ऐ लैबै कूँ गयौ। व्वाइ करील के पेड़ के सिवाइ कछू न पायौ। परि व्वा करील पै दुपट्टा टँगि रह्यौ। ब्वाइ घर कूँ लै आयो।

एक दिनाँ कहा भयौ कि बु लुगाई अपनी छत्तिऐ लीपि लहेसि रही और व्वा मनिन के हार ऐ पहरि रही ई। व्वा सहरपना की जो रानी हति, काई ब्वाकी नजरि ब्वा हार पै पर गई। रानी घर आइकें खटपाटीं लेकें परि रही। राजा नें कारनु बूझ्यौ। ब्वाने हार लैबे की राजी परगट करी। राजा ने ब्वाई लुगाई को मालिकु बुलायौ और हार की बात पूछी। ब्वाने कही कि मेरी मोट्यिा (बहू) ऐ वु ब्वाके पीहर ते मिल्यौ ऐ। राजा नें कही के द्वै दिना कूँ हमें ब्वा हारऐ दे जा। व्वाई नमूना कौ एकु हारु बनबामनों ऐ। व्वाने हारु लाइकें दै दियौ।

कै तो रानी ने बु हारु पहर्यौ सोई व्वामें स्याँपई साँपि। फिर राजा ने वुही बुलायौ, परि व्वाकी हिम्मति व्वा हारऐ उतारिबे की न परी। फिर व्वाने अपनी लुगाई भेजी। व्वाने बु हारु रानी के गरे में ते उतारि लीयौ, बु फिरि मनिन को हारु हैगौ।

राजा ने भेदु पूछ्यौ। व्वाने सब बात बताइ दई।

(ऐसी प्रत्येक कहानी में टोटके का भाव रहता है। महात्म्य कथा की भाँति कहानी के अंत में यह कहा जाता है कि ऐसौई सबु काऊ कूँ होइ। इन कहानियों में अपने लिये और शेष सबके लिये मंगलकामना ओतप्रोत रहती हैं।)

(२) कहानियों में अभिप्राय[1]

ब्रज की कहानियों में हमें निम्नलिखित अभिप्राय तत्व प्रमुख रूप से मिलते हैं :

(१) प्राणप्रवेश--एक शरीर से प्राण छोड़कर दूसरे में प्रवेश करना। प्राणप्रवेश करना एक विद्या मानी गई है। इस विद्या को मूलतः जाननेवाले नट माने गए हैं। एक नट ने कच्चे सूत की डोरी आकाश में फेंकी। उसका सूत सीधा आकाश में दूर तक खड़ा चला गया। नट उसपर चढ़कर ऊपर गया। वहाँ से उसके हाथ, पैर तथा अन्य अंग कट कटकर गिरे। नटिनी सती हो गई। नट भी जीवित आकाश से लौट आया। बुलाए जाने पर नटिनी राजा के महलों में से निकली।

राजा ने विद्या सीखी—उसके साथ जानेवाले नौकर या नाई ने भी सीख ली। राजा ने जब परीक्षार्थ अपना शरीर छोड़कर मृत तोते में प्रवेश किया, तभी नौकर ने अपना शरीर छोड़ राजा के शरीर में प्रवेश किया। यह घटना कथासरित्सागर में योगानंद के संबंध में दी हुई है। योगानंद मृत नंद के शरीर में प्रवेश कर गया था।

(२) प्राणों की अन्यत्र स्थिति--प्राणप्रवेश में भी शरीर को प्राणों से भिन्न वस्तु माना गया है। शरीर से प्राणों की पृथक्ता की कल्पना कर प्राणों की अन्यत्र स्थिति मानी गई है। प्राणों की यह पृथक् स्थिति दानवों (दानों) में मिलती है। उनके प्राण किसी बगुले में, किसी तोते में रहते हैं। यह बगुला या तोता कहीं किसी जल से घिरे स्थान में, साँप बिच्छुओं से लदे किसी वृक्ष पर टँगा होता है। पिंजड़े पर हाथ लगते ही प्राणाधिकारी व्यक्ति के सिर में दर्द होने लगता है। नायक उसे मार ही डालता है। ढोला में राजा नल ने मौमासुर दानो को इसी प्रकार मारा था। प्राणों की स्थिति की एक कहानी में एक राजकुमार के प्राणों को हार में माना गया है। उसकी विमाता जब हार पहन लेती है तब राजकुमार मृत हो जाता है। जब उसे उतारकर रख देती है, कुमार जीवित हो जाता है।

(३) चीर पर लेख—ऐसी सभी कहानियों में जिनमें कुरूप वर के स्थान में कोई सुंदर वर आपन्न किया जाता है, बहुधा यह उल्लेख रहता है कि उस वर ने उस सुंदरी के चीर के एक छोर पर अपनी आँख के काजल से अपना वृत्त लिख दिया। वह सुंदरी तब उसी अज्ञात राजकुमार अथवा पुरुष को अपना वास्तविक पति मानती है।

(४) पहेली सुलझाना—पहेली सुलझाने अथवा पहेली बुझाने से

[1] अभिप्राय से तात्पर्य मोटिफ से है।

कहानियों में कहीं तो प्राणरक्षा का उल्लेख हुआ है, कहीं राज्यरक्षा, कहीं अभीप्सित वस्तु अथवा प्रेमिका मिली है। कथासरित्सागर में वररुचि ने ऐसी ही एक पहेली बूझकर राक्षस को अपना ऐसा मित्र बना लिया कि स्मरण करते ही वह उपस्थित हो जाता था।

(५) सत की रक्षा—ऊपर अवधि माँगने का उपाय भी सत की रक्षा का ही एक उपाय है। सत की रक्षा की अद्‌भुत युक्ति कथासरित्सागर की 'उपकोषा' की कहानी में मिलती है। ब्रज में ठाकुर रामप्रसाद की कहानी में उसी का एक ग्रामीण रूपांतर मिलता है।

(६) सत की तौल—कहानियों में पुष्पों को सत की तौल माना गया है। यह पुरुषसंसर्ग में आने से पूर्व का सत है। जब तक कुमारी का किसी पुरुष से स्पर्श नहीं होता, वह फूलों से तुल जाती है। स्पर्श हो जाने पर वह फूलों से नहीं तुल पाती। यह सत की तौल केवल सत की परीक्षा के लिये ही नहीं है, गुप्त रूप से किसी पुरुष का संबंध कुमारी से हुआ है इसका भी भेद खोलनेवाली है। कथासरित्सागर में सत की परीक्षा के लिये शिव जी ने पति पत्नी को एक एक कमल दे दिया है। सत डिगने पर यह कमल मुरझा जानेवाला है।

(७) आपत्तिसूचना के साधन—जैसे कथासरित्सागर में सत की सूचना कमल से मिलती है, वैसे ही संकट अथवा आपत्ति की सूचना देने की भी कई विधियाँ हैं। एक कहानी में दूध का कटोरा माँ को दिया गया है। दूध यदि रक्त हो जाय तो पुत्र संकट में होता है। मित्रों ने परस्पर फूल दिए हैं। मुरझाने पर मित्र पर संकट आने की सूचना मिलती है। एक कहानी में आम का पौधा दिया गया है। पौधा मुरझा जाय तो समझना होगा कि नायक मर गया।

(८) भावी आपत्ति की सूचना—कई विलक्षण कहानियों में भावी आपत्ति की सूचना और उनके निवारण का उपाय भी दिया गया है। यह सूचना तोतों अथवा पक्षियों के जोड़ों द्वारा हमें ब्रज की एक लोककहानी में मिलती है। 'भैया दोज' कहानी में आगामी संकट की सूचना गौरैया ने दी है। डेनमार्क और जर्मनी की कहानी में कौए सूचना देते हैं। एक दूसरी कहानी में अभिशाप रूप में वृक्षस्थित देवताओं की वाणियाँ सूचना देती हैं। ब्रज की एक कहानी में यह सूचना घोड़े द्वारा भी दी जाती है। दक्षिण की एक कहानी 'राम लक्ष्मण' में संकट या आपदाओं की सूचना उल्लू के जोड़े ने दी है।

(९) भावी संकट—बहुधा ये भावी संकट तीन अथवा चार प्रकार के होते हैं :

(१) वृक्ष या उसकी शाखा टूटकर गिरना।

(२) द्वार का गिरना।

(३) सर्प का काटना।

२. लोकोक्तियाँ

(१) कहावतें—सभी लोकसाहित्य कहावतों के अखंड भंडार होते हैं। पग पग पर, बात बात में कोई न कोई चुभती उक्ति कहावतों के रूप में सुनने को मिलती है। ये कहावतें दो प्रकार की कही जा सकती हैं—(१) सामान्य, (२) स्थानीय। सामान्य कहावतें प्रायः सर्वत्र प्रचलित हैं और एक सी हैं। स्थानीय कहावतें ग्रामविशेष में ग्रामीण घटनाओं अथवा आवश्यकताओं के आधार पर बन जाती हैं और प्रायः वहीं प्रचलित रहती हैं।

कहावतें लोकोक्ति का एक अंग हैं जो निश्चय ही विशेष अभिप्राय से प्रचलित होती हैं। ब्रज की कहावतों के उपयोग में साधारणतः चार दृष्टियाँ मिलती हैं :

एक दृष्टि है पोषण की। यदि किसी व्यक्ति ने कोई बात देखी या सुनी है, तो वह उसकी पुष्टि में कोई कहावत कहकर अपने निरीक्षण पर प्रमाण की छाप लगा देता है; जैसे—'गाय न बाछी नींद आवे आछी'।

दूसरी दृष्टि है नीति कथन की जिससे संबद्ध कतिपय कहावतें निम्नांकित हैं :

'जहाँ की गैल नायँ चलनीं वहाँ के कोस गिनिबे कौ कहा काम ?'

'आरकस नींद किसानैं खोवै, चोरै खोवै खाँसी। टका ब्याज बैरागिऐ खोवै, राँड़ै खोवै हाँसी।'

'गुन घटि गए गाजर खाएँ ते। बल बढ़ि गयौ बाल चबाए ते।'

तीसरी दृष्टि है आलोचना की। जैसे :

'गैल में हँसे और आँख नटेरै।

'मारै और रोमन न दे।'

'घर में बैदु, मरी मइया।'

'गदहाए दयौ नोंन, गदहा ने जानी मेरी आँख फोड़ी।'

'गदहा कहा जानैं गुलकंद कौ सवाद।'

'बंदर का जानै अदरक कौ सवाद।'

चौथी दृष्टि है 'सूचन' की। ऐसी कहावतों में ऋतु, खेत, व्यवसाय, व्यवहार आदि की सूचना रहती है। ये ज्ञानवर्धक कहावतें होती हैं।

(क) जातिपरक कहावतें—

कायथ

कायथ बच्चा पढ़ा भला या मरा भला।

ब्राह्मण

बामन, कुत्ता, नाऊ, जाति देखि घुर्रांऊ॥

मरी बछिया बामन के सिर ॥
जौलौं गोकुल में गोसाईं, तौलौं कलजुग नाईं ॥

जाट

जाट कहै सुन जाटिनी, याही गाम में रहनौं ।
ऊँट बिलाई लै गई, तौ 'हाँ जी, हाँ जी' कहनौं ॥

नट विद्या जानी, पर जट विद्या नाहिं जानी ।

बनियाँ

जानि मारै बानियाँ, पहचान मारै चोर ॥
जाकौ बनियाँ यार, ताकूँ नहिं बैरी दरकार ॥

(ख) विविध कहावतें--

लोकोक्तियों के कुछ अन्य प्रकार भी प्रचलित हैं। वे हैं :

(१) अनमिल्ला, (२) भेरि, (३) अचका, (४) औठपाव, (५) गहगड्ड, (६) औलना, (७) खुसी। ये सभी पद्यबद्ध होते हैं।

अनमिल्ला--इसमें नाम के अनुरूप अनमिल बातों का एक साथ उल्लेख रहता है। इसके प्रथम चरण में पद्यानुकूल गति रहती है किंतु दूसरे चरण में प्रायः वह गति पंगु कर दी जाती है :

भैंस बिटौरा चढ़ि गई, टपटप पैंचू खाय ।
उठाय पूँछ देखन लगे, दिवाली के तीन दिना ॥
× × ×
पीपर बैठी भैंसि उगारै, ऊँट खाट पै सोवै ।
पीछें फिरि कें देखि लुगाई, अँगियाऐ कुत्ता धोवै ॥

पीपर की एक शाखा कटी पड़ी थी, उसपर भैंस बैठकर जुगाली कर रही थी। हाल ही में एक ऊँटनी के बच्चा हुआ था। उसका बच्चा खाटपर रखकर ऊँटवाले ले जा रहे थे। उधर एक कुत्ता चौकी का झाड़न कहीं से ले आया था। वह झाड़न पुरानी फटी अँगिया का था। उसे वह कुत्ता नाली में बैठकर झकझोर रहा था। इन विविध दृश्यों को एक में मिलाकर समासोक्ति से अद्भुत कर दिया गया है।

अचका--

पीपर पैते उड़ी पतंग, जौ कहुँ लगि जाय मेरे अंग ।
मैंने दै दई बजुर किवार, नहिं उड़ि जाती कोस हजार ।

ऐसे अचकों का प्रयोग भादों की 'डंडा चौथ' के गीतों में बहुत होता है।

मेरी परोसिनि कूटै ध्यान, भनक परि गई मेरे कान,
बाइ परयौ घानन कौं लालौ, मेरे हाथनु पर गयौ छालौ।

भेरि—इसमें अंतिम अर्धाली एक सी होती है, जैसे—'गड़ुआ गढ़त है गई भेरि।' उदाहरण :

कचौ मतौ ग्वाँ दिनाँ कियौ,
आधौ घर खाती कूँ दीयौ।
अब लीयौ घर लकड़ीनु घेरि,
गड़ुवा गढ़त है गई भेरि।

खुसी—यह ऐसी ही बातों के कहने का दूसरा ढंग है। खुसी में दोष की तीन बातें बताई जाती हैं और अंतिम अर्धाली का रूप बँधा होता है :

एक तौ लँगड़ी घोड़ी,
दूजी जामें चाल थोड़ी।
तीजे जाकौ फाट्यौ जीन,
खुसी ऊपर खुसी तीन।

ओठपाय—में जान बूझकर किए गए कुछ कामों का परिणाम दिखाया जाता है। इसकी अंतिम अर्धाली होती है—जिही मरिबे के ओठपाय :

एक आँखि तौ कूआ कानी, दूसरी लई मितकाय।
भीति पै चढ़िकैं दौरन लाग्यौ, जेई मरिबे के ओठपाय।

ओलना—कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें लोकोक्तिकार सुखदायक वस्तुओं की संयोजना कर देता है। जैसे :

रिमझिम बरसै मेह, कि ऊँची रावटी।
कामिन करै सिंगार, कि पहरैं पामटी।
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना।
इतना दे करतार फेरि ना बोलना।

गहगड्ड—में सुख की भावना को 'मचे गहगड्ड' द्वारा अभिव्यक्त किया गया है :

किनक कटोरा घ्यौ घना, गुर बनिए की हट्ट।
तपूँ रसोई जेओ मुसाफिर, औ माँचै गहगड्ड।
—नहीं गहगड्ड, नहीं गहगड्ड।

सेत फूल हरियाई डंडी, औ मिरचों के ठट्ट।
हम घोटें तुम पियौ मुसाफिर, यों माँचै गहगड्ड।
—मचै गहगड्ड, मचै गहगड्ड।

(२) पहेलियाँ—लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर लोकोक्ति के दो प्रकार माने जा सकते हैं, एक पहेली, दूसरी कहावत। पहेली भी लोकोक्ति है। लोकमानस इसके द्वारा अर्थगौरव की रक्षा करता और मनोरंजन प्राप्त करता है। यह बुद्धि-परीक्षा का भी साधन है।

पहेलियों को संस्कृत में 'ब्रह्मोदय' कहा गया है। पहेलियाँ केवल बच्चों के मनोरंजन की वस्तु नहीं, ये समाजविशेष की मनोज्ञता प्रकट करती और उसकी रुचि पर प्रकाश डालती हैं। ये बुद्धिमापक भी हैं और मनोरंजक भी। ये सभ्य और असभ्य सभी कोटि के मनुष्यों और जातियों में प्रचलित हैं। भारतवर्ष में तो वैदिक काल से ब्रह्मोदय का चलन मिलता है। अश्वमेध यज्ञ में तो ब्रह्मोदय अनुष्ठान का ही एक भाग था। अश्व की वास्तविक बलि से पूर्व होता और ब्रह्मा ब्रह्मोदय पूछते थे। इन्हें पूछने का केवल इन दो को ही अधिकार था। पहेलियों का आनुष्ठानिक प्रयोग भारत में ही नहीं, संसार के अन्य देशों में भी मिलता है।

(क) पहेलियों का वर्गीकरण—ब्रज से प्राप्त पहेलियों के विषयों को हम साधारणतः सात वर्गों में बाँट सकते हैं :

पहला—खेती संबंधी। इसमें आते हैं : कुआँ, फुलसन, पटसन, मक्के का भुट्टा, मक्के का पेड़, हल जोतना, चर्स, वर्त, चाक, खुरपा, पटेला, पुर।

दूसरा—भोजन संबंधी। इसमें आते हैं : तरबूज, लाल मिर्च, पूआ, कचौड़ी, बड़ी, सिंघाड़ा, खीर, पूरी, घी, मूली, अरहर, गेहूँ, ज्वार का भुट्टा, आम, ज्वार का दाना, टेंटी, कढ़ी, तिल, बेर, खिरनी, अनार, कचरिया, गाजर, जलेबी।

तीसरा—घरेलू वस्तु संबंधी। इसमें आते हैं : दीपक, मूसल, हुक्का, जूती, लाठी, जीरा, कैंची, पान, चक्की, ईंट, अशर्फी, हँसली, पंसेरी, तवा, ढेंकली, कढ़ाही, चर्खा, कठौती, आटा, खाट, सुई, डोरा, चलामनी, परिया, किवाड़, ईंडुरी, कागज, जेवरा, छींका, फावड़ा, शंख, दांतुन, कुर्ता, पाजामा, कुटी, पचल, चूल्हे की आग, तराजू, रुपया, रूई, चलनी, काजल, मोरी, छप्पर, दीवार, अँगिया, कलम, मेहँदी, ताला।

चौथा—प्राणी संबंधी। इसमें आते हैं : जूँ, बर्र, चिरोटा, दीमक, खरगोश, ऊँट, मधुमक्खी, भैंस, हाथी, भौंरा।

पाँचवाँ—प्रकृति संबंधी। इसमें आते हैं : दिन रात, ओस, तारे, चंदा, सूर्य, दीमक का घर, ओला, छाहँ, जवासा, छेर, ढाक का फूल, काई, बया का घोंसला, करील, आकाश, फरास, चिरमिटी, बिजली।

छठा—अंग प्रत्यंग संबंधी। इसमें आते हैं : दाढ़ी, नाक, शरीर, जीभ, दाँत, आँख, सींग, कान।

सातवाँ—अन्य। इसमें आते हैं : उस्तरा, बंदूक, चाकू, बर्छी, आरी, रेल, सड़क, तबला, कुम्हार का अवाँ, मुश्क।

इस विश्लेषण से विदित होता है कि पहेलियाँ उन्हीं विषयों पर हैं जो ग्रामीण वातावरण से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। सबसे अधिक विषय घरेलू वस्तुओं से संबंधित हैं। भोजन संबंधी वस्तुओं को भी घरेलू समझा जाय तो पहेलियों के विषयों में से दो तिहाई इसी वर्ग के ठहरते हैं। व्यवसाय संबंधी विषय विशेष नहीं हैं। खेती के भी गिने चुने विषय ही हैं। अन्य व्यवसायों में कुम्हार और कोरी की कुछ वस्तुओं को पहेलियों का विषय बनाया गया है। प्राणियों में भी बहुत कम जीवों का उल्लेख हुआ है। जूँ पर कई पहेलियाँ मिलतो हैं।

पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का ही वर्णन होती हैं। यह वर्णन ऐसा है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा वस्तु के उपमान के रूप में आता है। यह स्वाभाविक ही है कि गावँ की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिए जायँ।

(ख) उदाहरण--

तू चलि मैं आई।—(किवाड़)
अजापुत्र को शब्द लै, गज को पिछलौ अंक।
सो तरकारी लाय दै, चातुर मेरे कंथ॥--(मेंथी)
पोखरि की पारि पै अचंभौ बीतौ,
भरि दियौ खूब उठाय लियौ रीतौ।—(कच्ची ईंट)
चार पाम की चापरचुप्पो, वा पै बैठी लुप्पो।
आई सप्पो लै गई लुप्पो, रह गई चापरचुप्पो।--
(भैंस पर मेंढकी)

पाँचवाँ—प्रकृति संबंधी। इसमें आते हैं : दिन रात, ओस, तारे, चंदा, सूर्य, दीमक का घर, ओला, छाहँ, जवासा, छेर, ढाक का फूल, काई, बया का घोंसला, करील, आकाश, फरास, चिरमिटी, बिजली।

छठा—अंग प्रत्यंग संबंधी। इसमें आते हैं : दाढ़ी, नाक, शरीर, जीभ, दाँत, आँख, सींग, कान।

सातवाँ—अन्य। इसमें आते हैं : उस्तरा, बंदूक, चाकू, बर्छी, आरी, रेल, सड़क, तबला, कुम्हार का अवाँ, मुश्क।

इस विश्लेषण से विदित होता है कि पहेलियाँ उन्हीं विषयों पर हैं जो ग्रामीण वातावरण से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। सबसे अधिक विषय घरेलू वस्तुओं से संबंधित हैं। भोजन संबंधी वस्तुओं को भी घरेलू समझा जाय तो पहेलियों के विषयों में से दो तिहाई इसी वर्ग के ठहरते हैं। व्यवसाय संबंधी विषय विशेष नहीं हैं। खेती के भी गिने चुने विषय ही हैं। अन्य व्यवसायों में कुम्हार और कोरी की कुछ वस्तुओं को पहेलियों का विषय बनाया गया है। प्राणियों में भी बहुत कम जीवों का उल्लेख हुआ है। जूँ पर कई पहेलियाँ मिलतो हैं।

पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का ही वर्णन होती हैं। यह वर्णन ऐसा है जिसमें अप्रकृत के द्वारा प्रकृत का संकेत होता है। अप्रकृत इन पहेलियों में बहुधा वस्तु के उपमान के रूप में आता है। यह स्वाभाविक ही है कि गावँ की पहेलियों में ऐसे उपमान भी ग्रामीण वातावरण से ही लिए जायँ।

(ख) उदाहरण--

तू चलि मैं आई।—(किवाड़)
अजापुत्र को शब्द लै, गज को पिछलौ अंक।
सो तरकारी लाय दै, चातुर मेरे कंथ॥--(मेंथी)
पोखरि की पारि पै अचंभौ बीतौ,
भरि दियौ खूब उठाय लियौ रीतौ।—(कच्ची ईंट)
चार पाम की चापरचुप्पो, वा पै बैठी लुप्पो।
आई सप्पो लै गई लुप्पो, रह गई चापरचुप्पो।--
(भैंस पर मेंढकी)

तृतीय अध्याय

पद्य

१. लोकगाथा (पवाँड़ा)

पद्य में लोकगाथाएँ (पँवाड़े) और लोकगीत प्रचलित हैं। इन्हीं में ढोला है। ढोला एक लोकमहाकाव्य है। इसकी शोध के आधार पर ब्रज में ढोला का आदि प्रवर्तक लोहबन का मदारी माना जा सकता है। कहा जाता है, उसने नगरकोट में 'ढोला मारू रा दोहा' सुना। उसी कथानक को ढोले में उसने बनाया। इसे अधिक विस्तृत और व्यवस्थित रूप देने का श्रेय गढ़पति को है। गढ़पति का ढोला ही अधिकांश में गाया जाता है।

(१) राँझा—एक राग का नाम है। वस्तुतः राँझा इस काव्य का नायक है, नायिका हीर है। इसका कथानक लोकप्रसिद्ध है। हीर राँझे की कहानी किसी न किसी रूप में सर्वत्र बिखरी मिलती है। यह मूलतः पंजाब की कहानी है। पंजाब में इस कहानी का विशेष प्रचलन है। यह प्रेमगाथा है। ब्रज के गाँवों में भी इसके गायकों का अभाव नहीं है।

प्रेमगाथा की परंपरा में हम प्रायः सूफी कवियों को ही पाते हैं। जायसी और नूर मुहम्मद ने उस शाखा को पल्लवित, पुष्पित किया था। आज भी ब्रज में प्रेमगाथा के गानेवाले अधिकांश मुसलमान ही हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि इसे हिंदू गाते ही नहीं; वे भी इसे गाते हैं, किंतु उन्होंने उसे सीखा मुसलमानों से ही है।

इसका विस्तार भी ढोले की भाँति बहुत बढ़ गया है। अनेक ऐसे तत्व इसमें आ गए हैं, जिनको खींच तानकर इसमें मिला दिया गया है। उदाहरणार्थ गोरखनाथ जी से राँझे को गुरुदीक्षा दिलवाई गई है। इसका विस्तार किसी भी दिशा में ढोले से कम नहीं। इसका विभाजन भी ढोले की भाँति पहरियों में हुआ है किंतु इसके गीत और छंदों में ढोले की सी बहुरूपता नहीं पाई जाती। यह चिकारे (एकतारा) पर गाया जाता है। ढोले की भाँति इसमें भी सुरैया होता है।

(२) जाहरपीर—का गीत भी एक महाकाव्य है। इसपर शैव और नाथ संप्रदायों का स्पष्ट प्रभाव है। जाहरपीर का दूसरा नाम गुरु गुग्गा है। यह बीकानेर के पास बागर के राजा देवराय जी के पुत्र थे। इनकी रानी का नाम बाछल था। राजा पुत्रहीन थे। एक बार गुरु गोरखनाथ जी आ पहुँचे। उनके आशीर्वाद से जाहरपीर उत्पन्न हुए। एक ही साथ पाँच पीर इन्हीं की करामात से हुए :

१. जाहरपीर।
२. सरवर सुलतान।
३. लीला घोड़ा।
४. मज्जू चमार।
५. नरसिंह पांडे।

ये पंच पीर के नाम से प्रसिद्ध हुए। लीला बछेड़ा जाहरपीर की सवारी में रहा। एक दिन जाहरपीर ने सात समंदर पार किया। सिरियल नामक राजकुमारी को स्वप्न में देखा। स्वप्न में ही साढ़े तीन भाँवरें पड़ गईं। जगकर जाहरपीर वहाँ गए। युद्ध हुआ और वे सिरियल को जीतकर ले आए। अंत में दोनों स्त्री पुरुष पृथ्वी में समा गए।

यह भी ढोला की भाँति पहरियों में बँटा है। प्रत्येक पहरी के अंत में कहा जाता है—'जाहरपीर की मदद' और साथ में डमरू सारंगी बजती हैं। दो चीजें और साथ में रहती हैं—चँदोवा और चाबुक। चँदोवा पर जाहरपीर के जीवन की मुख्य घटनाएँ चित्रित होती हैं। चाबुक लोहे का बना हुआ होता है। इसे भी टाँगा जाता है। यह चाबुक शाक्तों में भी प्रचलित है। भैरव जी के साथ भी चाबुक की पूजा होती है।

छंद सधुकड़ी है और भाषा भी वैसी ही है। इसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :

गुरु गैला गुरु बावरा, घरै गुरु की सेवा हो।
चेला गुरु ते अति बड़ो, तौऊ कर गुरु की सेवा हो॥

रानी बाछलि देवराज से कहती है :

अन्न बिहूना जग बग सूना, बस्तर सूनी काया।
कंठ नारि बिन कविता सूनी, बेटा बिन सूनी माया॥

जाहरपीर वस्तुतः धार्मिक अनुष्ठान का गीत है। जिस प्रकार देवी के गीत गाए जाते हैं और देवी की ज्योति जगाई जाती है, उसी प्रकार जाहरपीर की ज्योति जगाई जाती है।

२. लोकगीत

(१) **ढोला**—ब्रज के लोकगीतों में कहानियों की प्रचुरता है। कुछ गीत तो बहुत लंबे और कई दिन तक चलनेवाले होते हैं—ऐसे गीत बहुधा पुरुष ही गाते हैं। इनमें 'ढोला' सबसे अधिक लोकप्रिय है। इनमें राजा नल और उसके पुत्र ढोला की अद्‌भुत और रोमांचक कहानी गाई जाती है। नरवर के

राजा नल पर जन्म से ही आपत्तियाँ पड़ीं। इन आपदाओं से किस प्रकार वह बचा, कैसे कैसे अद्‌भुत साहस के कार्य उसने किए और उसके पुत्र ढोला का किस प्रकार शैशव में विवाह हुआ और किस प्रकार गौना हुआ, यह समस्त वृत्त जो प्रेम और साहसिक कृत्यों से परिपूर्ण हैं, 'ढोला' कहलाता है। ढुलैया ढोले को ऊँची किंतु बहुत पैनी आवाज में चिकारे पर गाता है। उसके गायन से एक समा बँध जाता है।

नल भयानक जंगल में पैदा होता है। उसे एक सेठ अपना धेवता मान कर उसकी माँ के साथ अपने घर ले जाता है। कुछ बड़ा होने पर, नल अपने सेठपुत्र मामाओं के जहाज पर व्यापार करने जाता है, तो मोतिनी से साक्षात्कार होता है। वह दाने (दानव) की पुत्री है। दाने को मारकर नल उससे विवाह करता है। मार्ग में उसके मामा नल को समुद्र में ढकेल देते हैं। समुद्रगर्भ में वासुकि नाग उसका मित्र बन जाता है। नल घर लौटता है और कौशल से अपने धर्म मामाओं के चक्र में से मोतिनी को प्राप्त करता है। जुए में सर्वस्व हारकर अपनी दूसरी रानी दमयंती के साथ नल बाहर निकल पड़ता है। कितने ही संकट पड़ते हैं। इसी संकटकाल में ढोला का जन्म होता है। उसी शैशव में मारू से उसका विवाह हो जाता है। इसके लिये नल को कितने ही साहस के कार्य करने पड़ते हैं। अच्छे दिन लौटने पर ढोला मारू का गौना बड़ी कठिनाइयों से होता है।

कहानी बहुत लंबी है। इसका एक उदाहरण यह है :

ताते से पानी मरमनि धरयौ ततैंरा, सीरे लिए समोय।
हंसकुमारि मारू पद्मिनी जामें न्हाई लई बदन भकोरी
चंदन चौकी लई डारि, कुँमरि नाइन बुलवाई।
तेल फुलेल संग लिए आई।
लंबे लंबे केस कनफटी चुपटे।
चतुर नारि गुहि दावीं बैंनी।
सुआ सारी नाक तनक बनी फुलकी पै पैंनी।
बेंदा दिपै लिलार।
बुध राजा की मारवैं जैसे ससि निकरयौ फोरि पहार।
थोरेई थोरे जाके हौटि, तमोलिन बसि रही।
बीर ममर की मारू पतिभरता ने, पहरयौ घाँघरौ।
ओढ्यौ दखिनी चीरु।

ढोला के बाद लोकप्रियता की दृष्टि से आल्हा का स्थान है। यह आल्हा और ऊदल नामक दो बनाफर वीरों की गाथा है जिसमें अनेक रोचक कहानियाँ जुड़ गई हैं। आल्हा में राजपूतकालीन समग्र संस्कृति का एक विशद चित्र मिलता

है। यह गीत भी बहुत लंबा है। आल्हा ऊदल की बावन लड़ाइयों का वर्णन इसमें हुआ है।

ब्रज में कहीं कहीं हीर राँझा की पंजाबी प्रेमकथा भी ढोला तथा आल्हा की तरह लोकप्रिय है।

ये गीत कहानियाँ लोकमनोरंजन के लिये ही गाई जाती हैं। ऐसे लोकमनोरंजनकारी गीतों में ख्याल और जिकड़ी नामक भजनों को भी संमिलित करना होगा, जिनमें अधिकांश महाभारत और पुराणों की कहानियाँ ली गई हैं।

(२) जाहरपीर—यहाँ ऐसे गीतों का भी प्रचार है जो विशेषतः धार्मिक या पूजा के अभिप्राय से गाए जाते हैं। ऐसे गीतों में भी कई प्रसिद्ध कहानियाँ रहती हैं। जोगियों के कुछ परिवार ऐसे गीतों को जागरण अथवा किसी पूजाविशेष के अवसर पर गाते हैं। इन गीतों में जाहरपीर या गुरु गुग्गा की कहानी का बहुत संमान है। जाहरपीर, गुरु गुग्गा या गोगा जी एक ऐतिहासिक वीर पुरुष हैं। ये देवता की भाँति आज भी पूजे जाते हैं। इनकी कहानी भी इनके और इनके गुरु गोरखनाथ के चमत्कारों से परिपूर्ण है। गोरखनाथ ने सेवा के उपलक्ष में रानी बाछल को जो जौ दिए थे उनसे ही जाहरपीर पैदा हुए। पैदा होने से पूर्व ही इन्होंने अपनी माँ, पिता और नाना को चमत्कार दिखाए। गोरखनाथ और नागों की सहायता से इन्होंने सिरियल से विवाह किया। इनकी मौसी के पुत्र अरजन सरजन ने इनसे आधा राजपाट लेना चाहा। जब इन्होंने नहीं दिया तो वे एक मुसलमान बादशाह को चढ़ा लाए। जाहरपीर विजयी हुए और इन्होंने अपने दोनों भाइयों के सिर काट लिए। इस समाचार से इनकी माता ने इनका मुख देखने से इनकार कर दिया, तब ये भूमि में समा गए।

इस गीत का एक उदाहरण है :

सब पीरों में पीर औलिया जाहरपीर दिमाना है।
दोनों जौंरुआ मारि गिराए कीया राज अमाना ऐ।
डिल्ली के आलमसाह बास्याह दरगाह बनाई ऐ।
हेमसहाय ने कलस चढ़ाए, दुनिया झारत आइ ऐ।
मकुना हाती जरद अँबारी जिही तुम्हारे काम का।
नवलनाथ साँची करि गामैं बासी बिंदाबन धाम का जी।
ठगन बिरानी आस ठगिनी आमति ऐ।
मैना मिलि लै कंठ मिलाइ मौतु दिन बिछुड़ी जी।
हरी जोगी कौ का दोसु सरीरु तुजाइ लौ री।
गुर गारी मति देइ कोढ़िन है जाइगी री।

गुरुन के पूजौ पायँ गुरु नौंति जिमाइ लै री।
गुरु मेरे भोलानाथ मैंनि मति कोसै री।
कासी सहर ते पंडित आए री पुस्तक लै आए री।
पुस्तक लाए मेरी मैंनि मौतु समझाई री।
अजी आजु नगर में तीज मैंना कपड़ा मोई दै री।
जे कपड़ा ना दैंउ और लै जइयौ री।
अरी गुन में दै दै आगि पुराने मैंना मोइ दै री।
अरी दुहरे तिहरै थान रेसमी जोरा री।
कम्मर ऐ लै जाओ जामें बड़े बड़े झब्बा री।

जोगी जाहरपीर के साथ पूरनमल, भरथरी और गोपीचंद के भी गीत गाए जाते हैं। इन कहानियों में गोरखनाथ के महत्व का प्रतिपादन है और वैराग्य के तानेबानों से गीत बुने हुए हैं।

३. लोकगीत और जनजीवन

व्रजवाणी की अभिव्यक्ति के दो प्रमुख प्रकार हैं—गीत और कहानियाँ। इन दोनों का व्रज में अखंड भांडार है। क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बालक बालिकाएँ, सभी किसी न किसी सरस अभिव्यक्ति में प्रवृत्त मिलेंगे।

प्रातःकाल होते ही चक्की की घरघराहट और बुहारी की सरसराहट के साथ मंद मधुर स्वर में गृहलक्ष्मी का कंठ फूट पड़ता है। वृक्षों पर चहचहानेवाली चिड़ियाँ ही व्रज के प्रातःकाल को सवाक् नहीं बनातीं, गृहलक्ष्मियों की मधुर स्वर-लहरी भी उसे आप्लावित करती है। वह गाती है :

जागिए व्रजराज कुँवर भोर भयो अँगना।
बाट के बटोही चाले, पंछी चाले चुगना।
हम चले सिरी जमुना।

इन शब्दों को थिरकाती प्रभाती व्रज के घर को मुखरित कर देती है। इनसे प्रेरित होकर करवटें बदलते हुए पुरुष, आँखें मलते हुए शैया त्यागकर नित्यकार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं। घर का समस्त वातावरण प्रफुल्ल प्रार्थनापूर्ण विनय के भाव से परिपूर्ण हो जाता है। तभी माताएँ बच्चों का मुँह धुलाती, आँखें स्वच्छ करती और लाड़ भरे स्वर में गाती हैं :

कोची कीची कौआ खाय।
दूध, बतासे लल्लू खायँ॥

तब अस्फुट तोलते शब्दों में बालक भी माँ का साथ देता है और दूध बताशे के स्वाद की कल्पना से उसका मन किलक उठता है।

पुरुष खेतों पर पहुँच कुआँ चलाता और 'आइ गए राम' के साथ पुरहा लेता तथा राममिलन के आनंद और सुख को व्यक्त करता हुआ अपनी आस्तिक भावना सिद्ध करता है।

उधर घर से निकलकर बालक खेल में लगते हैं। उनके खेलों में भी कहीं न कहीं, कुछ न कुछ गेय शब्दों का पुट अनिवार्य रहता है। कबड्डी की पूरी साँस का संगीत उन्हें सिद्ध रहता है। चीलझपट्टा, पानी की मछली आदि कितने ही खेलों में वे शारीरिक गति पर गेय स्वरलहरी से एक प्रकार का ताल देते रहते हैं।

क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, प्रत्येक के जीवनक्रम में जैसे गेय स्वर समा गया हो। ब्रजवासी इस नित्य के गीत से अघाता नहीं, वह ऐसे अवसरों की बाट जोहता है जब वह उत्सवों और अनुष्ठानों पर अपने संगीतप्रेम को विशेष प्रोत्साहित कर सके। चैत्र महीने में देवी के गीतों से घर आँगन गूँज उठता है। इधर देवी जालपा और लाँगुरिया स्त्रियों के कंठों की समस्त श्रद्धा और पुलक को आकर्षित कर लेती हैं, तो उधर पुरुष भगतों के तान तमूरे के साथ जागरण के गीत गाने और देवी को प्रसन्न करने के लिये संनद्ध हो उठता है।

चैत्र के ये स्वर ग्रीष्म के बढ़ते उत्ताप में शुष्क हो जाते हैं। किंतु जैसे ही वर्षा का आगमन होता है, पृथ्वी की फूटती हरियाली के अंकुरों की भाँति कंठ कंठ से मधुर ताल मल्हारें ब्रजमंडल को तरंगित करने लगती हैं :

पड़े रे हिंडोले नौ लख बाग में जी,
एजी कोई झूलत रानी राजकुमारि।

गाते गाते गाँव का प्रत्येक पेड़ चंपा बाग अथवा नौलखा बाग का रूप ग्रहण कर लेता है। झूले पड़ जाते हैं और झूलती रमणियों के रंग बिरंगे वस्त्र ऋतु के श्याम, सजल वातावरण में फरफराने लगते हैं। उनके साथ स्वरों के उतार चढ़ाव से उमगते हुए विविध गीत सुनाई पड़ते हैं—विविध गीत और अनंत गीत—प्रातःकाल से लेकर संध्या तक, संध्या से रात में न जाने किस समय तक ये स्वर चलते रहते हैं। इनको पीते पीते सावन की भयावनी रात मनोरम स्वप्नों में खो जाती है।

कहीं कहीं गाँवों की चौपालों पर वर्षा के आकाश में गरजते बादलों, चमकती बिजली, झनकारती झिल्ली और टर्राते दादुरों के रव में किसानों की भीड़ एकत्रित होकर आल्हा या ढोला का गीत सुनती है। ढुलैया अथवा अल्हैत का तीखा स्वर सावन भादों की उस आर्द्र रात्रि को चीरता हुआ श्रोताओं को ही आहत नहीं करता, दूर दिशाओं के अंधकार में झिल्लियों को चुनौती देता चला जाता है। सावन भादों के महीनों में यह संगीत रक्षाबंधन की पूर्णिमा के

दिन पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच जाता है और कृष्ण जन्माष्टमी का त्योहार जन्मोत्सव के गीतों का आकार उपस्थित कर देता है।

सावन भादों के इन रसीले गीतों की गूँज मंद होते होते क्वार के दशहरा और पूर्णिमा के निकट पुनः देवी के गीत और गंगास्नान, तीर्थयात्रा के गीत पुनरुज्जीवित हो उठते हैं। उधर लड़के लड़कियाँ ढोल झाँझ लिए घर घर में घूम-कर टेसू गाते दिखाई पड़ते हैं :

टेसूराय की सात बौहरियाँ,
नाचैं कूदैं चढ़ैं अटरियाँ।

बालक बालिकाओं के खेलकूद के गीतों से चंचल हुआ क्वार का वातावरण कार्तिकस्नान की पवित्र धर्ममयी गीतध्वनि से परास्त हो जाता है। प्रातःकाल कार्तिक के शीत में ठिठुरती धर्मप्राण स्त्रियाँ अँधेरा रहते ही उठकर कूपस्नान करके राधादामोदर के गीत गाने लगती हैं। गावँ के कुएँ गा उठते हैं—प्रातःकाल की मंथर मदिर समीर भक्ति की इस स्वरलहरी को चतुर्दिक् मंद मंद वितरित करने लगती है। शीत का प्रकोप बढ़ने पर पुनः कुछ काल के लिये जनकंठ कुछ मूर्छित सा हो उठता है, किंतु फाल्गुन के पहले से ही फिर झपताल खटकने लगते हैं। इस बार तो स्वरसंगीत में बाढ़ आ जाती है—उन्माद से परिपूर्ण मानव के मादक स्वर ख्याल, जिकड़ी के भजन और सबसे अधिक होली और रसिया में मचल उठते हैं—व्रज की प्रकृति का अणु अणु थिरकने लगता है। होली और रसिया तो व्रज की बिलकुल निजी विशेषता है। इन के उदात्त और सवेग स्वर शरीर को ही रोमांचित नहीं करते, मानसिक स्तब्धता प्रस्तुत करते हुए आत्मा को आंदोलित कर देते हैं। शब्द ही नहीं, स्वर और उनका लयविधान तक मार्मिक हो उठता है। होली और रसिया के न जाने कितने प्रकार व्रज में मिलेंगे। राजपूती होली में तो शरीर की स्यानुओं तक को प्रकंपित करने की अनूठी शक्ति है।

इस नियमित क्रम के अतिरिक्त व्रज में संस्कारों के विशेष अवसर जब तब आते ही रहते हैं। जन्म और विवाह, ये दो संस्कार सबसे प्रधान हैं और इन दोनों अवसरों पर गीत उमड़ पड़ते हैं। प्रत्येक कार्य के लिये, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, कोई न कोई गीत अवश्य है और इन गीतों के साथ मंगल की भावना इतनी घनिष्ट है कि इसका गाना एक प्रकार से अनिवार्य है। दिन निकलने के पहले से लेकर रात के पिछले पहर तक ये गीत चलते रहते हैं। विवाह में रतजगे के अवसर पर तो रात भर गीत गाए जाते हैं—नाम ही इस अवसर का 'रतजगा' (रात्रिजागरण) पड़ गया है।

व्रज गीतों का देश है। क्या यह संभव है कि व्रज के इन समस्त गीतों का संग्रह किया जा सके और उसे प्रकाशित किया जा सके? जो गीत परंपरा से चले

आ रहे हैं वे ही इतने अधिक हैं कि उन सबका संग्रह करना कठिन है, उसपर गाँव का गायक स्वरकार ही नहीं, शब्दकार भी होता है—ख्याल, होली, रसिया, भजन, जिकड़ी आदि न जाने कितने रागों के गीत वह प्रति वर्ष नए नए बनाया करता है जिससे ब्रजभाषा के मौखिक साहित्य में निरंतर नई वृद्धि होती रहती है। यह भी कठिन है कि उनमें से सर्वोत्तम गीतों का चयन करके कह दिया जाय—लीजिए, बस इस समस्त भांडार में इतने ही उच्च कोटि के रत्न हैं। फलतः हमने यहाँ उदाहरण मात्र ही दिए हैं, अधिक के लिये स्थान भी नहीं हो सकता था।

ब्रज में प्रत्येक पूर्णिमा को ब्रज की परिक्रमा होती है। परिक्रमा के गीत अलग हैं। इन नियमित गीतों के साथ विवाह तथा जन्म के गीत यथावसर गाए जाते हैं। फिर ढोला, जिकड़ी के भजन, आल्हा, निहालदे, चौबोले चाहे जब मनोनुकूल गाए बजाए जा सकते हैं। जिकड़ी के भजन और चौबोले फाल्गुन चैत्र में समाँ बाँधते हैं।

विवाह, जन्मोत्सव आदि ऐसे अवसर हैं, जिनका संबंध मनुष्य की सत्ता मात्र से है। मानव मात्र इन अवसरों पर शुभ अशुभ का बहुत विचार करता है—उसका अभिप्राय यह होता है कि जीवन में जन्म और विवाह से जो नई अवतारणाएँ होती हैं, वे सफल और सुखद हों। इनसे अदृष्ट भविष्य का संबंध जुड़ जाता है। ऐसे संबंधों के प्रति मनुष्य अपने उद्योग के विश्वास पर निश्चित नहीं हो सकता। उसे अन्य शक्तियों का भरोसा करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर संस्कृत और उन्नत समाज में भी मानव के आदिम संस्कार जाग्रत हो उठते हैं। यही कारण है कि ब्रज में भी जन्म और विवाह के सारे अनुष्ठान स्त्रियों के हाथ में चले जाते हैं, जो बहुधा आज हमें अर्थरहित और रहस्यमय विदित होते हैं। ऐसे सभी अनुष्ठान गीतसहित होते हैं। इन गीतों में अर्थ की गहराई नहीं मिलती, न स्वरों में ही किसी विशेष मधुर ताल या लय का संधान होता है। पर ऐसा प्रत्येक गीत हमारी गृह-लक्ष्मियों की समस्त कल्याणभावना से ओतप्रोत होता है। आदिम मानव जैसे टूटे फूटे उद्‌गार इनमें रहते हैं, जिनमें टोने टोटके का अभिप्राय अवश्य निहित मिलता है। इन गीतों में मिलनेवाले मानस का प्रतिबिंब समस्त भारतीय समाज में प्रायः समान मिलेगा। इनका संबंध गहन जीवनतत्व के संरक्षण की मार्मिक, मूल मानवीय भावना से होता है।

इन्हीं अवसरों पर, इन आनुष्ठानिक टोने संबंधी गीतों के उपरांत, खेल के गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में सभी प्रकार के गीतों का समावेश हो सकता है। इनमें युग की नवीनता भी स्थान पा सकती है।

जिन नियमित गीतों की व्यापकता ऊपर दिखाई गई है वे सभी स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं।

पुरुषों के गीतों में कोई नियमितता नहीं रहती, न उनमें टोने का भाव रहता है; हाँ, देवी के तथा जाहरपीर आदि के कुछ गीत ऐसे हैं जो पुरुषों द्वारा गाए जाते हैं तथा जिनका टोना वियषक मूल्य उतना चाहे न हो, पर आनुष्ठानिक मूल्य अवश्य होता है। पुरुषों के अन्य गीत, आल्हा, ढोला आदि मनोरंजनार्थ होते हैं। होली, रसिया अधिकांशतः पुरुषों द्वारा ही गाए जाते हैं।

४. विषयविभाजन

गीतों में विषयों की दृष्टि से निम्नांकित विशेषताएँ लक्षित होती हैं :

(१) स्त्रियों के गीत—

विवाह, जन्मादि के गीत—१. टोने की गीतों में छोटे देवी देवताओं का उल्लेख होता है।

२. मंगल के गीतों में कृष्ण रुक्मिणी को भी स्थान मिल जाता है।

३. खेल के गीतों में प्रेमवृत्तों का बाहुल्य होता है।

४. अनुष्ठान के गीतों में अनुष्ठान की विधि, नेग आदि का विशेष उल्लेख रहता है।

तीर्थादि के गीत—कृष्ण, राम, गंगा आदि का उल्लेख, दान और शक्ति की महत्ता।

देवी के गीत—देवी, लांगुरा-मंदिर-यात्रा की कठिनाइयों का, विशेष भक्तों का, जैसे धानूँ, कान्हा का।

कार्तिक के गीतों में—राई दामोदर, गणेश, भक्ति, विविध देवताओं का।

सावन के गीतों में—मलहार, वर्षा का वर्णन, पति वियोग, बारहमासा, भाई का प्रेम, झूलने का आनंद, प्रेम के रोमांस का।

(२) पुरुषों के गीत—

१. जागरण के गीतों में देवी के भक्तों की चमत्कारपूर्ण गाथाएँ रहती हैं—जैसे जाहरपीर, जगदेव पँवार आदि की।

२. होली और रसिया में कृष्ण और राधा के प्रेम की प्रधानता रहती है, जिसके साथ किसी भी प्रकार के प्रेम की, यहाँ तक कि नग्न और अश्लील वासनाओं की भी रेखाएँ उभर आती हैं।

३. ढोला में नल मोतिनी, दमयंती, ढोला मारू तथा किशनसिंह आदि के

विवाह और विपदाओं तथा चमत्कारपूर्ण कार्यों का वर्णन रहता है—रोमांस, साहस, आश्चर्य और विलक्षण बातों से परिपूर्ण।

४. आल्हा में वीररस की प्रधानता, युद्धों का वर्णन, राजपूतकालीन संस्कृति का चित्रण, जादू, टोने के चमत्कारों से परिपूर्ण रहता है।

५. जिकड़ी के भजनों में बहुधा रामायण, महाभारत से ऐसे कथाप्रसंग लिए जाते हैं, जो बहुप्रचलित नहीं होते। प्रचलित व्रतों पर भी रचना होती है।

(३) ऋतुगीत—

(क) रसिया—यह ब्रज का बहुप्रिय लोकगीत है। अन्य किसी प्रांत में इस शैली और नाम का गीत नहीं मिलता। रसिया ब्रज भर में प्रचलित है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसका आरंभ किसने, कब किया। जिस प्रकार जिकड़ी का उल्लेख आइने अकबरी में मिलता है उस प्रकार रसिया का नहीं मिलता। मथुरा में विष्णुपद को देशी राग बताया गया है। यह ४, ६ और ८ चरणों का होता है, ऐसा उल्लेख है। यह भी कहा गया है कि ये विष्णु के संबंध में होते थे। आगरा, ग्वालियर तथा पार्श्ववर्ती प्रदेशों का देशी राग धुरपद बताया गया है। यह भी कहा गया है कि ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने नायक बख्शु, मच्छू और भानु की सहायता से यह लोकप्रिय शैली प्रचलित की। ध्रुवपद की रचना चार ताल-स्वर-संयुक्त चरणों में होती है। इसमें मात्रा अथवा वर्ण का कोई पिंगल संबंधी नियम नहीं लगता। इनका विषय प्रेम होता है। इतने उल्लेख में रसिया का कुछ भी पता नहीं चलता। ध्रुवपद तथा विष्णुपद आज संगीत-विशेषज्ञों के हाथ में लोकप्रिय नहीं हैं। रसिया अत्यंत लोकप्रिय और प्रेम की भावोत्तेजकता को उग्रता से अभिव्यक्त करने में समर्थ है। रसिया के जोड़ का राग होली धमार है।

यों रसिया में भी कोई भी विषय व्यक्त किया जा सकता है, पर राग मुक्तक है। उसमें कोई भाव या किसी कथा का भावोद्वेलित अंश ही आ सकता है। अधिकांशतः प्रेम ही इस गीत का प्रधान विषय होता है।

रसिया का रूप बहुत सुनिश्चित है। ये प्रधानतः दो प्रकार के होते हैं। एक में आरंभ में टेक होती है। इसमें १५-१५ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं। यह अत्यंत चढ़ाव के साथ तीव्र गति से गाया जाता है। अंतिम अंश ५, १० की यति से दुहराया तिहराया भी जाता है। अंतरा मंद मंथर गति से चलता है, अतः टेक से भिन्न होता है। उदाहरण के लिये एक रसिया की टेक है :

तू काहे रही घबराय,
इँदुर पै पाती भिजवाइ।

ऐरावत मँगाइ,
तो पै दऊँ पुजवाइ।
एक करि दऊँ जमीं आसमाँ,
सुत अरजुन सौ पाय,
घबराती ऐ।
कहि कितेक बात होती है।
लगी रही आस करूँ ब्रजवास,
तरहटी गोबरधन की मैं।

अंतरा में प्रायः २५-२६ मात्राओं का आधार होता है। स्वर के संकोच और विकोच से एक आध मात्रा का अंतर भी हो जाता है। इसका अंतरा यह है :

भजन करूँ और ध्यान धरूँ,
छैयाँ कदमन की मैं।
सदा करूँ सतसंग मंडली,
संत जनन की मैं॥

इस अंतरे में दो ही चरण होते हैं। अंतिम चरण पुनः टेक की शैली में गाया जाता है। इसमें द्रुति आ जाती है। इसी से टेक आकर मिल जाती है। इस रसिया में सभी चरण एक सी तुक के होते हैं।

एक दूसरे प्रकार के रसिया में टेक के पश्चात् मंथर गति से तीन चरण गाए जाते हैं। उदाहरणार्थ :

मथुरा तीन लोक ते न्यारी,
जामें जन्मे कृष्ण मुरारी। (टेक)
जा दिन जनम लियौ यदुराई,
घर घर ब्रज में बजत बधाई,
मात पिता की कैद छुड़ाई।

इन चरणों का आधार १६ मात्राएँ होती हैं। पुनः ये ही चरण द्रुत गति से दुहराए जाते हैं और तब अंतिम चरण के साथ टेकतुकी १२ मात्राओं का चरण और मिला दिया जाता है।

तीसरा प्रकार इन १६ मात्राओं के अंतर में एक परिवर्तन कर देता है। पहले दो चरण मंद, मंथर गति से गाए जाते हैं। इनके अंत में 'रे' या 'जी' और जोड़ दिया जाता है। बीच में भी आवश्यकतानुसार वृद्धि कर दी जाती है। उदाहरणार्थ एक अंतरा के चरण ये हैं :

तू तौ ओढ़े (लाला) कंबल कारौ (रे)।
कहा आरसी कौ परखन हारौ (रे)।

इनके उपरांत इस षोडशमात्रीय चरण के अंत को युक्त करके तीन चरण और आते हैं जो द्रुत होते हैं :

मुकुट मुरली कुंडल कौ मोल,
आरसी बनी बड़ी अनमोल,
बोलते क्यों बढ़ बढ़के बोल।

इसके स्थान पर कहीं कहीं कोई अन्य छंद भी आ सकता है। इसके अंत को कुंडलित करके दोहा आता है :

खायो माखन चोर लाल तुम बड़े बनारसी,
हँसिके माँगे चंद्रावली,
हमारी दे देउ आरसी ॥

इसी प्रकार और भी कई विभेद रसिया के होते हैं।

रसिया यथार्थ में नृत्यगीत है। रसिया के बनानेवाले व्रज के प्रत्येक गाँव में मिल जायँगे। पर गोवर्धननिवासी घासीराम बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। यों तो जिकड़ी के भजन रचनेवाले भी रसिया रचने में कुशल होते हैं।

(ख) होली—रसिया के समान ही जनप्रिय गीत होली है। रसिया सर्वदा गाया जा सकता है, होली धम्मार फाल्गुन महीने में ही विशेष सुहाते हैं। होली भी मुक्तक गीत है। इसके दो बड़े भेद माने जाते हैं। एक तो साधारण शैली है दूसरी राजपूती होली कहलाती है। साधारण होली में रसिया जैसे विषयों और भावों के साथ होली खेलने का उत्साहपूर्ण वर्णन रहता है। राजपूतानी शैली विशेष सशक्त और उग्र स्पंदनों से परिपूर्ण होती है। इसमें एक ही चरण विविध गतियों से युक्त बहुधा किसी कथा से गर्भित होता है। राजपूती शैली का आविष्कारक आगरा का 'पतोला' माना जाता है। 'पतोला' अपने नाम के संबंध में कहा करता था :

जाकी द्वै रोटी की भूख सूखि गयौ चोला,
ताई ते जाको परिगो नाम पतोला।

पतोला की एक होली यह है :

जाके पाँच पुत्र बलदाई।
जुलम हैगो मैया, जुलम है गयौ।

(४) धार्मिक गीत—

(क) देवी—देवी की पूजा के अवसर पर अनेक गीत गाए जाते हैं, उनमें भी कितनी ही कहानियाँ रहती हैं। ये समस्त कहानियाँ बहुधा देवी के भक्तों की होती हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध कहानी जगदेव पँवार की है। उसका यह गीत जगदेव का पँवारा कहलाता है। यह कहानी भी बहुत बड़ी है। जगदेव ने कहीं महाभारत के भीम की तरह एक दानव को मारा, कहीं भयानक सिंहों का संहार किया, कहीं लोककहानी के लखटकिया की तरह जयसिंह के लिये बड़े बड़े साहस के काम किए, कहीं कथासरित्सागर के बीरबल की तरह अपनी और अपने कुटुंब की बलि चढ़ाकर अपने राजा की आयु बढ़वाई। इस प्रकार जगदेव के बारह मवासे इस गीत में गाए जाते हैं। देवी के गीत में अहिरामन की कथा और मोरंगाने की कथा भी गाई जाती है।

किंतु इन बड़ी कहानियों के अतिरिक्त जब हम स्त्रियों के क्षेत्र में पहुँचते हैं, तो कितनी ही मार्मिक छोटी कहानियाँ यहाँ मिलती हैं। ये छोटे छोटे गीतों में अभि-व्यक्त हुई हैं और समवेत स्त्रीकंठों से निःसृत इन गीतों की स्वरलहरी सुननेवालों के कलेजे को कचोटने लगती है। ऐसे गीतों में कुछ कहानियाँ तो प्रसिद्ध पुराणपुरुषों या जननायकों के नाम का सहारा लेकर चलती हैं; जैसे, एक सोहर है :

रानी ननद भवज दोउ बैठिए
भाभी कैसी सुरति देखी राम ने ?

ननद के कहने पर सीता ने कहा—'ननद, मैं यदि रावण का चित्र बनाऊँगी तो तुम्हारे भाई बुरा मानेंगे।' किंतु ननद ने हठ पकड़ी तो सीता ने रावण का चित्र बनाया। राम आ धमके। ननद ने नमक मिर्च लगाकर राम को रावण का चित्र दिखलाया। फल यह हुआ कि राम ने सीता को बनवास दे दिया।

एक अन्य गीत में, जो सोहर नहीं है, इसके आगे भी कहानी चलती है। लवकुश वाल्मीकि के आश्रम में पैदा हुए। एक दिन राम, लक्ष्मण उधर आ निकले। लवकुश से पानी माँगा। पानी पीने से पहिले लवकुश का परिचय पूछा। उन्होंने माता का नाम बताया, पर पिता का नाम वे नहीं जानते थे। राम लक्ष्मण सीता के पास पहुँचे। वे बाल सुखा रही थीं। राम को देखकर भूमि में समा गईं। राम दौड़े, तो सीता जी के कुछ बाल ही हाथ में आ सके।[1]

(ख) भजन—भजनों के कितने ही प्रकार व्रज में मिलते हैं। साधारणतः

[1] आदि हिंदी की कहानियाँ और गीतें।

यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक भजनकार अपनी शैली प्रस्तुत करता है। 'भजन' शब्द में यह स्पष्ट ध्वनि है कि इसका आरंभ भगवद्भजन के क्षेत्र से हुआ होगा। यथार्थ में जिस जिकड़ी का ऊपर उल्लेख किया गया है वह भी भजन ही है, लोक मुहाविरे में भी यही कहा जाता है कि जिकड़ी के भजन हो रहे हैं। भजन इस प्रकार संकुचित अर्थ में धार्मिक क्षेत्र की वस्तु है, पर विस्तृत अर्थ में कोई उपदेश वृत्ति से बनी रचना भजन कही जायगी। यहाँ हम उन भजनों का उल्लेख कर रहे हैं, जिनके पूर्व कोई जिकड़ी, रसिया आदि विशेषण नहीं लगता। ऐसे भजनों में से एक प्रकार आर्यसमाजी भजनों का है। आर्यसमाज ने इस लोकप्रिय भजन-प्रणाली को विशेष रूप से अपनाया। उसके भजनीकों ने लोकप्रिय शैली में आर्य-समाज के सिद्धांतों का बड़े कौशल और साफल्य के साथ प्रचार किया। आर्य-समाजी भजनों में साधारणतः खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है, फिर भी तेजसिंह जैसे भजनीकों ने व्रज क्षेत्र की लोकभाषा को ही माध्यम बनाए रखा।

आर्यसमाज के भजनों में ईश्वर की महिमा तथा समाजसुधार के विषयों का प्राधान्य रहता है।

किंतु साधारणतः लोक में प्रचलित भजनों में एक वे हैं जो धर्म के क्षेत्र से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। उदाहरणार्थ कार्तिकस्नान में प्रातःकाल स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं वे भजन कहे जाते हैं। कार्तिकस्नान में राईदमोदर (राधाकृष्ण) का विशेष महत्व होता है। ये गीत अथवा भजन साधारणतः कृष्ण के उपलक्ष्य में होते हैं। कृष्ण को जगाने का उल्लेख इन गीतों में अवश्य होता है। एक गीत यह है :

जागिए गोपाललाल, भोर भयो अँगना।
बाट के बटोही चाले, पंछी चाले चुगना॥
घाट की पनिहारी चली,
हम चली सीरी जमुना।

एक दूसरा गीत यों गाया जाता है :

लै लै नाम जगावति माता।

भजनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी गति बड़ी गंभीर होती है, इनमें सम प्रवाह रहता है। स्वरों का विशेष आरोह अवरोह अथवा चरणों का पद पद पर लघु दीर्घ होना इन भजनों में नहीं मिलता। तीर्थव्रत के सभी गीत इन्हीं भजनों के अंतर्गत आ जाते हैं। देवी के गीत भी देवी के भजन कहलाते हैं।

तीर्थव्रत के गीतों में 'उठि मिली लेउ राम भरत आए' बहुत प्रसिद्ध है। इसी प्रसंग में व्रज की परिक्रमा के गीत आते हैं। इन गीतों में व्रज के विविध स्थानों के नाम तथा माहात्म्य का उल्लेख होता है।

(५) संस्कारगीत—

(क) जन्मगीत—जन्म के गीतों में छठी के बाद ननद के घर आने पर एक और गीत गाया जाता है जिसका नाम है 'जगमोहन लुगरा'। रुक्मिणी ने सुभद्रा से कहा, यदि मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें जगमोहन लुगरा दूँगी। पुत्र हुआ। रुक्मिणी के मायके से जगमोहन लुगरा आया। रुक्मिणी यह अलभ्य जगमोहन लुगरा अब सुभद्रा को नहीं देना चाहती। सुभद्रा उसी नाई के साथ बिना बुलाए ही चली आई, जो जगमोहन लुगरा छिपाकर ला रहा था। भाभी रुक्मिणी ने और बहुत सी चीजें देने की बात कही, पर ननद हठ पर हैं :

भाभी हथिया बँधे बहुतेरे घुड़सार में
भाभी बदन बदीए, सोइ देउ जगमोहन लुगरा दीजिए।
लाली जे लुगरा ना देउँ कुमर जी के सोहिले।
लाली भेज्यो ऐ जनम दिखामनि माय मजलसिया बाबुल मोलु दे।
ले आयौ री मेरौ तरकसु बेधी बीर।
राजे अपनी भवज को ऐ साहिबा ॥

बहन रूठ गई, तब कृष्ण ने रुक्मिणी को घर से निकल जाने का आदेश दिया। इस पर रुक्मिणी ने ननद को बुलाया :

लाली मह बगदौ, बगदि घर आऊ,
जगमोहन लुगरा पहरिए।
लाली पहरि ओढ़ि घर जाउ,
तौ मुख भर असीस जु दीजिए।
भाभी अमर रहैं तिहारी चुरियाँ,
अमरु तिहारी बीछियाँ।
भाभी जिऔ तिहारे कुमरु कन्हैया।
कुमरु तिहारे चौक में खेलैं तिहारे आँगन में।

इसी प्रकार विवाह के गीतों में 'दाँतिनि' नाम के गीतों में यशोदा, रुक्मिणी और कृष्ण के नामों का आश्रय लिया गया है। रुक्मिणी से यशोदा ने दातुन माँगी पर—

ए हरि जू हेला तौ दीए दस पाँच,
गरब गहीलीनें ऊतरु ना दियौ।

यशोदा रूठ गईं तो कृष्ण रुक्मिणी को उनके मायके छोड़ आए। अब घर की क्या दशा हुई :

ए हरि जू साँझ भई घोरु अँध्यारु।
किसन हरि मरंकि बैठे देहरी।
ए मा मेरी कहा गुनि घोर अँध्यार,
का गुनि लरिका बारे अनमने।

(ख) विवाह[1]—विवाह के समय नाना रस्मों के साथ बहुत से गीत ब्रज में गाए जाते हैं, जिनमें से कुछ यहाँ दिए जाते हैं :

(१) घोड़ी—

घोड़ी के गरे घूँघर बाजें रे, तेजिन तो गरे घूँघर बाजें रे।
सिर तेरे ककरेजी चीरा, हए कलगी पै मोरल नाचैं रे।
आँख तेरे बरेली की सुरमा, हए डारी पै मोरल नाचैं रे।
म्हों तेरे पानन को बीड़ा, हए लाली पै मोरल नाचैं रे।
अँग तेरे केसरिया जामा, हए फेंटा पै मोरल नाचैं रे।
हाथ तेरे सोने कौ कँगना, हए घड़ियों पै मोरल नाचैं रे।
तल तेरे काबुल कौ घोड़ा, हए चाबुक पै मोरल नाचैं रे।
पैर तेरे जयपुरिया जूता, हए मोचों पै मोरल नाचैं रे।
संग तेरे भइयों की जोड़ी, हए बन्नो पै मोरल नाचैं रे।

(२) भाँवर—

ए मेरी पैली भाँमरि अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी दूजी भाँमरि अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी तीजी भाँमरि अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी चौथी भाँमरि अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी पँचई भाँमरि अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी छटई भाँमरि अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी सतई भाँमरि अब तौ बेटी सास की।

(३) बिदाई—

औरे कोरे छोड़ी हौ गुड़िया, रोवत छोड़ी हौ सहेलरियाँ।
रोवत छोड़ी अपनी मायली, चली पिया के साथ है।
मेरौ पटेऊ खाली घरेऊ खाली, आयौ जमइया धीयै लै गयौ।
अब तौ जनमूँगी पूत, बऊ ऐ लै घर आइऐ।

[1] विवाह के प्रायः सारे गीत डाक्टर किरणकुमारी गुप्ता के संग्रह 'अग्रवालकदीमी विवाह-प्रथा' से लिए गए हैं।

(६) **खेल गीत**—व्रज के तीन खेल विशेषतः विदित हैं, जिनमें वाणीविलास का उपयोग होता है। एक बड़ा खेल है—कबड्डी। दूसरा है—कोड़ा जमालशाही। तीसरा है चीलझपट्टा।

(क) **कबड्डी**--इस खेल में उच्चारण करने के लिये कभी तो एक शब्द ही पर्याप्त होता है, जैसे 'कबड्डी, कबड्डी...' इसी को खिलाड़ी कहता चला जायगा। या 'डू डू...' कहता रहेगा। 'डूडू' 'भड्डू' का लघु रूप है। 'भड्डू' कबड्डी का ही दूसरा नाम है। किंतु इसके साथ ही कभी और भी कुछ कहता रहता है, जैसे 'कबड्डी तीन ताला हनूमान ललकारा' या 'चल कबड्डी आल ताल, लड़नेवाले हो हुशियार'। जब कोई मर जाता है, तो यह कहके कबड्डी दी जाती है :

मरे को मर जाने दे,
घी की चुपड़ी खाने दे।

अथवा

मेरौ यारु मरिगौ, कोई लकड़ी न दे,
चंदन कौ पेड़ कोई काटन न दे।

इसी प्रकार अन्य अनेक शब्दावलियाँ, कभी सार्थक कभी निरर्थक, कबड्डी खेलते समय उपयोग में लाई जाती हैं—'भड्डू भड़कि जाऊँ, तीनोंन कुटकि जाऊँ', 'कबड्डी तीन तारे, हनूमान ललकारे, बेटा तोई से पछारे'।

(ख) **कोड़ा जमालशाही**--यह खेल भी बड़ा रोचक है। लड़के एक गोला बनाकर बैठ जाते हैं। एक कोड़ा बना लिया जाता है। एक लड़का कोड़ा लेकर गोल के बाहर लड़कों की पीठ के पीछे पीछे घूमता है और किसी भी लड़के के पीछे उस कोड़े को ऐसी सावधानी से रखता है कि उस लड़के को पता न चले। इस खेल में वैसे तो कोई मौखिक उद्‌गार नहीं आते, पर यदि कोई लड़का पीछे की ओर देखने लगता है, तो कहा जाता है :

कोड़ा जमालशाही,
पीछे देखै तौ मार खाई।

(ग) **चीलझपट्टा**--में भी ऐसे बहुत से मौखिक कथन नहीं हैं। कभी कभी खिलाड़ी एक उक्ति कह देता है। इस खेल में एक लड़का तो बैठ जाता है, एक रस्सी का एक छोर वह पकड़ लेता है। उसी रस्सी का दूसरा छोर दूसरा लड़का पकड़ लेता है। अन्य लड़के चारों ओर से झपट झपटकर लड़के के पास आते हैं और उसके सिर में चपत मारते हैं, दूसरा लड़का इन्हें छूता है। यानी उस लड़के की रक्षा करता है। यह खेल खेलते खेलते कभी कभी लड़के कहते हैं :

काहू के मूँड़ पै चिलमदरा,
कौआ पादै तऊ न उड़ा
मैं पादूँ तौ झट्ट उड़ा।

(घ) लिरिया--लिरिया और भेड़ खेल में जो लड़का लिरिया बनता है, वह कहता है :

आधी राति गड़रिया डोले,
मेरी भेड़न में कोई न ले।
तेरी नगरी सोवै कै जागै।

भेडें चुप हो जाती हैं, वह उन्हें उठा ले जाता है।

शिशुखेल--दो वर्ष और पाँच वर्ष के बीच के बालक की शिक्षा का उसके मनोरंजन का, उसके समय को व्यस्त बनाने का एकमात्र साधन खेल ही होता है।

(ङ) आटे बाटे--शिशु को खिलानेवाला उसका एक हाथ अपने हाथ की हथेली पर, उसकी भी हथेली ऊपर करके, रख लेता है। अपने दूसरे हाथ से बालक के हाथ पर ताली बजाता हुआ कहता जाता है :

आटे बाटे,
दही चटाके।
बर फूले बंगाली फूले,
बाबा लाए तोरईं,
भूँजि खाईं भोरईं।

इसका उच्चारण करके वह उसके हाथ की छिंगुनी उँगली पकड़कर कहता है : 'यह चाचा की', दूसरी को कहता है 'यह भइया की'। इसी प्रकार उँगलियों को पकड़ पकड़कर उन्हें उस बालक के घर के किसी न किसी सदस्य के लिये बताता जाता है। जब अँगूठा पकड़ता है, तो कहता है 'यह बिलइया गाय का खूँटा'। खूँटे पर गाय नहीं है। बिलइया उसे ढूँढ़ने चलती है। दो उँगलियों को बालक की बाँह पर पोरों के सहारे वह चलाता हुआ बालक की काँख तक ले जाता है। साथ ही साथ यह कहता जाता है :

चली बिलइया,
हिन्न बिड़ार्त्त,
मूसे खात।
चली बिलइया,
हिन्न बिड़ार्त्त,
मूसे खात।
काऊ पे गइया पाई होइ तो दीजौ वीर।

काँख में अनायास ही उँगली से वह बालक को गुदगुदाता हुआ कहता है—'पाइ गई, पाइ गई, पाइ गई, पाइ गई।' बालक खिलखिलाकर हँस पड़ता है।

(च) **अटकन बटकन**—खेलनेवाले बालक अपने सामने जमीन पर अपने दोनों हाथों को उँगली और अँगूठे के पोरों पर खड़ा कर लेते हैं। खिलानेवाला उन हाथों को क्रमशः अपने हाथ से धीरे धीरे छूता जाता है और कहता जाता है :

अटकन बटकन
दही चटक्कन
बाबा लाए सात कटोरी,
एक कटोरी फूटी
मामा की बहू रूठी।
काए बात पै रूठी,
दूध दही पै रूठी।
दूध दही तौ बहुतेरौ,
बाकौ म्हाँ खायबे कूँ टेढ़ौ।
चींटी लेगौ कै चींटा।

कोई बालक कहता है चींटी, कोई चींटा। जो चींटी कहता है, खिलानेवाला उसे हलके से नोंच लेता है। जो चींटा कहता है, उसे जोर से नोंच लिया जाता है। तब वह कहता है—'सो जाओ', 'सो जाओ'। सब बालक मुँह नीचा करके जमीन पर झुककर सोने का बहाना करते हैं। तब उन सबको जगाया जाता है—

'उठो भाई उठो, तुम्हारे चाचा आए हैं, तुम्हारे लिए मिठाई लाए हैं।'

जो जल्दी उठ पड़ता है, वह भंगी माना जाता है। फिर उनको परोसा जाता है : 'जि लेउ बरफी, जि जलेबी, आदि आदि।' जो भंगी हो जाता है, उसे परोसते समय गंदी चीजों का नाम लिया जाता है। परस जाने पर सब बालक तो प्रसन्न हो काल्पनिक खाना खाते हैं, और भंगी बना बालक चिढ़ जाता है।

(छ) **घपरी घपरा**—सब बालक जमीन पर एक दूसरे के हाथ पर हाथ रख लेते हैं। हथेलियाँ सब की नीचे की ओर होती हैं। खिलानेवाला उन सबके हाथों के ऊपर अपना हाथ मारता हुआ कहता जाता है :

घपरी के घपरा, फोरि मारे (खाए) खपरा
मियाँ बुलाए,
चमकत आए।
पकरि बिल्ली कौ कान।

सब बालक दोनों ओर दोनों हाथों से अपने साथियों के कान पकड़ लेते हैं और एक स्वर में कहते हैं :

चेंऊ मेंऊ, चेंऊ मेंऊ, चेंऊ मेंऊ।

और झूमते जाते हैं। फिर सब सो जाते हैं। तब उन्हें जगाया जाता है। जो जल्दी बोल पड़ता या उठ बैठता है, वह भंगी बना दिया जाता है। तब दावत होती है। सबको थालियाँ परोसी जाती हैं असल धात की, भंगी को परसी जाती है आक के पत्ते की। सबको दूध दही परसा जाता है असल भैंस या गाय का, भंगी को परसा जाता है असल सूअरिआ के दूध का। इसी प्रकार सब सामग्री का नाम लेकर परसते हैं। अंत में जूठन भी भंगी पर फेंक दी जाती है, और सब कहते हैं :

भंगी की पातर भिनिन् भिनिन्।

(७) अन्यान्य गीत—पूरनमल आदि की प्रसिद्ध कहानियों के अतिरिक्त कुछ अन्य लोकघटनाएँ भी कहानियों के रूप में गीतों में आई हैं। 'चंद्रावली' ऐसा ही एक गीत है, इसमें एक सती नारी का वर्णन है। चंद्रावली को मुगलों के सरदार ने बंदी बना लिया। छुड़ाने के सब प्रयत्न विफल हुए तो उसने तंबू में आग लगा दी और जलकर भस्म हो गई।

इसी प्रकार चंदना, कलारिन, नटबा, धोबिया, भानजा, गेंदाराय, निहालदे आदि के गीतों में किसी न किसी प्रेमकथा का वर्णन हैं। ये गीत सावन भादों में बहुधा झूलते समय गाए जाते हैं। सावन भादों के भावपूर्ण वेदनासंवलित गीतों में 'मोरा' गीत का स्थान बहुत ऊँचा है। एक भावात्मक कहानी है :

रानी पानी भरने गई। वहाँ मोरा मिला। वह बारबार उसके बर्तन लुढ़का देता। जैसे तैसे रानी घर आई। सास से कहा—'मुझे मोरा की साध है।' सास कहती है—'लकड़ी का मोरा बनवा लो, छाती पर गुदवा लो।' पर, रानी को इनमें से कुछ भी पसंद नहीं। तब राजा गए, मोरा का शिकार कर लाए। वह मोरा पकाया गया, पर मोरा की कुहुक रानी के मन में बसी हुई थी।

व्रज की इन भावपूर्ण, रोमांचक, जादू टोने और प्रेमरस से परिपूर्ण कहानियों में महाभारत, पुराण और लोक के वृत्त ही नहीं, विविध लोकघटनाओं की कहानियाँ भी हैं और बौद्ध जातकों में मिलनेवाली कहानियों के भी अवशेष हैं। 'सुरही' नाम का गीत ऐसा ही है। सुरही गाय को सिंह ने पकड़ा। सुरही ने कहा कि बछड़ों को दूध पिलाकर आती हूँ, वह लौटी तो बछड़े भी साथ थे।

बछड़ों ने कहा—सिंह मामा, पहले हमें खाइए। मामा भला भांजे को कैसे खाता? सिंह गाय के वचनपालन से प्रसन्न हुआ।

लोकगीतों में गाई जानेवाली कहानियाँ सब प्रकार के लोकतत्वों से संयुक्त होकर अपने रस और भाव से श्रोता का मन मोह लेती हैं।

चतुर्थ अध्याय

मुद्रित साहित्य

इस क्षेत्र में ऐसा साहित्य कई वर्गों में मिलता है। ये वर्ग समाज के विविध धरातलों से घनिष्ट संबंध रखते हैं। इनके पहले दो वर्ग किए जा सकते हैं—ग्राम, दूसरा नगर। ग्राम का लोकसाहित्य नगर के लोकसाहित्य से भिन्न होता है। ग्राम का समस्त लोकसाहित्य कंठाग्र रहता है, लिखा नहीं जाता। इसके हमें कई प्रकार मिलते हैं। एक साधारण और दूसरा विशिष्ट। विशिष्ट वर्ग में वे गीत होते हैं, जिनमें ग्रामीण मस्तिष्क अपनी ज्ञानराशि को जान बूझकर भर देता है। ऐसे गीत 'जिकड़ी' के भजन हैं। ये गीत या भजन बहुधा महाभारत अथवा पुराण से कोई कथा लेकर बनाए जाते हैं। बनानेवाले की छाप भी बहुधा इन गीतों में रहती है। इन गीतों का उद्देश्य भी मनोरंजनमात्र नहीं होता। ये सभा या समाज में प्रभाव प्रदर्शित करने की भावना से भी बनाए जाते हैं। बहुधा फाल्गुन महीने में इन भजनों के अखाड़े स्थान स्थान पर जमते हैं। जिन स्थानों पर ये अखाड़े जमाने होते हैं, वहाँ के निवासी विविध गाँवों की ऐसी भजन मंडलियों के पास सुपाड़ी भिजवा देते हैं—यही निमंत्रण का ढंग है। गुड़ की एक भेली रख दी जाती है। जो सर्वश्रेष्ठ मंडली होती है, वही अंत में यह भेली पाती है। इस प्रकार इन मंडलियों में एक गंभीर प्रतियोगिता हो जाती है। फलतः इन भजनों में ग्रामीण मानस का वह स्तर दिखाई पड़ता है, जो नागरिक मानस के स्तर का स्पर्श करता है।

१. जिकड़ी

इन भजनों में यों कोई भी विषय आ सकता है, किंतु रामचरित और कृष्ण-चरित के साथ पांडवों की जीवनलीलाओं पर इन गीतनिर्माताओं का ध्यान विशेष है। पर मुख्यतः इनमें ऐसे मार्मिक स्थलों को लेकर भजन बनाए जाते हैं, जो या तो अद्‌भुत होते हैं या भावावेग संपन्न। उदाहरण के लिये बभ्रुवाहन की कथा विशेष उल्लेखनीय है। वीर बभ्रुवाहन पर संस्कृत अथवा हिंदी के ख्यातनामा साहित्यकारों ने कुछ नहीं लिखा। संभवतः इसीलिये ग्राम साहित्यकार को यह कथा विशेष प्रिय है। नरसी का भात, धना भगत का व्रत, नल की कहानी भी इन गीतों में गाई जाती है। ये भजन समस्त ब्रज में गाए जाते हैं। जिकड़ी भजन बनानेवालों में हरफूल, हन्ना, गणेश, सोभाराम, पातीराम सरेंधी, शिवराम जाबरा आदि की विशेष ख्याति है। जिकड़ी के प्रचलन और इतिहास के संबंध में हमें केवल एक

उल्लेख आईने अकबरी में मिलता है। उसमें संगीत पर लिखते हुए गीतों के दो प्रकार बताए गए हैं। एक मार्गी दूसरा देशी। देशी उन गीतों को कहा गया है, जो स्थान विशेष में मिलते हैं। इन देशी गीतों में विविध प्रदेशों के प्रधान गीतों के नाम भी दिए गए हैं। गुजरात का देशी गीत 'जकड़ी' लिखा गया है। अनुवादक श्री जैरट महोदय ने इस शब्द की पादटिप्पणी में यह स्पष्ट कर दिया है कि जकड़ी वही है जो जिकड़ी कहलाता है। ये नैतिक विषयों पर होते थे और हाजी मुहम्मद ने इन्हें चलाया था। इससे यह विदित होता है कि जिकड़ी के गीतों का गुजरात में अकबर के समय में खूब प्रचलन था। गुजरात से ये व्रज में आए होंगे। अकबर के समय में गुजराती जिकड़ी का क्या रूप था, इसका हमें ज्ञान नहीं, पर व्रज में आजकल जो जिकड़ी के भजन बनते हैं उनके निर्माण में साधारणतः निम्नलिखित शैली काम में लाई जाती है। आरंभ में सरस्वती गाई जाती है। शोभाराम जैता निवासी की एक सरस्वती या 'सुरसुती' यों है :

सुमिरुँ तोइ ज्ञान की दाता,
तेरी कीरति तीनों लोक में।
तू घट बैठि गणेश,
जिह्वा पै बास करौ जाते मिटि जायँ व्याधि कलेश।
कटि जायँ पाप कलेश सदा गबरीपन पर्‍यौ।
बैठि सभा के बीच मान बैरिन कौ मार्‍यौ।
ज्ञान को सिंधु भर्‍यौ।
तेरेइ पुन्य प्रताप ते मैंने अभमन नेक कर्‍यौ।
हिरदै बैठि हुकम दै मोकूँ,
मनिपुर की लीला कहूँ।

यह 'गाह्यौं' कहा जाता है, जो प्रत्येक भजन के आरंभ में होता है। इसके विन्यास में अलग अलग भजन बनानेवाले अलग अलग कौशल दिखाते हैं। पर साधारण नियम सब में व्याप्त मिलता है जिससे इसका स्वभाव पहचाना जा सकता है। इसके प्रथम दो चरणों के बाद तीसरा चरण अवश्य ग्यारह मात्राओं का होता है, जो अंत में भी अनिवार्य होता है। चौथे चरण में १३, १२ मात्राओं का आधार होता है, और अंत में भी। किंतु यह चरण 'अरथा' कर मंद गति से कहा जाता है। अतः कहीं भी दो चार मात्रा के बाद शब्द जोड़े जा सकते हैं। ऐसे शब्द 'अरथाने' में गौरव की दृष्टि से ही आते हैं। यह वृद्धि हमें ऊपर के गाह्ये में 'जाते' शब्द में मिलती है। हरफूल में भी चौथा चरण १३, ११ का ही आधार लेकर होता है, पर कहीं कहीं यह वृद्धि उनकी मात्राओं में हो जाती है। उदाहरण के लिये पोखपाल के एक गीत में यह चरण इस प्रकार मिलता है—'हम

आए खातिर ज्ञान की, तुम दीजौ कछु उपदेस' उसमें आरंभ में ही दो मात्राएँ 'हम' शब्द से बढ़ी मिलती हैं। एक गीत का यह चरण देखिए :

नल ने नारि दई नहुराय।
मारी चौंच तोरि लयो मोती, नल मन में गयौ सिहाय।

इन चरणों में भी आधार वही है, यद्यपि वृद्धि से इसमें लयांतर भी हो गया है। इसको आधार के रूप में वृद्धिरहितं यों प्रस्तुत किया जा सकता है–'नारि दई नहुराय'–११ मात्राएँ अंत में, और 'मारी चोंच तोरि लयौ मोती मन में गह्यो सिहाय'।

तीसरे चौथे चरण के उपरांत कई चरण आ सकते हैं, अथवा अंत का आधार ही आकर गाह्ये को समाप्त कर सकता है। यह अंत बहुधा तीन चरणों में होता है। इनमें से पहला ११ मात्राओं का, दूसरा १६ का, सबसे अंतिम १३ मात्राओं का होता है। समस्त गीत प्रायः स्थिर मंद गति से गाया जाता है, फिर भी वैविध्य इसमें मिलता है। कहीं कहीं चौथा चरण कुंडलित करके तीन चरण 'रोला' की भाँति कह दिए जाते हैं। इसमें द्रुतत्व रहता है। गाह्यों को प्रायः एक व्यक्ति दुहराता है, फिर टेक आती है। यह पहले तो मंथर गति से, फिर समस्त मंडली द्वारा द्रुत गति से गाया जाता है, यथा :

चकवाई रह्यौ बाज गगन में।

यह चौदह मात्राओं का होता है और अंत में साधारण नियम से युक्त होता है। टेक के पश्चात् एक श्रद्धा आता है, यथा—'कंचनपुरी मनिन की शोभा'। इसमें १६ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु होता है। दो गुरु अधिक अच्छे होते हैं। इस श्रद्धा के बाद रागिनी आती है। रागिनी में प्रायः दो चरण होते हैं जिनकी मात्राएँ १६, १४ के आधार पर ३० होती हैं। ये दोनों चरण तुक, प्रवाह, लय तथा द्रुत गति से युक्त होते हैं। तब अंतरा आता है। यह १६, १२ का होता है। इसके अंत में गुरु होता है। इसकी तुक टेक से मिलती है।

उपर्युक्त गीत की एक रागिनी यों है :

कंचनपुरी मनिन की शोभा,
कंचनवर्ण विशाला है।
कंचन कोटि कला रवि की सी,
गल हीरन की माला है॥

इसका अंतरा है :

हींसत बाज पवन मक्खी में,
पांडन धरतु समर में॥
चकवाई रह्यौ बाज गगन में।

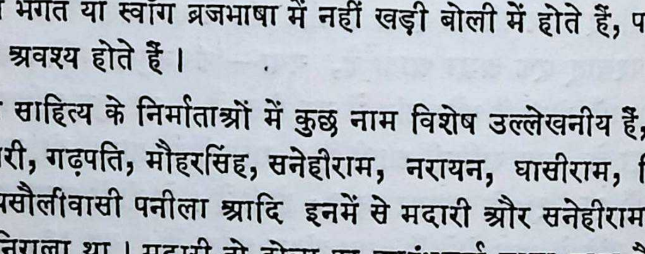
लोककाव्य के इस माध्यम के द्वारा साधारणतः प्रबंधकथाएँ ही व्यक्त होती हैं। यही कारण है कि लोककाव्यकार ने इस भजन की गति में बड़ी वक्रता रखी है। विविध भाव, विविध छंदों में भली प्रकार शक्ति और ओज से व्यक्त हो सकते हैं इससे एकरसता का अवसाद नहीं घिरता। ब्रज में इन्हें 'रस्याई के भजन' भी कहते हैं। हरिफूल ने महाभारत की कथा इन गीतों के द्वारा इस प्रदेश के लिये सुलभ कर दी। हरिफूल आइराखेड़ा के निवासी थे। सौंनई के हरनारायण (हन्ना) इनके मित्र थे। ये हन्ना ही हरिफूल को महाभारत की कथा सुनाया करते थे। हरना (हन्ना) ने भागवत को रस्याई के भजनों में प्रस्तुत किया। गणेश अथवा गन्नेस भैंसाराँ के थे। ये पांडित्यप्रदर्शन के लिये प्रसिद्ध हैं। ये दूसरों को ललकारते हुए अपने भजन गाते थे।

२. स्वाँग

हाथरस के स्वाँग पेशेवर स्वाँग हैं, जिन्हें नौटंकी भी कहा जाता है। नत्थामल के स्वाँग विशेष प्रसिद्ध हैं। नत्थामल का स्वाँग होता भी बड़ा अच्छा था। ये प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी गठन दोहों, चौबोलों तथा अन्य चलते छंदों की है, जैसे बहरे तबील, कहरवा आदि की। आर० सी० टेंपल महोदय ने 'लीजेंड्स आव दि पंजाब' में लिखा है कि मथुरा में नत्थामल की शैली ही विशेष प्रचलित है। ख्याल तथा भगत या स्वाँग ब्रजभाषा में नहीं खड़ी बोली में होते हैं, पर वे ब्रजभाषा से प्रभावित अवश्य होते हैं।

इस साहित्य के निर्माताओं में कुछ नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जैसे—जंगलिया, मदारी, गढ़पति, मौहरसिंह, सनेहीराम, नरायन, घासीराम, खिच्चो, खुन्नो, गंगादास, पसौलीवासी पनीला आदि इनमें से मदारी और सनेहीराम का व्यक्तित्व इन सबसे निराला था। मदारी तो ढोला का आरंभकर्ता माना जाता है। सनेहीराम की वाणी सिद्ध मानी जाती है। इन दोनों का परिचय सुनकर दिए जा रहे हैं। ये उन्हीं स्थानों से लिए गए हैं जहाँ ये रहते थे और जहाँ इनके वंशज अथवा वंशजों के परिचित आज भी विद्यमान हैं।

(१) **मदारी**—मदारी की वंशावली इस प्रकार ज्ञात हुई है :



इसके पश्चात् उसके वंश में कोई नहीं बचा। जहाँ आज मदारी का घर

बताया जाता है, वहाँ तीन घर बन चुके हैं। मदारी का कोई भी नामलेवा पानीदेवा नहीं बचा, किंतु यशःशरीर से वह आज भी जीवित है। ढोला के गायक और श्रोताओं के साथ उसका नाम भी अमर हो गया है। मदारी का चेला सवाई था। सवाई को मरे लगभग पचास वर्ष हुए। उसके कुटुंबीजन बतलाते हैं कि वह ६० वर्ष की उम्र में मरा था। यह भी कहा जाता है कि सवाई ने बुड्ढे मदारी से ढोला सीखा था। इस प्रकार सवाई का जन्म भी मदारी के सामने ही हुआ था। हिसाब लगाने से मदारी का युग आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व ठहरता है।

बहुत से लोग गढ़पति को ढोले का आदि प्रवर्तक मानते हैं। सं० १६६६ वि० में गढ़पति जीवित था। गंगा के इस पार और उस पार उसका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता था। उसके ढोले का परिमार्जन और परिष्कार, विशदता और व्यवस्था देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह ढोले का आदि रूप नहीं है। प्राप्त हुई कुछ पहरियों से तुलना करने पर तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। मदारी के ढोले के 'आखर' साधारण और ग्रामों के प्राचीन प्रचलित शब्दों में है। इसके अतिरिक्त ग्राम के आचारशास्त्र और अनुभव के वाक्य मदारी में भले ही प्रयुक्त मिल जायँ, किंतु संस्कृत की स्मृतियाँ और शास्त्रों की छाया मदारी के काव्य में हमें नहीं मिलती। गढ़पति के ढोले में इसका स्पष्ट पुट मिलता है। आधुनिकता चमके बिना थोड़े ही रह सकती है। उपमा अलंकार भी गढ़पति में विशेष परिमार्जित हैं। तुकांतता अधिक स्पष्ट और शुद्ध है। मदारी की तुकांतता कहीं कहीं हास्यास्पद भी हो गई है। मदारी की शिष्यपरंपरा कुछ ऐसी है :

मदारी
|
सवाई
|
ब्रजलाल — गिरवर — लछिमन

सुनते हैं, ब्रजलाल और गिरवर के समय में आकर गढ़पति ने मदारी के बनाए हुए कुछ आखर सीखे थे और उन्हें ही विस्तृत और विशद रूप उसने दिया।

मदारी जाति का ब्राह्मण था। मथुरा जिले में मथुरा से दो मील पर अवस्थित लोहबन का वह निवासी था। वह नगरकोटवाली देवी का 'भगत' था। शाक्तों से संबंध रखनेवाली जाति, जो आजकल ब्रज में बसी है, जुलाहे और कोली हैं। बिना उनके साथ जाए देवी की यात्रा सफल नहीं होती। देवी में गाँववालों का विश्वास दृढ़ करना कोलियों का कार्य है। इन कोली पंडों के साथ साथ मदारी ने आठ बार नगरकोट की यात्रा की थी। आज की सी यात्रा की सुविधाएँ उस समय प्राप्त नहीं थी। मार्ग दुर्गम होने के कारण यात्रा कठिन थी। इससे यात्रियों

का गाँववालों से विशेष संपर्क भी होता था। मदारी, सुनते हैं, देवी से हर बार यही वरदान माँगता था कि मैं कुछ ऐसा रच दूँ कि सब लोग गावें। आगे चलकर उसकी मनोकामना पूरी हुई। आज भी बहुधा ढोला गानेवाले उसकी बंदना सरस्वती मनाने के साथ करते हैं।

राजपूताने में ढोलामारू की कहानी लोकप्रिय है। उस कहानी को संभवतः साधारण रूप में मदारी ने नगरकोट की यात्रा के समय सुना था। कहानी को गेय रूप में ही सुना होगा, यह भी संभव है। उसी कहानी को लेकर मदारी ने व्रज में 'ढोले' का बीजवपन किया। मदारी ने इसी कहानी को ३६० पहरियों में रखा। मदारी की बनाई हुई केवल ये ही ३६० पहरियाँ हैं। इनमें से आज केवल १२५ के लगभग प्राप्त हैं। ये प्राप्त भी एक अनोखे ढंग से हुईं। एक ८० वर्ष का बुड्ढा मृत्युशैया पर पड़ा था। उसके और मृत्यु के बीच में केवल आठ दिन की दूरी थी। इस दूरी को वह जीर्ण क्षयपंजर हाँफ काँपकर पूरी कर रहा था। उसे मदारी का बनाया हुआ सारा ढोला याद था। किंतु नोट लेनेवाला तनिक देर से पहुँचा। बहुत कहने सुनने पर उसने ढोला लिखवाना शुरू किया। छह दिन तक वह ढोला लिखवाने के योग्य रहा। फिर वह गा नहीं सका। उसके ऊपर ढोले का यहाँ तक रंग जम गया था कि मरने के समय तक वह ढोला गाते गाते रो तक पड़ता था। वह चला गया और ढोले का एक सूत्र हमारे हाथ में दे गया। वे ३६० पहरियाँ ही ढोले का आदि हैं।

(२) सनेहीराम--सनेहीराम के सभी भजनों के अंत में यह पंक्ति आती है—'माँट हू के बासी जस गामत सनेहीराम'। माँट मथुरा जिले की एक तहसील है। यहाँ सनेहीराम का जन्म हुआ था। उनमें परंपरागत भावुकता और स्नेह था। इस भावुकता का एक बीज उनके पौत्र 'नरायन' में जम गया। उन्होंने भी गाया, सुंदर गाया।

सनेहीराम के घर खेती होती थी। किसान भी बड़े नहीं थे; अथक परिश्रम के बाद जीवननिर्वाह हो पाता था। खेती का कार्य उनका बहुत सा समय ले लेता था। किंतु प्रतिभा को दबाना कठिन होता है। प्रतिभा उन्मुक्त नृत्य के लिये मचलती रहती है।

घरेलू कार्यों के अतिरिक्त उनका एक और नियम था। वे प्रतिदिन यमुना पार कर वृंदावन में बाँकेबिहारी का दर्शन करने जाया करते थे। इससे जो अवकाश मिलता था वही लौकिकता और अलौकिकता को जोड़ने की कड़ी थी, वही कुछ गुनगुनाने का समय था। घरवालों के रोष की चिंता न करके वे दो ही कार्य करते थे—बिहारी जी का दर्शन करने जाना और काव्यरचना करना। वस्तुतः बिहारी जी के दर्शन का भाव ही काव्य बन गया था।

इनके विषय में अनेक चमत्कारपूर्ण बातें गाँव के लोग, सत्य होने का बार बार विश्वास दिलाते हुए, कहते हैं। एक दिन घर के काम काज से निवृत्त होने में इन्हें देर हो गई। जाड़े की रात थी। मल्लाह जाकर सो गया। कहते हैं, तब स्वयं बाँकेबिहारी आए और नाव में बैठाकर इन्हें यमुना पार ले गए। वृंदावन पहुँचकर इन्होंने दर्शन किया। लौटकर मल्लाह से ज्ञात हुआ कि उसने इन्हें पार नहीं उतारा था। एक बार मंदिर बंद हो गया था। सनेहीराम द्वार पर पड़े रहे। अर्धरात्रि में बिहारी जी स्वयं प्रसाद ले आए और दर्शन देकर अंतर्धान हो गए। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सनेहीराम जी के इष्टदेव बिहारी जी थे। एक और चमत्कार की बात कही जाती है। एक बार दुर्भिक्ष पड़ा। पानी न बरसने से मनुष्य और पशु विकल हो गए। गाँववालों ने उनसे कहा: 'जो तू ऐसौई भगतु ऐ तो मेहु न बरसाइ दे।' सनेहीराम भगवान् के कानों तक पहुँचनेवाला एक भजन गाने लगे:

ब्रज कूँ आइकैं बचाऔ महाराज।
बूढ़े भए, कै नींद सताई, कै कहूँ अटके काज ?
तुम जु कही कि ब्रज छोड़िके कहूँ न जाउँ।
खाई है सौगंध बाबा नंद हू कौ लैकें नाउँ॥
कैसें सुधि भूलि दिन बहुत भए हू नायँ, जी।
एक मेह डारि, सब लोगनु लगाई आस॥
फेरि बूँद नायँ आई सामन में सूखी घास।
पानी नाहिं पैदा और गैया हू मरति प्यास॥
सूखन लागे नाज।

कहते हैं, इस भजन की समाप्ति पर वर्षा होने लगी थी। बहुत से वृद्ध लोग इसे आँखों देखी बात बताते हैं। उनका कहना है: 'आँखिन देखी पर्सराम। कबहुं न झूँठी होइ।'

थोड़े समय में भी सनेहीराम बहुत कह सके, यह उनकी प्रतिभा की महानता थी। भाषाज्ञान नहीं के बराबर होते हुए भी उनकी भाषा सरल, सरस और सुंदर है। लोकभाषा के स्तर से उनकी भाषा कुछ उठी हुई अवश्य है, पर सनेहीराम समस्त ग्रामीणों को अपने साथ लेकर इस स्तर पर चढ़े हैं। सनेहीराम अनजान में ही लोकभाषा और लोकरुचि का परिष्कार, परिमार्जन कर गए। उन्होंने भजन की अपनी एक अलग शैली चलाई। उनसे पहले ऐसे भजनों का अस्तित्व नहीं मिलता। उनके पश्चात् उस शैली को अनेक लोगों ने अपनाया। बंबई भूषण प्रेस, मथुरा से उनकी एक पुस्तक 'सनेहलीला' प्रकाशित भी हुई। उसकी शैली गावों में प्रचलित बारहमासे की शैली है। इस प्रकार छंद शैली में उन्होंने पारंपरीण सूत्र को भी पकड़ा और अपनी भी एक देन दी।

इनके भजनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये श्रीकृष्ण, दाऊ जी और यमुना जी में विशेष आस्था रखते थे। दाऊ जी की मान्यता गाँवों में श्रीकृष्ण से किसी प्रकार कम नहीं है। इसी से सनेहीराम कहते हैं :

हमारैं दाऊ जी के नाम कौ आधार।
नाम अनंत, अंत नाइँ बल कौ धारैं भुअ कौ भार।

दाऊ जी 'शेष' जी के अवतार माने गए हैं; अतः 'धारैं भुअ कौ भार' कहा गया है। वल्लभकुल संप्रदाय में श्री यमुना जी की मान्यता श्रीकृष्णप्रिया के रूप में है। सनेहीराम पतिततारिणी यमुना जी का गीत गाते हैं :

तेरौ दरस मोय भावै, श्री जमुना मैया।
सीतल नीर, पाप कूँ पावक, अघ कूँ हाल जरावै।

कृष्णलीलाओं का गाना तो सनेहीराम जी का मुख्य धर्म ही था। माखनलीला, माटी खाने की लीला, रासलीला आदि पर तन्मयता से लिखे हुए भजन प्रत्येक गाँव में विशेष अवसरों पर ढोलक, मजीरा और खटतारों पर गाए जाते हैं। कृष्ण जी के शृंगार का वर्णन देखिए, कितना अनूठा है :

पीले होट, मंद हास, गलैं परी गुंजमाल।
कोटि काम लाजे तन, सामरौ लगै तमाल॥

+ + +

चीकने, मुछारे और कारे घुँघरारे केस,
मधुप समाज लगै, अधर अरुन भेष।
गोल गोल हैं कपोल, देखत कटैं कलेस॥

संयोग-सुख-विभोर वातावरण में सनेहीराम का प्रकृतिवर्णन देखिए :

कोई कोई बेरिया, अमरबेलि छाइ रही।
कारे मुखबारी सो विरमि सुख पाइ रही।
पकत लिसोरे जब, खूब छबि छाइ रही जी।
प्रात के समैया जासे, कोकिल करत सोर।
भाँति भाँति पंछी बोलैं, चित्तहू मैं लागैं चोर।

यह सनेहीराम के जीवनचरित और उनके काव्य पर एक संक्षिप्त दृष्टि है। इस प्रकार के न जाने कितने लोककवि आज ग्रामों की जनता के हृदय में बसे हैं और उनका काव्य ग्रामीणों के कंठ में लहरें ले रहा है। यहाँ उन सबका परिचय देना संभव नहीं।

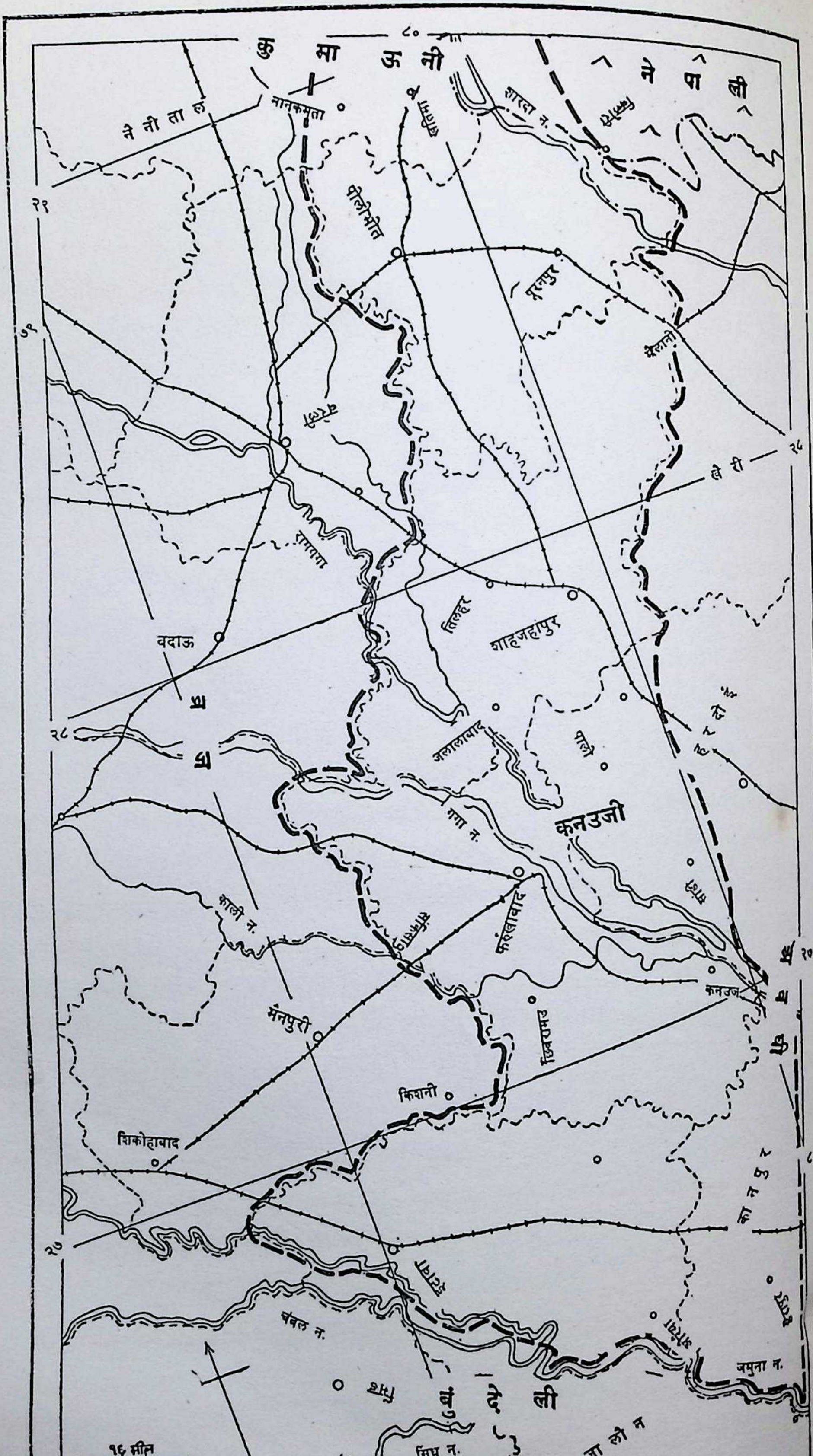
परंपरागत और रचित व्रज लोकसाहित्य तथा साहित्यकारों के इस सिंहावलोकन से उनकी संपन्नता का पता चलता है। सूर तथा अष्टछाप के अन्य कवियों—स्वामी हरिदास, हितहरिवंश, व्यास आदि—की रचनाओं ने आज का व्रजमानस आच्छादित कर रखा है, फिर भी लोकसाहित्य का अपनत्व बना हुआ है। उसके मूल्य को हम आगे चलकर ही ठीक ठीक जान सकेंगे।

(३) चंद्रसखी—का नाम गीतों के साथ व्रज से बंगाल तक फैला हुआ है। यह कौन हैं, इसका ठीक ज्ञान नहीं हुआ। ये बालकृष्ण की छवि पर मुग्ध हैं।

(४) पतोला—राजपूती होली के लिये प्रसिद्ध है। कहा जाता है, यह आगरे का रहनेवाला और बहुत दुबला पतला था। बहुत कम खाता था, पर होली में जौहर दिखाता था।

६. कनउजी लोकसाहित्य

श्री संतराम 'अनिल'



७. कनउजी भाषाक्षेत्र

(६) कनउजी लोकसाहित्य

अवतरणिका

वैज्ञानिक अध्ययन के लिये विश्व की भाषाओं को कई परिवारों में विभाजित किया गया है। इस विभाजन के अनुसार हिंदी भारतीय आर्यभाषा परिवार की एक प्रमुख भाषा है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से मध्यदेश की मुख्य बोलियों के समुदाय को 'हिंदी' नाम दिया गया है[१]। हिंदी को भी 'पश्चिमी हिंदी' उपभाषा और 'पूर्वी हिंदी' उपभाषा, इन दो भागों में बाँटा गया है। पश्चिमी हिंदी के भी 'खड़ी बोली', 'बाँगरू', 'व्रज', 'कनउजी' और 'बुंदेली' ये पाँच वर्ग हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से कनउजी का विकास वैदिक (संस्कृत)[२] > पांचाली > पालि > पं० प्राकृत > पं० अपभ्रंश, इस क्रम से हुआ है।

कनउजी भाषा का नामकरण आधुनिक फर्रुखाबाद जिले में स्थित कन्नौज नगर के नाम पर हुआ है। प्राचीन भूगोल के अनुसार कन्नौज न केवल नगर का ही नाम था, वरन् जो क्षेत्र इसके अधीन थे उन्हें भी कन्नौज कहा जाता था[३]। इस प्रकार राजधानी और राज्य दोनों एक ही नाम के थे। अतः 'कनउजी' शब्द का आशय है—प्राचीन कन्नौज राज्य में बोली जानेवाली भाषा।

इस भाषा के 'कन्नौजी'[४], 'कनौजी'[५] और 'कन्नौजिया'[६]—तीन नामों का उल्लेख मिलता है। कन्नौज को यहाँ के 'कन्नौजी' भाषा बोलनेवाले 'कनउज' कहते हैं। अतः इस भाषा को 'कनउजी' कहना ही समुचित है। पर साहित्यिक 'खड़ी बोली' में इस नगर का नाम कन्नौज है। अतः इस दृष्टि से 'कन्नौजी' उच्चारण भी हो सकता है।

१ डा० धीरेंद्र वर्मा : हिंदी भाषा और लिपि, पृ० ४७।

२ डा० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया, भाग ६, खंड १, पृ० १।

३ वही, पृ० ३८३।

४ डा० धीरेंद्र वर्मा : ग्रामीण हिंदी, पृ० १२

५ डा० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया, भाग ६, खंड १, पृ० १

६ फर्रुखाबाद डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ० १२१ (१९११ संस्करण)

कनउजी का क्षेत्र ब्रजभाषा और अवधी के मध्य में पड़ता है। यह भाषा उत्तर में कुमायूनी, पूर्व में अवधी, दक्षिण में बुंदेली और पश्चिम में ब्रजभाषा से घिरी हुई है।

अपने विशुद्ध रूप में कनउजी फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर और इटावा जिलों तथा पश्चिमी कानपुर और पश्चिमी हरदोई के कुछ भागों में बोली जाती है। कानपुर जिले के पूर्वी भाग में अवधी और दक्षिणी भाग में बुंदेली का प्रभाव है। हरदोई जिले की संडीला तहसील के लिये कहना कठिन है कि वहाँ की भाषा कनउजी है अथवा अवधी। यहाँ की भाषा को मिश्रित भाषा कहना चाहिए। पीलीभीत में कनउजी पर ब्रजभाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र के अंतर्गत फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई, कानपुर, इटावा और पीलीभीत, ये छह जिले आते हैं।

कनउजी बोलनेवालों की संख्या लगभग ४३ लाख है :

जिला	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या (१९५१)
फर्रुखाबाद	१, ६६०	१०, ६२, ६४१
इटावा	१, ६८८	६, ७०, ६६५
शाहजहाँपुर	१, ७६०	१०, ०४, ३७८
पीलीभीत	१, ३४३	५, ०४, ४२८
तहसीलें—		
अकबरपुर (कानपुर जिला)	३६८	१, ८२, ८६७
डेरापुर (,, ,,)	४०३	३, ०८, ४८०
शाहाबाद (हरदोई जिला)	५३९	३, १४, ८५५
	७, ७६१	४२, ८४, ३७४

१. गद्य

(१) कहानियाँ (कथाएँ)—कनउजी लोकसाहित्य गद्य, पद्य और मिश्रित, तीनों रूपों में है। गद्य साहित्य में मुख्यतः कहानियाँ ही प्राप्त होती हैं। विभिन्न प्रकार की कहानियाँ निम्नांकित है :

(क) व्रत कहानियाँ—कनउजी प्रदेश में स्त्रियाँ व्रत रखकर पूजा के समय कुछ कहानियाँ कहती हैं। इनमें मुख्य ये हैं :

१. सकट चौथ की कहानी
२. जगन्नाथ सामी की कहानी

३. करवा चौथ की कहानी
४. अनंत चौदस की कहानी
५. भैया दूज की कहानी
६. दीवाली की कहानी

व्रत किसी कामना अथवा फलप्राप्ति के लिये किए जाते हैं। ये कामनाएँ तथा फल लौकिक होते हैं, आध्यात्मिकता इनमें लेश मात्र भी नहीं होती। गृहस्थ जीवन में जो अभाव या आवश्यकताएँ होती हैं, उनके पूरे हो जाने की कामना इन कहानियों में सदैव रहती है। इनमें अशुभ परिणाम का निवारण तथा कल्याण की दृष्टि से देवताओं को प्रसन्न करने का प्रसंग भी बराबर रहता है।

(ख) उपदेशात्मक कहानियाँ—इस कोटि की कहानियों में देवी देवताओं का उल्लेख, कर्तव्यपालन की चर्चा, सदसत् का विवेचन तथा कोई न कोई उपदेश अवश्य रहता है। इस कोटि में 'करम औ लच्छिमी को वाद', 'राजा बिक्रमाजीत', 'नारद और भगवान को खेल', 'नारद को घमंड दूर करिबो', 'भाग्य बलवान्' आदि कहानियाँ हैं।

(ग) प्रेम कहानियाँ—अंतर्प्रांतीय कहानियाँ तो कनउजी में प्रचलित हैं ही, पर कुछ ऐसी भी कहानियाँ यहाँ मिलती हैं जिनमें पात्रों के नाम तथा स्थान आदि का उल्लेख नहीं होता। इन प्रेम कहानियों में किसी राजकुमारी से कोई राजकुमार प्रेम करता है। प्रेयसी को प्राप्त करने में जो कष्ट आदि होते हैं, उनको लेकर कथा का विकास होता है। बीच बीच में बड़ी अद्भुत तथा चमत्कार-पूर्ण बातें मिलती हैं।

(घ) विविध--जीवन के विविध पक्षों को चित्रित करनेवाली कहानियों में विविध अनुभवों का चित्रण होता है। कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ ये हैं :

१. धरम की जर हरी
२. घासीराम पंडित बुलाकीराम नाऊ
३. बीरबल की हुसियारी
४. कंजूस बनियाँ

(ङ) पंचतंत्र शैली की कहानियाँ--इनमें नीति की व्याख्या होती है। इन कहानियों के पात्र पशु पक्षी होते हैं। ये सभी कहानियाँ साभिप्राय होती हैं तथा इनमें कथा के व्याज से नीतिकथन रहता है।

(च) जातिस्वभाव—इन कहानियों में ब्राह्मण, ठाकुर, बनियाँ, अहीर, कोली, नाई, सुनार आदि के स्वभावों का चित्रण मिलता है। ब्राह्मणों का आदर-पूर्वक उल्लेख होता है। निपट गँवार ब्राह्मण को भी राजा के यहाँ से कुछ न कुछ

संमान अवश्य मिलता है। ठाकुर को वीर तथा चतुर, बनियों को धनी, लोभी, कंजूस और डरपोक दिखाया जाता है। कोली कहानियों में सदा मूर्ख होता है। यही बात अहीर की भी है। पर अहीर मूर्ख होने के साथ बात बात पर झगड़नेवाला भी होता है। सबसे अधिक चतुर तथा स्वार्थी नाई चित्रित किया जाता है। वह ठाकुर के साथ रहता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे परामर्श भी देता है। नाई की चतुरता के कारण उसे 'छत्तीसा' अर्थात् छत्तीस बुद्धिवाला कहा गया है। सुनार का चित्रण विश्वासघाती तथा कृतघ्न के रूप में हुआ है। सोना चुराने का स्वभाव तो उसका इतना पक्का होता है कि वह अपनी माता के लिये बननेवाले आभूषणों से भी सोना चुराना चाहता है।

इस प्रकार कनउजी की प्रचलित कहानियों में जीवन के सभी पहलुओं को लिया गया है। उदाहरणार्थ एक कहानी नीचे दी जा रही है :

(१) सकट चौथ की कहानी—एक हतीं दिउरानी जिठानी। दिउरानी धनीं हतीं औ जिठानी निधनी। उइ उनके घर पीसि कूटि आमें। उइ लुटिआ भर मठा औ कन अन दइ दयें। उइ ओई मैं बसर करें। होत कच्च सकटें आईं। सबेरे से कूटा पीसा, राति का बुकरा उकरा बनाओ। उइकी पूजा करी। रात को सकटैं आईं। कही—बाम्हनि बाम्हनि, हम तौ टिकिऐं।' उन्ने कही—'टिकि रहौ।' सब लिपो पुतो डारो। जब उनैं लगी भूँख, तब उन्ने कही कि बाम्हनि, हमें भूख लगो। कुछु खइबे के दइ देव।' उन्ने कही कि 'सिगरे दिन दिउरानी सेवन जातीं सो मठा कन धरे, लेइ खाय लओ।' सबेरो भओ। 'बाह्मनि बाह्मनि, हमें तो हगास लगी।' उन्ने कही कि 'हगि लेव, हम सबेरे उठाय डरिऐं।' 'पौंछें कहाँ ?' उन्ने कही कि हमारे माथे पै पौंछि देव।' पौंछि लओ। 'बाह्मनि, हम तौ घर जइऐं। किवार बंद करि लेव।' किवार बंद करि लए। सोनोइ सोनो हुइ गओ। बाह्मनि ने पंडित पै कही कि 'सकटें परसन्न हुइ गईं।' उठे। दोनों जने भरि भरि धरन लगे। दिउरानी लड़त भई आई कि 'तुम काए नाईं आई। हमारी बिटिया बहुऐं उपासीं रहीं। का सकटैं परसन्न भईं।' 'हो।' 'का बहिनी तुमने करो ?' उन्ने कही कि 'भाई, हमने तौ सकटनि कौ मठा औ कन खवाए।' ओई दिन ते दिउरानी ने कन और मठा जोरि राखो। ऐसोइ करिऐं। सकटैं दिउरानी खियाँ आईं। उन्ने पहिलेई ते माल टाल गाड़ि दओ। 'बाह्मनि बाह्मनि, टिकिऐं।' 'टिकि रहौ।' 'बाह्मनि बाह्मनि, खइऐं।' 'मठा कनन खाय लेव।' 'बाह्मनि बाह्मनि, हगिऐं।' 'हगि लेव।' उन्ने सब घर मैं पोंकि मारो। 'बाह्मनि बाह्मनि, किवार बंद करि लेव।' किवार बंद करि के बाह्मनि बोली 'सकटैं परसन्न भईं।' उइ रपटि रपटि के गिरन लगे। आदमी ने लइ डंडा खूब कूटो। कहन लागे कि 'तुमने अइसो काए करो।' आदमी होंय तौ ना जानि पामैं। दिउतन ते कुछु थोरौं छिपत है।

(२) मुहावरे

हिंदीभाषी अन्य क्षेत्रों में जो मुहावरे प्रचलित हैं, सामान्यतः वे सभी कनउजी में भी पाए जाते हैं। कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं :

अपने मरे सरग सुझिबो।
अमरउती खइबो[1]।
बादर में थिगरिआ लगइबो।
हँथिरिआ पै रूख जमइबो।
दही में मूसर।
इउ मुँह औ धोई की दारि।
माछी मरिबो।
सीसा लइ के मुँह दिखिबे लै कहिबो।
सुर्जन कौ दिआ दिखइबो।
नून से नून खइबो।

२. पद्य

गद्य की अपेक्षा कनउजी पद्य अधिक संपन्न है। विविधता भी इसमें अपेक्षाकृत अधिक है। पद्य की विविध विधाओं का सामान्य परिचय और उदाहरण निम्नांकित हैं :

(१) पँवाड़ा—'पँवाड़ा' शब्द के संबंध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसकी व्युत्पत्ति क्या है। मराठी में यह शब्द वीरगाथा के लिये प्रयुक्त होता है, पर ब्रज में झगड़ा या युद्ध का पर्याय है। यह बात किसी सीमा तक उपयुक्त जान पड़ती है कि इन गीतों में पहले परमार क्षत्रियों की वीरगाथाएँ गाई जाती होंगी।[2] ये लंबी तो होती ही हैं, साथ ही झगड़ों से भी परिपूर्ण होती हैं। परमारों के गीत इसी तरह के हैं। बुंदेली में पँवाड़ा लंबी कथा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कनउजी में पँवाड़ा का आशय ऐसी कथा से होता है जो बहुत बढ़ा चढ़ाकर कही गई हो तथा जिसका विस्तार बहुत अधिक हो। यह आवश्यक नहीं कि इसमें युद्ध का ही विशेष रूप से वर्णन होता हो। ऐसे भी अनेक पँवाड़े हैं जिनका विषय कोई प्रेमकथा होती है।

कनउजी में सबसे अधिक लोकप्रिय पँवाड़ा 'आल्हा' है। आल्हा वास्तव

[1] खइबो, लगइबो, जमइबो आदि शब्दों का अर्थ क्रमशः खाना, लगाना, जमाना आदि है।

[2] 'लोकवार्ता', जून, १९४०, 'जगदेव कौ पँवारौ' पर संपादकीय भूमिका।

में एक साधारण सैनिक था, परंतु इस पँवाड़े में उसकी वीरता का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। आल्हा के गानेवाले विशेषज्ञ होते हैं जो प्रत्येक गाँव में नहीं मिलते। दूर दूर से आल्हा विशेषज्ञ बुलाए जाते हैं और वे दस पंद्रह दिनों तक आल्हा सुनाते रहते हैं।

लोकप्रियता की दृष्टि से आल्हा के पश्चात् 'ढोला' आता है। ढोला केवल कनउजी का ही नहीं, वरन् पूरे हिंदी क्षेत्र का भी प्रसिद्ध लोकमहाकाव्य है[1]। अन्य लोकगीतों के समान ढोला प्रत्येक ग्रामीण के कंठ पर नहीं रहता। इसके भी विशेषज्ञ होते हैं। आल्हा की भाँति ढोला भी साधारणतया वर्षा ऋतु में गाया जाता है। यद्यपि कनउजी में ढोला से आल्हा का अधिक प्रचार है, पर इस क्षेत्र के बाहर आल्हा से अधिक व्यापकता ढोला की है। ढोला का प्रचार राजस्थान तक है। आल्हा की कथा में कनउजी के विभिन्न क्षेत्रों में कोई विशेष अंतर नहीं होता, पर विभिन्न क्षेत्रों की ढोला की कथा में बहुत अंतर होता है। यह भी कहा जा सकता है कि जितने ढोला गायक हैं, उन सबकी कथावस्तु तथा घटनाओं में पर्याप्त भेद होता है।

उपर्युक्त पँवाड़ों के अतिरिक्त कनउजी में 'ऊभदेव का गौना' तथा 'घन्नइया' नाम के दो पँवाड़े बहुत प्रसिद्ध हैं। ये दोनों कनउजी के स्थानीय पँवाड़े हैं :

(१) ऊभदेव का गौना—ऊँचे स्थान पर जामिनी गढ़ बसा हुआ है। उसके पास ही कलवार निवास करता है। लाड़िली जीवा और उसकी भाभी पँसासारी खेल रही हैं। भाभी कहती है—'हे जीवा, तेरा विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था। बारह वर्ष बीत गए, पर तेरा गौना नहीं हुआ।' भाभी के वचन उसके हृदय को पीड़ा देने लगे और उसने ब्राह्मण को जामिनी भेजा। जीवा के पति ऊभदेव ने अपने भाई से घोड़ी माँगी। भाई ने घोड़ी देने से इनकार कर दिया। भाभी ने घोड़ी दिला दी, पर घोड़ी कसते समय छींक हो जाती है। भाई ऊभदेव को जाने से रोकता है, पर वह नहीं मानता। मार्ग में पड़नेवाला जारौली निवासी (ऊभदेव का शत्रु) राय पम्मार घोड़ी माँगता है, पर वह उसे बुरा भला कहकर चला जाता है। जब वह गौना लेकर लौटता है तो ब्राह्मण जल्ला राय से मिल जाता है और ऊभदेव को बहुत अधिक मदिरा पिला देता है। जल्ला घोड़ी लेने का प्रयत्न करता है। घोर संग्राम होता है, जिसमें ऊभदेव खेत रहता है। जीवा सती होने के लिये प्रस्तुत है, इसी बीच शंकर पार्वती चिंता लेने के लिये निकलते हैं और ऊभदेव को अमृत देते हैं।

यह पँवाड़ा वर्णनात्मक न होकर अधिकांश में संवादात्मक है। बीच बीच

[1] डा० सत्येंद्र : ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ३५७।

में नीति के भी सुंदर कथन हैं। जीवा के सौंदर्य का भी अच्छा चित्रण हुआ है। यह पँवाड़ा अहीरों को बहुत अधिक प्रिय है, क्योंकि अहीरों की वीरता का इसमें आदर्श चित्रण हुआ है। उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ ये हैं :

जमुना नद्दी तरे बहे औ ऊपर गोकुल गाँव।
धन्नि अहीर के भाग कौं कस्न लए अउतार।
ऊँचे बसै गढ़ जामिनी नीचे बसै कलवार।
जौंजरि बसैं हरी के जाचक बजैं डहारे बंस।
ननद भउजी दोनौ अंटा चढ़ि गईं खेलैं पंसासारि।
हारि जीत मानै नहीं भउजी दए जुआव।
अति कीनी जीवा लाड़िली तेरो बारे न्यो बिआव।
बारा बसैं बीति गईं तोरे गउने की सुधि नाहिं।
माता बउरी मन मरैं मझवा पै बिस खाँय।
बोल तौ बोले भउजिला होत करेजेन घाय।

\+ + +

अरे रे बाम्हन मेरे नग्र के जामिनी मैं जाव।
कहिऔ जान मेरे जेठ ददा पै गउनो करि लइ जाव।
कै दादा कुलहीन भए कै घटे खजानन दाम।
भाजि परैं केउ गेर के मारैं पगिआ को मान।

\+ + +

ओंठ तमोली रचि गई जीबा की भौंहें करीं कमान।
भौंअन बदरा उमड़े कुँअरि के नैनन गोरा घार।
दाँत किवारे केस घने मुख बैनिन लटकैं जाय।
मोरा चाहे बन घनो वंदर सलंगी डार।
गोरिल चाहे पिय रसिया औ सिर लंबे केस।

\+ + +

बाम्हन गओ जामिनी तौ रहा मैं मिलो जल्ला पमार।
ऊभदेव घोड़ी चाउँरी मोरे खलंगा से देव निकारि।
खलंगा से देव निकारि पांडे पंद्रह गाँव इनाम।
आज के अठएँ तुमको राजा ऊभनि मिलइएँ आव।

(२) घन्नइया पँवाड़ा—आल्हा, ढोला आदि तो अंतर्प्रांतीय गीत हैं, पर घन्नइया कनउजी का स्थानीय गीत है। लोकगीतों के जितने भी संग्रह बोलियों में प्रकाशित हुए हैं, उनमें किसी में यह गीत नहीं मिलता। इसकी कथा का संक्षेप है :

गंगा और यमुना के बीच में बकेसुर नगर है, जिसके राजा गजोधर हैं। उनकी रानी पुत्री को जन्म देती है। राजा कचहरी में बैठे हैं। शीघ्र ही बाँदी जाकर उन्हें सूचित करती है। फिर धनकुन को भी बुला लाती है। ब्राह्मण आकर उस कन्या का नाम पद्मिनी रखता है। सूप पर ही अभी कन्या पड़ी है, पर अपना वर खोजने के लिये माता से कहती है। इस कार्य के लिये नाई ब्राह्मण भेजे जाते हैं। वे बसावसेली के राजा वासुकि के यहाँ पहुँचते हैं। वासुकि अपने पुत्र नगमुनियाँ के टीका के लिये नाई तथा ब्राह्मण से अनुरोध करते हैं, पर वे बहाना करके वहाँ से निकल भागते हैं तथा निबा निबौरी के राजा सूरजमल के यहाँ पहुँचते हैं। राजा सूरजमल अपने पुत्र खरगलाल का टीका चढ़वाने के लिये कहता है। खरगलाल इसके विरोध में रोता तक है, पर उसकी कुछ नहीं सुनी जाती और टीका चढ़ जाता है। निश्चित तिथि पर निबा निबौरी से बकेसुर बरात आती है, और उधर नगमुनियाँ भी छाए हुए मंडप पर छिपकर बैठ जाता है। बारात की अगवानी होती है। इस समय भी खरगलाल कहता है कि अभी बात बिगड़ी नहीं हैं, पर उसकी कोई सुनता ही नहीं। प्रत्येक कार्य संपादित होने के पूर्व छींक द्वारा अपशकुन हो जाता है। भाँवरें होते ही नगमुनियाँ खरगलाल को डस लेता है और उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। सभी ओर हाहाकार मच जाता है। पद्मिनी के दुःख का तो कहना ही क्या है? सूरजमल के साथ बारात लौटती है। पद्मिनी हरे बाँस कटवाकर साँपों की रस्सी से घड़ों को बाँधकर घन्नइया बनाती है तथा कुरुकमंछा (कामरूप) के लिये घन्नइया द्वारा प्रस्थान करती है। मार्ग में अनेक दुष्ट उसे पतित करना चाहते हैं, पर सभी दुःखों को झेलती हुई वह कुरुकमच्छा पहुँचती है। वहाँ खरगलाल जीवित हो जाता है, पर धोबिन, तेलिन आदि अनेक नायिकाएँ उसे जादू से जानवर बना देती हैं। इस प्रकार सात वर्ष बीत जाते हैं। एक वर्ष में बाद में पद्मिनी खरगलाल के साथ उलटी घन्नइया खेकर चल देती है। वहाँ वह निबा निबौरी लौटती है। सभी हर्षित होते हैं। तत्पश्चात् बकेसुर आती है। वहाँ पर साँपों के बंधन खोल दिए जाते हैं। बारात पुनः आती है तथा धूमधाम से विवाह होता है। सर्पों का यज्ञ कर दिया जाता है। बारात वापस जाती है तथा पद्मिनी एवं खरगलाल आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

कोई भी काव्य जब रचा जाता है तो प्रारंभ में मंगलाचरण या देवस्तुति की जाती है। लोककवि भी इस परंपरा को भूला नहीं। घन्नइया के प्रारंभ में देवस्तुति की गई है :

ये ही नगर की भुइआँ भमानी, तुम्हरे लेए हम नींब।
पहिले हम सुमिरैं रामचंद कौ, जिन्ने पिंडी दई बनाय।
दूजे हम सुमिरैं मातपिता कौ, कुच्छा लए नौ मास।

तिसरो मैं सुमिरौं घरा घरा कौ, जिन्ने रोंपे दोनों पाँव।
गुरु कौ हम गामैं गुरु कौ मनामैं, जिन्ने दिछा दई अधिकाय।
गुरु कौ हम गामैं गुरु कौ मनामैं, नित उठि गंगा करैं असनान।
सबकौ हम गामैं सबकौ मनामैं, सबके हम जानैं न नावँ।
जो जो अंछर भूलैं सरसुती, कंठ बिराजो न आय।

२. लोकगीत

कनउजी में अधिकांश पद्य कथात्मक होते हैं। कथा का आकार किसी में तो अत्यंत लघु होता है और किसी मे दीर्घ। संस्कारगीतों में ऐसे थोड़े ही गीत मिलते हैं जिनको कथात्मक नहीं कहा जा सकता। वंदना से संबद्ध भजन, देवी का जस तथा बिरहा आदि ऐसे गीत हैं जिनमें कथा का नितांत अभाव है।

कनउजी पद्य को समग्र रूप से देखने पर कहना पड़ता है कि इसमें श्रृंगार रस की उतनी प्रधानता नहीं जितनी भोजपुरी, बँगला आदि में है। श्रृंगार रस के उत्कृष्ट गीतों की संख्या बहुत कम है।

करुण रस के गीतों का कनउजी में बाहुल्य है। स्त्री की ससुराल में दुर्दशा, वंध्या का नारकीय जीवन तथा विधवा की असहायावस्था आदि विषयों पर आधारित गीतों में करुणा की धारा प्रवाहित है। पूर्वी बोलियों में दुःखांत गीत भी मिलते हैं, पर कनउजी में करुणा उड़ेलनेवाले गीत भी सुखांत हो जाते हैं। कुछ ऐसी भी गीत हैं, जो पूर्वी बोलियों के गीतों की कथावस्तु से साम्य रखते हैं, पर उनमें अंत में कुछ हेर फेर हो जाता है। ऐसा ही एक वंध्या के दुःख से संबंधित गीत है। अवधी और भोजपुरी में वंध्या काठ का बालक बनवाती है और उससे अनुनय करती है कि वह बोलकर माता के हृदय को शीतल करे, पर काठ का बालक कहता है कि यदि मैं देव द्वारा गढ़ा जाता तो बोलकर सुनाता। इस प्रकार यह गीत दुःखांत है। परंतु कनउजी में यह सुखांत हो जाता है। जिस समय स्त्री बोलने के लिये अनुनय करती है, नौ मास की अवधि पूरी हो जाती है तथा बालक जन्म लेता है।

आकार की दृष्टि से भी कनउजी गीतों में मनोरंजक विषमता मिलती है। इस प्रदेश का सबसे छोटे आकार का गीत बिरहा है। इसमें केवल दो ही पंक्तियाँ होती हैं। दूसरी ओर इतने बड़े बड़े गीत भी होते हैं जो गाने पर दस पंद्रह दिनों में समाप्त होते हैं। ये गीत प्रबंधगीत (पँवाड़ा) हैं जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

कुछ संवादात्मक गीत भी कनउजी में मिलते हैं। इनमें उत्कृष्ट कोटि की नाटकीयता होती है। खेतों में काम करते समय, यात्रा करते समय अथवा अवकाश के समय में एक पक्ष कुछ गाता है और दूसरा पक्ष उसका उत्तर देता है। खेल

खेलते समय बच्चे भी गीत गाते हैं तथा माता छोटे बच्चों को सुलाते समय थपकी देकर लोरियाँ सुनाती है।

यहाँ के कुछ लोकगीतों में प्रत्येक पंक्ति के आरंभ तथा अंत में प्रायः कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जिनका गीत के अर्थ से कोई संबंध नहीं होता। वे शब्द गीत की स्वरसाधना में सहायक होते हैं, जैसे आरंभ में 'कि एजू', 'कि अरे रामा' और अंत में 'हो हरी', 'रामा हो रामा' आदि।

(१) श्रमगीत—

(क) चक्की के गीत—चक्की के गीतों को 'जाँत के गीत' भी कहा जाता है। इनमें आचारशिक्षा कूट कूटकर भरी है। इनमें करुण भाव को विशेष महत्व दिया जाता है, पर कुछ गीत रामायण और महाभारत के कथानक पर भी आश्रित हैं। सीताहरण चक्की के गीतों का प्रिय विषय कहा जा सकता है :

रथ तौ रोंकत जात जटाई।
विप्र रूप धरि आओ राउन, भिच्छा माँगन जाई।
कुड़री बाहर भई जानकी, रथ पै लेत चढ़ाई। रोंकत०।
कीकी बिटियाँ काह नाम है, कउन हो लए जाई।
सुर्ज बंस निरपति राजा दसरथ, तिनके सुत रघुराई। रोंकत०।
तिनकी तिरिआ नाँव जानकी, हरे निसाचर जाई।
अइसो कोई होय रामादल में, हमको लेब छुड़ाई। रोंकत०।
अगिन बान जब छोड़ो राउना, पंख गिरे हहराई।
तुलसी दास[1] भजौ भगवाना,
राम ते कहिऔ कथा समुझाई। रोंकत०।

चक्की के गीतों को यदि समग्र रूप से देखा जाय तो जीवन के सभी पहलुओं पर इनसे कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। इन गीतों में कथाएँ भी होती हैं और कथानक में जो भाव होता है वह उसी प्रकार का होता है जैसे मिट्टी के गमले में फूल। कोमलता, मधुरता तथा चिरस्थायी प्रभविष्णुता इनके गुण हैं[2]।

(ख) रोंपा तथा निराई के गीत—रोंपा (रोपनी) तथा निराई के समय जो गीत गाए जाते हैं उनमें तथा चक्की के गीतों में कोई स्पष्ट सीमारेखा नहीं खींची जा सकती क्योंकि जिस प्रकार श्रमनिवारणार्थ चक्की के गीत गाए

[1] ऐसे अनेक गीत हैं, जिनमें लोककवियों ने अपना नाम न देकर 'तुलसी' की छाप दे दी है।

[2] पं० रामनरेश त्रिपाठी : कविताकौमुदी, भाग ५।

जाते हैं उसी प्रकार 'रोंपा' तथा 'निराई' के गीत भी। इन गीतों में मुगलों के अत्याचार, वियोगिनी का दुःख, सास ननद का दिया दुःख आदि विषय होते हैं। चक्की तो बैठे बैठे पीसी जाती है, पर रोंपा और निराई करते समय चलना भी पड़ता है, इसीलिये स्वरसाधना की दृष्टि से इन दो प्रकार के गीतों में भेद है। रोंपा तथा निराई का एक गीत दिया जाता है :

कि एजी माँझ माँझ रुखवा हैं ठाड़े इक महुआ इक आम।
कि एजी उइ तरे ठाड़े दुइ परदेसिया, इक लछिमन इक राम॥
कि एजी सिउ कौ पूजन चलीं सितल दे सब सखियन के संग।
कि एजी की हौ तुम कोई बाट बटोही, की रे परदेसी लोग।
कि एजी ना हम हैं कोई बाट बटोही, ना रे परदेसी लोग।
कि एजी हम तो हैं दोनौं राम लच्छिमन, राजा दसरथ जू के पूत।
कि एजी नौ मन सुनवाँ जनक मँगाओ, धनिस घरो बनवाय।
कि एजी जो कोइ धनिस कौ टोरि दिखावै, सीता कौ ब्याहि लइ जाय।
कि एजी धनिस कौ टोरन राम जी चले हैं, लछिमन ठाड़े मुसक्यायँ।
कि एजी कोमल गात उमिरि भइआ थोरी, बहिआँ मुरकि न जाय।
कि एजी बहिआँ रे बहिआँ जनि करौ लछिमन, फिरि पाछे पछिताय।
कि एजी धनिस टोरि नौ खंड करे हैं, सीता कौ ब्याहे लए जायँ।
कि एजी सीता कौ ब्याहि अवधपुर लइ गए घर घर बजत बधाई।
कि एजी माँझ माँझ रुखवा हैं ठाड़े, इक महुआ इक आम।

(२) ऋतुगीत—

(क) सावन के गीत—कनउजी के सावन गीतों को तीन कोटियों में रख सकते हैं। एक तो वे, जिनमें सावन की हरियाली, मेघों की घटा, रिमझिम रिमझिम पड़नेवाली फुहार और बिजली चमकने का वर्णन होता है। दूसरे वे गीत हैं, जिनमें दांपत्य जीवन का चित्रण मिलता है। इन गीतों में शृंगार के उभय पक्षों की झाँकी मिलती है। तीसरे वे गीत हैं, जिनमें स्त्री की मायके जाने की साध, उसके भाई का आना, माता के संबंध में चिंतित रहना आदि हैं। इस विषय को लेकर कनउजी में जितने करुणापूर्ण भावों को व्यक्त करनेवाले गीत हैं, कदाचित् दूसरी भाषा में उतने नहीं हैं। नीचे कुछ सावन (कजरी) गीत दिए जाते हैं :

कि अरे रामा हीरा जड़ी संदूक मोतिन की माला, हे हारी।
कि अरे रामा सोने के थारन भुँजना परोसे, रामा हे रामा।
कि अरे रामा जेमों ननद जू के भइया, तुम्हारे परैं पइयाँ, हे हारी

कि अरे रामा सोने के गडुआ गंगाजल पानी, रामा हे रामा।
कि अरे रामा पिओ ननद जू के भइया, तुम्हारे परैं पइयाँ, हे हारी।
कि अरे रामा पाना पचासी की बिरिया लगाई, रामा हे रामा।
कि अरे रामा रचौ ननद जू के भइया, तुम्हारे परैं पइयाँ, हे हारी।
कि अरे रामा फूलन बारी की सिजिया बिछाई, रामा हे रामा।
कि अरे रामा सोवो ननद जू के भइया, तुम्हारे परैं पइयाँ, हे हारी।

(ख) फाग—वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में गाए जानेवाले गीतों को फाग कहते हैं। जिस प्रकार कजरी की स्वरलहरी स्त्रियों के कंठ से सावन मास में प्रवाहित होकर वातावरण को रसमय बना देती है, उसी प्रकार फाग पुरुषकंठ से निःसृत होकर वसंत के उन्माद को द्विगुणित कर देता है। फागुन में गीतों की झड़ी सी लग जाती है। रात दिन लोगों को फाग गाने की धुन सवार हो जाती है। फाग का प्रधान विषय है राधाकृष्ण तथा ग्वालबालों का होली खेलना, जिसमें अबीर, गुलाल और पिचकारी का विशेष प्रकार से उल्लेख होता है। इन गीतों में राधाकृष्ण के प्रेम और क्रीड़ाविलास का वर्णन भी होता है। कुछ गीतों में शिव जी का भी नाम आ जाता है। संभवतः होली के समय भंग का प्रयोग शिव का होली से संबंध होने के कारण ही किया जाता है। होली वास्तव में फसल का पूर्वकाल है। इसमें सृजन का तत्वदर्शन होता है। यही कारण है कि होली में नग्नता और अश्लीलता का भी प्रदर्शन होता है।

होली के समय गाए जानेवाले गीतों की दो श्रेणियाँ होती हैं। एक क्रीड़ाविलास की और दूसरी ओजपूर्ण। ओजपूर्ण गीतों में महाभारत तथा रामायण के विविध युद्धों का बड़ा ही सजीव वर्णन होता है। इनमें सीतावनवास और लक्ष्मणशक्ति आदि का भी समावेश रहता। कुछ में उपदेश भी है।

गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका एक स्वतंत्र राग होता है। इसके गाने की विधि बड़ी विचित्र होती है। गीत में संमिलित होनेवाले सभी लोग एक साथ ही चिल्ला चिल्लाकर गाते हैं, जिसे सामूहिक गान (कोरस) कह सकते हैं।

फाग का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है :

होरी खेलि रहे नंदलाल, मथुरा की कुंजगलिन में।
अरे कहाँ ते आई राधा प्यारी, कहाँ ते आए नंदलाल।
अरे कहाँ ते आए गोपी ग्वाल। मथुरा०।
अरे पूरब ते आई राधा प्यारी, अरे दखिन ते आए नंदलाल।
अरे पछिम ते आए गोपी ग्वाल। मथुरा०।

अरे रंग तो लाई राधा प्यारी, अरे पिचकारी नंदलाल।
अरे भरि भरि मारैं गोपी ग्वाल। मथुरा०।

(ग) बारहमासा—यह बड़ा ही लोकप्रिय वियोगगीत है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्रवास के लिये मंदाक्रांता छंद का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार लोकगीतों में वियोग के लिये बारहमासा का। इन गीतों में प्रत्येक मास का वर्णन होता है, अतः उसे प्रकृतिवर्णन की कोटि में रख सकते हैं। पर इनमें प्रकृति श्रृंगार के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आती है। एक बारहमासा है :

चैत मास चिंता अति बाढ़ी, प्रान रहै चित लेखे।
कइसे धीर धरैं मोरी सजनी, बिन हरिमोहन देखे।
बइसाख मास रितु लगी री सजनी, सब कोई मंडिल छाए।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस हैं छाए, हमरे मंडिल को छावै।
जेठ मास रितु लागी री सजनी, चौलित पमन झकोरे।
अइसी पमन चलै निसबासर, अंग अंग करि टोरै।
असाढ़ मास रितु लागी री सजनी, चौतिर बादर घेरै।
बिजुली चमकै कोई न सदरखै, रिमिक झिमिक जल बरसै।
साउन मास रितु लागी री सजनी, सब सखि झूला झूलैं।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस हैं छाए, झुलुआ कइसे झूलैं।
भादौं मास रितु लागी री सजनी, चौलित अँधियरिया छाई।
मोर की बानी पपीहा बोले, दादुल बचन सुनावै।
क्वाँर मास रितु लागी री सजनी, सब कोई गंगा हनाय।
हमरे तो क्रस्न बिदेस हैं छाए, हमरे को गंगा हनाय।
अगहन मास रितु लागी री सजनी, सब सखि गउने जायँ।
हमरे तो क्रस्न बिदेस हैं छाए, हमरो गउनो को लेवै।
पूस मास रितु लागी री सजनी, जाड़ो बहुत सतावे।
हमरे तो क्रस्न बिदेस हैं छाए, हमरो जाड़ो कइसे छूटै।
महाँ मास रितु लागी री सजनी, मालिन बौर लइ आई।
हमरे क्रस्न बिदेस हैं छाए, हमरे बौर कउन लेव।
फागुन मास रितु लागी री सजनी सब सखि होरी खेलैं।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस हैं छाए, हम होरी कइसे खेलैं।

(३) मेला गीत

सीता फूली न अंग समायँ, देखि छबि राम जी की।
कोइ कोइ सखियाँ मंगल गामैं, कोइ कोइ केस सँवारैं।
सात सखी मिलि बूझन लागीं, कउन हैं कंत तुम्हारे। देखि छबि०।

बाँहन मैं पीतंबर सोहै, कानन कुंडल बारी।
जिनके मूँड़ पै मुकट बिराजे, ओई कंत हमार। देखि छबि०।
कोई कोई कछनी काछे, कोइ कोइ लाँग सँवारे।
सात सखी मिलि बोलन लागीं की जो कहुँ राम तुम्हैं ब्याहन चाहैं,
धनिस लेयँ अजमाय। देखि छबि०।
धनिस उठाय टोरि दओ छिन में,
सीता को चले बिआहि। देखि छबि०।

(४) संस्कारगीत

वैदिक संस्कारों में अब मुख्यतया पाँच संस्कार मनाए जाते हैं। अतः इन्हीं से संबंध रखनेवाले पाँच प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं—

(१) जन्मगीत, (२) अन्नप्राशनगीत, (३) मुंडनगीत, (४) यज्ञोपवीतगीत, (५) विवाहगीत।

(क) जन्मगीत—

जन्म, अन्नप्राशन और मुंडन के समय मुख्य रूप से जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'सोहर' कहते हैं। अन्य गीत केवल औपचारिक होते हैं। जब कोई संस्कार संबंधी कार्य होता है तो उसमें किस संबंधी का क्या हाथ है, इसी का वर्णन विशेष रूप से रहता है। इस कोटि में 'बरुआ', 'नारा छीनने' 'सतिया', 'तीर मारने', 'संतति हनान', 'छठि रखने', 'अन्नप्राशन' (मुहँबोर) तथा 'मुंडन' के गीत आते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार में प्रचलित गीत 'बरुआ' कहलाते हैं, तथा विवाह के समय गाए जानेवाले गीतों के घोड़ा, घोड़ी, बन्ना, बन्नी आदि नाम हैं।

(१) सोहर—कनउजी में दूसरे गीतों से सोहरों की संख्या बहुत अधिक है। सोहर का वर्ण्य विषय मुख्यतया शृंगार है। इसमें दंपती की रतिक्रीड़ा, गर्भिणी स्त्री की शरीरयष्टि, प्रसवपीड़ा, गर्भिणी की इच्छा, पुत्र का जन्म, घर का आनंद प्रभृति विषय होते हैं। परंतु साथ ही सीता, बाँझ स्त्रियों तथा उनके कष्टों एवं मनोवेदना का भी चित्रण मिलता है। छंदों में वर्णित विविध भावनाओं की दृष्टि से सोहर के निम्नलिखित भेद हैं :

१. कामना, २. दोहद, ३. प्रसवपीड़ा, ४. जन्म, ५. ननद और भाभी के बदने, ६. नेग, ७. प्रसूता के नखरे, ८. आनंद बधाये।

(२) प्रसव—

कैसी अनमनी हौ आज नारि तुम काए अनमनी।
चोली चीर अरगनी टाँगो, केस लएँ छिटुकाए, सुनो जिया।
खन आँगन खन भीतर डोलैं, आवे पहारू पीर, सुनो जिया।

भोर होत पौ फाटन लागो, केस्न लियौ अवतार, सुनो जिया।
काए के छुरनियन नार छिनाओ, काए के खपर हनवाओ।
सोने छुरन सो नार छिनाओ, रूपे खपर हनवाओ।
गैया के से गुबरन आँगन लिपाओ, तिलन चौक पुराओ।
कौन जियाए कौन खिलाए, कि केरै लाला कहाए।
ननदा ने जाए देवकी खिलाए, जसुदा के लाल कहाए।

(ख) बरुआ गीत—

यज्ञोपवीत संस्कार के गीतों को 'बरुआ' कहते हैं। यह संस्कार कनउजी प्रदेश में, प्रधानतया ब्राह्मणों के यहाँ और कहीं कहीं क्षत्रियों के यहाँ भी, होता है। अतः इन गीतों का इन्हीं दो वर्गों में प्रचलन है। इतना होते हुए भी आश्चर्य की बात यह है, कि इस संस्कार से संबंधित गीत बहुत उपलब्ध होते हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार के कारण माता, पिता तथा स्वयं ब्रह्मचारी की प्रसन्नता एवं संस्कार के विविध विधि विधानों का वर्णन इन गीतों में मिलता है। एक गीत में दशरथ राम के जनेऊ के लिये चिंतित हैं और वशिष्ठ से प्रार्थना करते हैं कि राम आठ वर्ष के हो गए, उन्हें जनेऊ पहनने की बड़ी साध है। कहीं कहीं जनेऊ के विभिन्न कृत्यों की तैयारी में लोग व्यस्त दिखलाए जाते हैं। विधि विधानों को बतलाने के लिये एक ऐसे पात्र की योजना की जाती है जो पूछता है कि जनेऊ कहाँ हो रहा है? इसके उत्तर में कहा जाता है कि जहाँ बाँसों पर धोती सूखती हो, ब्राह्मणों को भोजन कराया जा रहा हो, पंडित वेदोच्चार कर रहे हों, तथा जिस प्रांगण में ढोल आदि बाजे बज रहे हों, वहीं समझना कि यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा है।

जनेऊ के समय सभी संबंधी आमंत्रित होते हैं। अतः इन गीतों में यह भी वर्णन मिलता है कि जब संबंधी लोग संस्कार में संमिलित होने के लिये आते हैं, तो मार्ग में वर्षा होने के कारण उनके 'सोलह शृंगार' भीग जाते हैं। जनेऊ हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी भिक्षा माँगता है, क्योंकि वेदाध्ययन करने के लिये उसे काशी भी तो जाना है। अपनी मातामही, पितामही, माता, चाची तथा भाभी आदि से वह कहता है—मुझे सत्तू और दो लड्डू दे दो, जिससे मैं काशी वेद पढ़ने के लिये जा सकूँ।

अवधी, भोजपुरी, मगही, बँगला, उड़िया, गुजराती, राजस्थानी आदि के जनेऊ गीतों से कनउजी के वर्ण्य विषय में बहुत समानता है। विवाह में बहुत अंतर होता है, पर जनेऊ सब प्रदेशों में लगभग एक ही प्रकार से होता है। यहाँ 'बरुआ' गीत का एक उदाहरण दिया जाता है :

को मेरे मुँजावन जइऐ, मुँजिया कटइऐ।
को लइ आवै मूँज को जनेऊ चहिऐ।
आजा मोरे मुँजवन जइऐं, मुँजिया कटइऐं।
बेइ लइ आमैं आली मूँज के जनेऊ चहिऐं।
पहिलो जनेऊ मूँज को, दुसरो हिरनवाँ की खाल।
तिसरो जनेऊ सूत को, रँगो है हरदिया की गाँठ।
कासी बेद पढ़ि आए नरायन बरुआ।
किन जा दई है पीरी लँगुटिआ।
आजा मेरे दई है पीरी लँगुटिआ, आजी ने जनओ कराओ।
चाचा मेरे दई है पीरी लँगुटिया, चाची ने जनओ कराओ।
माया मेरी दई है पीरी लँगुटिया, भउजी ने जनओ कराओ।

(ग) विवाहगीत—

विवाह की विविध रस्मों के समय सैकड़ों गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में लोककवि ने बालविवाह, वृद्धविवाह, विषम विवाह तथा दहेज की विषम समस्याओं पर भी अपने उद्गार व्यक्त किए हैं। वर खोजने के लिये पिता की परेशानी तथा विदा के समय के गीतों में जो चित्र खींचे गए हैं, वे बड़े ही हृदयस्पर्शी हैं। कनउजी में ऐसे भी गीत मिलते हैं जिनमें वर तपस्वी का वेष धारण कर कन्या के आँगन में बैठकर तपस्या करता है तथा कन्या के माता पिता के पूछने पर उत्तर देता है कि मैं तुम्हारी कन्या को वरण करना चाहता हूँ। विवाह के गीतों में कहीं कहीं कन्या सुंदर और अपने अनुरूप वर खोजने के लिये पिता से प्रार्थना करती है। दूसरी ओर माता अपने पति को कन्या के लिये वर खोजने के लिये प्रेरित करती है। इनमें विवाह की सजधज तथा ज्योनार का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन भी होता है।

विवाह गीतों में दो प्रकार के गीत होते हैं। एक तो वे हैं, जो वधू के घर में गाए जाते हैं, और दूसरे वे जो वर के घर में। कन्यापक्ष के गीत करुण रस से पूर्ण होते हैं, क्योंकि माता पिता को बहुत बड़ी चिंता यह होती है कि उनकी कन्या एक अपरिचित व्यक्ति के साथ सदैव के लिये चली जायगी। उन्हें उसके चले जाने का इतना शोक नहीं रहता जितना यह सोचकर कि क्या वहाँ उसे सुख मिलेगा? दूसरी ओर वरपक्ष के अधिकांश गीतों में सजावट और धूमधाम का वर्णन मिलता है, क्योंकि वर, उसके पिता तथा माता को इस बात की प्रसन्नता रहती है कि उन्हें एक वधू की प्राप्ति होगी। दोनों पक्षों में गाए जानेवाले मुख्य गीत निम्नांकित हैं :

कन्यापक्ष	वरपक्ष
१. पीली चिट्ठी	१. बरीसा
२. फलदान	२. फलदान

३. भात माँगना (पियरी)	३. भात माँगना
४. धना	४. धना
५. मंडप गाड़ना	५. मंडप गाड़ना
६. तेल चढ़ाना	६. तेल चढ़ाना
७. पितृ तथा देवनिमंत्रण	७. पितृ तथा देवनिमंत्रण
८. मायँ मैथरा	८. मायँ मैथरा
९. द्वारचार	९. पुरइन पूरना
१०. चढ़ावा	१०. मौर पहनना
११. भाँवर	११. वस्त्र पहनना
१२. कन्यादान	१२. निकरौसी
१३. द्वार रोकना	१३. नूनराई उतारना
१४. बाती मिलाना	१४. उबटन
१५. ज्योनार	१५. कंगन छुड़ाई
१६. कलेवा	१६. मौर सिराई
१७. गारी	१७. गारी
१८. बन्नी	१८. बन्ना
१९. घोड़ी	१९. सोहागरात
२०. नकटा	२०. खोड़िया (नकटा)

विवाह के कुछ गीत उदाहरणार्थ निम्नांकित हैं :

(१) बन्ना—

सइयाँ साँझ के निकरे हैं आए भोर भए।
कउने बिलमाए कउने बस मैं परे।
लउँगन बिलमाए जइफर बस मैं परे।
लउँगन कटवइए जइफर कलम करे।
महलन ऊपर रनियाँ रूप सरूप धरे।
रनियाँ मरवइएं बलमा बस मैं करे।
पतिया लिखि भेजौं नइहर खबरि करैं।
भइआ चढ़ि आमैं बलमा पै मार परै।

(२) विदा गीत—

आम नीम तरे ठाढ़ी बेटी, माया कलेवा लए ठाढ़ि है रे।
खाय न लेव मोरी बेटी परदेसिन, तुम्हरे कलेवा बड़ो दूरि रे।
सोउत बेटी की डुलिया फँदामैं, सोउत करैं असवार है रे।

इक बन नागी दुसर वन नागी, तिसरे मैं पहुँची जाय है रे।
परदा खोलि जब बेटी जू देखो, छूटो नइहर को देस है रे।
एहो मैके को कोई नाहीं, बाप को कोई नाहीं।
एहो मारि कटारि मरि जाऊँ, तौ मैको को कोई नाहीं है रे।

(५) धार्मिक गीत

(क) देवी के गीत—देवी के गीत दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक तो वे जो स्त्रियाँ 'जागरण' में गाती हैं और दूसरे वे जो 'भगत' गाते हैं। इन गीतों में देवी की प्रार्थना, स्तुति, उनके पराक्रम, उनके स्थान की शोभा आदि का वर्णन, 'जाति' की तैयारी तथा यात्रियों की कठिनाइयों का उल्लेख मिलता है। यह गीत स्त्रियाँ तथा पुरुष विशेष रूप से चैत्र मास में गाते हैं। चैत्र मास के शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से लेकर नवमी तक नवरात्र व्रत रखा जाता है। इन दिनों स्त्रियाँ रात्रि-जागरण करके गीत गाती हैं। सप्तमातृका की पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त शीतला देवी की भी आराधना होती है। नीचे देवी के गीत दिए जाते हैं:

सीतला महरानी की जइजइ बोलो।
गइआ को दूध मइआ कइसे चढ़ामैं,
बछुरा ने डारो है जुठारि, कि जइजइ बोलो।
साठी के चाँउर मइआ कइसे चढ़ामैं, चिरई ने डारे हैं जुठारि।
गंगा को नीर मइआ कइसे चढ़ामैं, मछरी ने डारो है जुठारि।
बारी को फूल मइआ कइसे चढ़ामैं, भँवरा ने डारो है जुठारि।

(६) बालगीत

कनउजी में अनेक गीत बालक बालिका, स्त्री पुरुष खेलने के समय गाते हैं। इनका उद्देश्य खेलों को मनोरंजक बनाना होता है। फलतः इनमें उत्कृष्ट गीततत्व न होकर केवल वाणीविलास रहता है।

(क) शिशुओं के गीत—छोटे छोटे बच्चे जो खेल खेलते हैं उनके साथ गीत भी गाते हैं। प्रत्येक खेल के लिये अलग अलग गीत होता है और इन गीतों में खेल से संबंधित प्रक्रिया का भी कहीं कहीं उल्लेख होता है। एक खेल का नाम 'घपरी घपरा' है। इस खेल में संमिलित होनेवाले सभी बालक अपनी अपनी हथेलियों को एक दूसरे की हथेलियों के ऊपर रखते हैं। जिसकी हथेलियाँ ऊपर होती हैं, वह अपनी एक हथेली से अन्य हथेलियों को थपथपाकर कहता है:

घपरी के घपरा, फोरि खाए खपरा।
मियाँ बुलाए चमकत आए।
पकर जितल के कावै कान।

इतना कहते ही दो दो बालक आपस में एक दूसरे के कान पकड़कर खींचते हैं और सिर हिलाते हुए गाते हैं :

चेऊँ मेऊँ चेऊँ मेऊँ,
चेऊँ मेऊँ चेऊँ मेऊँ,
हुर्र बिलइया।

'हुर्र बिलइया' कहते ही सब एक दूसरे के कान छोड़कर हाथ ऊपर उठा देते हैं।

लोरी—बच्चों को बहलाने तथा सुलाने के लिये जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें 'लोरी' कहते हैं। ये गीत माता, दादी अथवा बहन गाती हैं। पर कनउजी में इस कोटि के कुछ ऐसे गीत भी हैं जिनको बच्चों को बहलाने के लिये पिता अथवा बड़ा भाई गाता है। एक गीत यहाँ दिया जाता है जिसमें गायक बच्चे को अपने पैरों पर बिठाकर झुलाता है और साथ साथ गाता भी जाता है :

खंत खनइयाँ, कौड़ी पइयाँ।
डगर चलत हम कौड़ी पाई।
कौड़ी हम घसियारे दीनी।
घसियार हम को घास दीनी।
घास लै हम गैए डारी।
गउआ हमकौ दुधू दीनो।
दुधू की हम खीर बनाई।
लल्ला खाई सबने खाई।
रही बची सो आरे धरी पिटारे धरी।
सियरामऊ को बंदर आओ।
कुछु खाय गओ कुछु ढरकाय गओ।
डुकरिया रहँटा हटइ पै।
मरखना वर्धवा आउत है।

यह कहकर पैर उठा दिए जाते हैं और शिशु आनंदित हो जाता है।

(ख) बालकों तथा वयस्कों के गीत—

टेसू—टेसू खेल बालकों, वयस्कों के लिये होता है। इसमें सभी वयस्क मिलकर घर घर टेसू माँगने जाते हैं। इस समय गाए जानेवाले गीतों को 'टेसू के गीत' कहा जाता है। इनकी प्रमुख विशेषता विलक्षणता है। इस विलक्षणता के साथ एक क्षीण तथा लघु कथावस्तु भी मिलती है। एक गीत की कथा है—कोई कहीं 'गुलैंदे' खाने गया। उसने कुछ खाए कुछ अपनी झोली में डाल लिए।

रक्षकों ने उसे पकड़ लिया। तब उसने सहायता के लिये एक अहीर को पुकारा। उस अहीर की घोड़ी ने रक्षक को पछाड़ दिया। तब रक्षक दिल्ली फरियाद के लिये गया। पर दिल्ली तो बड़ी दूर है, अतः वह चूल्हे की ओट में छुप गया।

इन गीतों में एक पद में एक बात और दूसरे में दूसरी बात का वर्णन होता है। अतः असंबद्ध को संबद्ध करके इनकी योजना होती है।

(ग) बालिकागीत—

(१) 'झुँझिया'—जिस समय बालक और युवा टेसू गाते हैं, उसी समय बालिकाएँ झुँझिया के गीत गाती हैं। 'झुँझिया' के गीतों में 'टेसू' के गीतों के समान विलक्षणता तो है ही, पर इनकी शैली में एक विशेष बात यह है कि ये संवादात्मक होते हैं। इन गीतों में माता और पुत्री के संवाद द्वारा अनेक विषयों को प्रस्तुत किया जाता है। कभी पुत्री पूछती है—'हे माता, भाई के विवाह में क्या क्या मिला? भाभी कैसी है और उसके गुण तथा अवगुण क्या हैं?' माता के उत्तर में अद्भुत बातें होती हैं। एक गीत इस प्रकार है :

हरो रुपट्टा लील को सुअना, रँगौ अरगनी टाँगि।
बाँधैं तो बाँधै रानी के रामरतन सुअना, बनि ससुरिया जायँ।
उनके ससुर की लगर बिटेना, सुअना पकरो रुपट्टा की खूँट।
छोंड़ो छोंड़ो लगर बिटेना, सुअना जो माँगौ सो देयँ।
माँगैं तो माँगैं ताल कसिरुआ, औ गुलरी को फूल सुअना।
ताल कसिरुआ सरि गए सुअना, गुलर फूले आधी रात।

(२) फुलेरा गीत—फुलेरा भी बालिकाओं का एक खेल होता है, जो फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक खेला जाता है। खेलों के सभी गीतों में से ये गीत कहीं अधिक गंभीर होते हैं। इनमें बालिकाओं के प्रति माता पिता का लाड़ प्यार, ताड़ना पाने पर उसका उत्तर तथा मायके के मोह का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण होता है। कहीं कहीं इनमें हास तथा विलक्षणता की भी पुट दे दी जाती है। नीचे एक फुलेरा गीत दिया जाता है :

ऊँचौ चौतरा चौखुटो, ज़हाँ बेटी खेलन जाँय।
हो राधा भामिन बनवारी की।
खेलत मेलत भोर भओ है, बाबुलि के दरबार। हो०।
बाबुलि काढ़ी साँटुली, हो भाई ने बोले हैं बोल। हो०।
काहे को काढ़ी साँटुली काहे को बोले हैं बोल। हो०।
आज बसेरो नीयरे, कालि बसेरो है दूरि। हो राधा०।
हम तौ तुम्हारी चीरई, चुनत बिनत उड़ि जायँ। हो०।

(७) विविध गीत—

(क) जातियों के गीत—लोकगीत सभी जाति के लोग गाते हैं, परंतु कुछ जातियों के निजी विशेष गीत भी होते हैं। इन गीतों में कहीं कहीं किसी जाति के पेशे से संबंध रखनेवाली कुछ बातें आ जाती हैं, जिनसे गीतों को पहचानने में सहायता मिलती है। भिन्न भिन्न जातियाँ भिन्न भिन्न रागों से गीत गाती हैं इसके आधार पर भी हम समझ पाते हैं कि अमुक राग किस जाति का है। जातियों के आधार पर रागों के नाम भी पड़ गए हैं। चमारों के राग को 'चमार राग' और धोबियों के राग को 'धोबिया राग' कहा जाता है।

(१) अहीरों के गीत—कनउजी प्रदेश में अहीर 'जखई' के उपासक होते हैं। जखई की प्रशंसा में वे उनका 'जस' गाते हैं। 'जस' के अतिरिक्त अहीरों का प्रसिद्ध गीत 'बिरहा' कनउजी से भोजपुरी क्षेत्र तक प्रचलित है। बिरहा बहुत छोटा छंद होता है, पर बिहारी के दोहों की भाँति गंभीर घाव करने की क्षमता रखता है। बिरहे का एक उदाहरण है :

गोरी के जुबना उमसन लागे, जइसे हिरनियाँ के सींग।
मूरिख जानै कुछू रोग उठत है, पीसि लगावे नीम॥
महँगी के मारे बिरहा बिसरि गओ, भूलि गई कजरी कबीर।
देखिके गोरी को उमसो जुबनवाँ, उठै न करेजवा में पीर॥

(२) चमारों के गीत—

मारे डारैं कटीली तोरी अँखियाँ।
ब्रह्मा बस कीनो बिस्नु बस कीनो।
रिसि मुनि बस कीनो बजाय के बँसुरिआ।
काम बस कीनो बिरोध बस कीनो।
हरि बस कीनो लगाय के छतिआँ।

(३) धोबियों के गीत—धोबी लोग मदिरापान के पश्चात् नाच के साथ अपना गीत धोबिया राग में गाते हैं। इन गीतों में धोबी के कार्य-व्यापार-संबंधी उल्लेख भी होते हैं। अहीरों की भाँति धोबी भी बिरहा गाते हैं :

ना बिरहन की खेती पाती, ना बिरहन को बंजा।
जाई पेट ते बिरहा उपजै, गाऊँ दिना औ रात।
छियो राम, छियो राम।

(४) कहारों के गीत—कहारों के गीत मुख्यतया शृंगार रस के होते हैं।

इनके गीत कहँरवा राग में गाए जाते हैं। श्रृंगार के अतिरिक्त इनके कुछ ऐसे गीत भी हैं जिनमें आध्यात्मिकता का संकेत मिलता है :

गोरी धना ने सुअना पालो, जी गोरी धना ने।
बड़ो जतन करि पिंजरा बनाओ। तामें घने घने तार लगाए जी।
तुंबा के कागज पिंजरा मढ़ाय दओ। मेरो पंछी न कहूँ उड़ि जाय जी।
राति दिन उनकी टहलि करति है। मेरो पंछी न कहूँ दुखियाय जी।
मेवा खवावै दिन राति पढ़ावै ताय। दिओ वाई से चित्त लगाय जी।
एक दिना सो गाफिल हुइ गई। सुअना निकरि गओ करै हाय जी।
खिरकी न खुली कोई तार न टूटो। जानै निकरि गओ कउन राह जी।
बाग बगीचा बनखंड सब ढूँढै। कहूँ पंछी न मिले राम जी।
प्यारे सुअना को कहूँ पता न पाओ। गोरी बइठि रही झक मारि जी।
याही विधि तेरे तन की दसा होय। लेउ जीवन हरिगुन गाय जी।

(ख) पहेलियाँ—

तनक सी नटिआ जोति आई पटिया। (सुई)
एक थार मोतिन से भरो।
सबके ऊपर औंधो धरो। (तारों भरा आकाश)
पिठी गुलमुली पेट हड़उआ।
ना बतावै तीको बाप कउआ। (छप्पर)
कारी तीं कुइलारी तीं, कारे बन में रहती तीं।
ढिकुली को पानी पीती तीं, पत्तन में दुबि रहती तीं॥ (बैंगन)
एक अचंभो हमने देखो, मुर्दा आँटा खाय।
टेरे ते बोले नहीं, मारे ते चिल्लाय॥ (मृदंग)

(ग) संवादात्मक गीत—

इन गीतों में अन्य लोकगीतों की अपेक्षा गेयता की मात्रा कम है, पर इनमें अनुभवों का सुंदर चित्रण होता है। इसके अतिरिक्त इनके संवाद बड़े ही संक्षिप्त पर साथ ही तर्कसंगत तथा मार्मिक होते हैं। कहीं कहीं हास का पुट भी मिला रहता है।

३. मुद्रित लोकसाहित्य

हिंदी साहित्य के इतिहास के मध्यकाल में ब्रजभाषा ने साहित्यिक भाषा का रूप धारण कर लिया था। इसकी व्यापकता इतनी अधिक बढ़ी कि कन्नौज प्रदेश के निवासियों ने भी इसे साहित्यरचना का माध्यम बनाया। इस प्रदेश में यद्यपि

कवि अनेक हुए, पर उन्होंने व्रजभाषा में ही अपनी रचनाएँ कीं[1]। आधुनिक काल में भी इस प्रदेश के साहित्यकारों ने खड़ी बोली को अपनाया और इस प्रकार शिष्ट-साहित्य-रचना से उपेक्षिता 'कनउजी' आज भी उपेक्षिता ही है। व्रज और अवधी इस दृष्टि से भाग्यशालिनी हैं क्योंकि उनकी साहित्यरचना का मध्यकाल में तो चरम विकास हुआ ही, साथ ही वह परंपरा किसी न किसी रूप में आज भी चल रही है।

कनउजी में शिष्ट साहित्य का अभाव तो अवश्य है, पर लोकसाहित्य का इसमें अशेष भांडार है। वह लोकसाहित्य बहुत ही कम मात्रा में प्रकाशित हुआ है। जो कुछ अब तक प्रकाशित हुआ है उसका लेखा जोखा नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

(१) भाषा तथा व्याकरण संबंधी सामग्री

कनउजी भाषा का सबसे पहला प्रकाशित ग्रंथ बाइबल (न्यू टेस्टामेंट) का अनुवाद है। इसका प्रकाशन सन् १८२१ ई० में सेरामपुर मिशन प्रेस से हुआ। यों तो जिस भाषा का प्रयोग इसमें हुआ है, उसे 'कनउजी' नाम दिया गया है, पर वस्तुतः यह भाषा कनउजी के व्याकरण से पूरा मेल नहीं खाती[2]। दूसरा ग्रंथ केलाग का 'हिंदी व्याकरण'[3] है। इसमें लेखक ने यद्यपि कनउजी भाषा अथवा उसके व्याकरण पर अलग से कोई विवेचन नहीं किया है, पर संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा परसर्गों का अध्ययन करते समय तुलना के लिये उसने कनउजी के रूपों को भी दिया है। व्याकरण के विवेचन के क्षेत्र में कनउजी का उल्लेख पहली बार इसी ग्रंथ में मिलता है।

डा० ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वे' में कनउजी भाषा और उसकी उपभाषाओं का विवेचन करते हुए उसके क्षेत्रविस्तार और बोलनेवालों की संख्या का भी उल्लेख किया है। प्रत्येक उपभाषा की ध्वनि तथा व्याकरण की विशेषताओं को बतलाने के साथ ही उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन के लिये 'खर्चीले लड़के की कहानी[4] के उद्धरण प्रत्येक उपभाषा में रूप दे दिए हैं। इस कहानी के द्वारा ध्वनि तथा व्याकरण की दृष्टि से कनउजी का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। ग्रियर्सन का यह अध्ययन लगभग ३५ पृष्ठों में हुआ है और यह इतना अधिक वैज्ञानिक है कि परवर्ती विद्वानों ने इससे बराबर सहायता ली है।

[1] डा० धीरेंद्र वर्मा : ग्रामीण हिंदी, पृष्ठ १२

[2] डा० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया, भाग ९, खंड १, पृष्ठ ८३

[3] वही।

[4] पैरेबल आव् द प्राडिगल सन।

डा० धीरेंद्र वर्मा ने 'हिंदी भाषा का इतिहास', 'हिंदी भाषा और लिपि', 'ब्रजभाषा का व्याकरण' तथा 'ग्रामीण हिंदी' नामक पुस्तकों में ग्रियर्सन के 'भाषा सर्वे' के आधार पर कनउजी भाषा का बहुत ही संक्षेप में उल्लेख किया है। ब्रजभाषा ग्रंथ में उन्होंने ब्रज के ध्वनिसमूह तथा व्याकरण का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। यद्यपि कनउजी के ध्वनिसमूह तथा व्याकरण पर उन्होंने स्वतंत्र रूप से विचार नहीं किया है, पर ब्रज के प्रसंग में उन्होंने उसके पूर्वी रूप (कनउजी) की ध्वनियों तथा व्याकरण के रूपों की ओर बराबर संकेत किया है। पूर्वी रूपों में से भी फर्रुखाबाद, इटावा, कानपुर, शाहजहाँपुर तथा हरदोई की रूप संबंधी विशेषताओं का उन्होंने अलग से उल्लेख किया है। इस प्रकार यह ग्रंथ कनउजी के ध्वनिसमूह तथा व्याकरण की जानकारी के लिये उपादेय है।

डा० उदयनारायण तिवारी ने 'हिंदी भाषा का उद्गम और विकास' में, गोपाललाल खन्ना ने 'हिंदी का सरल भाषाविज्ञान' में तथा शमशेरसिंह नरुला ने 'हिंदी भाषा का इतिहास' में कनउजी का संक्षेप में उल्लेख किया है। लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'कनउजी लोकगीत' में अनिल ने लगभग १५ पृष्ठों में कनउजी भाषा का अध्ययन उपस्थित किया है। इसमें कनउजी का नामकरण, क्षेत्रविस्तार, बोलनेवालों की संख्या, उपभाषाओं तथा व्याकरण पर प्रकाश डाला गया है।

(२) कहानियाँ

कनउजी के प्रकाशित लोकसाहित्य में केवल कहानियाँ ही ऐसी हैं, जो विशुद्ध कनउजी में छापी गई हैं। इसका कारण यह है कि इनका संकलन तथा प्रकाशन भाषा के विशेषज्ञों द्वारा हुआ है। यद्यपि छपी हुई कहानियों की संख्या बहुत कम है, तथापि भाषा के अध्ययन के लिये ये उपयोगी हैं।

सर्वप्रथम कहानी ग्रियर्सन के 'भाषा सर्वे'[1] में मिलती है। यह कहानी कानपुर जिले की है और इसमें राजा वीर बिकरमाजीत, उसकी रानी, उसका पुत्र दैंतुर तथा उसकी पुत्री—पाँच पात्र हैं। कहानी का आरंभ राजा और रानी के विवाद से होता है और अंत में राजपुत्र तथा दैंतुर की पुत्री का विवाह हो जाता है। इस कहानी को डा० धीरेंद्र वर्मा ने अपनी 'ग्रामीण हिंदी' में भी दिया है। दूसरी प्रकाशित कहानी 'कनउज' जिला फर्रुखाबाद की है, जो डा० वर्मा की 'ग्रामीण हिंदी' पुस्तक में प्रकाशित हुई है और जिसके मूल संकलनकर्ता श्री बलभद्रप्रसाद

[1] डा० ग्रियर्सन : 'लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया', भाग ९, खंड १।

मिश्र हैं। डा० वर्मा ने 'व्रजभाषा' ग्रंथ में जिला शाहजहाँपुर[१] की एक, फर्रुखाबाद[२] की दो तथा इटावा[३] की एक कहानी का संकलन किया है।

(३) परंपरागत लोकगीत

अवधी, भोजपुरी, व्रज आदि भाषाओं के परंपरागत लोकगीतों का विस्तृत तथा गंभीर अध्ययन किया जा चुका है। पं० रामनरेश त्रिपाठी, देवेंद्र सत्यार्थी, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, डा० सत्येंद्र प्रभृति विद्वानों ने लोकगीतों का बड़े ही परिश्रम से संग्रह किया है। पर कनउजी में ऐसा कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' के 'ग्रामगीत' भाग में फर्रुखाबाद का केवल एक गीत दिया है। इधर हाल ही में प्रकाशित होनेवाले 'कनउजी लोकगीत'[४] ग्रंथ में कनउजी लोकगीतों के प्रकार, उनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन का चित्रण तथा गीतों का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में ५५-६० लोकगीत भी दे दिए गए हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग की ओर से अभी 'हिंदी लोकगीत संग्रह' निकला है जिसमें कनउजी के भी ६-१० गीत संकलित किए गए हैं[५]।

परंपरा से चली आनेवाली लोकोक्तियाँ तथा पहेलियाँ भी अभी प्रकाश में नहीं आई हैं। इनके अतिरिक्त रामायण, महाभारत तथा पुराणों से संबद्ध भजन तथा अनेक प्रबंधगीत ऐसे हैं जिनका प्रकाशन आवश्यक है।

(४) आधुनिक लोककवियों द्वारा रचित पद्य

ग्रामों में शिक्षा के प्रसार के कारण कवियों में पद्यरचना की अभिरुचि उत्पन्न हो गई है और इन रचनाओं को छपवाकर वे इनका प्रचार भी करना चाहते हैं। शिक्षा के प्रसार से साहित्यिक खड़ी बोली किसी न किसी मात्रा में गावँ गावँ पहुँच गई है और इसका परिणाम यह हुआ है कि ग्रामीणों की रचनाओं में भी खड़ी बोली मिश्रित हो गई है। कुछ ऐसी छोटी छोटी पुस्तकें मिलती हैं जिनके ऊपर तो लिखा होता है 'असली फर्रुखाबादी भजन' या 'असली फर्रुखाबादी गाने' पर उनकी भाषा को देखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनमें कनउजी के कुछ नाममात्र के ही रूप हैं। परंतु अधिकांश पुस्तकों में पर्याप्त मात्रा में हमें विशुद्ध कनउजी के दर्शन होते हैं। जहाँ जहाँ खड़ी बोली के शब्द लिए

[१] गावँ सदमा, तहसील पुवायाँ। [२] रामनगर। [३] पहली कहानी चंदौली तथा दूसरी मदरि संकरपुर की।
[४] अनिल 'कनउजी लोक-गीत'। [५] इन कनउजी गीतों का संकलन अनिल ने किया है।

भी जाते हैं, उनमें क्रिया के परसर्ग कनउजी के ही होते हैं। अतः इस भाषा की भी मूल प्रकृति कनउजी ही होती है।

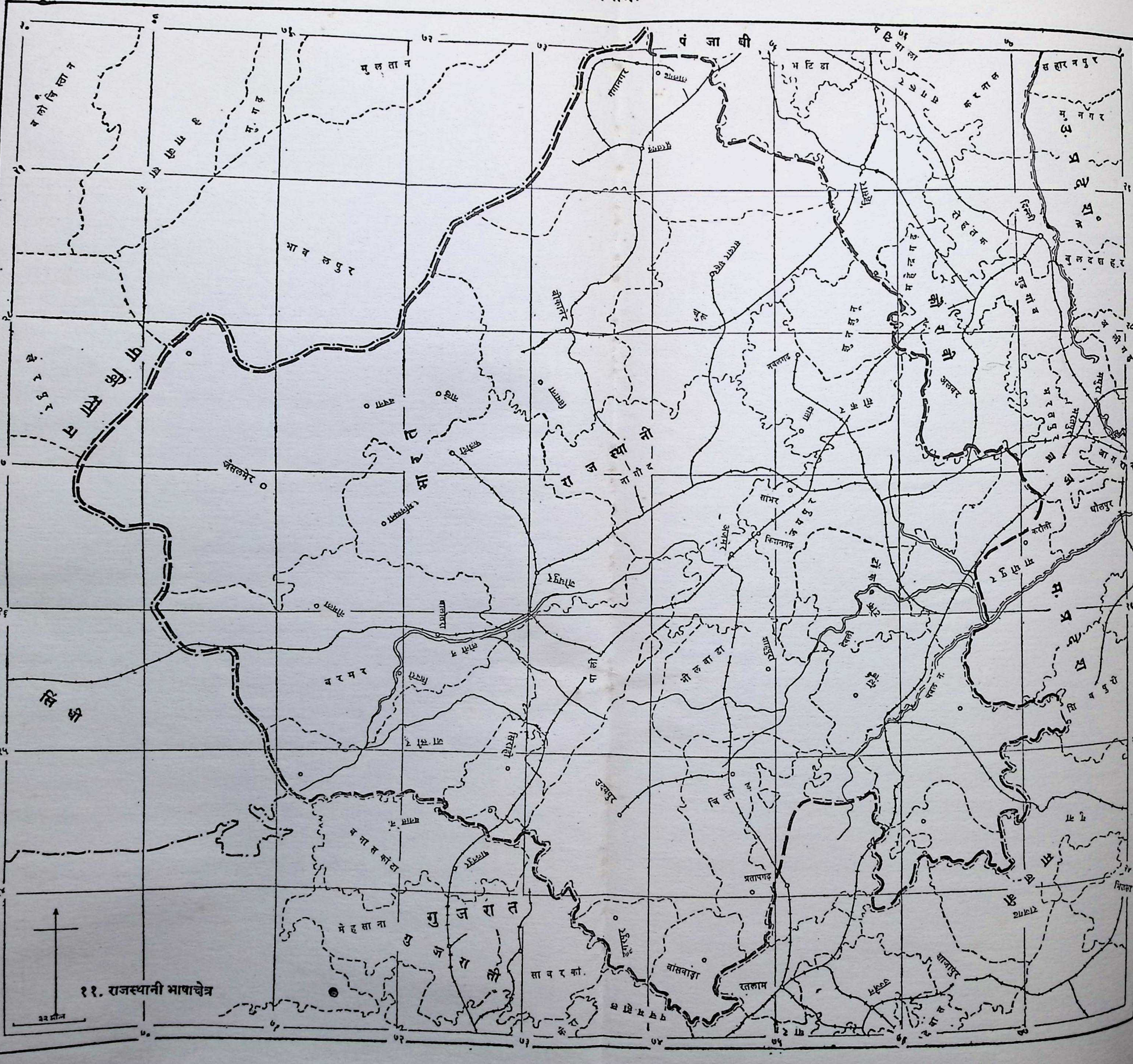
यों तो अनेक लोककवियों ने अनेक छोटी छोटी पुस्तकें छपवाई हैं, पर इन सबमें नौबति राय, हरसहाय, बंशीधर शैदा, कमलूदास काँधी और श्रीराम यादव अधिक लोकप्रिय हैं।

चतुर्थ खंड

राजस्थानी समुदाय

१०. राजस्थानी लोकसाहित्य

श्री नारायणसिंह भाटी



११. राजस्थानी भाषाक्षेत्र

(११) राजस्थानी लोकसाहित्य

१. क्षेत्र तथा सीमा

शताब्दियों से राजस्थानी राजस्थान की भाषा रही है। डा० तेसीतोरी के मतानुसार राजस्थानी और गुजराती १६वीं शताब्दी तक एक ही भाषा के रूप में विद्यमान थीं जिसे उन्होंने 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी' के नाम से अभिहित किया है। इसका क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात रहा। १६वीं शताब्दी में राजस्थानी और गुजराती में रूपभेद हुआ। राजस्थान की प्राचीन साहित्यिक भाषा के लिये 'मरुभाषा' शब्द का प्रयोग भी पुराने ग्रंथों में मिलता है। पहले से ही यहाँ की साहित्यिक भाषा पश्चिमी क्षेत्र की भाषा होने के कारण इस क्षेत्र की प्रमुख बोली मारवाड़ी का व्याकरण इसमें विशेष रूप से मान्य रहा है, यद्यपि राजस्थान के विभिन्न भागों में प्रचलित बोलियों का भी प्रभाव उसमें किसी न किसी रूप में अवश्य है। अतः मारवाड़ी बोली के संबंध में इतना स्पष्ट है कि यह राजस्थानी भाषा की बोलियों में प्रमुख बोली है और शिष्ट (स्टैंडर्ड) राजस्थानी का रूप इसी बोली का एक विकसित रूप है।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थानी की बोलियों और उनके क्षेत्र का विभाजन इस प्रकार किया है :

(१) मारवाड़ी—जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, मेवाड़, शेखावाटी, अजमेर मेरवाड़ा, पालनपुर तथा किशनगढ़ का कुछ भाग।

(२) ढूँढाड़ी—शेखावाटी के अतिरिक्त पूरा जयपुर, किशनगढ़ तथा इंदौर अलवर का अधिकांश भाग, अजमेर मेरवाड़ा का उत्तरपूर्वी भाग।

(३) मालवी—मालवा में।

(४) मेवाती—अलवर भरतपुर के उत्तरपश्चिमी भाग में।

(५) बागड़ी—डूँगरपुर बाँसवाड़ा में, जिसे बागड़ देश भी कहते हैं।

राजस्थानी भाषा के अंतर्गत मानी जानेवाली ये ही मुख्य बोलियाँ हैं। इनकी कई उपबोलियाँ भी हैं जिनका उल्लेख यहाँ करना अप्रासंगिक होगा। राजस्थान में बोलियों की अधिकता के लिये एक दोहा अत्यंत प्रसिद्ध है :

बारह कोसाँ बोली पलटै, बनफल पलटै पाकाँ।
तीसाँ छतीसाँ जोबन पलटै, लखण न पलटै लाखाँ।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट है, कि मारवाड़ी का क्षेत्र अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। अतः इस बोली का लोकसाहित्य राजस्थान के बहुत बड़े क्षेत्र का लोकसाहित्य है।

२. विकास

राजस्थानी (मारवाड़ी) और गुजराती १५वीं सदी तक एक ही भाषा थीं, यह कह आए हैं। तुलनात्मक अध्ययन यह भी बतलाता है कि इस भाषा का संबंध चंबियाली, कुलुई, गढ़वाली, कुमाऊँनी और नेपाली जैसी पहाड़ी भाषाओं से भी है। रा (का), ला (गा), छे (है) उपर्युक्त सभी पहाड़ी भाषाओं में कम न्यूनाधिक मिलते हैं, बल्कि उनका ला (मारुला=मारूँगा) उन्हें गुजराती से भी अधिक मारवाड़ी के समीप बतलाता है। उत्तरी भारत की अन्य भाषाओं की तरह राजस्थानी को भी वैदिक (...–७०० ई० पू०), पालि (६००–१ ई० पू०), प्राकृत (१–५५० ई०) और अपभ्रंश (५५०–१२०० ई०) के स्थानीय रूप में विकसित होना पड़ा। जिस अपभ्रंश से मारवाड़ी का विकास हुआ, वह कौरवी और शौरसेनी अपभ्रंश के समीप थी जो अब भी उनकी उत्तराधिकारिणी कौरवी और ब्रजभाषा के साथ देखी जाती है। पर राजस्थानी में अन्य भाषाओं की तुलना में अपभ्रंश की विशेषताओं का समावेश अधिक मात्रा में हुआ है।

राजस्थानी की विभिन्न बोलियों में मारवाड़ी का लोकसाहित्य सबसे विस्तीर्ण है। युगों की मौखिक परंपरा से चले आनेवाले असंख्य गीत, पँवाड़े, पड़ें, सिलोके, लोकनाटक, कहावतें, बातें, चुटकले आदि आदि आज भी यहाँ के जनजीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यहाँ के लोकजीवन ने इस साहित्य को इतना आत्मसात् कर लिया है कि उसे जीवन से अलग हटाकर देखना असंभव है। व्यावहारिक जीवन की साधारण से साधारण घटना तक का संबंध इस लोकसाहित्य से है। लोकसाहित्य लोकजीवन की एक बहुत बड़ी और प्रमुख आवश्यकता की पूर्ति का साधन भी है।

आधुनिक सभ्यता और शिक्षा से यह क्षेत्र अभी तक बहुत अछूता है जिसके फलस्वरूप यहाँ का लोकसाहित्य अपने मौलिक रूप में जीवित है। वह यहाँ के जन-जीवन के अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक साधन है।

राजस्थानी (डिंगल) भाषा में चारणों तथा अन्य कवियों ने अत्यंत श्रेष्ठ कोटि की रचनाएँ शास्त्रीय पद्धति पर की हैं और उनका स्थान राजस्थानी तथा हिंदी साहित्य में बहुत ऊँचा है। इन रचनाओं में तत्कालीन इतिहास, राज-नीति, शासकवर्ग की मान्यताओं, संघर्षों आदि का दिग्दर्शन कराने की प्रवृत्ति अधिक है, इसलिये जनजीवन की बारीकियों को आत्मसात् करनेवाली रचनाएँ

बहुत कम देखने में आएँगी। मरुभूमि के सौरभ की जो ताजगी आज भी इस लोक-साहित्य में है, वह न बड़े बड़े प्रबंधकाव्यों के अलंकृत छंदों में और न इतिहास तथा ख्यातों की जिल्दों में ही ढूँढ़ने से मिल सकती है। यहाँ का लोकसाहित्य जनजीवन से सिंचित उस कुसुम के समान है जिसका रंग समय के आतप से आज तक नहीं मुरझाया, न जिसके सौरभ में ही कोई कमी आई। यह लोकसाहित्य मरुभूमि के निवासियों की रागात्मक प्रवृत्तियों का वह कोष है जो लिपिबद्ध न होने पर भी सांस्कृतिक इतिहास की वास्तविकता को बड़ी खूबी के साथ अपने में सँजोए हुए है। सहृदय जन आज भी इसकी गहराई में युगों के हासरुदन का अनुभव कर सकते हैं।

लोकसाहित्य आवश्यकतानुसार कई प्रकार की शैलियों में विकसित हुआ है। यहाँ केवल उसके प्रमुख अंगों की ही चर्चा होगी। लोकसाहित्य के निम्नलिखित मुख्य दो भाग हैं—(१) गद्य और (२) गद्य। पद्य में लोककथाएँ (कहानियाँ) और कहावतें हैं, और पद्य में पँवाड़े, लोकगीत तथा लोकनाटक।[1]

३. गद्य

(१) लोककथा (बात)—राजस्थानी का प्राचीन गद्यसाहित्य अत्यंत समृद्ध है। आज भी असंख्य बातें, ख्यातें, कहावतें तथा मुहावरे पुरानी पोथियों में तथा लोगों की जबान पर हैं। जैन आचार्यों ने ग्रंथों की टीकाएँ लिखकर तथा चारणों और भाटों ने बातों तथा ख्यातों के माध्यम से निरंतर राजस्थानी गद्य के भांडार को भरा है। बात साहित्य अभी पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आया है, पर वह एक ऐसी निधि है जिसपर कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है।

रूप और तत्व दोनों ही दृष्टियों से विचार करने पर बातों में अनगिनित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। इन विशेषताओं के सहारे तत्कालीन समाज की धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा नैतिक मान्यताओं को इतने समीप से देखने का मौका मिलता है कि इनके साथ यदि कहावतों को भी मिला लिया जाय तो इन्हें सामाजिक मान्यताओं का विश्वकोश कहने में कुछ भी अत्युक्ति न होगी। इन बातों में ऐतिहासिक, पौराणिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और काल्पनिक सब तरह के विषयों को स्थान मिला है। छोटी से छोटी बात ५-६ पंक्ति की मिल सकती है और बड़ी से बड़ी दो रातों में भी आसानी से समाप्त नहीं होती। प्राचीन समय में, जब आधुनिक शिक्षाप्रणाली के साधन उपलब्ध नहीं थे, तब शिक्षा के

[1] इस संग्रह की अधिकांश सामग्री ठाकुरानी श्री गुलाबकुँवर (खैरवा, जोधपुर) के संग्रह से ली गई है।

प्रसार का कार्य इन्हीं 'बातों' के माध्यम से पूरा हुआ। शासकों ने इनसे कर्तव्यपरायणता का पाठ सीखा। नीतिज्ञों ने नीति ग्रहण की, प्रेमियों ने प्रेम का आदर्श इन्हीं को सुनाकर कायम रखा और धर्म के लिये मर मिटनेवालों को इनसे निरंतर धर्म की प्रेरणा मिलती रही। कहने का तात्पर्य यह कि समाज ने व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में इन बातों से कम लाभ नहीं उठाया। एक ओर जहाँ समाज की बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति इन बातों ने की, वहाँ दूसरी ओर वे आज भी देहातों में मनोरंजन का बहुत बड़ा साधन हैं।

इन बातों की तुलना आधुनिक कहानी साहित्य से नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों भिन्न भिन्न समयों की आवश्यकता की उपज हैं। पर इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक कहानी ने इनसे बहुत कुछ ग्रहण किया।

बात की पहली और सबसे बड़ी विशेषता उसका मौखिक रूप है। इन बातों का निर्माण लिपिबद्ध करके चिंतन तथा मनन करने के लिये नहीं हुआ, अपितु कहने और सुनने में ही इनकी सार्थकता रही है। इसी विशेषता के अनुकूल अन्य शैलीगत तत्वों का समावेश इनमें हुआ है। बात का रंग रात को ही जमता है। रात्रि के शांत वातावरण में कथा कहनेवाला अपने मँजे हुए स्वर से बात का प्रारंभ करता है। प्रारंभ की भूमिका बड़ी उत्सुकतापूर्ण और आकर्ष होती है :

बात भली दिन पाधरा, पैंडे पाकी बोर।

कहते ही सुननेवाले सतर्क हो जाते हैं और तब कथा की भूमिका बाँधी जाती है।

बातों में हुँकारी का बहुत महत्व है। बात सुननेवाले से कही जाती है और यदि वह हुँकारी न दे, तो बात कहनेवाला ऊब जाता है। इसीलिये बात कहनेवाला प्रारंभ में ही सुननेवालों को 'बात में हुँकारो फौज में नगारो' कहकर सचेत कर देता है। फिर कथा को आगे बढ़ाता है। कथा और उसमें भी कथा बनती चली जाती है। स्थान स्थान पर रूप, श्रृंगार, प्रकृति, युद्ध, राजमहल आदि के सांगोपांग वर्णनों की झड़ी लग जाती है जिससे सुननेवाले मुग्ध हो जाते हैं। अँधेरी रात में भी उनके सामने एक चित्र सा प्रस्तुत हो जाता है। पात्रों में मनोवैज्ञानिक कथोपकथन होने पर भी प्रत्युत्पन्नमतित्व सुननेवालों को आनंदित करता रहता है। बात में वार्तालाप केवल मनुष्यों के बीच ही नहीं होते, पशु, पक्षी, वृक्ष, तड़ाग और समुद्र तक मौका पाकर सवाल जवाब करने में नहीं चूकते। जड़ और चेतन के बीच वहाँ कोई सीमारेखा नहीं, लौकिक अलौकिक का भी कोई पार्थक्य नहीं। स्वर्ग की अप्सराएँ जगह जगह मनुष्य का काम करती हैं और देवता बिना किसी झिझक के धरती पर उपस्थित हो जाते हैं। वातावरण की सजीवता और चित्रोपमता के बीच इस प्रकार की कितनी ही घटनाएँ घटित हो जाती हैं। कथा का सूत्र बिखरा होने पर भी रस के सहज प्रवाह में श्रोतागण बहे चले जाते हैं।

बात की रोचक शैली ही उसका प्राण है। भाषा में चित्रोपमता, स्थान स्थान पर पद्यात्मकता, कथाकार के अंग संचालन, लोकोक्तियों, कहावतों, मुहावरे और दृष्टांतों के प्रचुर प्रयोग के कारण इनमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण आ जाता है। जगह जगह कथानक को गतिशीलता देने के लिये उसमें यात्रा का वर्णन किया जाता है और 'घर कूयाँ घर मजलाँ, घर कूचाँ घर मजला' कहकर श्रोताओं की कल्पना को आगे बढ़ाया जाता है। स्वर का उतार चढ़ाव, स्थान स्थान पर तुकांत भाषा का प्रयोग, तथा हास्य और वाग्विदग्धता का पुट देकर ऐसा रसपूर्ण वातावरण तैयार किया जाता है कि श्रोता उसके प्रवाह में बहे बिना रह नहीं सकते। भाषा में तर्क का अभाव होते हुए भी उत्सुकता को बनाए रखने की अद्भुत क्षमता दृष्टिगोचर होती है। छोटी से छोटी कहानी में भी उत्सुकता नष्ट नहीं होने पाती। उदाहरणार्थ **'राजा भोज री बात'** का एक अंश देखिए :

> रिषि कपाट जाड़ि गुफा में बैठो हुतो। राजा आय कह्यो—"किंवाड़ खोलो।" जद रिषि कह्यो—"कुण है?" राजा कह्यो—"हूँ राजा छूँ।" जद रिषि कह्यो—"राजा तो इंद्र है।" जद भोज कह्यो—"किंवाड़ खोलो, हूँ क्षत्रिय छूँ।" जद रिषि कह्यो—"क्षत्रिय तो अर्जुन हुवो।" जद भोज कह्यो—"खोलो किंवाड़।" रिषि कह्यो—"कुण छै।" भोज कह्यो "मिनख छै।" रिषि कह्यो—"मिनख तो धारापति भोज है।" जद राजा कह्यो—"हूँ भोज हूँ।" रिषि कह्यो—"हाथ लगा, बिना खोलियाँ किंवाड़ खुल जासी।" यूँ हीज हुवो।

जैसा पहले कहा जा चुका है, एक बात के अंतर्गत कई प्रकार की बातें बनती चली जाती हैं, पर अंत में सभी बातें मूल बात में आकर समाहित होती हैं। अंत सुखांत होगा या दुःखांत इसका श्रोता को अंत के कुछ पहले ही आभास हो जाता है। साधारणतया इन बातों का अंत सुखांत ही होता है। प्रारंभ में जो समस्या बीजरूप में उपस्थित रहती है, उसका पूर्ण विकास करके अंत से उसका संबंध जोड़ दिया जाता है और इस प्रकार बात के उद्देश्य की सार्थकता सिद्ध होती है।

राजस्थानी बात साहित्य अत्यंत विस्तृत है। प्राचीन मान्यताओं में परिवर्तन आने के कारण और आर्थिक ढाँचे की नवीनता के फलस्वरूप बात कहनेवाले—जिनकी जीविका का साधन यही कला थी—समाप्त होते जा रहे हैं और उनके साथ इस कला का भी ह्रास और लोप हो रहा है, पर आधुनिक राजस्थानी गद्यसाहित्य के लिये ये बातें बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का काम दे सकेंगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

एक अन्य कथा का भी कुछ अंश उदाहरणार्थ उद्धृत है :

गीदड़ की कहानी[1]—आवनी उजाड़ में एक कुवो हो, जको अठे एक काछबो अर एक गादड़ो अर एक पाटड़ा गो। अे तीनो सामल ईं रेता, जको आपके चुगो पाँणी रचावता र न रचावता। एक दिन दिन छिपते सी एक राजा सीकार खेलतो बी ठीने आगो। जणाँ राजा बोल्यो—'अठे ठेराँ जणाँ साथ नोकर हा।' जका बोल्या के अठे एक कुवो है। जणाँ राजा बोल्यो—'और आँपाँने के चाए, खाणों तो साथ है। पाणी चाए, सो कुवो हैई। जणाँ गादड़ो बोल्यो—'काछबा राजा आवे है'। काछबो बोल्यो—'आपणे केले हीं आँण दे।' जणाँ गादडियो बोल्यो—'आहे की कोले हैं। आपाँ ने मार गरे सी।' जणाँ काछबो बोल्यो—'मे तो राजा के क्युँ हाथ आँउने। कुवो असी हाथ ऊठो है जको बीमें बड ज्याँसु। पाटडा गो बोली—'में की हाथ नी आउँ, मेरे तो रोही मेंई साट हाठ ऊँडी घुरी है, जको बींमें चली जास्युँ।' जणाँ गादड़ो बोल्यो—'जणाँ तो मौत मेरी आई।' गादडियो बोल्यो—'राजा के साथ के के है।' जणाँ काछबो बोल्यो—'सागी घोड़ा है।' गादडियो कही—'आको तो डर कोनी।' जणाँ पाटड़ागो बोली—'लाओ री कुचाबी हीं।' सुणताँई गादडियो तो भाग्यो। बो जाँके ओले जको दिनुँगे ताँई उडषेई कोनी।

राजा बोल्यो—'आपणे तो पाणी काडो घोडाँ ऊठाँ ताँई।' जको सागे छोटो सो चड़स हो, अब सिक्का पाँणी काटण ल्यागया। सो काछबो पाणी पर तिरहो। जको चड़स मे आगो, जणाँ लोग मार गेरचो। जणाँ रिसालदार बोल्यो—'घोडाँ के मेखाँ रोपो, मेख ठोकीर पाटडोगो बार नीसर के भाजी। जणाँ बींने बी मारली, अर बठेई गेरेदी, राजा चल्यो गो। दिनगे गादडियो पाछो आयो। आयकी दोन्याँ ने हेलो मारचो कही—'अरे भाएला आज्यावो, राजा तो गयो। जणाँ अब बोले कुँण।' गादडियो उने उने देख्यो, तो दोनुँ कुआ के सारेई मरया पड्या हा। जणाँ गादडियो देखके बोल्यो :

असीतो कुवा मे गई अर, साठ घुरिके माँए।
सो जीतए बाप, सइँसाँज का जाँगें॥

(२) लोकोक्तियाँ (कहावतें)—राजस्थानी कहावतों में यहाँ की पीढ़ियों का अनुभव बोलता है। कहावतों ने अपने छोटे से आकार में युगों युगों का अनुभव इस खूबी के साथ संचित कर लिया है कि समय की बहुत बड़ी मंजिल तय करने के पश्चात् भी आज वे यहाँ के जनजीवन के साथ कदम मिलाकर उसे गतिशील करने में पूरी सहायता कर रही है। जीवन के किसी

[1] शेखावाटी (झुँझनू) की बोली।

भी अंश को ले लीजिए, उसके तथ्य को व्यक्त करनेवाली कहावतें अवश्य मिल जायँगी। ये कहावतें उस सिक्के के समान हैं जिनका चलन असंख्य जीभों पर घिसने के बाद और भी अधिक हो चला है। कितनी ही कहावतों की पृष्ठभूमि में विशेष सामाजिक घटनाएँ छिपी हुई हैं। उन घटनाओं का उद्‌घाटन होने पर उनका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। बहुत बड़ी संख्या में इस प्रकार की कहावतों की उपलब्धि राजस्थानी गद्यसाहित्य की समृद्धि की द्योतक तो है ही, साथ ही यहाँ के संघर्षपूर्ण जीवन के अनुभवों की अनेकरूपता का भी बहुत बड़ा प्रमाण हैं।

इन कहावतों में छोटी से छोटी कहावतें दो शब्दों की और बड़ी से बड़ी कहावतें ४-५ पंक्तियों तक की उपलब्ध होती हैं। छोटी कहावतों का प्रचलन समाज में अधिक है। बड़ी कहावतों में प्रायः तुकांत भाषा का प्रयोग मिलता है। कई बार एक ही कहावत के विभिन्न रूप भी देखने को मिलते हैं। राजस्थानी लोकसाहित्य के विभिन्न अंगों की तुलना में इसका महत्व लोकगीतों को छोड़कर किसी से भी कम नहीं है। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ कहावतें दी जाती हैं, जिनसे उनकी विशेषताओं का कुछ अनुमान लग सकेगा :

अकल बड़ी क भैंस ? (बुद्धि बड़ी या भैंस ? अर्थात् भैंस से बुद्धि बड़ी है।)

अकूरड़ी पर किसो आँबो को हुवैनी (घूरे पर कौन सा आम नहीं होता ? घूरे पर भी आम हो सकता है। बुरी जगह भी अच्छी वस्तु पैदा हो जाती है, नीच कुल में भी सज्जन उत्पन्न होते हैं।)

अन्न खावै जिसी डकार आवै (जैसा अन्न खाते हैं वैसी ही डकार आती है।)

अन्न खावै जिसो मन्न हुवै (जैसा अन्न खाते हैं वैसा मन होता है।)

आज हमाँ तो काल तमाँ (आज हमको तो कल तुमको काम पड़ेगा। अर्थात् संसार में एक दूसरे से काम पड़ता ही रहता है।)

आप मरताँ बाप किणनै याद आवै ? (आप मर रहे हों तो बाप किन्हें याद आते हैं ? अर्थात् स्वयं विपत्ति में पड़े हों तो दूसरों पर किसी का ध्यान नहीं जाता। पहले अपने आपको बचाने की फिक्र होती है।

आभो टोप-सी-सो निजर आवै (आकाश नरेटी जितना दिखाई पड़ता है।)

उतर भीखा म्हारी बारी (ऐ भीखा, उतर, अब मेरी बारी आई। अर्थात् अब मेरा दाँव आया। दुनिया में एक दूसरे से काम पड़ता ही रहता है।)

ऊँचा चढ चढ देखो, घर घर ओही लेखो (ऊँचे चढ़ चढ़कर देख लो, घर घर वही हिसाब मिलेगा। अर्थात् सब जगह यही हाल है। सुख दुख सबको भोगना पड़ता है।)

ऊँट किसी घड़ बेसे (देखें, ऊँट किस करवट बैठता है ? अर्थात् देखें, आगे चलकर क्या नतीजा होता है या कैसी परिस्थिति खड़ी होती है।)

कठेई जावो, पईसाँरी खीर है (कहीं जाओ, पैसों की खीर है। अर्थात् सभी जगह पैसे की जरूरत पड़ती है।)

कदे घी घणा, कदे मुट्ठी चिणा (कभी खूब घी, और कभी केवल मुट्ठी भर चने।)

४. पद्य

(१) पँवाड़ा (लोक गाथा)—पँवाड़ा शब्द के साथ यहाँ के लोगों का कुछ ऐसा हार्दिक संबंध है कि उसे सुनते ही रोमांच हो आता है। पँवाड़ों में प्रायः उन्हीं लोगों की कीर्ति गाई गई है, जिन्होंने लोककल्याण तथा वचननिर्वाह के लिये अपने प्राणों तक की बाजी लगा दी। ऐसे कई महान् पुरुष हुए हैं जिनकी जीवनी पर बड़े कवियों ने कलम नहीं उठाई पर जनता ने स्वयं उनके अविस्मृत कार्यों को सहृदयतापूर्वक वाणीबद्ध किया है। राजस्थान में ही नहीं, भारत के अन्य भागों में भी इस प्रकार की कीर्तिगाथाएँ जनजीवन में प्रचलित हैं—ब्रज में 'पमारा', मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में 'पँवारा' तथा महाराष्ट्र में 'पोवाड़ा' ऐसे जनकाव्य के प्रतीक हैं। मारवाड़ में पँवाड़े को 'परवाड़ा' भी कहते हैं।

पँवाड़ों में प्रायः महापुरुषों का जीवनवृत्त अंकित होता है जिनमें मार्मिक स्थलों पर विशेष प्रकाश डाला जाता है। अत्यंत सरल और प्रचलित भाषा का प्रयोग, जनजीवन से चुनी हुई उपमाएँ तथा उत्प्रेक्षाएँ, नियमबद्ध न होते हुए भी छंद में सहज प्रवाह, पंक्तियों की पुनरावृत्ति, बीच बीच में वार्तालापों के माध्यम से नाटकीयता का आभास, संबोधनकारक शब्दों का अधिक प्रयोग, आदि उनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं।

राजस्थानी में जो पँवाड़े प्रचलित हैं उनका रचयिता कौन था, इसका कोई पता नहीं लगता। किस काल में इनका निर्माण हुआ है, यह अनुमान लगाना भी कठिन है। प्राचीन हस्तलिखित पोथियों में केवल डिंगल, संस्कृत तथा ब्रजभाषा के ग्रंथों को लिपिबद्ध किया गया है। इस प्रकार के पँवाड़े तो केवल मौखिक परंपरा पर ही आगे बढ़ते आए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, लिपिबद्ध न होने पर भी समय की कितनी ही मंजिलें तय करते हुए पँवाड़े यहाँ की मानव परंपरा के साथ साथ आगे बढ़ते गए हैं जिससे उनके साथ यहाँ के लोगों के रागात्मक

संबंधों की गहराई प्रमाणित होती है। इनका वास्तविक आनंद गाने तथा सुनने में ही है।

इन पँवाड़ों में राजस्थान के धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों का प्रतिबिंब तो मिलता ही है, ऐतिहासिक तथ्यों की खोज के लिये भी ये अत्यंत महत्वपूर्ण साधन हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका मूल्यांकन तथा प्रयोग करते समय यह ध्यान में रखना जरूरी है कि इनमें कहीं कहीं कल्पना की अतिरंजना से भी काम लिया गया है। वहाँ ये वास्तविक तथ्य से दूर जा पड़े हैं। कई प्रचलित किंवदंतियों का भी प्रयोग इनमें हुआ है। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों को भी स्थान मिला है।

(क) पाबू जी—राजस्थानी में जो भी पँवाड़े उपलब्ध होते हैं, उनमें पाबू जी के जीवनवृत्त से संबंध रखनेवाले पँवाड़े अत्यंत प्रसिद्ध हैं। पाबू राठौड़ को घोड़े घोड़ियों का बड़ा शौक था। देवल चारणी की कालेमी घोड़ी उनको पसंद आ गई। माँगने पर चारणी ने वचन माँगा कि जब कभी मेरी गायों पर कोई आपत्ति आएगी तो तुम्हें उनकी रक्षा करनी पड़ेगी। पाबू जी ने वचन देकर घोड़ी रख ली। पाबू जी का विवाह थोड़े ही समय पश्चात् उमरकोट के सूरजमल सोढा की पुत्री से होना निश्चित हुआ। ज्यों ही बरात उमरकोट पहुँची, पाबू जी का बहनोई जींदराव खीची देवल चारणी की गायों को घेरने के लिये पहुँचा। चारणी भागकर पाबू जी के पास पहुँची। उस समय पाबू जी का विवाह संस्कार हो रहा था। केवल तीन भाँवरें लेने के बाद ही पाबू जी को देवल चारणी के रोने की आवाज सुनाई दी। वे वहीं पर स्तब्ध हो गए। गायों के चुराए जाने की आशंका तो उनके मन में थी ही, देवल चारणी की आवाज सुनकर उन्होंने अपना वचन याद किया। सगे संबंधियों ने बहुत समझाया, पर पाबू जी ने नहीं माना और चौथी भाँवर द्वारा विवाह संस्कार पूर्ण होने के पहले ही सोढी जी का पल्ला खोलकर घोड़ी पर सवार हुए। अंत में गायों के लिये जिंदराव से भयंकर युद्ध हुआ जिसमें पाबू जी वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी इस कर्तव्यपरायणता से प्रेरित उनके जीवनवृत्त पर कई पँवाड़े बने हैं जिन्हें सुनते सुनते रोमांच हो आता है।

(ख) नानड़िए का पँवाड़ा—राजस्थान में पाबू लोकदेवता बन गए। राजस्थान के पाँच पीरों में सर्वप्रथम पाबू जी का ही नाम आता है। उनकी यशगाथा उनके निधन के कुछ ही समय पश्चात् राजस्थान के घर घर में प्रचलित हो गई। इस प्रकार पाबू के जीवनचरित को लेकर राजस्थान में पँवाड़े बने तथा इनके माध्यम से राजस्जानी लोकहृदय ने उस वीर के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

मौखिक परंपरा में रहने के कारण पँवाड़ों के रूप में बहुत परिवर्तन हो जाते हैं। पँवाड़ा गानेवालों की भाषा तथा विश्वासों का इनके परिवर्तन में सबसे अधिक हाथ रहता है।

पँवाड़े में भी नानड़िए को अपने वंश का परिचय पनिहारियों के गीतों द्वारा विदित होता है। इनकी रचना कब हुई तथा किसने की, इस विषय में कुछ भी कह सकना संभव नहीं। रचना एक व्यक्ति ने की अथवा एक समूह ने, यह भी निश्चित रूप से कह सकना कठिन है।

नानड़िया पाबू जी के बड़े भाई बूड़ो जी का पुत्र था। पाबू जी तथा बूड़ो जी की मृत्यु के समय वह गर्भ में था। सती होते समय गैली रानी ने अपना उदर काटकर पुत्र को निकाला तथा देवल चारणी को वह बालक नानी के पास पहुँचाने के लिये दे दिया।

उस बालक का पालन पोषण नानी ने किया तथा उसका नाम नानड़िया पड़ा। बारह वर्ष की अवस्था तक उसको अपने मातापिता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं था। एक दिन सरोवर के तट पर कुछ पनिहारियों के गीत सुनकर उसने कौतूहलवश प्रश्न किया तथा उसको ज्ञात हुआ कि वह बूड़ो जी का पुत्र तथा पाबू जी का भतीजा है। अपने वंश की मर्यादा तथा अपने पिता एवं काका का प्रतिशोध लेने की भावना उस वीर बालक में जाग्रत हुई। वह अपनी नानी के मना करने पर भी बाबा गोरखनाथ का चेला बन गया। उसने दीक्षा तथा शक्ति लेकर जायल खींची के—जिससे युद्ध करते समय उसके पिता तथा काका स्वर्गवासी हुए थे—नगर में पहुँचा।

नानड़िया खींची के नगर के बाग में पहुँचा। वह बाग वर्षों से सूखा पड़ा था, परंतु उसके आगमन से सहसा हरा भरा हो गया। इसकी सूचना खींची तथा उसकी रानी को मिली। नानड़िए को मारने के लिये खींची ने विष मिला दूध पिलाया परंतु गुरु की कृपा से कुछ नहीं हुआ। फिर अपनी बुआ (खींची की पत्नी) की सहायता से उसने मार्ग की संपूर्ण बाधाओं को समाप्त किया। जायल खींची को निद्रा से जगाकर उसका सिर शरीर से पृथक् कर दिया। उसका सिर लेकर वह उसी रणक्षेत्र में पहुँचा जहाँ उसके पिता तथा चाचा स्वर्गवासी हुए थे तथा उनकी समाधि पर उनके शत्रु का सिर चढ़ाकर उसने अपना प्रतिशोध पूर्ण किया। नानड़िए के इस कृत्य ने उसे अमर बना दिया।

नानड़िया गीत की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण रूप में दी जाती हैं :

करया छै वैं देवज भुवानी धोळीं[1] गिरज का रूप।
कोई पाँखाँ में लपेट्यो छै वैं सतियाँ केरो लाडिलो॥
उड़ती उड़ती पूँची[2] छै बा गैलाँ की गिरनार।

[1] सफेद। [2] पहुँची।

कोई चक्कर तो लगावै छै वा गैलाँ की गिरनार।
नीजर[1] पसारी देवल सीदी म्हैलाँ माय़ँ।
कोई अणदू गैलो देख्यो छै भुवानी गढ़ में टैलतो[2] ॥
अणदू गैला यो ले थारो भाँणजियो सँभाल।
कोई आया छै दुखियारो वालो नानेरै की ओट में ॥
अणदू गैले सुण की दीनी दोन्यूँ भुजा पसार।
कोई छाती कै लगायो छै बैं बाई जी को लाडिलो ॥
अणदू गैले रेसम डोरी दीनी छैं लटकाय।
कोई हींडो[3] तो घलायो छैं वैं सुरंगै हरियल बाग में ॥

(ग) **मैणादे**—मैणादे (मैणावटी) और उसके पुत्र गोपीचंद की कहानी का संबंध बंगाल से है, परंतु इस कथा को भारत के सभी जनपदों में समान लोकप्रियता मिली है। राजस्थान में तो इस विषय में पुष्कल लोकसाहित्य पाया जाता है। यह कथा राजस्थानी जनजीवन में रमी हुई है। मैणादे ने वरदान के रूप में पुत्र गोपीचंद को पाया था। परंतु शर्त यह थी कि यदि गोपीचंद एक निश्चित समय से पूर्व जोगी नहीं हो जायगा तो वह जीवित नहीं रह सकेगा। मैणादे ने उसे निश्चित समय से पूर्व जोगी बनाकर संसार की माया से मुक्त करवा दिया। फलस्वरूप जनश्रुति के अनुसार वह अमर हो गया। यहाँ मैणादे संबंधी राजस्थान जनपद का महिला गीत प्रस्तुत किया जाता है :

हाथ ज लोटो रे गोपीचंद, काँधे ज धोती,
तो गोपीचंद राजा, न्हावण चाल्या जी, हरे राम।
न्हाय र धोय र गोपीचंद, धोतियो सुकायो,
तो ठंडी ठंडी बूँद, क्याँ सैं आई जी, हरे राम।
नाँहीं बादलियो रे नाहका, नाँहीं तो बिजली,
तो ठंडी ठंडी बूँद, क्याँ सैं आई जी, हरे राम।
नाँहीं बादलियो जी राजा, नाँही नो बिजली,
तो म्हैलाँ में भुरवै, माता मैणादे, हरे राम।

(घ) **निहालदे**—निहालदे राजस्थानी लोकगीतों का एक विशेष नारी-चरित है। इस जनपद में एक कहावत है—'भजन गाकर निहालदे गाई।' इसका अर्थ यह है कि भजन गाकर जो वैराग्यपूर्ण वातावरण तैयार किया गया उसे निहालदे गीत गाकर आसक्तिमय बना दिया गया। इस प्रकार राजस्थान का

[1] दृष्टि। [2] टहलता हुआ। [3] झूला।

निहालदे गीत सांसारिक प्रेम का एक ज्वलंत उदाहरण है। इस गीत की कथावस्तु इस प्रकार है :

निहालदे अपने बाग में झूलने के लिये गई थी। वर्षा प्रारंभ हुई और शीघ्र ही उसने उग्र रूप धारण कर लिया। ऐसी स्थिति में सुलतान ने उसे वर्षा से बचाया। निहालदे राजकुमार सुलतान के रूपमाधुर्य पर मुग्ध हो गई। घर लौटने पर निहालदे की माता ने उससे देर होने का कारण पूछा तो निहालदे ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। साथ ही निहालदे ने सुलतान के साथ ही अपना विवाह करने का निश्चय भी प्रकट किया। उसकी माता ने उसे हर प्रकार से बहुत समझाया, परंतु वह अपने निर्णय से जरा भी विचलित न हुई :

सात सैयाँ कै झूमखै निहालदे, झूलण बाग पधारी।
ए निहालदे झूलण बाग पधारी, और सही सब बावड़ी निहालदे।
तूँ कित बार लगाई, ए कँवर बाई, तूँ कित बार लगाई।
तनै कुण बिलमाई, मोड़ी क्यूँ आई ए कँवर निहालदे।
इंदर झड़ी तो लगाई, च्यारूँ रिस छाई ए बैरण बादली।
मेहा भल बरसौ, माता उडीकै ए सुख कै म्हैल में।
मेहा भल बरसो, माता उडीकै ए सुख की गोद में।
माता की गोदी आई तो निहालदै, सुख महलाँ कै माँही,
ए निहालदे सुख कै महल कै माँही,
एक पुरस म्हानै मिल गयौ ए माता।
बागाँ मैं भौत झुलाई, ए मात म्हारी बागाँ भौत झुलाई।
तनै कुण बिलमाई, मोड़ी क्यूँ आई ए कँवर निहालदै।
इंदर झड़ी तो लगाई, च्यारूँ दिस छाई ए बैरण बादली।
मेहा भल बरसी, माता उडीकै सुख कै म्हैल मैं।
मेहा भल बरसौ, माता उडीकै ए सुख की गौद मै।

(२) लोकगीत—लोकसाहित्य में गीतों की प्रमुखता है। असंख्य गीत विभिन्न विषयों को लेकर स्वयं समाज द्वारा रचे गए हैं। जीवन के हर महत्वपूर्ण कार्य में गीत का स्थान है। बचा गर्भ में होता है तभी से गीत गाए जाते हैं, जन्म की खुशी गीतों में ही व्यक्त होती है, बचा बीमार होता है तो गीतों के द्वारा ही देवता मनाए जाते हैं और जनेऊ संस्कार गीतों के बिना संभव कहाँ है? विवाह के क्षणों में व्यथित हृदय का बोझ इन्हीं गीतों में उडेलकर हलका करते हैं, मरण के पश्चात् गंगा माता की अभ्यार्थना तक में गीतों के बिना काम नहीं चल सकता। कहने का तात्पर्य यह कि पूरा जीवन ही गीतमय है, जीवन के हर मार्मिक क्षण का स्पंदन इन गीतों की रागरागनियों में मुखरित हो उठा है।

मोटे तौर पर इन लोकगीतों को विषय की दृष्टि से निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—(१) ऋतुगीत, (२) श्रमगीत, (३) संस्कार गीत, (४) प्रेम (शृंगार) गीत, (५) धार्मिक गीत, (६) बाल गीत, (७) विविध गीत।

बहुत से गीत अत्यंत सरसता के साथ गाए जाते हैं। माँड राग यहाँ का एक मौलिक राग है, जिसमें मूमल गीत बड़ी खूबी के साथ गाया जाता है। श्रम संबंधी गीतों की अपनी लय अलग है। राग रागिनियों के हिसाब से जो गीत जिस समय या पहर में गाने के होते हैं, वे उसी समय तथा पहर में गाए जाते हैं। राग रागिनियों की सुविधा के हिसाब से विभिन्न वाद्ययंत्रों का प्रयोग भी इनके साथ होता है। निम्नलिखित वाद्य अधिक प्रचलित हैं :

(१) तार वाद्य—सारंगी, कमाइची, जंतर, खाज, रावणहत्या, इकतारा, तंबूरा, वीणा आदि।

(२) फूँक के वाद्य—वंशी, अलगूँजा, सतारा, शहनाई, टोटा, पूँगी, नड़, बरूण (बाँकिया), संख, सिंगी आदि।

(३) ताल वाद्य—ढोलक, मादल, मृदंग, ढोल, नगाड़ा, नौबत, धूँसा, चंग, दफड़ा, चंगड़ी, खँजरी, ढीबका, अपंग, मटकी, डमरू आदि।

इनके अतिरिक्त कई गीतों के साथ काँसे की थाली, मजीरा, पायल, चिमटा, घुँघरू आदि का भी प्रयोग होता है। आजकल हार्मोनियम तथा तबले का भी कुछ प्रयोग होने लगा है।

गीत स्त्रियों का अत्यंत प्रिय विषय है। स्त्री जाति ने अपने हृदय को जितना इन गीतों में व्यक्त किया है उतना और किसी रूप में नहीं। समय की आवश्यकता के अनुसार इन गीतों को गाना कई जातियों का पेशा भी रहा है। ढोली, ढाढी, मिरासी, माँगणियार, फदाली (दफाली), कल्लवत, लंगा, पातर, कंचनी, नट, रावल, मँवाऊ आदि ऐसी ही जातियाँ हैं जिनकी जीविका का प्रमुख साधन गीत ही रहे हैं। इन लोकगीतों की सहजता तथा सरलता इनका अपने आप में बहुत बड़ा गुण है, जिसके कारण स्वतः प्रचारित होते हुए ये पीढ़ियों से जीवित रहे हैं। समय के साथ थोड़े बहुत परिवर्तन भी इनकी वस्तु तथा रूप में अवश्य हुए। राजस्थानी क्षेत्र के विभिन्न भागों में ये गीत थोड़े परिवर्तन से गाए जाते हैं।

आधुनिक जनतांत्रिक युग में, जब कि लोकसंस्कृति पर पढ़े लिखे लोगों का ध्यान जाने लगा है, लोग इन गीतों की फिर से सराहना करने लगे हैं। राजस्थान तथा अन्य प्रांतों के रेडियो स्टेशनों से भी राजस्थानी गीत प्रसारित होते हैं। यह एक

अत्यंत शुभ लक्षण है कि आधुनिक राजस्थानी के कई कवियों ने भी इन लोकगीतों की सहजता और सरसता से प्रेरित होकर अपनी काव्यरचना में इनसे बहुत कुछ ग्रहण करने का प्रयत्न किया है।

यहाँ कुछ विभिन्न विषयों के राजस्थानी लोकगीतों के उदाहरण दिए जाते हैं[1] :

(क) ऋतुगीत

(१) सावण[2]—

बाए चाल्याछा भँवर जी पीपली जी।
हाजी ढोला हो गई घेर घूमेर बैठण की रूत चाल्या चाकरी जी।
हाजी माँरी लाल ननद का बोर आप बिन घड़ी मन मालगेजी।
परण चल्या छा भँवर जी गोरड़ी जी,
हाँजी ढोला हो गई जोध जवाँन।
माँणण की रूत चाल्या चाकरी जी।
सरस जलेबी भँवर जी मैं बणों जी।
हाँजी ढोला वण ज्याउ फूँसुवाल।
भूक लगे जद जीम ल्यो जी।
सकलर कूई तो भँवर जी मैं बणोंजी।
हाँजी ढोला बण ज्याउ लोटो गेर।
प्यास लगे जद पीय ल्यो जी,
हींगलु रोढ़ोलीयो भँवर जी मैं बणों जी।
हाँजी ढोला बण ज्याऊ फुलड़ाँरी सेज।
नींद लगे जद पौड़ज्यो जी। हाँजी माँरी सास सपूती का पूत।
थाँ बिन घड़ीयन आ लगेजी।

(२) झूला—

जोड़ो खुदादे ओ मोरे मेरा जलवल जाँमी बाप।
आवए सावणीयाँ की तीजाँ वाई नायसी।
खुद्यो खुदायो बाई थारो
पड्यो हीलोरा खाय नावण पालीवई सासरे।

[1] इसमें बहुत से गीत ठाकुराणी गुलाबकुमारी (खैरवा, जोधपुर) के संग्रह से लिए गए हैं।
[2] पारी (रावणा राजपूत), खेतड़ी (झुँझुनू)।

हींडो घला दे ओ आरे मारा काँनकँवर सा बीर।
आवए सावणीयाँ कीं तीजाँ बाई हींड़ सी।
घल्यो घलायो ये बाई थारो पड्यो हिंडोला।
खाय हींड़ावाली बाई सासरे।
लेहरियो रँगा देए मोए म्हारी राता देई माय,
ओड़णवाली बाई सासरे।

× + ×

(३) पपइया—

भँवर वागाँ में अइज्यो जी, वागाँ में नार अकेली पपइयो बोल्यो जी।
सुंदर गोरी किस विद आऊँ जी, ओजी माँरी परणी नार अकेली।
भँवर सहजाँ में आइज्यो जो सहजा मैं डरूँ अकेलो पपइयो बोल्यो जी।
मिरगानेणी किस विद आउँजी, ओजी माँरी परणी नार अकेली।
भँवर आपरी परणी मरज्यो जी, सूतीने खाइज्यो साँप पपइयो बोल्यो जी।

× × ×

(४) तीज के गीत—

आई आई पेल सावण की ये तीज, मने भेजो माँ सासरे जी।
और सयली मा खेलण रमण न ये जाय, मने दीयो माँ पीसणो जी।
फोडुँ तोडुँ माँ चाकलडी कोय पाट, बगड़ बखेरूँ माँ पीसणों जी।
पोई पोई माँ, रोटीयाँ की ये जेट, पछलो पोयो मा माँडीयो जी।
ओराँने तो माँमिरीयाँ मिरोयाँ ये घी, मने मिरीयो मा तेल की जी।
ओराँने तो मापलियाँ पलियाँ ये खीर, मने पलीमो राब को जी।
ओराँने तो मा दो दो रोटीय खाँड़, मने भँडक्यो मा छाछ को जी।
आयो आयो मेरा पीवरीया कोए काग, बोबी भँडक्यो मा ले गयो जी।
लेज्या लेज्या मेरे पीवरीया कारे काग, जाए दिखा जे मेरी माय ने जी।
देखो देखो मारी राजकँवर कोमे माँ सदा कँवर कीए मा,
देखो बाई माँ जीमणों जी।

(५) होली (फाग)—

गढ़सूँ तो होली माता उतरी,
बींरा हाथ कँवल सिर मोड़ए रायाँ होली।
लूँगर डोडाजी होली का सेवरा।
बीरा ऐ ये कूण होली मे खाँडो घाल सी।

बीरा ये कूण देसी मदरी दातेय[1], रायाँ की होली० ।
बीरा रामचंद्र जी होली में खाँडो घाल सी ।
बीर लिछमण जी देसी मदरी दातए ।
रायाँ की होली, लूँगरे डोडा जी, होली का सेवरा ।

फाग—

माँथा ने मैमद हद के बिराजे तो रखडी की छिब न्यारी जी ।
म्हाँरा भिलता जोबन पर किण डारी ।
पिचकारी जी में तो सगली भींज गई किण डारी ।
ज्याँ डारी ज्याँ ने मोहे बतावो नीतर द्योंगी मैं गाली जी ।
म्हारा गोरा सा बदन पर किण डारी ।
बूजीसा का जाया बाई सा का बीरा ।
तोरा जान डारी पिचकारी जी मैं तो सगली भींज गई ।
ऐसी डारी कानाँ ने कुंडल हद के बिराजे तो भुटणाँ की छिब न्यारी जी ।
माँरा घूँगट का लपट पर किण डारी ।
मुखड़ा ने बेसर हद क बिराजे, तो मोतिडाँ की छिब न्यारी जी ।
माँरा नाजक सा बदन पर किण डारी ।
हिवडा ने हाँसजल हद के बिराजे, तो तिलडी की छिब न्यारी जी ।
मैं तो सगली भींज गई, किण डारी० ।
बैयाँ ने चुडलो हद के बिराजे, तो गजराँ की छिब न्यारी जी ।
मारा गोरा सा बदन पर किण डारी ।
पगल्या ने पायल हद के विराजे, तो बिछियाँ की छिब न्यारी जी ।
म्हारा भिलता जोबन पर, किण डारी ।
भर पिचकारी गोरा मुख पर डारी ।
तो अँगिया की भाँत बिगाडी जी, मारा घूँगट का लपट पर किण डारी ।

(ख) श्रमगीत—

(१) भणत—खेत में काम करते समय विशेष लय के साथ गाया जानेवाला गीत, जिसे मारवाड़ी में 'भणत' कहते हैं :

लेवो भिणीजी[2] नालेरो[3], नालेरो नागोर रो ।
चोटी बीकानेर री, सालू साँगानेर रो ।
पेले छड़ै[4] नालैरो, काची गिरियाँ नालैरो ।
लाँबी चोटी नालेरो ।

[1] होली का दहेज । गोबर का गोला । [2] हार । [3] नारियल । [4] किनारे ।

(२) ननद भावज—

कोठे से[1] आई सूँठ, कोठे से आयो जीरो।
कोठे से आयो ए, भोली नणद थारो बीरो॥
जैपुर से आई सूँठ, दिल्ली से आयो जीरो।
कलकत्ते से आयो ए, भोली भावज म्हारो बीरो॥
क्या में[2] आई सूँठ, काय में आयो जीरो।
काए में आयो ए, भोली बाई थारो बीरो॥
ऊँटा में आई सूँठ, गाड़ी में आयो जीरो।
रेला में आयो ए भोली भावज, म्हारो वीरो॥
काए में चाहे सूँठ काए में चाय जीरो।
काए में चाए ए भोली बाई, थारों वीरो।
जापे[3] में चाहे सूँठ, यो साग सँवारे जीरो।
सेजा में चाहे ए भोली भावज, म्हारो बीरो॥
खींड गई सूँठ बिखर गयो जीरो।
यो रूस गयो ए भोली भावज म्हारो बीरो॥
चुग लेस्याँ[4] सूँठ, पछाड़ लेस्याँ जीरो।
मनाय लेस्याँ ए नणदी, थारो बीरो॥

(३) कुरजाँ—

भागी दौड़ी बागई जी बागई कुरजाँ रे पास।
आँपा कुरजाँ एक गावँ कीय आपाँ धर्म की भाए।
कुरजा य म्हाँरो भँवर मीला देय।
ल्यावो न कोरा कागद चाय ल्यावो न कलम दवात।
पाँखाँ पर लीखद्यो औलमाँय चाँचाँ पर सात सलाम।
बाई य थारो भँवर मिला द्यो ए।
बागई कुरजाँ बागई जी बागई कोस पचास।
डेरा तो ढाल्या राजासारा बाग में जी।
ढोलो मारूणी चोपड़ ढालीयाँ जी, कुरजाँ रही कुरलाय।
हाथाँ रा पाला हाथ रया जी, श्यार रही गरणाय जी।
जिनावर म्हाँरा देशाँ को बोलजी।
सूता रहो जी ढोला सूता रहो जी धर मुँखड़ा पर हाथ।

[1] कहाँ से। [2] किसमें। [3] प्रसव। [4] चुन लूँगी।

जीनावर हरी माँ बागाँ री बोल जी ।
नासो वाँगो री घए नाँसावाँय नाँ धर मुखड़ा पर हाथ ।
गोरीय मेह तों भँवर पराया जी ।
तुँझ कुरजाँ मारा गावँ कीय मुख से य बचन सुणाय ।
किसी सुरंगा मायर बाप छ य कीसी य सुंरगी घर नार ।
बहौत सुरंगा माई बाप जी, भोते सुरंगी छोटी भाँए ।
एक बीरंगी थारी गोरड़ी जी, खड़ी उड़ावे काला काग ।
भँवर अब तो घराँ ने पधारो जी ।

(४) वियोग—

लीला चाल ऊतावलो जी राजा ।
दिन थोड़ो घर दूर सा ।
प्यारी उड़ावे कागला जी राजा ।
उभी जोवे बाट सा ।
यो तो प्यालो अरोगो हेतीला राजा ।
माँरी मनवारसा ।
गोरी ऊबा महल में जी राजा खड्या सुकावे केस सा ।
हाथ कीलंगी केवड़ो जी राजा, कर भँवर सुँहेत सा ।
यो तो प्यालो प्रेम को जी ढोला प्यारी री मनवार ।
जयपुर का बजार में जी राजा, सेन कबूतर जाय ।
सिटी देर उड़ावत जी राजा, जोड़्यो बिछड़्यो जाय ।

(ग) संस्कार गीत

(१) जन्म—

(क) जचा (सोहर)—

जीय पहलो मास जचा जी न लाग्यो, बाल बोहल मन लीयो जी ।
दूजो मास जचा जी न लाग्यो, घुक्तड़ मन रलीयो जी ।
म्हाँरी बंस बधावए सो नाँरइपाल, केसर घोलस्या ।
जी अगएो मास जचा जी न लाग्यो नी, बुड़ा मनरलीयो जी ।
चोथो मास जचा जी ना रंग्या मन र लीयो जी ।
मारी बंस बधावए सो नार घाल केसर घोलन्या ।
जी पँचवा मास जचा जी न लाग्यो सींक सुलाँ मन रलीयो जी ।
छटो मास जचा जी न लाग्यो दारूड़ी मन रलीयो जी ।

जी माँरी बक बक हँसणा सोनाँ रे घाल केसर घोलन्याँ जी।
सतवों मास जचा जी न लाग्यो खीर, खाँड मन रलीयो जी।
अठवों मास जचा जी न लाग्यो घाट पील मन रलीयो जी।
माँरी बंस बढाव सोनार घाल केसर घोल रया जी।
नोवो मास जचा जी न लाग्यो होलर सबद गुणा जी।
मारी बंस बढावण सोनार घाल, केसर घोलन्या जी।
जी केसर घोलाँ पान जचा बो नोनो, पड़दारा ली जी।
आगा सिरदारो मुख सुँ बोलो हँस हँस घूँगट खोलो जी।
माँरी घणी माँजाण सोनार, घाल केसर घोल न्या।

(२) विवाह—

(क) बनड़ा—

बनड़ा बनड़ी तो कागज मोकल्या, आज्यो मारा बाबोसा के देस।
चोपड़ पासा रालिया, पेलो तो पासो राइबर रालियो।
पड़ ग्यो सिरदार बना को दाव, हस्ती तो जीत्या कजली देस रा।
दुजो तो पासो राइबर रालियो, पड़्ग्यो सिरदार बना को दाव।
घुड़ला तो जीत्या गुड़खुड़ देस रा।
अगणो तो पासो राइबर।
रालियो, पड़्ग्यो दाइदार बना को दाव।
करवा तो ऊँट जीत्या मारू देस रा।
चौथो तो पासो फुटरमल रालियो, पड़्ग्यो हस्ती दाँत रो।
छटो तो पासो राइबर रालियो पड़्ग्यो सिरदार बना को दाव।
गेलो तो जीत्या रत्न जड़ाव रो,
सतवो तो पासो राइबर रालियो।
पड़्ग्यो सिरदार बना को दाव, बनड़ी तो जीत्या बड़ पीरवार री।

(ख) बाना बैठना—बाना बैठने के दिन पीठी के लिये छाजला (सूप) में सात सोहागिनें दो दो आमने सामने बैठकर धीरे धीरे छाँटती हैं, आवाज नहीं होने देतीं। आवाज होने से वर और वधू में आपस में झगड़ा होने की आशंका रहती है। फिर ओखल मूसल (कुंडी सोटा) से कूटती हैं, तदनंतर वे ही सातो स्त्रियाँ चक्की में पीसती हैं।

(ग) बडा विनायक—बारात के दो दिन पहिले कुम्हार के यहाँ से मिट्टी के गणेश जी लाने के लिये महिलाएँ गाती बजाती जाती हैं। फिर गणेश जी को थाल में रख, पीला कपड़ा ओढ़ाकर घर ले आती हैं। फिर बड़ा विनायक की लापसी बनती है और सबको जिमाते हैं।

(घ) चाक पूजना—बारात रवाना होने के एक दिन पहले शाम के चार पाँच बजे महिलाएँ गीत गाती हुई कुम्हार के यहाँ चाक पूजने जाती हैं। वहाँ पर वे नाचती हैं और ढोली ढोल बजाता है। कुम्हार पाँच औरतों के सिर पर दो दो घड़े रख देता है। गणेश जी वाले घर में घड़े रख दिए जाते हैं। यदि घड़े टूट जायँ, तो बड़ा अशुभ माना जाता है।

(ङ) रातीजगा—बारात घर से रवाना होने के पहले दिन रातीजगा होता है, जिसमें देवी देवताओं के गीत गाए जाते हैं।

(१) देवी गीत—

माताका भवन में जी वो नारेलाँ के बिडलो,
सुपारी के बिडले, माँरी आद भवानी बस रई।
माता जी ने ध्याव जीवो सदा सुख पीव जयँ, रेतो हिरदे माँरी०।
माता का भवन में जीवो चिरमटडीरो बिडलो,
काजलिया के बिडले, मारी०।
माता का भवन में जीवो मेहँदी री बिडलो, रेली के बिडले मारी०।
सुसरो जी ध्यावे जीवो सदा सेखपावे ज्याँरेतो०।
जेठ जी ध्यावे जीवो सदा सुख पावे ज्याँरेतो०।
सायेब जी ध्यावे जीवो सदा सुख पावै ज्याँरेतो०।

(२) सती गीत—

भोपाल गढ़ सुंये चुँड़ावत राणी नीसरिया।
अमर बुर्ज करिया है मुकाम साँची सकलई ए।
चुँड़ावत राणी देस में नहायातो धोयाजी।
चुँड़ावत राँणी साँपडिया किया राणी सोला सिणगार।
धाय बडा रणकी चुँड़ावत राणी चीनती।
घडी दोय पग त्याजी मोड। साँची०।
हँस खेलो ए मारी दासियाँ, संवो खेलवे भावे महने।
कुरम राजा जी को साथ ला रा माहने लीज्यो जी।
शेखावत राजा आपके। साँची०।
राजा अभेसिंह जी रा चुँड़ावत राणी कुलवहू।
राजा सिरदारसिंह जी रा धीए। साँची०।
राजा बगतावरसिंह जी बालमा राजा सिवनाथसिंह जी री माए।
बाई रुकमकुँवर की माए। साँची०।
चडए चड़ावे चुँड़ावत राणी सीरणी रोक रूपइयाँ री भटे। साँची०।

मेहतो थाने ध्यावाँ जी चुँड़ावत राणी हैतसुँ ।
दुःख दालिदर परोए वार रज वद्धावो जी भवानी ।
आका मन सही साँची सकलाई जी चुँड़ावत राणी देस में ।

(च) भाँवरें—राजस्थान में सात नहीं चार ही भाँवरें पड़ती हैं। वहाँ सिंदूरदान भी नहीं होता ।

पहलो फेरो ले म्हारी लाडो बाई दासाने लाडली ।
दूजो फेरो ले म्हारी लाडो वाईय बाबोसाने लाडली ।
अगणो फेरो ले म्हारी लाडो वाईय वीरोसाने लाडली ।
चोथो फेरो लियो म्हारी लाडो होइए पराई ये ।
हलवाँ हलवाँ चाल म्हारी लाडो हँसेली सहेलियाँ ।

(छ) ओलूँ (विदाई)—

म्हैं थाँने पूछा म्हाँरी धीवड़ी,[१] म्हैं थाँने पूछा म्हाँरी बालकी ।
इतरो बाबेजी रो लाड, छोड र बाई[२] सिध चाल्या ।
म्हैं रमती बाबोसारी पोल,[३] आयो सगे जी रो सूवटो,[४]
गायड़मल[५] ले चाल्यो ।
म्हैं थाँने पूछा म्हाँरी बालकी, म्हैं थाँने पूछा म्हाँरी धीवड़ी ।
इतरो माऊ जी रो लाड, छोड र बाई सिध चाल्या ।
आयो सगे जीरो सूवटो ।
हे आयो सगे जीरो सूवटो,
लेग्यो टोली में सू टाल, फूटरमल[६] ले चाल्यो ।
म्हैं थाँने पूछा म्हाँरी बाईसा, म्हैं थाँने पूछा म्हाँरी बहनड़ी ।
इतरो वीरे जी रो हेत, छोड र बाई सिध चाल्या ।
हे आयो परदेसी सूवटो ।
हे बागाँ मँयलो[७] सूवटो ।
म्हैं रमती सहेल्या रै साथ, जोड़ी रो जालम ले चाल्यो ।

(घ) धार्मिक गीत—

(१) जलदेवता—

हरिया बाँसा री छाबड़ी रे माँय चँपेली रो फूल ।
कै तू बामण बाँणए री के विणजारे री धीय ।

१ लड़की । २ सहेली, लड़की । ३ पोरि । ४ सुग्गा । ५ वीर पति । ६ सुंदर पति ।
७ बागों में ।

ना मूँ बामण बाँणए री न विणजारे री धीय।
हूँ तो सकल देवतीए पाँगलियाँ पग देय।
भवानी आद भवानी सकल भवानी चारूँ कूँठ।
चारुँ देसो में बखानी सिवरुपे आद भवानी॥
हरिया बाँसा री छाबड़ी ए माँय जुई रो फूल॥ कै तू०॥
हूँ तो सकल जलदेवती ए निर्धनियाँ धन देय।
निर्धनियाँ धन देय भवानी आद भवानी सकल भवानी।
चारुँ देस में चारुँ खूट में बखाणी सिवरु ए आद भवानी।
हरिया बाँसा री छाबड़ी ए माँय कमल रो फूल॥ कै तू०॥
आँधलियाँ[1] आँख देय भवानी आद भवानी।
सकल भवानी चारुँ[2] देस में चारुँ खूँट में।
बखाणी सिवरु ए आद भवानी॥

(२) सेडल (चेचक) माता—

बाड़ बिचाल पींपली जी, ज्याँरी सीली छाँय।
बलाल्यूँ सेडल माता ए।
ज्याँ तलवालो खेलतो जो, खेलत चढ गयो ताप। बलाल्यूँ०।
खिलमिल वालो घर गयोजी, बिलख्यो सारी रात। बलाल्यूँ०।
दादी भूवा थर थर काँपी, डराया माई अर बाप। बलाल्यूँ०।
थे घरयो डरपो जोगएयां ए, करस्यूँ छतर की छांय। बलाल्यूँ०।
जद म्हाँरी माता तूठण लागी, गारको सो बीज। बलाल्यूँ०।
जद म्हाँरी माता मरणे लागी, मक्के को सो बीज। बलाल्यूँ०।
जद म्हाँरी माता मान लियो ए, सोयो सारी रात। बलाल्यूँ०।
मारिये कूँडाले घोकसी जी, नानड़िए री माय। बलाल्यूँ०।

(ङ) बालगीत—

दीजो ओ नैनी री धाय, नैनी[3] नै कुलाय।
एक दीजौ लात री, आ पड़ी गुलाचाँ[4] खाय॥
कीकर देऊँ बाईं लात री, म्हारे मोत्याँ बिचली लाल।
खाँड़ियो खोपरो चिणाँ के री दाल॥

× × ×

[1] अंधों को। [2] चारों। [3] बच्ची। [4] चक्कर।

कान्या, मान्या[1] कुर्रर, जाऊँ जोधपुर्रर।
लाऊँ कबूतर्रर, उड़ाय देऊँ फर्रर॥

× × ×

अतनी पतनी पीपलिए रा पान।
अपड़ साथरण इणरो[2] कान॥

(बरसात के समय)

मेह बाबा आजा। घीने रोटी खाजा॥
आयो बावो परदेसी। अबे जमानो कर देसी॥
ढाँकणी में ढोकलो[3]। मेह बाबो मोकलो[4]॥
म्हारी म्हारी छालियाँ[5] ने दूघल दलियो पाऊँ।
न्यानरियो[6] आवे तो लात री मचकाऊँ॥

(च) कहावतें—

प्रश्न—भू खीर मैं मूसल क्यों ?
उत्तर—ब्याह बीच घरेंचो ज्यूँ॥

ब्यायोड़ी ब्यायोड़ी लेगो।
जातो खीर मैं मूसल देगो॥
तेरा गयौ टपकलो, मेरी गई हमेल।
बिना मन का पावणा, तनैं घी घालूँ क तेल॥
राघो तूँ समझ्यो नहीं, घर आया जा स्याम!
दुबधा मैं दोनूँ गया, माया मिली न राम॥
पिव पाए पिव ढोलिए, पिव को गलबिच हार।
पिव को ही दिवलो जगै, चातर करो विचार॥
गई बात नैं जाण दे, रही बात नैं सीख।
तूँ क्यूँ कूटै बावली, मुवै साँप की लीक॥
भरिया सो झिलके नहीं, झिलके सो आधाह।
इण पुरखाँ को पारखा, बोल्या अर ल्या घाह॥
बाप चराई केरड़ी, माय उगाही भीख।
तू के जाणै बावलो, बडै घराँ की सीख॥
आधी छोड़ पूरी नैं धावै।
बैं की आडी कदे न आवै॥

१ ध्वनि। २ इसका। ३ बाजरे की मोटी रोटी। ४ काफी। ५ बकरियों को। ६ नाहर।

पर पिव पूजण मैं गई, पिव अपणौ की लाज।
पर पिव पूजत हर मिल्या, एक पंथ दो काज॥
काली भली न कौड़ियाली, भूरी भली न सेत।
राखी राँडाँ च्यारवाँ नैं, एकैं ही खेत॥
आई थी कुछ लेण कूँ, देय चली कुछ और।
मखल गमाई गाँठ को, देख चली टमकोर॥

(छ) लोकनाट्य—

राजस्थानी जनजीवन में लोकनाटकों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मेलों में, धार्मिक पर्वों पर तथा अन्य सामाजिक उत्सवों में लोकनाटक सदियों से अपना महत्वपूर्ण कार्य करता आ रहा है। इन लोकनाटकों का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ, यह कहना अत्यंत कठिन है। सच पूछा जाय, तो आदिकाल में नृत्य, संगीत तथा कविता का एक ही रूप था। तीनों एक दूसरे के पूरक होकर सहज रूप में प्रकट होते थे। किसी नाटकीय कथावस्तु को लेकर जब संगीतात्मक अभिव्यक्तियाँ की जातीं तो स्वतः नाटक की सृष्टि हो जाती थी। समाज की सांस्कृतिक तथा भौतिक उन्नति के साथ साथ ज्यों ज्यों मानव में अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास होने लगा त्यों त्यों कविता, संगीत और नृत्य में पार्थक्य होने लगा। फिर भी किसी न किसी रूप में तीनों ने बहुत लंबे अरसे तक साथ निभाया। पर आज तो इनमें से प्रत्येक ने अपनी स्वतंत्र सत्ता पूर्ण रूप में विकसित कर ली है। इसी विकासक्रम में नाटकों ने भी अपना स्वतंत्र कलात्मक रूप ग्रहण किया और कालांतर में शास्त्रीय दृष्टि से भी उनका मूल्यांकन तथा विकास संभव हुआ।

आधुनिक नाटकों का आदिम रूप आज भी इन लोकनाटकों में देखने को मिलता है। युगों की धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं का जीवंत चित्र इन लोकनाटकों से बढ़कर अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

इन लोकनाटकों को नपे तुले शब्दों की परिभाषा में बाँधना संभव नहीं। अतः उनकी सामान्य विशेषताओं तथा मुख्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालना उचित होगा :

(१) लोकनाटकों में प्रायः वे ही कथाएँ होती हैं जिनका यहाँ के जनजीवन में बहुत प्रचलन है। ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा घटनाओं को उनमें मुख्य स्थान मिलता है। इन ऐतिहासिक कथावस्तुओं में धार्मिक मान्यताओं का भी यथोचित स्थान देखने को मिलता है। जैसा लोकसाहित्य का अपना स्वाभाविक गुण है, इनमें वास्तविकता तथा कल्पना का अद्भुत मिश्रण रहता है। कई लोकनाटक तो वास्तविकता की अपेक्षा कल्पना से अधिक अतिरंजित रहते हैं। राजा मोरधज, राजा मलयागिरि तथा भरथरी की कथा इसी प्रकार की है।

(२) नाटकीयता में संगीतात्मकता का अद्भुत योग इनकी बहुत बड़ी विशेषता है। आदि से अंत तक संगीत की अतल गहराई में नाटकीयता निमग्न रहती है। यह संगीत गाँवों में प्रायः सारंगी तथा रावणहत्थे की सहायता से चलता है। बीच बीच में कहीं कहीं कथावस्तु को स्पष्ट करने के लिये गद्य में भी वार्तालाप होते हैं। रामलीला जैसे लोकनाटकों में गद्य का समावेश कभी कभी अधिक मात्रा में किया जाता है। कथावस्तु संगीतात्मक होने के कारण कथोपकथन भी अधिकतर पद्यमय होते हैं।

(३) नृत्य नाटक का आवश्यक एवं स्वाभाविक तत्व है। कोई भी लोकनाटक किसी प्रकार भी नृत्य की उपेक्षा करके सफल लोकनाटक नहीं हो सकता। इन लोकनाटकों में नृत्य भी लोकनृत्य ही होते हैं। आजकल सिनेमा के कारण नृत्य को अधिकाधिक समय दिया जाने लगा है और उसमें कुछ अश्लीलता भी आने लगी है।

(४) नाटकों में नाटकीय तत्वों की ओर ध्यान कम होता है, क्योंकि सुव्यवस्थित कला की ओर इनका ध्यान प्रारंभ से ही नहीं होता। मूलतः उनका लक्ष्य कला की ओर इतना न होकर प्रयोजन अथवा उपदेश की ओर होता है। फिर भी वे पूर्णतः नाटकीयता से रहित हों, ऐसी बात भी नहीं है।

(५) लोकनाटकों का प्रचलन बहुत पुराने काल से है, पर समय के साथ इनकी भाषा में आवश्यक परिवर्तन होते रहे हैं, जिससे वे सामाजिक इतिहास के साथ साथ अपने नवीन रूप में प्रचलित होते रहे हैं। आज भी एक ही नाटक राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में वहाँ की स्थानीय बोलियों में ही प्रचलित है। कहीं कहीं कथावस्तु में थोड़ाबहुत हेरफेर भी कर दिया गया है। मौखिक परंपरा पर जीवित रहने के कारण इनमें ये परिवर्तन अत्यंत स्वाभाविक हैं। प्राचीन पोथियों में इनका कोई रूप सुरक्षित नहीं मिलता। इससे यह अनुमान लगाना भी कठिन है कि कौन से समय में क्या क्या परिवर्तन हुए।

(६) साहित्यिक नाटकों के अभिनय में वेशभूषा का पूरा विचार रखा जाता है, पर ऐतिहासिक ज्ञान की अनभिज्ञता तथा साधनों की कमी के कारण लोकनाटकों में यह कमी सदा बनी रहती है।

(७) लोकनाटक प्रायः खुले मैदान अथवा हाते में खेले जाते हैं। साहित्यिक नाटक खेलने के लिये जिस प्रकार रंगमंच आदि की समुचित व्यवस्था अपेक्षित होती है, ठीक वैसी ही व्यवस्था इनके लिये आवश्यक नहीं। कभी कभी रामलीला आदि के निमित्त श्रद्धालु भक्त अपने प्रयत्नों से रंगमंच की सामग्री जुटा लेते हैं तथा पंडाल आदि की व्यवस्था भी हो जाती है, अन्यथा बहुत से नाटकों का आनंद तो खुले मैदान में ही उठाया जाता है।

(८) साहित्यिक नाटकों की तरह इन नाटकों में भी विदूषक का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। रामलीलाओं में तो विदूषक अनिवार्य सा है। भाँड़ लोगों द्वारा आयोजित हास्योत्पादक नाटकीय संवाद तो विदूषक की तरह ही संपन्न किए जाते हैं। विदूषक की वेशभूषा, उसके हावभाव और कहने का ढंग सभी हास्योत्पादक होते हैं।

लोकनाटकों की सफलता मूलतः इनके खेले जाने के ढंग पर निर्भर करती है। यदि इन नाटकों को खेलनेवाले पात्र प्रतिभासंपन्न होते हैं तथा वेशभूषा, उच्चारण आदि का पूर्ण ध्यान रखा जाता है तो दर्शकगण प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

सहजता और सरलता इन नाटकों का बहुत बड़ा गुण है। शास्त्रीय नियमों से दूर उनका अपना जनरुचि के अनुकूल विधान होता है, जो जनरुचि के साथ ही, बिना किसी आलोचना प्रत्यालोचना के, परिवर्तित होता जाता है।

लोकनाटकों का विभाजन चार भागों में किया जा सकता है :

(१) करुणरसप्रधान—इनमें राजा भरथरी, राजा हरिश्चंद्र आदि के खेल आते हैं।

(२) हास्यरसप्रधान—इनके अंतर्गत रावलियाँ री रमत तथा भाँड़ लोगों के हास्य भरे प्रदर्शन आते हैं।

(३) स्फुट हास्यपूर्ण खेल—दामाद आदि के मनोरंजनार्थ कई बार घरों में औरतें भी छोटे छोटे नाटकीय उत्सव तथा वार्तालाप करती हैं। होली आदि के अवसर पर भी स्वाँग आदि हास्यपूर्ण खेल खेले जाते हैं।

(४) धार्मिक नाटक—इनके अंतर्गत रामलीला मुख्य है।

इस वर्गीकरण के उपरांत संक्षेप में अब कुछ महत्वपूर्ण नाटकों पर विचार किया जाता है।

(१) रामलीला—यह लोकनाटक समस्त भारत में प्रचलित है। धर्म-प्रधान होने के कारण मारवाड़ प्रदेश में भी इसका खूब प्रचार है। रामलीलाओं का अधिक प्रचलन प्राचीन काल में था। पर आधुनिक शिक्षा के प्रचार के साथ ज्यों ज्यों धार्मिक भावनाओं में शैथिल्य आने लगा है, इस ओर से लोगों का ध्यान हटने लगा है। सिनेमा के प्रभाव के कारण अश्लीलता और नृत्यों का समावेश अधिक हो जाने से उनका धार्मिक उद्देश्य अब उस रूप में पूरा नहीं होता। राम-

लीलाओं में स्त्री पात्रों के स्थान पर प्रायः छोटे लड़के काम करते हैं और वेशभूषा की ओर भी पूरा ध्यान नहीं दिया जाता।

(२) पाबू जी री पड़—यह मारवाड़ की अत्यंत प्रचलित वस्तु है। इसे यथार्थतः नाटक की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता, पर यह है नाटक के समकक्ष ही। एक लंबे मजबूत कपड़े पर पाबू जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के चित्र अंकित होते हैं। यह कपड़ा लंबा तान लिया जाता है। फिर मोपा तथा मोपी रावणहत्थे पर पाबू जी के गीत गाते हैं। चित्र दिखाने के लिये मोपी के हाथ में मशाल रहती है और वे दोनों इस पट के सामने नाटकीय ढंग से टहल टहलकर अत्यंत भावात्मक रागिनी में पाबू जी की कर्तव्यपरायण जीवनी का गान करते हैं। आज भी गाँवों में इसका बहुत प्रचलन है। यह पड़ प्रायः रात रात भर चलती रहती है।

(३) रावलियाँ री रमत—रावलियाँ री रमत में करुण, वीर, हास्य आदि रसों का समावेश रहता है। कहते हैं, इसका प्रचलन बादशाह अकबर के समय से हुआ। यह खेल रात भर चलता रहता है। इसके अंतर्गत कई छोटे बड़े खेल खेले जाते हैं। स्वाँग इसका मुख्य अंग है—बनिया, संन्यासी, बीका जी, किसनगूजरी आदि के स्वाँग विशेष रूप से द्रष्टव्य होते हैं।

इस प्रकार के छोटे बड़े बहुत से नाटकों का प्रचलन मारवाड़ में है। आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से इन लोकनाटकों को भी क्षति पहुँचने लगी है। देहातों में इनका प्रचलन अवश्य है, पर शहरों में इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाने लगा है।

५. मुद्रित लोकसाहित्य

२०वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब डा० तेसीतोरी ने राजस्थानी भाषा और साहित्य पर वैज्ञानिक ढंग से काम प्रारंभ किया, तभी से राजस्थानी साहित्य के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई।

डा० तेसीतोरी के कुछ समय पश्चात् बिड़ला कालेज, पिलानी, के वाइस प्रिंसिपल स्वर्गीय सूर्यकर्ण पारीक का ध्यान राजस्थानी साहित्य के संपादन की ओर गया, जिसके फलस्वरूप प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, रामसिंह तथा सूर्यकर्ण पारीक ने मिलकर राजस्थानी के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन किया। इनमें 'राजस्थान के लोकगीत' नामक राजस्थानी लोकगीतों का संग्रह (दो जिल्दों में) अत्यंत महत्वपूर्ण है।[1] संपादकों ने गीतों के भावार्थ देने के अतिरिक्त शब्दार्थ तथा आवश्यक

[1] प्रकाशक : राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता।

टिप्पणियाँ देकर इस ग्रंथ को उपयोगी और महत्वपूर्ण बनाया है। इन गीतों का संग्रह करने में अध्यापक गणपति स्वामी का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। इसके अतिरिक्त जैसलमेर से प्रकाशित एक गीतसंग्रह से, जगदीशसिंह गहलोत द्वारा संगृहीत 'मारवाड़ के ग्रामगीत' से तथा बंबई पुस्तक एजेंसी द्वारा प्रकाशित 'सचित्र मारवाड़ी गीतसंग्रह' आदि से भी उक्त ग्रंथ में सहायता ली गई है। इस गीतसंग्रह के अतिरिक्त कितनी ही छोटी बड़ी पुस्तिकाएँ तथा लेखादि प्रकाशित होते रहे हैं।[1] स्वयं सूर्यकर्ण पारीक ने अलग से भी राजस्थानी लोकगीतों की एक छोटी सी पुस्तक संपादित की थी जिसमें गीतों पर कुछ प्रकाश भी डाला गया है।

आजकल लोकसाहित्य और लोकसंस्कार पर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा है एवं लोकगीतों पर छोटे बड़े कई प्रकार के लेख विभिन्न दृष्टिकोणों को लेकर पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे हैं। 'परंपरा' त्रैमासिक पत्रिका के लोकगीत विशेषांक में राजस्थानी लोकगीतों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

राजस्थानी लोकसाहित्य में बात (कथा) साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण होने पर भी उनके संपादन एवं मुद्रण का कार्य बहुत कम हुआ है। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य पारीक जी ने ही किया है। उन्होंने अत्यंत प्रसिद्ध 'राजस्थानी वार्ता' को उपयोगी भूमिका और शब्दार्थ देकर प्रकाशित किया है। डा० कन्हैयालाल सहल और प्रो० पतराम गौड़ ने भी 'चौबोल' नामक पुस्तक में चार राजस्थानी बातों का हिंदी भावार्थ सहित संपादन किया है। इन विद्वानों ने राजस्थानी के प्राचीन गद्य की विशेषताओं को इन ग्रंथों में सुरक्षित रखा है, यह इनकी विशेषता है।

राजस्थानी कहावतों के संकलन का कार्य भी कई विद्वानों ने किया है, पर इनका सुसंपादन करके प्रकाश में लाने का श्रेय प्रा० नरोत्तमदास स्वामी तथा मुरलीधर व्यास को है। इन्होंने दो भागों में राजस्थानी कहावतों का संपादन किया है जिसमें हर कहावत का अर्थ और उससे मिलती जुलती हिंदी की कहावत देने का प्रयास भी किया गया है। इनके अतिरिक्त डा० कन्हैयालाल सहल (पिलानी) ने राजस्थानी कहावतों के संबंध में ही शोधनिबंध लिखा है जो, आशा है, शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इस संबंध में डा० सहल के महत्वपूर्ण लेख भी विभिन्न पत्रपत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित हुए हैं।

पँवाड़ों और लोकनाटकों पर स्वतंत्र रूप में कोई महत्वपूर्ण प्रकाशन अभी

[1] इस संबंध में विशेष द्रष्टव्य : 'परंपरा' के लोकगीत अंक में श्री अगरचंद नाहटा का लेख।

नहीं हुआ है। कुछ व्यवसायी प्रकाशकों ने इस संबंध में छोटे छोटे प्रकाशन किए हैं, पर उनमें न पाठ की शुद्धता है और न संपादन की मर्यादा।

राजस्थानी लोकसाहित्य का समय समय पर प्रकाशन यहाँ से निकलनेवाली शोधपत्रिकाओं में होता रहा है।

'मरुभारती[१]', 'राजस्थान भारती[२]', 'शोधपत्रिका[३]', 'परंपरा[४]', आदि शोधपत्रिकाओं में लोकगीत, बातों, पँवाड़ों, कहावतों आदि के संबंध में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है, जिनमें डा० सहल, प्रा० नरोत्तमदास स्वामी, श्री अगरचंद नाहटा और श्री मनोहर शर्मा द्वारा प्रस्तुत सामग्री विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पिछले कुछ वर्षों से लोकसाहित्य के विभिन्न विषयों को लेकर राजस्थान विश्वविद्यालय के कई छात्र शोधकार्य कर रहे हैं और यहाँ के शोधसंस्थान इस संबंध में सामग्री का संकलन भी कर रहे हैं।

राजस्थानी लोकसाहित्य का क्षेत्र वास्तव में इतना विस्तृत है, कि अभी तक किया गया कार्य इस दिशा में प्रारंभिक प्रयत्न मात्र है। जिस समय पूर्ण रूप से यह लोकसाहित्य प्रकाश में आएगा, राजस्थान की विभिन्न सांस्कृतिक निधियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने के लिये अत्यंत प्रामाणिक तथा महत्वपूर्ण सामग्री विद्वानों को उपलब्ध हो सकेगी और राजस्थान की सांस्कृतिक परंपराओं के साथ यहाँ की जनता रागात्मक संबंध स्थापित कर सकेगी। इससे राजस्थानी साहित्य के इतिहास में भी कितने ही नए अध्याय जुड़ेंगे जो आनेवाली पीढ़ियों के लिये सदैव एक जीवंत स्रोत का काम देते रहेंगे और यहाँ की भाषा को बल प्रदान करते रहेंगे।

[१] प्रकाशक : बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट का राजस्थानी शोध विभाग, पिलानी।

[२] सादूंल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिट्यूट, बीकानेर।

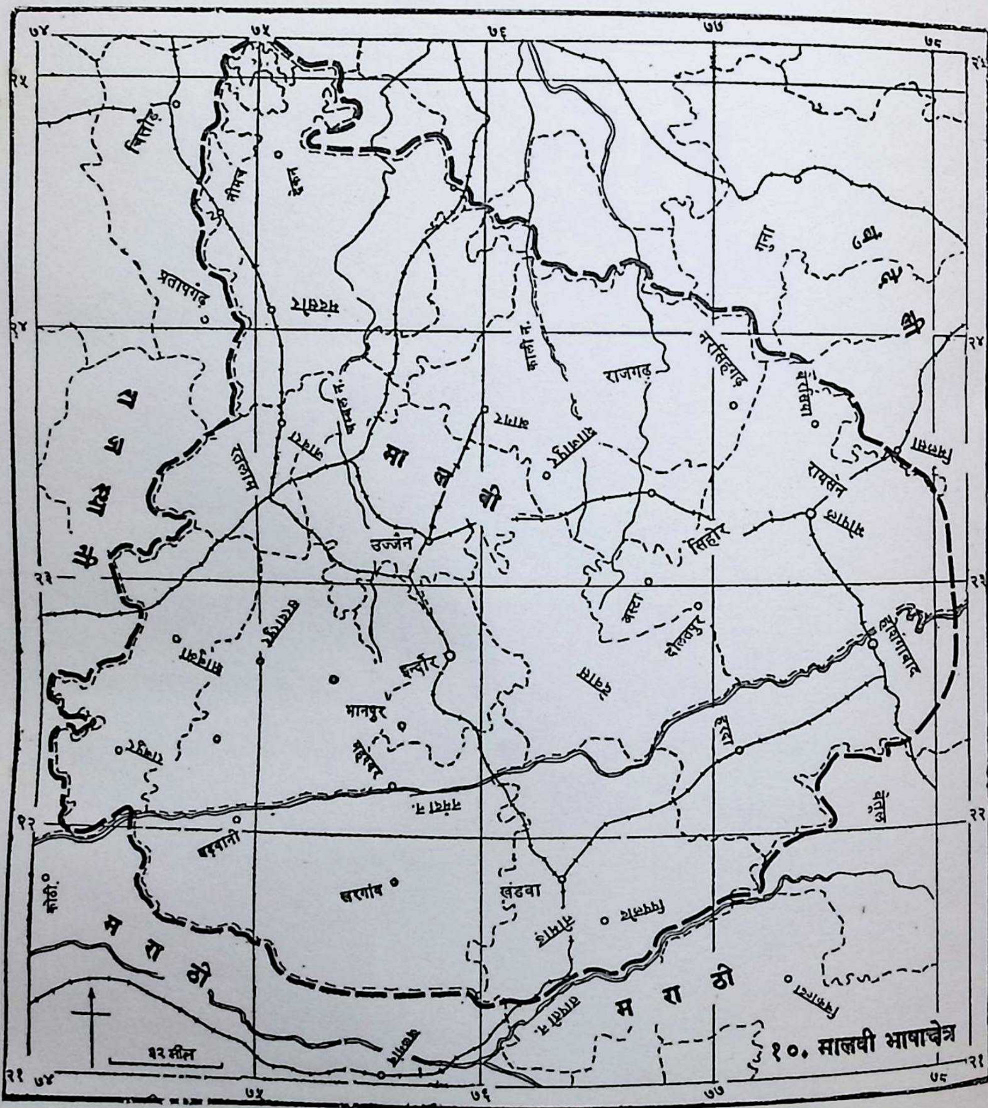
[३] साहित्य संस्थान, विश्वविद्यापीठ, उदयपुर।

[४] राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर।

११. मालवी लोकसाहित्य

डा० श्याम परमार

१०—मालवी



चित्तौड़
नीमच
प्रतापगढ़
मंदसौर
रतलाम
उज्जैन
राजगढ़
नरसिंहगढ़
गुना
रायसेन
सिहोर
इन्दौर
मानपुर
बड़वानी
खरगांव
खंडवा
होशंगाबाद
मा
ल
वी
म
रा
ठी
१२ मील
१०. मालवी भाषाक्षेत्र

(११) मालवी लोकसाहित्य

१. मालवी भाषा

(१) सीमा—भारतवर्ष के मध्य में, थोड़ा पश्चिम की ओर हटकर, चार प्रमुख भाषाओं (बुंदेली-मराठी-गुजराती-राजस्थानी) से घिरा हुआ मालवा वर्तमान मध्य प्रदेश के अंतर्गत एक उन्नत (माल उन्नत भूतल) भूभाग है। यह प्रदेश उत्तर अक्षांश २३.°३०′ से २४.°३०′ और पूर्व देशांतर ६४.°३०′ से ७८.°१०′ के मध्य में है। भौगोलिक परिसीमाओं से समृद्ध यही भूभाग मालवा का पठार कहा जाता है।

(२) ऐतिहासिक विकास—ऐतिहासिक दृष्टि से मालव प्रदेश अत्यंत प्राचीन जनपद है। पुराणों के अनुसार विंध्यपर्वत के पृष्ठवर्ती बारह जनपदों में मालवा भी एक था। पाणिनि ने ई० पू० चौथी शताब्दी में मालवों का उल्लेख किया है। मद्र और पौरव जातियों के साथ मालवों का नाम भी आता है। सिकंदर के साथ जिस मल्ल जाति का युद्ध हुआ था, वह यही मालव जाति थी। मल्ल (मालव) नाम से ज्ञापित कुछ इलाके उत्तर प्रदेश, पंजाब के कुछ स्थानों में मिलते हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि मालव जन एक स्थान पर स्थायी नहीं रहे। मालव जाति की प्राचीन मुद्राएँ राजपूताना के कुछ भागों में उपलब्ध हुई हैं, जो ई० पू० दूसरी शताब्दी की हैं। उनमें से अधिकांश पर 'मालवानां जयः' अथवा 'जय मालवानां' अंकित है। मालव जाति पंजाब की ओर से आकर इस क्षेत्र में बसी और उसी के नाम से अवंती प्रदेश मालवा कहा जाने लगा।

मालवा के पठार की समुद्रतल से आनुपातिक ऊँचाई १६०० फुट है। इंपीरियल गजेटियर (१६०८) के अनुसार नर्मदा के उत्तरी किनारों का निर्माण करती हुई रेखा, ग्वालियर के दक्षिण की ओर झुकती, विंध्य की श्रेणियों तथा भेलसा (विदिशा) के निकट से आरंभ होनेवाली दक्षिण उत्तर की ओर जाती सीमापट्टी तथा पश्चिमी सीमारेखा (जो राजपूताना की ओर बढ़ती है) के मध्य का क्षेत्र मालवा की सीमा निर्धारित करते हैं। यह सीमाक्षेत्र निम्नांकित पंक्तियों के बहुत कुछ अनुरूप है :

इत चंबल उत बेतवा, मालव सीम सुजान।
दक्षिण दिसि है नर्मदा, यह पूरी पहचान॥

मालवा में जातियों के आगमन का प्रमुख प्रवाह सिंधु और गंगा के मैदान

की ओर से रहा है। गुजरात का पश्चिमी क्षेत्र तथा चंबल का ऊपरी भाग इसमें संमिलित थे। विंध्य की श्रेणियाँ दक्षिण के प्रवाह को बहुत समय तक रोके रहीं। सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से उत्तरी मालवा (आकर) की अपेक्षा पश्चिमी मालवा (अवंती) आकर्षण का प्रमुख केंद्र था। शकों और हूणों के आक्रमणों का सामना इसे ही करना पड़ा था। ऋग्वेद के रचयिता ऋषि और आर्यगण मालवा में नहीं आए थे। कदाचित् बुद्ध के पूर्व दोआब की ओर से आए हुए आर्यों के द्वारा मालवा आबाद हुआ। मेगस्थनीज ने चारमी नामक एक जाति का उल्लेख किया है जो चर्ममंडल में निवास करती थी। उसका संबंध चर्मण्वती (चंबल) के बीहड़ों में बसी सभ्यता से होगा। विद्वानों ने बुंदेलखंड के चमारों से इस चारमी जाति का संबंध अनुमानित किया है। मौर्यों के पतन के पश्चात् मध्यवर्ती भारत के उत्तरी क्षेत्र में आदिवासियों का बल बढ़ गया। पश्चिमी मालवा शकों से प्रभावित था। इन जातियों ने अपना रक्त यहाँ की जातियों में मिलाया। इस समय मालव और आभीर गणतंत्र सचेत हो गए थे। प्रभावशाली विदेशी जातियों की शक्ति क्षीण हो जाने पर, वे यहाँ की सभ्यता में क्रमशः घुल मिल गईं। चंबल के उत्तर-पश्चिम में ऐसी कई जातियाँ बसी हुई थीं। अग्निवंशी (शक) परयार, परिहार, चौहान, सोलंकी, निरंतर नए क्षेत्र की खोज करते रहे। मालवा के परमार आबू से आए थे। नर्मदा उपत्यका में कलचुरी और हैहयवंशी थे। परमारों के दबाव से वे मध्य देश की ओर बढ़ गए। उनकी प्रथम राजधानी माहिष्मती (महेश्वर) थी।

मुसलमानों के प्रभाव ने यहाँ के चौहानों और चंदेलों को छितराकर उनकी युयुत्सु प्रवृत्ति को हमेशा के लिये समाप्त कर दिया। कन्नौज के पतन के पश्चात् गहड़वार मारवाड़ में चले गए। मुसलमानों के समय पश्चिम मालवा में इनके कुछ राज्य स्थापित हुए। मालवा के परमारों की शक्ति क्षीण हो चली थी। तोमर और चौहान इस भूमि पर कुछ काल तक सचेष्ट रहे, पर बाद में मालवा मुसलमानों के हाथ में आ गया। मराठों का आक्रमण मालवा के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है : राजपूतों ने मालवा की संस्कृति को बहुत प्रभावित किया, पर मराठों के आगमन के पश्चात् दक्षिण मालवा पर उनका भी प्रभाव पड़ा। राजपूतों के कारण कई मिश्रित जातियाँ उत्पन्न हुईं। मराठों के अधिकृत क्षेत्र में जब पिंडारियों का प्रवेश हुआ, तो कितने ही हिंदू धर्मभ्रष्ट हुए। मुसलमानों की जो सेनाएँ धार, मांडू और सारंगपुर में रहा करती थीं उनके कारण भी सेवा करनेवाले हिंदुओं का बाह्य आचार व्यवहार मुसलमानी हो गया। साधारणतः कृषि ही लोगों का एकमात्र व्यवसाय था। जिस मालव जाति का उल्लेख आरंभ में किया गया है, उसका पृथक् अस्तित्व आज नहीं है। संभवतः काल के प्रवाह में यह जाति कहीं दूर निकल गई अथवा यहाँ की साधारण जनता में धीरे धीरे घुल मिलकर लुप्त हो गई।

केवल बलाई को छोड़कर मालवा की वर्तमान शेष सभी जातियाँ अपना संबंध राजस्थान, गुजरात या उत्तर से घोषित करती हैं। बलाई अपने को मालवा का मूल निवासी बताते हैं। संभव है, इनका संबंध यहाँ के आदिवासियों से रहा हो।

मालवी लोकसाहित्य के संकलन का कार्य अँग्रेजी में सन् १६२५ के लगभग आरंभ हो गया था। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' (पाँचवाँ भाग) में इंदौर के दो व्यक्तियों के नामों का उल्लेख किया है। यह उल्लेख वस्तुतः सन् १६२८ तक उनके द्वारा किए गए प्रयत्नों से संबंधित है, पर उन व्यक्तियों द्वारा भेजी गई सामग्री का कोई उल्लेख ग्रंथ में नहीं है। इसके पूर्व नागपुर के 'फ्री चर्च आव् स्काटलैंड मिशन' के स्टीफन हिस्लप द्वारा संकलित जो सामग्री उनकी मृत्यु के बाद आर० टेंपुल द्वारा संपादित होकर प्रकाश में आई, उसमें नर्मदा और मालवा के निकटवर्ती भागों का थोड़ा सा लोकसाहित्य उपलब्ध है। सन् १६३२ और ३८ के बीच भूतपूर्व इंदौर राज्य के शिक्षा एवं रेवेन्यू विभाग ने म० भा० हिंदी साहित्य-समिति के तत्वावधान में लोकगीतों के संकलन का कार्य प्रारंभ किया। गाँवों की प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों एवं पटवारियों से लोकगीत लिखवाकर मँगवाए गए। धार राज्य ने भी इसी प्रकार संकलन करवाया।

शासकीय प्रयत्नों के अतिरिक्त ग्वालियर के श्री भास्कर रामचंद्र भालेराव ने लगभग २५ वर्ष पूर्व लोकसाहित्य लिपिबद्ध करने का बीड़ा उठाया था। उस समय के संकलित साहित्य का प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका है। हिंदी साहित्य-समिति (इंदौर) के पास की सामग्री भी अप्रकाशित है। अतः १६४२ के पूर्व की सामग्री प्रकाशन के अभाव में परखी नहीं जा सकी। इसके पश्चात् व्यक्तिगत प्रयत्न किए गए। चंद्रसिंह झाला ने अपने लेखों में ४० गीतों को उद्धृत किया है। उज्जयिनी की साहित्यिक संस्था प्रतिभानिकेतन और मालव-लोकसाहित्य-परिषद् ने इस दिशा में पर्याप्त प्रेरणा दी। चिंतामणि उपाध्याय, श्याम परमार, चंद्रशेखर दुबे और बसंतीलाल बंम ने संकलन के कार्य को आगे बढ़ाने में हाथ बँटाया। अनुमान है, समग्र रूप से लगभग १५०० लोकगीत, २०० लोकोक्तियाँ और २५० लोककथाएँ प्रामाणिक संग्रह में स्थान पा सकते हैं।

२. गद्य

(१) लोककथाएँ—मालवी लोककथा साहित्य के संग्रह का कार्य पिछले एक दशक से संभव हुआ। सन् १६३१ के पूर्व कतिपय जातियों की उत्पत्ति संबंधी कथाएँ सेन्सस रिपोर्ट के लिये शासन द्वारा संकलित की गईं। मालकम की ममायर्स आव् सेंट्रल इंडिया की जिल्दों में भी कुछ मालवी कथाएँ प्रकाशित हुईं। सन् १६५५ में १६ लोककथाओं का एक संग्रह (मालवा की लोककथाएँ, ले० श्याम

परमार) प्रथम बार प्रकाश में आया। अनुमान है, अब तक लगभग सभी प्रयत्नों से ढाई सौ से अधिक कथाएँ लिपिबद्ध की जा सकी हैं। वरियार एलविन् का भी यही अनुमान है।

मालवी में सभी प्रकार की कथाएँ पाई जाती हैं। ऐतिहासिक और अर्द्ध ऐतिहासिक कथाएँ जहाँ एक ओर लुप्त इतिहास की कड़ियाँ जोड़ती हैं वहाँ दूसरी ओर व्रतकथाएँ, पशुपक्षी संबंधी कथाएँ, चतुराई विषयक कथाएँ, क्रमसंवृद्ध कथाएँ और चमत्कारप्रधान कथावृत्त संपूर्ण पठार पर कूतुहल की सृष्टि करते हैं। इन कथाओं के अनेक वृत्त व्रज, राजस्थान और नीमाड़ की कथाओं से मिलते हैं।

मालवी लोककथाएँ मैदानी हैं। पहाड़ी कथाओं की तुलना में उनमें भूत-प्रेतों और परियों के प्रति विश्वास का प्रभाव कम हैं। मध्यवर्ती भारत के नाथ साधुओं और सिद्धों के प्रभाव को व्यक्त करनेवाली कथाएँ उल्लेखनीय हैं। मुख्य रूप से कृषिजीवन के प्रभावों से मालवी कथाएँ भरी हैं। आदिवासियों के विश्वासों की झलक यद्यपि उनमें मिल जाती है, तथापि उनकी नैतिक मान्यताओं, नीति और अभिप्रायों में मध्यकालीन प्रभावों की झलक है।

मालवी में लोकोक्ति, कवात (कहावत) या कवाड़ा और पहेली पारसी अथवा प्याली कहलाती है। कवात वाक्यांश (मुहावरे) और पूर्णवाक्य दोनों रूपों में उपलब्ध है। हराम का, हाड़का, पलाँ जाया न पलाँ बायाँ, काणी राणी ने विघन घणा आदि मुहावरे हैं, पर ये मालवी में कवात कहे जाते हैं।

मालवी कहावतों की प्रकृति राजस्थानी के अनुरूप है। गुजराती की सादगी और किसानी जीवन के गूढ़ अनुभव दोनों उनमें व्यक्त हैं।

ऐसी लगभग दो हजार कहावतें मालवी और उसके उपभेदों में उपलब्ध हैं। सीमावर्ती मालवा की कहावतों का एक संग्रह प्राचीन शोध संस्थान (उदयपुर) से छह वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ है, जिसके संग्रहकर्ता रतनलाल महता हैं।

मालवी कवात के गीतात्मक अंश उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के छंदोबद्ध कथनों को कवाड़ा कहना उपयुक्त समझा जाता है।

पहेली को नीमाड़ में 'ताड़नू की वार्ता' कहते हैं जिससे 'बुझौवल' का अर्थ स्पष्ट होता है। राजस्थानी के 'आड़िए' से ये बहुत मिलती हैं। शर्त बदना, आग्रह करना, बहुप्रश्नी पंक्ति कहना अथवा यौनवृत्ति को श्लेषात्मक ढंग से प्रस्तुत करना मालवी पहेलियों में लक्षित होता है। मालवी की सैकड़ों पहेलियों में कृषि-जीवन के उपकरणों का बाहुल्य मिलता है। 'दो मूँडों की दोणी' उदाहरणार्थ निम्नांकित है :

दो मूँडों की दोणी

सूरजनाराण तो देवलाक में रेता था। उनकी मा ने बरा[1] इनाज लोक में रेती थी। वी कदी कदी इना लोक में आता ने घर की सालसभाल करी ने खर्चा पानी का बवस्था करी ने पाछा चल्या जाया करता था।

सूरजनाराण की माँ बड़ी मतलबी थी। उने कईं कर्या के एक दन कुमार काँ जई ने दो मूँडा[2] की दोणी[3] घड़वई ली। वस ती दोणी को एकन मूँडो था, पण उका में आड़ देने से दो गरज सरती थी। अब उने कईं कर्या के जद दोणी घर लई तो एक बाजू खीर दूसरी बाजू राबड़ी राँदण दी सुरुवात कर दी। बऊ बापड़ीं के या चाल समज में नीं अई। जदे दोई सासू बऊ जीमण बैठती, तो सासू तो खीर लई लेती ने राबड़ी बऊ आगे मेल देती। बऊ कदी कदी कती—"का हो सासूजी, नत[4] की राबड़ी बनावे ?" सासू झट कती—"कईं कराँ लाड़ी, पूरो नी पड़े।" बऊ बापड़ी चुप हुई जाती।

इस तरे नरा दन हुई गया : ऐक दन सूरजनाराण आया। माँ ने उणीज दोणी में खीर ने राबड़ी राँधी। जदे जीमणे बठ्या तो अपणा बेटा की थाली में खीर मेली, न बऊ आगे राबड़ी। सूरजनाराण के खीर अच्छी लगी तो बडई करवा लागा। पण उनकी बेराँ के धणी की या बात समज में नी अई। वा मनीज मन सोचवा लागी के आज खीर बणीज काँ है, जो ई खीर का असा गुण गई र्या है। जीमी चूँठी ने सूरजनाराण आराम करने गया, तो पास में जई ने बेराँ ने पूछ्या के तम खीर को बड़ई करी र्या, म्हारे तो कई समज में नी अई तमारी बात। सूरजनाराण भी इनी बात पे चकराया। उनने कया के अब काल फिर देखाँगा।

दूसरा दन उनीज तरे[5] माँ ने खीर ने[6] राबड़ी बणई। सूरजनाराण थाली देखता जई र्या था। माँ परासी री थी। उनने देख्या के उनकी थाली में खीर ने बऊ की थाली में राबड़ी है। अब तो उनके अचंभो होण लगे। माँ कईं जादू टोनो जाने है, या कईं बात है ? खूब विचार में पड़ी ग्या वी तो। नी समज में अई तो उनके दोणी मेंज झाँकी के दख्या। "अरे व्हारी या बात है ?"

उनने माँ से इका कारण पूछ्या। माँ थी तो खीसाणी पड़ी गी। कईं केती। पण केवा सरु[7] ती केवा लगी, "कई करूँ बेटा, कुमार ने असीज[8] दोणी घड़ी है। घरे घरेज असी दोणी है।"

[1] स्त्री। [2] दो मुँहवाली। [3] हँडिया। [4] रोज। [5] उसी तरह। [6] और। [7] के लिये।
[8] ऐसी ही।

सूरजनाराण के बड़ो दुख हुयो। बोल्या—"तो जदी घर घर असीज बऊना हाड़का की माल[1] हुई री हागी।

दूसरा दन ने उनने अपणा राज में डूँडी फिरई दी, के जो कोई दो मूँडा की दोणी घड़ेगा और जो बापरेगा, उनके देस निकाला दिया जायगा।

इस तरे माँ की चालाकी खुली गी। उस बाद सासू बऊ मजे में रेवा लगी।

(२) लोकोक्तियाँ (कवात, केवाड़ा)

(क) कृषि संबंधी—

कार्तिक देख्या काल, ने समया देख्या सुकाल।
भादो भिलनी भज्जा[2] खाय।
खेत में नालो, घर में सालो।

(ख) भाग्य संबंधी—

भाग बिना खाणो, न करम बिना सगा नी मिले।
करम अभागी खेती करे। बेल मरे ने टोटो[3] पड़े।
चालनी में दूध छाना, करम होय तो बचे।

(ग) सास बहू संबंधी—

सासू मरी ने साल भागो, ऊठो बड़ूबड कामे लागो।
लँगड़ी बऊ काम करे, ने सो जना से टेको देवाय।
नित की रनूबई सासरे जाय, कागला कूतरा कूलर खाय।
जेलू[4] चली सासरे सो घर संताप।
हलर मलर का पीसनो, न वाव ढुलंता पाणी।
वारू[5] सासू जी त्हारो कातनो, हात पाँव दिया तानी॥

(घ) नीतिपरक—

हाथ फेन्या की लछमी, जीव फेन्या को दलद्दर।
काम सुधारो तो अंगे पधारो।
जेको धन खाय उकी बुद्धि आय।
बेटी से कई घर बसे?

१ हँडिया की माला। २ भुजिया। ३ नुकसान। ४ जलनेवाली। ५ न्योछावर हूँ ती हूँ।

(ङ) मानव स्वभाव संबंधी—

गोल[1] खाय ने गुलगुला से परेज ।
चोर की माँ छाने[2] रोवे[3] ।
पराई थाली में घी घणा[4] ।
भट जी भटा खाए, दूसरा के परेज बताए ।

काणा, कंजर, कायरो, चपटा, भूँडो, नूछा भूर ।
ओछी गर्दन, दाँतलो इनसे रीजो दूर ॥

३. पद्य

(१) पँवाड़ा—मालवी में नरसिंहगढ़ के चेनसिंह, सीकरी के डूंगसिंह, 'धारगदी', 'भरथरी' एवं 'नर्मदा में नाव डूबने' आदि के पँवाड़े प्रसिद्ध हैं। कुँवरसिंह की तरह चेनसिंह ने सन् १८२४ में नरसिंहगढ़ से चलकर अंग्रेजों की छावनी सीहार (भोपाल के पास) पर आक्रमण किया था। डूँगरसिंह (डूँगजी जुवारजी) का पँवाड़ा मालवा की सीमा पर प्रचलित है। डूँगजी ने भी अंग्रेजों के दाँत खट्टे किए थे। 'धारगदी' में सन् १८५७ में धार के निकट हुई घटनाओं का लोकपरक वर्णन है, जिसमें अगभेरा के बख्तावरसिंह के शौर्य का बखान किया गया है। बख्तावरसिंह को इंदौर में फाँसी दे दी गई थी। 'चेनसिंह' का कुछ[5] अंश इस प्रकार है :

राजा सोबालसिंह का चेनसिंह, मुलकों में राज किया,
मैचन्या बसता जी साब बरज्या[6] हो कँवर सा,
तमारी लड़वा की बेस[7] ।
मेंस्या दुवारता भाई जी बोल्या,
नी हो दादाजी तमारी नी लड़वा की बेस ।
पालना बसंता माजी वई बोल्या,
नी हो कुँवर म्हाकी लड़वा की बेस ।
रसोई पोवंता[8] भावज बोल्या,
नी हो देवर जी तमारी लड़वा की बेस ।
घाड़िला फिरंता वीराजी हो बोल्या,
नी हो वरसा, तमारी लड़वा की बेस ।

[1] गुड़। [2] छुपकर। [3] रोती है। [4] बहुत।
[5] अनारबाई ढालन से ग्राम सुंदरी (जिला शाजापुर, म० प्र०) में २२ मई, १९५२ को प्रथम बार लेखक द्वारा लिपिबद्ध किया गया। [6] मना किया। [7] वयस। [8] करते हुए।

ढेलड़ा[1] खलंता बन्यावई बरज्या,
नी हो दादाजी तमारी लड़वा की बेस।
सेज्या सँवारता गोरी हो बरज्या,
नी हो आलीजा तमारी लड़वा की बेस।
हिदरखाँ भदरखाँ[2] यूँ कर बोल्या,
चेनसिंह, एकला से पड़्ग्या काम।
भाई भतीजा घर रह्या, चेनसिंग,
एकला से पड़्ग्या काम।
सीस कटाया, घाँट बधाया; चेनसिंग,
मुख पे उड़े रे गुलाब।
सीवर[3] में जाई डेरा हो डाल्या,
चेनसिंह घड़ से कन्या है जुवाब[4]।

महाराष्ट्र में प्रचलित पँवाड़ों की तरह नर्मदा उपत्यका के पँवाड़ों में 'जी जी जी' की आधारभूत धुन नहीं लगती। मालवा में उसका प्रभाव नहीं के बराबर है। मराठों की भूतपूर्व रियासतों में स्थानीय भाषा की रचनाओं की अपेक्षा मराठी के ही पँवाड़े अधिक प्रचलित रहे। नर्मदा के किनारे 'खंडेराव का पँवाड़ा' फाल्गुन सुदी १२ से चैत्र की प्रतिपदा तक गाया जाता है। मालवा के बंजारे 'परित्या' गाते हैं। घुमंतू जातियों में भी पँवाड़े प्रचलित हैं। लावनीबाजों का जोर भी लंबे समय तक मालवा में रहा। सर जान मालकम ने अपने संस्मरणों में इस प्रकार के कुछ मनोरंजनों का उल्लेख किया है। नीमाड़ और मालवा के आगर नामक स्थान पर लावनीबाजों का खूब प्रभाव रहा।

भरथरी के पँवाड़े का कुछ अंश उदाहरणार्थ निम्नांकित है :

('पिंगला भुरापा' नाथपंथी गीत)

पेला समरूँ[5] दबी सारदा हो राजा,
गणपत लागूँ में पाँव, राजा भरथरी।
बोले राणी—सुनो भरथरी म्हारी बात,
जीवलो[6] जीवो हो राजा।

[1] खिलौने। [2] बहादुर खाँ और हैदर खाँ लोदी दोनों चेनसिंह के साथी थे और युद्ध में काम आए। दोनों के वंशज आज भी मध्य प्रदेश के ग्राम घनारा (सारंगपुर तहसील) में रहते हैं। [3] सीहोर (भोपाल)। [4] मुकाबला। [5] स्मरण करूँ। [6] जीवन।

काए तो बिथा[1] से जागी बणी ग्या,
छोड़ी गया उज्जणी का राज।
मलाँ[2] झुरती ता छाड़ी ग्या हा राणी,
पिंगला हा राजा।
राजा कणी ने ज्ञान भरथरी दई दीनो हो,
जिन अब खइयो बासक[3] नाग।
बालपणा में जोगी कर दिया हो राजा,
छोड़ी गया उज्जेणी का राज।
'कागत होय तो राणी में बाँच लूँ,
करम[4] न बाँच्यो जाय।'
अरे राजा, जुलम का जोगी,
जो मैं जाणती, रेती[5] अखंड कुँवारी।
हे जी कुँवारी रेती ने पीपल पूजती,
परण्या[6] लागी गया म्हने दाग।
दाग तो लाग्या काचा लील[7] का हो राजा,
अरे राजा चंदा बिन केसा हे चाँदणी[8]।
तारा बिन केसी रात, बिना भाई हो राजा केसी बनड़ी,[9]
झुरेगा बार तेवार।
माता झुरेगी जलम जोगणी हो राजा,
बन्या बार तेवार।
सपना में हो राजा सपना में,
भागवत[10] भेलो[11] रे बतावेगा।
सुणा म्हारी जोड़ी रा भरतार[12],
मत छोड़ो उज्जेणी का राज।
मेलाँ मत छोड़ो राणी पिंगला हो राजा।

(३) लावनी (किलगी तुर्रा)—१५वीं शताब्दी के लगभग 'किलगी तुर्रा' नामक एक गीतशैली का उदय मालवा में हुआ। किलगी तुर्रा के दो पक्ष हैं। 'किलगी' अखाड़े के लोग 'किलगी' को माता और 'तुर्रा' को पुत्र मानते हैं। 'तुर्रा' अखोड़े के लोग 'किलगी तुर्रा' को दंपती बतलाते हैं। इन्हीं दोनों पक्षों में

[1] व्यथा। [2] महल। [3] वासुकी नाग। [4] भाग्य। [5] रहती। [6] विवाहिता हो जाने से। [7] कच्ची नील। [8] चाँदनी। [9] बहन। [10] प्रभु। [11] संयोग। [12] प्रियतम।

संवादात्मक नोक झोंक प्रायः आयोजित होती हैं। मध्यस्थ का कार्य 'टुंडा' नामक पद्म द्वारा किया जाता है। 'टुंडा' वस्तुतः लुप्त होते हुए प्रश्न को उभाड़ने अथवा तर्क शांत करने में सहायक होता है। दार्शनिक व्याख्यानुसार कलगी और तुर्रा आदिशक्ति और शिव के सूचक हैं। कलगीपक्ष का विश्वास है कि आदिशक्ति ही शिव की उत्पत्ति का कारण है। तुर्रा पक्ष शक्ति को शिव की पत्नी घोषित करता है। उसकी मान्यता बहुत कुछ शिवपार्वती के सगुण रूप से मेल खाती है। स्पर्धा इन्हीं मतभेदों में विद्यमान है। परवर्ती संतों की परंपरा से इस क्षेत्र की बंदिशों में निर्धारित पदावली का समावेश हुआ। १८वीं और १९वीं शताब्दी के कलगीतुर्रा साहित्य में हिंदू और मुसलमान विश्वासों के बीच समन्वय की चेष्टा लक्षित होती है।

मालवा में इस साहित्य पर मुसलमानों और मराठों का भी प्रभाव पड़ा एवं लावनी को स्थान मिला। 'ख्याल' का प्रवेश उत्तर भारत के प्रभाव से आया, उसकी भिन्न भिन्न धुनों का इसमें समावेश हुआ। आगर (मध्यप्रदेश) के कलगी अखाड़े के मेरू, मोती, मुगल खाँ और चेतराम तथा तुर्रा अखाड़े के बलदेव उस्ताद का नाम दूर दूर तक फैला। नीमाड़ के कसरावद एवं चोली ग्राम में कलगी तुर्रा का बहुत सा साहित्य उपलब्ध है। सन् १७२६ के आसपास होलकर राज्य की रानी अहिल्याबाई ने इस शैली को प्रोत्साहन दिया था। मंदसोर (दशपुर) के निकट ग्रामों में भी कलगीतुर्रा की परंपरा मिलती है। टोने टोटके से संबंधित जंजीरा नामक गीतशैली इसी के अंतर्गत आती है जिसका प्रयोग अब लुप्त हो चुका है।

कलगीतुर्रा की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ उपलब्ध हैं जिनमें परंपरा से गाई जानेवाली रचनाएँ लिखी हैं। यह परंपरा मौखिक होकर भी लिखित रूप में प्राप्त है।

धार्मिक परंपराएँ—मालवी लोकसाहित्य की धार्मिक परंपरा उल्लेखनीय है। नीमाड़ के 'मसाणया' गीत का आध्यात्मिक सौंदर्य मालवा के पठार तक पहुँचा है। संत सिंगा के गीत मालवा के ऊँचे पठार से सतपुड़ा की शैलमालाओं तक किसानों में प्रचलित हैं। सिंगा का वर्चस्व किसी भी प्रसिद्ध संत के मुकाबिले में अधिक है। १७वीं शताब्दी में सिंगा के जीवित होने का अनुमान लगाया जाता है। इसी प्रकार ब्रज तथा मारवाड़ में प्रसिद्ध चंद्रसखी के गीत भी उल्लेखनीय हैं। चंद्रसखी का काल १७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध तथा १८वीं शताब्दी का प्रारंभ अनुमानित किया जाता है। अधिकांश साहित्य 'पंथी' है। आंशिक रूप से यह साहित्य मुद्रित और आंशिक रूप से मौखिक है, पर लोकपरक मौखिक साहित्य मात्रा में अधिक है। कबीरा, रामदेव, जोगीड़ा और निरगुन जैसे अनेक गीत निम्नवर्ग में खूब गाए जाते हैं। भाउदास, भाटीहरजी, अणदा साँनी आदि व्यक्तियों

की छाप के पद भी मिलते हैं। नाथ जोगीड़ों के प्रभाव के कारण भरथरी, गोरख, मछिंदर और गोपीचंद के गीत भी चिकारों पर सुने जाते हैं। भजनी साहित्य इससे संबंधित है। पंथी गीत प्रायः पुरुषों की रचनाएँ हैं।

(२) हीड़ पूजन—

हीड़ ग्रामीण जनता का एक लोकप्रबंध है, जो गति के आवरण में मौखिक परंपरा के रूप में कुछ सुरक्षित रह सका है। मैंने हीड़ की पूरी लोकगाथा को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया, किंतु दुर्भाग्यवश ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिल सका, जिसे पूरी हीड़ याद हो। भिन्न भिन्न व्यक्तियों को जितना भी अंश याद था, उसको लिखकर कथाप्रसंग को समझते हुए हीड़ की लोकगाथा को संकलित किया गया है :

पेलाँ सुमराँ गणपति महाराज, फेरि सुमराँ माता सारदा।
गणपत ने चढावाँ मोदक लाड़वा, सारदा ने फूलाँ की माल।
हिरदाँ में बिराजे गणपत देव, कंठे बिराजे देवी सारदा॥
भूल्या चूक्या ने मारग बताव।

(हीड़ की जोत)—

तिल्ली नी तैलाँ जोताँ जले सिरी इँदरासन माँया॥
दूसरी जले पोखर जी का घाट।
तीसरी जले भुवानी दक्खण माय, चौथी जोत जले फरणा जी माय।
एक तिल्ली नै दूजो कपास, तिल्ली नी तेलाँ जोताँ जले।
कपास नै ढाँक्यो जुग संसार॥

मालवा और राजस्थान में दीपावली के अवसर पर हीड़ गाया जाता है। यह गोपजीवन के सजीव चित्रों से भरी पूरी एवं ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकट करनेवाली गाथा है। कथावृत्त १४वीं शताब्दी का है जिसमें बगड़ावत गूजरों के अनेक युद्धों का वर्णन है। इसका मुख्य नायक देवनारायण है। गूजर सबसे अधिक हीड़ गाते हैं। इसके दो प्रकार प्रचलित हैं—(१) घोल्या की हीड़, (२) चाला हीड़। घोल्या का अर्थ है बैल। यह वृषभपूजा से संबंधित प्रबंध है। चाला हीड़ बगड़ावत गूजरों का लोकगीतों में सुरक्षित इतिहास है। दीवाली के दूसरे दिन 'चंद्रावली' गीत गाया जाता है। उसे भी प्रबंध रूप में स्वीकार किया जा सकता है। 'एकादशी', 'बालाबाऊ', 'काजल राणी', 'पंडवकथा' (पांडवकथा), 'रुकमणीहरण' आदि मालवी प्रबंध उल्लेखनीय हैं।

(२) लोकगीत—मालवा का लोकगीत साहित्य, भाषा और बोलियों की दृष्टि से अनेक वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। मालवी का जहाँ तक संबंध है, उसे (लोक-गीत-साहित्य के संदर्भ में) छोटे छोटे उपभेदोंमें बाँटना उचित नहीं, क्योंकि मालवी उपभेदों एवं जातिगत गीतों में एक सी प्रवृत्तियाँ होती हैं। प्रगाढ़ समन्वय एवं संस्कृतियों के अंतरावलंबन के कारण उसमें संस्कार एवं आचारभेद का अभाव है, गेय पद्धति भी प्रायः सर्वत्र समान है।

मालवी गीतों का स्वभाव संतोषी है। पठारवर्ती मालवा संघर्षों में कम पड़ा है। यही कारण है कि मालवी में वीरगीतों का अभाव है। स्त्रैण-प्रवृत्ति-प्रधान गीतों के आधिक्य का कारण भी यही है। संस्कारों, उत्सवों और अनुष्ठानों के समस्त गीत स्त्रियों की परंपरागत संपत्ति हैं जिनमें रूढ़ मान्यताएँ अपना अनोखापन रखती हैं।

मालवी गीतों में मध्यकालीन संस्कारों की झलक स्पष्टतः निखरी है। ये गीत प्रधानतः कृषिसभ्यता की समृद्ध अभिव्यक्ति के कोष हैं। गुजराती और राजस्थानी गीतों की मान्यताओं और अभिप्रायों का उनमें समावेश है। पुरुषों के गीतों में विस्तार और स्त्रियों के गीतों के चरण छोटे होते हैं। लघुवृत्तों का स्वरूप बालगीतों में है। लघु कथावृत्त स्त्रियों और बालकों दोनों के ही गीतों में प्राप्य हैं।

पुरुषों के पंथी गीतों में हमें लोकोन्मुखी संतकाव्य के दर्शन होते हैं। सिद्ध-साहित्य की आत्मा को छूते हुए कई गीत जोगी और नाथों के कंठों पर आज भी चले आ रहे हैं।

मालवी गीतों का रंग भड़कीला नहीं है। संगीत की दृष्टि से मालवी गीतों की धुनें अपने ढंग की हैं। चार और पाँच स्वरों में उनकी धुनें गुँथी हुई हैं।

मालवा के लोकगीतों के मुख्य भेद ये है :—

१. श्रमगीत	४. देवतागीत	७. प्रेमगीत
२. नृत्यगीत	५. त्योहारगीत	८. बालिकागीत
३. ऋतुगीत	६. संस्कारगीत	९. विविध गीत

(क) श्रमगीत—

(बैल संबंधी)

म्हाक कमई म्हारा घोड़िला, कूवा बँधाया, लाखा रो नाज उपाये[1]।
वारी[2] ओ छालर का जाया, सोना से मँड़ई दूँ थाकी सींगड़ी।

[1] उत्पन्न किया। [2] न्योछावर होती हूँ।

थ्हाकी कमई म्हारा घोड़िला, कन्या परणाई।
घर को धरम बढ़ायो, वारी ओ छालर का जाया।
थ्हाकी कमई म्हारा घोड़िला, बेटा परणाया, घर को वंस बढ़ायो।
वारी ओ छालर का जाया, सोना से मड़ई दूँ थ्हारी सींगड़ी।

(ख) नृत्यगीत—

दोय नँनद भौजाया पानीड़ा चाली, पनघट पै बैठा सिपैड़ो[1]।
सिपैड़ो तो यू कर बोल्या—'चलो गोरी साथ हमारा।'
इतना तो सुणी हम यूँकर बोल्या—
'धरती का घाघरा सिवइ दे सिपई रे।
साँप री मगजी लगई दे सिपई रे,
बादल रा लुगड़ो बणई दे सिपई रे।
तारा रा फूल टँकई दे सिपई रे,
गोयरा री चीण लगई दे सिपई रे।
जद चालाँ थ्हारा साथ।'
इतरो तो सुणा सिपैड़ा बोल्या—
'ऐसो तोमसे हमारे से नी बणे, जाओ गोरी अपणा मेल।'

(ग) ऋतुगीत—मालवा में होली, सावन और बारहमासी गीतों का बाहुल्य है। होली पुरुषों द्वारा भिन्न भिन्न मुखड़ों में गाई जाती है। सावन के गीत दो भागों में विभक्त हैं—१. कुमारियों के गीत, २. ब्याहताओं के गीत। ब्याहताओं के गीतों का क्रम आषाढ़ या चैत्र से शुरू होता है। कार्तिक और माघ में स्नान के गीतों और भजनों का प्रचलन है।

सावन में बालिकाएँ लीबीली गाती हैं। चूँकि सावनगीत वर्षा के गीत हैं, अतएव भाई बहन के व्यापक प्रेम और युवाओं के प्रणयप्रसंगों की पूर्णता इनमें समाई हुई है। चैत्र में तीज, अषाढ़ में मेरू जी, क्वार में संजा और गर्बा, कार्तिक में स्नान के भजन, दीपावली पर चंद्रावल तथा फाल्गुन में होली, यह मालवी स्त्रियों के ऋतुगीतों का क्रम है। सावन में कजली तीज एक बार और आती है। बालिकाएँ चैती तीज पर फुलपती के गीत गाती हैं।

(१) सावन के गीत—

लींब लिबोली[2] पाकी सावन महिनो आयो जी,
उठो हो म्हारा वाला जीरा लीलड़ी पलाणो जी।

[1] सिपाही। [2] निबाली।

तमारी तो प्यारी बेन्या सासरिया में झूले जी,
झूलो तो झुलवा दिजो अबके सावन आवाँ जी।
कारे माली का छोरा, म्हारी बेन्या ने देखी थी,
देखी थी भई देखी थी, पाणी भरता देखी थी।
हाथ में हरियालो चूड़ो, माथे मोहन बेड़ो[1] जी।
चाँदनी चदकड़ी सी रात मारूणी रमवा निसऱ्या[2] जी म्हारो राज।
रमत रमत लागी बड़ी बेग सायब त्हारा मोकले[3] जी म्हारा राज।
एक तेड़ो[4] ने दूबी हो, तीजो तो तेड़ो आविया जी म्हारा राज।
सायब ने लागी बड़ी रीस[5] जड़िया बज्जड़ किवाड़ जी म्हारा राज।
साँकल दी लोहे की जी, ताला तो जड़िया प्रेम का जी म्हारा राज।
मारूणी ने लागी बड़ी रीस, ली है पीयर केरी बाट जी म्हारा राज।
होय घोड़ी असवार सुसरा जी लेवा आविया जी म्हारा राज।
बउवड़ म्हारी बड़ा घर की नार,
घर तो चालो आपणा जी म्हारा राज।
राँगा ससुरा जी पीयर पड़ोस,
बचन सालै तमारा पूत को जी म्हारा राज।
होय घोड़ी असवार सायब लेवा आविया जी म्हारा राज।
गोरी म्हारी बड़ो घर की नार,
घर तो चालो आपणा जी म्हारा राज।
राँगा राँगा, पीयर पड़ोस, वचन सालै आपको जी म्हारा राज।
गेला गोरी, मूरख गँवार, घर तो चालो आपणा जी म्हारा राज।
राँगा राँगा पीयर पड़ोस, कातागाँ रटल्यो जी म्हारा राज।
जावाँगा जावरिया रा हाट, भोंगो तो करी बेचाँगा म्हारा राज।
रुपया रुपया म्हारा तार, मोश्ररी म्हारी कूकड़ी जी म्हारा राज।

(२) होली—

रंग का आ रणुबई भऱ्या ओ कचोला, कंचन की पिचकारी।
छोडो ओ पोटली ने करो सिनगार, खेलो घणीयर जी[6] से होली।
पैरी आढ़ी वो रणुबई सासू कने गया, देवो हुकुम खेलाँ होली।
हमारा कुँवर रणुबई तप का ओ लोभी, नी खेलें तिरिया से होली।

[1] घड़ा। [2] निकल। [3] छोड़ते हैं। [4] बुलावा। [5] क्रोध। [6] रणुबाई के पति।

रंग का गोरी बई भऱ्या हो कचोला, कंचन की पिचकारी ।
छोड़ो हो गठरी ने करो सिनगार, खेलो हो ईस्वर जी से होली ।
पैरी ओढ़ी ने रणुबई सासू कने गया, देवो हुकम खेलों होली ।
हमारा कुँवर रणुबई तप का हो लोभी, नी खेलै तिरिया से होली ।

(घ) देवतागीत—

(१) सतीमाता—

माथा ने भमर[1] घड़ाव रे सेवग[2] म्हारा,
सायब को डालो चंदन नीचे ऊबो ।
चंदन नीचे ऊबो, चमेली नीचे ऊबो,
सायब से छेटी[3] मती पाड़ो रे,
सेवग म्हारा सायब को डोलो ।
बडटयन[4] चुड़लो चिराव[5] रे सेवग म्हारा, सायब ।
मुविया[6] ने रतन जड़ावो रे सेवग म्हारा,
पगल्या ने नेवर[7] घड़ावो रे सेवग म्हारा ।
अड़गें ने सालूड़ो रँगावो रे सेवग म्हारा,
सायब को डोलो चंदन नीच ऊबो ।

(२) सतियार—

सतियारा[8] डरा हवाबाग में, कणिपत[9] सेवाँ हिंगलाज,
बावड़[10] लोनी बीड़ो पान को ।
कणिपत मेल्याँ सासू सूसरा, हे म्हारी सतियार ।
कणिपत मेल्याँ मायनबाप, हो मोटा का जाया । बावड़० ।
हाँसत मेल्या सासू सूसरा ने रोयत[11] मेल्या मायन बाप,
मोटा का जाया, बावड़० ।
कणियारी घसी अम्मर पाल, हे म्हारी सतियार,
सजनारी[12] घसी अम्मर पाल, मोटा का जाया । बावड़० ।
कणिपत मेल्या ऊँडा ओवरा, कणिपत मेल्या सूरजपाल,
मोटा का जाया० ।

[1] एक प्रकार का आभूषण । [2] परिजन । [3] वियोग । [4] बाँह । [5] चूड़े तैयार करो । [6]–[7], आभूषण । [8] सती के । [9] किस प्रकार । [10] बहू । [11] रोते हुए । [12] प्रियतम को ।

करिणपत मेल्या देवर जेठ, करिणपत मेल्या नाना बालूड़ा,
मोटा का जाया० ।
अरे घोड़े चढ़ी ने बाग मरोड़ी, म्हारी सतियार,
करिणपत सेवी हिंगलाज, मोटा का जाया, बावड़० ।

(३) सीतला—

कुँकू भरी चँगेलड़ी,[१] बऊ थें काँ चाल्या आज,
आज सीतला माता आसन बैठा ।
यो म्हारे पूजन काज, माता म्हारी एक बालूड़ो ।
एक बालूड़ा का कारणे म्हारे ससरा जो बोल्या बोल,
हरती फरती रे हलरावती, म्हारे हिवड़ो[२] हिलोरा ले,
माता म्हारी० ।
अटसन बाँधू र पालनो, माता पटसन बाँदूँ रेसम डोर,
काता म्हारी एक बालूड़ा ।

(ङ) त्योहार गीत—

(गणगोर)—

अबोला

जी सायबा, खेलण गई गणगोर,
अबोलो[3] म्हासे क्यों लियो जी, म्हारा राज ।
जी सायबा, अबोले अबोले देवर जेठ,
मारूजी[४] रूस्या नी सरे जी, म्हारा राज ।
जी सायबा, एक चणा री दोय दाल,
दोयन राखो सारखी जी, म्हारा राज ।
जी सायबा, पड़ गई रेसम गाँठ
टूटे, पण छूटे नई जी, म्हारा राज ।

(च) संस्कार गीत—

(१) जन्मगीत—

जन्मसंस्कार के गीतों का आरंभ गर्भाधान के सातवें महीने से हो जाता है। शास्त्रों में जिसे 'पुंसवन' कहते हैं, वही मालवा में "खोलभराई", "अगरणी" या

१ पूजा का थाल । २ हृदय । ३ मान । ४ प्रियतम ।

"साधपुरावा" कहलाता है। "धनबऊ" के गीत इसी अवसर पर गाए जाते हैं। संतानोत्पत्ति के पश्चात् "पगल्या" (पदचिह्न) पत्र पठाने की परंपरा उल्लेखनीय है, जिसे प्राप्त करते ही संबंधियों के यहाँ भी "जचा" और "बधाव" ध्वनित हो उठते हैं। जन्म के दसवें दिन सूरजपूजा होती है। सूरजपूजा के गीतों में "घुघरी" गीत बड़ा महत्व रखता है। बीसवें दिन "जलमा" पूजा का लोकाचार संपन्न किया जाता है, जिसमें पाँच गीत निश्चित रूप से गाए जाते। मालवी के समस्त जन्म-संस्कार गीतों में "सोहर" नाम की कोई स्वतंत्र गीतशैली नहीं मिलती। "होलर" अवश्य ही रागड़ी उपभेद में मिल जाते हैं। जन्मपूर्व के गीतों में "परिमाजी", "बड़ी" या "जीजा" के गीत एक ओर स्थान पाते हैं, तो "धनबऊ" और "अगरनी" दूसरी ओर।

"धनबऊ" उन समस्त गीतों के समूह का नाम है जो प्रसूता को "धन्यबहू" के संमान से भूषित करते हैं। इनमें "लाखारस चूनर", "घेवर", "भाँज्या रूसना", "बेटोवेद", साँटा (गन्ना), तरबूज, कलाकंद, दाख, कला, पिस्ता, जामुन आदि वस्तुओं से संबंधित उन्हीं के नामों से प्रचलित गीत गाए जाते हैं। प्रसव के पश्चात् देवी देवताओं से संबंधित गीतों का क्रम आरंभ होता है। "भेरूजी", "माता", "आलिजा", "हरसिद्ध" मालव के विशेष मान्य देवता हैं। "बधावा" की पुनरावृत्ति भी इन्हीं के साथ होती है। जचा के गीतों में "पगल्या", "चौपड़", "चौक", "परेवा", "घुघरी", "पील्यो", "लापसी" तथा "गोदड़ी", "बाँदरो", "काँगलो" आदि गीत उल्लेखनीय हैं। इन्हीं से जुड़े हुए हास्यप्रधान गीत "ख्यालीगीत" के नाम से चलते हैं। जलमा पूजा के गीत सबसे भिन्न हैं। मालवा के ये समस्त गीत स्त्रियों के स्वभाव के सूचक एवं परंपरागत रागद्वेष को व्यक्त करनेवाली रचनाएँ हैं। बाँझपन के अभिशाप से मुक्ति की उत्कट अभिलाषा एवं संतानोत्पत्ति के लिये कठोर साधना, मान मनौती, टोने टोटके द्वारा इच्छित अभिलाषा पूरी करने की प्रवृत्ति, गर्भवती के मासिक लक्षणों का उल्लेख, प्रसव-पीड़ा का वर्णन तथा पुत्री की अपेक्षा पुत्र की कामना समस्त गीतों में उपलब्ध हैं।

कुलबऊ

कँवले ऊबी कुलबऊ जी, अई अई कंमर माब पीड़।
चिंता हमारी कुण करे जी, ससरा हमारा राज बिजयी।
सासू अरक भांडार, चिंता हमारी कुण करे जी।
जेठ हमारा चोधरी जी जेठाणी भोली नार[1]। चिंता हमारी०।

[1] जेठानी हमारी कामण गारी नार (पाठांतर)।

देवर हमारा लाड़ला जी, देराणी आगे[1] आई नार।
ननँद हमारी लाड़ली जी[2]।
हाजी नंदोई पराया पूत, चिंता हमारी कुण करे जी।
ओरा[3] माय की ओवरी, वी सूता[4] ननँद बई का बीर।
अँगूठा मोड़ जगाविया जी, जागो जागो ननँदल बई रा बीर।
खाली कर दी ओवरी जी, लटपट बाँधी पागड़ी जी।
झटपट हुया असवार, या लो सुंदर ओवरी जी।
जो तम जाओगा दीयड़ी[5] जी, होजी आव सातीड़ा में लाज।
जो तम जाओगा पूत, होजी घर में बधाई हाय।
चिंता हमारी कुण करे जी, पूत जो जणे दादाजी रो बंस बड़ायो।
चिंता गोरी की बई करे जी, नीरे जण्या तो पूत जण्या।
सगला[6] गोरी की चिंता करे जी।

(ख) विवाह गीत—सगाई के साथ ही मालवा में विवाह गीतों का आरंभ हो जाता है। इस अवसर पर 'साजन' गाए जाते हैं। अच्छे जीवन के सजीव चित्र एवं परिवार की समृद्धि इन गीतों में मुखर हुई है। गणेशवंदना किसी भी मांगलिक कार्य की संपन्नता के लिये आवश्यक है। मालवी में इस विषय के कई गीत हैं। इन गीतों में गणेश का हम वही स्वरूप पाते हैं जो राजस्थानी और पहाड़ी शैली के चित्रों में अंकित है। उनमें गणेश के साथ ऋद्धि सिद्धि भी अंकित की जाती हैं। वही रूप गणेश-गीतों में परंपरा से चला आ रहा है। शीतला माता दोनों पक्षों में पूजी जाती हैं। दो तीन गीत ही उसके संबंध में मिलते हैं। सीतला के भाई गुणाबीर का गीत इसमें संमिलित किया जा सकता है। दूल्हे और दूल्हन को शीतलापूजन के बाद हलदी चढ़ाई जाती है। पाँच लड्डू, जवारा, साल सूपड़ा, चौक, पाँच सुहागण, काल्या, 'झरभर' और 'आरती' नामक गीत हलदी चढ़ाने के बाद गाए जाते हैं। राजस्थान के प्राचीन ग्रंथों में 'बान बैठाना' नामक लोकाचार को हाथ का मलिया कहा गया है। इन्हीं के साथ 'हलदी' और 'तेलचढ़ाई' गाते हैं। हलदी में बंजारों की मोट तथा समृद्ध कृषिजीवन के चित्र हैं। वरपक्ष के 'सेवेरा' (सेहरा), 'घोड़ी' और 'बना' तथा वधूपक्ष के सुहाग कामणा चीरा तथा बनी उल्लेखनीय गीत हैं। चीरा और 'कामणा' भी कन्या के यहाँ खूब गाए जाते हैं। चीरा वस्तुतः बना गीतों के अंतर्गत है। 'कामण' का तांत्रिक महत्व है। इन्हें दूल्हे

[1] द्वारके समीप दीवार के सहारे। [2] ननँद हमारी आँबा बिजली (पाठांतर)। [3] कुट्टर।
[4] सो रहे हैं। [5] पुत्री। [6] सब।

के अंतरमन को दूल्हन के प्रति पूर्णरूपेण वशीभूत करने के उद्देश्य से स्त्रियाँ गाती हैं। संख्या में ये १०८ हैं। कामण गाते समय दुल्हन का काँपना तथा माता द्वारा उसे आश्वासन प्रदान करना सभी गीतों में वर्णित है। स्त्रियों ने 'कामण' को मंत्र की प्रतिष्ठा देनी चाही है। बीरा गीत मोहरे के मेले पर स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं। बहन द्वारा भाई का न्योतना, उसके आगमन में विलंब, उत्कट प्रतीक्षा के बाद उसका आना, अनेक प्रकार की भेंट लाना तथा अवसर पर पहुँचकर बहन के संमान की रक्षा करना, यही लघु कथावृत्त 'बीरा' में गुंफित है। चूनर का आग्रह 'बीरा' अथवा 'मोहरा' के गीतों की आधारभूत पंक्तियाँ हैं। 'केशरबाट' तथा 'गाड़ी' दो ऐसे गीत हैं, जो संपूर्ण मालवा में इस अवसर पर गाए जाते हैं। 'बीरा' की धुनें लगभग सभी स्थानों पर समान हैं। बारात चढ़ने के पूर्व अथवा कन्या के यहाँ बारात आने के पूर्व माँडवा (मंडप) छवाया जाता है। कुछ गीत औपचारिक रूप से माँडवा के पास बैठकर स्त्रियाँ गाती हैं। 'उकड़लीपूजा' के बाद 'सातंग बरद' की जाती है। यह लोकाचार ग्रहशांति की दृष्टि से दोनों पक्षों में होता है। बरद में तेरह मृत्तिकापात्र जल से भरकर मायमाता (कुलदेवी) के संमुख रखे जाते हैं। पारिवारिक विषय से संबंधित गीत इससे जुड़े हैं। बरनिकासी के समय 'घोड़ियाँ', 'स्नान का गीत', 'तेल चढ़ावा' और 'बना' वर के यहाँ गाए जाते हैं। बरात जब वधू के यहाँ पहुँचती है तो गीतों का स्वर बदल जाता है। हस्तमिलन के समय 'हाथीवाला' गाकर स्त्रियाँ विदा की करुणा में डूब जाती हैं।

मालवी के समस्त विवाहगीत ऐसे हैं जिनमें जातियों की दृष्टि से कोई विशेष अंतर लक्षित नहीं होता। संपूर्ण पठार पर एक ही तरह की धुनें और निश्चित गीत उपलब्ध हैं।

(१) बीरा भात—

बीरा रे, सबका पेखाँ तमने नोतिया,[२] असुरो[३] क्यों आया।
बीरा रे, के त्यहारी खेती में टोट[४] पड़ियो, के त्हारा सउकार नटिया।
बीरा रे, के त्हारी गाड़ी रो घुरो टूटियो, के त्हारा बलघो[५] भूखा।
बेन्या ओ, नी म्हारी खेती में टोटो पड़ियो, नी हारा सउकार नटिया।
बेन्या ओ, त्हारी भावज ने माथो नहायो,[६] छाँयले बेठ सुखाये।
बेन्या ओ, चार जणी[७] मिल चव्या टाल्या, पाँच जणी मिल गूथ्या।
जद नखराली ने बूपच्या[८] हेड्या, सब रंग सालू ओड्या।

[१] नीच। [२] आमंत्रित किया। [३] विलंब से। [४] नुकसान। [५] बल। [६] माँग सँवारी।
[७] वस्त्र। [८] डिब्बा।

जद नखराली ने डाबो खोल्या, सब रंग गेणो पेरयो।
जद नखराली ने डब्बी हेरी, लिलवट[1] टिलड़ी[2] लगाई।
जद नखराली छकड़े[3] बेठी, जद म्हने छकड़ा हाक्यो।

(२) माहेरा—

गाड़ी तो रड़की रेत में रे बीरा, उड़ रही गगना धूल।
चालो म्हारा घाहरी[4] उताला[5] रे, म्हारी बेन्या बई जोवे बाट।
घोहरी का चमक्या सींगड़ा रे, म्हारा भतीजा को झगल्यो झाग।
म्हारी भावज बई का चमक्या चढ़लोरे,
म्हारा बीरा जी की पचरंग पाग।
काका बाबा म्हारा अतघणा[6] रे, म्हारा गोयर[7] होता जाय।
माड़ी रो जायो म्हारा बीर एडलोरे, म्हारी बरद[8] उजालया जाय।

(३) बिदा—

घड़ी एक घोड़िलो थाबेज[9] रे सायर बनड़ा,
माता बई से मिलवा दोरे हटीला बनड़ा।
माता बई से मिली करी कईं करो हो, सायर बनड़ी।
दोनी पलखड़े पावँ धरे चलो आपणा,
कोठी का कने पड्या बईं ढेलड़ा[10]।
बईं तो चालया परदेस,
पाछे फरी ने बई जी हो देखजो,
दादा जी ऊबा मंडप हेट[11],
संपत होय तो दादा जी लाव जो,
नी तो रीजो तमारा देस,
संपत थोड़ी ने बईं रिण[12] घणो[13],
बईं ने लावाँ बड़ी बग[14]।

(४) प्रेमगीत—

(क) साजन—

साजन समदरिया का ओले पेले चार, साजन खेले सोवटा[15]।
साजन कुण हान्या कुण जीत्या, हान्या हान्या लाड़ी का बाप।

१ लिलार, कपाल। २ टिकिया। ३ छोटी बैलगाड़ी। ४ बैल। ५ जल्दी। ६ बहुत।
७ ग्रामसीमा। ८ मा। ९ ठहराना। १० खिलौना। ११ निकट। १२ ऋण।
१३ बहुत। १४ शीघ्र। १५ गेंद।

(अमुक जी) जीत्या, घर में से बऊ लाड़ी भूँकर बोल्या—
हारता हारता डाबा माय का गेंणा म्हारा मारू जी,
म्हारी राजल बेटी क्यों हान्या।
हारता हारता चड़वारी तेजी म्हारा मारू जी,
म्हारी राजल बेटी क्यों हान्या।
हारता हारता गुवाड़ा[1] माय की लछमी म्हारा मारू जी,
म्हारी प्यारी बेटी०।
हारता हारता चार जना में बाली म्हारा मारू जी,
म्हारी राजल बेटी०।

(ख) आफू—

सासू ने घोलियो केसर लीपणा ए मारूणी,
नंनदल न घोली घर में राड़[2] ई दन आफू रा।
क्यों तो खई ए आभा बीजली,
कई आफू[3] खाती तो म्हने केवती ए मारूणी।
त्हारी आफू देता उतार। ई दन०।
कई देराणया जेठाणया मेरे बेठती, कई करती सार सम्हार।
हूँ बेठ्यो त्हारा पावड़े[4], कई तू सूती खूँटी तान। ई दन०।
सासू ने घोलियो केसर लीपणा, नँनदल ने घोली घर में राड़।

(ग) गूजरी—

ओ गूजरण, तमारे बुलावे देवरो, ओ गूजरण,
म्हारो ओ मंदर देखण अँखियो त गरब गहली गूजरी।
ओ देव जी, तमारा मंदर को कई देखणो, ओ देवजी,
जेसी म्हारी गायाँ की या छाण[5] ओ गढ़ मथरा की गूजरी।
ओ गूजरण तमारे बुलावे देवरो,
ओ गूजरण म्हारो ओ हात्तिया[6] देखण आवियो। तू०।
ओ देवजी, तमारा हत्ती का कउँ देखणा,
ओ देवजी जेसो म्हारी भूरीया भैंस। ओ गड०।
ओ गूजरण तमारे बुलावे देवरो,
ओ गूजरण म्हारा यों घोड़िला[7] देखन आवियो। आ०।

१ गोशाला। २ लड़ाई। ३ अफीम। ४ पावँ के पास। ५ जहाँ गाएँ बाँधी जाती है।
६ हाथी। ७ घोड़े।

ओ देवजी, तमारा घोड़िला को कईं देखणा,
ओ देवजी जेसी म्हारी दूभड़ गाय हो । आ० ।
ओ गूजरण तमारे बुलावे देवरो,
ओ गूजरण म्हारा यों पूतर[1] देखन आवियो । तू० ।
ओ देवजी तमारा पूतर का कईं देखणा,
ओ देवजी जेसा म्हारा गाया रा गुयाल । आ० ।
ओ गूजरण केने[2] दई[3] धन माया,
ओ गूजरण केने दया बालू पूत हो । तू गरब० ।
ओ देवजी धरम करम की म्हारी धनमाया,
ओ देवजी ने दया बालू पूत । आ गड़० ।

(घ) दूहा (दोहे)—

बाड़ी[4] सूखे बाथलो, कूँए सूखे बचनार ।
गोरी सूखे बाप क्याँ, हीन पुरुस की नार ।
घर चंपा घर मोगरो, पर घर सींचन जाय ।
घर गोरी घर सायबा, पर घर पोढन जाय ।
छ छल्ला छ मूदड़ी, छल्ला भरी परात ।
एक छल्ला[5] का वास्ते, म्हने छाड्या मायन बाप ।
चाँदो[6] म्हारा सूसरा, तारा देवर जेठ ।
सूरज म्हारा सायबा, चमके सारा देस ।

(५) बालिका गीत—

'साँझी' कुवाँरी बालिकाओं के गीत हैं। आश्विन मास की प्रतिपदा से कुवाँरी कन्याएँ इनका गाना आरंभ करती हैं। १६ दिन तक दीवार पर भिन्न भिन्न आकृतियाँ बनाकर उनके संमुख गीत गाए जाते हैं। बुंदेलखंड के "मामुलिया" एवं महाराष्ट्र की "गुलबई" इसी तरह की है। साँझी के चार पक्ष हैं—(१) आनुष्ठानिक, (२) आकृतिक, (३) ऐतिह्य, (४) गीतात्मक। साँझी के आदर्श चरित्रगीतों में उसके रूपगुण की चर्चा निखरी है। बालबुद्धि के अनुरूप गीतों का गठन और विस्तार है। इनमें छोटे छोटे कथासूत्र, लघु चरण, द्रुत गति तथा संवादात्मकता देखी जाती है।

'घड़ल्या' नवरात्र में गाए जाते हैं। इसी तरह 'अबल्या छबल्या' (क्वार महीना), 'हरया गोद्या' (सावन), फुलपाती (चैत्र) आदि को बालिकाएँ गाती हैं।

[1] पुत्र। [2] किसने। [3] दिया। [4] बगीची। [5] प्रियतम। [6] चाँद।

बालकों के अनेक खेल गीतों के अतिरिक्त 'छलो', 'ढेडक माता', 'आकुल्या माकुल्या' उल्लेखनीय हैं। 'हलो' मालवी लोरियों को कहते हैं। अनेक 'हलो' गीत मालवी में उपलब्ध हैं।

(क) साँझी—

(केल)

म्हारा पिछवाड़े केल उगी, केल उगी, हूँ जापू पपइयो बोल्यो।
म्हारा बीराजी चढ़वा लाग्या, चढ़जो अच्छी सी डाली।
म्हारा देवरिया चढ़वा लाग्यो, चढ़जो टूटी सी डाली।
म्हारा बीराजी जीमण बेठ्यो, दऊँ रे ताजा सा भोजन।
म्हारा देवरिया जीमण बेठ्यो, दऊँ रे सूखा सा टुकड़ा।
म्हारा बीराजी घरे छोरो[1] हुया, लऊँ रे झगला ने टोपी।
म्हारा देवरिया घरे छोरी[2] हुई, दऊँ रे सिल्ला ये दचकी[3]।

(ख) अबल्या छबल्या—

अबल्या छबल्या दोय म्हारा बीर, दोय सँदेसो मोकल्यो जी।
एक ने तोड़ी बड़ की डाला, दूजा ने तोड़ी कूपल[4] जी।
तोड़त तोड़त पड़ गई साँझ, आज बन्या घर पामणा जी।
खोड़ी[5] फाड़ू राँधू भात, बीरा जिमाडू आपणा जी।

(६) विविध गीत—

(क) हास्यगीत—

हिरणी

म्हारा आँगण ऊबो तुमड़ो, तोड़ बगारी भाजी जी।
अँडो तोड्यो बंडो तोड्यो, तो नी सीजी[6] भाजी जी।
आखा गाम[7] का छाणा[8] लाया, तो नी सीजी भाजी जी।
छोटा देवर की टाँग तोड़ी बड़ा जेठ की मूछा कतरी।
तो जई[9] सीजी भाजी जी।
ससरो डाकी जीमण बेठो, नई परेंडी[10] पाणी जी।
आगे तो म्हारी चले जेठानी, पाछे हूँ देराणी जी।

[1] लड़का। [2] लड़की। [3] पटक। [4] कोपल। [5] गुड़ की मेली। [6] पकी। [7] संपूर्ण ग्राम। [8] कंडा। [9] जाकर। [10] घड़ौंची।

पग रपट्यो म्हारी आयल टूटी, हूँ जाणू म्हारी कंमर जी।
कंमर तो म्हारी राम बचाई, फूटी कारी गागर जी।

(ख) निरगुण कथी—

लागी होय सो जाणजो म्हारा भाई, लागी होव सो जाणजो।
मारग माय एक घायल घूमे, घाव नजर नहीं आवे।
ज्ञान कंठा पेरी ने बैठा, हिरदा में काल जमाई।
अंका ने लागी बंका ने लागी, लागी सजन कसाई।
बलख बुखारा ने ऐसी लागी, छोड़ चले बादसाही।
ध्रुव ने लागी परह्लाद ने लागी, लागी मीराबाई।
गोपीचंद भरथरी ने लागी, तन पे भभूत रमायी।
कहे मछंदर सुणो हो गोरख, सुन्न में धजा परायी।
लागी होय सो जाणजा म्हारा भाई।

(ग) पारसी (पहेलियाँ)—

मोती बेराना[1] चंदन चोक में आ मारूजी म्हने से सोरया[2] नी जाय।
(तारे)

काली डाँडे[3] तोकाय[4] कोनी, बोड्यो[5] बेलघो[6] हकाय[7] कोनी।
(साँप, शेर)

(मूली)
घोली घोड़ी घरभर पूँछ।
कालो खेत कड़ब[8] को भारो, खैंचूँ डोरी चलके तारो। (दियासलाई)
चार कोट चौबीस तगारा, जीपे बैठा दो बनजारा।
(चार दिशाएँ, २४ घंटे, चंद्रमा और सूर्य)
(दीपक और ज्योति)
तालाब भरया था, हिरण खड्या था।
गाँव में पीयर गाँव में सासरा, रोती आये ने रोती जाय।
(चरसा, मोट)
(मसूर)
ऊपर तासा, नीचे तासा, बीच में लाल तमासा।

(घ) माच (ओपेरा)—

माच (मंच) मालवा का गीतनाट्य है। इसकी मंचरचना का अपना विशेष ढंग है। माच का क्रमागत इतिहास पिछली एक शताब्दी से आरंभ

[1] बिखरे हैं। [2] एकत्र करना। [3] लकड़ी। [4] उठाई नहीं जाती। [5] बिना सींग का। [6] बल। [7] हाँकना। [8] मक्के की सँठियाँ।

होता है। कहते हैं, इसके पूर्व मालवा में 'ढारा ढारी' के खेल प्रचलित थे। राजस्थानी 'ख्याल' से माच अनेक अंशों में भिन्न हैं। रास ने परोक्ष रूप से माच को प्रभावित किया है। प्रचलित माचों के प्रवर्तक बालमुकुंद गुरु और उन्हीं के अखाड़े से प्रभावित कालूराम उस्ताद, राधाकिसन गुरु, मेरू गुरु आदि के नए अखाड़े आगे चल पड़े। उज्जयिनी माच का केंद्र सदा से बनी रही। कथावस्तु की दृष्टि से पौराणिक, प्रेमाख्यानक और लोकप्रचलित कथाएँ माच में ली गई हैं। ढोलक की विशेष धुन के साथ नाटक के बोल (संवाद) गमकते हैं। चरित्रचित्रण के लिये विस्तार का अभाव एवं स्वगतकथन की प्रवृत्ति माच में पाई जाती है। दृश्ययोजना दर्शक की कल्पना पर निर्भर है। सभासंवाद प्रायः पद्यबद्ध होते हैं। माच की विशेष शैली ही उसके तंत्र का आधार है। रंगतों के रूप में धुनें बदलती हैं। टेक के अतिरिक्त प्रायः दोहों का प्रयोग किया जाता है। लोकप्रचलित गीतों का भी यथास्थान उपयोग होता है। बोल की प्रारंभिक पंक्तियाँ 'गेर' और अंतरा 'उड़ापा' कहलाता है। माच का अपना विशिष्ट संगीत संपूर्ण मालवा का प्रिय विषय है।

४. मुद्रित साहित्य

मालवी के मुद्रित मिश्रित लोकसाहित्य का क्रम पन्नालाल 'नायब' लिखित 'मास्टर साब की अनोखी छटा' नामक प्रहसन से आरंभ होता है। लगभग चालीस वर्ष पूर्व इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ था। यह पुस्तक गीतिनाट्य के रूप में है। संवत् १९८२ के पूर्व मालवी के लोकनाट्य माच की दस पुस्तकें छपकर बाजार में बिकने लगी थीं। उनके कुछ वर्ष बाद कालूराम उस्ताद द्वारा संकलित माच की छह पुस्तकें और निकलीं। इस प्रकार मालवी के मुद्रित साहित्य का क्रम गद्य और पद्य दोनों से आरंभ होता है।

सन् १९४७ में नारायण विष्णु जोशी लिखित "जागीरदार" नामक माच का प्रकाशन हिंदी ज्ञान मंदिर (बंबई) से हुआ था। टकसाली मालवी की यह रचना अपने ढंग की है जिसका विषय तत्कालीन ग्रामीण समस्याओं से संबंधित है। हास्य विषयक एक उपन्यास 'वाह रे पट्ठा भारी करी' उज्जयिनी के एक पंडे की कहानी है जिसे सौभाग्य से विश्वभ्रमण का अवसर मिल जाता है। श्रीनिवास जोशी ने इसे आरंभ में क्रमशः 'वीणा' (मासिक) में प्रकाशित करवाया था। श्री जोशी की दो दर्जन मालवी कहानियाँ भी मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं। बाबूलाल भाटिया, अनूप, सतीश श्रोत्रिय, रमेश बख्शी और डा० चिंतामणि उपाध्याय की कतिपय मालवी कहानियाँ और प्रहसन उल्लेखनीय हैं। 'उमा काकी' नामक रमेश बख्शी लिखित मालवी रूपक इस क्रम में अत्याधुनिक रचना है।

पद्य की दृष्टि से मालवी और मीमाड़ी का अधुनातन साहित्य पर्याप्त समृद्ध

है। सुखराम लिखित "ललितादेवी ना ब्याव" तथा आगर के नानूराम एवं शंकरलाल की लेखनियों से आरंभ होकर नंदकिशोर की हास्यरस की पुस्तकों "पंडत पचीसी" एवं "खटमल बचीसी" से होते हुए "युगल निनाद" (युगलकिशोर द्विवेदी), "केशरिया फाग" (गिरवरसिंह भँवर), "पगडंडी" (नरेंद्रसिंह तोमर) एवं बालाराम पटवारी के "किरसाणी कीचड़" तक का पद्य सहज लेखन की प्रवृत्ति का द्योतक है। उक्त सभी प्रकाशन सन् १९४० से १९४७ के बीच में हुए।

पद्य की नवीन प्रवृत्तियों का उदय आनंदराव दुबे से होता है। उनकी "रामाजी रईग्या ने रेल जाती री" एवं "बरसात अई गी रे" रचनाओं ने नए कवियों को बहुत प्रभावित किया। मदनमोहन व्यास, हरीश निगम, सुल्तान मामा, भँवर आदि इन्हीं की परंपरा के कवियों ने अनेक कविताएँ लिखकर स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाईं। बालकवि बेरागी की सुघड़ रचनाओं का एक और दौर सन् १९५२ के बाद आरंभ हुआ। प्रकाशित पुस्तकों में सूर्यनारायण व्यास द्वारा अनूदित मालवी "मेघदूत", प्रतिभा निकेतन द्वारा प्रकाशित मालवी कविताएँ तथा "नीमाड़ी कवितासंग्रह" उल्लेखनीय हैं।

मुद्रित साहित्य की दृष्टि से मालवी में संतसाहित्य की कुछ प्रकाशित पुस्तकें निम्नलिखित हैं—१. गुप्तानंद महाराज कृत "चौदह रत्न", "गुप्तसागर" एवं "गुप्त-ज्ञान-गुटका" (जिनकी तृतीय आवृत्ति संवत् १९३३ में हुई), २. केशवानंद रचित "तत्वज्ञान गुटका" (संवत् १९८२), ३. नित्यानंद कृत "नित्यानंद विलास" (तृतीय आवृत्ति संवत् १९९४) तथा लोकप्रचलित पदों का संकलन "शीलनाथ शब्दामृत" (सन् १९०१)।

राज्य के पुनर्गठन के पूर्व "मार्तंड" तथा "जयाजी प्रताप" (अब 'मध्यभारत संदेश') नामक सोप्ताहिकों में मालवी की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं। "वीणा" (मासिक) और "विक्रम" (मासिक) के अतिरिक्त स्थानीय दैनिक पत्रों में निरंतर मालवी का साहित्य छपा करता है। सन् १९५५ के आरंभ में उज्जैन से मालवी का एक स्वतंत्र साप्ताहिक "महामालव" आरंभ हुआ था, जो कुछ समय बाद बंद हो गया।

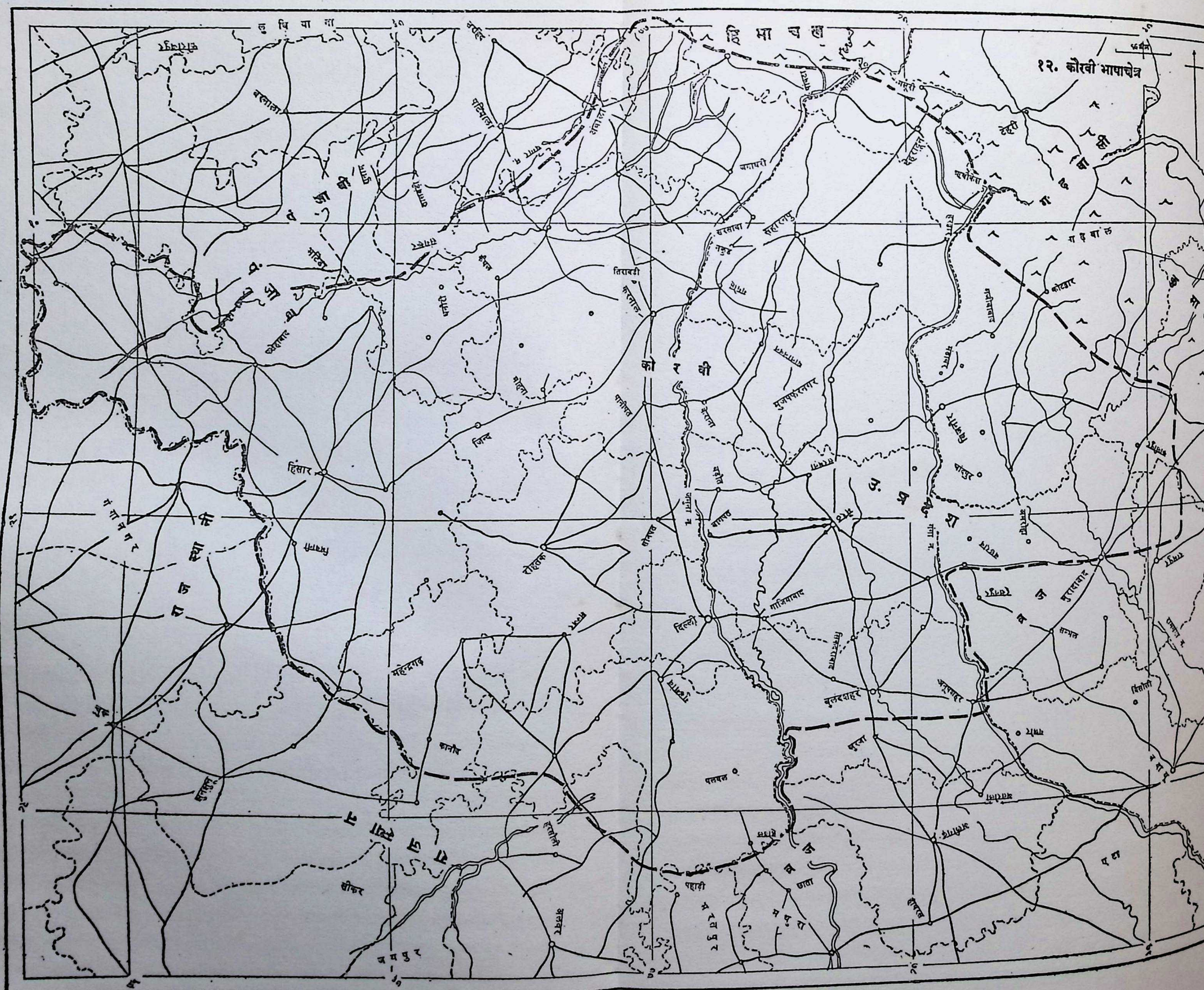
मालवी का मुद्रित साहित्य गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक है। लोकगीतों का एक संग्रह 'मालवी लोकगीत' (१९४२) तथा समय समय के लेखों में उद्धृत गीत हैं। आधुनिक मालवी का गद्य और पद्य धीरे धीरे आगे बढ़ रहा है। खेद है, शुद्ध मालवी लोकसाहित्य के भंगुर कंठों में रक्षित कृतियों का भांडार अभी पर्याप्त मात्रा में मुद्रण में नहीं आया है।

पंचम खंड

कौरवी

१२. कौरवी लोकसाहित्य

श्री कृष्णचंद्र शर्मा 'चंद्र'


१२. कौरवी भाषाक्षेत्र
हिमाचल
कोरवी
मसूरी
देहरादून
जगाधरी
सहारनपुर
सरसावा
तिरावड़ी
करनाल
पानीपत
मुजफ्फरनगर
कोटद्वार
गढ़वाल
जिन्द
हिसार
रोहतक
सोनपत
बागपत
गाजियाबाद
दिल्ली
बुलंदशहर
मुरादाबाद
सम्भल
महेन्द्रगढ़
पलवल
पहाड़ी
छाता
सीकर

(१२) कौरवी लोकसाहित्य

१. कौरवी भाषा

(१) सीमा—कौरवी भाषा उत्तर में सिरमौरी (गढ़वाली), पूर्व में पंचाली (रुहेली), दक्षिण में कनौजी तथा व्रज तथा पश्चिम में मारवाड़ी और पंजाबी भाषाओं से घिरी है। इसके पश्चिम में अंबाला कमिश्नरी की घग्गर नदी तथा पटियाला और फीरोजपुर जिले हैं। उत्तर में हिमालय के पहाड़ और सिरमौर तथा गढ़वाल जिले, पूर्व में रामपुर और मुरादाबाद जिलों के अवशिष्ट भाग तथा बदाऊँ जिला, दक्षिण में बुलंदशहर का अवशिष्ट भाग तथा गुड़गावँ और अलवर के कौरवी भाषी अंश हैं।

यह प्रायः संपूर्ण अंबाला और मेरठ कमिश्नरियों की भाषा है। गंगा और जमुना के बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर जिलों का संपूर्ण भाग एवं गंगा के पूर्व बिजनौर और जमुना से पश्चिम करनाल, रोहतक, हिसार, और दिल्ली कौरवी भाषी हैं। उत्तर में देहरादून और अंबाला, पूर्व में मुरादाबाद और रामपुर, दक्षिण में बुलंदशहर और गुड़गावँ के बहुसंख्यक लोग यही भाषा बोलते हैं। मेरठ जिले की तहसील बागबत को टकसाली कौरवी भाषा का क्षेत्र माना जाता है जो कौरवी क्षेत्र के प्रायः बीच में पड़ता है।

(२) जनसंख्या—उत्तर प्रदेश और पंजाब में बिखरे हुए एक दर्जन से अधिक जिलों में कौरवी बोलनेवाले लोगों की संख्या एक करोड़ से अधिक है। इसकी चारों ओर की सीमाएँ निश्चित न होने से ठीक ठीक जनसंख्या बतलाना मुश्किल है। जिलों के हिसाब से वह इस प्रकार है (१६५१):

क्षेत्र	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या
१. देहरादून (सदर तहसील)	१,१८६	३,०२,२५३
२. सहारनपुर (जिला)	२,१४७	१३,५३,६३६
३. मुजफ्फरनगर (जिला)	१,६३४	१२,२१,७६८
४. मेरठ (जिला)	२,३००	२२,८१,२१७
५. बुलंदशहर	१,६१२	
अनूपशहर (जिला)		३,८६,७४६
बुलंदशहर (जिला)		४,५५,७०१
सिकंदराबाद (जिला)		३,१७,२३८

६. बिजनौर (जिला)	१,८३५	६,८४,१६६
७. मुरादाबाद	२,३१६	
अमरोहा (तहसील)		२,६३,१६८
उत्तरप्रदेश में योग	१३,३३३	७६,६५,७५१
८. अंबाला (जिला) खरड़ तहसील को छोड़कर	१,६६०	६,४३,७३४
९. करनाल (जिला)	३,०६७	१०,७६,३७६
१०. रोहतक (जिला)	२,३३१	११,२२,०४६
११. हिसार (जिला)	५,३,५७	१०,४५,६४५
१२. जिंद (जिला)	४७१	१,६६,६४४
१३. गुड़गाँव (जिला)	२,३४८	६,६७,६६४
१४. दिल्ली (प्रदेश)	५७८	१७,४४,०७२
१५. पटियाला (जिला)	१,३२१	५,२४,२६६
१६. फिरोजपुर (जिला)	४,०८५	१३,२६,५२०
पंजाब में योग	२१,५४८	८६,२२,६७३
पूर्णयोग	३४,८८१	१,६६,१८,७२४

सभी लोकसाहित्यों की तरह कौरवी लोकसाहित्य भी बहुत समृद्ध है तथा गद्य, पद्य और मिश्रित तीनों में मिलता है। स्वाँग के रूप में इनमें नाटक भी मौजूद हैं, कितने ही लोकगीत नृत्यात्मक हैं।

२. गद्य

गद्य कहानी और मुहावरे के रूप में मिलता है जो रोचकता और उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है।

(१) कहानी—नानी की कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। नानी (अनुभवी व्यक्ति) के अतिरिक्त कहानी कहने की क्षमता और किसमें हो सकती है ? किंतु जैसा यथार्थ और आदर्श के समन्वय का प्रयत्न साहित्यिक कहानियों में देखा जाता है वैसा लोककहानियों में नहीं। उनमें मानव की सहज जिज्ञासा (कौतूहल) को उभारकर कहानी को रोचक और प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास अधिक होता है। अधिकांश कहानियाँ (केवल कुछ घटनाओं के अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों को छोड़कर) जनजीवन से संबंध नहीं रखतीं। वे प्रायः दिवंगत आत्माओं, देवताओं, विलक्षण पुरुषों या राजारानी और राजकुमारों से संबंधित होती हैं। इस कारण उनमें असाधारण एवं असंभव घटनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। लगभग ९५ प्रतिशत कहानियाँ अवश्य ही 'इक राजा ता' वाक्य से आरंभ होती हैं। आगे चलकर राजा

या रानी के किसी शाप, शर्त या कोई कठिन कार्य कर दिखाने, उसमें दैवी सहायता प्राप्त होने अथवा किसी साधु संत, जादूगर या मानव की तरह सुनने समझने और बोलचालवाले किसी वृद्ध, पशु अथवा पक्षी की सहायता मिलने से कार्यपूर्ति का वर्णन होता है। स्त्रियों में इस प्रकार की अथवा व्रतोत्सव संबंधी धार्मिक कहानियाँ कही सुनी जाती हैं। व्रतोत्सव संबंधी कथाओं में विशेष रूप से निषेधों की चर्चा होती है जिनसे व्यक्ति और समाज के चरित्र की पावनता सुरक्षित रहती अथवा जिनका पालन करने, न करने पर व्यक्तिगत हानि लाभ की आशंका होती है। ऐसी कहानियों का मूल आदिम मानव के अंधविश्वासों में मिल सकता है। कहानी के इस दूसरे प्रकार में पहले की अपेक्षा कल्पनातत्व की स्पष्ट कमी है। कहानियाँ स्त्रियों में बड़ी आदरभावना के साथ कही सुनी जाती हैं। सभी इनके कहने की अधिकारिणी भी नहीं होतीं, क्योंकि कहानी का अंश भुलाया या आगे पीछे नहीं सुनाया जा सकता। ऐसी कहानियाँ कहने सुननेवाले दोनों को ही अधिकारी, निष्ठावान् और तनमन से शुद्धपवित्र होना चाहिए। भाई दूज, करवा चौथ, अहोई आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। कुछ नमूने लीजिए :

गौरा का ब्याह[1]

एक राज्जा की एक बेट्टी ती, नाम ता उसका गौरा। नाई बांमण सब देस देस में होय आए, कोई बर ना मिलै। बाप ने कया—'बेट्टी, घर ढूँढूँ तो बर नईं हात आत्ता, बर ढुँढूँ तो घर नईं हात आत्ता, इससे तो आच्छा ता, तू होत्तेई मर जात्ती।'

बेट्टी ने कया—'मेरे ब्या का संदेसा ना करो तुम। मैं तो अपणा बर आपी ढुंढूँगी।'

बेट्टी ने नाई बांमण कू बुला के कै दिया, अक—'मेरा बर ढुंडि आओ, उसकू देख के घिणा मत जइयो, उसी से मेरा रिस्ता कर अइयो।'

नाई बांमण गए र उनने बर कू कया अक—'तुम्हारी सगाई आवै है।'

बर सिब जी माराज ते। उनने कया अक—'मेरी सगाई कौण करे?'

'राज्जा की बेट्टी करे।'

लोग बाग्गों ने सिब जी माराज से कया, अक—'इने खाणा तो खुलाओ।'

[1] ऐसी कहानियों में बुलाकी नाई और पांडो बुर्ज की 'बारह मंजल' कहानी है, जिसमें बारह कथाएँ संश्लिष्ट क्रमागत रूप में कही जाती हैं। इनका विस्तार बहुत है और कहने का ढंग कुछ ऐसा है कि उससे वह और भी बढ़ जाता है। इन कहानियों में चातुरी, प्रेम और वीरता के वर्णन अधिक होते हैं।

उनने कया—'हम पै क्या रक्खा खाणे कू ?'

फेर सिब जी ने भुड्डों के रेत[1] रख दिए पतलों पै, अर गंगाजल उनके धोरै रहैताई, उनने गंगाजल बी गेर दिया। रेत का तौ बूरा हो गया अर गंगाजल का घी बण गया।

नाई बांमण ने खा पी लिया।

लोग बाग्गों ने कया अक—'इने दछणा भी चइए।'

सिब जी ने कया—'हम पै क्या रक्खा है ?' फेर उनने कंकड़ों से दोन्नों की झोल्ली भर दी—'लो दछणा भई।'

दोन्नों चल पड़े। बांमण ने झोल्ली से लिकालके कंकड बखर दिए, नाई ने रख लिए। रस्ते में जाके देक्खा, तो उनकी असरफी मोअर बण गई।

बांमण ने कया—'भई, हमें तो खबर ती नई के मोअर असरफी हो जागगी, हमने तो गेर दी।'

दोन्नों ने जाक्के राजा की बेट्टी से कया—'हम सिक्का[1] चढ़ाई आए, ब्या बी ठराइ आए।'

बरात कया चली, बस अपणे सिब जी नादिया बेल पै चढ़के चल दिए। लोग बाग बरात आवेगी, समझ के जाजम ओजम बिछा रए ते। सिब्र जी आयके बेठ गए। लोग बाग्गों ने कया—'याँ कआँ बैट्ठो हो लेके नाँदिया बेल कू, याँ तो राजा की बेट्टी की बरात आय रई हैं।

सिब जी ने कया—'हमीं घराती, हमीं बराती, हमीं गौरा जी के बर।'

लोग बाग्गों ने राजा पै संदेसा भेजा—'याँ तो सिब जी माराज बैट्ठे हैं, बाज्ज गाज्ज कुछ नई है।'

राजा ने कया—'गौरा बेट्टी, तू होतेईस मर जाची तो अच्छा। तन्ने मेरी बड़ी हँसाई करी।'

लौंडिया ने सिब जी पे संदेसा भेजा अक—'जैसे अंतरग्यानी हो, वैसेई हो जाओ। बाप्पू की हँसाई हो रई है मेरे।'

सिब जी ने एक बीन बजाई, घोड़े, टमटम, बग्गी सब आय गए। दूसरी बीन बजाई, बस अंग्रेजी बाज्जा बी आ गया।

राजा ने नाई कू भेजा अक बरात जिमाणे कू बुलाय लाओ। उन्ने जाक्के सिब्र जी कू कया।

[1] तिलक।

सिब जी ने कया—'म्हारे दो आदमी कू जिमाई लाओ, जब मेरी बरात जायगी। अर उन्ने सुक, सिनिच्चर दोन्नों को भेज दिया। उनोंने खुलाना करा। टोकरे भर भरके दिया, जब बी वे भुक्केई रए। राजा ने कया—'इने कोट्ठे में बाड दो, कआँ तक खुलाओगे टोकरों से।'

सुक सिनिच्चर सवा सवा हाथ धरती बी चाट गए, अर कोट्ठे में कुछ बी न छोड्डा। फेर राजा आया गौरा पै—'बेट्टी, मैं क्या खुलाऊँ इने, ये तो सब चाट गए।'

बेट्टी ने संदेसा भेजा सिब जी पै—'जी, क्यों मेरी हँसाई करो हो, जैसे अंतरग्यानी हो, वैसे क्यूँ नई होते ?'

सिब जी ने राख की चुटकी भरके पुड़लिया बाँधके धर दी भंडार में।
भंडार वैसाई भर गया—वो तो अपणे लच्छण दिखावै ते।
सब बरात जीम लिया, अर भर भर थाल पड़ोसनों कू बाँटि आए।
गौरा का ब्या हो गया। सिब जी माराज ले चले गौरा कू।

सिब जी माराज ने कया—'ह्याँ मेरी मावसी है, मैं तो मावसी से मिलिकै जाऊँगा।'

वो अपनी मावसी पै गए, गौरा कू बी ले गए सात में। वाँ जाक्के ठेरे।

मावसी की बऊ ताग्गा[1] खोल रई ती—आठ सिस्सा, आठ कंगी, आठ कटोरी, आठ सुरमेदानी, आठ सलाई, आठ चूड़ियाँ के जोड़े, आठ अंगी[2], आठ पूरी—सब चीज आट्ठे आठ ती।

बऊ ने गौरा से कया—'बिब्बी जी, तुम बी सिब जी माराज से कैके करवा लो, तुम बी ये सब चीज मँगा लो, बौत महात्तम है इनका।'

गौरा ने जाक्के कया सिब जी माराज पै—'हम बी करेंगे यो उदाप्पण[3]।'

सिब जी ने क्या—'हम पै क्या हैं ? कोट्ठे के बिचाण में बड़के देक्खो, जो कुछ मिल जाय तो कर लो तुम बी।'

बड़के देक्खें, तो आठै आठ सब चीज रक्खी हैं सँजोई। वो तो सिब जी मराज ते, सब चीज के देनेवाले ते। उनने सब चीज पैदा कर दी।

गौरा ने बी, जैसी मावसी की बऊ कर रई ती, वैसी कर दिया उदाप्पण।
फेर गौरा सस्सु के गई। लै गए सिब जी महाराज।

सिब जी माराज की बहण आई आरती करने। उसका सोने का थाल मट्टी

[1] पूजा का सामान। [2] अंगिया। [3] उद्यापन।

का हो गया, अर उलटा बी हो गया। नणद ने कया—'यो तो बड़ी कुलच्छणी आई बऊ, जो सोने का थाल मट्टी का हो गया।'

सिब जी ने क्या—'सुलच्छणी जब मुझे, कुलच्छणी जब मुझे' अर वो कलास परबत पै गौरा कु लेके चढ़ गए।

(२) मुहावरे—साहित्यिकता की दृष्टि से कौरवी के मुहावरे और लोकोक्तियाँ अत्यंत सारगर्भित हैं। इनका चयन कर हम हिंदी को अधिक शक्तिशाली बना सकते हैं। इस प्रदेश की बोली अभिधा की अपेक्षा लक्षणा व्यंजना से अधिक संपन्न है और प्रायः लोग गूढ़ार्थ भाषा का उपयोग करते हैं। एक बार किसी ने प्रश्न किया :

'ताऊ हो धरिसटा का छोरा, सुण्या ला, टांग टुट्टगी, इब कैस्से ?'

उत्तर मिला :

'हाँ, आराम आग्या उसणै, पर सौरा इबी खाँड सी मळला चलै।'

लँगड़ेपन को बतलाने के लिये 'खाँड सी मलना' से अधिक सुंदर शब्दचित्र क्या दिया जा सकता है। 'खाँड सी मलता चले' द्वारा अभिभाषक संबंधित व्यक्ति के रोग का ही वर्णन नहीं करता, अपितु उसका जीता जागता चित्र उपस्थित कर देता है। कौरवी की शक्ति का परिचय देनेवाले मुहावरों में से कुछ नीचे उद्धृत किए जाते हैं :

किठूर किठूर देखणा।
गदबद मारणा।
टाँग तराज्जू होणा।
पा लिकड़ना।
सियौ सै गाँडे खाणा।
तग्गा तोड करणा।
हुस्यार तो घणी, पर राँड कैस्से होग्यी।

कौरवी पौरुषयुक्त लोगों की बोली है, जिनका व्यवसाय साधारणतया कृषि है। जीवन के सब सुख, सुविधा तथा स्वास्थ्यप्राप्त ये लोग बड़े मसखरे और प्रत्युत्पन्नमति देखे जाते हैं। इनकी बोली में हासव्यंग तो मानो पुंजीभूत हो गए हैं। एक बार तहसील के बावली ग्राम के सिमाने पर कोई बड़ी बड़ी मूँछोंवाला प्रौढ़ व्यक्ति छोटे से मरियल टट्टू पर चला जा रहा था। इतने में सिर पर न्यार (पशुओं के चारे) का गट्ठर धरे दो मुग्धाएँ खेत से निकलीं। आगेवाली ने अपनी सखी से कहा :

'ए देखिए री, यो टट्टू पे मूँछ कौण लाद्दे जाहै ?'

'टट्टू पर मूँछ लादना'—ऐसी अभिव्यक्ति है जिससे कोई भी तुरंत मूँछों के आकार, विस्तार और परिमाण का सहज अनुमान कर सकता है। यह लोग अपने अनूठे प्रयोगों द्वारा शब्दों को नूतन अर्थ प्रदान करते हैं। अब से लगभग पाँच वर्ष पहले की घटना है। एक बार लेखक का ज्येष्ठ पुत्र मेरठ जिला निवासी अपने किसी सहपाठी के गावँ गया। दोनों युवक ग्राम की सीमा में प्रवेश कर रहे थे। उसी समय खेत में बैठे काम करते किसी का स्वर कान में पड़ा—"अरे बच्चू दिक्खै, अर यो संग में कोण सै—तण या ठेट्टर से का मूँ मेरी ओर फेरिए।"

अर्थ और प्रयोग सहित कतिपय मुहावरे नीचे दिए जा रहे हैं :

मुहावरे	अर्थ	प्रयोग
जुणसा देगा उसकाए खेल्लेगा।	जो खर्चेगा उसी को आनंद होगा।	जाते हुए किसी व्यक्ति से कई लोग बोले—"भई, म्हारे बालक ने खिलोंणा लाइए।" उसने उत्तर दिया—"बात यों है, जुणसा देगा उसकाए खेल्लेगा।"
आबरू का धेल्ला होणा।	इज्जत घटना।	लौंडे के ब्या में बी तनै रपय्या ना खर्च करे तो देख लीज्जो, आबरू का धेल्ला हो जागा।
लट्टू घूमड़।	अपनी ही बात चलना।	मार दी बाजी बस, इब तो पंचात में म्हारा ई लट्टू घूमेगा।
रेख में मेख मारणा।	विषयासक्त होना।	इस दुनिया के मजे उड़ाले, मार रेख में मेख।
बुद्धी के बिणा ऊँट उघाड़े फिरैं सै।	अपनी कमअकली से दुःख पाकर औरों को दोष देना।	गाँ में बेमारी गंदगी की लोग सुपाई राखें तो के बेमारी ? पै बात यो है, बुद्धी के बिणा ऊँट उघाड़े फिरैं सै।
पोदणा[1] ऊप्पर ने पा ठावै सै।	निर्बल व्यक्ति गंभीर बात कहता है।	झगड़े झंझट में निबल आदमी कू हाथ गेरना अच्छा ना सै, नई तो दुणिया कहै, पोदणे बी ऊप्पर टाँग ठावै सै।

[1] टिटिहरी।

गऊ के जाए।	सीधे (सज्जन) व्यक्ति, गिलगिला।	
घोल्ले आणा।	सफेद बाल होना। बड़ी आयु होना।	
जी सा आग्या।	रुचि हुई, करार हुआ। सुख मिला।	
तीन सौ साठ।	नगण्य।	तेरे जैसे तो तीन सौ साठ फिरैं।

३. पद्य

विशाल पद्य साहित्य लोकगाथा और लोकगीत दो रूपों में मिलता है। लोकगाथा को पँवाड़ा कहते हैं। यह वीरों, प्रेमियों, स्थानीय या पौराणिक देवताओं के होते हैं, और इतने विस्तृत होते हैं कि कई तो सप्ताहों में ही समाप्त किए जा सकते हैं। 'बात का पमाड़ा करना' अनावश्यक विस्तार करने के अर्थ में आता है।

(१) पँवाड़ा—वर्षा में आल्हा और फाल्गुन में होलियों के गाने का चलन है। जिस प्रकार पूर्वी जिलों में आल्हा और ब्रज जनपद में रसिया का अत्यधिक प्रचार है, ऐसे ही इधर पटके (वसंतगीत), होली और ढोला गाए जाते हैं। किसी किसी को स्त्री पुरुष दोनों ही समवेत गान के रूप में गाते हैं। ढोला प्रसिद्ध पँवाड़ा है, पर इसका अर्थ प्रियतम अथवा पति भी होता है। ढोला में प्रेम का वर्णन है। अतः तर्ज की लोकप्रियता के कारण ढोला एक स्वतंत्र गीत ही बन गया है। ढोला की टेर, जो कभी कभी बड़े उच्च स्वर में स्त्रियों के मंडल द्वारा रात्रि के सन्नाटे में सुनाई देती है, बड़ी मर्मोद्वेलक होती है। रतजगे के बाद, अथवा अन्य किसी अवसर पर राह चलती स्त्रियाँ जब यह गीत गाती हैं, तो सारा वातावरण रस-प्लावित हो उठता है।

पँवाड़ों में वीरता की कहानियाँ कही जाती हैं, जैसा कि 'आल्हा' की इस पंक्ति से प्रगट है :

वीर परंपरा वीरै गावै, औ रणसूर सुनै चितलाय।

पँवाड़े आल्हा अथवा रासो की वीर-काव्य-परंपरा के ही थे जो पीछे आल्हा गीत से 'आल्हा छंद' अथवा निहालदे कथा से 'रागिनी' की तर्ज बन गए। साथ ही पँवाड़ा शब्द का संबंध 'पँवार अथवा पमार' नाम की क्षत्रिय जाति के यशोगान से है, अर्थात् 'पँवाड़े' वे गीत हैं, जिनमें पँवारों की वीरता का वर्णन किया गया हो। कुरु में गूजरों के भी 'पमाड़े' मिलते हैं—माना गूजरी का पमाड़ा तथा जगदेव पँवार का पमाड़ा विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त पौराणिक, ऐति-

हासिक एवं प्रेम संबंधी अन्य अनेक कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें लंढौरवाले रघुवीर-सिंह, नरसुल्तान, राजवाला और अजीतसिंह की कथाएँ बड़ी लोकप्रिय हैं।

इस पँवाड़े की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

ढोला—चिड़ी तोय चाँवरिया भावै (रे)। चिड़ी तोय०।
घर में सुंदर नार, बलम तोय परनारी भावै रे।
फिरंगी नल मत गड़वावै (रे)। फिरंगी०।
जाको पानी भौत बुरो, मेरी तबियत घबडावे (रे)।
जाको पानी कुरो, पियत मेरो हिवड़ा[1] घबड़ावे। चिड़ी०।
डाक्टर[2] समनक[3] मति आवै।
तेरी सुरत मेरे पिया की सुरत, मेरी हिलकी बँधयावे। चिड़ी०।
सूरजमल कायथ का लड़का (रे)।
गोरे बदन पै आय पसीना, फूलों का पंखा।
छै छल्ला[4] छै आरसी, (सो कोइ) छल्लों भरी परात।
भँवर जी छल्लों भरी परात।
इक छल्ला के कारनै, (सो कोइ) छोड़े भाई बाप॥
जिहाज दो दिल्ली सू आए।
उनमें बैठे रँगरूट, खबर मेरे पीतम की लाए॥

(२) लोकगीत—पँवाड़े लंबे होने से उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती है. पर लोकगीत तो अनंत हैं। उनकी रचयित्री पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ हैं। स्त्रियों की भावनाएँ और तर्जें अपनाकर न जाने कितने गीत लिखे गए हैं। इनमें सावन के गीत (मल्हार), बारहमासा और निहालदे हैं। मालवा, मारवाड़, व्रज में प्रसिद्ध 'चंद्रसखी' के बहुत से धार्मिक गीत भी यहाँ प्रचलित हैं। जान पड़ता है, किसी धार्मिक वृत्ति के लोककवि ने ही स्त्रियों के गीतों की भावनां और तर्जें ही नहीं, अपितु उन जैसा नाम, उपमान भी रखकर इन गीतों को प्रसारित कर दिया।

कुरु जनपद के लोकसाहित्य में भी ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं जिनके द्वारा हम उनका संबंध सुदूर अतीत की प्राक् आर्य संस्कृतियों से जोड़ सकते हैं। ग्रामवधूटियों के कंपित स्वरों में हम सुनते हैं :

१ हृदय, दिल। २ जो कोई सामने पड़ जाय उसी का नाम अथवा उपाधि लेकर हासपरिहास कर लिया जाता है। ऐसे ही आगे सूरजमल के लिये समझें। ३ समद्य। ४ छैला।

ह री, सास्सू पाणी तो भरणे म चली,
ह री, सास्सू कूएँ पै खेले काणा नाग,
मझै तो डस लेइगा।
ह री, ए री बीब्बी मैंने तो जाणा देवता,
ए री, बीब्बी मावस की माँगे मुझसे खीर,
मझै तो डस लेइगा।

ये 'धरती के गीत' हैं, अतः इनमें जो कुछ रंग, रूप, सौरभ हम देखते हैं, वे सब धरती ही की देन हैं। लोकगीत का गायक अपने वातावरण से दूर नही भाग सकता। उसकी रचना में प्रकृति की वही चित्रपटी, वैसा ही वातावरण, वही पृष्ठभूमि वर्तमान रहती है जहाँ वह उत्पन्न हुआ है और जहाँ के वह गीत गा रहा है। उसकी उपमाएँ सीधे प्रकृति से आती हैं, और उसके रूपकों का आधार प्रकृति के साधारण व्यापार बनते हैं। उदाहरणार्थ :

मेरा पतला पतला गात, घाघरा भारी से। मेरा०।
गात मेरा लरजे जैसे लरजे कचिया घास। मेरा०।

अथवा

चाले चाल अधर से, जाणु हो जल पर की मुर्गाई।

अथवा

मैं अपनी लाडो कु जानैं न दयूँगी,
पढ़े तोता सी, रटे मैना सी, री लाड़ो लडुवा सी। मैं०।

कचिया घास, जल मुर्गाबी, तथा तोता मैना इस प्रदेश की अपनी चीजें हैं। गीतों के अनेक भेद हैं, जैसे श्रमगीत, ऋतुगीत, मेला गीत, त्योहारगीत, संस्कार-गीत, धार्मिक गीत (भजन), बालकगीत आदि।

(क) श्रमगीत—

(१) नृत्यगीत—आदिकाल से ही मनुष्य ने अपने गीतों को श्रम और नृत्य के साथ जोड़ा है। कुरु प्रदेश में गीतों के साथ होनेवाले अनेक नृत्य हैं। पुरुषों का होली नृत्य योद्धाओं के रणकौशल की पुनरावृत्ति मात्र है। बड़े लाघव के साथ इधर से उधर तीव्रता से बढ़ना, उछलना, कूदना, बैठ जाना, घूम जाना पुरातन काल की सामरिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा वीर पुरुष अपना बचाव और प्रतिद्वंद्वियों पर धावा किया करते थे। इस नृत्य में बड़ा जोर लगाना पड़ता है। शास्त्रीय नृत्यों की भाँति इसमें अंगसंचालन की विविध मुद्राएँ तो नहीं हैं परंतु कभी कभी वहाँ मन के प्रबल आवेगों को, अनगढ़ रीति से ही सही, प्रकट अवश्य किया जाता है। स्त्रियों का नाच प्रकृति का विशुद्ध अनुकरण है। समतल भूमि में

सरिता की लहरियाँ जिस भाँति मंद गति से बढ़ती हैं, तरुशाखाएँ जिस प्रकार वायु के वेग से लच लच जाया करती हैं, अथवा खेतों में खड़े जौ गेहूँ के पौधों पर उनकी बालें जैसे झूमती हैं, ठीक उसी तरह स्त्रियाँ भी अपने पैर, हाथ और सिर का संचालन करती हैं जिससे दर्शक को शास्त्रीय लास्य के किसी आदिम रूप का आभास सहज ही मिल जाता है। उमड़कर उठती हुई मानसूनी घटाओं की भाँति ऊमती, तथा नन्हीं बूँदों की भाँति पगघुँघुरुओं से छरछर छमछम शब्द करती ये बालाएँ जब ढोलकी के ठेके तथा किसी द्रुतलय गीत पर नृत्य करती हैं, तो कोई भी इस प्रदेश की सुरम्य प्रकृति का सहज आभास पा सकता है। गूजर, जाट जाति की स्त्रियों को छोड़कर अन्य सभी स्त्रियाँ यह नृत्य करती हैं। उक्त दोनों वीर जातियाँ हैं, उनकी महिलाएँ भी दूसरों से अधिक बलिष्ठ होती हैं। इसलिये इनके नृत्य में कुछ-कुछ कूद फाँद, आंगिक क्रियाओं की तीव्रता और गति अधिक रहती है। गीत बिना ढोल के ही गाए जाते हैं। पुरुषों के नृत्य अधिकतर सामूहिक और स्त्रियों के एकाकी होते हैं। किंतु कभी कभी स्त्रियाँ भी मंडल बनाकर नाचती हैं। ऐसे एक नृत्य को 'झबूके' कहते हैं। पुरुषों के नृत्यगीत पुरुषोचित भावनाओं का चित्रण करनेवाले तथा स्त्रियों के कोमल भावाभिव्यंजक होते हैं। साधारण गीतों की अपेक्षा स्त्री और पुरुष दोनों ही के नृत्यगीत विलंबित नहीं, द्रुत लयवाले होते हैं, क्योंकि विलंबित लय पर नृत्य करना कठिन होता है। पुरुषों के नृत्य स्वाँग तमाशों को छोड़कर फाल्गुन में होली के अवसर पर तथा स्त्रियों के कभी विवाह शादी या अन्य उत्सव अथवा धार्मिक पूजा (देवी, सीतला की कामना) के समय भी देखे जा सकते हैं।

हम पै फिरोजी दुपट्टा हमें तो लग जायगी नजरिया रे।
चाहे सैंया मारो चाहे राजा छोड़ो, हम पै न भरती गगरिया।
हमारी पतली सी कमरिया, न उठती गगरिया रे। हम पै०।
चाहे सैंया मारो चाहे सैंया छोड़ो, हम पै न खिचती है चकिया।
हमारी नाजुक सी कलइया रे। हम पै०।
चाहे सैंया मारो, चाहे सैंया छोड़ो, हम पै न पूती फुलकिया।
हमारी जल जायगी उँगलिया रे। हम पै०।
ना सैंया बाले ना सैंया नन्हें, हमको तो ला दो बँदरिया।
हमारी कट जायगी उमरिया रे। हम पै०। —**मेरठ नगर**

(२) मल्होर—कोल्हू चलाते समय गाए जानेवाले गीत मल्होर कहे जाते हैं :

बलमा खेती तें करी, ना खेती से हेत।
साग तोड़ने मैं गई, (सेरा) खाया मिरग ने खेत॥ रे मेरे०।

फुलका पोह पझपे पै, हरियल धर दे साग।
लंबी (सी) दे दे लाकड़ी गोस्सै पै धर दे आग॥ रे मेरे०।

ग्रामीण जन अधिकतर किसान हैं। शेष भी उसी से संबंधित अन्य कार्यों में लगे हैं। चमारों की संख्या दूसरों की अपेक्षा अधिक है। उनमें अधिकांश भूमिहीन मजदूर हैं। संपन्न गृहस्थ किसान नदियों और नहरों को मनाया करते हैं :

मनैं सब बिध तुही मनाई।
मेरी सुनिओ, नैहर तू माई॥
पेला ओन्ना ओढ रई ए,
तलै री बहौलड़ा पैर रई ए।
ठाई दाँती गई री लुसन में,
काट्टा रिजका बाँधा री भरोट्टा,
चारुँ तरफ में देख रई ती।

मजदूरी करनेवाली दीना का स्वप्न है :

मैं टोल्ले पै खोद रई घास,
के सुसर म्हारे आव्वेंगे।
सुसर म्हारे आव्वेंगे, कै गाडी लावेंगे।
गाडी कै बूढ़े बैल फेर नई लाव्वेंगे।

(२) ऋतुगीत—

सावन (सावण), होली, बारामासा जैसे ऋतुगीत यहाँ बहुत प्रचलित हैं जिनमें सावन के गीत बहुविध तथा भावप्रवण हैं।

(क) सावन—सावन के गीतों में विरहवर्णन अधिक देखा जाता है। इस प्रदेश में गाए जानेवाले सावन गीत की पंक्तियाँ देखिए :

आँब की डाली रि सिरियल पड़ी है पंजाली।
(कोइ) झूलन जाय रनबास, मियाँ।
+ + +
आते को सासू मेरी हर ना दिखाऊँ री, कबी न बताऊँ री,
जातो कु दूँगी दिखलाइ, मियाँ।
लील्ली सी घोड़ी जाहर, धोल्ले धोल्ले कपड़े री,
आए हैं आधी सी रात, मियाँ।
+ + +
उठ उठ सास्सु मेरी जन्म की बैरण, सदाई की दुस्मन,
तेरे महल्लों के चोर भागे जायँ, मियाँ।

बाछल (वत्सलक्ष्मी) जाहर की पत्नी, सिरियल (जाहर की माता) की बेवा बहू थी, जिसके आचरण पर सास ने संदेह किया। बाछल ने कहा—'मेरे पास तो अब भी तेरा पुत्र प्रति रात्रि आता है।' बूढ़ी बोली—'तो मुझे अपनी सच्चरित्रता के प्रमाण में उसे दिखा।' ऐसा करने पर मृत पति फिर कभी न आता, तो भी मानरक्षा के लिये बाछल ने हृदय पर पत्थर रखकर वह किया। उक्त गीत में 'उठ उठ री सास्सु मेरी जन्म की बैरण' पंक्ति बाछल के हृदय की कचोट को तुरंत अनुभव करा देती है। 'प्रियतम' को 'महलों का चोर' कहकर सास पर वह दुःखभरा हल्का व्यंग छोड़ती है।

सावन के दिनों में स्त्रियाँ झूले का गीत 'चंद्रावलि' गाया करती हैं। कहते हैं, चंद्रावलि मेरठ जिले में किठौर के आसपास किसी गाँव की थी। गीत में उसका ऊँचा चरित्र चित्रित किया गया है।

(ख) होली, पटका—बसंत धरे जाने के दिन से ही ढप, झाँझ, घंटा और थाली सवा महीने तक होली राग की टेर के साथ गावँ गावँ में सुनाई देते हैं। वास्तव में होली इस प्रदेश में ऋतुगान ही नहीं, अपितु सर्वकाल तथा समस्त विषयों को लेनेवाली एक तर्ज है जिसमें किसी भी विषय का वर्णन हो सकता है। यह इस प्रदेश की मुख्य और लोकप्रिय तर्ज है जिसमें पिछले १५० वर्षों में विषय, रचना और छंद (तर्ज) की दृष्टि से विभिन्न परिवर्तन हुए हैं। इसकी १५० वर्ष पहिले की रंगत थी :

अर ऊँधे नगाडे सूधे होय, जिणकी घोर गगण घहराणीं।

छंद के रचनाविधान में भारी परिवर्तन हो चुके हैं। कभी इसमें ढोला तथा निहालदे की तर्ज रखी जाती है, कभी मिश्रित। आजकल के एक लोककवि की अपनी रचना के संबंध में गर्वोक्ति सुनिए :

कहै चंदनसिंह पीप के का, मेरी रंगत सहज चलै ना।

इन्होंने मिश्रित तर्ज ली है, जिसमें आल्हा, ढोला तथा निहालदे की तीनों रंगतें आती हैं।

(१) पटका—इसे स्त्रियाँ मंडलाकार घूमती एक दूसरी के हाथ में हाथ मारती हुई गाती हैं :

राजा नल के बार मची होली। री मची होली, ए मची०।
हम पै तो राजा सिल्वा[1] बी ना है।

[1] सिल्वा की तरह सब वस्त्रों और आभूषणों के नाम ले लेकर गीत की पंक्तियाँ लंबी होती चली जाती हैं।

म काहे कु पहर खेलूँगी हो होली। ए खेलूँ गी०। राजा नल के०।
अब के हंस गोरी होली खेल्यो,
(तो) परकू गढ़ा दूँ साढ़े नौ जोड़ी, साढ़े नौ जोड़ी।०।

(ग) बारहमासा

(१) जोबन लहरे लेय—

सुण सुंदर बैसाख की बिरिया में नू कहे।
जोबन लहरे लेय, तो बौत करे मीनती।
बौत रई समुझाइ मैं बाले से जीव कू।
है कोई चतुर सुजान, मिलावे बाले जीव कू।
सासु का जाया है पूत, नणद का वीर है।
वो पिया चतुर सुजाण, मिलावे बाले जीव कू॥
आया है जेठ जे मास, सूकी है जल कूवटी।
सूका है सरवर ताल, सूकी जल माछरी॥
आया साड जे मास, भरी है जल कूवटी।
भर गए सरवर ताल, सुखी है जल माछरी।
पानों का बँगला छिवावती, रेसम के बंद लगावती॥
आया है सावन मास, रचे हैं हिंडोलने।
रेसम बेड बँटाय, सहेली संग झूलती।
तुम पिया झोंटे दोय, झुलेंगी बाली कामनी॥
आया है भादो जे मास, झुँकी है अँधेरिया।
तड़क उजाला होय, डरे हैं बाली कामनी॥
आया है असोज जे मास, तो पितर जिमावती।
धोत्ती का देती दान, मुठी भर दच्छिणा।
मुँड तुंड लागूँ पाँडे पावँ, बौत करे मीनती॥
आया है कातक मास, मैं काग उड़ावती।
उड़ जा रे काले कागा, ललन लोभी चाकरी॥
आया है मँगसिर मास, हैं माँग भरावती।
माँग भरी सिस फूल जे हार गुँधावती॥
आया है पोय जे मास, सिया ले जाड़ा चोगणा।
चादर बीच गलेप, नैन भर रोवती॥
आया है माह जे मास, माह जल न्हावती॥
आया है फागन मास, तो फगवा में खेलती।
अंबर अबीर गुलाल, पिचकारी भर खेलती॥

आया है चैत जे मास, मैं चिंता लगावती।
ससुर के घर हैं दूध, जेठ घर पेखणा।
म्हारे बलम परदेस हमें क्या देखणा।
जिन खूँटी हतियार तो वे खूँटी सज रई।
पिया पै करे सिंगार, तो वे धनि सज रई।
जिन खूँटी न हथियार, तो वे खूँटी भुंटी हैं।
पिया बिन करे सिंगार, तो वे धनि फीकी हैं॥

(४) त्योहार गीत

त्योहारों और उत्सवों पर भी कितने ही गीत गाए जाते हैं, कुछ में कथाएँ भी कही जाती हैं। गणेश चतुर्थी पर गाया जानेवाला एक गीत है :

गणपत

आज मेरे ग्यान गणपत आए।
गणपत आय मेरे सिर पै बैठे (रामा), अच्छे अच्छे साल दुसाले उढ़ाए।
गणपत आय मेरे माथे पै बैठे, अच्छे अच्छे लेख लिखाए।
गणपत आय मेरी अँखियाँ पै बैठे, अच्छे अच्छे दरस दिखाए।
गणपत आय मेरे काणों पै बैठे, अच्छे अच्छे भजन सुनाए।
गणपत आय मेरी जिब्भा पै बैठे, अच्छे अच्छे भोजन कराए।
गणपत आय मेरी छुतियों पै बैठे, अच्छे अच्छे बस्तर उढ़ाए।
गणपत आय मेरे गोड्डों पै बैठे, अच्छे अच्छे तीरथ कराए।
गणपत आय मेरे पंजों पै बैठे, जगन्नाथ बदरीनाथ दिखाए।
गणपत आय मेरे पंजों पै बैठे, अच्छी अच्छी गंगा जी नुवाए।

(५) संस्कारगीत

जन्म, विवाह आदि के अवसरों पर ये गीत गाए जाते हैं। जन्मगीत को पूर्व में सोहर और यहाँ ब्याई (ब्याही) कहा जाता है।

(क) ब्याई (सोहर)—

अँसुआँ राव ढुरैं सारी रतियाँ,
मैं तुमसे बुझूँ (रे, ए) मेरे राजा (अरे ए मेरे राजा)।
(अरे) कहाँ रे गँवाँई सारी दिन और रतियाँ।
तुम्हरी सुरत एक मालन बिटिया (अरी मालन बिटिया)।
(अरी) बहिए गँवाँई सारी दिन और रतियाँ।

छोटा देवर मेरा बड़ा री खिलाड़ी (अरी बड़ा री खिलाड़ी),
अरे पकड़ लै आए वो तो मालन बिटिया।

(ख) विवाहगीत—

विवाह के भिन्न भिन्न समय के बहुत से गीतों में से कुछ लीजिए :

छज्जे तो बैठी लाड्डो पान चब्बे, करै बाबा सै मीनती।
बब्बा देस जाइयो पिरदेस[1] जइयो, हमारी जोड़ी के बर ढूँढियो जी।
ताऊ देस जाइयो पिरदेस जी, हमारी जोड़ी के बर ढूँढ़ियो,
एक रात रइयो उनका गोत बुज्झो, सार खिलंते बर ढूँढ़ियो।
छज्जे तो बैठी लाड्डो पान चाब्बे, कर रही चाचा जी से मीनती[2]।
देस जाइयो पिरदेस जाइयो, हमारी जोड़ी के बर ढूँढ़ियो।
एक रात रइयो[3] उनका गोत, बुज्झो सार[4] खिलंते वर ढूँढ़ियो।

(इसी प्रकार सब रिश्तेदारों के साथ जोड़ते हैं)

(६) धार्मिकगीत

धार्मिक गीत या भजन बहुत प्रकार के गाए जाते हैं। गढ़गंगा, नौचंदी, गूगा बीर, गोधन, साँझी, सीतला (विशेष रूप से कंठीमाला), भूमिया, भूरसिंह, होली, दीवाली तथा आर्यसमाजी विचारधारा के भजन इस प्रदेश के धार्मिक गीत हैं। इन गीतों में शिक्षित, अशिक्षित एवं अर्धशिक्षित सभी प्रकार की जनता की भावनाएँ प्रतिबिंबित हुई हैं। जिन बातों की चर्चा यहाँ के गीतों में बहुतायत से रहती है, वे है :

"सोने का गडुवा, गंगाजल पानी।" "दूध कटोरा।" "धौली गाय तले" "बछरवा चूँखता।" "हाथ रकेबी तची जलेबी" इत्यादि।

गंगा

ना जाऊँ दुनिया के ठावँ, गंगा जी सिब से जगड़ी[5]।
पापी पराधी जो नर कहिए, वे नर मुझमें न्हाएँगे।
दुखी रहैगा मेरा जीव, तिरछी बहेगी मेरी धार॥ गंगा जी०
कोड़ी कलंकी जो नर कहिए, वे नर मुझमें न्हाएँगे।
दुखी रहैगा मेरा नीर, तिरछी बहेगी मेरी धार॥

[1] परदेश। [2] विनय। [3] चौपड़ का खेल। [4] रहना, बसना। [5] झगड़ा किया।

बेटी बेंचके जो धन लेंगे, वे नर मुझमें न्हाएँगे।
दुखी रहैगा मेरा नीर, तिरछी बहैगी मेरी धार॥
पुन्नदान हैं जे नर करते, वे बी तुझमें न्हाएँगे।
सुखी रहैगा तेरा नीर, सूधी बहैगी तेरी धार॥ गंगा जी०॥

(७) बालक गीत—

बालकों के गीत खेल संबंधी और लोरियाँ हैं।

मनोरंजन के गीत टेसू, झाँझी और चौपई हैं। चौपई (चट्टों का गीत) चट्टा चौथ (भाद्रपद की गणेशचतुर्थी) के आसपास के दिनों में चटशालाओं के बालक लकड़ी के छोटे छोटे डंडे (चट्टे) खटका खटकाकर गाते हैं। इसका रिवाज अब कम होता जा रहा है। टेसू और झाँझी क्वार के नवरात्रों में चलते हैं। वैसे तो चौपई, टेसू और झाँझी तीनों में ही भावसंपत्ति का अभाव और कोरी तुकबंदी मात्र होती है, परंतु टेसू और झाँझी के गीत तो और भी निर्बल होते हैं। टेसू के गीतों में तुकबंदी और बालबुद्धि के विलास में कभी कभी कल्पना का असंयम भी देखते ही बनता है। यहाँ की एक लोरी उदाहरणार्थ निम्नांकित है:

लोरी

लाला, लाला लोरी, दूध भरी कटोरी।
दूध में बतासे। लाला करै तमासे॥
लाला की मा रूँठी। काए बात पै रूँठी।
दई दूध पै रूठी। दही दूध भतेरा। खाने कू मूँ तेरा।

(८) विविध गीत—

रागनी

मनोरंजन के लिये इस प्रदेश में गाए जानेवाले गीतों में प्रमुख रागनी है। विषय की विविधता और पकड़ दोनों ही दृष्टि से यह अति उत्तम होती है। प्रायः चौपाल पर बैठकर सामूहिक मनोरंजक के लिये वर्षा को छोड़ सभी ऋतुओं में रागनी गाई जाती है। इस गीत के नाम से शास्त्रीय रागिनी का भ्रम न होना चाहिए।

जोगियों के गीत

कई जातियों के भी अपने अपने गाने हैं। जोगी तो कुछ गीतों या पँवाड़ों के पेशेवर गायक हैं। भाडों की 'चटक सूझना' उल्लेखनीय हैं। जोगियों के गीत प्रायः पौराणिक शैव कथानकों, कतिपय ऐतिहासिक धार्मिक चरित्रों पर मिलते हैं। इनमें 'बम लहरी', 'रिख व्याहलो', 'गोपीचंद भरथरी', 'नरसी का भात' विशेष

उल्लेखनीय हैं। गीतों के कथानक लंबे हैं। जोगी लोग प्रायः 'ढोला' और 'निहालदे' की रंगत में गाते हैं। वास्तव में उक्त दोनों गान विशिष्ट चरित्र संबंधी हैं, जो अब अपनी निजी रंगत के कारण 'तर्जों' के नाम बन गए हैं। भांड लोग प्रायः मुसलमान हैं। इस कारण उनकी बोली में उर्दूपन अधिक रहता है। वे प्रायः उर्दू छंदों के ही अनुकरण पर गीत रचना करते हैं।

धोबियों के गीत

धोबियों के गीत को 'खंड' कहते हैं। ये लंबे कथानकों को लेकर चलते हैं। एक एक खंड में कभी कभी पाँच पाँच हजार तक पद होते हैं। निस्संदेह आकार के विचार से 'खंड' किसी भी खंड काव्य की अपेक्षा कम नहीं होते। इनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि इनके कथानकों को गायकों ने हिंदू मुस्लिम संस्कृति के विचारों और विश्वासों से भर दिया है। भाव, भाषा, अभिव्यक्ति सभी दृष्टिकोण से इनका सूफी काव्य से साम्य है।

दोहरे

मनोरंजन तथा नीति उपदेश के लिये गप्प और दोहरे कहे जाते हैं। दोनों ही में अभिव्यक्ति की सरलता के साथ साथ प्रभाव की तीव्रता होती है। एक नीति का दोहरा देखिए :

पीप्पळ तर मत बैठिए, लज्जा जागी खोऽ।
तू बट निच्चे बैठकै, निरभे पडकै सो ॥

उक्त दोहरे में 'पीप्पल' तथा 'बर' शब्द में श्लेष रखकर सुंदर नीति उपदेश दिया गया है।

गप्प

गप्प के उदाहरण :

कुत्ती चली बजार कू, बगळ म लेक्कै ईंट।
सहर के बणिए यूं कहैं, ताई[1] लट्ठा ले अक् छींट ॥
गप्प सुणो भाई गप्प सुणो ॥

बुझौअल

मनोरंजन के साधनों में 'बुझव्वल' (बुझौअल, पहेलियाँ) भी हैं, जो प्रायः तुकांत होती हैं। प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाली, अनुभवगम्य अनेक वस्तु अथवा

[1] ग्रामीण जनता विशेषकर जाटों में ताई, ताऊ आदरसूचक संबोधन हैं।

क्रियादि के संबंध में जोड़ी गई ये पहेलियाँ मानसिक विकास में सहायक होती हैं।

देत्ता हो तो ल्याइ ए ना। ना देत्ता हो लेत्ता आइए।
(खेती के ऊद, मेंड़ा)

अकास मारा मीमला। पत्ताल काढी खाल।
ऐसा जनवर कौंए सा। जिसकी भित्तर बाल॥ (आम)
पाँ पकड के जोड्डा खेल। कमर पकड़ के दिया धकेल। (फूला)
जब्ब थी मैं याँणी बाल्ली। सात परदों की थी राणी॥
जब हुई मैं जोग्गम जोग। टुकड़ी ठाळा देक्खे लोग॥ (भुट्टा)
ऊप्पर सै गिरा मुगल का बच्चा। मूँ लाल करेज्जा कच्चा॥ (पूड़ा)

४. मिश्रित लोककवि

सरल जनता में किसी बात को प्रभावोत्पादक ढंग से कहने सुनने के लिये अनुकरण—स्वाँग—को अपनाया जाता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति अथवा घटना का चित्रोद्घाटन ही नहीं होता, बल्कि ऐसा करते हुए आदमी दूसरों का पर्याप्त मनोरंजन भी करता है। स्वाँग गाँवों में बड़े लोकप्रिय हैं। स्वाँग अनुकरण (नकल) का ही परिवर्तित परिवर्धित रूप है। किंतु नकल प्रायः हास्य विषय को ही लेकर की जाती है, जब कि स्वाँग की परिधि में आनेवाले अनेक विषय हैं। धार्मिक (मोरध्वज, नरसी, हरीचंद), ऐतिहासिक अथवा सामाजिक (प्रताप, शिवाजी अथवा दयाराम, रघुवीरसिंह आदि) स्वाँगों में राष्ट्रीय अथवा स्थानीय चरित्रों का चित्रण रहता है, या उनका आधार सत्य वा अर्धसत्य प्रेमगाथाएँ हुआ करती हैं। प्रायः देखा गया है कि केवल विशेष अवसरों अथवा विशिष्ट स्वाँग मंडलियों को छोड़कर ग्रामीण ज़नता रंगमंच की सजा पर ध्यान देना तो दूर, वेशभूषा का भी अधिक विचार नहीं करती और अनुकरण की आदिम तथा सरल दो मूल विधियों—बोली तथा क्रिया—के अनुकरण द्वारा ही काम चला लेती है। चौपालों पर साँझ अथवा रात के समय ग्रामीणों को सादे कपड़ों में ही इस प्रकार स्वाँग खेलते देखा जा सकता है। यद्यपि इन साँगों में जीवन से संबंधित सभी मूल भावनाओं का चित्रण रहता है, किंतु इनमें अधिकतर वीर, श्रृंगार, करुण अथवा भक्ति की भावनाओं का ही विस्तार किया जाता है। कदाचित् 'साँग खेलना' वाक्य में यह ध्वनि है कि प्रारंभ में स्वाँग वीर योद्धाओं के रणकौशल की अनुकृति के रूप में ही चले।

कुरु प्रदेश में स्वाँग रचयिता कवि काफी संख्या में हुए हैं और हैं। इनकी शिष्यपरंपरा भी विशाल है। आजकल हिंदी कवियों में 'हम चुनीं दीगरे नेस्त' की भावना के बल पकड़ जाने से किसी को गुरु मानने की प्रवृत्ति नष्ट होती जा रही है, किंतु इन कवियों में अब भी गुरु का बड़ा संमान है। वह अपनी सारी रचनाएँ

गुरु को ही निवेदित करते हैं। इसे रचनाओं में कवि के नाम की छाप से पहले दी हुई गुरु के नाम की छाप से ही जाना जा सकता है। इस विषय में यह लोग बड़े कट्टरपंथी और रूढ़िवादी हैं। ग्रंथारंभ के पूर्व सरस्वती की भेंट, गुरु की भेंट अवश्य होती है।

इस प्रदेश के स्वाँग रचयिता कवियों की नामावली बहुत बड़ी है। उनमें अत्यंत प्रसिद्ध कुछ इस प्रकार हैं—

नाम	ग्राम		प्रसिद्ध रचनाएँ
१. सेढूसिंह	हापुड़	(जि० मेरठ)	होली, भजन, रागनी
२. धीसा	भटीपुर	,,	होली
३. फूलसिंह	नगला कबूलपुर	,,	भजन
४. शंकरदास	जिठौली	,,	भजन
५. साधु गंगादास	जिठौली	,,	भजन
६. लटूरसिंह	मऊ खास	,,	भजन (निर्गुन)
७. बुल्ली	भगवानपुर नाँगल		स्वाँग, रागनी
८. प्रिथीसिंह 'बेधड़क'	शिकोहपुर		रागनी, भजन
९. बख्शीदास	सिकोपुर		,,
१०. खूबी जाट	टीकरी		भजन, रागनी
११. चंद्रलाल भाट	टीकरी		,, ,,
१२. नत्थू	मीराँपुर	(जि० मुजफ्फरनगर)	,, ,,
१३. मास्टर न्यादरसिंह			
१४. बुंदू	मुजफ्फरनगर		स्वाँग
१५. बलवंतसिंह	मुजफ्फर नगर		,,
१६. चंदरवादी	दत्तनगर		,,
१७. तोफासिंह	कोटवालपुर		होली, पट

प्रत्येक की बीसों रचनाएँ हैं, इसलिये उन सब के नाम न देकर केवल रचनाओं के काव्यरूप का ही निर्देश किया गया है।

उक्त रचनाओं के अध्ययन से हम इन परिणामों पर पहुँचते हैं :

१–प्रतिभा से भावुकता अधिक।
२–विषय से सुपरिचित, किंतु उसकी गहराई में उतरने का प्रयास नहीं।
३–पिंगल और संगीत दोनों का अनुकरण किंतु किसी का भी पूर्ण ज्ञान नहीं।
४–काव्य में उपदेश की प्रवृत्ति का आधिक्य।

५–काव्य में कौरवी का व्यवहार, वक्रता और विदग्धता के साथ।
६–समसामयिकता की छाप।

इन कवियों की रचनाओं के भावपक्ष पर दृष्टिपात करने से मालूम होता है कि वस्तु के चयन में ये बड़े कुशल हैं। इन्होंने अपने कथानक प्रायः पुराण, इतिहास एवं वर्तमान जीवन की घटनाओं से लिए हैं जो सभी जनमन को अनुरंजित करनेवाले हैं। परंतु जिस समय कवि की कथा के मार्मिक स्थलों को पहचानने की शक्ति पर विचार करते हैं तो हमें निराशा होती है। कथा को लंबी करने की प्रवृत्ति उनमें अवश्य है, किंतु वे यह नहीं जानते कि उसके किस अंग पर अधिक बल देने की आवश्यकता है। प्रायः कथानक को लंबा करने के लिये सर्वत्र समान प्रकार की युक्तियाँ अपनाई जाती हैं। उदाहरणार्थ—किसी भी प्रेमकथा में प्रेमियों के बीच लंबे कथोपकथन की सृष्टि की जाती है, फिर कवि उन दोनों के प्रेममार्ग की कठिनाइयों का विस्तृत ब्योरा स्वयं उपस्थित करने बैठ जाता है। कोई दुःखांत कथा हुई तो उसमें नदी में शव बहाने की बात, शव जल में बहाने से विष के प्रभाव का नाश तथा किसी ज्योतिषी या साधु द्वारा इस बात की मृतक के संबंधियों को सूचना की चर्चा बराबर ही रहती है। वर्णित कथानकों में चाहे भावुकता का अंश कितना ही क्यों न रहे, किंतु हम उनमें कल्पना का नितांत अभाव पाते हैं। रस की दृष्टि से इन रचनाओं में यदि कुछ है तो वह केवल बतरस है। रस के अवयवों से अपरचित सरल कवि की रसात्मकता इतनी ही है कि वह कभी कभी हृदय की सिकताभूमि को अपनी भावुकता से स्निग्ध बना देता है। साधारणतः इनकी रचना वीर, शृंगार, करुण, बीभत्स और शांत रस परक होती हैं। शृंगार के वर्णनों में आलंबन का रूप, शृंगार वर्णन, बारहमासा और ऋतुवर्णन बड़े उत्साह से किया जाता है। शृंगार के प्रसाधनों की जो चर्चा वे करते हैं वह परंपरागत है। ऐसे ही वे रूपवर्णन में भी सौंदर्य की सार्वदेशिक भावना को ही स्वीकार करते हैं। संयोग तथा वियोग पक्ष में अनेक भावों तथा दशाओं के वर्णन बड़े मार्मिक होते हैं। वहाँ जीवन की झाँकियाँ बड़ी चित्ताकर्षक और स्वाभाविक मिलती हैं।

इन रचनाओं के कलापक्ष पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इनमें छंद का आग्रह उतना नहीं है जितना तर्ज का। तर्ज या रंगत, जिनमें कविगण स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर उनको नित नूतन नाम देते रहते हैं, इनका प्राण है। नई रंगत या तर्ज ही जनता को मंत्रमुग्ध बनाने का एक साधन है। सौभाग्य से प्रायः रचयिता और गायक एक ही व्यक्ति होता है। वह अपनी कृति और कौशल का योग कुछ इस भाँति करता है कि उसके कारण काव्य और संगीत के बीच सीमारेखा लुप्त होने लगती है। जिन छंदों का अधिक प्रचलन है तथा जिनके संबंध में वे

थोड़ा नियम और विधान का पालन करते हैं वे हैं—दोहा, चौबोला, चौपाई, कड़ा, दौड़, तोड़, हद, लावनी, आल्हा, झूलना और खयाल। दौड़ स्वाँग में चौबोले की तोड़ होती है, जिसे चलन या मुक्ताल नाम से भी पुकारा जाता है। यह प्रायः लंबे वर्णनों के लिये व्यवहार में लाई जाती है। तोड़ होली में लावनी की दो पंक्तियों के बाद तीसरी, टेक से मिलाने के लिये, रखी जाती है। कड़ा भी चार पंक्तियों का होता है। इसको काफिया भी कहा जाता है। वास्तव में इन युक्तियों से वह कभी कभी नई तर्जों के नामकरण, लचका, चटका लहरा के रूप में मनमाने ढंग पर कर लिया करते हैं। लहरा बीन की ध्वनि से लिया गया है। स्वाँग में बैठी ताल और खड़ी ताल चलती है। बैठी ताल में गायकी अधिक है और इसे केवल अच्छे गवैए ही गाते हैं।

होली, ढोला, निहालदे की विविध रंगतों में विषय और रुचि के अनुसार वे स्वांगों को विभिन्न राग रागनियों में उतारते हैं। इनमें जिन रागों का व्यवहार अधिक है, वे प्रायः सभी पुराने हैं—आसावरी, मल्हार, जोगिया आदि। पुरानी गायकी के अतिरिक्त कुछ अन्य रागों का भी व्यवहार होता है, जैसे—कव्वाली, तर्ज राधेश्याम, बहरे तवील, दादरा एवं आजकल की कुछ फिल्मी धुनें। आजकल पुराने गीत भद्दे और गँवारू समझकर भुलाए जा रहे हैं। नूतन गढ़ंतं यदि कुछ होती हैं, तो फिल्मी गानों के अनुकरण पर, कभी कभी रूपांतर मात्र। इन सब का कारण तर्ज की अनुकृति है।

ख्याल और झूलना कहनेवाले पिंगल के नियमों का पालन कुछ अच्छी रीति से करते हैं, किंतु जिस समय आशु कविता करने लग जाते हैं, उस समय उन्हें केवल तुकबंदी का ही ध्यान रहता है। इन लोगों में दोहा, चौपाई, लावनी के अतिरिक्त संस्कृत के शिखरिणी जैसे छंदों का प्रयोग भी चलता है।

इन कवियों में रीति कवियों के समान कुछ बँधी बँधाई परिपाटी पर वर्णन मिलते हैं। वर्णनों में यद्यपि स्थानीय प्रभाव पर्याप्त मात्रा में रहता है, फिर भी कुछ बातों में—जिनका वर्णन रीतिपद्धति पर किया जाता है—उचित अनुचित का विचार नहीं रखा जाता—जैसे, इलायची, सुपारी, ताड़ और आम, इमली के वृक्षों तथा जितने फूलों के नाम याद आ सकें, चाहे वे किसी ऋतु के क्यों न हों, एक ही जगह पर वर्णन कर डालते हैं।

अलंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों का बहुतायत से प्रयोग देखा जाता है और अनुप्रास भी अधिक मात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त अत्युक्ति, श्लेष, परिसंख्या तथा उदाहरण भी व्यवहार में आते हैं। अच्छे कवि अपनी कृतियों में अनावश्यक रूप से केवल पांडित्यप्रदर्शन के लिये अलंकार नहीं रखते, अपितु वह प्रकृत रूप में ही उनकी रचनाओं में आ जाते हैं, चाहे यह बात उनके संबंध में

सर्वांश में सत्य न हो, परंतु इनके विषय में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। इनकी उपमाएँ सीधे जीवन से आती हैं और उनमें तनिक भी बनावट नहीं होती।

इनके काव्य को वस्तुतः इस दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं है कि उसमें कौन छंद, क्या अलंकार तथा किस शैली का अनुसरण किया गया है। उसकी कसौटी तो केवल तटस्थता, व्यापकता और प्रभाव है। इस साहित्य में ये तीनों विशेषताएँ बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान रहती हैं और ये ही उसकी जनप्रियता का कारण हैं। जनकवि जनता से भिन्न नहीं होता। इसलिये उसके संबंध में ऐसी कोई धारणा नहीं की जा सकती कि वह जनता में खपत के लिये पालिश और चमक देकर उसे चौंधियाने का यत्न करनेवाले शब्दों का सौदागर मात्र है। नहीं, इसके विपरीत, वह उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही की श्रेणी में है और इसलिये वह केवल वे ही रचनाएँ सामने रखता है जो सबको समान भाव से प्रिय होती हैं।

इन कवियों से बढ़कर प्रचारक कोई नहीं हो सकता। इस काम के लिये इनके पास उपयुक्त भाषा, सरल भाव और नैसर्गिक अभिव्यक्ति ऐसी वस्तुएँ हैं, जो साहित्यकार अथवा अन्य किसी प्रचारक में नहीं मिल सकतीं। इसके लिये इनका उपयोग किया जा सकता है। ये समाज में पारस्परिक सौहार्द, सांस्कृतिक जीवन में रुचि, समता और वीरता की भावनाएँ भर सकते हैं।

इसका प्रमाण स्वाँग, झूलने, ख्याल तथा कव्वालियों के वे दंगल हैं जिनमें अपार जनता एकत्रित होती है। ये कवि चलते फिरते पुस्तकालय ही नहीं, अपितु वे 'जंगम तीर्थराज' हैं। गंगा जमुना के इस प्रदेश—कुरु जनपद—में आज भी ऐसे अनेक कवि हैं तथा यहाँ की उर्वरा भूमि के गर्भ में विशाल वटवृक्ष बननेवाले न जाने ऐसे और कितने कविबीज छिपे हुए हैं।

यहाँ कुछ कवियों की कृतियों की बानगी दी जाती है :

(१) शंकरदास—बभ्रुवाहन अपने पिता अर्जुन के अश्वमेध के घोड़े को पकड़ लेता है, किंतु बाद में उसे ज्ञात होता है कि यह तो उसके पिता का ही घोड़ा है, तो उसे खेद होता है। वह अपनी माता के पास जाकर कहता है :

दोहा—गया निरप तब महल में, जहाँ बैठी निज मात।
आया अश्व एक नगर में, सब कीना बिख्यात॥

छंद लावनी

सुन माता एक अश्व नगर में, श्यामकर्ण चलकर आया।
पांडो ने गजपुर से छोड़ा, पट्टा मस्तक बँधवाया॥
अर्जुन साथ उसी घोड़े के, सेना बहुत संग में लाया।
जीवनास और सुबेग संग में, अन्न खाल अति बलछाया॥

वृष केतू सुत भूप करण का, प्रद्युमन योधा संग धाया।
कृत ब्रह्मा और निल ध्वज है, हंसध्वज मन हरषाया॥
कहो माता इसमें क्या करना, हाथ जोड़के बतलाया।
शंकरदास मतिमंद मूढ़ ने, राम नाम कथ के गाया॥

(२) बखशीदास—

रोटी महिमा

दोहा—रोटी राजा रोटी परजा, रोटी से सत संग।
एक दिण रोटी रूस जा, बिगड़ जाय सब ढंग॥

दादरा—रोटी माता पै, तण मण वारी सभी॥ टेक॥
रोटी के लिये करते भूप देश चढ़ाई।
रोटी के लिये होती है सब जंग लड़ाई॥
रोटी के लिये प्राण देते दल में सिपाई॥
रोटी के लिये देते यार झूठी गवाई[1]॥

(३) मास्टर न्यादरसिंह 'बेचैन'

रागनी

आज मेरी मुद्दत के बाद, उम्मीद सुणो बर आई।
आप ही की बात बऊ गई मेरी, देखो बिना बणाई॥ टेक॥
+ + + +
दूर परी का ढंग निराला, देखणिया[2] की मर सै।
हौले हौले बोलूँगा, उड़ै इज्जत का भी डर सै।
चालै चाल अधर सै, जानू हौ जल पर मुर्गाई॥
छ महीने हो गए, बैरी काया में घुण लाया।
टुक छेड़ी थी रस्ते स तै, लीतर काढ़ दिखाया॥
मौका हाथ मैं खूब आया, सोती तकदीर जगाई॥

पूर्वी कौरवी की तरह पश्चिमी कौरवी (हरियाणी) में भी कितने ही भक्त और दूसरे कवि हुए हैं और आज भी हैं। ये सारे हरियाणा (हरिधान्य) या स्वतंत्रता प्रेमियों की यौधेय भूमि में मिलते हैं। हरियाणा की सीमाएँ इस प्रकार बतलाई गई हैं :

[1] साची। [2] दर्शक।

रोहतक जिला	जिला
हिसार जिला की	हिसार, हाँसी और भिवानी तहसीलें
दादरी जिला (पेप्सू)	
जींद जिला	
करनाल जिला	पानीपत तहसील का रौतक से मिला भाग
गुड़गावँ जिला	रिवाड़ी तहसील का पश्चिमी भाग
दिल्ली	नगर छोड़ प्रदेश के सारे गावँ

हरियाना के कुछ प्रसिद्ध कवि हैं—

(४) भाणा ठाकुर—संभवतः १८वीं सदी में यह निर्भीक कवि पैदा हुआ। बादशाह की हिंद विरोधी नीति के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करने के कारण सरस्वती के इस पुत्र को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। कहते हैं, अपने भविष्य को पहिले ही से जानकर भाणा कवि ने ३६० कुंडलियाँ लिखकर पड़ोसी के पास रख छोड़ा था, जिसे पढ़ने के बाद बादशाह को अफसोस हुआ था।

कवि की एक कुंडलिया थी :

अमर ना रूई का राजा, अमर ना कल्ली का चेजा।
अमर ना शाह की माया, अमर ना वृक्ष की छाया।
अमर ना छैल की खूबी, अमर ना मियाँ और बीबी।
खिड़की खोल रे ख्याली, दुनियाँ जाय सै चाली।
भाणा राम के गुण गा, दुनियाँ राह लग्गी जा।

(५) सुखीराम—इनका जन्म पुराने पेप्सू के मेंद्रगढ़ जिले के स्याणा गावँ में एक गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। यह हरियाणा के बहुत ही जनप्रिय भक्त कवि थे। भगवाना, मुखराम आदि अनेक योग्य कविशिष्य इनको प्राप्त हुए थे, जो इनकी परंपरा को आगे ले चलने में सफल हुए। इनका एक भजन है :

इस मट्टी कै तलका, भगवत बिन कौन सँगाती ॥ टेर ॥
एक दिन अमर लोक से आया, ना कुछ खर्च खजाना लाया।
आकर कोट किला चिणवाया, देख तमाशा मूल का।
दो दिन का छैल बराती ॥

पच पचकर दिन रैन कमाया, धर्म हेत पैसा नहिं लाया।
जब परवाना जम का आया, ब्याज औ लेखा मूल का।
बछी फिरती है ठोकर खाती ॥

मात पिता सुत बंधू नारी, सब मतलब की खातिरदारी।
ऐ दिन होवे कूच सवारी, करे बिछौना धूल का।
सब सोच करै दिन राती॥

गुरु ब्रह्मचारी कहै कान में, सुखीराम है मगन ध्यान में।
एक दिन चलना है मसान में, है आखिर माँडा धूल का।
उड खाक कहाँ तेरी जाती॥

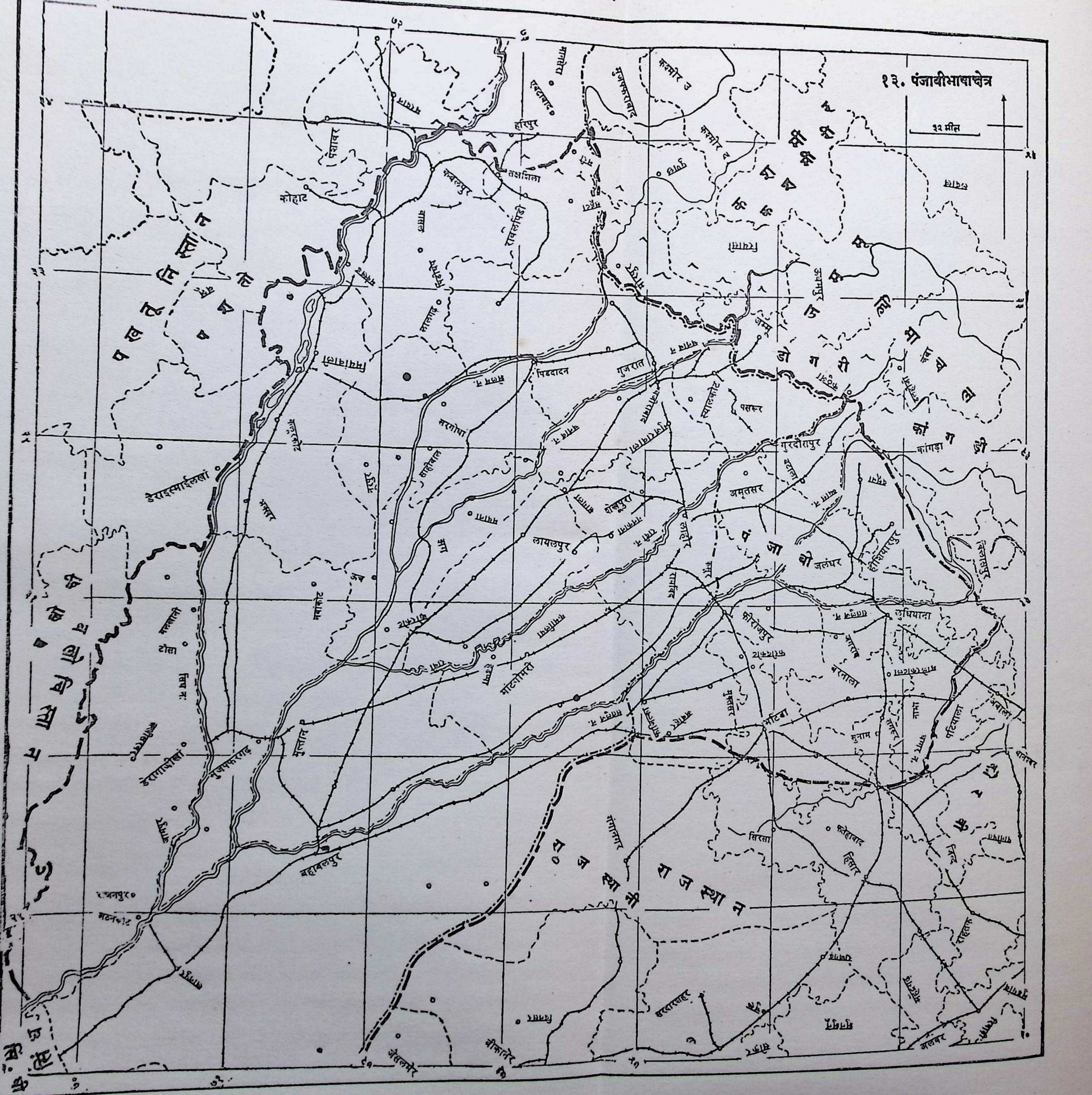
भक्त कवियों के अतिरिक्त हरियाणा में मोहरसिंह, दीपचंद, बख्तावरमल, पीपापुत्री चंद्रावली आदि अनेक कवि हुए हैं।

षष्ठ खंड

पंजाबी समुदाय

१३. पंजाबी लोकसाहित्य

श्री देवेंद्र सत्यार्थी



१३. पंजाबीभाषाक्षेत्र
पेशावर
कोहाट
हरिपुर
तक्षशिला
रावलपिंडी
पिंडदादन
गुजरात
सरगोधा
डोगरी
पसरूर
गुरदासपुर
कांगड़ा
अमृतसर
लायलपुर
पंजाबी
जलंधर
लुधियाना
फीरोजपुर
बरनाला
भटिंडा
सुनाम
पटियाला
अंबाला
सिरसा
फतेहाबाद
हिसार
मांटगोमरी
मुलतान
मुजफ्फरगढ़
बहावलपुर
डेराइस्माईलखां
डेरागाजीखां
टोंसा
गंगानगर
राजस्थानी
राजस्थान
बीकानेर
जैसलमेर
अलवर

(१३) पंजाबी लोकसाहित्य

१. क्षेत्र, सीमा आदि

(१) पंजाबी भाषाक्षेत्र—सन् १९४७ ई० से यह क्षेत्र भारत और पाकिस्तान दो देशों में विभाजित हो गया है, जिन्हें पूर्वी और पश्चिमी पंजाब भी कहते हैं। पर पूर्वी पंजाब में हरियाणा का कौरवीभाषी प्रदेश भी शामिल है।

(२) सीमा—पंजाबी भाषाक्षेत्र निम्नलिखित भाषाक्षेत्रों से घिरा है—उत्तर में डोगरी और काँगड़ी—जो पंजाबी की सहजात बहिनें हैं—पूर्व में कौरवी, दक्खिन में मारवाड़ी और सिंधी, पश्चिम में बलोची और पश्तो। इसकी प्राकृतिक सीमाएँ हैं—उत्तर में हिमालय—शिवालिक की पर्वतश्रेणियाँ, पूर्व में प्रायः घग्घर नदी, दक्खिन में राजस्थान की मरुभूमि तथा सिंध का पठार, पश्चिम में बलोचिस्तान के सुलेमान पर्वत तथा सिंध नद।

(३) जनसंख्या—पंजाबी क्षेत्र का एक लाख वर्गमील क्षेत्रफल और जनसंख्या (२ करोड़ ६८ लाख) जिलों के अनुसार इस प्रकार है :

(क) भारत में—

जिला	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या (१९५१)
१. अंबाला (आंशिक)	७०० (?)	४,००,०००
२. पटियाला	१,५६०	५,२४,२६६
३. बरनाला	१,३०४	५,३६,७२८
४. भटिंडा	२,३१३	६,६६,८०६
५. कपूरथला	६३१	२,९५,०७१
६. फतेहगढ़ साहेब	५२६	२,३७,३६७
७. संगरूर	१,६४८	५,४२,८३४
८. महेंदरगढ़	१,३५७	४,४३,०७४
९. कोहिस्तान (आंशिक)	७०९	१,४७,४०३
१०. होशियारपुर (आंशिक)	२,२२७	१०,६१,९८६
११. जलंधर	१,३३१	१०,५५,६००
१२. लुधियाना	१,२७९	८,०८,१०५
१३. फीरोजपुर	४,१०७	१३,२६,५२०

१४. अमृतसर	१,६४२	१३,६७,०४०
१५. गुरदासपुर (आंशिक)	१,३६६	८,५१,२६४
योग	२३,०३०	१,०२,६४,२३०

(ख) पाकिस्तान में—

जिला	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या (१९४१)
गुरुदासपुर (आंशिक)	१,८४६-१३६६,४८०	३,००,०००
१. लाहौर (आंशिक)	२,५९५	१६,९५,३७५
२. स्यालकोट	१,५७६	११,८०,४८७
३. गुजरात	२,२९६	११,०४,४८७
४. गुजराँवाला	२,३०३	९,१२,२३४
५. शाहपुर	४,७७०	९,९८,९२१
६. शेखूपुरा	२,३०३	८,५२,५००
७. लायलपुर	३,५२२	१३,९६,३०५
८. मांटगोमरी	४,२०४	१३,२९,१०३
९. झंग	३,४१५	८,२१,६३१
१०. मुल्तान	५,६५३	१४,८४,३३३
११. बहावलपुर	१७,४९४	१३,४१,२०९
१२. मुजफ्फरगढ़	५,६०५	७,१२,८४९
१३. डेरा गाजीखाँ	९,३६४	५,८२,३५०
१४. मियाँवाली	५,४०१	५,०६,३२१
१५. अटक	४,१४८	६,७५,८७५
१६. रावलपिंडी	२,०२२	७,८५,२३१
	७७,१२१	१,५०,००,०००
	१० वर्ष की वृद्धि १० प्र.श.	१५,००,०००
		१,६५,००,०००
कुल योग	१,००,१५१	२,६७,६४,०००

२. ऐतिहासिक विवेचन

पंजाबी का आरंभ गुरु नानक (१४६९–१५३८ ई०) और फरीद सानी (१४५०–१५७५ ई०) से माना जाता है। डा० गोपालसिंह के कथनानुसार 'यह मानने को जी नहीं चाहता कि एकाएक यह बोली, जिसका साहित्यिक रूप से विकास नहीं हुआ था, इनके हाथों में पड़कर शक्तिशाली साहित्य का माध्यम

बन गई।'[1] इनसे पहले भी कुछ कवि हुए होंगे। डा० मोहनसिंह ने गोरखनाथ (६४०-१०३६), चरपट (८६०-६६०) अमीर खुशरो (१२५३-१३२५) की मुलतानी मिश्रित लाहौरी में प्रचलित पहेलियों और तुगलकशाह तथा खुशरो खान की 'अलोप वार', मसऊद के दीवान, फरीद शकरगंज (११७३-१२६५) के 'नसीहतनामे', कुछ दूसरे शब्दश्लोक—जो हस्तललित रूप में उपलब्ध हैं— और चंदबरदायी के पृथ्वीराजरासो की गणना पंजाबी में की है।[2] यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लोक साहित्य का निर्माण पंजाबी की एक से अधिक बोलियों में मुसलमानों के आगमन से बहुत पहले से ही आरंभ हो गया था।

पंजाबी की पाँच बोलियाँ उसे समृद्ध बनाने में सहायक हुईं: १. पोठोहारी, २. मुलतानी (पश्चिमी तथा 'लहिंदी'), ३. लाहोरी (माझी, केंद्रीय पंजाब की बोली), ४. लधुयानवी (मालवी), ५. डोगरी। पर आधुनिक पंजाबी साहित्य की रचना केंद्रीय पंजाबी बोली में हो रही है—लाहौर अमृतसर, गुजरांवाला और सियालकोट की बोली ही टकसाली समझी जाती है, भले ही विभिन्न लेखक इस साहित्यिक माध्यम पर जहाँ तहाँ अपनी मातृभाषा की छाप लगाते हुए केंद्रीय बोली को विभिन्न बोलियों की शब्दावली द्वारा सशक्त बना रहे हैं।

औरंगजेब के समकालीन हाफिज बरखुरदार ने अपनी रचना 'मिफताहुल फिक' में सर्वप्रथम इस भाषा के लिये 'पंजाबी' संज्ञा का प्रयोग किया। इससे पूर्व और इससे बहुत पीछे भी इसे हिंदी अथवा हिंदवी कहा जाता रहा। पेशावर के पठान आज भी इसे 'हिंदको' कहते हैं। हामद ने अपनी 'हीर' (११७३ हिजरी, १७५६-६० ई०, में रचित) में इस भाषा को 'हिंदवी' कहा है। पंजाबी भाषा के लिये 'भाखा', लाहौरी, जटकी अथवा हिंदी की संज्ञा दी जाती रही थी। ११३३ हिजरी (१७२०-२१ ई०) में लाहौरनिवासी रुकनुद्दीन ने अपने 'जंगनामा' में इस भाषा के लिये पंजाबी संज्ञा की पुष्टि की थी।

भारत के पास यदि ऋग्वेद ही प्राचीनतम और सर्वाधिक गर्व करने योग्य उत्तराधिकार है, तो पंजाब के पास महान् साहित्य संगम है 'श्री गुरुग्रंथ साहिब' जिसके संकलन का श्रेय सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव को है। गुरुवाणी के अतिरिक्त इसमें अनेक भक्त कवियों की रचनाएँ भी उपलब्ध हैं, जिन्हें चुनते समय इस प्रकार का कोई पूर्वाग्रह संकलनकर्ता के संमुख नहीं रहा कि अमुक कवि का जन्म नीची जाति में हुआ और अमुक का उच्च जाति में।

[1] डा० गोपालसिंह : पंजाबी साहित्य का इतिहास, पृ० २४।
[2] वही, पृ० ४०-४१।

श्री गुरुग्रंथ साहिब में संकलित वाणी आज पंजाब की हृदयभाषा कही जा सकती है, क्योंकि इसमें विभिन्न शब्दावलियों का संगम रहते हुए भी इसका मूल स्वर एकता का प्रवर्तक है। इस महाग्रंथ के अंतिम श्लोक का भाव सुंदरवाणी में पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव कहते हैं : 'यह एक परोसे हुए थाल के सदृश है, जिसमें तीन वस्तुएँ उपलब्ध हैं : सत्य, संतोष और विचार। इन तीन वस्तुओं को परस्पर जोड़ने के लिये चौथी वस्तु है 'नाम'। यह समूचा भोजन आत्मा के लिये प्रस्तुत किया गया है। यह किसी विशेष संप्रदाय अथवा प्रदेश के लिये नहीं है। यह मात्र सिक्खों के लिये ही नहीं, समस्त जनसमुदाय और देशों के लिये है।

श्री गुरुग्रंथ साहिब में शेख फरीद की कविता का विशेष स्थान है। कुछ आलोचक फरीद को पंजाबी का आदिकवि मानते हैं। फरीद की कविता पर 'लहिंदी' की छाप है :

फरीदा जे तैं मारन मुकीयाँ, तिन्हाँ न मारे घुम्मि।
आपनड़े घर जाइऐ, पैर तिन्हाँ दे चुम्मि॥

(हे फरीद, जो तुझे मुक्कियाँ मारें, प्रतिकार के लिये तू उन्हें मत मार। उनके पैर चूमकर अपने घर चला जा।)

यद्यपि ग्रियर्सन का 'लहिंदी' को पंजाबी से अलग मानना किसी भी दृष्टि से युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता, तो भी पंजाबी भाषा के संबंध में उनका मत उल्लेखनीय है : 'पंजाबी नाम ही अपना आशय बता रहा है। इसका अर्थ है पंजाब की बोली।...पंजाबी के दावे का आधार अधिकांश इसके उच्चारण के अनुसार लिखे जाने और हिंदी में इसकी शब्दावली उपलब्ध न होने के कारण है। पंजाबी के साधारण शब्द भी हिंदी में नहीं मिलते, जैसे 'पिओ' (पिता), 'आखणा' (कहना), 'इक्क' (एक) आदि।......पंजाबी किसी भी विचार को अपनी शब्दावली द्वारा व्यक्त कर सकती है। यह पद्य और गद्य की भाषा है[1]।'

ग्रियर्सन से मतभेद प्रकट करते हुए सन् १९०८ में 'इंडियन एंटिकुएरी' (पृ० ३६०) में 'लहिंदी' को पंजाबी के अंतर्गत मानने पर बल दिया गया था।

डाक्टर बनारसीदास अपनी पुस्तक 'पंजाबी लिटरेचर' में एक स्थल पर ग्रियर्सन का अनुकरण करते हुए 'लहिंदी' को पंजाबी के अंतर्गत नहीं मानते, पर आगे चलकर वे लहिंदी बोली के कवियों की रचनाओं की भी पंजाबी साहित्य के अविभाज्य अंग के रूप में चर्चा करते हैं।

[1] लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया।

'पोठोहारी' और 'मुलतानी' बोलियों के लिये 'लहिंदी' नाम का सर्वप्रथम उल्लेख टिड्जल ने अपने 'पंजाबी ग्रामर' में किया था। 'पोठोहारी' रावलपिंडी जेहलम प्रदेश की बोली है। 'माझी' (मध्य पंजाब की केंद्रीय बोली) में 'दुआबी' को भी संमिलित किया जा सकता है, जैसा डा० गोपालसिंह का मत है[1]। 'माझी' अमृतसर, लाहौर अथवा 'माझा' प्रदेश की बोली है, 'दुआबी' जालंधर और होशियारपुर की, मालवी (लुधियानवी) में फीरोजपुर, लुधियाना, पटियाला, नाभा, फरीदकोट, जींद और कलसिया की बोली संमिलित है। 'मालवी' से सटी हुई 'पंचाधी' है, जो हिसार, अंबाला और सिक्ख रियासतों के साथ लगते प्रदेश की बोली है। 'डोगरी' जम्मू काँगड़ा प्रदेश की बोली है।

अँग्रेजी युग में लुधियाने के पादरियों की यह चेष्टा रही कि मालवी अथवा मलवई बोली ही पंजाबी की केंद्रीय और टकसाली बोली के रूप में अग्रसर हो, पर इसमें पंजाबी साहित्यसेवियों का योगदान प्राप्त न हो सका।

'कंपैरेटिव ग्रामर' के लेखक बीम्स लिखते हैं—'पंजाबी में गेहूँ के आटे का स्वाद है, जो पूर्वी प्रदेश की चमड़े में बँधी और पंडितों के पीछे प्रवाहित बोलियों की अपेक्षा कहीं अधिक स्वाभाविक और चित्ताकर्षक है।

३. लोकसाहित्य

पंजाबी भाषा के लोकसाहित्य का स्वर कहीं कहीं तो इतना उदात्त है कि इसमें शिष्ट साहित्य से होड़ लेने की क्षमता आ जाती है। चाहे श्रृंगार रस को जाग्रत करने की कला हो, या शौर्यवीर्य के अनुरूप कर्तव्यबुद्धि का वीरगान, चाहे संयम और विवेक की टेर, मुदमंगल और पर्वोत्सव का आनंद हो, अथवा प्रवास का पराक्रम, सर्वत्र पंजाबी लोकसाहित्य के पात्र प्रयोगवीर बनकर सामने आते हैं। इसमें धार्मिक तत्व भी हैं और सामाजिक अनुशासन भी। यदि अगोचर वस्तुओं का रहस्य खोलनेवाली लोककथाएँ मिलेंगी, तो लोकोक्तियों में मंत्रद्रष्टाओं के बोल भी हाथ लगेंगे। जिज्ञासा मानो रंगमंच से पर्दा उठाकर सारी जीवनलीला देख लेना चाहती है। जन्ममरण का समूचा रहस्य जानने की प्रवृत्ति लोककथा की घुट्टी में मिली रहती है। सियार और भेड़िए, बैल और कौवे तथा न जाने कौन कौन से पशु-पक्षी लोककथा के परिवार के सदस्य दीखते हैं। गावों में लोककथा को चिरकाल से प्रतिष्ठा का पद प्राप्त है, वैसे ही जैसे लोकजीवन लोकगीत की रंगस्थली है।

नानक और फरीद के बहुत पहले से पंजाबी लोकसाहित्य की धारा प्रवाहित हुई होगी। यह पंजाबी साहित्य की सबसे बड़ी विरासत है। पंजाबी कविता की

[1] डा० गोपालसिंह : 'पंजाबी साहित्य का इतिहास', पृ० २७

पूर्वपीठिका खोजते समय हमारा ध्यान उस लोरी की ओर जाता है, जो आज भी पंजाबी माँ के ओठों पर आ जाती है। पंजाबी कहानी लेखक भी अब लोककथा का राष्ट्रीय महत्व समझने लगे हैं। गावँ की नस नस में लोककथा का समावेश है। इसमें आनंद भी है और ज्ञान भी। इसमें गावँ की संस्कृति का परिपूर्ण चित्र रहता है। सब प्राणियों के साथ गावँ का प्राणी एकरूप हुआ दिखाई देगा। पशुपक्षी भी मनुष्य की भाषा समझते और बोलते हैं।

पंजाबी लोकसाहित्य गद्य और पद्य दोनों रूप में मिलता है।

४. गद्य

गद्य में लोककथाएँ और मुहावरे आते हैं।

(१) लोककथाएँ—देश विदेश की लोककथाओं में बारह कोस पर भाषा बदलने की बात कही जाती है, पर लगता है, मानवहृदय की भाषा तो सहस्रपाद और सहस्रबाहु मानव की भाषा है। देशकालानुरूप परिवर्तनों को तो छूट देनी ही पड़ेगी। पर इन सब विविधताओं के पीछे एक ही मानव आत्मा का चमत्कार दिखाई देता है। उदाहरणार्थ 'जूँ जूँ की लड़ाई' नामक लोककथा का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है:

(१) जूँ जूँ की लड़ाई

इक वेर इक तलाअ ते दो जूआँ[1] कपड़े धोण गईआँ। कपड़े धोदियाँ धोदियाँ[2] ओहाँ दी किसे गल्ल[3] ते लड़ाई हो पई। ओहाँ दोहाँ ने इक दूजी नूँ आपणीआँ डमणीआँ[4] मारनीआँ शुरू कर दिचीआँ[5]। नतीजा एह निकलिआ कि दोवें जूआँ मर गईआँ। जूआँ लहू पी पी के मोटीआँ ताजीआँ होईआँ पईयाँ सन[6]। ओहाँ दे लहू नाल सारा तलाअ रत्ता[7] लाल हो गिया।

थोह्ड़ी देर पिच्छों इक्क तोता तलाअ ते पाणी पीण आइआ। पाणी लहू नाल[8] रत्ता लाल होइआ पिआ सी। उसने तलाअ तो पुच्छिआ—'तलाअ, तलाअ, सवेरे मैं पाणी पीण आइआ साँ,[9] ताँ तूँ दुद्ध वरगा[10] चिट्टा[11] सी,[12] हुण[13] क्यों रत्ता हो गिएँ ?'

तलाअ ने अग्गो आखिआ[14]:

जूँ जूँ दी लग्गी लड़ाई।
जूँ का पेट नदी शरणाई।
तोता लँगड़ा।

[1] जूएँ। [2] धोती। [3] बात। [4] थापियाँ। [5] दीं। [6] थीं। [7] रक्तिम। [8] से। [9] था। [10] सदृश। [11] सफ़ेद। [12] था। [13] अब। [14] कहा।

तोता ओसे वेले लँगड़ा हो गिआ ते पाणी पीके लँगड़ाँदा लँगड़ाँदा वापस मुड़ पिआ। राह विच उसनूँ इक काँ मिलिआ। उसने तोते तूँ लँगड़ा के तुरदिआँ वेखिआ तो उस तोते तों पुच्छिआ—'तोतिआ, हुणे ते चंगा भला पाणी पीण गिआ सी। से हुण तैनूँ की हो गआ ?'

तोते ने सारी गल्ल दस्सी[1] :

जूँ जूँ दी लग्गी लड़ाई
जूँ का पेट नदी शरणाई
तोता लँगड़ा काँ काणा।

काँ उसे वेले काणा हो गिआ, ते उड्डके पिप्पल ते जा बैठा। पिप्पल ने काँ तों पुच्छिआ—'काँवाँ, काँवाँ, एह की तेरे नाल बणी ? हुणे ते तूँ चंगा भला गिआ सी, ते हुणे काणा हो गिआ ऐ ?'

काँ ने दस्सिआ :

जूँ जूँ दी लग्गी लड़ाई
जूँ का पेट नदी शरणाई
तोता लँगड़ा काँ काणा
कोझा होइआ सारा लाणा
पिप्पल पत्ता इक्क न रेह।

पीपल के सारे पत्ते उसे वेले झड़ गए। इक तेली इधरों लंघिआ ते पिप्पल नूँ इंझ छाँरिगआ होइँआ वेखकैं[2] पुच्छण लागा—'पिप्पला पिप्पला, हुणे मैं लँघिआ साँ, ते तूँ हरा भरा सी। हुण तेरे ते की बिपता आ पई ?'

पिप्पल ने दस्सिआ :

जूँ जूँ दी होई लड़ाई
जूँ का पेट नदी शरणाई
तोता लँगड़ा इक्क न रेह
तेली लँगड़ादा।

तेली उसे वेले लँगड़ा हो गिआ। तेली लँगड़ाँदा लँगड़ाँदा उसे वेले बाणीएँ दी हट्टी ते गिआ। ओह बैठाँ तरकड़ी नाल सौदा तोल रिहा सी। बाणीएँ ने तेली तूँ पुच्छिआ—'तेलीआ, तेलीआ, तेरी लत्त नूँ की हो गिआ ? हुणे ते चंगा भला टुरदा फिरदा सी।'

[1] बतलाई। [2] देखकर।

तेली ने सारी गल्ल दस्सदियाँ आलिआ :

जूँ जूँ दी लग्गी लड़ाई
जूँ का पेट नदी शरणाई
तोता लँगड़ा काँ काणा
कोभ्फा होइआ सारा लाणा
पिप्पल पत्ता इक्क न रिहा
तेली लँगड़ा

बाणीएँ दी पिठ्ठ नाल छाबड़े तरकड़ी दे। उसे समें तरकड़ी दे छाबे बाणीएँ दी पिठ्ठ नाल जुड़ गए।

(२) लोकोक्तियाँ—

१—ओह माँ मर गई जो दही नाल टुक्क देदीं सी—वह माँ मर गई जो दही के साथ रोटी देती थी।

२—उच्चों बीबीआँ दाढ़ीआँ, विचो काले काँ—ऊपर से शरीफों की सी दाढ़ियाँ, बीच से काले कौए।

३—उद्धल गइआँ नूँ दाज कोण देंदा है?—जो उढ़र गईं उन्हें दहेज कौन देता है?

४—ओहो तुणतुणी ओहो राग—वही तुनतुनी वही राग।

५—ऊठा, चढ़ाई चंगी कि लहाई? हर दू लानत।—अरे ऊँट, चढ़ाई अच्छी या ढलान?—दोनों पर लानत।

६—आपणा घर सो कोहाँ तों वी दिसदा है—अपना घर सौ कोस से भी दीखता है।

७—अग्ग खाए अँगियार हग्गे—आग खाए अंगार हगे।

८—आ लड़ाईए वेहड़े वड़—आ लड़ाई, आँगन में घुस।

९—अकलाँ बाभों खूह खाली—अकल बिना कुआँ खाली।

१०—आरी नूँ इक्क पासे दंदे ने संसार नूँ दोहीं पासीं—आरी के एक तरफ दाँत हैं, संसार के दोनों तरफ।

मुहावरे—कतिपय पंजाबी मुहावरों के भाव भी देखिए :

१—उडार होना—होशियार होना।

२—उद्धल जाना—स्त्री का परपुरुष के साथ भाग जाना।

३—अलख मुकाउणी—नष्ट करना।

४—आढा लाउणा—किसी से होड़ लेना (झगड़ना)

५—अटेर के लै जाना—ठगना।
६—सिर कड्ढणा—जीत जाना।
७—हड्डा विच पाणी पै जाणा—बहुत मट्ठर होना।
८—हत्थीं छावाँ करनीआँ—आदर करना।
९—कच्चा होणा—लज्जित होना।
१०—खंड खीर होणा—परस्पर घुल मिल जाना।

५. पद्य

पद्य लोकगाथा (पँवाड़ा, वार) और लोकगीतों के रूप में मिलता है।

(१) लोकगाथा—वीरगाथा काल में कवियों ने उत्तर भारत में अनेक जनपदों की बोलियों में 'पँवाड़ा' (पँवारा) लिखकर वीरों को अर्घ्य देते हुए युद्धवर्णन के रूप में काव्य की एक शैली को जन्म दिया। पंजाबी में पँवारा का पर्यायवाची है 'वार'। डा० मोहनसिंह के मतानुसार पंजाबी साहित्य में सबसे पुरानी 'वार' है अमीर खुसरो (१२५४–१३२५) द्वारा रचित 'तुगलक शाह और खुसरो खान की लड़ाई की वार।' फिर 'राय कमाल की माँज की वार', 'टुंडे असराजे की वार', 'सिकंदर इब्राहीम की वार', 'लला बहिलीमा की वार', 'हसने महिमे की वार', 'मूसे की वार', 'मलिक मुरीद और चंदरहड़े सोहिआँ की वार', 'जोधे वीरे की वार' और 'राणा कैलामदेव मालदेव की वार' आदि की रचना हुई जिनकी लय पर गुरु अर्जुनदेव ने 'श्री गुरुग्रंथ साहिब' में दी गई वारों के गायन करने का परामर्श दिया है। इनमें से कुछ की रचना अकबर के युग में हुई, शेष गुरु अर्जुनदेव के समकालीन भाटों और वीर रस के कवियों द्वारा रची गईं। वारों की इस परंपरा में गुरु गोविंदसिंह ने 'चंदी की वार' प्रस्तुत की, तो नजाबत 'नादिरशाह की वार' लिखकर यशस्वी हुआ। कादिरयार ने 'वार सरदार हरिसिंह नलवा' लिखी और पीर मुहम्मद ने 'चट्ठियाँ की वार'। शाह मुहम्मद ने 'वार' का छंद तो नहीं अपनाया, पर उसने 'बैंत' छंद में 'जंग सिघाँ और फिरंगीआँ' लिखकर 'वार' की परंपरा में नया योगदान दिया।

नजाबत रचित 'नादिरशाह की वार' को पंजाबी भाषा के शिष्ट साहित्य में स्थान मिलने से पूर्व वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से मिरासियों और अन्य लोकगायकों द्वारा गाई जाती रही। आज भी गावँ गावँ घूमनेवाले गायकों में नजाबत की यह 'वार' गानेवाले मिल जायँगे। नजाबत का जन्म मटीला हरलाँ (जिला शाहपुर) के एक राजपूत परिवार में हुआ था। १८वीं शताब्दी के अंत में, नादिरशाह द्वारा दिल्ली पर आक्रमण होने से कोई पचास वर्ष बाद उक्त वार लिखी गई। सन् १९२५ से पूर्व पंडित हरिकृष्ण कौल ने पंजाबी भाषा की इस बहुमूल्य वार

को लिपिबद्ध करके प्रकाशित कराया।[1] फिर बाबा बुधसिंह ने इसे 'बंबीहा बोल' (१९२५) में संमिलित किया। डा० गोपालसिंह लिखते हैं : 'अभी पंजाब पर दुर्रानियों का दबदबा था, इसलिये इसमें नादिरशाह के कत्ल-ए-आम का उल्लेख नहीं मिलता। इसका एक कारण यह भी हो सकता है, जैसा बाबा बुधसिंह ने बतलाया है, कि वार में नायक का यश गाया जाता है, उसके दुर्गुणों की निंदा नहीं की जाती। इसलिये कवि ने नादिर की वीरता को उभारा है, उसके अकारण रक्तपात की चर्चा नहीं की। यह 'वार' वीर रस को भली प्रकार उभारती है, पर इसमें ऐसे शब्द भी मिलते हैं जो या तो निरर्थक हैं, या बाकी को मिश्रित बना देते हैं। छंद और तुकों में कमी बेशी है। हो सकता है, स्मरण किए जाने के कारण मीरासियों ने इसमें मिलावट कर दी हो। पर कई स्थलों पर तो भाषा, उपमा और भावुकता की झलक देखकर हमारे रक्त में उबाल आने लगता है। छंद भी एक ही प्रकार का नहीं है, जिसमें पता चलता है कि कवि को एक ही छंद से कविता में एकरूपता फैल जाने का भय था। यह 'वार' ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें नादिर के आक्रमण का वर्णन बड़ी बारीकी से अंकित किया गया है, यद्यपि विदेशी परिस्थितियों के संबंध में कई स्थलों पर भूल की गई है।'[2]

नादिरशाह की वार—का जो रूप बाबा बुधसिंह की 'बंबीहा बोल' में उपलब्ध है, उसमें कुल मिलाकर ६५६ पंक्तियाँ हैं। इसकी रूपरेखा इस प्रकार है : (१) खुदावंद का गुणगान। (२) दिल्ली का इतिहास। (३) तैमूर का आक्रमण। (४) मुहम्मदशाह के दरबार में फूट। (५) दरबारी निजामुल् मलिक की गुप्त मंत्रणा। (६) गुप्त मंत्रणा की प्रगति। (८) 'कल' (कलह ?) और नारद द्वारा उत्तेजना। (७) 'कल' और नारद की परस्पर कलह—कल रक्त पीने की इच्छुक है और अपने पति नारद को कोसती है कि वह निखट्टू है, कभी उसके आहार के लिये मांस नहीं लाता। नारद चिढ़ता है। 'कल' नादिरशाह के पास जाकर उसे उत्तेजित करती है। (९) नादिरशाह की अपने मंत्रियों से मंत्रणा। (१०) नारद द्वारा मुहम्मदशाह को उत्तेजना। (११) नादिरशाह का इस्फहान पर आक्रमण करके कंधार पहुँच जाना। (१२) भारत के अमीरों द्वारा विश्वासघात (१३) नादिरशाह की मंत्री से मंत्रणा। (१४) राजदूत भेजना। (१५) राजदूत का मुहम्मदशाह के दरबार में आगमन। (१६) राजदूत और निजामुल् मलिक की गुप्त मंत्रणा। (१७) राजदूत का नादिर को पत्र।

[1] रायबहादुर पंडित हरिकृष्ण कौल : बैलड आन् नादिरशाह इनवेजन आव् इंडिया (जर्नल आव् द पंजाब हिस्टारिकल सोसाइटी, जि० ६, सं० १)

[2] डा० गोपालसिंह : पंजाबी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५१–५३

(१८) कंधार से नादिरशाह का आक्रमण। (१६) अटक से प्रस्थान। (२०) जेहलम से प्रस्थान। (२१) गुजरात से प्रस्थान और मिर्जा कलंदर वेग से मुठभेड़। (२२) मिर्जा का लाहौर के सूबे को संदेश। (२३) अग्रिम सेना का बदर वेग की आज्ञा से प्रस्थान। (२४) समाचार का लाहौर पहुँचना। (२५) रावी की लड़ाई। (२६) बटाले की सहायक सेना। (२७) लाहौर के नवाब का हथियार डालना। (२८) दिल्ली की अवस्था। (२६) मुहम्मदशाह का नादिरशाह से भेंट के निमित्त बढ़ना। (३०) राजस्थान के अमीर। (३१) निजामुल मलिक का नादिरशाह को पत्र। (३२) संन्यासियों का आक्रमण। और (३३) करनाल की लड़ाई।

'नादिरशाह की वार' के अंतिम अंश 'करनाल की लड़ाई' की कुल मिलाकर २०८ पंक्तियाँ हैं। यहाँ 'काबुल की लड़ाई' का संक्षिप्त रूप दिया जा रहा है :

दोहीं दलीं[1] मुकाबला, रण सूरे[2] गड़कण[3]।
चढ़ तोफाँ गड्डीं ढुकीआँ,[4] लख्ख सँगल खड़कण[5]।
ओह दारू खाँदीआँ कोहली,[6] मण गोलो गड़कण[7]।
ओह दाग पलीते छड्डीआँ,[8] वागं बद्दल कड़कण[9]।
जिउँ दर खुल्हे दोजखाँ[10] मुहँ ताहीं भड़कण[11]।
जिऊँ झंडे मारूँ पंखणं,[12] विच्च बागाँ दे फड़कण[13]।
झड़े तराटे हस्मलाँ,[14] वागं मछलीआँ दे तड़पण[15]।
जिऊँ झल्लीं अग्गाँ लग्गीआँ,[16] रण सूरै तड़कण[17]।
ओह हशर दिहाड़ा वेख के,[18] दल दोवें धड़कण[19]।
अग्गाँ दिआँ धरैं वाणाँ,[20] मारू वज्जिया[21]।
धूकर धत्ती बाणाँ,[22] रण विच्च आण के[23]।
हथिआर बड्डा जरवाणा[24] बेहद मखौलिआँ[25]।
ओह अहिरण वाँ वदाणाँ,[26] सिर ते कड़किया[27]।

[1] दोनों दलों में। [2] रण में शूरवीर। [3] गर्जन कर रहे हैं। [4] तोपें गाड़ियों पर चढ़ाकर आ गईं। [5] लाखों जंजीरें झंकृत हो उठीं। [6] वे बहुत बारूद खाती हैं। [7] मन मन भर के गोले गर्जन कर रहे हैं। [8] वे पलीते का दाग छोड़ती हैं। [9] बादल सदृश कड़कती हैं। [10] जैसे दोजख का द्वार खुल जाय। [11] उनके मुहँ भड़कते हैं। [12] जैसे युद्ध के पंखोंवाले झंडे हों। [13] बागों में फरफराते हैं। [14] त्राण और साहस झड़ गए। [15] मछलियों के सदृश तड़पते हैं। [16] जैसे आग लगकर भड़क उठे। [17] रण में शूरवीर तड़फते हैं। [18] हवा का दिन देखकर। [19] दोनों दल धड़कते हैं। [20] वाण मुप-मुंह छूट रहे हैं। [21] मारू बाजा बज उठा। [22] वाण गूँज रहे हैं। [23] रण में आकर। [24] बड़ा जबर्दस्त हथियार। [25] बेहद मसखरा। [26] वह अहरन पर बोल उठा। [27] सिर पर कड़क उठा।

जिवें ढाहे बाग तरखाणाँ,[1] तटछुण गेलीआँ[2] ।
उड्ड जाँदे वेण पराणाँ,[3] मुणसाँ ते घोड़िआँ[4] ।

(२) लोकगीत—पंजाब के लोकगीत बहुत मधुर और नाना भाँति के हैं, जिनमें कुछ यहाँ दिए जाते हैं :

(१) श्रमगीत—

(क) चरखा—

घूँ घूँ चरखिया, लाल पूणी कत्ताँ कि ना । कत्त बीबी कत्त ।
दूर मेरे सौहरे[5] मैं वस्साँ कि ना ? वस्स बीबी वस्स ।
दिल दुख्खाँ साड़िआ[6] दुख्ख दस्साँ कि ना ? दस्स बीबी दस्स ।
ढोल[7] ए इजाणा[8] दस्स वस्साँ कि ना ? वस्स बीबी वस्स ।

(ख) त्रिंजण—[9]

मेरा चरखा त्रिंजणाँ दा सरदार नी माए ।
कीहने घड़िया सी चरखा इस परवार[10] नी माए ।
चाची सीतीआँ गुड्डीआँ सुनिआरे घड़िआ हार ।
तरखाणाँ[11] ने घड़िआ चरखड़ा मेरा त्रिंजणाँ दा सरदार ।
मेरा चरखा त्रिंजणाँ दा सरदार नी माए । कीहने० ।
कौण ताँ खेडेगी[12] गुड्डीआँ कौण पहने जड़ाऊ हार ।
कौण कत्तेगी मेरा चरखड़ा त्रिंजणाँ दा सरदार । मेरा० ।
भतरीजीआँ खेडण गुड्डीआँ मेरी भूआँ[13] ताँ पहने हार ।
भाबो[14] कत्ते मेरा चरखड़ा त्रिंजणाँ दा सरदार नी माए । कीहने० ।

(२) संस्कारगीत—जन्म, विवाह आदि संस्कारों के पंजाबी गीत बहुत सुंदर होते हैं ।

१ जैसे बागों में वृक्ष के गिर जाने पर तरखान । २ गोलियाँ छीलते हैं । ३ नयन प्राण उड़ जाते हैं । ४ मनुष्यों और घोड़ों के । ५ ससुराल । ६ जला । ७ ढोल, ढोला, ढोलन तीनों पति के लिये प्रयुक्त होते हैं, अनेक स्थलों पर प्रेमी की ओर संकेत रहता है । इसी से गीतों के एक विशेष प्रकार का नाम भी ढोला पड़ गया है जिसमें विरह मुख्य विषय रहता है । ८ कम उमर । ९ त्रिंजण—चरखा कातनेवालियों का समूह । चिरकाल से पंजाब में यह प्रथा चली आती है कि गली की स्त्रियाँ और कन्याएँ किसी घर में नियत समय पर मिलकर अपने अपने चरखे पर सूत कातती हैं । त्रिंजण की चरखा गोष्ठी में चरखे की घूँ घूँ के ताल पर गीत गाए जाते हैं । १० परिवार । ११ बढ़ई । १२ खेलेगी । १३ बुआ । १४ भाभी ।

(क) जन्मगीत—

होलर[1]

सुन सुन रे होलर के चिमने के बाप,
सर्व सुहागन जच्चा रानी क्या मंगै राम ?
सुंढ[2] सथवा मंगा,
मूँग मंगा जच्चा नूँ हरे हरे,
कड़ाही दे पिश्रा मंडीश्रा[3] दी, सुकेते[4] दी मंगा,
चमचा धुर[5] मुलतान दा राम।
धिश्रो जौरे सुरीश्राँ दा, गऊश्राँ दा मंगा,
इक्क गोला दूश्रा गुण करे राम।
धिश्रोजो रे श्रपने पिता से मंगा,
हम से रे भेजा चाहिए हरे राम।
श्राप मेरा गढ़ दिल्ली, चहुँ कूँटाँ दा राश्रो,
वीर मेरा बाला भखना[6] राम।
लिख लिख वात बावल तूँ पुचा,
बोटी नूँ बालक जनमिश्राँ राम।
भैजाँगा बेटी, हस्ती लदा, लाडो गड्ड लदा,
उप्पर गागर धिश्रो दी राम।
कूणा पलंग डहा,[7] जित्थे मेरी जच्चा रानी सुख राम।
माड़ी[8] रे पिश्रा, रे लाला, ढोल धरा।
बालक जनमिश्रा सारा जगा सुने राम।
मोतियादे रे पिश्रा, रे लाला, चौक पुरा
जित्थे मेरी जच्चा रानी पब्ब धरे राम।
रुठड़ी रे पिश्रा मेरी सस्स नूँ, नवाए तूँ मना,
सुंढ पंजीरी मेरी सो करें, रे राम।
बालक नूँ सब गहने, जी सब गहने करा
ताँ मेरा भंड भंडूला वेखणा[9] हरे राम।

[1] होलर—पुत्र जन्म का गीत। पूर्वी उत्तर प्रदेश में इनके लिये 'सोहर' की संज्ञा दी जाती है। कौरवी, मालवी श्रादि में भी होलर ही नाम है। पंजाब के होशियारपुर जिले में इन्हें 'भुंजने' कहते हैं। कहीं कहीं 'सोहिले' कहने की भी प्रथा है। [2] सोंठ। [3] मंडी। [4] सुकेत नगर। [5] मुल्तान। [6] भोला। [7] लाल। [8] श्रटारी। [9] देखना।

(ख) विवाहगीत—

(१) सुहाग[1]—

बेटी चन्नण[2] दे ओहले लाडो किउँ खड़ी ?
नी जाइंए, चन्नण दे ओहले[3] लाडो किउँ खड़ी ?
मैं ताँ खड़ी साँ बाबल जी दे वार,[4] कनिआँ कुआर,
बाबल, वर लोड़ीए।
नी जाईए, केहो जेहा[5] वर लोड़ीए ?
नी लाडो, केहो जेहा वर लोड़ीए ?
बाबल, जिउँ तारिआँ विचो चन्न[6] चन्नाँ विचों कान्ह,
कन्हइआ वर लोड़ीए।

बाबल इक्क मेरा कहना कीजिए, मैनूँ राम रतन वर दीजिए।
जाइए[7] ले आँदा वर मैं टोल के,[8] जिउँ रँग कुसुँबा[9] घोल के।
बाबल इक्क मैनूँ पछोताड़ा[10] बड़ा ई, मैं आप गोरी वर सौंला ई।
वारी रामरतन सिर सेहरा, जिउँ बागाँ विच्च खिड़िआ[11] केउड़ा।

बीबी दा बाबल कहे वर घर टोल लईए,
बीबी दी माँ आखे साडी[12] बेटी राज करे।
वस्सना महलाँ दा चुराहे बैठी दातन करे,
सौणा पलगाँ दा गोली बैठी पक्खा झल्ले।
खाणा नुगदीदा रसोई बहि के[13] हुकम करे।

(२) प्रेमगीत—

(क) माहिया[14]—

दो पत्तर अनाराँ दे,
साडे दुक्ख सुणके, रौंदे पत्थर पहाड़ाँ दे।
बागे दा मुलल कोई ना
फुल्ल भावें,[15] निच्च खिड़दे,[16] माहिये जिहा[17] फुल्ल कोई ना।

[1] विवाह के उपलक्ष में कन्या के घर गाए जानेवाले गीत। [2] चंदन। [3] ओट। [4] द्वार। [5] कैसा। [6] चंद। [7] बेटी। [8] ढूँढ़कर। [9] कुसुम। [10] पछतावा। [11] खिला। [12] हमारी। [13] लौंडी। [14] खोल। [15] दाम। [16] पैसा। [17] तीहल, वस्त्र।

सुफने विच आया करो,
जदों मैं सों जावाँ,[1] मेरे माँग जगाया करो।
हड़[2] हँजुआँ[3] दे मुक्कदे ना,
याद विच आए अथारू,[4] हाय कदी वी सुक्कदे ना।
दुद्द मक्खणाँ दी पली होईआँ,
तेरे बिछड़े अंदर, तत्ते थलाँ,[5] उत्ते खली होई आँ।

(ख) ढोला—[6]

असीं एके ते ढोला लहिंदे,[7] साडे सिराँ ते हल पए वहिंदे,[8]
ते असीं पए सहिंदे, जीवें ढोला, सरिए,[9]
चल्ल वे जीआ किते डुब्ब मरीए।
आ ढोला कुज्झ[10] करीए, तेंडा[11] साफा हटी उत्ते धरीए।
ते भुक्खे वीन मरीए, जीवें ढोला।
ढोल कस्सी[12] दा, बाजरे दी रोटी ते प्याला लस्सी दा।

(३) बालगीत—

ये लोरी और खेल-गीतों के रूप में मिलते हैं।

(क) लोरी—

लोरी लक्कड़े तेरी माँ सदक्कड़े,[13] ऊँ-ऊँ ऊँ।
उड्ड वे काँवाँ तैनूँ चूरी,[14] पावाँ, आ निक्किआ तैनूँ खुआवाँ, ऊँ-ऊँ-ऊँ।
लोर मलोरी दुद्द कटोरी, पी ले निक्किआ[15] लोकाँ तों चोरी, ऊँ-ऊँ-ऊँ।
निक्के दी वहुटी मैं ढूँढ़ के लभ्भी, पैरीं[16] पोंचीआँ वाहवा फब्बी, ऊँ-ऊँ-ऊँ।
लोरी देतीआँ चढ़के छज्जे, निक्के दा कचहिरी गज्जे, ऊँ-ऊँ-ऊँ।
लोरी लालाँ, घर भरिआ वालाँ,[17] काके दा आखा मैं मूल न टाला, ऊँ-ऊँ-ऊँ।

(ख) खेल गीत—

चीचो चीच कचोलीआँ घुमियाराँ[18] दा घर कित्थे जे ?
ईचकना पर मीचकनाँ, नीली घोड़ी चढ़ यारो।

१ सो जाऊँ। २ बाढ़। ३ आँसू। ४ आँसू। ५ तपते मरुस्थल। ६ ढोला अथवा ढोल—प्रेमी महिया के समान ही 'ढोला' भी पंजाबी गीतों का एक विशेष प्रकार है। ढोला भी दर्दीली लय में गाते हैं। शैली की दृष्टि से ढोला की अंतिम दो पंक्तियों में माहिया का ही रूप मिलता है। नए नए माहिया और ढोला बराबर जोड़कर गाए जाते हैं। पर कुछ पुरानी राशि भी है, जो नवनिर्मित गीतों से सदा होड़ लेने को तत्पर रहती है। ७ पच्छिम। ८ चलते। ९ लोहे के ढोल। १० कुछ। ११ तेरा। १२ संचित देश। १३ सदके, नौछावर। १४ चूरमा। १५ नन्हें। १६ लच्छे। १७ बालक। १८ कुम्हार।

भंडा भंडारिआँ कितना कुँ भार, इक्क मुट्ठी चुक्क ले दूजी तूँ तीआर।
लुक छिप जाना, मकई दा दाना। राजे दी बेटी आई जे।

(४) नृत्यगीत—

गिद्धा[1]—

गिद्धिआ पिंड वड़ वे
लाम्ह लाम्ह[2] न जाईं।

(५) विविध गीत—

(क) गाँव की मर्यादा—

एस पिंड दिआ हाकमा वे, बहुटीआँ नूँ समझा, बीबा[3]।
दंदीं दंदासड़ा[4] मलदीआँ वे, की अख[5] मटकौणदा राह बीबा।
सुण वे पिंड दिआ हाकमा वे, कुडीआँ[6] नूँ समझा बीबा।
बाहीं ताँ रखदिआँ चूड़िआँ वे, कजले दा की राह, बीबा।
सुण वे पिंड दिआ हाकमा वे, मुंडिआँ[7] नूँ समझा बीबा।

(ख) बचपन—

मैं सी[8] ओदों[9] इक्क दो साल दा, तूँ सी ओदो जनमी।
आपाँ दोवें खेडम चल्लीए, चल्लीए कोडे घर नी।
तूँ मिट्टी दीआँ, रोटिआँ पकाँई, मैं डक्कियाँ दा हुलनी।
मन्न पे तेजकुरे, मैं हत्थ लावाँ चरणीं।

(ग) दिया बाती—

आई सँझाकारनी, संभे[10] दुःख निवारनी।
दीवट वले, सत्तर से बला टले।
दीवट बत्ती, घर आवे खट्टी।
दीवटा बालिआ, बत्ती बला टालिआ।
विष्णु ब्रह्मा महादेव, गौरा पार्वती।
पुत्तर गणेश, पिता महादेव।
घू भगत बाला, हत्थे च करमंडल।
गल सुच्चिआँ दी माल, जो कोई सिमरे[12] सोई निहाल।

१ पंजाबी लोक नृत्य। २ बाहर। ३ भला आदमी। ४ अखरोट का छिलका। ५ आँख। ६ लड़कियाँ। ७ लड़के। ८ थी। ९ तब। १० सब। ११ सुमिरै।

(घ) खारी गाँव—

पिंडाँ विच्चों पिंड छाँटिआँ, पिंड छाँटिया खारी।
खारी दीआँ दो कुड़ीआँ[1] छाँटीआँ, इक्क पतली इक्क भारी।
पतली ते ताँ खट्टा[2] डोरीआ, भारी ते फुलकारी।
मत्था दोहाँ दा बाले[3] चंद दा, अक्खाँ दी जोत निआरी।
भारी ने ताँ विआह करा लिआ, पतली रही कुआरी।
आपे लैजूगा,[4] जीहनूँ लग्गू पिआरी।

(ङ) ललीआँ गाँव के बैल—

पिंडाँ विचों पिंड छाँटिआँ, पिंड छाँटिआ ललीआँ।
ललीआँ दे दो बलद सुणीदे,[5] गल उन्हाँ दे टल्लीआँ[6]।
नठ नठ[7] के ओह मनकी बीजदे, हत्थ हत्थ लग्गीआँ छल्लीआँ[8]।
बंतो दे बलदाँ नूँ पावाँ, गुआरे दीआ फलीआँ।

६. मुद्रित लोकसाहित्य

हिंदी :

संतराम—पंजाबी गीत, १६२७

देवेंद्र सत्यार्थी—धरती गाती है, १६४८ (देखिए "दीया जले सारी रात" और "पृथ्वीपुत्र" शीर्षक लेख)

देवेंद्र सत्यार्थी—धीरे बहो गंगा, १६४८ (देखिए "गाए जा हिंदुस्तान"। "बहिन के गीत", "त्राहिमाम्।" और "लोकगीत कुठाली में" आदि लेख।)

बेला फूले आधी रात, १६४८ (देखिए "हीर राँझा के गीत", "माँ, लोरी सुना", "शहनाई के स्वर", "मयूर और मानव", "पंचनद का संगीत" और "जय गांधी" आदि लेख।)

बाजत आवै ढोल, १६५२ (देखिए "पंजाबी लोकगीत में संगीत तत्व", "खुली हवाओं के मुख से" आदि लेख।)

चाँद सूरज के बीरन, १६५३ (देखिए जहाँ तहाँ अनेक पृष्ठों पर उद्धृत पंजाबी लोकगीत)।

[1] लड़कियाँ। [2] पीला। [3] दूज। [4] ले जायगा। [5] प्रसिद्ध। [6] घंटियाँ। [7] दौड़ दौड़। [8] भुट्टे।

उर्दू लिपि—भाषा पंजाबी :

पंडित रामशरण—पंजाब दे गीत (१६३१)।

गुरमुखी लिपि—भाषा पंजाबी :

देवेंद्र सत्यार्थी—गिद्धा (१६३६)। दीवा बले सारी रात (१६४१)।

हरभजन सिंह—पंजाबण दे गीत (१६४०)।

हरजीत सिंह—नैं झनाँ (१६४२)।

कर्तार सिंह शमशेर—जीऊँ दी दुनिया (१६४२)।

अमृता प्रीतम—पंजाब दी आवाज (१६५२)। मौली ते महिंदी (१६५५)।

अवतार सिंह दलेर—पंजाबी लोकगीत : रूप ते बणतर (१६५४)।

शेरसिंह शेर—बार दे ढोले (१६५४)।

संतोख सिंह धीर द्वारा संपादित—लोकगीताँ वारे (१६५४)।

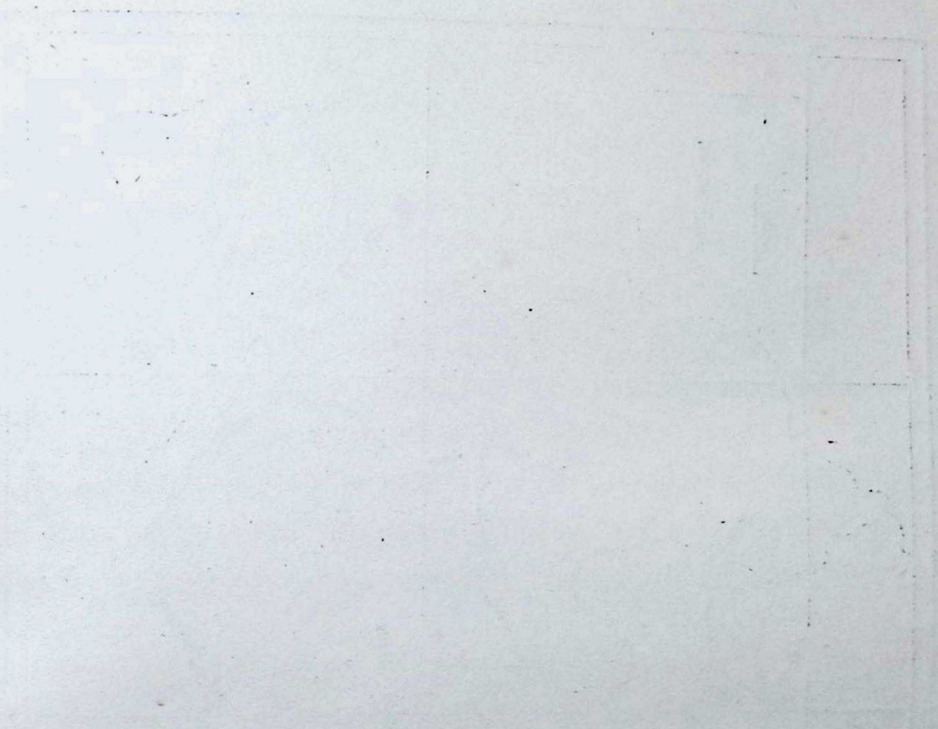
विभिन्न लोकगीत संबंधी लेखों का संकलन : लेखक—संतोखसिंह धीर, हरनामसिंह नाज, प्यारासिंह पद्म, अजायब चित्रकार, कर्तारसिंह शमशेर, बलवंत गार्गी, सुखवंतसिंह ढिल्लों, अवतारसिंह दलेर, जरनेलसिंह अर्शी, अजीतसिंह, बाबा घनश्याम, धर्मसिंह मोही, गुलवंत फारग बाहलवी, प्यारासिंह भोगल और नरेंद्र धीर।

महेंद्रसिंह रंधावा, कुलवंतसिंह विरक्त और नौरंगसिंह—पंजाब दे लोकगीत (१६५५)।

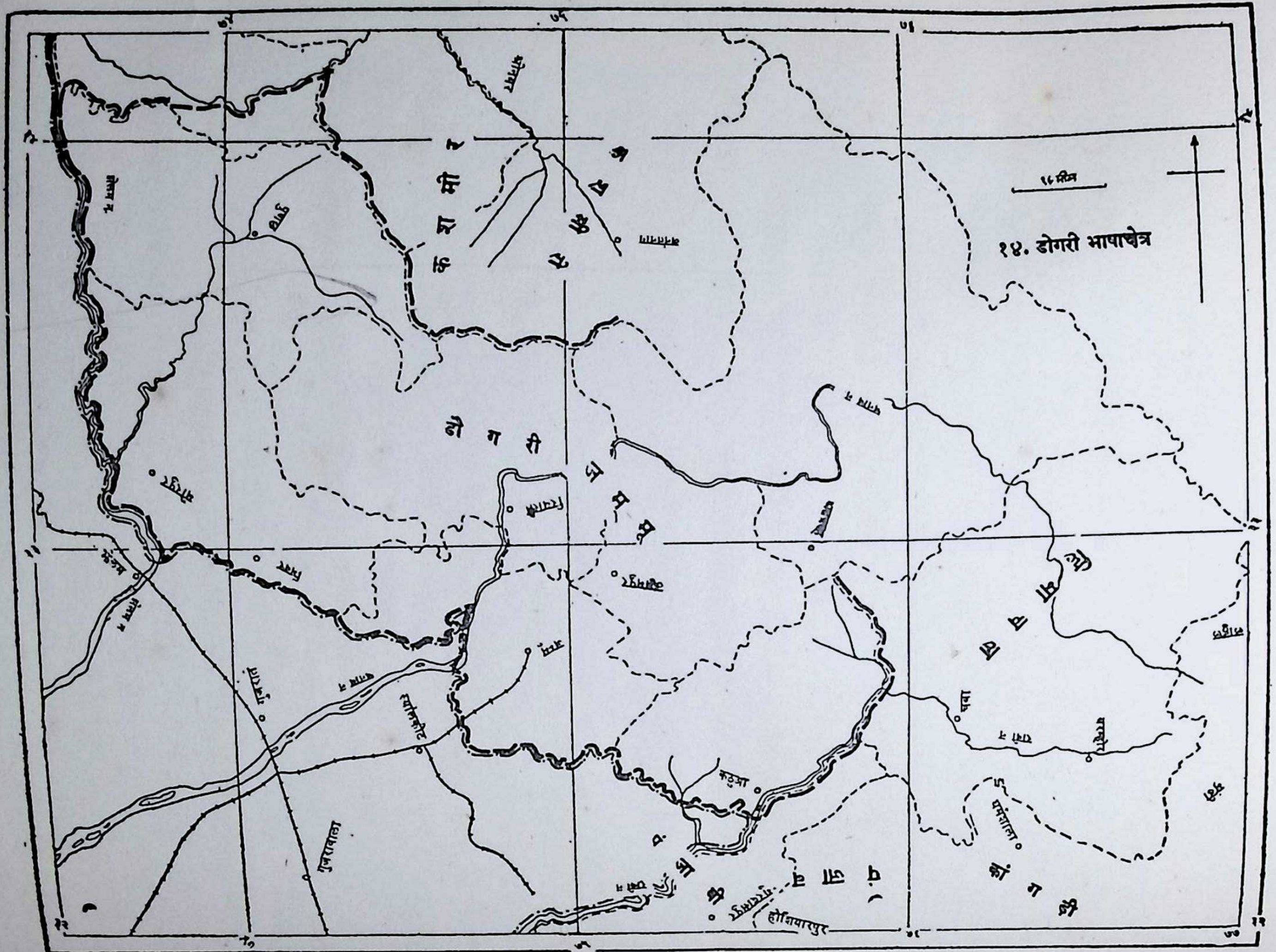
वणजारा बेदी—पंजाब दीआँ लोक कहाणीआँ (१६५४)। पंजाब दीआँ जनोर कहाणीआँ (१६५५)।

१४. डोगरी लोकसाहित्य

श्री रामनाथ शास्त्री तथा श्री ओंकरसिंह गुलेरी



१४—डोगरी



(१४) डोगरी लोकसाहित्य

१. डोगरी भाषा

(१) सीमा—रियासत कश्मीर का वर्तमान जंमू प्रदेश (युद्धविराम रेखा तक), पूर्वी पंजाब का काँगड़ा प्रांत तथा हिमाचल प्रदेश का चंबा खंड और जोगींद्रनगर से शिमला तक का भूभाग, जो काँगड़ा प्रांत से मिला चला गया है, पश्चिमी पहाड़ी का क्षेत्र है। इस प्रदेश के उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में अनेक स्थानीय पहाड़ी बोलियाँ बोली जाती हैं।

डोगरी का क्षेत्र कश्मीरी, चंबियाली, काँगड़ी और पंजाबी से घिरा है जिनमें काँगड़ी और पंजाबी डोगरी की सहोदराएँ हैं।

(२) जनसंख्या—डोगरी और उसकी सहोदरा बोलियाँ बोलनेवालों की संख्या ३० लाख के लगभग है—जंमू प्रांत में ९ लाख, काँगड़ा में १२ लाख और हिमाचल प्रदेश में ९ लाख। इस प्रकार शुद्ध डोगरी बोलनेवालों की संख्या ९ लाख है।

(३) लिपि—डोगरी की अपनी एक लिपि है, जिसे 'टाकरी' या 'टक्करी' कहते हैं। यह लिपि पुरानी है। पंजाबी की गुरुमुखी लिपि का जन्म गुरु अंगददेव जी के द्वारा इसी टाकरी के आधार पर १६वीं शताब्दी में हुआ माना जाता है। टाकरी लिपि में अनेक शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। जंमू के प्रसिद्ध तीर्थ 'उत्तर बहिनी' में जो लेख विद्यमान है, उसपर दिए हुए तिथि संवत् से स्पष्टतया यह लिपि आज से १२०० वर्ष पुरानी सिद्ध हाती है। यह लिपि आज भी जंमू, काँगड़ा तथा चंबा आदि प्रदेशों में व्यापारी वर्ग द्वारा बही खातों में हिसाब रखने के लिये प्रयुक्त होती है। इस लिपि को रियासत जंमू कश्मीर के महाराजा रणवीरसिंह जी ने अपने शासनकाल में (१९वीं सदी का उत्तरार्ध) देवनागरी के अनुकरण पर स्वर मात्रादि से पूर्ण करके समृद्ध किया और इसके टाइप तथा छापाखाने का निर्माण कर अनेक उपयोगी ग्रंथों के उल्थे करवा इस लिपि में प्रकाशित कराए। इधर नए साधकों ने डोगरी के लिये उसकी पुरानी लिपि को अपनाना उचित नहीं समझा। देश की सभी भाषाओं के लिये एक लिपि के आदर्श का समर्थन करते हुए डोगरी साहित्यसृजन के लिये देवनागरी को ही अपनाया गया है।

जंमू में वर्तमान सरकारी नीति के कारण डोगरी की प्रारंभिक श्रेणियों के लिये तैयार की गई पाठ्य पुस्तकों को नागरी और फारसी दोनों लिपियों में प्रकाशित किया गया है। परंतु यह तथ्य पुष्ट ही हुआ है कि डोगरी के अनेक ध्वनिरूप फारसी लिपि में लिखे ही नहीं जा सकते, जैसे--ङूठी (अंगार), ञ्याणा (अजाणा शिशु), घर झंडा (जिसका उच्चारण कर, चंडा है) तथा इसी प्रकार णकारांत शब्द तथा वे शब्द जिनके बोलने में स्वर तरंगित (लो टोनिंग साउंड) होता है।

दूसरी ओर डोगरी के बहुत से शब्द मूल संस्कृत या फारसी रूपों के तद्भव रूप हैं। उन्हें लिखने में देवनागरी (अपनी प्राकृत तथा अपभ्रंश की परंपरा से संबद्ध होने के कारण) बाधक नहीं होती, परंतु फारसी लिपि में विकसित रूप अखरते हैं, और यदि उन्हें उनके फारसी लिपि में प्रचलित तत्सम रूपों के अनुसार लिखें, तो भाषा की स्वाभाविकता को धक्का लगता है।

(४) डोगरी भाषा या बोली—डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने डोगरी के विषय में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। उनका मत है :[1]

"किसी भाषा की उपभाषा (बोली) जानने की परिभाषा है (उस भाषा के बोलनेवालों के द्वारा उस बोली को) बिना कठिनाई के समझ लेना। इस परीक्षण के प्रकाश में डोगरी को न पंजाबी की और न किसी दूसरी पहाड़ी भाषा की बोली कहा जा सकता है। डोगरी को एक स्वतंत्र बोली के रूप में ही ग्रहण करना होगा।"

डोगरी की गणना आज उन्हीं भाषाओं में की जानी चाहिए, जो अपनी क्षमता से अपने साहित्यिक अभाव को दूर करके दिन प्रति दिन संपन्न होती जा रही हैं। डोगरी को जंमू कश्मीर की वर्तमान लोकतंत्रीय सरकार ने जंमू प्रांत की प्रादेशिक भाषा स्वीकार किया है और प्रारंभिक कक्षाओं में अनिवार्य द्वितीय भाषा के रूप में इसका पठनपाठन प्रारंभ हो गया है। डोगरी की पुरानी साहित्यिक परंपराएँ तो थीं ही, परंतु गत १५ वर्षों में इस परंपरा का जो विकास हुआ है उसके आलोक में डोगरी सुनिश्चित रूप से भाषा कहलाने की अधिकारिणी हुई है।

(५) डुग्गर नामकरण—महाभारतकालीन उत्तर भारत में त्रिगर्त (जालंधर, होशियारपुर, काँगड़ा) नाम का एक जनपद था, जिसका शासक महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर था। तीन गढ़ों (गर्त>गाड़) अथवा तीन नदियों के

[1] दि टेस्ट आव् ए डाइलेक्ट, ह्वेन टेकेन ऐज ए फार्म आव् लैंग्वेज इज 'स्पांटेनियस इनटेलिजिबिलिटी'। इन द लाइट आव् दिस टेस्ट डोगरी कैन नाट बी काल्ड ए डाइलेक्ट आव् पंजाबी आर एनी अदर पहाड़ी लैंग्वेज। डोगरी मस्ट बी टेकेन ऐज ऐन इनडिपेंडेंट डाइलेक्ट।'

कारण ही यह नाम पड़ा। प्रदेश में कहीं तीन झीलों या गढ़ों (घाटियों आदि) की ख्याति न होने से तीन नदियों का आधार ही संगत प्रतीत होता है। तीन नदियाँ रावी, व्यास और सतलज तो इस प्रदेश में उस समय भी इरावती (परुष्णी), विपाशा और शतद्रु नाम से प्रवाहित थीं। इन्हीं तीन नदियों (गाडों) के कारण इस प्रदेश को त्रिगर्त कहा गया। तत्कालीन भारतीय प्रदेशों (चेदि, मद्र आदि) के नामों की तरह 'त्रिगर्त' संज्ञा भी लुप्त हो गई। इसी त्रिगर्त प्रदेश के दक्षिण में रावी (इरावती) और चिनाब (चंद्रभागा) के मध्य मैदानी प्रदेश 'मद्र' था। उसके आगे चंद्रभागा और सिंधु के मध्य का प्रदेश, कैकय तथा चंद्रभागा से ऊपर पर्वतीय प्रदेश को लेकर वितस्ता (झेलम) तक अभिसार (वर्तमान पुंछ) था। मद्र और अभिसार की सीमाएँ संभवतः मिलती थीं। नकुल और सहदेव की जननी माद्री इसी प्रदेश की राजकुमारी थी। मद्रदेश संभवतः इरावती और चंद्रभागा के संगम तक फैला हुआ था। शाकल (वर्तमान स्यालकोट—प० पाकिस्तान में) और जंमू नगर मद्र के प्रमुख नगर थे। आज की विभाजक रेखाओं के अनुसार जंमू प्रांत को ही डुग्गर कहा जाता है।

यह निर्विवाद है कि डोगरी बोलनेवालों को 'डोगरा' और डोगरों की वासभूमि को 'डुग्गर' कहना अत्यंत संगत है। प्रश्न यह है कि डुग्गर नाम क्यों पड़ा? डोगरी और डोगरा संज्ञाएँ इसी प्रश्न के उत्तर से संबद्ध हैं। चिरकाल तक यह धारणा रही कि डुग्गर संज्ञा 'द्विगर्त' का विकसित रूप है और यह भी कि मद्रदेश के इस भाग का नाम त्रिगर्त की अनुकृति पर ही पड़ा क्योंकि इस प्रदेश में (जिसे डोगरी का क्षेत्र कहा गया है) दो ही मुख्य नदियाँ बहती हैं— एक रावी (इरावती) और दूसरी चिनाब (चंद्रभागा)। कुछ गवेषकों का मत था कि 'द्विगर्त' संज्ञा का आधार जंमू प्रांत में स्थित मानसर और सरूँई सर नाम की दो सुंदर झीलें हैं। परंतु इतने एकांत में पास पास स्थित इन दो झीलों के आधार पर इतने विस्तृत प्रदेश का नाम 'द्विगर्त' पड़ना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है। त्रिगर्त संज्ञा की अनुकृति भी (यदि अनुकृति तथ्यपूर्ण है) इस आधार का समर्थन नहीं करती। परंतु डोगरी के नए साहित्यिकों ने जब इस विषय पर विचार किया, तो एक अत्यंत रोचक परंतु बलवती शंका उपस्थित हुई। वह यह कि 'गर्त' शब्द का तद्भव रूप प्राकृत, अपभ्रंश तथा वर्तमान डोगरी में भी 'गत्त' है 'गर' नहीं। फिर 'द्विगर्त>द्विगत्त' (दुगत्त>डुगत्त) न बनकर 'डुग्गर' कैसे बन गया। एक मनीषी ने सुझाव दिया कि जिस प्रदेश को आज डुग्गर कहा जाता है, वह बाहरी आक्रमणकारियों की पहुँच से हमेशा दूर रहा—इसीलिये इस स्थान की सुरक्षित भौगोलिक स्थिति के कारण ही इसे 'दुर्गढ़' (दुर्गम के अनुरूप) कहा गया होगा और वही संज्ञा कालांतर में, दुग्गढ़>डुग्गड़>डुग्गर बनकर प्रचलित हो गई। यह विश्लेषण नया और रोचक अवश्य है, परंतु भाषाविज्ञ

इस तथ्य को कैसे मानें कि डोगरी में गर (घर) <गृह का ही विकसित रूप होना चाहिए।

इतिहास पुराणों से इस बात की खोज की गई कि इस प्रदेश को समय समय पर किन किन संज्ञाओं से संबोधित किया जाता रहा। परंतु यह खोज भी सहायक सिद्ध न हुई, क्योंकि पद्मपुराण (रचनाकाल ११-१२ वीं शताब्दी) के पाताल खंड में जंमू प्रांत में देविका नदी का माहात्म्य और उसके तटवर्ती प्राचीन तीर्थों का वर्णन करते हुए इन्हें मद्र देशांतर्गत ही कहा गया है। जैसे :

सूत ने भगवान् शंकर को प्रणाम करके महर्षि शौनक से कहा—हे महर्षि,

शतद्रु सिन्धु नद्योरन्तरं यत्सुविस्तरम्।
मद्रदेश इति ख्यातो म्लेच्छदेशादनन्तरम्॥

उसमें :

विप्राः मधुघृतक्षीरलाक्षालवणविक्रयैः।
जीवन्ति तत्र प्रेष्याश्च, गर्ववन्तो निरग्नयः।
क्षत्रियाश्चौर्यधर्मेण प्रजा-रक्षा-विवर्जिताः।
वैश्या दुष्टसमाचाराः शूद्राश्चाचारवर्जिताः॥

(उस मद्र देश में ब्राह्मण मधु, घी, दूध, लाख, नमक आदि बेचकर निर्वाह करते हैं, सेवा करते हैं और अग्निहोत्र से विमुख हैं, फिर भी घमंड करनेवाले हैं! क्षत्रिय चोरों का सा आचरण अपनाए हुए हैं और प्रजा की रक्षा से विमुख हैं। वैश्यों का आचरण व्यवहार दुष्टों जैसा है और शूद्र आचारभ्रष्ट हैं।)

मद्र की यह दशा देख कश्यप ऋषि ने शिव की आराधना की और उनके प्रसन्न होने पर वर माँगा :

दुराचारप्रसक्तानां मद्रभूमिनिवासिनाम्।
परोपकाराय मया प्रार्थितोऽसि महेश्वर॥

शिव ने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा और आश्वासन दिया :

या शक्तिर्मम शरीरस्था देवी देहार्धमास्रता।
मदाज्ञां परमासाद्य नदी भूत्वा निजांशतः।
पुनातु मद्रान् पृथ्वीं सप्तसागरमेखलाम्॥

इस नदी के उद्गम स्थल का तथा उसके प्रवाहमार्ग पर पड़नेवाले शुद्ध महाक्षेत्र (शुद्ध महादेव) गौरीकुंड, हरिद्वार, रुद्रतीर्थ (तापी तवी से) संगम, ब्याड़ीपुर (बाड़ेयाँ उधमपुर) और महाक्षेत्र मंडल आदि सभी स्थान देविका नदी के ५०-६० मील मार्ग पर आज उसी तरह स्मरणीय धर्मस्थान हैं। निष्कर्ष यह कि पद्मपुराण की रचना तक भी जंमू तथा काँगड़ा प्रदेश को मद्र देश ही कहा जाता रहा।

२. लोकसाहित्य

डोगरों की वीरप्रसू वसुधा स्वयं कलामयी है। उसकी लोकपरंपरा अत्यंत रमणीय है। नृत्य संगीत की रसमयी लीलाओं की रंगस्थली इसी धरिणी ने भारत की पहाड़ी चित्रकला के रूप में वह अनुपम अद्वितीय उपहार दिए थे, जिनकी आभा से भारतीय संस्कृति का रूप चमक उठा है और विश्व में हमारी कीर्ति फैली है।

पहाड़ी चित्रकला तथा पहाड़ी संगीत की पवित्र धाराओं से धुली इस धरती के लोकसाहित्य की थाती भी अनुपम है। गद्यमय लोककथाओं तथा पद्यमय लोकगीतों के रूप में जो सुंदर कलात्मक दाय हमें प्राप्त है, उसका पूर्ण संचय सम्हाल तो अभी तक हम कर नहीं पाए, लेकिन फिर भी जितना कुछ उपलब्ध हुआ है, उसके आधार पर आसानी से कहा जा सकता है कि डोगरी लोकसाहित्य की यह परंपरा बड़ी वैभवपूर्ण है। जीवन की बहुरंगी भावनाओं का, चिरस्थायी आस्था एवं विश्वासों का और जीवन को संवल देनेवाली गूढ़ रहस्योक्तिओं का यह एक अपूर्व कोश है।

डोगरी संस्था जम्मू ने अपनी १५ वर्ष की साधना में इस ओर उचित ध्यान दिया है और इसके साहित्य को प्रकाशित करके इसे स्थायी रूप देने का सराहनीय प्रयत्न किया है। इस साहित्य का कलेवर जितना विशाल है उतनी ही इसमें सजीवता और विविधता भी है। अब हम क्रमशः इस साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं।

३. गद्य

डोगरी लोकसाहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्य में कहानियाँ और लोकोक्तियाँ (कथाएँ) हैं।

(१) लोककथा—

(१) परजा दे भाग—चिरे दी गल्ल ऐ जे इक मुलखा[1] उपर परमेसरे दी करोपी[2] ओइ, ते उत्थें बाराँ बरे रोने आला सोका पेइ गेया। शिवें बी अपनी नाद सांविऐ तरूतनी कन्ने बन्नी उड़ी की जे बाराँ बरे उनेगी ओदी लोड़ नेंइ ही, पौनी बद्दल ताँ ओंदे जे शिवें दी नाद बजदी।

अंबर इयाँ खुश्क ओइ गेया, जियाँ[3] कुसे निरदेइ मानुआँ दियाँ अक्खीं। तलाएँ, छप्पड़ें, बाइं, खूएँ च पानी ते पानी दियाँ कोरजाँ की संबन लगी पेइयाँ।

[1] मुल्क। [2] कोप। [3] जैसे।

दौ त्रै बरे उपरोतली सौली ते हाड़ी दवें फस्लाँ नेइँ ओने करी चौनीं पासें हाहाकार पेइ गेया। बूटे रुक्ख, बेलाँ झोंगराँ मत्याँ सुक्की गे। सेलियाँ धाराँ ले ले करनें आले खेतर खाँ खाँ करदे लब्बन। किश बरै इस्से बिपदा च गे, माल डंगर बी घा पानियाँ[1] बिनाँ दिनो दिन घटदा गेया। मानु बी तड़फी तड़फी मरन लगे। जेड़े कुते बचे बी, ओ सुक्किऐ हड्डिएँ दे पिंजर जान रेइ गे। इयाँ सेइ ओन लगा, जे बारें बरें परेंत इस धरती परा सृष्टि मुक्की जाग, ते परमेसरा गी नमें सिरैया मनुक्ख, पशु ते रुक्खबूटे बनाने पोङान।

इक दिन शिव पार्वती कलाश पर्वता सवाँ गासे रस्ते सेलें निकले ते फिरदे फिरदे उस मुलखे उपर आइ पुज्जे[2] जित्थें काल ते सोकै चौनी कूटें सुन्न मसान पाइ दी ही। जले परड़ोए दा थार दिखिऐ पार्वती हक्की बक्की ओइ गेइ। अन दिखैया, दिखिए ओदे सरफंडे उब्बरी गै। ओने शिवें आसे दिखैया ते हत्थ जौलै करिएँ पुछैया—

'महाराज, ए के गल्ल ? ए बनेआ मुलख ऐ, जित्थें सेला पत्तर गै नेईं, तलाएँ छप्पड़ें च चित्रकड़ बी सुक्किऐ फटी गेया; मनुक्खें वा इत्थें के हाल ओग ? इत्थें ते कोइ चलदा फिरदा जीब कुतै[3] अक्खीं नेइ लब्बदा। गल्ल के ऐ ? मिगी भत्याँ चेता ऐ जे अस प्हैलें बी इक आरी इस्से बचा आए हें, तो ते इत्थें बड़ी रौंस ही···ते महाराज ! दिक्खो आँ···ओ जिमिया पर के हिल्लारदा···तुआइं ओ सुक्के दे खेतरा च ?'

शिव हस्सी पे। आखन लगे, 'भलिए लोके, ए संसार जे ओआ, इत्थें परिवर्तन ओंदे गै रौंदे न। इंदा के आखना। चलो, अस जिस कम्माँ पर निकले आँ··· ।'

पर कुत्थें। पार्वती जनानी ही ते जनानी दी अड़ी। ओने अड़ी वन्न लेइ[4] जिन्ना चिर सारी गल्ल नेंइ सेइ करी ले, उन्ना चिर ओ इक बी अगड़ी नेइँ देग।" शिवें सारी गल्ल सनानी पेइ।

'पार्वती, इस मुलखा पर बाराँ बरे केर साली रौनी ऐ। इत्थें बरखा दी कणी बीं नेइं पौनी। ए मुलख सुबकी जाग ते इत्थें रोने आले किश मरी खपी गै, जेड़े बचे दे न, ओ बी सैकी[5] सैकी मरदे जाङ ण।'

पार्वतिए सूँक सुट्टी ते पुछन लगी—'महाराज। कै रसाली आली गल्ल ते खेर ओइ, पर ओ हल्लने आली चीज के लब्बारदी ऐ ?'

शिव बोले—'पार्वती ! ओ कोइ बचारा दुखी करसान ऐ, ते ओ न ओदे

[1] घास पानी। [2] पहुँचे। [3] कहीं। [4] इनका। [5] धीरे धीरे।

खेतर। उस्सी सेइ ऐ जे बिना बरे हल बाने दा कोइ ला नेइँ, पर बचारा ए सोचिऐ जे ओदे पिछुआँ भागें कन्ने बचने आलेंगीं हल बाने दी जाच गै नेइँ बिसरी जा। अपने इनै भुक्खे माने, त्रियाए मरदे सिरसें बल्देंगी लेइऐ करसानी दी परंपरागी मिटने कोलाँ बचाइ रखने दा जतन करारदा ऐ।'

ए सुनिऐ पार्वती गच जान ओइ ते भूठे फिकरा कन्ने पुछन लगी—'महाराज! ताँ पी बाराँ बरे तुसें बी अपनी नाद नेइँ बजानी ओग! ते···जे बारें पिछुआँ तुसें गी बी नाद बजाने दा थौ नेइं रेया ताँ?'

शिव हे बड़े भोले स्वा दे! पार्वती दी गल्ल मन लग्गी। हत्था च नाद फगड़िऐ आखन लगे—'पार्वती, इनें त्रौं चौं बरें च गे कृते जाच नेइं भुल्ली गे दी ओवे। दिक्खाँ भला।'

शिवे नाद ओठे कन्ने लाइऐ जोरा कन्ने[1] फूक दिची, ताँ प्हाड़ा आस्या काले डिगल गासा पर दरौड़दे आए। औ बरखा ओइ, औ बरखा ओइ जे सबने पासें जलथल ओइ गेया।

रुक्खें बूटें ते बेलेंगी सुरत फिरी गेइ, ते भुक्खा कन्ने दुखी मानुएँ[2] दी अक्खीं च भेद चमकन लगी।

पार्वती ने हस्दे हस्दे शिवें आसै दिखैया ते पुछन लगी—'महाराज ए के? तुस ते आखदे हे, इत मुलखा उपर बाराँ बरे कैरसाली रौनी; ए ते ए बरखा।'

शिव हस्सी पे, ते आखन लगे—'गौरजाँ, परजा दे भाग न्यारे! इंदे अग्गैं विधाता दा विधान बी बदली जंदा ऐ।'

(२) लोकोक्तियाँ, मुहावरे

एक जीवित भाषा में जैसे लोकोक्तियाँ और मुहावरे पाए जाते हैं, वैसे ही डोगरी में भी हैं। उदाहरणस्वरूप यहाँ दस लोकोक्तियाँ और दस मुहावरे दिए जाते हैं :

(क) लोकोक्तियाँ—

दित्ती खत नि खाँ ते कोल्लू चट्टन जाँ

(आदर प्यार से दी गई खली न खाना और फिर कोल्हू चाटने जाना)

जीन्देई डाँगाँ ते मोएदेंई बाँगाँ।

(जीवितों को लाठी प्रहार और उनके मर जाने पर उनके लिये रोना पीटना)

[1] से। [2] मनुष्य।

ओच्छा जट कटोरा लब्बा, पानी पी पी आकरेआ।

(ओछा आदमी संतोष करना नहीं जानता)

उब्बल उब्बल बल्टोइए ते अपने कंडे साड़।

(अशक्त का क्रोध उसे ही जलाता है)

दें होए ताँ अत्ताँ बत्ताँ, रात पवै ताँ चरखा कत्ताँ।

(समय पर काम न करना)

नानी खसम करै, दौतरा चट्टी भरै।

(किसी का दोष किसी के सिर)

अपनिपाँ फिरन कोआरिआँ, ते बगान्नियाँ धरम धियाँ।

(अपना मूल कर्तव्य भुलाकर दंभ दिखावा करना)

डूमनी दी नत्थ, कदें नक्क कदें हत्थ।

(छोटा आदमी कमीनी हरकतें)

अत्थे दियाँ दित्तियाँ कठन होइ जंदियाँ।
खोलना पौंदियाँ दंदें कंते॥

(अपनी भूलों का दंड भोगना)

जागत रोन छाईगी ते बुड्डें चा कलाड़ी दा।

(जरूरतमंदों की जरूरतों की उपेक्षा करके स्वार्थी का अपने सुख की लालसा करना)

(ख) मुहावरे—

नक्क प्राण औने—(नाक में दम होना)
खूदें बज्जना—(सुखमय जीवन बिताना)
सिरा पैरा लोआनी—(निर्लज्ज हो जाना)
लिपलिप करना—(खुशामद करना)
लक्की पाड़—(फूट डालनेवाला)
दंद रीकना—(पराजय स्वीकार करना)
सुई दे नक्के चा निकलना—(बड़े दुःख झेलना)
घर कुआड़ू बनना—(द्रोही होना)
छुट्टन छुट्टना—(बात को बारबार दुहराना)
खल गाह्ने—(घाट घाट का पानी पीना)

४. पद्य

(१) लोकगाथाएँ (पँवाड़े)—मनीषियों का विश्वास है कि राम काव्य और महाभारत के अंतर्गत समवेत अनेक उपाख्यान पहले मौखिक रूप में ही

प्रचलित हुए। अज्ञात लोककवि ही इनके मूल रचयिता हैं। वीरपूजा मानव स्वभाव से बँधी है। ये 'नाराशंसी' गाथाएँ सूतों और कुशीलवों द्वारा उसी प्रकार गाई सुनाई जाती होंगी जैसे आज जंमू में जिचों तथा डीडों की गाथाएँ, काँगड़ा में जरनैल रामसिंह तथा राजवधू रुल्ल के बलिदानचरित्र, उत्तरप्रदेश में आल्हा तथा पंजाब में 'मिरजा साहबाँ' एवं अनेक दूसरे लोककाव्य गावँ गावँ में लोकगायकों द्वारा बड़े उत्साह से गाए जाते हैं।

ये लोकगाथाएँ काव्य के सभी स्वाभाविक गुणों से अलंकृत हैं। इनका कलापक्ष उतना परिष्कृत न हो, लेकिन भावपक्ष की प्रभावशालिता निर्विवाद है। जनता इन्हें सुनते ही झूम उठती है। गीतों के शब्द, उनका स्वरताल उनके प्राणों को छू लेते हैं। सुनते सुनते भोला जनसमूह आत्मविभोर हो उठता है—भावों की तरंगें उसे अपने साथ साथ बहा ले जातीं हैं।

इस लोकगाथा की विविधता दर्शनीय है। मानव मन को जो भावलहरियाँ रोमांचित कर जाती हैं उन सबको हम लोककाव्य में अंकित देखते हैं। धर्म, नीति और मानव के चिरपूजित आदर्शों के लिये बलिदान होनेवाले, देश और जाति के गौरव को ऊँचा करनेवाले वीर त्यागी, इह लोक में मानव कल्याण की भावना से पूजित देवीदेवता, प्यार की अमर रागिनी के स्वरवाणों से विद्ध अनुरागी आत्माएँ, सतीत्व के आदर्श पर बलि होनेवाली सतवंती ललनाएँ—सभी की प्रशस्ति के काव्य सुनने में आते हैं। जीवन के उमंग उत्साह की हर धड़कन को अंकित करनेवाले लोकगीत मिलते हैं।

लड़के लड़कियों के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत चलनेवाले विविध संस्कारों पर, चक्की की घुमर घुमर के ताल पर, खेतों की मेड़ों पर, झरनों के कलनिनाद के साथ स्वर मिलाकर, चरखे पर तार बढ़ानेवाले हाथ की गति के साथ, बच्चों को लोरी देते हुए, प्रतीक्षा की कठिन घड़ियों में हजारों गीतों ने जन्म लिया और जनमन ने उन्हें आगे की पीढ़ियों की धरोहर समझकर सँभाले रखा।

डोगरी पहाड़ी लोकगीतों का उपलब्ध अथवा ज्ञात सामग्री के आधार पर निम्नांकित विभाजन हो सकता है :

(२) कारकाँ, बाराँ—लोककाव्य में इनका प्रचार सर्वाधिक है। लोकगायकों की परंपरा जिन्हें 'जोगी' और दरेस (उर्दू 'दरवेश' का बिगड़ा हुआ रूप) कहते हैं। ये मुसलमान होते हैं। इन गीतों को ये द्वार द्वार जाकर गाते हैं। इनकी आजीविका का यही प्रमुख साधन है।

लोककाव्य की यह विधा लंबे आख्यानों को अपने अंदर सँजोए रहती है। प्राचीन 'नाराशंसी' काव्य की परंपरा इनमें निहित है। कई 'कारकें' और 'बारें'

रात रात भर गाई जाती हैं। इन दोनों नामों में अंतर केवल इस बात का है कि कारकों में उन महापुरुषों की प्रशस्ति रहती है जिन्होंने न्याय, दया, धर्म की रक्षा में प्राणोत्सर्ग किए हैं। चमत्कारी योगी महात्माओं की यशोगाथा के लोककाव्य भी 'कारका' ही कहाते हैं। 'बाराँ' लोककाव्य में उन हुतात्माओं का यशोगान होता है जिन्होंने देश, जाति तथा धर्म की रक्षा के लिये क्षत्रियोचित ढंग से संघर्ष करके आत्मोत्सर्ग किया हो।

डुग्गर में अनेक 'कारकें' प्रचलित हैं जिनमें कुछ प्रमुख ये हैं—बाबा जित्तो, दाता रणु, राजकुमारी रुल्ल, बाबा कौड़ा, मेई मल्ल, सुरगल, सिद्ध गौरिया, बाबा कैल्लू, नागनी, बाबा नाहरसिंह आदि।

प्रचलित 'बाराँ' ये हैं—डीडो (जंमू), रामसिंह जरनैल (काँगड़ा), गुग्गा (जंमू काँगड़ा), जैमल फत्ता, राजा रसालू, अमरसिंह, राठौर, बाजसिंह, जोरावरसिंह।

(क) कारक—

(१) बाबा जित्तो की कारक—आज से ५०० वर्ष पहले, जंमू के राजा अजयदेव के समय में बाबा जित्तो नाम का एक ब्राह्मण जंमू प्रांत में वैष्णवी देवी के त्रिकुटधार के दक्षिण 'गार' नामक ग्राम में पैदा हुआ। काश्मीर में उस समय जैनुल आब्दीन का शासन था। बाल्यकाल से ही वह होनहार बालक अपनी तेजस्विता के कारण आकर्षण का केंद्र बन गया। धार्मिक मातापिता से दाय में उसे वैष्णवी देवी की भक्ति मिली। वह रोज पाँच छह मील पहाड़ी चढ़कर देवी की गुहा में जाता। उसका विवाह करके मातापिता स्वर्ग सिधार गए। एक लड़की जन्मी जिसका नाम रखा 'बुआ कौड़ी'। गाँव में उसे अपनी सचाई और निर्लेप होने के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसकी गुणवती सुशील पत्नी 'माया' बीमार पड़ी और मर गई। शरीकों ने गाँव में उसका रहना असंभव कर दिया। आखिर उसने वह गाँव छोड़ दिया और नन्हीं लड़की के साथ जंमू नगर से ८–१० मील पश्चिम शामाचक्क नामक गाँव में चला आया। वह इलाका उस समय महता वीरसिंह नामक एक जागीरदार के अधिकार में था जो जंमू के शासक का मामा और अभिभावक था। जित्तो ने महता के पास जाकर खेती के लिये कुछ भूमि देने की प्रार्थना की। उस विपन्न ब्राह्मण की इस प्रार्थना का पहले उपहास किया गया, पर अंत में उसके आग्रह पर उसे दंडित करने के लिये झिड़ी नाम का एक बंजर वन्य प्रदेश दे दिया गया। फ़ैसला हुआ कि जित्तो उपज का चौथा भाग भूस्वामी को देगा। एक

दस्तावेज लिखाकर यह निर्णय पक्का कर लिया गया। तरुण जिचो को यह भूमि कृषि योग्य बनाने में असाधारण कष्ट उठाने पड़े।

उद्यम, उत्साह और निश्चय ने मिलकर भूमि तैयार कर ली। पहली बार उस वन्य धरती पर मानव ने हल चलाया और गेहू के बीज बोए। बाबा का पसीना रंग लाया। खेत असाधारण फसल से लहलहा उठा। शामाचक्क में उस फसल की बड़ी चर्चा हुई। जागीरदार ने भी सुना। कान भरनेवालों ने उसे बहकाया, उकसाया और आधा हिस्सा लेने की सलाह दी। फसल काटी गई। खलिहान में सुनहरे गेहूँ का ढेर मुस्कुरा उठा। जिचो ने महता के कारिंदों को बुलाकर 'पाई' (काष्ठमाप) से नापकर चौथाई हिस्सा उसके लिये अलग निकाल दिया। लेकिन वे (कारिंदे) तो आधा भाग लाने का हुक्म पाकर आए थे। झगड़ा खड़ा हो गया। जिचो डरनेवाला नहीं था। उसने घोषणा की कि मेरे हिस्से के गेहूँ का एक एक दाना मेरे खून पसीने की कमाई है, दुनिया में कोई भी मुझे उससे वंचित नहीं कर सकता। महता को खबर हुई। वह अपने चापलूसों के साथ खलिहान में आ धमका और लठैतों को हुक्म दिया कि बलपूर्वक आधा अनाज बोरियों में भर ले। जिचो ने महता को समझाया। न्याय और धर्म की दुहाई दी। लेकिन मदांध लालची न पसीजा। जिचो अकेला और उधर संगठित शक्ति का निरंकुश प्रदर्शन। शारीरिक प्रतिरोध असंभव था। जिचो ने अनाज के अपने ढेर पर खड़े होकर अपनी छाती में खंजर भोंक लिया। उसके जवान लहू के फव्वारे ने उन दानों को रंग डाला।

जालिमों का कलेजा दहल गया। उन्होंने जल्दी से उसकी लाश को एक वृक्ष के खोखले तने में घास फूस से छिपा दिया। जिचो के आत्मबलिदान का यह समाचार जंगल की आग की तरह फैलता गया। उसकी नन्हीं लड़की पिता को ढूँढ़ती हुई खलिहान के पास आई और आखिर कुछ सहायकों की मदद से पिता के शव को ढूँढ़कर उसी खलिहान में चिता बना पिता के शव को साथ लेकर जल मरी। इसके बाद महता के वंश को इस हत्या के कारण अनेक कष्ट उठाने पड़े। उसके सजातीय लोगों में से कइयों ने अदृष्ट आघातों से भयभीत होकर अपनी जाति बदल ली। कुछ मुसलमान तक हो गए। परंतु अंतिम रूप से उन्हें चैन तभी मिला, जब उन्होंने बाबा जिचो की एक पक्की समाधि उसी खलिहान में बनवाई और उसे अपना कुलदेव मानकर बाबा जिचो की पूजा शुरू की। हुतात्मा बाबा दिव्यात्मा हो गया। पश्चिमी तथा पूर्वी पंजाब में तथा जंमू प्रांत में उस हुतात्मा की मान्यता इतनी बढ़ी कि जगह जगह उसके मंदिर स्थापित किए गए और सभी धर्मों, सभी जातियों तथा सभी वर्णों के असंख्य लोग उसकी पूजा करने लगे। बाबा जिचो की 'कारक' के कुछ अंश देखिए :

जित्तो का जन्म

घर रूपो दे ठौगर[1] त्रुट्टे, औंस नराने[2] लाई,
भले नछत्तर जनम बाबे दा, नारें मंगल गाई,
औंदियाँ नारीं गान वदावे, जुड़ बिद्माता[3] गाई,
घुरे नगारे बजदे बाजे, बज्जेऽनंत बदाई ।

× × × ×

अज निकड़ा[4] कल होगा सयाना, दिन दिन जोत सो आई,
पंजें बरें दा[5] उंदा बाबा गलियैं खेडै जाई,
सत्ते बरें दा उंदा[6] बाबा, विद्या पढ़नै लाई,
नमें बरें दा उंदा बाबा ठौगर पूजे जाई ।

× × × ×

खलिहान पर संघर्ष

मजलौ मजली वीरसिंह महता बिच खलाड़े[7] आई,
औंदे मैहते दा आदर करदा, दिंदा भूरा[8] पाई,
दिक्खी ए कनक मनै बिच लोब्बे, छोड़ैया धरम बठाई,
चौथी भावलिया[9] खत लिखेया, अद्दं खत्त बनाई ।

× × × ×

कनक ऐ मती दिन ए थोड़ा, अस लागे सबे रैपाई,
बरते दे बिच भेजैया बाबा, बिच्चौं लाई पाई ।
ईस्सौ[10] मेघ[11] जित्तौ दा कामा, आले दिंदा जाई,
बापू मेरेगी आई लेन देओ, ताँ पी लाए औ पाई ।

(२) दाता रणु—जम्मू शहर से दक्षिणपूर्व की ओर कोई दस मील की दूरी पर बीरपुर नामक चाड़क जाति के क्षत्रियों का एक गाँव है । कोई ३५० वर्ष पहले चाड़कों के दो घड़ों में जमीन के बारे में झगड़ा हुआ । एक घड़ा ताकतवर था । उसने गाँव की बहुत सी जमीन अपने अधिकार में ले रखी थी और दूसरे घड़ेवाले इस बलपूर्वक किए गए अधिकार को चुनौती देते थे । गाँव में एक ब्राह्मण परिवार था, जो अपनी विद्याशीलता और निष्पक्षता के कारण सर्वमान्य था । उसी परिवार के मुखिया दादा ने एक बार इस झगड़े का निपटारा करके जमीन को ठीक ठीक बाँट दिया था । उस परिवार में अब रणदेव नामक एक युवक

[1] ठाकुर, भगवान् प्रसन्न हुए । [2] नारायण । [3] भाग्यदेवी । [4] बालक । [5] वर्ष का । [6] होता । [7] खलिहान । [8] भूरा कंबल । [9] चौथाई बटाई । [10] नाम । [11] मेघ जाति ।

मुखिया था। वह स्वस्थ, सुंदर, तरुण अपने परिवार की परंपरा के अनुसार गावँ में अब भी आदर पाता था। वह विवाहित था, घर में उसकी वृद्धा माता भी थी। जमीन का झगड़ा बढ़ जाने पर एक दिन दोनों घड़े उसके पास आए और न्याय करने के लिये कहने लगे। रणु ने मान लिया। उनके चले जाने पर रणु की माता ने कहा—"बेटा, यह झगड़ा बड़ा उलझा हुआ है। दोनों पक्षों के लोग हठीले हैं, इसलिये तुम इस झगड़े में न पड़ना। लेकिन रणु वचन दे चुका था। उसने झगड़े की चर्चा अपने पिता से सुनी थी और भूमि की सही स्थिति का उसे ज्ञान था।

अंत में एक दिन रणु ने घोषणा की कि आज दोनों पक्ष खेतों में आ जायँ, आज इस झगड़े का निर्णय होगा। गावँवाले तथा दोनों पक्षों के प्रतिनिधि प्रातः खेतों में आ पहुँचे। रणु ने धरती की परख की और एक जगह पर भूमि खोदने के लिये कहा। जमीन फुट डेढ़ फुट खोदी गई तो नीचे से कोयले आदि का विभाजक चिह्न निकल आया। भूमिविभाजक रेखा का यह स्थायी प्रमाण था। कमजोर घड़े को अपने हिस्से की जमीन मिल गई, लेकिन हारा हुआ पक्ष रणु के प्राणों का गाहक बन गया।

दाता रणु को मारने या मरवाने के लिये कई हमले हुए। आखिर एक दिन अपनी ही जाति के एक ब्राह्मण द्वारा सूचना देने पर गावँ लौटते हुए रणु को उन आततायियों ने घेर लिया। रणु घोड़े पर सवार था और हत्यारा मार्ग पर फैली हुई वृक्ष की एक डाल पर छिपा बैठा था। उसके नीचे से घोड़ा गुजरते ही उसने तलवार के एक ही बार से दाता रणु का सिर धड़ से अलग कर दिया। दाता मरकर अमर हो गया। हत्यारे उस निर्दोष आत्मा की हत्या के पाप से बच न सके। उनका जीवन संकटग्रस्त हो गया। आखिर प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने दाता रणु की समाधि स्थापित की और उसकी पूजा करनी शुरू की। जिस तालाब के समीप दाता मारा गया था उसे आज भी 'दाते दा तला' (दाता का तालाब) कहते हैं। उस इलाके में दाता रणु की वैसी ही मान्यता है जैसी झिड़ी में बाबा जित्तो की।

(३) राजवधू रुल्ल (काँगड़ा)—चंबा में गग्गल से कुछ नीचे की ओर गज नामक एक नाला बहता है। उस पहाड़ी नाले से निकलती हुई एक कूहल (छोटी नहर) अब तक तहसील देहरा और काँगड़ा के ग्रामों को सींचती है। इस नहर की भी एक करुण कहानी है जिसपर आधारित एक कारक आज तक इस प्रदेश में बड़ी प्रचलित है। इस कूहल को रुल्ला दी कुल कहते हैं। इसके साथ एक रूपवती सुशील कोमलांगी नारी के बलिदान की कथा संबद्ध है। कथा इस प्रकार है। कोई ३०० वर्ष के लगभग हुए, इस प्रदेश के

राजा ने अपने किसानों की कठिनाई दूर करने के लिये 'गज' नाले से एक नहर खुदवाई। राजा को बड़ा विश्वास था कि उसका यह कार्य प्रजा के कष्ट को दूर कर सकेगा। नदी से आगे दूर मीलों तक लंबी नहर खोदी गई, लेकिन लाख जतन करने पर भी उसका पानी उस नहर में नहीं चढ़ाया जा सका। राजा यत्न करके हार गया। एक दिन राजा को स्वप्न में उसके कुलदेवता ने दर्शन देकर कहा— राजा, नहर में पानी चढ़ाना चाहते हो तो वहाँ अपने किसी जवान प्रिय बंधु की बलि दो। राजा ने सोचा, एक ही बेटा है, उसके बिना वंश निर्मूल हो जायगा। बेटी है, लेकिन महारानी अपनी बेटी की बलि चढ़ाने के लिये सहमत न हुई। आखिर राजा की नजर अपनी पुत्रवधू पर पड़ी। विवाह हुए अधिक काल नहीं हुआ था। राजकुमार को, जो सीमांत पर सेनाध्यक्ष था, बहू ने एक बार भी जी भरकर देखा तक न था। राजा ने विवश होकर अपनी पुत्रवधू को, जो उस समय मायके में थी, एक पत्र लिखा। पत्र में बलि देने की बात भी लिख दी।

रुल्ल माताऽपिता को प्राणों से भी प्यारी थी। उन्होंने उसे रोकने समझाने का यत्न किया, परंतु रुल्ल ने ससुर की इच्छा के अनुसार बलिदान देने का निश्चय कर लिया था। वह ससुराल में आ गई। वहाँ शुभ मुहूर्त पर बड़ी धूमधाम से उसे सोलह शृंगार करवाकर पालकी में बिठाया गया और बाँध की दीवार में चुन दिया गया। कारक का वह अंतिम अंश ऐसा है जिसे सुनकर "अपि ग्रावा रोदति" वाली उक्ति सत्य प्रतीत होती है। कमर तक चुन दी जाने पर रुल्ल ने मेमारों से कहा—'भाइयो, मेरी बाँहें बाहर रहने दो जिसमें मेरा वीर जब मुझे मिलने आए, तो उसे गले लगा सकूँ। गले तक पहुँचने पर उसने फिर विनय की, आँखें खुली रहने दो, जिससे मैं अपने परदेसी कंत (प्रियतम) को एक बार जी भरकर देख सकूँ। रुल्ल बाँध की दीवार में चुन दी गई। उसका बलिदान अमर हो गया। जलधारा के रूप में उसके प्राणों का स्नेह आज भी उस धरती को सींच रहा है।

बाबा कौड़ा, मेई मल्ल, बाबा केल्लू बाबा नाहरसिंह और सुरगल्ल, सिद्ध गौरिया तथा नागिनी आदि की कारकें भी इसी तरह रोमांचकारी हैं। ये सभी लोककाव्य काफी लंबे लंबे हैं; पुस्तकाकार छापने पर इनमें से कोई भी ५० पन्नों से कम नहीं होगा। यहाँ केवल डुग्गर की उस अमूल्य थाती की झलक ही दी जा सकती है:

(ख) वाराँ—

ओ पूजा दे जोग जिनें बलिदान चढ़ाए,
आपूँ दुख जरे व दूसरा सुखी बनारा।
ओ पूजा दे जोग जड़े देसै पर मरदे,
जो मतवाले पंद गलानी दे नेई जरदे॥

—रामनाथ शास्त्री

(१) शेरे डुग्गर वीर डीडो—१६वीं सदी के मध्य का समय था। लाहौर में शेरे पंजाब रणजीत सिंह का राज्य था। जंमू उनका करदाता प्रदेश था। गुलाब सिंह (जो बाद में जंमू काश्मीर के महाराजा हुए), ध्यानसिंह और सुचेत-सिंह तीनों भाई लाहौर दरबार की सेवा में थे। जंमू में उस समय (१६वीं सदी के प्रथम दशक में) जीतसिंह नामक एक कमजोर राजा अपने दादा भाई मियाँ मोहा की देखरेख में राज्य चलाता था। १८०६ ई० में लाहौर के भंगी सरदारों ने जंमू पर चढ़ाई की। जीतसिंह का एक मित्र भंगी सरदार ही इस आक्रमण का प्रेरक था। इस आक्रमण को विफल करने में डोगरा वीरों ने मियाँ मोटा, डीडो और गुलाबसिंह (जो उस समय १६–१८ बरस का तरुण था) के नेतृत्व में अपूर्व साहस दिखाया। दस गुनी अधिक फौज को डोगरा वीरों ने वह पाठ पढ़ाया कि उसे बचे खुचे लगभग एक हजार बेहाल सिपाहियों के साथ भागना पड़ा।

डीडो ने इस आक्रमण में भंगी सरदारों के बुरे इरादों को भली प्रकार जान लिया था, इसलिये वह अपनी धरती को इन आततायियों की काली छाया से बचाने के लिये कटिबद्ध हो गया। वह जंमू की सेना में नौकर नहीं था।

लाहौर में महाराज रणजीतसिंह के सिंहासनासीन होने के बाद स्थिति ने पलटा खाया। गुलाबसिंह भी नौकरी की खोज में वहाँ जा पहुँचा। उसका बड़ा भाई ध्यानसिंह लाहौर दरबार का प्रधान मंत्री था। डुग्गर की शक्ति का संतुलन बिगड़ गया। जीतसिंह कमजोर था, जंमू राज्य के साधन भी सीमित थे।

सिक्खों ने जीतसिंह के मरने पर जंमू को अपने अधिकार में लेकर वहाँ अपना थाना कायम कर दिया। काश्मीर को भी जीतकर लाहौर राज्य ने अपने शासन में ले लिया। डीडो बाहरी शक्ति के इस आधिपत्य से दुःखी था। उसका हृदय सुलग रहा था। देश की भोली जनता पर वह विदेशियों के अत्याचारों की रोमांचकारी कहानियाँ सुनता और उसका लहू खौलने लगता। उसने अपना दल संगठित करके देश पर अधिकार किए हुए विदेशियों को लूटना मारना शुरू कर दिया। लाहौर दरबार इस विद्रोही के उपद्रवों से परेशान हो उठा। आखिर 'घर का भेदी लंका ढाए' के अनुसार गुलाबसिंह इस देशप्रेमी को सर करने के लिये भेजा गया। उसने कूटनीति और सैन्यबल से डीडो के संगठन को छिन्न भिन्न किया। डीडो फिर भी उसके हाथ न लगा। वह त्रिकुटा भगवती के पहाड़ों में चला गया। लेकिन विश्वासघात द्वारा उसका पता पाकर गुलाबसिंह के सैनिकों ने उसे घेरकर दूर से ही बंदूक की गोली दागकर मार डाला। गुलाबसिंह नीतिज्ञ था। उसने अपने कौशल से जंमू काश्मीर का राज्य प्राप्त किया। डीडो निष्कपट और स्वार्थहीन देशप्रेमी था। वह देश के प्रेम पर बलिदान हो गया।

महाराजा गुलाबसिंह के वंश ने लगभग १०० वर्ष जंमू काश्मीर पर राज्य

किया। इस शासनकाल में डीडो के बलिदान को उचित संमान मिलना कठिन था। फिर भी उस हुतात्मा के प्रति जनता की कृतज्ञता और उसके मन का आभार लोककवि की वाणी में 'डीडो की बार' के रूप में प्रकट हुआ। उस समय यह 'बार' हर जगह गाई नहीं जा सकती थी, इसलिये यह किसी किसी मनचले योगी के पास ही प्राप्य है।

डीडो की एक सिक्ख सेनापति से भेंट हुई। दोनों में जो बातें हुईं उसका कवि-कल्पना-प्रसूत चित्र देखिए :

जाई खबराँ मियाँ डीडो गी दित्तियाँ,
ज्हारासिंह[1] होइँगे कालादे बस ओ।
खाई गुस्सा मियाँ[2] डीडो ने आया,
हत्थ लैती दी नंगी तलोआर।
रणमन रणमन फिरी फौजाँ बेरी दियाँ,
तुप्पत मियें डीडो गी जाड़।
हत्थ नि औंदा डीडो जमोआल[3]।
सामने खडोई मियाँ डीडो ललकारा जे किता बैरिया दाइया[4],
छोड़ी दे साड़ी कँड़ी[5] छोड़ी दे,
अपने माझे दा मुलख सम्हाल।
अपने लौरे दा मुलख सम्हाल!
पगड़ी तलोआर मियाँ डीडो हल्ला जे कीता,
बड्डी बड्डी मुँड़ियाँ बैरी दियाँ टँगै गरने[6] दे नाल।
लड़कन बाल गरने दे नाल, हत्थ औंदा नि डीडो जमोआल!
बैरिया दाइया, छोड़ी दे साड़ी कँडी छोड़ी दे,
अपने माझे दा मुलख सम्हाल, खर्च पट्टा बैरियें बंद जे कीता
दुन के खागा डीडो मियाँ जाड़ ?

(२) **गुग्गा**—यह रहस्यमयी वीरगाथा बड़ी उलझी हुई है। यह लोककाव्य इतना विस्तृत है कि लोकगायक इसे गाकर चार पाँच दिन में ही पूरा सुना सकता है। राजा मंडलीक को स्थानीय लोग गुग्गा कहते हैं और जन्माष्टमी के दूसरे दिन पड़नेवाली नवमी गुग्गा[7] नवमी कहलाती है। गावँ गावँ में गुग्गा के स्थान हैं, जहाँ इस नवमी को यात्राएँ (देवपूजा) होती हैं। लोगों में इनकी जितनी अधिक मान्यता है, उतनी ही विचित्रता इनकी कथा में समवेत घटनाओं की है। राजा

[1] डीडो का पिता। [2] ठाकुर, राजकुमार। [3] जम्मूवाला। [4] दुष्ट। [5] अधित्यका। [6] एक काँटेदार वृक्ष। [7] राजस्थान में भी गुग्गाजी की यही तिथि मानी जाती है।

मंडलीक का सर्पों से वैर था। उनकी कथा में नागकुल से उनके अनेक संघर्षों का रोमांचकारी विवरण मिलता है। भारत के विविध प्रांतों में इनकी विजययात्राओं का भी हाल मिलता है। बंगाल में जाकर इन्होंने वहाँ की राजकुमारी से विवाह किया। लेकिन इस लोककाव्य का महत्वपूर्ण अंश वह समझा जाता है, जहाँ मंडलीक एक ब्राह्मणी की गाय छुड़ाने के लिये गजनी जाकर वहाँ के सुल्तान से लड़ता है और गाय छुड़ाकर वापस ले आता है। अपने नीले घोड़े पर चढ़कर मंडलीक ने प्रण करके जिस साहस से यह यात्रा की और गजनी पहुँचकर उसने जिस अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया, उसने लोककवि की कल्पना को स्वभावतः तरंगित किया है।

गजनी यात्रा संबंधी अंश देखिए :

चढ़ी पेआ गजनी पर राजा, चोट नगारे लाई,
ठुम ठुम चाल चले रथ वीला,[1] जियाँ कुंबे[2] पर थाली।
मजलो मजली देव गुग्गा उप्पर टिल्लै दे आई,
उप्पर टिल्ले दै आई खड़ोता रथ नीलेगी रणक[3] कराई।
सभ्भे भूरे पालेया नीलेया, तुगी[4] पालेया वाशल माई,
सत्तो कोट लोह दे टप्पे, जिन्ने अठमी टप्पी ऐ खाई।
अगड़े होई ऐ देव गुग्गा कपलाँ दे सोंगल कप्पी[5]।
सज्जे मूँडै लाई लेई कपलाँ खब्बे गुरग[6] खड़की।
लेई कपलाँ गी चलैआ राजा कोल तंबुएँ दे रक्खी।
नै परदखनाँ लेइयाँ राजै सीस चरने पर रक्खी।
दे आग्या तूँ माता मेरि में आनाँ वैरीणी जगाई।
बोलै कपलाँ बचन करै राजेगी गल्ल समझाई।

(३) विविध लोकगाथाएँ—

(क) स्थानीय देवी-देवता-परक लोककाव्य—भारत का उत्तर खंड अपनी आध्यात्मिक परंपराओं के लिये ख्यात है। हिमालय की इन पर्वतश्रेणियों में स्थान स्थान पर देवीदेवताओं के तीर्थ हैं जिनपर स्थानीय जनता असीम श्रद्धा रखती है। इनमें कुछ अति प्रसिद्ध स्थान ये हैं :

(१) ज्वाला भगवती (काँगड़ा)
(२) वैष्णवी भगवती (जम्मू)

[1] रथ में जुता नीला घोड़ा। [2] घड़ा। [3] इशारा। [4] तुझे। [5] काट दी। [6] गदा।

(३) कालका (काली भगवती, बाहू, जंमू)
(४) शुद्ध महादेव (चनैनी, जंमू)
(५) सुकराला (भड्डू, जंमू)
(६) चीची देवी (सांबा, जंमू)
(७) सिद्ध सोग्राँखा (जंमू)
(८) मनमहेश (चंबा)
(९) बास कुंड (भद्रवाह, जंमू प्रांत)
(१०) पुरमंडल (तहसील सांबा, जंमू)
(११) हरमंदर ,,
(१२) नरसिंह जी (हीरानगर, जंमू)
(१३) बैजनाथ (काँगड़ा)
(१४) बाबा ध्यूट सिद्ध (हमीरपुर, कांगड़ा)

इन देवस्थानों में प्रतिष्ठित दिव्यात्माओं के संबंध में अनेक सुंदर लोककाव्य हैं। जिन दिनों इन देवस्थानों में उत्सव मेला होता है, ये लोककाव्य बड़े उल्लास तथा उमंग के साथ गाए जाते हैं। वैष्णवी भगवती की यात्रा आश्विन से मार्गशीर्ष तक तीन महीने चलती है। हजारों की संख्या में यात्री इस पवित्र यात्रा पर आते हैं। यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर लोकगायक (योगी) देवी त्रिकुटा की पौराणिक गाथा को लोककाव्य के रूप में सुनाकर भक्तों को आनंदित करते हैं। ये सभी लोककाव्य रहस्यमय चमत्कारों से भरपूर होने के कारण अत्यंत कौतूहलपूर्ण हैं। इनका प्रवाह, चरित्रचित्रण तथा प्रकृति का अंकन बड़ा ही प्रभावमय और कलापूर्ण है। डोगरी संस्था जंमू ने इन सभी काव्यों को इकट्ठा कर सुसंपादित करके प्रकाशित करने की योजना बनाई है।

(ख) रमेण (रामायण)—डोगरी लोककाव्यों की परंपरा का यह आंशिक विवरण भी अधूरा होगा यदि इसमें डोगरी रमेण का उल्लेख न हो। रामायण अलौकिक काव्य है। भारतीय जनता के जीवन पर इस काव्य का जो व्यापक प्रभाव है वह सर्वविदित है। रामायण अपने संक्षिप्त कथानक में डोगरी लोककाव्य के रूप में भी उपलब्ध है। डोगरी लोकसाहित्य की यह एक अमूल्य थाती है। विशेष उल्लेख योग्य बात यह है कि रामायण के पात्रों का निरूपण इस लोककाव्य में इस प्रकार किया गया है मानो वे इसी प्रदेश के तथा हमारे रीति-रिवाजों को माननेवाले तथा डुग्गर की लोकसंस्कृति के रंग में रँगे हुए थे।

(ग) शिलावंतियाँ (शीलवंती नारियाँ)—शिलावंतियाँ उन लोककाव्यों को कहते हैं, जिनमें उन सतवंती नारियों का गुणगान किया जाता है,

जिन्होंने अपने सतीत्व अथवा अधिकार की रक्षा के लिये बलिदान हुई अथवा जो अपने पतियों के साथ सती हो गईं।

डुग्गर में ऐसी नारियों की असंख्य समाधियाँ जगह जगह बनी हुई हैं। उन्हें उनके कुल अथवा ग्राम के लोग कुलदेवी कहकर पूजते हैं।

ये लोकगाथाएँ यद्यपि सीमित क्षेत्र में ही प्रचलित हैं, फिर भी इनमें समय समय की सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्था की जो झलक मिलती है, वह काफी महत्वपूर्ण है। साहित्यिक मूल्य तो इनका है ही।

(घ) लोकगीत—डुग्गर कला रमणीय है। इसका सरल भोला जीवन, अत्यधिक गरीबी और निर्मल स्वच्छ मनोवृत्ति लोकगीतों के लिये अत्यंत उर्वरा भूमि बनी। जनता की जीविकोपार्जन की मुख्य वृत्तियाँ दो ही हैं। सेना में नौकरी और पहाड़ियों की गोद में सीढ़ी जैसे छोटे खेतों में कठिन कृषि। तीसरी वृत्ति उन जातियों की है, जो भेड़ बकरियाँ पालते हैं और सब्ज घासवाले मैदानों (मर्गों, धुकियालों) की तलाश में घूमते रहते हैं। उन्हें गद्दी कहते हैं। ये लोग अपने सादे जीवन, भोले स्वभाव और निश्छल स्नेह के लिये प्रसिद्ध हैं।

इन तीनों तरह की वृत्तियों में जीवन कठिनाइयों से भरा होता है। ये कठिनाइयाँ जीवन के मार्ग को रोकने का यत्न करती हैं। डुग्गर की भोली निर्धन जनता ने युगों युगों के इन दुःखों से संघर्ष करने का संवल यदि पाया है, तो अपनी आशावादी जीवनास्था से, अपनी कलाप्रिय संस्कृति के विश्वासों से और उन असंख्य गीतों से जिनमें उनके विश्वासों का अमर रंग चढ़ा है, जिनके सहारे वे कुछ क्षणों के लिये ही सही, अपने जीवन की कृच्छ्रताओं को भूलकर हँस खेल लेते हैं।

(१) श्रमगीत—जहाँ तक कृषिजीवन का संबंध है, वह दो प्रदेशों में बँटा है। एक कंडी दूसरा पर्वतों की गोदी। पहाड़ी जीवन के विषय में भी नारी की प्रतिक्रिया की झाँकी इस लोकगीत में देखें—

जली जाएओ, पहाड़ियें दा देस, अम्मा जी मैं नेइयों बस्सना।
गुड्डन कुदालू दिंदे, खाने जौ कचालू दिंदे, दस्सी दिंदे लम्मे लम्मे खेत।
अम्माजी मैं नेइयों बस्सना॥

झ्याग ते हूँदा नेइयों, टाकरी चुकाई दिंदे, पलची जंदे सिरा देबों केस।
अम्माजी मैं नेइयों बस्सना॥

रहा गद्दियों (चरवाहों) का जीवन। तस्वीरों में उसकी पूरी वास्तविकता का चित्रण नहीं होता। सर्दी गर्मी, वर्षा धूप में एकांत पहाड़ों पर बिना आश्रय के बसना और अपनी भेड़ बकरियों को हिंस्र पशुओं के आक्रमणों से बचाने के लिये

रात रात भर जागते रहना, सहज सुखमय जीवन नहीं है। उस कष्टमय जीवन में भी गद्दी हँसते गाते रहते हैं, यह उनके जीवन का अनुपम रहस्य है। गद्दियों के जीवन की झलक उनके इस नृत्यगीत में देखिए :

झक्का, मझक्का, झक्कालू[1]।
गुड़ा खाने री शाधरा[2] बागी, गाँठी नेंइ उबल टकालू, झक्का०।
काला मिड्डू जों भोलू टेबकेआ, खायो, जनू कबेरी लाणा ओ।
लो लाणा ओ ! लाड़िया शम दुआले लू। झक्का०।

लोकगीतों की इस मार्मिकता का विवरण एक लंबी कहानी है। इस संक्षिप्त लेख में उसका पूर्ण विवेचन संभव नहीं। इसीलिये अब डोगरी लोकगीतों की कुछ अन्य महत्वपूर्ण विधाओं का संक्षिप्त वर्णन कर इस चर्चा को समाप्त किया जाता है।

(२) नृत्यगीत—डुग्गर (जम्मू) का नीचे का भाग मैदानी है और ऊपर का पहाड़ी। मैदानी इलाके में चैत्र वैशाख में गेहूँ की फसल पक जाने पर किसान की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती। उस समय वह अपने वर्ष भर के कष्टों को भूलकर नृत्य और संगीत में डूब जाता है। चैत्र मास में रात के समय भोजन आदि से निवृत्त होकर गावँ गावँ में नृत्यसंगीत की महफिलें होती हैं और वैशाख में यह उल्लास चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

उस समय नृत्य के साथ जो संगीत चलता है उसे 'सद्द' कहते हैं। यह 'शब्द' का अपभ्रंश है। सद्द का यह नमूना देखिए :

ओहाड़[3] आया हाड़ आया, रुड़दा[4] आया तीला[5]।
खेत खेत खेत खेत सुन्ने जड़ैया, रंग सुन्हेरी पीला।

इसी प्रकार चैत्र मास में गावँ गावँ में 'डोलरु' नामक प्रसिद्ध गीत गानेवाले गायक, जिन्हें 'मंगलमुखिए' कहते हैं, नववर्ष तथा वसंत का गुणगान करते हैं। ये गीत वर्ष में इन्हीं दिनों गाए जाते हैं और लोग इन्हें मांगलिक समझते हैं।

पर्वतीय प्रदेशों में उल्लासपूर्ण लोकभावना का प्रतिरूप 'कुड्ड' नृत्यों में मिलता है। ये समवेत नृत्य रात को प्रज्वलित अग्नि के आलोक में किसी देवता के स्थान के समीप के मैदान में होते हैं। बाँसुरी और कोलों की मधुर संगीत-लहरियों के ताल पर नर्तकमंडली, जिसमें तरुण, वृद्ध सभी तरह के लोग संमिलित

[1] नृत्य के निरर्थक बोल। [2] इच्छा। [3] आषाढ़। [4] डुढता। [5] तिनका।

होते हैं, और कहीं कहीं नारियाँ भी शामिल होती हैं, नाचते हैं और चारों ओर बैठी हुई टोलियाँ अपने गीतों से उस स्थान को मुखरित कर देती हैं। टोलियों के ये गीत अधिकतर श्रृंगारप्रधान होते हैं। बीच बीच में देव-स्तुति-परक गीत भी चलते हैं। कुछ फसलों और ऋतुओं से भी संबद्ध होते हैं, जैसे :

गल फुल्ल दे हार मुंडै बोंगड़ियाँ[1]।
आई फुल्लें दी व्हार करीरा पौंगरियाँ[2]।
+ + +
जित घर मतियाँ[3] बंदियाँ[4], तिंजों घर[5] नेई बसदे।
जो खांदियाँ गरी छुहारे, तिजों घर नेईं बसदे।
जो राड़ै दे[6] रस्ते जंदियाँ, तिंजो घर नेईं बसदे।

(३) मेलागीत—

मेला के गीत भी अनेक हैं, जैसे :

घगवाल लगदा गेल्ला ते दिखनेणी—चल चलबे।
गंडी नि पैसा धेला ते दिखनेणी—चल चलबे।
टुरी बी चलगे कन्ने गल्ला भी करगे।
पुंजी लागे बड़ी सवेल्ला—ते दिखनेणी चल चलबे।
+ + +

[भावार्थ—घगवाल (गाँव) में (नरसिंह भगवान् का प्रसिद्ध) मेला लगनेवाला है, आओ देखने चलें। गाँठ में पैसा धेला कुछ भी नहीं, फिर भी चलो, मेला देखने चलें। पैदल ही चलेंगे, तो जल्दी ही वहाँ पहुँच जायँगे।]

(४) प्रेमगीत—प्रेम तो उचित अनुचित का विचार नहीं रखता, परंतु समाज की निगरानी उसे मुखर नहीं होने देती। मन में डंक चुभते हैं, आँखें मन के रहस्य को खोल देती हैं, लेकिन वाणी मौन रहकर पर्दा डालने का यत्न करती है। इसी तरह किसी उदास कंत को चतुर गोरी उपदेश देती है :

हस्सी लेना गाई लेना, करी लेनी मनाँ दी मौज,
कैंता[7] ज्यूड़ा कीचो[8] डोलणा ?
गिल्ले गोहे लाई चुल्ली धुयें दे पंजे रोन्निआ।
पुच्छे नि ननान कुतै कुसदा ऐ दुक्ख तुकी।
घुआधार पाई इनें अत्थरुपंदे मोतियें दे।
चुल्ला मुँड बैठी दी में हार परान्नियाँ। गिल्ले०।

[1] एक फूल। [2] कुदाल। [3] बहुत। [4] तरुणियाँ। [5] वे। [6] खिड़की। [7] कंत। [8] क्यों।

(५) **संस्कारगीत**—शिशुजन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत हर अवसर पर गीतों की छटा दिखाई देती है।

(क) **बधावा (जन्म)**—शिशु जन्म पर जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें बधावा कहते हैं। उनमें बधाई देने का भाव प्रधान होता है। ये गीत प्रायः नारियाँ मिलकर गाती हैं। इनका स्वर ताल इतना चिरनवीन है कि गीत सुनते ही उससे संबद्ध संस्कार का चित्र स्वयं मन में सजीव हो उठता है। एक उदाहरण लें :

जी, जिस ध्याड़े[1] मेरा हरिहर जंमेआँ[2]
सोइओ ध्याड़ा भागें भरेआ ऐ।
जी, जम्मेआ जाया, बाला, गुदड़[3] पलेटेया
कुच्छड़ मिलेया दाइया माइया ए।
जी, न्हाताए, धोता, बाला, पाट[4] पलेटेया,
कुच्छड़ मिलेया अम्मड़ रानीं ऐ।
जी, पुछरी, पुछेंदी मालन नगरी आई।
शादी[5] बाला घर केड़ा ऐ॥

इसी तरह यज्ञोपवीत तथा मुंडन आदि के अवसर पर भी कई तरह के गीत प्रचलित हैं।

(ख) **विवाह**—विवाह संबंधी गीतों की संख्या बहुत अधिक हैं।

(१) **सुहाग**—कन्या के विवाह के अवसर पर प्रौढ़ नारियाँ जो मंगल गीत गाती हैं उन्हें सुहाग कहते हैं। एक उदाहरण—

तेरे बाबल दे हत्थ जल थल गड़वा,
गंगा जल पानी, होर कुशा दी ए डाली हे राम।
सुन्ने दी दान बाबल नित उठ्ठी करन दा,
सदेरे उठी करदान, कन्या दा दान करे मेरे राम।

विवाहमंडप के नीचे आधी रात या उसके भी बाद वरवधू की सप्तपदी के समय प्रौढ़ाएँ सुहाग गाती हैं :

इस बेल्ले कुकु जागे वे राजे घरमें दा बेल्ला।
इस बेल्ले बाबल जागे, बे जेदी कन्या कुआरी।

[1] दिन। [2] पैदा हुआ। [3] चीथड़ों में लिपटा। [4] पट्ट (रेशमी वस्त्र)। [5] खुशी।

(२) बिदाई—कन्या की बिदाई का दृश्य अत्यंत करुण होता है। माता-पिता के लिये तो स्वभावतः यह अवसर दुःखद होता ही है, लेकिन कन्या की सखियों की वेदना भी कम नहीं होती। वे क्रंदन कर उठती हैं :

बापगें दी कोयले, भैने बाग छोड़ी करी की चली एँ ?
बाबल मेरे बचन जे कीता, बचनै दी बद्धी दी मैं चलियाँ।

पतिगृह की देहली पर पहुँचते ही वर की बहनें, भौजाइयाँ बहू के लंबे घूँघट को देखकर गाना शुरू करती हैं :

लाड़ी काली ऐ, काली ऐ, काली ऐ,
माऊ लाडे, प्यारे ने पाली ऐ।
× × ×
लाड़ी लम्मी ऐ, लम्मी ऐ; लम्मी ए,
माँऊ 'माँगें भरी ने ए जम्मी ए।

और फिर प्रौढ़ाओं के सुहाग ने बहू को अपने स्नेह और आशीर्वाद से बाहें फैलाकर अपना लेते हैं :

राम जी दे घर सीता रानी, सीता रानी चली आई ऐ।
मात कुसल्या बड़ भागनी ऐ, लक्ष्मी जिदै अली आई ऐ।
वसदी खै तेरी जुध्या दी नगरी, रैन दुकें दी दूर नसाई ऐ।

(३) कामन (खोडिया)—जिस दिन वर के घर से बारात जाती है, उस दिन घर पुरुषवर्ग से प्रायः शून्य हो जाता है। उस रात को नारीवर्ग जी खोलकर हास परिहास में डूब जाता है। प्रायः रिवाज बन गया है कि इस रात को औरतें मिलकर परस्पर प्रेमी और प्रेमिका का अभिनय करती हैं। लज्जा और संकोच की सीमाएँ भी तब टूट जाती हैं जब मंच पर कोई प्रौढ़ा परंतु चंचल स्वभाव की नायिका आ उपस्थित होती है। परंतु, प्रायः प्रेमाभिनय के समय कई अच्छे कलात्मक गीत भी गाए जाते हैं। इन्हें कामन कहते हैं।

एक गीत देखिए :

परदेसी—खुया पर खड़ोतिये नाजो,[1] कैंत[2] होइएँ दिलगीर ?
जाँ तेरी सस्स लड़ाकी ऐ नाजो ! जाँ कैंत नईं जाने प्रीत।
नाजो—नाँ मेरी सस्स लड़ाकी सपाइया, ना कैंत मेरा बेपीर[3]।
औं बड्डी बार लौकड़ा सपाइया, मेरे मन इयै तीर औ।

[1] लाडली। [2] क्यों। [3] बिना प्रेम।

सिपाही—चली पौ सपाइयाँ दे नाल तूँ नाजो, सुन्ने ने जड़ा तुगी जाई,
नाजो—माड़ी[1] तूँ बोली तूँ बोलेया नाईं, ओ बदनीत सपाईआ,
अज्ज लौका फल बड्डा जे होणी, दिनों दिन जोत सोआई।

(६) धार्मिक गीत—डोगरी में कई प्रकार के धार्मिक गीत (भजन आदि) भी प्रचलित हैं। एक नमूना देखिए :

मास सै सेइयो, सैंसे[2] सुखाए।
पिंजरा होई गेइयाँ हड्डियाँ, ओ मेरे हरि बिना।
मेरे प्रभु बिना, दिन निक्के[3] राताँ वड्डियाँ, ओ।
नैन सै सेइओ रोई गोआए[4]।
अत्थरुएँ[5] बगो गेइयाँ नद्दियाँ ओ, मेरे हरि बिना०।
जाई पुच्छेओ मेरे कान्ह, कन्हैए,
किस गुनाएँ मैं तज्जियाँ,[6] ओ, मेरे हरि बिना०।

धर्म गीतों की ही एक विशेष शैली गुजरिया कहलाती है। इन गीतों में कृष्ण और गोपियों को आधार बनाकर हास व्यंग्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की गई है। एक उदाहरण देखें :

काहन राजा, बड़ा उदंडी, बड़ा पखंडी,
बत्ता मझ छन्नू[7] छाया, ओ।
पंज सत गुजरियाँ, जोड़ जे कीता,
दुद्द देइयाँ बेचन चलियाँ, ओ।
उन्नै जगात[8] ते सुन्ने डगात,
देइयें जगात कें लान्नाँ, भलेआ।

(७) विविध गीत—

(क) चंबे दियाँ धाराँ—

चंबे दियाँ धारा—पौन फुहाराँ
ओडनू[9] सिज्जी[10] जंदा सारा—गौरी दा···।
घर घर टिकलू,[11] घर घर बिंदलू
घर घर बाँकियाँ[12] नाराँ—गौरी दा···।

[1] दुरी। [2] संशय। [3] छोटे। [4] गँवाए। [5] आँसू। [6] त्यागी। [7] छप्पर। [8] कर। [9] ओढ़नी। [10] भीग जाती है। [11] मस्तक पर आभूषण पहननेवाली। [12] सुंदर।

घर घर बकरू, घर घर छिल्लड़ु
घर घर हिरखी[1]·सारौँ—गौरी दा···।
घारें घारें फुल्लड़ु[2], कोमल कलियाँ
छाइयाँ शैल[3] बहाराँ—गौरी दा चित्त लग्गा।

(ख) सिपाही—डुग्गर वीरभूमि है। डोगरा शब्द 'वीर' का पर्याय समझा जाता है। भारत की उत्तरी सीमाओं के निर्माता और रक्षक इन वीर पुरुषों के शौर्य को विश्व ने मान्यता दी है। परंतु शौर्य का एक दूसरा पहलू भी है—अत्यंत कोमल, अत्यंत कमनीय। वह है उन वीर सिपाहियों की विरहिणियों की उत्कंठा का, उनके यौवन की दहकती पुकारों का, उनकी प्रीति की बेचैन मनुहारों का। सिपाही लंबी अवधियों के लिये नौकरी पर चले जाते हैं। उनकी कोमलांगी गृहिणियाँ विरहविह्वल होकर चीत्कार करती हैं :

नाम कटाई करी घर आई जा, ओ
ओरनें सिपाहियें दे चिट्टे चिट्टे कपड़े,
तैं कीजो कीता मैला भेस, भला हो सपाइआ।
कच्चिया बारकाँ सिपाही साड़े रिंदे[4]
पक्कियाँ च रिंदे जमेदार भला हो सपाइआ।
नाम कटाई०।

(ग) गरीबी—

गरीबी और गीति का अपूर्व मिलन इस गीत में देखिए :

हो हल्लेया थंम चोरासिया दीया। हो हो हो।
बो पुट्टी नाँ दिंदे बो भुकिक्या धिया।
बो टल्ला नाँ दिंदे बो नंगियाँ धिया।
बो गैनाँनाँ दिंदे बो गुंडिया धिया।
बो लत्ता दिती बोगनियाँ धिया।
हो हल्लेया थंम चौरासिया दीया॥

भाव में गीतों का जन्म होना स्वाभाविक है, परंतु अभाव में भी इस प्रकार के गीतों की उपज डुग्गर की ही धरती का गुण है।

१ प्यार की पहचान। २ फल। ३ मनमोहक। ४ रहते।

५. मुद्रित लोकसाहित्य

हम डोगरी लोक-साहित्य-धारा को तीन भागों में विभक्त पाते हैं :

(१) लोकसाहित्य की मौखिक परंपरा	१८०० ई० तक
(२) दत्त युग (कवि दत्त)	१८००–१९०० ई० तक
(३) नई चेतना	१९०० ई० से आगे

(क) कविपरिचय—पहले दो युगों का सामान्य परिचय और उनकी साहित्यिक संपदा का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। सन् १८८५ में महाराज प्रतापसिंह ने शासन भार सँभाला। १९२५ ई० में उनका देहांत हुआ। पं० हरदत्त शास्त्री ने इसी समय (१९०० ई० के बाद) डोगरी की साहित्यिक परंपरा को अपनी काव्यसाधना से संपन्न किया। शास्त्री जी का तथा अन्य प्रमुख समसामयिक कवियों का संक्षिप्त वृत्त आगे दिया जा रहा है।

(१) पं० हरदत्त शास्त्री—पं० हरदत्त जी का जन्म जंमू के समीप एक गावँ में सन् १८९० में हुआ। कविता करने की रुचि उनकी बचपन से ही थी। इसके साथ ही वे एक अच्छे गायक भी थे। उन्होंने हिंदी तथा संस्कृत की उच्च शिक्षा पाई और अध्यापक होकर प्रांत के अनेक नगरों में नियुक्त हुए। वे कथा-वाचक भी थे। इसी कारण जनता से हिलमिल जाने और उनकी भावनाओं को जानने का उन्हें बड़ा अच्छा सुयोग मिला।

उनकी अनेक गेय कविताएँ भक्तिपरक हैं। परंतु उनकी काव्यसाधना का महत्वपूर्ण अंश वे रचनाएँ हैं जिनमें उन्होंने अपने समकालीन जीवन का उल्लेख किया है। डुग्गर का अनुराग उनकी इन कविताओं की मूल प्रेरणा है। डुग्गर को संबोधन करके वे कहते हैं :

कियाँ गुजारा तेरा होगा, ओ डोगरेआ देसा।
मूँह तेरा नेईं पड़ेगा गुड़ेया, बामें बिच निं जोर,
जंगें अंदर आलस बड़ेया, पैरें बिच मरोड़।

अदालतों के महँगे न्याय पर उनकी चोट बड़े साहस की परिचायक है। देहाती भोले लोग इस चक्र में फँसकर कैसे लुटते हैं, इसका चित्र देखिए :

पेई पेंहली गै तरीक, नेइयों पैसे दी थबीक[1],
कंम होआ नेइयों ठीक, कोई सिद्दा[2] नेइयों बोलदा।

[1] सामर्थ्य। [2] सीधे मुँह।

इत्थे[1] कुसी कुसी देश्राँ, कच्ची फाई फसी गेश्राँ,
पैरें सबनें दे पेश्राँ, पिच्छे फिराँ हत्थ जोड़दा।
बड्डे मुनशी कोल गेया, ओवी निक्खैरिये[2] पैया,
आके तौल कर मोआ,[3] गंड[4] की नेरयों खोलदा।
औं आई गेया भुल्ली[5] जिमीं[6] पवै जाई चुल्ली जारी।

१९५६ में पंडित जी का बंबई में देहांत हुआ।

(२) दीनूभाई पंत—ऊधमपुर के एक देहात पैंथल में एक निर्धन ब्राह्मण के घर दीनूभाई ने जन्म लेकर जीवन में अभावों की भयंकर चोटें सहीं। स्कूल में आठवीं कक्षा तक शिक्षा पाकर घरवालों के दबाव से उन्होंने हिंदी संस्कृत का अध्ययन किया। फिर जंमू आकर रहने लगे। 'हिंदी साहित्य मंडल' नामक संस्था को अपनाकर उन्होंने कई वर्ष तक हिंदी में काव्यरचना की। परंतु, डोगरी में लिखने की प्रेरणा उन्हें संभवतः एक अवधी कविता 'शहर पहले पहल गयन' (पंडित वंशीधर शुक्ल) से मिली, जिसके आधार पर उन्होंने डोगरी में 'शैह्‌र पैह्‌ल गै' शीर्षक लंबी कविता लिखी, जिसके व्यंग्य और हास्य ने श्रोताओं को चकितमुग्ध कर दिया। कविता बहुत ही लोकप्रिय हुई, जिससे उत्साहित होकर वह डोगरी में लिखने लगे।

(३) रामनाथ शास्त्री—श्री रामनाथ शास्त्री ने हिंदी में भी लिखा है। डुग्गर का जनजीवन, डुग्गर की संस्कृति, उसकी कमला परंपरा, उसका इतिहास, उसकी भाषा, इन सबके प्रति शास्त्री जी के मन में जो प्यार और आस्था है, उसने उन्हें डुग्गर के प्रति अपने कर्तव्य का आभास दिया। दीनूभाई जैसे साथियों को साथ लेकर उन्होंने डोगरी संस्था (जंमू) की स्थापना की और इन १५ वर्षों में संस्था ने डोगरी साहित्य की जो सेवा की है, वह संभवतः इस प्रदेश में जनयुग की सबसे प्रमुख ऐतिहासिक घटना है। कला के क्षेत्र में उन्होंने पं० संसारचंद्र जी जैसे कलाकारों को साथ लेकर पहाड़ी चित्रकला के चित्र इकट्ठे किए। उसी प्रयास का परिणाम आज जंमू की 'डोगरा आर्ट गैलरी' है, जिसमें डोगरों की इस कलासाधना के सुंदर चित्र प्रदर्शित किए गए हैं।

शास्त्री जी की कविता में धरती का अनुराग, मानवता का अभिनंदन, भविष्य की आशा और डोगरों की उज्वल परंपराओं के विविध रंग हैं। डोगरी का पहला नाटक 'बाबा जिचो' उन्होंने १९४८ ई० में लिखा और उसे सफलतापूर्वक कई बार खेला। उन्होंने दीनूभाई और रामकुमार अबरोल के साथ मिलकर १९५६

[1] यहाँ। [2] भड़ककर। [3] मरदूद। [4] गाँठ। [5] भूलकर। [6] जमीन।

में एक नया डोगरी नाटक 'नमाँ ग्राँ' लिखा। इसके अतिरिक्त शास्त्री जी ने डोगरी में कई सुंदर एकांकी भी लिखे। डोगरी में लिखे उनके निबंध बड़े महत्वपूर्ण हैं। डोगरी लोकगीतों का संकलन करने और डोगरी व्याकरण की रचना के उनके प्रयास सदैव संस्मरणीय रहेंगे। कविता के क्षेत्र में उन्होंने मौलिक साधना के अतिरिक्त भर्तृहरि के तीनों शतकों, कालिदास के मेघदूत, रवींद्र की गीतांजलि के डोगरी पद्य में सुंदर अनुवाद किए हैं।

संस्था की ओर से प्रकाशित होनेवाली प्रायः सभी पुस्तकों का सुंदर संपादन उन्हीं के हाथों हुआ है।

उनकी कविता से एक उद्धरण दिया जाता है। सन्नासर जंमू में एक बड़ा भव्य स्थान है। उसके प्रति कवि ने लिखा है :

सेहमी दिया ईखी कछ जियाँ कोई खंगी जा,
गासागी रोआंदा कोई तारा जियाँ लंगीजा,
चानचक ओंगली गी कंडा जियाँ डंगी जा,
बासना दा लौरा जियाँ अक्खियें गी रंगी जा,
जन्न पवै पानिया च बद्दै जियाँ ओदा घेरा,
इस्सै चाली सन्ना सरा चेता मिगी आवै तेरा।

(४) पं० शंभुनाथ—पं० शंभुनाथ श्री हरदत्त शास्त्री के चचेरे भाई हैं। हरदत्त जी के अभाव को इनकी साधना ने बहुत कुछ पूरा किया। इन्होंने लगभग ५० वर्ष की आयु में डोगरी कवितात्तेत्र में प्रवेश किया। इनका स्वास्थ्य असाधारण है और अपनी मस्तानी तबीयत के कारण ये अपने तरुण साथियों में घुलमिल गए हैं।

डुग्गर का प्यार, उसकी गरीबी का दुःख, उसके उज्वल भविष्य की आशा और मानव जीवन के अनेक स्पंदन उनकी कविताओं में साकार हो उठे हैं।

एक उदाहरण देखिए :

शलैपा एस पुजा आला बक्खरा लसान्नी ऐ।
इक इक रेख इस पुजा दी सुहानी ऐ॥
ए जुग चक्की दा चक्कर ऐ, चक्की दा पक्का पत्थर ऐ,
मानू बी ऐसा बक्खर ऐ, बट्टें नें लेंदा टक्कर ऐ,
गाला बनिऐ इस चक्की दा, चक्की दे पुड़ परता करदा।
ए जुग बदलोंदा जा करदा।

(५) किशन स्मैलपुरी—श्री किशन स्मैलपुरी का जन्म १६०० ई० को तहसील साँबा के मशहूर ग्राम स्मैलपुर में हुआ। स्मैलपुरी का कविजीवन उर्दू

कविता की साधना से आरंभ हुआ। उनकी उर्दू की कविता 'फिरदोस से बढ़कर है यह मेरा वतन डुग्गर' अपने समय की बड़ी ख्यात रचना थी। कविता में किशन का डुग्गर प्रेम छलकता है। जहालत, गरीबी, भूख और नग्नता से बेबस धरती पर स्वर्ग की कल्पना करने में उनका देशप्रेम अत्यधिक रमा है। डुग्गर में डोगरी भाषा और साहित्य के उत्थान ने इनको प्रेरित किया। उन्हें अनुभव हुआ कि उर्दू में लिखकर वे जनता तक नहीं पहुँच सकते। अतः उन्होंने डोगरी को अपनी काव्य-साधना के माध्यम के रूप में अपनाया।

उनके गीतों का एक नमूना देखिए :

चंबे दिए डालड़िए, मोइए दोआस निं हो,
कल उनें आई पुज्जना बनी बनी फुल्ली फुल्ली पौ।
औंदे ग उनें तुगी गले कंते लाई लेना,
दिखदे गै स्हाई लेना, झट गै मनाई लेना।
चुकी जाने सब तेरे रो, मोइए दोआस निं हो।

(६) स्वामी ब्रह्मानंद—डुग्गर की साहित्यिक चेतना के पवित्र आंदोलन में श्री स्वामी ब्रह्मानंद जी 'तीर्थ' का पदार्पण एक महत्वपूर्ण घटना है।

जंमू के अंतर्गत अखनूर नामक ग्राम के निवासी स्वामी जी (गार्हस्थ्य नाम ठा० संसारसिंह) राज्य में एक उच्च अधिकारी थे। फिर वेदांत के अध्ययन से विरक्ति भाव जाग्रत होने पर नौकरी छोड़कर संन्यासी हो गए। इस समय (सन् १९५७ ई०) उनकी अवस्था ६६ वर्ष के लगभग है।

डोगरी का सौभाग्य था कि उसे इस प्रकार का अनुभवी, त्यागी और मनीषी कलाकार प्राप्त हुआ। इन्होंने 'ब्रह्मसंकीर्तन' नाम से लगभग ४००० पदों का एक विशाल काव्यग्रंथ रचा है जिसमें वेदांत की अमूल्य शिक्षाओं और दार्शनिक तत्वों को सरल भाषा का कलेवर देकर डुग्गर की जनता के लिये सुलभ कर दिया गया है।

'ब्रह्मसंकीर्तन' को पूर्ण रूप में रियासती सरकार का शिक्षा विभाग प्रकाशित करवा रहा है। संस्था ने 'गुंदे दा गुढ़' और 'मानसरोवर' नाम से दो कविता पुस्तिकाओं में उस ग्रंथ के कुछ रोचक अंश प्रकाशित किए हैं। उदाहरण के लिये दो पद देखें :

मैं, मेरी दे फँदे[1] फसिये, सूली जिंद चढ़ाई पे।
पानी दे बिच रौंदी मेशाँ, मच्छी फी तरैहाई[2] पे॥

[1] पाश में फँसकर। [2] प्यासी।

(७) केहरसिंह 'मधुकर'—तहसील साँबा के गुढ़ा सलाथिया नामक गावँ में सन् १६२७ में पैदा हुए। संपन्न घराना, पिता सेना में मेजर, उसपर चार बहनों के अकेले भाई। खूब लाड़ प्यार मिला। मेधावी होकर भी एफ० ए० से आगे न पढ़ सके। कविता की धुन कालेज जीवन में ही लग गई थी। पंजाबी में तुकबंदी की, हिंदी में लिखा, साथियों ने प्रोत्साहन दिया।

इन्होंने डोगरी में कुछ बहुत सुंदर गीतिनाट्य भी लिखे हैं। अभी ये केवल ३० वर्ष के हैं, डोगरी साहित्य को इनसे बड़ी आशा है।

(८) ओंकारसिंह गुलेरी—काँगड़ा प्रांत की एक प्राचीन राजधानी 'गुलेर' के एक निर्धन वंश में ओंकारसिंह ने जन्म पाया। जीवन में उन्हें लगातार कठिनाइयों से संघर्ष करना पड़ा। अभाव की भीषण पगडंडियों पर चलते हुए इन्होंने अनेक ठोकरें खाईं, फाके किए, जगह जगह घूमकर जीवन की बहुरंगी लहरियों को देखा।

आखिर वह जंमू चले आए और गत दस बरसों से यहीं टिके हैं। जंमू में डोगरी लेखकों के संपर्क में आकर इन्हें मानसिक विश्राम मिला। लेखकों को एक नया प्रौढ़ साथी मिला।

जंमू में रहते उन्होंने जीविका के लिये असाधारण परिश्रम करते हुए भी लिखने की साधना को उपेक्षित नहीं किया। घर की याद भी प्रायः आती थी :

शैल शैल देसा मिकी तेरी याद औंदी ऐ।
पद्दरे मदानें बिच सिंबले दा रुक्ख मिकी।
लक्खें ताजमहलें कोला सुंदर बजोंदा ऐ।

ओंकारसिंह जी ने लोकगीतों, लोकसंस्कृति आदि विषयों पर डोगरी में निबंध भी लिखे हैं। आप इस समय (१६५७ ई०) तीस बरस के हैं। जंमू के प्राइवेट स्कूल में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

(६) पद्मा "दीप"—प्रो० जयदेव की पुत्री पद्मा को बचपन से ही कविता सुनने का सुयोग मिला। इनके पिता ने इन्हें अनेक कविताएँ (संस्कृत, हिंदी, डोगरी में) कंठस्थ करवाईं। पिता की मृत्यु के समय पद्मा केवल ७-८ बरस की थी। अप्रत्याशित विपत्ति टूट पड़ने पर माता ने कठोर परिश्रम करके तीनों बच्चों का पालन पोषण किया।

बच्चों में प्रतिभा थी। पद्मा कालेज में पहुँची तो डोगरी में लिखने लगी। पिछले दिनों (अगस्त १६५७) वेद 'दीप' के साथ उनका विवाह हो गया। कविता के धागों ने दो नए होनहार कलाकारों को जीवनसंगी बना दिया।

पद्मा डोगरी कवियों में संभवतः सबसे अधिक लिखने लगी हैं। इस अल्प-

वय में ही उनकी कविताओं में कल्पना के अत्यंत नवीन और रंगीन रूप मिलते हैं। उनकी एक ही कविता से उनकी काव्य शक्ति का अनुमान किया जा सकेगा। एक पागल बुढ़िया ने एक दिन कवयित्री से पूछा—'रानू, ये राजा के महल तुम्हारे हैं ?' यही पंक्ति कविता बन गई :

ए राजे दियाँ मंडियाँ तुदियाँ न ?
ओं गेई गोआची दी घरै थनाँ।
मेरी जोत खवाची दी बरै थमाँ,
मिकी अन्नी·करी जिने सुट्टेदा।
मेरा बाड़िया जा बूटा पुट्टे दा,
जिनें कंबदियाँ टालियाँ पुट्ठी लेइयाँ।
ओ दंदल दराटियाँ तुदियाँ न। ए राजे दियाँ०।
कंदाँ उच्चियाँ छौन समाने कन्ने।
मेल तकढ़े माल खजाने कन्ने,
ए इट्टाँ सुरा रंगें माँहिया न।
साड़े लऊए दा चेता करांदियाँ न,
साड़े मुंडे परा उतरे छकीर इत्थें।
बगे पिंडे चा परसे दे नीर इत्थें।
जिनें तुप्पा सड़ी एकी कंन चाढ़ी।
करें उदियाँ मंडियाँ तुदियाँ न ? ए राजे०।
मूँ पैदा आ जिनें खूसी लेया।
अनबनेया लऊ जिनें चूसी लेया।
साड़े भुंजने तड़फने रोने आला,
दिन जिनें शाएँगी दूसी गेया।
साड़े कंबदे हत्थेंगी सुट्टी सोट्टू।
छुड़ेया अक्खीं अग्गें नि इक लोट्टू
जड़े फंडिऐ साड़े पटार लेइगे।
उदियाँ लद्दीदियाँ घोड़ियाँ तुदियाँ न ? ए राजे०।

(१०) बसंतराम—जन्म से नाई (नापित), अस्पताल में चपरासी, ५४ वर्षीय बसंतराम डोगरी के अनपढ़ कवि हैं। इनकी कवितासाधना मौखिक चलती है। इन्हें अपनी सभी रचनाएँ जबानी याद हैं।

कविता का एक उदाहरण :

नस्सो ते घरबाओ नेईं बदलो एस जमाने गी।
जिनें गमें दा दुद्द जै पीना उनेईं वेनी खल,

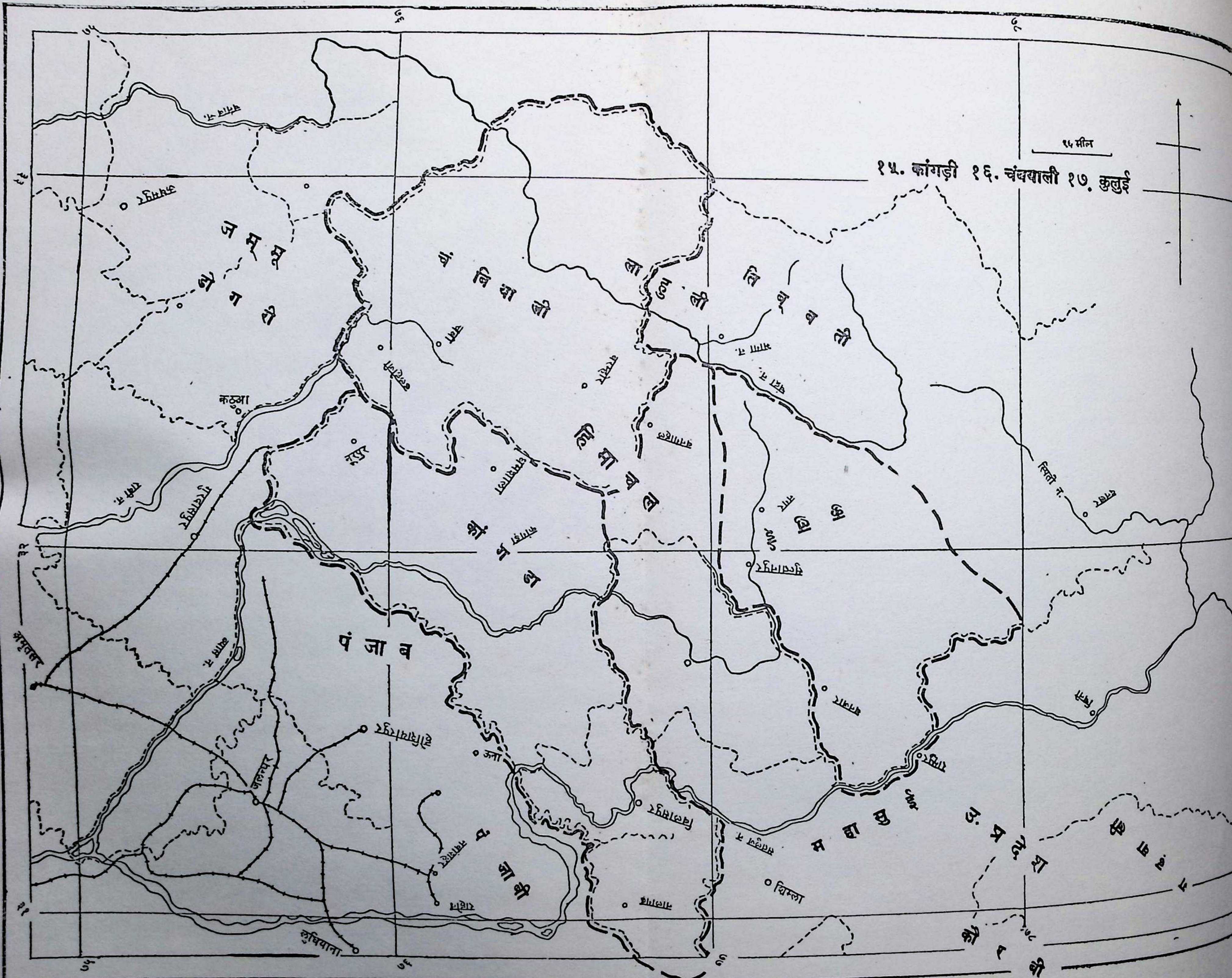
उन दांदे दी सेवा करनी, जेड़े बांदे हल,
उनें बेड़ें गी पालो जेड़े, साड़ेने जंदे रल,
जिनें छड़ियाँ बड़काँ मारनियाँ, कड्डो उनें साढ़ेंगी, नस्सोते।

(ख) एकांकी तथा निबंध—डोगरी साहित्य के विकास में रेडियो जंमू का सहयोग सराहनीय है, अन्यथा साहित्याभाव के स्तर से उठती हुई भाषा में एकांकी तथा निबंधलेखन का सुयोग संभवतः एक दो दशक तक अभी और न मिलता।

एकांकी लेखकों में प्रो० रामनाथ शास्त्री प्रमुख हैं। 'चिख', 'दर्जी', 'बरोबरी', 'आत्मरक्षा', 'चा दियाँ पत्तियाँ', 'शरणागत' उनके कुछ सफल एकांकी हैं। 'प्रशांत', वेद, 'राही', विश्वनाथ मेगी, यज्ञ शर्मा आदि ने भी रेडियो के लिये कुछ एकांकी लिखे। केहरसिंह 'मधुकर' ने डोगरी में दो तीन अति सफल गीतिरूपक लिखकर डोगरी को समृद्ध किया है।

१५. काँगड़ी लोकसाहित्य

श्री शमी शर्मा


१५. कांगड़ी १६. चंबयाली १७. कुलुई
पं जा ब
कठुआ
ऊना
लुधियाना
शिमला

(१५) काँगड़ी लोकसाहित्य

१. काँगड़ी भाषा

(१) क्षेत्र तथा सीमा—काँगड़ा जिले में कुल्लू, स्पिती, लाहुल जैसे भिन्न भाषाभाषी भूक्षेत्र भी संमिलित हैं। अँग्रेजों ने भाषा आदि का कुछ भी ख्याल किए बिना जो भी इलाका अधिकार में आ गया, उसे एक अधिकारी के अधीन कर दिया। यही परंपरा स्वतंत्र भारत में भी चल रही है। काँगड़ी भाषी भूक्षेत्र के उत्तर में चंब्रियाली तथा कुलुई भाषाएँ बोली जाती हैं। पूर्व में मंडियाली और बिलासपुरी भाषाएँ हैं, जिनमें बिलासपुरी को काँगड़ी की सहोदरा कह सकते हैं। इसके दक्षिण और दक्षिणपश्चिम में पंजाबी तथा पश्चिम में डोगरी (जमुआली) है।

पर्वतों की वह श्रेणी जो कुल्लू और चंबा को काँगड़ी से पृथक् करती है, हिमाल श्रेणी के पर्वतों में अपना पृथक् स्थान रखती है। हिमाल की मुख्य दो शाखाएँ हैं जो प्रायः अंत तक एक दूसरे के समानांतर चलती हैं। इनमें से वह जो उत्तर में बहुत अंतर पर है और सिंधु तथा सतलज की घाटियों को अलग करती है, हिमाल की उत्तर शाखा कहलाती है। यही हिमाल की मुख्य शाखा है। दूसरी, ज।मैदानों की ओर खड़ी है, 'पीर पंजाल' या मध्य हिमालय शाखा कहलाती है। पीर पंजाल श्रेणी के कुछ पर्वत कुल्लू को लाहुल और स्पिती से अलग करते हैं। कुल्लू के उत्तरपश्चिम कोण से हिमाल की एक शाखा फूटती है, जो दक्षिण दिशा की ओर प्रायः बंदाहल (पंद्रह मील) तक बढ़ती जाती है और कुल्लू को बंदाहल से अलग करती है। इन्हीं पर्वतों के मध्य में कुल्लू की सुरम्य घाटी है।

बंदाहल को अलग करनेवाली श्रेणी आगे दो भागों में विभक्त होती है। एक दक्षिण की ओर बढ़ती है, जो कुल्लू को लाहुल और स्पिती से अलग करती है। कुल्लू के उत्तर पश्चिम कोण में यह एक और शाखा छोड़ती है, जो कुल्लू को मंडी से पृथक् करती है और व्यास नदी तक आकर समाप्त हो जाती है। इसकी दूसरी शाखा पश्चिम की ओर मुड़ती है, जिसका नाम 'धौलीधार' (या 'धौलाधार') है। यह धार (श्रेणी) काँगड़ा को चंबा से अलग करती है और काँगड़ा पर्वतीय प्रदेश के भाल पर सुदृढ़ प्राचीर की भाँति अचल खड़ी है। यह शैलमाला खेतों से भरी काँगड़ा, पालमपुर की घाटियों के सौंदर्य को दुगुना बना देती है। समस्त काँगड़ा प्रदेश का जीवन इसी धौलीधार पर निर्भर है, जिसके हिम से निकली नदियाँ इस रम्य प्रदेश को सिंचित करती हैं। धौलीधार शैलमाला निरंतर पूर्व से पश्चिम की ओर एक अर्धवृत्त में बढ़ती है। इसकी अधित्यका में बैजनाथ,

पालमपुर, श्रीचामुंडा, नंदिकेश्वर, हरधंजर महादेव, बज्रेश्वरी मंदिर, भागसूनाथ और अंत में डलहौजी जैसे प्राकृतिक सौंदर्य में निखरे स्थान स्थित हैं। डलहौजी पहुँचकर इस श्रेणी का अंत हो जाता है, और गगनचुंबिनी चोटियों की धार रावी के तट पर धराशायी हो जाती है। चंबा इसी के दूसरी ओर है।

दक्षिण की ओर काँगड़ा की सीमा बनानेवाली सिवालिक पहाड़ियों की श्रृंखलाएँ हैं, जो नीचे पंजाब के दुआब के मैदानों को पृथक् करती व्यास के किनारे हाजीपुर नामक स्थान से लेकर सतलज के तट पर स्थित रोपड़ तक चली गई हैं। इसके बीच का पठार (जसूआँ दून) होशियारपुर जिले की तहसील ऊना में है। क्षुद्र पहाड़ियों की यही सर्वप्रथम श्रेणी है जहाँ मैदान का अंत और पर्वतीय प्रदेश का आरंभ होता है। सिवालिकवाले प्रदेश में आमों के बाग अधिक हैं, पहाड़ियाँ शुष्क हैं जिनमें कँटीली झाड़ियों का आधिक्य है।

सिवालिक (जसूआँ) की पहाड़ियों के ऊपर की भाषा काँगड़ी है। इस भाषा का इतने क्षेत्र में सीमित रहना उपर्युक्त भौगोलिक कारणों पर ही निर्भर है। हिमाल श्रेणियों तथा शुष्क शिवालिक पहाड़ियों से चारों ओर से घिरे होने के कारण लोगों का बाहर आवागमन सरल नहीं है।

काँगड़ा तथा पालमपुर की घाटियों में और भी बहुत सी छोटी छोटी पर्वत-श्रेणियाँ हैं, किंतु ये उतनी लंबी नहीं हैं, जितनी उत्तर में धौलीधार और दक्षिण में जसूआ चिंतापूर्णी की धार। चिंतापूर्णी पहाड़ी के नीचे होशियारपुर जिला है, जहाँ पहुँचने पर भाषा का अंतर स्पष्ट हो जाता है। अतः दोनों ओर इन प्राकृतिक सीमाओं से घिरी होने के कारण यहाँ की जनभाषा प्रारंभ से काँगड़ी ही रही।

सांस्कृतिक विशेषता और रीतिरिवाज भी यहाँ के एक हैं। एक ओर रीति-रिवाजों ने भाषा की एकता रखी है, तो दूसरी ओर एक भाषा होने के कारण उनके पारस्परिक संबंध भी एक जैसे बने रहे। जन्म, छठी, यज्ञोपवीत, विवाह, मृत्यु इत्यादि भिन्न भिन्न संस्कारों के भिन्न भिन्न लोकगीत प्रायः सर्वत्र एक रूप में मिलते हैं। साथ ही मेलों में एकत्रित होने पर जनता अपनी एकता का परिचय देती है। पर्वतीय प्रदेश में ही विवाहादि संबंध करने से भी यहाँ की लोकभाषा पर बाहरी प्रभाव नहीं पड़ा।

पर्वतीय प्रदेश काँगड़ा का प्राचीन नाम त्रिगर्त था। त्रिगर्त (तीन गढ़े या नदियाँ) हैं—रावी, व्यास और सतलज। त्रिगर्त (जालंधर) की राजधानी नगरकोट या भीमकोट थी। 'कोट' शब्द किले के लिये प्रयोग किया गया है। यह किला आज भी बाणगंगा और माँझी के मध्य में खड़ा है। किसी समय वर्तमान पठानकोट, होशियारपुर, बिलासपुर तथा मंडी भी इसमें संमिलित थे। आज भी

इनकी जनभाषा में विशेष अंतर नहीं है। यह सारा पर्वतीय प्रदेश द्विगर्त और त्रिगर्त (काँगड़ा) में बँटा था। जंमू प्रांत की भाषा डोगरी आज भी काँगड़ी भाषा से बहुत मिलती जुलती है। वस्तुतः दोनों सहोदराएँ हैं।

(२) जनसंख्या—कुल्लू को लेकर काँगड़ा जिले का क्षेत्रफल ८९७५ वर्गमील तथा जनसंख्या ९,२७,०९३ है, जिसकी पाँच तहसीलों में काँगड़ी बोली जाती है, जिनकी संख्या १९५१ में निम्न प्रकार थी :

तहसील	क्षेत्रफल (वर्गमील)	संख्या
१—काँगड़ा सदर	४२२	१,५६,३१७
२—डेरा गोपीपुर	४६५	१,४२,००८
३—नूरपुर	५१६	९७,४८०
४—हमीरपुर	५६०	२,११,११९
५—पालमपुर	७२४	१,७४,४५१
	२७५०	७,८१,३७५

(३) काँगड़ी और पंजाबी—इन दोनों भाषाओं में अत्यंत समानता है। पंजाबी में 'तुम कहाँ जा रहे हो' को कहते हैं :

तुसी किधर जा रहे हो ?

और काँगड़ी में है :

तुसाँ कुथू जो चलेयो ?

'तुम' शब्द पंजाबी में 'तुसी' और काँगड़ी में 'तुसा' में बदल जाता है। गद्दी (चंबियाली) भाषा में यह होगा—'तू कठी जो चलूरा ?'

काँगड़ी में 'अपने' के लिये 'असाँ' का प्रयोग होता है, 'कभी कभी' के लिये 'कदी कदी', का तथा 'तुम ने' के लिये विभक्ति सहित 'तुद' का। विभक्तियों का काँगड़ी में प्रायः लोप है। हिंदी की तरह यहाँ भी विभक्ति पृथक् शब्द के रूप में होती है। 'के लिये' चतुर्थी विभक्ति 'ताईं' है—'तुम्हारे लिये'='तिजो ताईं'।

काँगड़ी भाषा गठन की दृष्टि से हिंदी से काफी भिन्न है, फिर भी हिंदी के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का उसमें बाहुल्य है। देशज शब्द इसमें खूब चलते हैं।

२. गद्य

काँगड़ी लोकसाहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्य में लोक

कथाएँ और लोकोक्तियाँ (मुहावरे) हैं और पद्य में लोकगाथाएँ (पँवाड़े) और लोकगीत मिलते हैं ।

(१) लोककथा—काँगड़ी का सारा साहित्य अभी लोककंठों में ही पड़ा है। यह बड़ा ही सरस है; इसे कहने की आवश्यकता नहीं। यहाँ एक लोककथा उदाहरणार्थ दी जाती है :

गल[1] बड़ी पुराणी नहीं है। तीन साल होए रामें अपने मुंडूए[2] जस्सो दा विआह दीनूए दिया कुड़िया[3] ने किचा। जे कुछ सख्या बणया, से गहणा कपड़ा कुड़िया जो दित्ता। सुणने विच एभी आया कि इस विआहे पिछे तिनी अपने चार पंट्टू रेहन भी रक्खे। विआहए किते परंत लगदे ही यूँद कने रामें जस्सो लाडीया[4] सदणें[5] ताई भेज्या, ताँ तिसाँ दियाँ माँऊ[6] भेजणे ते कोरा जवाब देइ दित्ता। तिसते परंत कई सादे भेगे, पर कुछ भी असर नहीं होथा। अखीर रामें यार भलेमाणस किट्ठे[7] किते, भगुतुए जो कन्ने लिया कने कुड़माँ दे धरें पंची लई करी गया। जाँ एक पता लग्गा, कि नाते आए ताँ दीनूए दीया घरे बालिआँ[8] दीनूएँ जो तित्थू ते नटाइ दित्ता। से हल्ली ताईं दुकानाँ तिकर ही पुजा हुंजा कि रामें आदमीं भेजी करी तिसयो सदाई लिया।

बिच्चे दी गल्ल एह थी, कि जस्सी जरा सधारण दिया आदमी था। बड़ा हेरफेर नीं जाणदाँ था, पर तिस दी[9] सस बड़ी चलाक थी। तिस साईं दूँ जो दिनें फियाड़िया ही बी वेची औणे बाली। इस करी कें तिनाँ सोच्या की रूपये लेई लेईये कनें फिरीं कुड़िया जो ना भेजिये। होया भी इहाँ ही। खैर, एह नाता भगतुर दी मेहरबानी कने होया था, उस जो ही कनी[10] लेई कर रामां पंची कराणा[11] आया था।

सारे ही सभा विच दीनूए जो झूठा करदे थे। पर दीनू बेचारा बड़ा भला-मानस, जियाँ कोई गलाए तिसदे मुताविक ही कम करदा था। बोलना लग्गा बुढ़े बारें मेरे धोले खराब करी दित्ते, इने भाऊ कने धीया। हुण[12] क्या करगा मैं। एक गलांदे होए दीनूएँ अपणा साफा गुहाई करी, पंचाँ दे पैराँ पर रखी दित्ता, कने छमाछम रोणा लगी पिया। बबे अपणा दिया इसा हालता जो दिखी करी व्याईया कुड़ी जरा भी अपणे आपे जो सँभाली नी सकी, कनें तालू ही जस्सो कने सोगगी, अपणे सोरियाँ दे घरे जो चली गई। पंच उठे कनें अपणों अपणों घरे जो[13] आए।

[1] बात। [2] लड़के। [3] लड़की। [4] बहू। [5] बुलाने। [6] माँ। [7] इकट्ठे। [8] संबंधी। [9] उसकी। [10] साथ। [11] पंचायत करने। [12] अब। [13] घरों को।

(२) मुहावरे—

(१) ऊँट ताँ कुद्दे पर बोरे भी कुद्दे—बड़ों के साथ छोटे भी बराबरी करने लगे।

(२) माखी मारी करी माह करना—अति कंजूस।

(३) सुंडी दी कर्णी हत्थें आई गयी—बड़ी मूल्यवाली वस्तु हाथ लग गई।

(४) अपूं ताँ चल्ले सेर दियाँ मुंडियाँ नूँ भी ले चले—स्वयं तो खराब ही हुए, दूसरों को भी खराब किया।

(५) चूहे बिलिया दा बैर—बहुत शत्रुता।

(६) दिनाँ जो ढक्के—जीवन का दूभर हो जाना।

(७) गोच्छे दी जूँ—अति मूल्यहीन वस्तु।

(८) सयाणयाँ दो गलाया कनें आंबले दा खादया पिच्छे ते याद औंदा—अच्छी बात का पता पीछे ही चलता है।

(९) मोयाँ जो मारना—निर्बल को और भी कमजोर करना।

(१०) धर्मे जो धक्के, पापे जो पैडियाँ—भले को दुःख और दुर्जनों को चैन।

३. पद्य

(१) लोकगाथाएँ (पँवाड़े)—

काँगड़ी में गूगाजी आदि के कितने ही पँवाड़े गाए जाते हैं।

(२) लोकगीत—

यहाँ के गीतों के मुख्य भेद हैं—

(१) श्रम-नृत्य-गीत, (२) ऋतु-त्योहार-गीत, (३) मेला-प्रेम-गीत, (४) संस्कारगीत, (५) धार्मिक गीत, (६) बालगीत, (७) विविध गीत।

(क) नृत्यगीत—

आज हमारी घाटी में नाचने का रिवाज कम होता जा रहा है। लोकगीतों का लोकनृत्य के साथ अटूट संबंध है और प्रदेश के सांस्कृतिक संबंधों के उन्नायक लोकसाहित्य के ये दोनों ही महत्वपूर्ण अंग हैं।

काँगड़ा में गीत की पंक्तियाँ गाने के बाद ढोल पर चोट पड़ती और नाच प्रारंभ हो जाता है। इसका वही रूप है, जो पंजाब के भंगड़ा नृत्य में बोली डालने का है। गीत की दो पंक्तियाँ बोलने पर सभी एकदम नाच उठते हैं। गीत का भाव गहन नहीं :

कक्खे दा बणी गया लख लोको, रस्सी दा बणी गया सप्प लोको।
उड्डी औ काँगड़ा देश जाणा, फंदू दियाँ लाड़ियाँ सत लोको।
फंदू ने मारी हैं ढक लोको, फंदू औ मजूरीया नहीं लाणा।

(ख) ऋतु-त्योहार-गीत—

लोहडी और सैर के त्योहार काँगड़ा प्रदेश में विशेष तौर से मनाए जाते हैं। इन त्योहारों के समय परिवार के सभी व्यक्ति अपने अपने घरों में पहुँच जाते हैं। लोहडी त्योहार के समीप लड़कियाँ गाना शुरू करती हैं :

(१) लोहडी--

राजड़ियो राजड़ियो राज दुआरे आए,
भाई राज दुआरे आए।
पेराँ लगी टंडडी टंडडी,
सिरे दी सलाई भाई ?
चौलाँ माँ रेड़दीये रेड़दीये पुत्तर,
तेरे ठाकुर भाई ?
धीयाँ तेरीयाँ राणियाँ राणियाँ,
कोठे ऊपर-धमधमाँ मैं बुजिया और।
चोर नहीं पारी पारी राजे दा भंडारी,
भाई राजे दा भंडारी।

(२) होली--के त्योहार के दो तीन दिवस पूर्व यहाँ की स्त्रियाँ होली पूजती हैं और एक दूसरे को यह कहती विदा लेती हैं :

जे मैं पूजि के चलियाँ ससू नूहए दोआँ।
जे मैं पूजि के चलियाँ दराणी जठाणीएँ दोआँ।
राले बालियाँ बंगा लेई बंजारा आया,
तिने ससू सुहागणीं चूड़ा चढ़ाया।
तिनें नणदाँ लडीकियें घर बिच झगड़ा,
नणदें गाल देयाँ गाल लगे तेरे वीरे पायाँ।
मैं घुमाई मेरिय नणदे।

(ग) मेला-प्रेम-गीत—

बने मोर बोलन, कने रस घोलन,
पोए बर्खा दी ठंडी फुआर रे,
छुंजोटी बजाए कोई बाँसुरिया।

लपालपा पर फुलण फुल्यो दिखी कर मन हरषाये,
बैजां पर कोयलां जे कूकन—कू क गीत सुनाये।
मेरा मन भाये मेरा दिल गाये,
घरे प्रीतम आये हमार रे, छुंजोटी बजाये०।
पहाड़ां ते खड्डा जे लोन झरझर शोर मचान,
ऊँचे टिले चढी करि दिखा वो पलना पकी पैए धान।
सिल्याँ बीणन छुलियाँ बंडन, कनें गान पहाड़ी राग रे,
छुंजोटी बजाये०।

(घ) संस्कार गीत—

(१) जन्म (सोहर) गीत—

पीढे बैठी मेरो माई नी दाइये, चलो मेरे नाल,
बुलाई दाई गर्व करै।
कर दी बोल करार अजी रामा, कर दी बोल करार।
जे तेरे जन्म्या पूत बधे तेरा गोत, बधे परिवार,
दाइया माइया क्या मिलैगा ? अरे हाँ।
पंज रुपय्ये रोक नी दाइये, होर सिरे जो चोप।
कन्हैया तेरी गोद खेले।
जे तेरी जनमेगी धी ओ अजी राका, दाइया माइया क्या मिलैगा ?
जे साडे जनमेगी धी ओ, घटे साडा जीओ, घटे परिवार।
एक रुपय्या रोक नी दाइये होर डंडेदी चोट, धकके दिन्दे लोक,
पुरानी देही चोलनी, अबे हाँ।

(२) विवाहगीत[१]—

(क) बूटणा (उबटना)--

(ख) समूहत--वर को स्नान कराते समय गाए जानेवाले गीत को काँगड़ा में समूहत कहते हैं :

अज मेरे हरि जी दा ब्याह है कि मंगल गाइए।
किनी वंडे रत्न पदार्थ किनी वंडे रोकड़ी।
किनी वंडे रत्न जवाहर भरी भरी थालीयाँ।

[१] श्री अमरनाथ (कुल्लू) द्वारा संगृहीत।

रानीयाँ के केइएँ वंडे रत्न पदार्थ सुमित्रा वंडी रोकड़ी।
रानीएँ कौसल्या वंडे रत्न जवाहर भरी भरी थालियाँ॥
किसी हथ दहीं दा कटोरा किसे हथ बूटणा लेया।
किसी हथ गंगा दा नीर की लाड़ा लुहाएया।
रानिएँ कैकेइया हथ दहीं दा कटोरा सुमित्रा हथ बुटणा लिया।
राणिया कौसल्या हथ गंगाजी दा नीर की लाड़ा नुहाएया।

(ग) बिदाई--

मेरी ए बागदेयि कोयले, बागे छड्डी कुत्थु चल्ली ए?
तेरियाँ बेलाँ नेजा झाडे पत्तडियाँ,
बागे छड्डी कुत्थु चल्ली ए?
तेरा तोता सोहणा, सबनदा मनमोहणा,
तुध बिन खाँदा न चूरी ए०।
मेरिया धौलियाँ हीरा, ढालन नैनाँ नीराँ,
इन्हा छड्डी तु कुत्थू चल्ली ए।
बापुएँ बचनादी हारी,
वचना बद्धी धरे चल्ली ए मेरी बागेदिये०।

(घ) धार्मिक (भजन) गीत--

मना मूर्खा हो, गुण परमेसरे दा गाण हो।
विषयाँ विकाराँ ते मने जो हटाई करी,
तिस पिता दे विच चित लाणा हो।
इस दुनियाँ दे नाते तेरे कंपेनी ओणों,
तुध मरना दुनिया पैसे लेयी जाणों।
भज तिसजो दुनियाँ ते छुटि जाणा हो,
मना मूर्खा हो, गुण परमेसरे दा गाणा हो।
मनें जो तू प्रभु संग ला औ माणूआँ,
मनें जो तू हरि कने ला औ माणूआँ।
मिट्टिया कने मिली जाणी, एह निकी देयी जिंदगानी।
इसा जो तू बहुता ना सजा औ माणूआँ, मनें जो तू०।

(ङ) बालकगीत--

(१) लोरी--

काहन चतुर्भुज लोरी हरि लै।
ज़ा जम्भाँ जा दीपक जलया,

चोदी चौंक होइयाँ लोई, हरि लोरी लै।
नहाता धोता पाट प्लेटेया,
कुच्छड़ लिया दाइयाँ। हरि०।
घोल बताशा गुलसट देसाँ,
सुन्ने दी है कटोरी।
चन्नण कटि पलँघूड़ा घड़ाडी, रेशमी ढोराँ लाइया।
ओदी ताँ जाँदी माता देवकी, झटाँदी झुटयाँ देन खलायाँ।
ओदा ताँ जादा वसुदेव झटाँदा झूटया लैन खलायाँ।

(२) खेलगीत—

कोण खेले पट खिनडुए नदी जमना किनारे।
श्याम खेले पठ खिनडुए नदी जमनाँ किनारे।
सुट्या छेल जिन्नु खेल श्यामा मंज जमना सुय्या।
इस खिनुएँ हीरे रत्न लगे मोतियाँ जडग जुडाई ए।
हीरे तो रत्न जवाहर लगे हाँर लगे मोती घने।
छेल खिन्नु खेल श्यामा मंज जमना सुय्या।
लिखि चिट्ठियाँ राजा कंस मंजे।
आओ श्यामा मल्ल करने को।
वाची ताँ चिठियाँ वसुदेव हसे अपना आप बमाएगा।
युद्ध लगा जिनाँ दूँ जणायाँ सके माणजे दा।
युद्ध ताँ लगाँ जिनाँ दूँ जणयाँ सके मामे सके माणजे।
अंदर बही करी खेल खेली बाहर मामा मारया।

(च) विविध गीत—

(१) काँगड़ा देश—

नी मेरा काँगड़ा देश निआरा।
डुगी डुगी नदियाँ ते सैली सैली धाराँ, ओ सैली सैली धाराँ।
छैले छैले गमरू ते बाँकिआँ नाराँ, ते बाँकिआँ नाराँ।
बोलण बोल पिआरा, नी मेरा काँगड़ा देश निआरा।
चित्र चित्र चिहड़ा जे करडा, चहड़ा जे करदा।
उडि उडि डालिआ बहिंदा, ओ डालिआँ बहिंदा।
बोलण बोल पिआरा, नी मेरा काँगड़ा देश०।
फुलडुआँ फुलडुआँ घघरू ओ तेरा,
सुफेदी कुरती काली।

तिज्जों ताँ मड़िये वणी वणी बोंहदी,
चादर तेरी ओ नसवारी ।
खसम तां तेरा गिलड़ा माड़िये,
तूँ ताँ चंबे दी ओ डाली ।
अप्पू ताँ बैठी पीठ मुइए बो,
खसम ताँ घलिया बगारी ।
भला ओ मुइए सूफेदी कुरती काली ।
देर ताँ तेरा मिये छैल छबीला,
देखी हुन्नी मतवाली जी ।
सोहरा तेरा मुइए जली जली मरदा,
सस दिंदी ओ तिजो गालीं ।

ऊपर के गीतों में काँगड़ा प्रदेश की कितनी सुंदर तथा सरस झाँकी उपलब्ध होती है ।

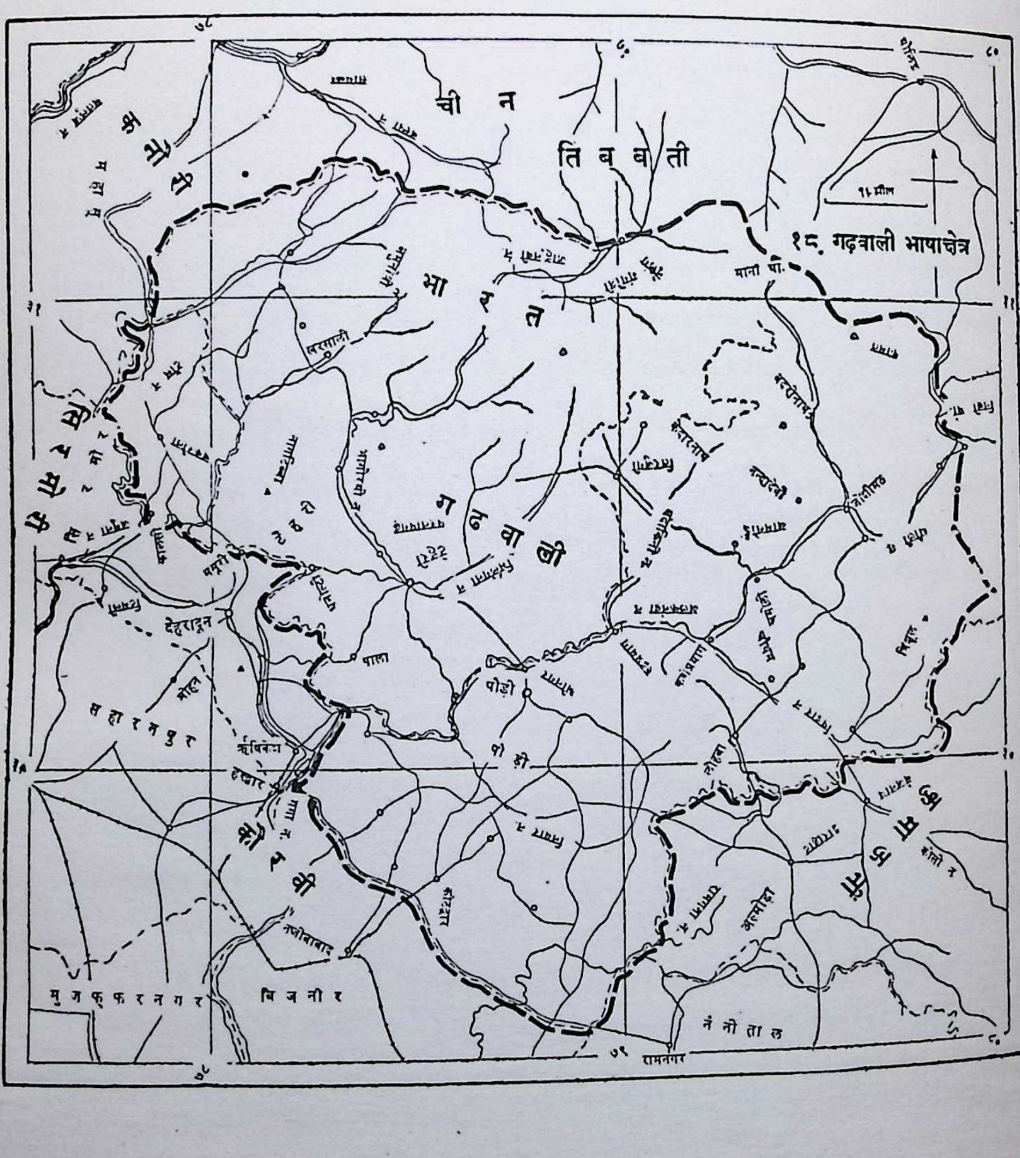
सप्तम खंड

पहाड़ी समुदाय

१६. गढ़वाली लोकसाहित्य

डा० गोविंद चातक, एम० ए०, पी-एच० डी०

१८—गढ़वाली



ची न
ति ब्ब ती
भा र त
ग ढ़ वा ली
१८. गढ़वाली भाषाक्षेत्र
माना घा.
पौड़ी
पौ ड़ी
देहरादून
मसूरी
स हा र न पु र
ऋषिकेश
हरद्वार
नजीबाबाद
मु ज फ़् फ़ र न ग र
बि ज नौ र
नैं नी ता ल
रामनगर
अल्मोड़ा

(१६) गढ़वाली लोकसाहित्य

१. गढ़वाली क्षेत्र और उसकी सीमाएँ

गढ़वाली केंद्रीय पहाड़ी भाषा की एक बोली है जिसका विकास खस नाम की प्राकृत से हुआ है। वर्तमान काल में गढ़वाल और टेहरी जिले इसके अंतर्गत हैं। कूर्मांचल की पश्चिमी सीमा से लेकर यमुना नदी तक का क्षेत्र (अथवा गंगा और यमुना का प्रायः सारा पनढर) केदारखंड कहलाता था। मध्यकाल में ठाकुरों की ५२ गढ़ियों में विभक्त हो जाने के कारण इसे बावनीगढ़ या गढ़वाल कहा जाने लगा। गढ़वाली प्रदेश का क्षेत्रफल १०१४५ वर्गमील तथा गढ़वाली बोली बोलनेवालों की संख्या १० लाख के लगभग है।

२. गढ़वाली भाषा

यों तो गढ़वाल की पट्टी पट्टी में बोली का भेद दिखाई पड़ता है परंतु गढ़वाली की निम्नांकित आठ उपबोलियाँ स्पष्ट रूप से प्राप्त होती हैं :

(१) राठी
(२) लोभिया
(३) बधानी
(४) दसौलिया
(५) माँझ कुमइयाँ
(६) श्रीनगरिया
(७) सलानी
(८) गंगवारिया

इनमें से श्रीनगरिया, जो गढ़वाल की प्राचीन राजधानी श्रीनगर के आसपास बोली जाती है, केंद्रीय बोली है और व्यापक रूप से सर्वसाधारण द्वारा समझी जाती है।

गढ़वाली है तो उसी शाखा की बोली जिससे कुमायूँनी का संबंध है, लेकिन गढ़वाली पर पूर्वी राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी और पंजाबी का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। इसका कारण यह है कि गढ़वाल को राजपूत राजाओं तथा ठाकुरों ने अपना निवास बनाया था। अतः उनकी बोली का इसपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस प्रदेश में शिक्षा तथा शासन का माध्यम हिंदी रही है तथा

इसका दक्षिणपश्चिमी प्रदेश हिंदी भाषी प्रदेश से संलग्न है। अतः इसपर पश्चिमी हिंदी का प्रभाव भी अनिवार्य ही था। इसकी सीमाएँ पंजाब की पहाड़ी भाषाओं के संपर्क में भी आती हैं। अतः पंजाबी भाषा से इसका प्रभावित होना भी अस्वाभाविक नहीं।

गढ़वाली के उच्चारण में मूर्धन्य ल, ण, और अंत्य 'ए' के स्थान पर 'अ' विशेषतः उल्लेखनीय हैं। पुल्लिग शब्दों में अन्त्य 'ओ' का मेल राजस्थानी से होता है, जैसे घोड़ो, तिकड़ो (कमर) आदि। इनका बहुवचन बनाने में ओ के स्थान पर 'आ' हो जाता है। स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन पंजाबी ढंग से बनता है, जैसे बात से बाताँ, तलवार से तलवाराँ आदि।

गढ़वाली भाषा के संबंध में अभी भारतीय विद्वानों द्वारा विशेष अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है। इसके विस्तृत तथा प्रामाणिक परिचय के लिये डा० सर ग्रियर्सन द्वारा संपादित भाषा सर्वेक्षण की रिपोर्ट देखनी चाहिए।

(१) गढ़वाल—पावनसलिला गंगायमुना का उद्गम, गिरिराज हिमालय का हृदय, भारत का दिव्य भाल गढ़वाल प्रकृतिदेवी के शिशु की क्रीड़ाभूमि सा धरा का अद्वितीय शृंगार है। उत्तर में भोट (तिब्बत), पश्चिमोत्तर में हिमालय प्रदेश तथा पूर्व और दक्षिण में कुमाऊँ और जिला देहरादून से घिरा हुआ १०१४५ वर्गमील और १० लाख से अधिक जनसंख्यावाला यह पर्वतीय प्रदेश एक दूसरा ही हँसता खेलता संसार है। इस सुंदर, सजीव और सरल भूभाग का, जिसे आज सामान्यतः गढ़वाल कहा जाता है, सहस्रों वर्षों का प्राचीन सार्थक नाम केदारखंड है। धार्मिक साधना का पुनीत क्षेत्र होने के कारण महाकवि कालिदास ने जिस हिमालय को 'देवतात्मा' कहा है, उसका यह प्रदेश एक प्रमुख अंग है। मध्यकाल में सामंती गढ़ों की अधिकता के कारण इसका नाम गढ़वाल पड़ गया।

गढ़वाल के सुरम्य और विशाल वनों को वनस्पति और जीवजगत् का अपार ऐश्वर्य मिला है। वर्षा ऋतु में बुग्यालों में बड़े सुंदर फूल खिलते हैं। खाईं की कई पर्वतश्रेणियाँ फूलों से इस प्रकार ढँक जाती हैं कि चरवाहों को धरती दिखाई ही नहीं देती। पँवाली काँठा अपने फूलों के लिये प्रसिद्ध है और भ्यूँडार घाटी का तो नाम ही विदेशी पर्वतारोहियों ने 'फूलों की घाटी' रख दिया है। फ्यूँली, बुराँस, जाई, रैमासी, कूजो आदि फूलों को लोकमानस में बड़ी ममता प्राप्त हुई है। उसी प्रकार काफल, किनगोड, हिंसर आदि वन्य फूलों के प्रति भी इसी आत्मीयता के दर्शन होते हैं। हिलाँस, कफू, घूगती, भ्योली, मुनाल आदि विहग पर्वतीय वनों की सजीव संपत्ति हैं। मुनाल यहाँ का सबसे सुंदर और विशालकाय पक्षी है। इसके पंख बहुत सुंदर, बहुरंगी और आभामय होते हैं। कफू वियोगिनियों का संदेशवाहक है।

गढ़वाल का सामान्य मानव प्रकृति के इस अपार वैभव को आत्मीय दृष्टि से देखने का अभ्यासी है। यहाँ का मानव प्रकृतिपुत्र है। उसकी भुजाएँ रातदिन पहाड़ों से लड़ती हैं, और वह अपनी अथक श्रमसाधना के कणों को शिलाओं पर जड़ते हुए हृदय के सत्य को कर्म में डालने के लिये जीता है। इसीलिये जीवन वहाँ जगत् की कृत्रिमताओं से दूर उगते सूर्य सा खिलता है। वहाँ नारी पुरुष के कार्य में सहयोगिनी है। अपने अभावों में भी वह आँखों में आँसू और अधरों पर स्मिति लिए त्याग की साकार मूर्ति सी दूसरों के लिये जीती है। इस प्रकार के पारस्परिक सहयोग की जड़ें गढ़वाल के लोकजीवन में बड़ी गहराई तक पैठी हुई हैं। धान रोपना, जन्म, मरण तथा आपत्तियों के अवसर पर लोगों की पारस्परिक सहकारिता और संवेदना एक विशाल परिवार की एकसूत्रता को ध्वनित करती है। इसी प्रकार नाते रिश्तों के सूत्रों से बँधा समाज आत्मीयता का विराट् रूप प्रकट करता है।

गढ़वाल सहृदय है। इसीलिये कला उसके मर्म को स्पर्श करती है। जिस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि का विषाद स्वयं काव्य बन गया था, उसी प्रकार गढ़वाल की नारी की एकांत क्षणों की वाणी स्वतः गीत बनकर निकलती है। वाधी तो आशुकवि ही होते हैं और जागरी पुरोहित 'देवता नचाते हुए' भक्तिभाव के उद्रेक में अनजाने ही काव्य की सृष्टि कर जाते हैं। चरवाहे लड़के और लड़कियाँ स्वयं अनेक बुझौवलों की रचना कर डालती हैं और बच्चों को सुलाते हुए घर की बूढ़ी औरतों के मुख से अनेक कथाएँ स्वतः जन्म ले लेती हैं। फलतः उनकी अनुभूतियाँ गीत, कथा, बुझौवल, कहावतों आदि का जो रूप ग्रहण करती हैं वही गढ़वाली लोकसाहित्य है।

२. लोकसाहित्य

गद्य-पद्य-मय गढ़वाली लोकसाहित्य कथा, गीत, कहावत,[1] बुझौवल तथा नाटक के रूप में उपलब्ध होता है। अभी उसका पूर्णतः संकलन नहीं हो पाया है। अंबादत्त शर्मा डंगवाल ने १९३१ ई० में गढ़वाली कहावतों का एक संकलन निकाला था। बाद में शालिग्राम वैष्णव ने १९३८ में 'गढ़वाली पखाणा' प्रस्तुत किया। गढ़वाली लोकगीतों पर पहले पहल संभवतः तारादत्त गैरोला की दृष्टि पड़ी थी। 'सदेई' के लोकगीत के आधार पर उन्होंने १९२४ में गढ़वाली खंड-काव्य की रचना की थी। १९३५ में उन्होंने गढ़वाली पँवाड़ों (गीतकथाओं) को

[1] रा (क), ला (ग), छे (ह) राजस्थानी से संबंधित भाषाओं की विशेषता है। भूतकाल में ल प्रत्यय मागधी वंशज भाषाओं की विशेषता हैं।

गद्य में 'हिमालय फोक लोर' में प्रस्तुत किया। १९२७ ई० में बलदेव शर्मा 'दीन' ने 'जसी' और 'रामी' प्रस्तुत किया। १९२८ ई० में शिवनारायण सिंह विष्ठ ने 'गढ़ समरियान' पँवाड़े का संकलन किया। १९३८ में ज्ञानानंद सेमवाल का 'जीतू बगड़वाल' सामने आया। उनके संग्रह में अधिकांश कवि थे। उन्होंने लोक की आत्मा का स्पर्श करते हुए उन गीतों को काव्य से अनुप्राणित कर अपनी कृतियों के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे वे लोकगीत न रह पाए। इस समय की 'मांगल संग्रह' एकमात्र ऐसी पुस्तक है जिसके लोकगीतों में लोक की आत्मा सुरक्षित रखी गई है।

हिंदी में जब लोकगीतों के संकलन का आंदोलन चला, तभी गढ़वाली लोकगीतों के संकलन का श्रीगणेश हुआ। रामनरेश त्रिपाठी ने कविताकौमुदी में गढ़वाली लोकगीतों को स्थान दिया। देवेंद्र सत्यार्थी ने उनकी यथेष्ट प्रशंसा की। राहुल सांकृत्यायन, पी० सी० जोशी तथा शंभुप्रसाद बहुगुणा के तत्संबंधी लेखों से प्रेरणा पाकर गढ़वाल के लेखकों का इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम 'स्नो बोल्स आव् गढ़वाल' नाम से नरेंद्रसिंह भंडारी का गढ़वाली लोकगीतों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकट हुआ। इससे भी कुछ पूर्व गढ़वाली कविता की पुस्तकों की भूमिकाओं में लोकगीतों की चर्चा होने लगी थी। चक्रधर बहुगुणा के 'मोछंग' और भजनसिंह के 'सिंहनाद' के प्रारंभिक पृष्ठों में इस प्रकार की कुछ सामग्री मिलती है। तत्पश्चात् संकलन के छुटपुट प्रयत्न होते रहे। १९५४ ई० में गढ़वाल साहित्य मंडल (दिल्ली) ने 'धुँयाल' नाम से गढ़वाली लोकगीतों का एक छोटा सा संकलन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् १९५६ में गोविंद चातक का 'गढ़वाली लोकगीत' प्रकाशित हुआ, जिसमें मूल के साथ हिंदी अनुवाद भी दिया गया है।

लोककथाओं के क्षेत्र में अभी बहुत कार्य होने को शेष है। गोविंद चातक के 'गढ़वाल की लोककथाएँ' (दो भाग) नाम से कुछ संग्रह प्रकाश में अवश्य आए हैं। लोकनाट्यों का संकलन अभी हुआ ही नहीं है। बुझौवलों (पहेलियों) पर भी किसी का ध्यान नहीं गया है।

गद्य लोकसाहित्य में कथाएँ और लोकोक्तियाँ मुख्य हैं; पद्य में पँवाड़े (लोकगाथा, प्रबंध लोककाव्य) और लोकगीत संमिलित हैं।

(१) लोककथाएँ—गढ़वाल में कथा और वार्ता दोनों शब्दों का प्रयोग होता है। 'वार्ता' कुछ लंबी और देवी देवताओं तथा ऐतिहासिक पुरुषों की विश्वसनीय कथा को कहते हैं एवं कथा कुछ काल्पनिक मानी जाती है। गढ़वाली में 'कथणो' क्रिया का अर्थ झूठ बोलना अथवा कल्पना करना होता है। वैसे कथा देवताओं की भी हो सकती है, किंतु 'वार्ता' में 'बात' का भाव प्रधान होता है और कथातत्व का कुछ गौण।

कथा और वार्ता सुनने सुनाने के दो रूप हैं। एक तो कथाएँ की जाती हैं। ये धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित होती हैं, जैसे सत्यनारायण की कथा, पुराण कथा, भागवत कथा आदि। इनका लोककथाओं से इस प्रसंग में सीधा संबंध नहीं है। लोककथाएँ घर की बड़ी बूढ़ियाँ बच्चों को सुनाती हैं। इनके अतिरिक्त बच्चे स्वयं पशु चराते हुए उन्हें सुनते सुनाते हैं। वार्ता सुनने और सुनाने की इससे कुछ भिन्न परिस्थिति होती है। वार्ता प्रायः देवता के मंडाणों (समारोहों) में सुनाई जाती है। देवताओं का नृत्य देखने जब लोग रात को एकत्र होते हैं, तो देवनृत्यों के पश्चात् दर्शकों के मनोरंजन के लिये वार्ताएँ सुनाई जाती है। प्रायः वार्ता जाननेवाला कोई व्यक्ति समूह के बीच से उठ खड़ा होता है और दोनों कानों पर उँगली रखकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ देता है। खाईं में इन वार्ताओं को 'हारूल' कहा जाता है। भूतों के नृत्य में जो वार्ता सुनाई जाती है, उसे 'रासों' कहा जाता है।

इस संबंध में एक दूसरी बात यह भी है कि कथावार्ता के रूप गद्य और पद्य दोनों होते हैं। कथाएँ प्रायः गद्य में होती हैं, किंतु वार्ताएँ चाहे गद्य में ही हों किंतु उन्हें काव्य की तरह गाना आवश्यक है। पद्य रूप में जागरों, पँवाड़ों, चैती गीतों में अनेक वार्ताएँ अथवा कथाएँ मिलती हैं। उन्हें सुविधा के लिये गीतिबद्ध कथाएँ कह सकते हैं।

लोककथाओं के विभाजन और अध्ययन की विद्वानों ने अनेक प्रणालियाँ निकाली हैं। उनका अनुसरण करते हुए गढ़वाल की लोककथाएँ स्थूल रूप से निम्नलिखित वर्गों में आती हैं :

१. देवी देवताओं की गाथाएँ
२. परियों, भूतों और चमत्कारों की आश्चर्य, उत्साह और रोमांचपूर्ण कथाएँ
३. वीरगाथाएँ
४. कारणनिर्देशक कथाएँ
५. नीतिकथाएँ
६. पशुपक्षियों की कथाएँ
७. जन्मांतर अथवा परजन्म की कथाएँ
८. रूपक कथाएँ
९. लोकोक्तिमूलक कथाएँ
१०. आँटे साँटे
११. हास्य कथाएँ
१२. निष्कर्षगर्भित कथाएँ

गद्य में 'हिमालय फोक लोर' में प्रस्तुत किया। १६२७ ई० में बलदेव शर्मा 'दीन' ने 'जसी' और 'रामी' प्रस्तुत किया। १६२८ ई० में शिवनारायण सिंह विष्ठ ने 'गढ़ समरियान' पँवाड़े का संकलन किया। १६३८ में ज्ञानानंद सेमवाल का 'जीतू बगड़वाल' सामने आया। उनके संग्रह में अधिकांश कवि थे। उन्होंने लोक की आत्मा का स्पर्श करते हुए उन गीतों को काव्य से अनुप्राणित कर अपनी कृतियों के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे वे लोकगीत न रह पाए। इस समय की 'मांगल संग्रह' एकमात्र ऐसी पुस्तक है जिसके लोकगीतों में लोक की आत्मा सुरक्षित रखी गई है।

हिंदी में जब लोकगीतों के संकलन का आंदोलन चला, तभी गढ़वाली लोकगीतों के संकलन का श्रीगणेश हुआ। रामनरेश त्रिपाठी ने कविताकौमुदी में गढ़वाली लोकगीतों को स्थान दिया। देवेंद्र सत्यार्थी ने उनकी यथेष्ट प्रशंसा की। राहुल सांकृत्यायन, पी० सी० जोशी तथा शंभुप्रसाद बहुगुणा के तत्संबंधी लेखों से प्रेरणा पाकर गढ़वाल के लेखकों का इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम 'स्नो बोल्स आव् गढ़वाल' नाम से नरेंद्रसिंह भंडारी का गढ़वाली लोकगीतों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकट हुआ। इससे भी कुछ पूर्व गढ़वाली कविता की पुस्तकों की भूमिकाओं में लोकगीतों की चर्चा होने लगी थी। चक्रधर बहुगुणा के 'मोछंग' और भजनसिंह के 'सिंहनाद' के प्रारंभिक पृष्ठों में इस प्रकार की कुछ सामग्री मिलती है। तत्पश्चात् संकलन के छुटपुट प्रयत्न होते रहे। १६५४ ई० में गढ़वाल साहित्य मंडल (दिल्ली) ने 'धुँयाल' नाम से गढ़वाली लोकगीतों का एक छोटा सा संकलन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् १६५६ में गोविंद चातक का 'गढ़वाली लोकगीत' प्रकाशित हुआ, जिसमें मूल के साथ हिंदी अनुवाद भी दिया गया है।

लोककथाओं के क्षेत्र में अभी बहुत कार्य होने को शेष है। गोविंद चातक के 'गढ़वाल की लोककथाएँ' (दो भाग) नाम से कुछ संग्रह प्रकाश में अवश्य आए हैं। लोकनाट्यों का संकलन अभी हुआ ही नहीं है। बुझौवलों (पहेलियों) पर भी किसी का ध्यान नहीं गया है।

गद्य लोकसाहित्य में कथाएँ और लोकोक्तियाँ मुख्य हैं; पद्य में पँवाड़े (लोकगाथा, प्रबंध लोककाव्य) और लोकगीत संमिलित हैं।

(१) लोककथाएँ—गढ़वाल में कथा और वार्ता दोनों शब्दों का प्रयोग होता है। 'वार्ता' कुछ लंबी और देवी देवताओं तथा ऐतिहासिक पुरुषों की विश्वसनीय कथा को कहते हैं एवं कथा कुछ काल्पनिक मानी जाती है। गढ़वाली में 'कथणो' क्रिया का अर्थ झूठ बोलना अथवा कल्पना करना होता है। वैसे कथा देवताओं की भी हो सकती है, किंतु 'वार्ता' में 'बात' का भाव प्रधान होता है और कथातत्व का कुछ गौण।

कथा और वार्ता सुनने सुनाने के दो रूप हैं। एक तो कथाएँ की जाती हैं। ये धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित होती हैं, जैसे सत्यनारायण की कथा, पुराण कथा, भागवत कथा आदि। इनका लोककथाओं से इस प्रसंग में सीधा संबंध नहीं है। लोककथाएँ घर की बड़ी बूढ़ियाँ बच्चों को सुनाती हैं। इनके अतिरिक्त बच्चे स्वयं पशु चराते हुए उन्हें सुनते सुनाते हैं। वार्ता सुनने और सुनाने की इससे कुछ भिन्न परिस्थिति होती है। वार्ता प्रायः देवता के मंडाणों (समारोहों) में सुनाई जाती है। देवताओं का नृत्य देखने जब लोग रात को एकत्र होते हैं, तो देवनृत्यों के पश्चात् दर्शकों के मनोरंजन के लिये वार्ताएँ सुनाई जाती है। प्रायः वार्ता जाननेवाला कोई व्यक्ति समूह के बीच से उठ खड़ा होता है और दोनों कानों पर उँगली रखकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ देता है। खाईं में इन वार्ताओं को 'हारूल' कहा जाता है। भूतों के नृत्य में जो वार्ता सुनाई जाती है, उसे 'रासों' कहा जाता है।

इस संबंध में एक दूसरी बात यह भी है कि कथावार्ता के रूप गद्य और पद्य दोनों होते हैं। कथाएँ प्रायः गद्य में होती हैं, किंतु वार्ताएँ चाहे गद्य में ही हों किंतु उन्हें काव्य की तरह गाना आवश्यक है। पद्य रूप में जागरों, पँवाड़ों, चैती गीतों में अनेक वार्ताएँ अथवा कथाएँ मिलती हैं। उन्हें सुविधा के लिये गीतिबद्ध कथाएँ कह सकते हैं।

लोककथाओं के विभाजन और अध्ययन की विद्वानों ने अनेक प्रणालियाँ निकाली हैं। उनका अनुसरण करते हुए गढ़वाल की लोककथाएँ स्थूल रूप से निम्नलिखित वर्गों में आती हैं :

१. देवी देवताओं की गाथाएँ
२. परियों, भूतों और चमत्कारों की आश्चर्य, उत्साह और रोमांचपूर्ण कथाएँ
३. वीरगाथाएँ
४. कारणनिर्देशक कथाएँ
५. नीतिकथाएँ
६. पशुपक्षियों की कथाएँ
७. जन्मांतर अथवा परजन्म की कथाएँ
८. रूपक कथाएँ
९. लोकोक्तिमूलक कथाएँ
१०. आँटे साँटे
११. हास्य कथाएँ
१२. निष्कर्षगर्भित कथाएँ

देवीदेवताओं की कथाएँ जागर गीतों के रूप में मिलती हैं। गढ़वाल में दो प्रकार के देवता हैं—एक तो राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि देवता, जो हिंदुओं में सर्वत्र मान्य हैं, और दूसरे स्थानीय देवता, जैसे खाईं में महासू, पोखू, पणसी तथा गढ़वाल के अन्य भागों में नगेलो, घंटाकर्ण, पांडव महासुर (भांसर), विनसर, खितरपाल (क्षेत्रपाल), भूमिया, कैलावीर आदि। जागर गीतों में सभी स्थानीय देवताओं की लीलाएँ कथारूप में मिलती हैं। खाईं के पोखू और महासू देवता के गीत में उनकी जीवनगाथा ने कथा का रूप धारण किया है। घंटाकर्ण देवता की भी एक कथा चलती है। हिंदू देवताओं में कृष्ण को नागराज स्वीकार किया गया है और उसको नचाते हुए जो गीत गाए जाते हैं, उनमें कथातत्व प्रधान होता है। कृष्ण के जागर के साथ ब्रह्मकमल, विदुवा, गंगू रमोला, चंद्रावली-हरण, रुक्मिणी परिणय आदि प्रसंग कथात्मक ही हैं। राम को कृष्ण की भाँति जागर गीतों के साथ नचाया नहीं जाता, किंतु राम संबंधी कथाएँ गीतों में मिलती हैं। सीताहरण के प्रसंग को खाईं और गढ़वाल के कुछ अन्य भागों में बड़े अच्छे रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पांडवों की कथा गढ़वाल में बहुत लोकप्रिय है। उसको पंड्वर्ति कहते हैं, जिसका आशय 'पांडववार्ता' से है। पांडववार्ता बहुत कुछ महाभारत के अनुसार ही चलती है, किंतु उसके कुछ प्रसंग मौलिक भी हैं। कुंती का स्नान, पांडु के श्राद्ध के लिये गैंडे की खोज, अर्जुन और वासुदंता का प्रणयप्रसंग बहुत मार्मिक हैं।

ये कथाएँ, जैसा कहा जा चुका है, जागर गीतों के रूप में मिलती हैं। इनके गायक अथवा कतक (वाचक) पुरोहित लोग अथवा ढोल आदि वाद्यों से देवता को नचानेवाले औजी जाति के हरिजन लोग होते हैं। भूत और आछरी को नचाते हुए पुरोहित लोग तत्संबंधी जो गीत गाते हैं, उन्हें 'रासो' कहा जाता है। उनमें भी कथा का अंश होता है। आछरियों के घडियाले (नृत्यवाद्य) में उनके संबंध में अनेक कथाएँ गाई जाती हैं।

इस प्रकार देवी देवताओं की आरंभिक गाथाएँ पद्य में ही मिलती हैं। किंतु, यह समझना उचित न होगा कि देवीदेवताओं, परियों आदि की कथाएँ गद्य में आई ही नहीं। शिवपार्वती तथा सतीसंबंधी अनेक कथाएँ गद्य रूप में भी मिलती हैं। भूत, भैरव, जग्स (यक्ष) अनेक कथाओं के नायक हैं। गढ़वाल में राक्षसों की कथाएँ अधिक होती हैं। उनके द्वारा मनुष्यों का खाया जाना, फिर किसी वीर के द्वारा उनका मारा जाना राक्षस कथाओं का प्रिय विषय है। भूतों, राक्षसों और जग्सों के अनेक चमत्कारों का उल्लेख भी इन कथाओं में मिलता है। बहुधा उनके प्राण किसी पेड़ में लटकती 'लोमड़ी' (तुंबे) में बसे बताए गए हैं। वे इच्छानुसार प्रकट और अंतर्धान हो सकते हैं।

गढ़वाल की वीरगाथाओं का उल्लेख पीछे पँवाड़ों के रूप में हो चुका है। वास्तव में पँवाड़े वीरगाथाएँ ही हैं और यद्यपि इनमें गद्यात्मकता बहुत होती है और छंद स्वच्छंद होते हैं, तथापि प्रायः इनको गाकर सुनाया जाता है। जगदेव, पँवार, मालूराजुला, रिखोला, गढ़ू सुमरिया, भानु भौंपेला, रणूफंकू, रणू रौत, वीरू भंडारी आदि की गाथाएँ लोक में इसी रूप में प्रचलित हैं। तारादत्त गैरोला ने अपने 'हिमालय फोक लोर' में इस कोटि की अनेक वीरगाथाओं का संग्रह किया है।

ये वीरगाथाएँ अब लुप्त होती जा रही हैं क्योंकि अब इनके गायक नहीं रहे। सामंत युग में वीरों को युद्धस्थल में उत्तेजित करने और उनका यश स्थायी बनाने के लिये पँवाड़े बनाए और सुनाए जाते थे। इनके रचयिता चंफ्या, हुड़क्या अथवा भाट लोग हुआ करते थे, जो चंफ अथवा हुड़की वाद्यों के साथ इन गीतों को रणस्थल में गाया करते थे। अब ये लोग भिक्षा माँगते हुए इन गीतों को सुनाते रहते हैं।

पशुपक्षियों की कथाएँ गढ़वाल में अनेक रूपों में मिलती हैं। कुछ ऐसी कथाएँ होती हैं जिनमें सब पात्र वे ही होते हैं। कुछ में वे मानव के सहयोगी होते हैं। इस प्रकार की अनेक कथाओं में चूहे, बिल्ली, शेर, तोते आदि द्वारा मनुष्य के बड़े बड़े कार्य सिद्ध हुए हैं।

पशुपक्षियों की कथाएँ दूसरे जन्म से भी संबंधित होती हैं। अनेक पक्षियों में पूर्वजन्म में मानवीय आत्मा मानी गई है। घूघूती चिड़िया के संबंध में दो कथाएँ प्रचलित थीं। एक में यह कहा गया है कि एक भ्रम के कारण उसकी माँ ने उसे अपने हाथों मार दिया था[१]। दूसरी में उसे ऐसी वधू कहा गया है जिसे उसकी सास ने मार दिया था। इसी प्रकार चोली (चातकी) से संबंधित 'सरग दादू पाणी दे (आकाश भैय्या, पानी दे)' एक लोभी लड़की की कथा है, जो प्यास से मरते बैल के शाप से चिड़िया हो जाती है[२]। 'काफल पाक्कू' के संबंध में भी इसी प्रकार काफल के पेड़ से गिरकर मरने पर पक्षी बनने की कथा प्रसिद्ध है। 'हा, मैं क्या करलू', 'मैं सोती ही रही', 'तीन तौली ध्याचड़क' आदि कथाएँ भी इसी कोटि में आती हैं।

पक्षियों के अतिरिक्त फूलों के संबंध में भी दूसरे जन्म की ऐसी ही कथाएँ मिलती हैं। फ्यूँली के पीले फूल के साथ इसी प्रकार की दो कथाएँ संबद्ध हैं।

१ कथा देखिए : गढ़वाल की लोककथाएँ (गोविंद चातक), आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली।
२ गढ़वाल की लोककथाएँ, भाग १।

श्रौजी लोग चैत्र महीने में सवर्णों के द्वार पर इसे बड़े मनोयोग से गाते हैं। इसमें फ्यूँली के फूल होने से पहले स्त्री होने की बात कही गई है[३]। इसी प्रकार प्रकृति के अन्य रूपों से भी अनेक कथाएँ संबद्ध हैं। चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत सभी की अपनी कथाएँ हैं। इंद्रधनुष में केवल सात रेखाओं का समूह मात्र नहीं है, वरन् वह किसी के प्रणयी मानस की स्नेहमयी छाया भी है[४]। इन कथाओं में प्रकृति के प्रति आत्मीयता प्रकट हुई है, इसके अतिरिक्त जीवन के निरंतर प्रवाह को भी व्यंजित किया गया है।

इस प्रकार की कथाओं में कारण भी निर्देशित किया गया है। इसलिये ये कारणनिर्देशक कथाओं के अंतर्गत भी आ सकती हैं। ये कथाएँ कभी पक्षियों की विशेष ध्वनियों का कारण बताने के लिये रचित प्रतीत होती हैं। उदाहरण के लिये 'घूगूली, माँ सूती', 'तिल चुची पुतरी पुरै पुर', 'काफल पाक्कू, 'तिन भी चाखू, मिन भी चाहू', 'सरग दादू पाणी दे', 'हा, मैं क्या करलू' आदि गढ़वाल में कुछ पक्षियों की ध्वनियाँ मानी जाती हैं। इस संबंध में लोककथाएँ मिलती हैं। कारण-निर्देशक कथाएँ पक्षियों तक ही सीमित नहीं हैं, उनका क्षेत्र व्यापक है और वे प्रकृति के सभी रूपों से संबंधित हैं। उदाहरण के लिये फ्यूँली के फूल और इंद्रधनुष के संबंध में लोकधारणा का परिचय पहले दिया जा चुका है। चाँद के कलंक का कारण तत्संबंधी कथा में किसी चमार का ऋण बताया गया है। वृक्षों के संबंध में भी इस प्रकार की अनेक कथाएँ मिलती हैं। इसी प्रकार लोकधारणाओं तथा विश्वासों के कारणस्वरूप बनी घटनाएँ अनेक कथाएँ में आई हैं।

कुछ कथाएँ निष्कर्षगर्भित होती हैं। नीति तथा उपदेश उनमें स्वतः आते जाते हैं। ऐसा लगता है, जैसे वे कथाएँ किसी सत्य को सिद्ध करने के लिये रची गई हों। भाग्य की सार्थकता सिद्ध करने के लिये इस प्रकार की अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। 'भिखारी'[१] एक ऐसी ही कथा है, जिसमें भाग्य की महत्ता सिद्ध की गई है। इसी प्रकार 'तिल घटे न माशा बढ़े' और 'दुनिया में कौन किसी का' भी हैं। 'पाप और पुण्य'[१] लोककथा सुंदर व्याख्या ही नहीं, सुंदर निष्कर्ष भी प्रस्तुत करती है। गढ़वाल की नीतिकथाएँ विधिनिषेध तथा स्पष्ट उपदेश से संबंधित हैं। निष्कर्षगर्भित कथाओं में यह तत्व परोक्ष रूप में रहता है।

रूपक तथा उपमान किसी न किसी रूप में प्रायः सभी लोककथाओं में आते हैं, किंतु गढ़वाली लोककथाओं में रूपककथाओं के भी उदाहरण मिलते हैं।

१ वही।
२ वही।

'छिपकली का मकान'[1], 'बकरी की प्रार्थना'[2], 'मेरी गंगा मेरे पास आएगी'[3] इस श्रेणी की सुंदर कथाएँ हैं।

गढ़वाली लोककथाओं में लोकोक्तिमूलक कथाओं का विशिष्ट स्थान है। लोकोक्तियाँ अनुभवजन्य होती हैं और अनुभव प्रायः घटनामूलक होते हैं; घटनाएँ सदैव कथा के मूल में हुआ करती हैं। कथा और लोकोक्ति का इसीलिये घनिष्ट संबंध है। गढ़वाल में लोकोक्ति को इसी दृष्टि से 'औखाणा' या 'पखाणा' कहते हैं। डा० बड़थ्वाल ने[4] इन शब्दों की व्युत्पत्ति 'आख्यान' तथा 'उपाख्यान' से की है। वास्तव में आख्यान, उपाख्यान अथवा कथाओं ने ही लोकोक्तियों को जन्म दिया है। गढ़वाल में इस प्रकार की लोकोक्तिमूलक कथाओं की संख्या भी कम नहीं है। 'नाँगा नाँगा दिखेण्या, तिमला तिमला खटेण्या', 'न बदरुन श्रीनगर औण, न हातीन स्वीली जौण', 'भिंडी खाणख जोगी होया, पैला वासा भूका रया', 'अपणा का फल बजार वेच्या, बिराणा का फलून पूठा येच्या', 'बल जेठा जी नी होंद छा, त हमारी मवासी घाम लैगी छै', आदि अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

गढ़वाल में बच्चों के बीच अन्य ढंग की लोककथाएँ भी प्रचलित हैं, जिनको 'आँटा साँटा' कहा जाता है। इस कोटि की कहानियों में कथा का अंश अधिक नहीं होता किंतु संबद्धता और भाषा का विशेष प्रवाह हुआ करता है। कथन का यह रूप दर्शनीय है :

'मैं घास के लिये गई। घास मैंने गाय को दिया। गाय ने मुझे दूध दिया। दूध मैंने भाई को दिया। भाई ने मुझे पैसा दिया। पैसा मैंने दूकानदार को दिया। दूकानदार ने मुझे मिठाई दी। मिठाई मैंने राक्षस को दी और उसने उसको छोड़ दिया।' आदि।

ये 'आँटे साँटे' कौतूहलवर्धक होते हैं। इनमें क्रम की बड़ी विशेषता होती है। इसके अतिरिक्त इनको सुनाने की गति बड़ी तीव्र होती है। इनके अतिरिक्त कुछ कथाएँ समस्यामूलक भी होती हैं, जिनके अंत में कोई पहेली होती है जिसका हल श्रोता पर छोड़ दिया जाता है।

गढ़वाली लोककथाएँ सीधी ही प्रारंभ होती हैं, पारिवारिक परिचय उनमें मुख्य रूप से दिया जाता है। कथा को संवादों द्वारा बढ़ाने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है। बीच में कथक को अपनी ओर से उपदेश देने, टीका टिप्पणी

[1] गढ़वाल की लोककथाएँ, भाग १। [2] वही। [3] वही। [4] गढ़वाली पखाणा (शालिग्राम वैष्णव) की भूमिका में।

करने आदि की पूरी स्वच्छंदता होती है। संभव असंभव जैसी शंका के लिये उनमें कोई स्थान नहीं होता और वर्णन की बारीकी से कथक उलझता नहीं। कथा का अंत किसी नीति, उपदेशवाक्य, प्रतिपादन, विवाह की सुखांत स्थिति और 'मनुष्य मर गए बोल रह गए' या 'कथा काणी, रात व्याणी' (कथा कहानी समाप्त हुई, रात बीत चली) जैसी उक्तियों के साथ होता है।

एक उदाहरण देखें :

(१) **फ्यूँली को फूल**—डाँडी काँठियों[१] का ऐंच[२] अर पुंगड़ू[३] की मींडोली[४] मा एक पिंग्ली सी फूल होंद। लोक वै तें फ्यूँली बोल्दन[५]।

फूल होण से पेले फ्यूँली बल एक नौनी[६] छई। एक बड़ा भारी बण मा वींको राज छयो अर रिक,[७] बाँदर, मिर्ग, हिलाँस, कफू सबी जंतु जीवन वींकी पारजा[८] छई। फ्यूँली ऊँका बीज कुटमी की तरों रंदी छई। सब वींका भै बैणा[९] छया,—लाड प्यॉर का सी पाल्याँ परोस्याँ जना। फ्यूँली मा जनो ऊँको पराण छयो। घ्वैड़ काखड़ वींका गीतू की मौण मा अफू तें जना बिसरी जांद छया, फूल वींका ओर पोर हँसण लगद छया, दूबलो वींका खुट्टू नीस बिछी जांद छयो अर पोथला सुबेर वीं सणी बिजाल्द तया। वा ऊँ सबूकी प्यारी छई। घरसीन सारो रूप वींका ऐंच जनो उचैयाले[१०] छयो। वीं जनी बाँद[११] क्वी छई ही ना। वींका मुख पर सूरज छयो अर पीठी चंदरमा। वींका रंगन रात मा भी दिन लग्द छयो, डाँडू का लाल बुरांस वींकी गल्वाड़ियों[१२] दग्ड़े रीस[१३] कर्द छया। खाँडा धार की तरों वींकी तरतरी नाकड़ी भली सजमान देंदी छई। ताल का पाणी की तरों वींकी ज्वानी मरेंदी औणी छई। ज्वानी को त्वै वींका रूप पर रंग भरदो जाणू छयो।

अजूं तलक वै बण मा दुखी मनखी को छेल तक नी पड़ी अर पाप का हातून थूलू की पवित्र पाँखड़ियों तें नी छवीं छयो। पशु पंछ्योंन अजूं कैकी बुरी बोली नी सूणी छई। जिंदगीन न लोब देखे छयो न शोक। जख न कख वख शांति छई। वा वै बण मा इनी देखेंद छई जनी कि क्वी सीता हो या पारबती हो। वींका दग्ड़ा वींको भोलोपन छयो, बण की शोबा, बख का जंतू सबू देखिक वा खूश छई। वा जोन[१४] की तरों हैंसदी छई, अर छड़ों[१५] की तरों नाचदी। पर कब्री कुजाणी केक वींको शरैल खुदेण[१६] सीं लग्दू छयो। जनी क्वी बिसरी बात याद औणी चाँदी हो, जनी क्वी चीज वींकी खोई हो। तलो का गोस्याँ[१७] पाणी की तरों वींको मन अफू मा नी छयो।

१ शिखर। २ ऊपर। ३ खेत। ४ मेंड। ५ कहते हैं। ६ लड़की। ७ भालू। ८ प्रजा। ९ भाई बहिन। १० न्योछावर। ११ सुंदरी। १२ कपोल। १३ ईर्ष्या। १४ ज्योत्स्ना। १५ झरना। १६ उन्मन। १७ रुके।

एका दिन वा आपणी स्यूँद पाटी[1] खोलीक के छड़ा का पाणी मा अपणा खुटा[2] पसारीक बैठीं छई। बायो हात वींको चौंठा पर लगायूँ छयो अर देणा हातन वा कै घ्वैड़[3] का बच्चा तें मलासणी छई। आँखा पाणी का उठदा औतू[4] पर लगीं छई। कुजाणी वा अपणा कौं मनसूबों पर रीजणी छई। तबरेक केका ओण को शब्द होए अर एक रिष्टपुष्ट लोक सामणे आये। वैका मुख पर ज्वानी को रंग खिल्यूँ छयो। थक्यूँ सी मालम पड़द छयो। पसिनान तर बण्यूं छयो। वो तीसो छयो, शरील पाणी पर जायूँ छयो, पर जनी वेकी नजर फ्यूँली पर पड़े वो पाणी पेणू भूली गये। वो वीं तें देखदू रै गये। इनो लग्दू छो कि जनो कि वींका रूप तें पी जालो। फ्यूँलीन भी इनो बिगरेलो वेख[5] आज तें नी देखे छयो। वैं तें अचाणचक अपणा सामणे आयूँ देखिक वा शरमाये त जरूर, पर वींको मा भित्र ही भित्र खुश छयो।

भोत देर तक केन के तें कुछ नी बोले। आखिर फ्यूँलीन बाच गाडे[6]—'तुम जना शिकारी सी छयाई लगाणा।'

वेन बोले—'मैं शिकारी त ना पर राजकाँर[7] छऊँ। फेर वो अफू मा मुलमुल हैंसे—पर न त शिकार मिले अर न अब कर्न की ही इच्छा छ।'

फेर वो चुप ह्वै गैन। फ्यूँली सोची नी पाये कि अगाड़ी वा क्या बोल। राजकुमार खुश छयो—'इथा दूर ओण को योई फेदो सई।'

रुम्क[8] पड़े। पशू पंछी हैंसदा बोलदा फ्यूँली का वास्ता फल फूल तोड़ीक लेन। राजकोंर यो कौथीक देखदो रये। फ्यूँलीन वे तें खलाये पिलाये अर राजकोंर तिरपत्त ह्वै गये। इनी आदर खातर वैकी होर जाना ह्वै ही नी छई।

राजकोंर बिछोणा पर पड़े अर सास लीक दैन बोले—'कतना अच्छो छ मख, हैं? जंगल मा कतना मंगल। मैं कबी नी सोचदा छयो, कि दुन्या का घेरा मा इथा सुख भी कखी होलो। मेरो मन करदो कि मखी रै जऊँ।'

बड़ा बड़ा शेरू मारण वालो राजकोंर मख रेक क्या करूलो? फ्यूँली अफू मा ही हैंसे।

मेरो दिल त तुमारा बिना जाण क नी बोदू। राजकोंरन वा स्येड़ी आँख्योंन देखे अर फेर बोले—'तुम भी चलली? तुम सी मैं राणी बणौलो।'

फ्यूँलीन नीसी आँखी करीक राजकोंर तें देखे अर अर वीकी मुख लाल ह्वै

[1] अलकावली। [2] पैर। [3] हिरन। [4] भँवर। [5] पुरुष। [6] जवान खोली। [7] राजकुमार। [8] संध्या।

गये। राजकोंरन वीं तें फेर पूछे। फ्यूँलीन बोले—'ना, मेरा भै बैणा, रिक्क, बाग, बांदर, छूवेड़, काखड़ त बख जे नी सकदा। मैं ऊँ तें कनै छोड़ी सकदौं ?'

वा जाणदी छई कि उनी शोबा, उनी पिरेम वी श्रणथ कख मिली सकदो ? पर ज्वानी की भूक मनखी तै[1] लत्यौंदी[2] छ। श्राखिर वा राजकोंर का दग्ड़ा जाणक त्यार ह्वै गये। दुसरा इ दिन वींन राजकोंर का सात परस्तान करे। वींका भै बैणोंन वा दूरू तक श्रड़ेथणक[3] ऐन। सब दणमण दणमण रोंदा लौठीन। भौंत दिन तैं वो वींकी तें समल्दा रैन। पर वा ही गये, जु वख छया वो बन्नी ही रैन, पंछी पेले की तरों वासदा रैन, फूल फूल्दा गैन श्रर जिंदगी चलदी रये।

फ्यूँली श्रब राणी बणीक रजधानी मा रण लेगे: रजकोंर वीं तें माया[4] करदो छयो ही, याँ का सिवे वीं तैं के बात की कमी छई। रजों का घर बल मोत्यों को श्रकाल ? खाणतें बावन व्यंजन छया श्रर छत्तीस परकार। सेवा का वास्ता दासी छई श्रर दिखोणक शेक्की छई श्रर चेतौणक श्रध्याकार। पर वा भिंडी दिन तलक खूश नीर रे सकै। राज मौन की पाली वींक तें जनी नेल[5] णी होई गेन। वा दूर श्रापणी ऊँ डोडी काँठ्यों तें देखदी छई श्रर वींका कंदूड़ जना कि रूणाण सी लग्द छया, कि जनो कि वो वीं तें भट्याणा[6] सी होन। श्रब वींका पास वो में बैणा नी छया, मनखी छया, लोब रीण[7] हींस[8] का पाथ्याँ मनखी। राणी होण की ख्वैश भी श्रब वीं मा नी रे गये छई। वीं जनी कथी नोनी राजकोंर का यख भरी छई। बस वा श्रब उदास सी रण लेगे। वीं को मन मरि सी गये। वींको शरील नखरो रण लगे वा वा श्राखिरकार श्रसुगी[9] पड़ी गये। थोड़े दिनू मा वींको मुख पिग्लो पड़ी गये, हाडगा देखेण लगीन श्रर श्राँखा कुवरकाण ह्वै गयेन। राजकोंर मा एक दिन वीन बोले—'मैं मरदी छऊँ। पर मरदी दों मेरी एक ख्वैश छ। तुम फेर शिकार खेलण जाला मेरा भाई बैणों ना मारियान। श्रर जब मैं मरि जौं, त मैं तैं वै डाँडा भये[10] खडेई[11] द्यान जख मैं पेले उँ दग्ड़ी रंदी छई।'

राजकोंरन 'हाँ' बोले। श्रर एक दिन वा सच्चीई मरि गये। राजकोंरन भी वीं तें डाँडा मथे खडेयाईक वींकी श्राखरी ख्वैश पैरी करे।

राजभौन मा शोक मनायेणे कि ना याँ को पता नीर पर वींका भै बैणा भौत रोइन। बथों उगसी उगसीक रोये, फूल श्रलसैन, लगुली ढलकीन। चौतिरपू वै दिन सुनकार सी ह्वै गये।

[1] मनुष्य को। [2] लालायित करती है। [3] विदा देने। [4] प्रेम। [5] पारा। [6] पुकारती [7] ईर्ष्या। [8] हिंसा। [9] बीमार। [10] शिखर पर। [11] गाड़ देना।

कुछ दिन पाछ वख मू सुसकारा[1] सी सुणेण लगीन। जख मू वा खड्याई छई वख मू एक पिंग्लो[2] फूल जमी गये।

सब वै तईं फ्यूँली बोलण ले गैन।

(२) लोकोक्तियाँ—सामान्यतः लोक की उक्ति लोकोक्ति कहलाती है, किंतु वस्तुतः केवल वही उक्ति इसके अंतर्गत आती है जिसमें लोक का कोई अनुभव सूत्ररूप में संचित रहता है। लोकानुभव प्रायः घटनामूलक होता है। वास्तव में वे घटनाएँ ही होती हैं जो जीवन को पग पग पर अनुभवजन्य सत्य और ज्ञान का आभास कराती हैं और न्यूनाधिक रूप में आख्यान की रचना में सहयोग देती हैं। इसी कथातत्व के कारण गढ़वाल में लोकोक्तियों को 'औखाणा' या 'पखाणा' कहा जाता है। इन शब्दों की व्युत्पत्ति 'आख्यान' और 'उपाख्यान' से पहले ही बताई जा चुकी है। वस्तुतः लोकोक्तियाँ साररूप में आख्यान अथवा उपाख्यान ही नहीं, बल्कि घटनाओं से उद्भूत सारतत्व हैं, यद्यपि वे उनमें उसी प्रकार समाहित हैं, जिस प्रकार दूध में घी। इसीलिये लोकोक्तियों में आख्यान की अपेक्षा आख्यान का भाव और तज्जनित अनुभव ही व्यक्त होता है।

इसके अतिरिक्त गढ़वाल में कहीं कहीं लोकोक्तियों के लिये 'आणो' शब्द का प्रयोग भी मिलता है, जिसका संस्कृत रूप 'आभाणक' प्रतीत होता है। इसका सीधा अर्थ 'कहना' हुआ। कहने का भाव लोकोक्ति, कहावत आदि शब्दों में भी विद्यमान है। वस्तुतः कहावत अथवा लोकोक्ति एक प्रकार का 'कहना' ही है अर्थात् 'कहने' का एक विशिष्ट रूप है जिसमें बुद्धिवैभव के साथ साथ सूक्ति की सी मार्मिकता और गहरी अंतर्दृष्टि होती है। किंतु सभी सूक्तियाँ लोकोक्ति नहीं बन जातीं, क्योंकि उनमें लोकानुभव गौण और भावाभिव्यक्ति का चमत्कार प्रधान होता है।

गढ़वाल में लोकोक्तियों का विषद भांडार है। उनमें से मुख्य निम्नलिखित वर्गों के अंतर्गत आती हैं :

१—खेती संबंधी,
२—पुरुषवर्ग संबंधी,
३—स्त्रीवर्ग संबंधी,
४—घरेलू जीवन संबंधी,
५—जाति संबंधी,
६—नीति और उपदेश संबंधी,

[1] सिसकी। [2] पीला।

७—आचार व्यवहार, विधिनिषेध संबंधी,

८—जीवन और जगत् की आख्या एवं सत्य तथा अनुभव संबंधी।

इन सभी कोटियों की लोकोक्तियों में जीवन के गहरे अनुभव मिलते हैं। कृषिजीवन से संबंधित लोकोक्तियों में बोवाई, गोड़ाई, निराई तथा मौसम संबंधी सुंदर अनुभव व्यक्त हुए हैं। उनमें एक अच्छे किसान की विशेषताएँ भी प्रकट हुई हैं और अकर्मण्य पर व्यंग्यवर्षा भी की गई है। उसी प्रकार पुरुष तथा स्त्री की स्वभावगत विशेषताओं पर अनेक लोकोक्तियाँ आधारित हैं। विशेषतः स्त्री के प्रति उनमें उसके रूप, प्रणय, विवाह, चरित्र, स्वभाव आदि पर सूत्ररूप में सुंदर निष्कर्ष मिलते हैं[१] :

क्या गोरी क्या सौंली।
सेती भली न सौंली
बिना जनानी कूड़ी नी सजदी।
मुठी को धन और छीठी की जोई।
खेड़ो सिरवाण, जनानी पर वाण।

परिवार में स्त्री के स्थान, उसके कारण होनेवाले झगड़ों तथा माँ, पत्नी, भाभी, सास, बहू आदि के संबंधों तथा उनकी दुर्बलताओं की ओर भी उनमें संकेत किए गए हैं। स्त्री की अपेक्षा पुरुष संबंधी ऐसी उक्तियाँ कम हैं और जहाँ हैं, वहाँ उसके पौरुष को ध्यान में रखा गया है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य आदि की जातीय विशेषताओं पर कई सुंदर उक्तियाँ मिलती हैं। ये उक्तियाँ वैमनस्य भावना नहीं प्रकट करतीं। वास्तव में उनमें गहन मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का परिचय मिलता है।

परिवार सामाजिक जीवन की इकाई होने के नाते लोक में बड़ा महत्व रखता है। लोकोक्तियों में इस सत्य का समर्थन ही नहीं मिलता, वरन् इस प्रकार के अनेक उपाय व्यक्त मिलते हैं जिनके आधार पर परिवार की एकता, सहकारिता, संपन्नता और सद्भावना बनी रह सके। समाज में रहने के लिये जिन मानवीय गुणों की आवश्यकता होती है उनका भी इस कोटि की लोकोक्तियों में अनेक प्रकार से उल्लेख पाया जाता है। विधि और निषेध उनका मुख्य विषय है। उन्हीं के आधार पर लोक में आचार और व्यवहार की मर्यादाएँ बाँधी गई हैं।

[१] क्या गोरी क्या साँवली। न गोरी भली न साँवली। बिना स्त्री के मकान शोभता नहीं। जब तक धन मुट्ठी में और स्त्री दृष्टि में है, तब तक ही वे अपने हैं। सिरहाने की खाल और बातूनी स्त्री एक समान हैं।

इस प्रकार गढ़वाल में अनेक निषेधात्मक लोकोक्तियाँ मिलती हैं। बहुतों में वस्तु, भाव, दुर्गुण विशेष की निंदा मिलती है। कुछ में कुछ भावों और गुणों की प्रशंसा और समर्थन भी किया गया है। इस दृष्टि से कुछ लोकोक्तियाँ निर्णयप्रधान भी प्रतीत होती हैं! उनमें प्रायः इस प्रकार के निष्कर्ष अथवा निर्णय दिए गए हैं कि अमुक वस्तु अथवा भावना अच्छी है, बुरी है अथवा कैसी है। ठीक इसी कोटि की लोकोक्तियों से मिलती जुलती लोकोक्तियाँ वे हैं जिनमें व्याख्या की जाती अथवा सत्य की सूचना दी जाती है।

वस्तुतः जीवन और जगत् के अनुभवों और सत्यों को सूत्ररूप में प्रस्तुत करना गढ़वाली लोकोक्तियों का व्यापक विषय प्रतीत होता है। मानवीय सहज प्रवृत्तियों, कार्यों तथा जीवन और जगत् के मूल्यों, आदर्शों, रूपों, सत्यों तथा अनुभवों को उनमें अनेक ढंगों से प्रस्तुत किया गया है :

अपणो घर दिल्ली से सूझ (अपना घर दिल्ली से भी सूझता है।)

आँसू आँखू बिटी औंदा, घुंडो बिटी ती औंदा (आँसू आँखों से ही आते हैं, घुटनों से नहीं।)

अपणी अक्कल अर परायो धन कम कु बतलौंद (अपनी अक्ल और पराया धन कम कौन बताता है।)

मतलब का होंदान मेना (स्वार्थ के लिये सभी साले बनते हैं।)

जु गौं कर सु गवाँर कर (जो गाँव करता है, गवाँर भी वही करता है।)

अटकी चला त लोक धुख्या बोलदन, नीसोली चला त सीलो (अगर तेज चलो, तो लोग पागल कहते हैं, धीरे चलो तो निकम्मा।)

बुड्या को धिचो खजाँदा बाला को हात (बुड्ढे का मुँह खुजलाता है और बालक के हाथ।)

गढ़वाली लोकोक्तियाँ लोकगीतों से भी अधिक पुष्ट हैं। उनमें लोक का हृदय और मस्तिष्क दोनों बोलते हैं। उनका चुभता व्यंग्य रसात्मक होता है और इससे भी अधिक उनमें उत्कृष्ट कला के दर्शन होते हैं। गढ़वाली कहावतें सूत्र रूप में हैं। उनमें भावों की समाहार शक्ति विद्यमान है। वह लोक की प्रतिभा व्यक्त करती है। उनमें गागर में सागर के दर्शन होते हैं। एक ही पंक्ति में वे इतना कह जाती हैं, जितने की व्याख्या अनेक ग्रंथ नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त उनमें भावों को प्रस्तुत करने की उस कला के दर्शन होते हैं, जो भाव को भाषा के माध्यम से मधुर, चटपटा, सुस्वादु और कंठ से नीचे उतारने योग्य बना देती है। गढ़वाली लोकोक्तियाँ गद्यात्मक हैं, किंतु उनमें अधिकांश दो पंक्तियों की तुकांत लोकोक्तियाँ हैं। जहाँ अकेली पंक्ति है, वहाँ भी एक ही पंक्ति में तुक और

अनुप्रास के दर्शन होते हैं। दो पंक्तियोंवाली लोकोक्तियों में पद्यात्मकता के साथ साथ बिंब प्रतिबिंब भाव अथवा दृष्टांत का समावेश भी मिलता है, जिससे अभिप्रेत भाव की शक्ति द्विगुणित हो उठती है। इसके अतिरिक्त भावाभिव्यक्ति में प्रतीकों का सहारा लिया गया। बात को सीधे न कहकर प्रतीकों के माध्यम से व्यंजित और ध्वनित करना गढ़वाली लोकोक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता है। संवाद का आधार भी उनमें यत्रतत्र मिलता है।

४. पद्य

(१) पँवाड़े—जिस प्रकार जागर गीत अपनी युगभावना के अनुकूल निर्मित हुए, उसी प्रकार बाद की परिस्थितियों ने नए गीतों को जन्म दिया। सामंतवाद के प्रारंभ के साथ गढ़वाल ५२ गढ़ों में बँट गया। एक स्थानीय लोकोक्ति के अनुसार तब हर दमड़ीवाला भी साहू बन बैठा था और पहाड़ की हर टिपरी पर गढ़ दिखाई देता था। उन गढ़ों के अधिपति (ठाकर) प्रायः सत्ता के लिये परस्पर लड़ा करते थे। वे स्वयं भी भड़ (भट, वीर) होते थे, इसके अतिरिक्त वे वेतनभोगी सैनिक भड़ों को भी रखते थे। फलतः गढ़वाल में रणकुशलता और शूरवीरता की प्रतिस्पर्धा बढ़ी। एक दूसरे पर उनका आतंक रहा और बाहर उनकी चर्चा रही। कुमाऊँ, सिरमौर, नाहन, जुब्बल, बुशहर तथा दिल्ली के शासकों से उनके संघर्ष चलते रहे। पीछे जब राजा अजयपाल (१५००–१५१६) ने ५२ गढ़ों की इस भूमि को एकता और एक सत्ता के सूत्र में पिरो दिया तो वे दिग्विजय करने तिब्बत, भूटान, शिमला की पर्वतशृंखलाओं, कुमाऊँ तथा हरिद्वार, ज्वालापुर की ओर बढ़े।

उस समय गढ़वाल में कफू चौहान, माधोसिंह, भानु दमादा, रिखौला, आशा हिंडवाण, रूण रोत, जीतू, रिखौला, गढ़ू सुमरियाल आदि प्रसिद्ध भड़ (भट) थे। वे अपने युग में इतिहास के निर्माता रहे। कफू उप्पू गढ़ का सामंत था। गंगा के इस पार अजयपाल का राज्य था, उस पार कफू था। अजयपाल ने उसे अधीनता स्वीकार करने को कहा। कफू के स्वाभिमान को यह सह्य न हुआ। अजयपाल ने उसपर आक्रमण किया। भ्रम के कारण[1] वह अंत में परास्त होकर पकड़ा गया। अब की बार अजयपाल ने उसे अधीनता स्वीकार कर लेने के उपलक्ष में पहले से भी बड़ा सामंत बना देने का प्रलोभन दिया। कफू ने फिर भी न माना। तब अजयपाल ने उसका सिर इस प्रकार तलवार की धार से उतरवाने की आज्ञा दी, कि वह उसके चरणों में आ गिरे। पर, कहते हैं कि तलवार चलते ही कफू ने सिर को ऐसा झटका दिया कि वह विपरीत दिशा में जा गिरा।

[1] विस्तार के लिये देखिए—'गढ़वाल की लोककथाएँ', भाग २, गोविंद चातक।

उसी प्रकार महिपतशाह के राज्यकाल में जब तिब्बत की ओर से दला (घाट) के सरदार ने छेड़छाड़ की तो माधोसिंह आगे आया। 'एक सिंह रण का, एक सिंह वन का। एक सिंह माधोसिंह और सिंह काहे का'—यह उक्ति इस वीर के जीवन पर चरितार्थ होती है। माधोसिंह ने अपनी विजययात्रा में भारत और तिब्बत की सीमा निर्धारित की थी, जो अभी तक बनी हुई है। इसके अतिरिक्त मलेथा की कूल (कुल्या नहर) के साथ उसका नाम एक बड़े त्याग के साथ जुड़ा हुआ है।

भानु दमादा कथारका गढ़ का सरदार था। उसने हरद्वार और सहारनपुर के बीच भाँगड़ के मुगल सरदार का इलाका मानशाह के लिये जीता था। उसके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि सब की बाड़ (बाधा) से बच जाओगे पर भानु दमादा की बाड़ से नहीं बच सकते।

रिखोला ने अपने जीवन में कई युद्ध किए। उसने सिरमौर पर विजय पाई थी और वहाँ के राजा की कन्या मंगलाज्योति से ब्याह किया था। इसके अतिरिक्त कुमाऊँ के राजा ज्ञानचंद पर विजय प्राप्त कर वह अकबर का दिल्ली दरवाजा उखाड़ लाया[1] था।

हरि और आशा (हंसा) हिंडवाण दोनों भाई थे और राजा मानशाह (१६०८–१६११) के समकालीन थे। एक बार जब सिरमौर में राक्षस का आतंक हुआ तो वहाँ के राजा ने रक्षा के लिये भड़ भेजने की प्रार्थना की और उपलक्ष में विजेता को अपनी बेटी देने की घोषणा की। राजा मानशाह के आदेश पर हरि हिंडवाण ने राक्षस को मार डाला, पर सिरमौर के राजा ने छल से उसे तालाब में डलवा दिया। उसके छोटे भाई आशा को दुःस्वप्न हुआ, तो वह भागा भागा गया। दोनों भाई सिरमौर की राजकुमारी सुरकेशा को लेकर वापिस चले आए[2]।

रूण, झंकू, जया (जयाण), बंकू, मोलत्या नेगी आदि भड़ों के नाम भी उल्लेखनीय हैं। बंकू बँवाण का अधिपति था। मोलत्या नेगी ने मुगल आक्रमणकारियों का सामना किया था।

पँवाड़े इसी प्रकार के वीरों की जीवनगाथाएँ हैं। 'पँवाड़ा' शब्द गढ़वाल में लंबी युद्धकथा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वास्तव में गढ़वाल में दो तरह के पँवाड़े उपलब्ध होते हैं। एक प्रकार के पँवाड़े वे हैं जिनमें युद्धों का वर्णन आता है,

[1] विस्तार के लिये देखिए : 'गढ़वाल की लोककथाएँ'—(१), गोविंद चातक, आत्माराम एंड संस, दिल्ली।

[2] 'गढ़वाल के कथात्मक लोकगीत' (गोविंद चातक)।

किंतु इनसे भी भिन्न दूसरी कोटि के पँवाड़े वे हैं जो वीरों के जीवन से संबद्ध अवश्य हैं, किंतु वीरता अथवा युद्ध उनका वर्ण्य विषय नहीं है। उनके नायक भड़ अवश्य हैं, किंतु उनकी गाथा में वीरतासूचक प्रसंग नहीं मिलते। ऐसे पँवाड़ों में मुख्यतः प्रणय को महत्व मिलता है। 'कालू भंडारी', 'जीतू बगड्वाल', 'मालू राजुला', 'नरू विजोला', 'हरिचंद' आदि ऐसे ही पँवाड़े हैं।

युद्ध विषयक पँवाड़ों में अतिरंजना और अतिशयोक्ति अधिक मिलती है। दूसरी विशेषता अलौकिक घटनाओं और विचित्र कल्पनाओं का समावेश है। कभी कभी युद्ध की सफलता योद्धा पर नहीं वरन् इसी प्रकार की शक्तियों पर आधारित प्रतीत होती है। उसी प्रकार वीरदर्प और वीरोल्लास पँवाड़ों में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ मिलता है :

[1]ढेबरा लुकदा बाखरा लुकदा,
वीर कबी नी लुकदा,
मर्द कबी नी रुकदा।

[2]बतौ बतौ नौना, तू केक आई,
के संतन संताई,
के बैरिन भरमाई ?
बतौ मेरा हातन आज,
कै राँड का कुल रो होलो विणाश ?

वीरदर्प एक तो वीरों में जन्मजात होता है, इसके अतिरिक्त वह चारणों द्वारा जाग्रत भी मिलता है। युद्ध के प्रति उल्लास की भावना वीरचरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है। माता, पिता, पत्नी आदि स्वजनों के मना करने पर भी युद्ध की ज्वाला में शलभ की भाँति प्राण देने की आत्मतुष्टि कई पँवाड़ों के नायकों में मिलती है। यह निर्मम आत्मतुष्टि यश की लिप्सा से अनुप्राणित हुई है।

गढ़वाली पँवाड़ों में यह भी दर्शनीय है कि उनमें युद्ध के जुगुप्साजन्य चित्र नहीं होते। मांस के लोथड़ों, उनपर बैठे हुए गिद्धों और सियारों के रोने का जैसा वर्णन लिखित साहित्य में मिलता है, वैसा इन पँवाड़ों में कदापि नहीं।

पँवाड़ों में शृंगार का अभाव नहीं है। अनेक पँवाड़े कुमारियों के हरण तक सीमित हैं। कुमारियों की प्राप्ति की भावना ही कई पँवाड़ों में युद्ध का कारण बनी मिलती है। अधिकांश में यह आकर्षण पूर्वानुराग से विकसित हुआ

१ ढेवरा = भेड़ें; लुकदा = छिपती हैं।
२ नौना = लड़के; केक = क्यों; संताई = सताया है, जो मेरे हाथ मरने आया है।

है। कालू भंडारी स्वप्न में देखी हुई रूपछवि पर रीझकर उसकी प्राप्ति के लिये चल पड़ता है :

[1]मैंन चाँदी की सेज देखे, सोना को फूल,
आग जसी आँखी देखी, दिवा जसी जोत।
वाण सी अरेंडी देखी, दई सी तरेंडी,
नौण सी गलखी देखे, फूल की कुटखी।
हिया सूरज देखे, मणियों को परकाश।
कुमाली सी ठाण देखे, सोवन की लटा।

जीतू अपनी साली बरुणा से प्रेम करता है :

[2]तेरा खातिर छोड़े स्याली वा बाँकी बगूड़ी,
बाँकी बगूड़ी छोड़े, राणियों की बगूड़ी।
तेरा बाना छोड़े मेना, दिन को खाणो रात को सेणो।
तेरी मायान स्याली, मेरी जिकूड़ी लबेटी,
आँख्यों मा ही घूमद रूपरंग तेरो।
जिकूड़ी को ल्वै पिलेक परोसणू छौं तेरी माया की डाली।

और सिदुवा का दिल उसकी साली सुरति चुराए बैठी थी। 'मेरो मा लागी मेना तेरी बाँकी रमोली' गीत में उसके प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है।

शृंगार के अतिरिक्त इनमें वात्सल्य के भी बड़े सुंदर चित्र मिलते हैं। इनकी इसी मार्मिकता का फल है कि पँवाड़ों का अधिकांश भूल जाने पर भी ये अंश अभी तक जी रहे हैं। रणू और माधोसिंह का पँवाड़ा आज इसी रूप में अवशिष्ट मिलता है। माधोसिंह की माता अपने पुत्र के न लौटने पर दुखी होती है :

[3]बार ऐन बग्वाली माधोसिंह
सोल ऐन सराध माधोसिंह
त्वै जागी रैन माधोसिंह,
तेरी राणी बौराणी माधोसिंह,
तेरी जिया रौंदी माधोसिंह,

१ वाण = वृक्ष; अरेंडी = लता; दई = दही; तरेंडी = मलाई; नौण = नवनीत; गलखी = ग्रास; कुटखी = गुच्छा; कुमाली = एक पतली कमर का पतंगा; ठाण = शृंगार।

२ बगूड़ी = स्थाननाम; दगूड़ी = साथ; बाना = लिये, खातिर; भेना = जीजा; माया = प्रम; जिकूड़ी = वक्ष, हृदय; लबेटी = लपेटी।

३ बग्वाली = दिवाली; बौराणी = बहूरानी; जिया = माता; ऐन = आए।

सभी ऐन घर माधोसिंह,
मेरो माधो नी आयो माधोसिंह।

और रणू के गीत में उसकी माता उसे युद्ध में जाने से रोकती है :

[1]अलो, नी जाणू रणू बाँकी रवाईं,
तैं बाँकी रवाईं रणू तेरो बाबू गँवाई
तेरी तिला बाखूरी रणू ठक छ्यूँदी,
तिला मारी खोलो जिया रण न देऊँ ज्यूँदी।
काल न डस्याण जा रणू बैरी बघाण न जा,
तेरो बाबू गँवाईं रणू देवी का दूल,
तू छै मेरो प्यारो रणू फ्यूँली को सी फूल।

नारी के सहज आकर्षण तथा मातृ हृदय की ममता के अतिरिक्त इनमें सामंत युग की कूटनीति, छलछद्म, रागद्वेष बहुत प्रबल हैं। युद्धों में भी नैतिकता नहीं दिखाई देती। हरिचंद, जीतू, जगदेव पँवार आदि के पँवाड़ों में ऊँचे आदर्श की झलक है, जो कम प्रभावशाली नहीं है। वास्तव में पँवाड़े अपने युग के ऐतिहासिक साक्ष्य हैं।

(३) लोकगीत—गढ़वाल के लोकगीत स्थानीय नामों से वर्गीकृत हैं, किंतु वर्गीकरण का आधार सबमें एक सा न होकर यह एक विशेषता मात्र है। कुछ गीत नृत्यों के आधार पर वर्गीकृत हैं, कुछ ऋतुओं, त्योहारों और संस्कारों के आधार पर और अनेक ऐसे हैं जिनमें वर्गीकरण का आधार शैली को स्वीकार किया गया है। इस प्रकार गढ़वाल के लोकगीतों का वर्गीकरण यों हुआ है :

(१) जागर
(२) पँवाड़ा
(३) छोपती
(४) ताँदी (झाड्या)
(५) चौंफुला
(६) झुमैलो
(७) लामण
(८) खुदेड़ गीत
(९) बाजूबंद

[1] रवाईं = स्थानविशेष; छ्यूँदी = छौंकती है; ज्यूँदी = जीवित; बाखूरी = बकरी; रण = रहने; डस्याण = शैय्या; बघाण = भूमि; दूल = देवालय।

(१०) माँगल
(११) छूड़ा

छोपती, ताँदी, थाड्या, चौंफुला, झुमैलो आदि वास्तव में नृत्यों के नाम हैं। उनके साथ गाए जानेवाले गीत भी इन्हीं नामों से ख्यात हैं, किंतु छोपती को छोड़कर इन शेष नृत्यमय गीतों में वर्गीय एकता के दर्शन नहीं होते। इस प्रकार केवल नृत्यों पर आधारित यह वर्गीकरण विषय और भाव की समानता की उपेक्षा सा करता दीखता है। इसी प्रकार छोपती, बाजूबंद तथा लामण तीनों विषय की दृष्टि से प्रेमगीतों के अंतर्गत आते हैं। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस स्थानीय वर्गीकरण और नामावली की अपेक्षा भाव और विषय की एकता के लिये गढ़वाली लोकगीतों का यह विभाजन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है :

(१) ऋतुगीत
(२) प्रेमगीत
(३) धार्मिक गीत
(४) संस्कारगीत
(५) विविध गीत

उपर्युक्त वर्गीकरण के अंतर्गत सभी स्थानीय वर्गों का समावेश हो जाता है। जाजर में पूजा, तंत्रमंत्र आते हैं। माँगल गीत संस्कारों के अंतर्गत आते हैं। प्रेम और शृंगार गढ़वाली लोकगीतों का व्यापक विषय है, इसलिये उनका और मायके की स्मृति विषयक खुदेड़ गीतों का एक पृथक् वर्ग स्वीकार कर लेना अनिवार्य जान पड़ता है। पँवाड़े वीरगीतों के अंतर्गत आते हैं। छूड़े नीति और उपदेश के गीत हैं। विविध गीतों के अंतर्गत सामयिक, बाल, लोरी, क्रीड़ा, हास्य और व्यंग्य के गीतों का समावेश हो सकता है।

(४) ऋतुगीत—

बारहमासा

[1]फागुण मैना फगुणेट्ठ बाई,
तीन मेरा स्वामी मुखड़ी लुकाई।
चैत मास बुती जाला धान,
मिन खरी खाये स्वामी का बान।

[1] फगुणेट्ठ = हल लगाया; तीन = सूने; लुकाई = छिपाई; खरी खाये = कष्ट उठाए; बान = लिए;

बैसाक मैना लजी जाला घान,
मी झूरी गयूँ स्वामी का बान।
जेठ का मैना मँडुवा बुवाई,
तिन मेरा स्वामी यनी रुवाई ।
असाड़ मैना गोड़ी जाला घान,
मीं झूरी गयूँ सुवा बान।
साण का मैना रुणझुण्या पाणी,
कु राँड़ जाँदी बिन स्वामी घाणी।
भादों का मैना काव्या वोला,
ऐ जावा स्वामी मौज मा रौला।
असूज मैना धान लवाई,
तिन मेरा स्वामी भात नी खाई।
कातिक मैना जोन बादल बीच,
हा मेरो स्वामी, घर नीच।
मँगसीर मैना फुली जाली लेण,
स्वामी का बिना, कनकेक रेण।
माघ मास, कुखड़ी धुराई,
तिन मेरा स्वामी जिकुड़ी भुलराई ॥

(५) प्रेमगीत—गढ़वाल के लोकगीतों में प्रेमगीतों का बहुत बड़ा अंश है। जैसा पहले कहा जा चुका है, छोपती, लामण और बाजूवंद प्रेमगीतों के तीन शैलीगत वर्गीकरण हैं। इनमें छोपती और लामण केवल रवाईं जौनपुर में ही मिलते हैं। लामण सरस और काव्यात्मक होते हैं :

तेरोअ मेरोअ शौगिय लडड़ी औरेर साता,
पारो जाजिम टोपिंद बीन पड़ देइत सापा।
सापेर नाई मुंडकी पोरू देउले काटी,
आउँ चाइंय दीटु, त चाइंय दियेरी बाटी।
दियेरी बाटी पीरू वि मरेली जली,
तू चाइंयोंरा आउँ चाइंय कुजेरी कली।
कुजेरी कली पोरू बि मरेको रिवी,

लजी = काटे; झूर, झुराई = दुखी और निर्बल होना; रुणझुण = रुनझुन करता हुआ; राँड = विधवा; वोला = नहरें; जोन = चाँद; लेण = सरसों; रेण = रहता है; कुखड़ी = कुक्कुट; जिकुड़ी = दिल।

आऊँ चाईंय सूरीज तू चाईंय गैणा बिजी,
बिजी नाई अफूणी नाईं बरेशे पाणी,
तू चाईंय गुड़को आउँ चाईंय बिवला राणी।
तू औंदी नारिये इंदु राजारी पौरी,
जिंदे बशे मनडे तिंदे का मरूण डोरी।

(क) छोपती—छोपती में प्रेम का व्यावहारिक रूप ही व्यक्त हुआ है :

[1]आँगूड़ी कानी गोवरधन गिरधारी,
गंगा जी को पूल टूटै गोवरधन गिरधारी,
तू न टूटी दील गोबरधन गिरधारी।

(ख) बाजूबंद—बाजूबंद में वार्तालाप का हल्कापन होता है, किंतु प्रेम की गंभीर उक्तियाँ भी हैं।

छूड़े में कुछ प्रेम संबंधी गीत मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त मामी और साली के प्रणय विषयक गीत भी मिलते हैं। समाज में होनेवाले व्यभिचारों और अवैध यौन संबंधों पर भी समय समय पर गीत चल पड़ते हैं। इन गीतों का कोई नामकरण नहीं हुआ है।

(ग) छोपती—छोपती और बाजूबंद में केवल छंद का भेद है। प्रायः छोपती को बाजूबंद और बाजूबंद को छोपती बनाया जा सकता है। बाजूबंद में दो पंक्तियाँ होती हैं जिनको दुवा (दोहा) कहा जाता है। पहली पंक्ति दूसरी की आधी और तुक मिलाने के लिये होती है। छोपती में इस डेढ़ पंक्ति को तीन भागों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक भाग के साथ कोई टेक दुहराई जाती है। लामण दो पंक्तियों का छंद होता है, जिनमें दोनों पंक्तियाँ सार्थक और तुकांत होती हैं।

भाव की दृष्टि से इनमें कोई अंतर नही होता। प्रायः विलास की लालसा, यौवन की अस्थिरता और सुखों को वर्तमान में ही भोग लेने की कामना उनमें प्रधान होती है। प्रेमाभिव्यक्ति के बीच आत्मनिवेदन तथा जीवन के दुःखों के कुछ बड़े करुण चित्र मिलते हैं।

'छोपती' समूहगीत होते हैं और केवल छोपती नृत्य के साथ ही गाए जाते हैं। 'बाजूबंद' संवादगीत हैं। प्रेमी वनों के एकांत में वार्तालाप के रूप में इनको गाते ही नहीं, रचते भी हैं। लामण गीत रवाईं में प्रायः उत्सवों में गाए जाते हैं। उनमें प्रेम की गंभीर अभिव्यक्ति मिलती है।

[1] प्रथम पंक्ति केवल तुक मिलाने के लिये है। पूल = पुल। दील = दिल।

(घ) छूड़े—रवाईं जौनपुर के छूड़े गीतों में भी प्रेम का वर्णन बड़े दार्शनिक और काव्यात्मक ढंग से हुआ है। गजू नायक है और सलारी मलारी नायिकाएँ। गजू मलारी को चाहता था, किंतु उसके पिता की अनिच्छा के कारण वह अंतिम समय तक उसे प्राप्त नहीं कर पाता। छूड़ों में चरवाहों की रसिक वृत्ति के सुंदर चित्र होते हैं।

रोज काम पर जाने से पहले अपनी प्रेयसी से चरवाहा चुंबन देने को कहता है, किंतु वह बहाना करती है :

तू नश बौरे बेडुक मु नश डोखीर घाणी,
पिंची देंदु तू खाबुड़ी मुले चढ़ीऊँ पाणी।
मेरा गौं इनु आया, जनु डिंग्या मथ सुवा,
आणू क त आई जाया, मुखड़ुड़ी देखनू द्रुवा।
मु वण कमल को पाणी, तू वण काँठू दूणी,
तू बि चाइंथी चरखी, मु कपासेर पूणी।

इनसे भी भिन्न कोटि के प्रेमगीत वे हैं, जिन्हें व्यभिचार गीत कहा जा सकता है। दांपत्य संबंधों की परिधि के बाहर जो यौन संबंध हो जाया करते हैं, उनके अनेक रूप मिलते हैं। भाभी और साली का प्रेम लोकगीतों का सामान्य विषय है। उनके प्रेम का चित्रण व्यंग्य विनोद से समन्वित मिलता है।

भाभी और साली के प्रेम संबंधों को तो समाज सह भी लेता है, किंतु ऐसे भी प्रेम संबंध हो जाया करते हैं, जो बनी बनाई मर्यादाओं को तोड़ डालते हैं। ऐसी अवस्था में समाज की सारी घृणा गीतों में प्रकट होकर व्यभिचारियों के सिर पर फूट पड़ती है। इस प्रकार के व्यभिचार गीत किसी साहित्यिक ध्येय से नहीं, वरन् ऐसे लोगों को दंड देने, लज्जित करने, उनको किसी के सामने मुँह दिखाने योग्य न रखने तथा दूसरों को सचेत करने के लिये बनाए जाते हैं। इस प्रकार के गीतों में आमंत्रण, अनुरोध, सुखी भविष्य की कल्पना और परिणाम के रूप में विग्रह, मारपीट आदि का वर्णन मिलता है। ये गीत जीवन की वास्तविक घटनाओं पर आधृत होते हैं और उनमें प्रेमी तथा प्रेमिकाओं के नाम, गाँव और प्रेम की परिस्थितियों का इतिवृत्त स्पष्ट शब्दों में वर्णित होता है।

(ङ) खुदेड़—खुदेड़ गीत मायके की स्मृति के गीत होते हैं। गढ़वाली का 'खुद' शब्द संस्कृत 'क्षुधा' से व्युत्पन्न है। अपने प्रियजनों के वियोग में मिलन की तीव्र आत्मिक क्षुधा 'खुद' कहलाती है। खुद के ये गीत 'खुदेड़' नाम से प्रसिद्ध है। इनमें दुःख दर्द के नीचे पिसती गढ़वाली नारी के अभावों को वाणी मिली है। विशेषतः मायके की उत्कंठा, वहाँ के सुखों का स्मरण, माता, पिता, भाई आदि को उलाहना देने के साथ साथ उनमें अपने जीवन की दुःखपूर्ण स्थिति—सास की

झिड़कियाँ, पति की निर्दयता आदि ससुराल के जीवन की भयंकरता—मुख्य रूप से वर्णित होती है :

[1]हे उचि डाँडियों, तुम नीसी जावा,
घणी कुलायों, तुम छाँटि होवा,
मैं कू लगीं च खुद मैतुड़ा की,
बाबा जी को देश देखण देवा।

एक अन्य विषय भी इन गीतों के साथ संमिलित होता है, वह है प्रकृति-चित्रण। झुमेलो गीत, जो मूलतः खुदेड़ गीत ही हैं, वसंत की शोभा का सुंदर और तुलनात्मक वर्णन होने के कारण करुण चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनमें मायके की सुधि में उद्विग्न लड़की के लिये प्रकृति उद्दीपन रूप में आई है। दूसरी ओर उनमें प्रकृति के प्रति उसकी आत्मीयता के भी दर्शन होते हैं। पत्नी उसके संदेशवाहक बनते हैं और जहाँ ससुराल में प्रकृति का पुलकित वेश उसे दुःखद लगता है, वहाँ मायके में उसकी कल्पना कर वह विभोर हो उठती है। इसी सुधि में डूबी गढ़वाली लड़की अपने मायके के फूलों, पक्षियों, खेतों, नदी और पहाड़ों को उसी प्रकार याद करती है, जिस प्रकार वह अपने माता, पिता, भाई बहनों को याद करती है।

खुदेड़ गीत पहले मायके की सुधि तक ही सीमित होते थे, किंतु जबसे गढ़वाल के लोग जीविका के लिये बाहर जाने लगे, गढ़वाली नारी के मत्थे पति-वियोग भी आ पड़ा। फलतः मायके की याद के साथ पति की याद के खुदेड़ भी चल पड़े। इस कोटि के खुदेड़ गीतों में पति को घर आने के लिये आमंत्रण, संदेश, अपनी दुरवस्था तथा यौवन की अस्थिरता व्यक्त होती है। बारहमासी गीतों में नारी की इन्हीं भावनाओं को वाणी मिली है :

सौकार को जो बड़दो ब्याज,
जाँदा नी स्वामी परदेश आज।
स्वामी जी मेरा परदेश पैथ्या,
तुमारा सौकार छाजा मा बैठ्या।
किलई जलमी गडवाल नारी,
रोइक रुझाये आँगड़ी सारी।

(३) धार्मिक गीत

(क) **जागर**—गढ़वाल के धार्मिक लोकगीत तंत्रमंत्र, पूजा, आह्वान तथा देवताओं की लीलाओं से संबंधित हैं। स्थानीय बोली में इनके एक अंश को जागर

[1] डाडियों = शिखरों; नीसी = नीची; कुलाई = चीड़; खुद = याद; मैंतुड़ा = मायका।

कहते हैं, क्योंकि ये जागरण करके देवता को नचाते हुए गाए जाते हैं। इन गीतों का प्रारंभ प्रायः दैवी शक्ति के आह्वान और उद्बोधन से होता है :

तू आया देव सुघड़ी सुबेर,
जाँद देव की मुखड़ी बाँदणी,
जाँद देव की पिठूड़ी बाँदणी
तू आया देव शंक की धुनी।

लीलाकथन जागर गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है। नागरजा कृष्ण, पांडव आदि के जागर बड़े प्रसिद्ध हैं। पांडवों के जागर में उनके जन्म, कुंती के स्नान, महाभारत युद्ध तथा अर्जुन के प्रेम की कथाएँ बहुत सुंदर हैं। इसी प्रकार गंडे की कथा, जिसे पांडु के श्राद्ध की कथा भी कहा जाता है, पांडव गाथा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कृष्ण को जागरों में नागरजा कहा जाता है। वे दूध के देवता माने जाते हैं। उनके जागर में कंस की शत्रुता, कृष्ण के जन्म, गोचारण, मुरलीवादन आदि प्रसंग ही प्रमुख रूप से आए हैं जिनका सीधा संबंध गढ़वाल के ग्राम्य जीवन से है। कुसुमा कोलिन, रुक्मिणी, चंद्रावली आदि नायिकाओं के प्रेमी के रूप में कृष्ण की रसिकता के भी अनेक चित्र उभरे हैं[1]। वहाँ कंदुकक्रीड़ा का प्रसंग भी मिलता है।

कृष्ण के जागरगीत के साथ एक व्यक्ति और संबंधित है—सिदुवा। वह कृष्ण का परम मित्र था। गढ़वाली लोकगीतों में यह जनश्रुति समाविष्ट है कि जब द्वारिका से कृष्ण का मन ऊब गया तो गढ़वाल का सेम मुखेम नामक स्थान उन्होंने अपने निवास के लिये चुना। वहाँ के सामंत गंगू रमौला ने मना कर दिया, किंतु कालांतर में वह उनका भक्त बन गया और उसका पुत्र सिदुवा उनका परम सहायक सिद्ध हुआ। कृष्ण तब वहीं रहने लगे। यही सेम मुखेम आज गढ़वाल का मथुरा वृंदावन है।

इस प्रकार नागरजा, पांडव, विनसर, नगेलू घंडियाल, नरसिंह, केलापीर, निरंकार, गौरील आदि अनेक देवताओं के जागर गढ़वाल में सुनने को मिलते हैं। देवताओं के अतिरिक्त गढ़वाल में कुछ अनिष्टकारिणी शक्तियों को भी, उनसे मुक्ति पाने के लिये, नचाया जाता है। ये मुख्यतः भूत और आछरी (अप्सराएँ) कहलाते हैं। इनके जागरों को 'रासो' कहा जाता है।

[1] देखिए—गढ़वाल के कथात्मक लोकगीत, गोविंद चातक, हिमाचल प्रकाशन, मुनि की रेती, टिहरी, गढ़वाल।

जागरों से भिन्न कुछ धार्मिक गीत वे हैं जिनका संबंध देवनृत्यों से नहीं होता। ये गीत मूलतः भजन, कामना, स्मरण, स्तुति और निवेदन से संबंधित हैं[१]। ऐसे गीत किसी उपयुक्त नाम के अभाव में स्तुति अथवा पूजागीत कहे जा सकते हैं। गढ़वाली लोकगीतों में प्रकृतिपूजा, यक्ष और नागपूजा के उदाहरण भी मिलते हैं।

मध्यकालीन नाथों और सिद्धों ने जिस प्रकार भारत के अन्य जनपदों को प्रभावित किया उसी प्रकार गढ़वाल को भी। सिद्धनाथ रवाईं के प्रसिद्ध देवता हैं। माणिकनाथ आज भी गढ़वाल में एक ऐसा पर्वतशिखर है जहाँ उसी नाम के किसी नाथपंथी साधु ने तपस्या की थी। गढ़वाल के बूढ़ा केदार स्थान में आज भी नाथों की सुंदर समाधियाँ मिलती हैं। गढ़वाल के लोकगीतों में, विशेषतः उनमें जो मंत्रतंत्र से संबंधित हैं, गोरखनाथ, मछिंदरनाथ, चौरंगीनाथ, बटुकनाथ आदि नाथों के नाम आते हैं[२]। ओझा के झाड़फूँक तथा रखवाली के गीतों में उनका प्रभाव स्पष्ट है। इन गीतों में उनकी महिमा गाई गई है और साथ ही राख (विभूति) का महत्व व्यक्त किया गया है। इन्हें मंत्र, झाड़ा ताड़ा, रखवाली तथा उखेल भेद आदि नामों से पुकारा जाता है। वेदना और अनिष्ट से मुक्त होने के लिये पुरोहित लोग इनका प्रयोग करते हैं।

नाथों के समान ही कबीर, कमाल या रैदास का नाम भी वंदना के रूप में कुछ गीतों में आया है। निराकार की उपासना गढ़वाल तक पहुँची अवश्य, किंतु शिल्पकारों (अछूतों) में सीमित रहकर फिर मिट गई और बाद में निरंकार (निराकार) स्वयं उनमें एक देवता स्वीकार कर लिया गया। निरंकार की जो गीतकथा गढ़वाल में प्रचलित है उसमें शिल्पकारों की पवित्रता ध्वनित होती है। 'हरि को भजे सो हरि का होई' जैसी उदार वाणी गढ़वाल में भी जा गूँजी। गढ़वाली लोकगीतों में इसके अनेक प्रमाण हैं।

गढ़वाल के ये धार्मिक लोकगीत अनेक मार्मिक समन्वयों की याद दिलाते हैं। देवता नचाने की क्रिया से संबंधित कई गीत संस्कृत के आरंभिक स्तर की सूचना देते हैं। उनमें व्यक्त जय, यश और संतति की कामना[३] 'रूपं देहि, जयो देहि, यशो देहि, द्विषो जहि' जैसी उक्तियों से भावात्मक साम्य रखती है। इस प्रकार गढ़वाल के धार्मिक गीत प्राचीनतम प्रतीत होते हैं।

[१] गढ़वाली लोकगीत, गोविंद चातक, जुगलकिशोर ऐंड कं०, देहरादून, पृ० ७,१३

[२] वही, पृ० २८-३४

[३] वही, पृ० ७,१३,२४४

(४) **संस्कारगीत (विवाह)**—संस्कारगीतों में गढ़वाल में केवल विवाह के गीत ही मिलते हैं जिन्हें माँगल कहते हैं। हिंदी में भी पार्वतीमंगल, जानकीमंगल आदि की परंपरा मिलती है। विवाह के अतिरिक्त जातकर्म आदि पर एकाध गीत उपलब्ध होते हैं जिससे यह भान होता है कि विवाह के अतिरिक्त अन्य संस्कारों से संबंधित गीत भी किसी समय गढ़वाल में रहे होंगे, जो अब मिट चुके हैं।

(१) **मांगल**—मांगल विवाह के विभिन्न अनुष्ठानों से संबंधित होते हैं। वास्तव में विवाह की कोई क्रिया ऐसी नहीं जो मांगलों के बिना संपन्न होती हो। वेदी बनाते हुए, मंगल स्नान करते हुए, वस्त्र पहनते हुए, धूल्यर्घ देते हुए तथा बरात के आगमन, भोजन, सप्तपदी और प्रस्थान के अवसर पर स्थिति के अनुकूल मांगल गीत गाए जाते हैं। एक उदाहरण देखिए :

सप्तपदी

पेलो फेरो फेरी लाडी, कन्या च कुँवारी,
दुजो फेरो फेरी लाडी, कन्या च माँ की दुलारी।
तीजो फेरो फेरी लाडी, भायों की लड्याली,
चौथो फेरो फेरी लाडी, मैत छोड्या ली।
पाँचों फेरो फेरी लाडी, ससर की चल्यारी,
छठो फेरा फेरी लाडी, सासु की च बुवारी
सातों फेरो फेरी लाडी, है चुके तूमारी।

मांगल विवाह की क्रिया के भावात्मक पक्ष व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिये सप्तपदी, बाँद, धूल्यर्घ, छोलका, जुठोपिठो, मंगलसूत्र आदि विवाह की क्रियाएँ जिन भावों से प्रेरित हैं, उनकी व्याख्या इन्हीं मांगल गीतों में मिलती है।

इन गीतों की दूसरी विशेषता यह है कि ये स्वजनों, आत्मीयों तथा कन्या के हृदय की सुंदर अभिव्यक्ति करते हैं। विवाह का सारा वातावरण जिस हर्ष और विषाद से समन्वित होता है, वह मांगलों में बहुत सजीव होकर आता है। देव और मानवों के साथ हलदी की बाड़ियों और धान के खेतों को भी निमंत्रण देना, वर को देखने की सखियों की उत्सुकता, कन्या की गहनों की माँग, ससुराल संबंधी उसकी उत्सुकता, कुहरे से छाए चार पहाड़ों से दूर जाने की भावना, बिदाई आदि हृदय को स्पर्श करनेवाली हैं :

आज न्यूती आलेन मैं हलदानू की बाड़ी,
आज चैंद हलदी को काज।

आज न्यूती आलीन मैन साव्यों की सटेंड़ी,
आज ऊँका मोत्यों को काम ।

दूसरी ओर वर पक्ष के मांगल गीतों में उल्लास का जो भाव व्यक्त होता है, वह जीवन के बिरले क्षणों की निधि कहा जा सकता है। वधू के गृहप्रवेश के अवसर पर गाए जानेवाले मांगल में उस नए प्राणी का जिन स्वरों में अभिनंदन किया जाता है वे हृदय की गहराई से निकलते हैं।

मांगल गीतों में वर और वधू को शिव पार्वती, विष्णु लक्ष्मी, ब्रह्मा सावित्री, वसंत भूमि कहा गया है। इससे उनकी पवित्रता व्यंजित होती है। वर को भोजन, जुठोपिठो, सप्तपदी, मंगलसूत्र तोड़ने आदि के अवसरों पर गालियाँ भी दी जाती हैं। गालियाँ भी कितनी प्यारी बनकर आती हैं, इसका किसी विवाह में गाए जानेवाले मांगलों द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है।

(५) विविध गीत—शेष गीतों को विविध गीतों के अंतर्गत लिया जा सकता है। लोरी (बालगीत), होली, हास्य तथा सामयिक गीतों पर इसी शीर्षक के अंतर्गत विचार करना उचित होगा। गढ़वाल में होली संबंधी जो गीत प्रचलित हैं, वे सब ब्रजभाषा के हैं। बालगीत और लोरियों का आधिक्य नहीं, पर नितांत अभाव भी नहीं है। हास्य और व्यंग्य के गीतों में 'मोती ढाँगो', 'छाँकरी झोटा', 'बाँकी कमला', 'जेमड़ी दिशा', 'अलसी भाभी' आदि सुंदर गीत हैं। 'अलसी भाभी' एक अकर्मण्य किंतु विलासी नारी का व्यंग्य चित्र है। 'मोती ढाँगू' (मोती नामक बूढ़ा बैल) में भी विलासी किंतु अकर्मण्य और अशक्त मानव के संत चरित्र का सादर स्मरण हुआ है। 'जेमड़ी दिशा' एक कृपण स्त्री का व्यंग्य चित्र है। इसके अतिरिक्त युग ने जब नई करवटें लीं तो नवयुग बड़े बूढ़ों का शिकार हुआ। फलतः कई लोकगीतों में नारियों, हरिजनों, युवकों आदि पर प्रतिक्रियात्मक व्यंग्य विनोद भी मिलते हैं।

घटनामूलक—इनके अतिरिक्त जो गीत बच रहते हैं, उन्हें सामयिक कहा जा सकता है। ये गीत घटनामूलक हैं। पहले पहल जब गोचर में जहाज उतरा, या टिहरी और सतपुली में मोटर आई, अकाल पड़ा या टिड्डियाँ आईं, तो उनपर गीत बन गए। अंग्रेजों के आने के बाद गढ़वाल के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन हुए, जिनकी छाप वहाँ के लोकगीतों पर भी पड़ी। उस समय सेना में भरती के लिये द्वार खुले। सैनिक जीवन की प्रतिक्रियाएँ लोकगीतों में व्यक्त हुईं। राष्ट्रीय आंदोलन हुए। गांधी, नेहरू, पटेल, सुभाष, आदि के राष्ट्रीय लोकगीत चल पड़े। आजादी के बाद आरंभ की महँगाई, भूख, नग्नता, बेकारी गढ़वाली लोकगीतों में भी आई। पंचवर्षीय योजनाओं की ओर लोगों का ध्यान दिलाया गया। फलतः

निर्माण के स्वप्न कुछ गीतों में साकार हो उठे। श्रमदान संबंधी नए गीतों में निर्माण के सुंदर भाव व्यक्त हुए। इस प्रकार युगपरिवर्तन ने गीतों के निर्माण में बड़ा सहयोग दिया।

गढ़वाली लोकगीतों में छोटी छोटी घटनाएँ भी सामयिक गीतों में व्यक्त हुई हैं, जैसे बाढ़ आना, नरभक्षी बाघ का वध, बीमारी, टिड्डियों का आना, मारपीट होना, किसी का मरना, आत्महत्या करना, बलात्कार आदि सामान्य घटनाओं के वर्णन ही कई गीतों में मिलते हैं। इस कोटि के गीत वर्णनात्मक अधिक होते हैं और उनका महत्व अधिकतर सामयिक होता है। फलतः वे शीघ्र भूल जाते हैं।

प्रायः यह कहा जाता है कि लोकगीतों में शैली के सौंदर्य तथा छंद अलंकार का अभाव है। इस प्रकार का कथन भ्रामक है। वास्तविकता यह है कि लोकगीतों का काव्यशास्त्र अभी बनने को है। गढ़वाली लोकगीत परिपुष्ट शैली और काव्यविधान का कलात्मक रूप प्रकट करते हैं। यह ठीक है कि गढ़वाली लोकगीतों में कहीं कहीं कला का आरंभिक स्तर ही दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिये कुछ गीतों में पहली पंक्ति केवल तुक मिलाने के लिये ही होती है, भावरूप से वह दूसरी से संबद्ध नहीं होती। किंतु गढ़वाली गीतों में ऐसी सामान्य प्रथा नहीं है। यहाँ दोनों सार्थक पंक्तिवाले तुक भी मिलते हैं और ऐसे अतुकांत गीत भी, जो आज मुक्त छंद के सदृश लगते हैं। लोकगीतों में छंद की रचना नपीतुली मात्राओं के आधार पर नहीं होती। छोपती, बाजूबंद, छूड़ा, मांगल आदि गीत अपने अपने छंदों के साँचे में ढले होते हैं। जागर और पँवाड़े मुक्त छंद की रचनाएँ हैं। जहाँ तक अलंकारों का प्रश्न है, गढ़वाली लोकगीतों में उपमा, रूपक, अर्थांतरन्यास, दृष्टांत, संदेह, स्मरण आदि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उसी प्रकार प्रतीकों की उनमें बड़ी सुंदर योजना मिलती है। वे अर्थगौरव बढ़ाने में ही सहायक नहीं हुए हैं वरन् प्रेमगीतों में उनके द्वारा सुरुचि और मर्यादा की भी रक्षा हुई है। यौन भावों के लिये प्रयुक्त प्रतीक लोकमानस की कलात्मक सूझ प्रकट करते हैं।

गढ़वाली लोकगीत शैली के अनेक रूप स्वीकार करते हैं, किंतु भाव, विषय, वाक्यांश की पुनरावृत्ति, संवाद, प्रश्नोत्तर आदि विशेषताएँ सबमें मिलती हैं। प्रबंध गीतों में पुनरावृत्ति अधिक है। मांगलों में भी यह दिखाई देती है। बाजूबंदों में संवाद मुख्य हैं। घटनामूलक गीत प्रश्नोत्तर शैली के होते हैं।

(१) छूड़ा—छूड़ा वस्तुतः नीति और उपदेशपरक गेय सूक्ति है। उसमें जीवन के गहन अनुभवों को अभिव्यक्ति मिलती है। मानवीय आचरण के

विविध पक्षों को छूते हुए उसमें जीवन के सत्यों की अनुभवजन्य व्याख्या होती है। विषय की दृष्टि से छूड़े पशुपालकों के जीवन, जगत् और जीवन की अस्थिरता, प्रेम तथा नीति अथवा उपदेश से संबंधित हैं। छूड़ों में प्रेम की गंभीर उक्तियाँ मिलती हैं। मृत्यु के संबंध में उनमें दार्शनिकता के साथ सोचा गया है। मेष-पालक के जीवन की कठिनाइयों और उसकी एकांत साधना पर अनेक उक्तियाँ बहुत काव्यात्मक हैं। खान पान, जाति पाँति और रहन सहन के संबंध में भी इन छूड़ों में बड़ी उदारता के दर्शन होते हैं, पर उनमें जो विधिनिषेध आए हैं उनका व्यावहारिक मूल्य किसी प्रकार कम नहीं :

सुकी बल डाड़ी, हरु लगलो फाँगो,
मरयो बल मणसात, ते जुगको बाँटो भ्रँगो।

(२) बुझौवल (पहेली)—हिंदी प्रदेश में 'बुझौवल' एक व्यापक शब्द है। गढ़वाल में इसी से मिलता जुलता शब्द 'बुझौवणा' इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियों, स्कूल के छोटे बच्चों और चरवाहे लड़कों में इनकी धूम रहती है। मनोरंजन और मानसिक व्यायाम का ऐसा सामंजस्य बुझौवल के अतिरिक्त किसमें है ? वस्तुतः बुझौवलों की कला और सूझबूझ की सराहना करनी ही पड़ती है। केशव के कठिन काव्य, कबीर की उलटबासियों, सूरदास के दृष्टिकूटों और अनेक संस्कृत कवियों की प्रहेलिकाओं से कम पैनी दृष्टि इनमें नहीं दिखाई देती। भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ही नहीं, मानव मस्तिष्क की भावधारा तथा साहित्य के विकास की सीढ़ियों को समझने के लिये इनका संकलन और अध्ययन आवश्यक है।

ये बुझौवल अथवा 'बुझौणे' उस युग की देन लगते हैं जब विश्व स्वयं एक पहेली, एक रहस्य था। अपनी आरंभिक स्थिति में आदिम मानव ने अपने चारों ओर जो रहस्यात्मक वातावरण पाया, उसी की छाया को लेकर उसने भावात्मक और कलात्मक जगत् में भी प्रवेश किया। साथ ही अपनी मानवता के अनुरूप उसने उसको रूपरंग देकर प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया। जो वस्तुएँ अथवा भावनाएँ उसके लिये पहले से ही रहस्यमयी थीं, वे तो थीं ही, उनकी तुलना में सामान्य वस्तु पर भी उसने रहस्य का आरोपण किया, जिसने बुझौवलों को जन्म दिया। ऐसा करने में साम्यों और प्रतीकों ने बड़ा काम किया। उदाहरण के लिये मनुष्य ने देखा—वह सूरज है, गोल है, चलता है, उसकी किरणें चमकती हैं, और उसने यह भी देखा कि उसका बटुआ (गढ़वाल में पुराने ढंग के बटुवे बिल्कुल गोल और रेशम के होते थे) है, वह भी गोल है, सूरज की किरणों की तरह उसमें भी रेशमी डोरियाँ हैं। दोनों की समानता सिद्ध हो गई। अब वह सूरज को अपना बटुवा कह सकता है। इसी आधार पर बुझौवल बन गई :

चाँदी को बटुवा, सोना की डोर,
चला जा बटुवा दिल्ली पोर।

(चाँदी का बटुआ है, उसपर सोने की डोरियाँ लगी हैं। वह दिल्ली (दूर) जाता है।) सूरज पर इससे सुंदर पहेली और क्या हो सकती है ? इसी प्रकार, उसने अपनी लंबी वेणीवाली स्त्री और तागेवाली सूई को देखा और उसकी सूझ ने 'बुझौणे' का रूप धारण कर लिया—'छोटी छोरी को लंबी फोंदा।' (छोटी लड़की की लंबी वेणी।) यहाँ छोटी लड़की 'सूई' है और लंबी वेणी 'तागा'। दूज के चाँद और आधी रोटी का आकारसाम्य इस बुझौवल में दर्शनीय है—'काकर फूँड्ड मेरी आधी रोटी धरीं, पर गाडी नी सकदो' (छत पर मैंने आधी रोटी रखी है, पर निकाल नहीं सकती।) स्पष्ट है कि साम्य और प्रतीक बुझौवलों के निर्माण में बहुत सहायक हुए हैं।

तुलना और प्रतीकात्मकता के बाद मानवीकरण का इन बुझौणों के निर्माण में बहुत कलात्मक सहयोग दीखता है। सूई को लड़की बनाते हुए ऊपर के 'बुझौणे' में आपने देखा ही। इसी प्रकार बटुवे में प्राणतत्व की भी स्थापना की गई, क्योंकि उसे चलता बताया गया है। इस प्रकार उनमें अचेतन वस्तुओं को भी मानव के समान चेतना प्रदान की गई। इस चेतना को स्थूल वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रखा गया, वरन् निराकार वस्तुओं तथा भावों में भी सहज में ही उसका आरोपण अनेक गढ़वाली 'बुझौणों' में मिलता है। एक 'बुझौणे' में 'वर्ष' को 'हिरण' का चेतन रूप देकर महीनों को उसके पैरों का रूप दिया गया है :

चार नरम चार गरम, चार चराचर,
बार पैर हिरण का, चल सरासर।

(हिरण के चार सम जलवायुयुक्त, चार गरम और चार शीतयुक्त, इस प्रकार कुल बारह पैर हैं, जिनसे वह जल्दी जल्दी चलता है।) इस कथन में महीनों की जलवायु की ओर भी संकेत किया गया है।

गणित बुझौवलों में बड़े सुंदर ढंग से आया मिलता है। गढ़वाल में इस तरह का एक बुझौअल है—एक स्थान पर प्राणियों के तीन सिर हैं पर उनके पाँव दस हैं। वे कौन कौन प्राणी हो सकते हैं ? इसी प्रकार बँटवारे संबंधी कई बुझौवल गणित पर आधारित हैं। उनका हल कुछ दशाओं में रिश्तों के आधार पर किया जा सकता है। उदाहरण के लिये एक बुझौवल इस प्रकार है :

तुम माँ बेटी, हम माँ बेटो
चला बाग की सैर,
तीन निंबू बिना बाँट्या खौला।

(तुम भी माँ बेटी हो और हम भी माँ बेटी हैं। चलो बाग की सैर को चलें। वहाँ तीन नीबू खाएँगे।) नीबू काटकर नहीं बाँटे गए और प्रत्येक के हिस्से में एक एक नीबू आया जब कि खानेवाली चार प्रतीत होती हैं। इस बुझौवल का हल उनके संबंधों की व्याख्या में निहित है, जिससे वे चार नहीं, तीन ही सिद्ध होती हैं।

नाते रिश्ते संबंधी बुझौवलों में कभी दो व्यक्तियों का रिश्ता पूछ लिया जाता है और जो उत्तर मिलता है वह स्वयं एक 'बुझौणा' का रूप धारण कर लेता है। एक खेत में एक हलिया और कोई एक स्त्री काम कर रही थी। पथिक ने जाते हुए पूछा—'तुम परस्पर क्या लगती हो ?' स्त्री ने कहा—'हे मूर्ख इसकी और मेरी एक ही सास है।' बुझौवल इस प्रकार है :

हे हल्या, हे हलवंती,
तुम आपस मा क्या लगंती,
हे बटोई, हे झासु,
ये की अर मेरी एकी सासु।

दोनों की एक ही सास होना सहसा संभव नहीं जँचता, किंतु इस प्रकार का संबंध भी खोजा जा सकता है।

इसी प्रकार भावों को दूसरों के लिये जान बूझकर अग्राह्य बनाने की प्रवृत्ति भी अनेक बुझौवलों में मिलती है। ऐसे बुझौअलों में प्रश्न के उत्तर के रूप में हल भी उन्हीं में होता है। उत्तर स्वयं एक पहेली तो नहीं होता, किंतु उसको वही समझ सकता है, जिसे उस विषय का ज्ञान हो। इस प्रकार का एक बुझौवल देखिए :

दाल तिल कति पाथा का ?
रावण सिर जाता का।
पान पून के ल्यूलो,
कृष्ण अवतार क घूलो।

कोई किसी के पास तिल खरीदने गया। उसने पूछा—'तिल कितने पाथे (प्रस्थ) के दिए ?' उत्तर मिला—'जितने रावण के सिर थे, उतने पाथे के।' खरीदार ने कहा : 'छान-बीनकर लूँगा ?' 'तब तो कृष्ण अवतार का दूँगा।' यहाँ 'रावण के सिर' और 'कृष्ण अवतार' जानने की बातें हैं, जिनसे मनुष्य की बहुश्रुतता नापी जाती है।

अधिकांश बुझौवे पद्य में मिलते हैं और प्रायः एक, दो या चार पंक्तियों के होते हैं। उनमें अनुप्रास, तुक और अलंकार की छटा होती है। विषय की दृष्टि से वे खेती पाती, पशु पक्षी, घरेलू जीवन, वनस्पति, नाते रिश्तों और गणित आदि से संबंधित होते हैं। उनकी सूझ का क्षेत्र बहुत व्यापक है, किंतु सबसे बड़ी विशेषता उनकी कला में दिखाई देती है।

(३) लोकनाट्य—गढ़वाल में लोकनाट्यों का विकास स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ है। वास्तव में वहाँ लोकगीतों में ही कथा तथा नाटक के तत्व मिलते हैं। नाट्यों का आयोजन पृथक् रूप में नहीं मिलता है। धार्मिक आयोजनों के अवसर पर गीत और नृत्य के साथ लोकनाट्य उपस्थित होते हैं। जागर गीत और उनके साथ होनेवाले नृत्य ऐसे ही हैं। वास्तव में जागरों की उपासना पद्धति नाट्य और अभिनय पर ही आधारित है। इसे समझने के लिये गढ़वाल में देवता नचाने की पद्धति से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

प्रत्येक देवता का एक 'पस्वा' (वाहन) होता है, जिसे 'अवतारू' भी कहा जाता है, क्योंकि उसमें दैवी शक्ति का अवतरण अथवा आवेश माना जाता है। जब देवता नचाना होता है तो पस्वा या अवतारू को बिठा दिया जाता है। पुरोहित अथवा औजी उस देवता के आवाहन के गीत (पचड़ा) गाने लगता है। कुछ समय बाद वह काँपने लगता है। यह दैवी शक्ति के अवतरण की सूचना है। जब कंपन बहुत बढ़ जाता है तो वह उठकर नाचने लगता है। तब पुरोहित अथवा औजी वाद्य के साथ उसकी लीला के गीत गाने लगता है और पस्वा उन्हीं का अभिनय करता हुआ नाचता है। उदाहरण के लिये नागरजा (कृष्ण) के जागर में जब पुरोहित गोदोहन, मुरलीवादन, कंदुकक्रीड़ा आदि लीलाओं के गीत गाता है तो पस्वा उन्हीं के अनुरूप चेष्टाएँ करता हुआ नाचता है।

पांडव नृत्यों और भंडाणों में अभिनय का यह रूप और भी स्पष्ट होता है। उसमें नर्तकों की वेशभूषा वीरों जैसी होती है। धनुष-बाण के साथ समस्त नृत्य से वीरभाव की अभिव्यक्ति की जाती है। नृत्य के कुछ प्रसंग तो पूर्ण नाटकीय होते हैं। 'गैंडे का शिकार' में बड़े कलात्मक अभिनय की आवश्यकता होती है। कद्दू पर लकड़ी की चार टाँगें लगाकर उसे गैंडा मानकर बीच में रख दिया जाता है। फिर पांडव आखेट का सुंदर नृत्यमय अभिनय करते हुए उसे मारते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है, लोकनाट्यों का प्रारंभ इसी प्रकार धार्मिक नृत्यों से हुआ है। बाद में उनमें विकास तो हुआ, किंतु बहुत सीमित। इन लोकनाट्यों में न तो नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करने की चिंता दिखाई देती है और न जनजीवन को व्यक्त करने की लालसा ही। धर्मार्जन और मनोरंजन

उनका ध्येय रहा है। मनोरंजन के लिये प्रहसनों का विशेष महत्व होता है। गढ़वाल में प्रहसनों का आयोजन देवनृत्यों के अवसर पर बीच बीच में किया जाता है। 'पंछीसंहार' और 'मोतीढाँगो' इस प्रकार के बड़े सुंदर प्रहसन हैं।

५. लिखित साहित्य

गढ़वाली लिखित साहित्य एक सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। बहुत संभव है, इससे भी पहले की रचनाएँ मिल जायँ किंतु इस क्षेत्र में अभी यथेष्ट अनुसंधान नहीं हुआ है। महाराज सुदर्शन शाह ने गोरखा आक्रमण के समय कुछ घटनाएँ लिखी थीं। संभवतः यह गढ़वाली की सर्वप्रथम रचना थी जिसकी प्रशंसा एन० सी० मेहता ने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन इंडियन पेंटिंग्ज' में की है। १८वीं शती के अंतिम दशक में बाइबिल का गढ़वाली अनुवाद हुआ। इसी के निकट गोविंदप्रसाद घिल्डियाल ने 'हितोपदेश' का गढ़वाली अनुवाद प्रकाशित कराया। गढ़वाली में सामूहिक साहित्यरचना १९वीं शती के आरंभ से प्रारंभ हुई है। इस समय गढ़वाली साहित्यरचना के लिये 'गढ़वाली' पत्र ने वही काम किया जो हिंदी के लिये 'सरस्वती' ने। 'गढ़वाली' के प्रोत्साहन से अनेक साहित्यकार आगे आए और वे गढ़वाली साहित्य की नींव डालने में सफल हुए।

यह जागृति, उद्बोधन और उत्तेजना का युग था। इस समय गढ़वाल की भाषा, मनुष्य, वन, पर्वत आदि के प्रति कवियों और लेखकों ने ममता जाग्रत की। हिंदी में भारतेंदु युग की भाँति इस युग में उन्होंने लोगों को एक ओर उनकी सुषुप्तावस्था से परिचित कराया, दूसरी ओर उनके हृदयों में जन्मभूमि का प्रेम भरकर उन्हें कुछ करने के लिये उत्साहित किया। 'उठा गढ़वालियो, यो समै सेण को नीछ' (उठो गढ़वालियो, यह समय सोने का नहीं है) जैसी उक्तियाँ कवियों की वाणी में गूँज उठीं। दूसरी ओर कुछ कवियों ने गढ़वाल के वन, पर्वत और लोकजीवन के इतने सुंदर चित्र उतारे कि गढ़वाल आत्मीयता से विभोर हो उठा। इस युग में चंद्रमोहन रतूड़ी तथा आत्माराम गैरोला ने बहुत सुंदर रचनाएँ कीं। वास्तव में गढ़वाली काव्य का प्रारंभ ही इन कवियों की रचनाओं से होता है। वैसे हरकपुरी और हरिकृष्ण दौर्गादत्ति इनसे भी पहले कविताएँ करने लगे थे, किंतु उनकी कविताओं में गढ़वाल की आत्मा न थी। इस युग के कवियों के स्वतंत्र संकलन नहीं प्राप्त होते। 'गढ़वाली कवितावली' नाम से एक संकलन प्रकाशित है। उसमें संकलित कविताओं को देखते हुए लगता है, कि कुछ कवि सामान्य तुकबंदी से ऊपर नहीं उठ पाए। शुद्ध काव्य की दृष्टि से कुछ की कविताएँ सफल प्रतीत होती हैं। इन कविताओं के संबंध में संस्कृत की पुरानी परिपाटी का अनुसरण हुआ है। ऐसे क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया गया है जो गढ़वाली की प्रकृति से मेल नहीं खाते।

अपनी आरंभिक स्थिति में गढ़वाली काव्य में उद्बोधन और जागरण की भावनाएँ अधिक थीं। बाद में कवियों की प्रवृत्ति नीति, उपदेश और समाजसुधार की ओर चली गई। फलतः काव्य की आत्मा मर गई और मद्यनिषेध, कन्याविक्रय, देवता नचाना आदि व्यसनों, कुप्रथाओं और अंधविश्वासों पर काव्यरचना की जाने लगी। इस समय अनेक कवि सामने आए, पर काव्य की सही सेवा नहीं कर सके। ठीक तभी तारादत्त गैरौला, तोताकृष्ण गैरोला, योगींद्रपुरी तथा चक्रधर बहुगुणा ने लोक की आत्मा को पहचाना और बहुत सुंदर रचनाएँ कीं। तारादत्त गैरोला लोकगीतों के बड़े प्रेमी थे। 'सदेई' के लोकगीतों को लेकर उन्होंने 'सदेई' खंडकाव्य की रचना की, जिसमें लोकगीत की आत्मा सुरक्षित रखने के कारण वे बहुत सफल रहे। 'सदेई' की 'है ऊँची डाँड्यो तुम नीसी जावा' आदि जिन पंक्तियों की प्रायः बहुत प्रशंसा की जाती है, वे उनकी अपनी न होकर लोकगीत की ही हैं। तारादत्त गैरोला ने अन्य लोकगीतों को भी सँवारकर कविता का रूप दिया है। 'फ्यूँली रौतेली' तथा 'झुमैलो' उनमें बहुत ही सुंदर हैं। तारादत्त गैरोला के लोकगीतों के समर्थन ने इस प्रकार के प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया। फलतः लोकगीत को ही काव्य का रूप देकर बलदेव शर्मा 'दीन' ने 'रामी', 'बाट गोडाई' और 'जसी' प्रस्तुत की। ज्ञानानंद सेमवाल ने इसी भाव से 'जीतू बगड्वाल' की रचना की।

तोताकृष्ण गैरोला ने 'प्रेमी पथिक' खंडकाव्य की रचना की। यह खंडकाव्य प्रेम और विवाह पर आधारित है। संस्कृत छंदों की गेयता के कारण कुछ समय तक लोगों में यह काव्य बहुत प्रिय रहा है। इस काव्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है, कि इसकी कथा जनजीवन से संबद्ध और यथार्थ पर आधारित नहीं है। योगींद्रपुरी महंत हैं इसलिये उनके काव्य में धर्म और नीति की प्रमुखता स्वाभाविक है, किंतु उससे बाहर भी उनकी कई रचनाओं में काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। उनके मुक्तक गीतों का संग्रह 'फूल कंडी' नाम से निकला है जिसमें धर्म, नीति, उपदेश, समाजसुधार, प्रकृति, नारीव्यथा आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है।

भजनसिंह का 'सिंहनाद' बहुत लोकप्रिय रहा है। प्रभाव और वस्तु के चित्रण में उनको यथेष्ट सफलता मिली है। भाषा भी सबल है, किंतु इतिवृत्त और समाजसुधार की आकांक्षा में कवि का काव्य कुंठित होकर रह गया है। उन कविताओं में, जहाँ वे इन बातों से बच पाए हैं, एक सफल कवि के रूप में दिखाई देते हैं। 'खुदेड़ बेटि' उनकी बहुत ही काव्यमयी कृति है।

चक्रधर बहुगुणा काव्य की वास्तविक आत्मा को लेकर आए। उनकी प्रथम काव्यकृति 'मोछंग' १९३७ के आसपास प्रकाशित हुई। दुर्भाग्य से लोक में इसका

प्रसार न हो सका, किंतु बाहर लोगों ने इसकी सराहना की, जिसके फलस्वरूप गुजराती, मराठी, तेलगू आदि में उसके अनुवाद भी हुए। 'मोछंग' में भावमय मुक्तक हैं। 'छैला', 'बिदाई', 'चोली' आदि बहुत सुंदर रचनाएँ हैं। 'नौबत' इसी कवि की दूसरी कृति है। इसमें कवि ने संस्कृति को अभिव्यक्ति दी है। यह भी अपने ढंग की अनोखी रचना है।

अब तक अधिकांश रचनाएँ पद्य में होती हैं। गद्य में बाइबिल और हितोपदेश की चर्चा पीछे हो चुकी है। उसी के आसपास भवानीदत्त थपलियाल ने 'जय विजय' और 'प्रह्लाद' नाटक प्रस्तुत किए। गढ़वाली गद्य का विकास १९४० ई० के बाद से ही संगठित रूप में हुआ है। इसका सबसे अधिक श्रेय काशी विद्यापीठ के इतिहास विभाग के प्राध्यापक भगवतीप्रसाद पांथरी को है। पांथरी ने अन्य साथियों के सहयोग से मसूरी में 'गढ़वाली साहित्य कुटीर' की स्थापना की, सभाएँ कीं, रचनाएँ लिखीं और उनको प्रकाशित किया। पांथरी ने एकांकी, गद्यगीत, निबंध और कहानियाँ सभी क्षेत्रों में कार्य किया। 'अधःपतन' और 'भूतों की खोह' उनके प्रसिद्ध एकांकी हैं। वे गढ़वाली जीवन को बड़े आत्मीय ढंग से स्पर्श करते हैं। उनमें भाषा का भी सुंदर रूप मिलता है। उनके एकांकियों की कमी यही है कि उनमें स्थान और काल की एकता नहीं है। फिर भी उनकी सफलता अद्वितीय है। यद्यपि उनसे भी पूर्व विश्वंभरदत्त उनियाल 'वसंती' और 'चार गैल्या' (जिनमें एक सत्यप्रसाद रपूड़ी भी थे) प्रकाशित करवा चुके थे, किंतु साहित्यिक दृष्टि से पांथरी गढ़वाली एकांकी नाटकों के जनक कहे जा सकते हैं। उनके इस क्षेत्र से हट जाने के बाद एकांकी और नाटकों के क्षेत्र में विशेष प्रगति न हो पाई। पुरुषोत्तम डोभाल का नाटक 'बिंदरा' अवश्य सुंदर बन पड़ा है। उन्होंने और भी कई नाटक लिखे हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं। इस बीच दामोदरप्रसाद थपलियाल का 'मनखी' और भगवतीप्रसाद चंदोला का 'अलसो छोड़ी देवा' एकांकी निकले हैं, जो सामान्य से विशेष नहीं हैं। गोविंद चातक का भी सात एकांकियों का एक संग्रह 'जंगली फूल' नाम से निकला है।

गढ़वाली में कहानियाँ अधिक नहीं लिखी गई हैं। भगवतीप्रसाद पांथरी का 'पाँच फूल' नामक एक कहानी संग्रह प्रकाशित है। लोककथाओं के दो एक संग्रह अवश्य प्रकाश में आए हैं। गद्यगीत के रूप में अकेली रचना 'बाँसुली' मिलती है, जिसके रचयिता पांथरी हैं। यह रचना रवींद्र की गीतांजली की शैली पर है। 'गढ़वाली साहित्य कुटीर' के वार्षिक अधिवेशनों के भाषण पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। 'मानव अधिकार' नाम से कुटीर ने विचारात्मक निबंधों का भी एक संग्रह प्रकाशित करवाया था। 'स्वराज अर जनानी' यह पांथरी की एक छोटी सी पोथी के संग्रह 'गढ़वाली जनसाहित्य परिषद्' देहरादून के तत्वा-

वधान में 'गढ़वाली साहित्य की भूमिका' और 'गढ़वाली को अगलो कदम' नाम से से निकले हैं। 'क्या गौरी क्या सौंली' नाम से गोविंद चातक का एक निबंध-संग्रह प्रकाशित हुआ है जो गढ़वाली कहावतों के आधार पर लिखा गया है।

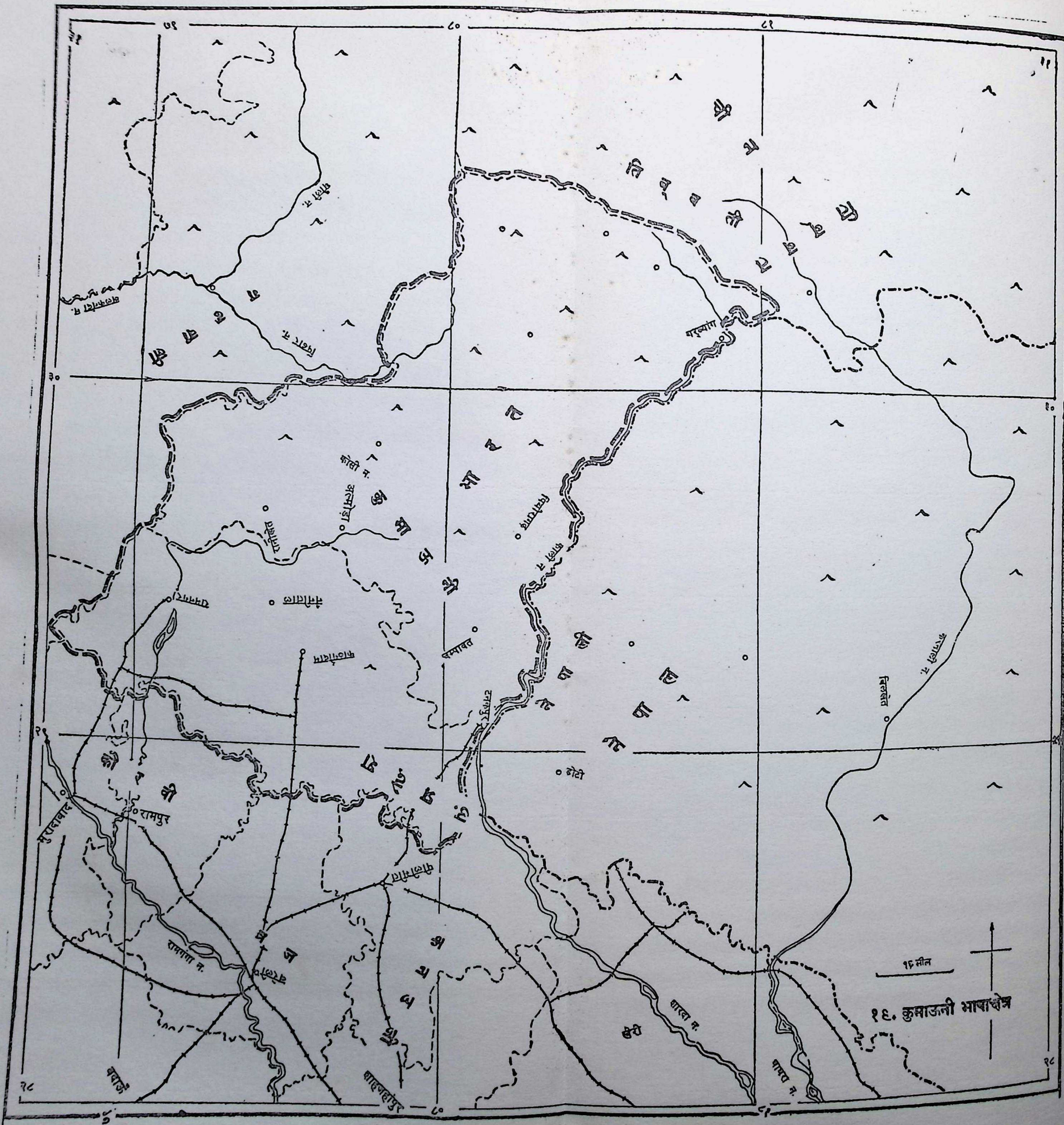
इस युग में कविता पहले की अपेक्षा विषय, भाव और रूप की दृष्टि से आगे अवश्य बढ़ी, किंतु उसे यथेष्ट प्रोत्साहन नहीं मिला। फलतः बहुत सी काव्यरचनाएँ प्रकाश में आने से रह गईं। फिर भी, इस बीच कविताओं के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए। इनमें भगवतीचरण शर्मा का 'हिलाँस', टीकाराम शर्मा का 'गढ़ गुंजार वाटिका' तथा 'मलेथा की कूल' और गिरधारीलाल थपलियाल की 'नवाण' विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। गोविंद चातक की 'गीत वासंती' इस दृष्टि से एक भिन्न कोटि की रचना है, जो लोकगीतों के भावों से अनुप्राणित है। इनके अतिरिक्त भी गढ़-वाली में कविता करनेवाले अनेक कवि हैं, जिनकी रचनाएँ अभी प्रकाश में आने को हैं। इनमें अबोध बहुगुणा, पुरुषोत्तम डोभाल, शिवानंद नौटियाल, दामोदर थपलियाल, गुणानंद डंगवाल, कमल साहित्यालंकार आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गढ़वाली लोकसाहित्य संबंधी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं :

(१) मांगल संग्रह	गिरिजादत्त नैथाणी
(२) गढ़ू सुमरियाल	शिवनारायण सिंह विष्ठ
(३) घुयाँल	संपादक अबोध बहुगुणा
(४) गढ़वाली लोकगीत	गोविंद चातक
(५) गढ़वाल के कथात्मक लोकगीत	" "
(६) धरती का फूल	" "
(७) बाँसुली	" "
(८) बोल रई गैन	" "
(९) गढ़वाली पखाणा	शालिग्राम वैष्णव।
(१०) गढ़वाली कहावत संग्रह	अंबादत्त डंगवाल।
(११) हिमालय फोक लोर	तारादत्त गैरोला।
(१२) स्नोबाल्स आव् गढ़वाल	नरेंद्रसिंह भंडारी।
(१३) गढ़वाल की लोककथाएँ	गोविंद चातक।

१७. कुमाऊँनी लोकसाहित्य

श्री मोहनचंद्र उपरेती



१६. कुमाऊनी भाषाक्षेत्र

(१७) कुमाऊँनी लोकसाहित्य

१. कुमाऊँनी क्षेत्र और भाषा

(१) सीमा—कुमाऊँनी जनभाषा उत्तर प्रदेश के अलमोड़ा और नैनीताल के पहाड़ी जिलों में प्रचलित है। इतिहास, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से ये ही दो जिले कुमाऊँ प्रांत के अंतर्गत आते हैं।

कुमाऊँ या कूर्मांचल उत्तरी अक्षांश २८.° १४'. १५" तथा २०.५०' और पू० दे० ७६.° ६.' ३०" तथा ८०.° ५८.' १५" के बीच अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ८०० वर्गमील के लगभग और जनसंख्या बारह लाख के लगभग है।

कुमाऊँ के उत्तर में तिब्बत प्रदेश है और पूर्व में नेपाल, पश्चिम में गढ़वाल और दक्षिण में पीलीभीत, रुहेलखंड के बरेली, रामपुर और मुरादाबाद जिले हैं।

(२) कुमाऊँनी भाषा—कुमाऊँनी भाषा पूरे पहाड़ी कुमाऊँ प्रदेश में बोली जाती है। इसके उत्तर में चीन गणराज्य में तिब्बती भाषा बोली जाती है। पूर्व में काली नदी के उस पार नैपाली की उपभाषा डोटियाली है। दक्षिण में पहाड़ तक कुमाऊँनी, नीचे तराई में—जो पूरे नैनीताल जिले में है—पूर्व और थारू और पश्चिम में बोक्सा (दोनों किरातवंशीय) रुहेली (उत्तरी पांचाली) मिश्रित भाषा बोलते हैं, पर वहाँ बसे कुमाऊँनी अपनी भाषा बोलते हैं जिसपर हिंदी का प्रभाव अधिक है। पश्चिम में गढ़वाली भाषा है जो कुमाऊँनी के ही वंश की है।

यद्यपि कुमाऊँनी भाषा अल्मोड़ा और नैनीताल के निवासियों की जनभाषा है, तथापि इन जिलों के बीच भी कई स्थानों में ऐसी बोलियाँ हैं जिनकी भाषा को कुमाऊँनी नहीं कहा जा सकता। अल्मोड़ा के उत्तर में स्थित जोहार और दारमा परगनों (भोट) के निवासी भोटिया कहे जाते हैं। जोहार को छोड़कर बाकी भाग में बोली जानेवाली भाषा कुमाऊँनी नहीं बल्कि तिब्बती है। जिले के पूर्वी भाग में अस्कोट है। यहाँ के कुछ स्थानों में किरात जाति के कुछ 'राजी' लोग रहते हैं। इनकी बोली कुमाऊँनी नहीं, किराती है। इसी प्रकार नैनीताल जिले का वह भाग जिसे तराई भाबर कहते हैं, कुमाऊँनी भाषा नहीं बोलता। वहाँ रहनेवाले थारू और बोक्सा रुहेली प्रभावित बोली बोलते हैं। थारू लोग कुमाऊँ और नेपाल की तराई में रहते हैं और कुमाऊँ में किच्छा,

खटीमा, रमपुरा, सतारगंज, किलपुरी, नानकमता, चंदनी बनबसा आदि स्थानों में रहते हैं। बोक्सा पीलीभीत जिले की ओर अधिक मिलते हैं और इनकी भाषा भी कुमाऊँनी से भिन्न है। देश के विभाजन के बाद तराई भाबर में काफी संख्या में पंजाब से आए हुए शरणार्थी भी बस गए हैं।

(३) उपभाषाएँ—कुमाऊँनी जनभाषा भी अलमोड़ा और नैनीताल जिलों के कई परगनों में अलग अलग ढंग से बोली जाती है। स्व० पं० गंगादत्त उप्रेती जी ने उनके कुछ नमूने दिए हैं, जो इस प्रकार हैं :

हिंदी बोली—एक समय में दो विख्यात शूरवीर थे। एक पूर्व दिशा के कोने में, दूसरा पश्चिम दिशा के कोने में रहता था। एक का नाम सुनकर दूसरा जल भुन जाता था। एक के घर से दूसरे के घर जाने में बारह वर्ष का मार्ग चलना पड़ता था।

(१) अलमोड़ा जिला—

(क) अलमोड़िया बोली[१]—कै समय में द्वी नामि पैक। एक पूरब दिशा का कुण में, दोहरो पछौं का कुण में रौंछिया। याक को नाम सुणि बेर दोहरो रीस में भरियो रौंछियो। हौर एका का घर बटि दोहरा को घर १२ वर्ष को बाटो टाँड़ छियो।

(ख) काली कुमाऊँ की बोली—कै वक्त में द्वी जन बड़ा वीर छूया। एक जन पूर्व का कुना में, दोसरो पछीम का कुना में रौंछो। एक को नाम सुनी बेर दोसरो भारी रीस को जलछौ। एक का घर है दोसरो का घर बार वर्ष का बाटा दुर छौ।

(ग) शोर की बोली—कै बखत में द्वी बड़ा जोधा छया। एक पूर्व का कोन में, दुसरो पच्छिम का कोन में रौंछयो। एक को नाम सुनि बेर दुसरो जलछयो। एक को घर दुसरा का घर बटि १२ वर्ष को बाटो छयो।

(घ) पाली पछाउँ की बोली—क्वै दिना में द्वी गाहिन पैक छिया। येक पूर्व का कूणा में रहँ छियो। दूसर पच्छिम का कूणा में रहँ छियो। येक येवक नँ सुणि बेर जल छियो, येक्क ध्याल दुहर क ध्याल है बेर बार वर्ष क बाट में छि।

(ङ) जोहार की बोली—क्वै दिनन या द्वी बड़ा हामदार भअड़ छिया। एक पूर्व का क्वाणा मा दुहरी पछिम का क्वाणा भा रौंथी। एक क नौ सुणि बेर दुहरो जलंथी। हौर एक क कुड़ो बटि दुहरा कौ कुड़ौ बार वर्ष टार थी।

[१] अलमोड़ा शहर और उसके आसपास के गाँवों की बोली

(च) दानपुर की बोली—पैल बख्त भाई दो देखाँ भड़ छिलो। येक हाड़ि पुर्व दिशाक छौड़ मा, दुसरो पछिमाक दिशाक छौड़ मा रोमिलो। याकाक नाम सुण वेर लों दुसरो आ भै लागि जानि हाड़ि। याकाक घर लौ दुसराक घर बटी बार वर्षक बाटो छिलो।

(छ) अल्मोड़ा के शिल्पकारों की बोली—कै जमाना माजी दुई नामबर पैक जनूँ थीणी भड़ कौनी छिया। एक पूर्व दिशा का कूणा माजी, दुहरौ पश्चिम दिशा का कूणा माजी रौंछियो। एक को नाम सुणी बेर दुहरो रीश का मारा जलन छियो। एक को घर बटी दुहरा को घर बार वर्ष का बाटा दूर माजी छियौ।

(२) नैनीताल जिला—

(क) भाबर कुमाऊँ की बोली—यक तकम् द्वी बरख्यात पेक छिय। यक पूरब का कुंनम्, दूसरो पछिम का कुंनम् रन् छिया। यक को नौ सुनी दूसरी जली पाकी रन् छियो। यक का घर है दूसरो को कुड़ो बार वर्ष को बाटो छियौ।

(ख) बोग्सा बोली—किशही जबानी मैं दो याशाहर पैक अयानी बीर थे। येक पूरब दिशा के कोने में, दुसरा पछम दिसा के कोने में रहहो। येकौ नाम सुन कर दूसर जर हौ येक के घर से दुसरे का घर बार बरस राहौ दुरे पर था।

(ग) थारू बोली—एक समय में दो नामी देवता हैं। एक अगार की दिशा के कोने में राहत हो और एक पछार की दिशा के कोने में राहत हो। एक को नाम सुनकर दूसरो गुसा है जात राहै। एक के घर से दूसरे को घर बार वर्ष की राह में हो।

बोग्सा और थारू बोलियों का संबंध कुमाऊँनी से नहीं है।

(३) तुलना—

कुमाऊँ के समीपवर्ती पहाड़ी भागों की बोलियों से यदि हम कुमाऊँनी की तुलना करें, तो यही बात गोरखाली, डोटियाली और गढ़वाली में निम्नांकित प्रकार से कही जायगी :

(१) गोरखाली बोली—कुनै समय मा दुइ बलिया जोद्धा थिए। एउटा पूर्व दिशा मा, अर्को पश्चिम दिशा मा रहन्थ्ये। एउटा को नाऊँ सुनी अर्को रीस गरथ्यो। एउटा को घर अर्को को घर बाट बार वर्ष मा पुगथ्यो।

(२) डोटियाली बोली—कोई एक जुग भई दुये पैकेला नाऊँ चल्याका थ्या। एक पूरुब दिशा का कोना थ्यो। दूसरो पैक्यालो पश्चिम दिशा का कोना माँ रहंथ्यो। एक का नाऊँ सुनी बेर दूसरो बहुतै रीस अरनथ्यो क्या। एक को घर है बेर दूसरो को घर बार बरस को बाटो थ्यो क्या।

(३) श्रीनगर की गढ़वाली बोली—पहला जमाना मा द्वि नामी वीर छ्या। एक पूर्व का दिशा का कोणा, दुसरो पश्चिम दिशा का कोणा माँ रहयो छ्यो। एक को नाम सूणीक दुसरो जलदो छ्यो। एक को घर दुसरा का घर से बारा वर्ष को बाटो छ्यो।

(४) लोहबा गढ़वाल, परगना चाँदपुर की बोली—कै जमाना मा दुई आदमि बड़ा नामि भड़ छ्या। येक पूर्व दिशा का कोणा मा रनछ्यो, दोशरो पश्चिम दिशा का कोणा मा रनछ्यो। येका कौ नौं सुणि किन दोशरो जलछ्यो। येका डेरा ते, दोशरो डेरो बार बरश का रास्ता छ्यो।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कूर्मांचल के विभिन्न भागों में कुमाऊँनी की अनेक उपभाषाएँ हैं और यह भी स्पष्ट है कि निकटवर्ती पहाड़ी भागों में प्रचलित बोलियों से भी वे संबंधित हैं।

(४) लोकसाहित्य—

कुमाऊँनी लोकसाहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्य में (१) लोककथाएँ, (२) लोकोक्तियाँ, मुहावरे आदि तथा पद्य में (१) पँवाड़े (लोकगाथाएँ) और (२) लोकगीत हैं।

२. गद्य

(१) लोककथाएँ—कुमाऊँ के लोकसाहित्य में लोककथाओं का एक विशिष्ट स्थान है। इन लोककथाओं की परिधि अत्यंत विशाल है। जीवन के सभी पहलुओं को लेकर ये कथाएँ बनी हैं। अधिकतर लोककथाएँ उपदेशात्मक हैं। कथाओं की विषयसामग्री चूहे और बिल्ली जैसे छोटे जीवजंतुओं से लेकर सृष्टि के निर्माण जैसे गंभीर विषयों तक विस्तृत है। भिन्न भिन्न समस्याओं तथा भिन्न भिन्न अवसरों के लिये भिन्न भिन्न लोककथाएँ हैं। नीचे एक प्रसिद्ध लोककथा दी जाती है :

सृष्टि कि काथ्—पैंली न यो पृथ्वी छी, न आकाश छी पाणि लै नि छी। एकलै निरंकार गुरु छी। एक दिन गुरुल् आपुणो डेंण आँङ कें मल्। पसिणौंकि एक बूँद टपकि। भिं छुटते हि उ उसिणौंकि बूँद एक मादिन बाज में बदलि गे। गुरुल् फिरि आपुणो बौं आङमल्। फिरि एक बूँद पसिणौंकि टपकि, और उ नर बाज बणि गे। यो ढडैल् मादिन बाज नर बाग है थ्वाड़ ठुलि जाग में न्हैगे। पैंली पैद हुणाक् वील वीकि जाग् मणी उँचि जसि हैं गे। मादिन बाजौक् नाम सोनि गरुड़ि और नर बाजौक् नाम ब्रह्म गरुड़ पड़। आब गुरु थ्वाड् आश्चर्य में जास् पड़िगे। किलैकि, उनैल् सोचि राखि छी कि उँ मैंसनैकि सृष्टि कराल् जो उनरि सेवा करन्, पर वाँ गरुड़ जै जन्मि गे।

गरुड़ पैंली पुरुष दिश उड्याँणि गे। वाँ बटि उत्तर दिशक् चक्कर मारि बेर सोनि गरुड़िक् दगाड् था करण हुँ लौटि ऐ। सोनि बलाणि 'भुली त्वेकें और मैं कें एके गरुल् पैद करि राखौ। हमरो आपस में कसिक व्या है सकनेर भै?' सोनि मनै मन बड़ि इतराणि फैरि, और ब्रह्म थें वील कूँण निंकूँगा लै कै दी। ब्रह्म गरुड़ बिचार् डाड़ मारण फैट।

गरुड़ कें डाड़ मारण देखि बेर सोनि कें लै बड़ो नको जसो लाग्। गरुड़ाक् आँखन् बटि झड़ी हुई आँसुन कें उ पिनी गे। उँ आँसुकि बूँद गरुड़िक गर्भ में न्हैगे। उ गर्भवती है गे। आब उ के करंछी। ब्रह्म गरुड़ाक् पास गे और वीथें एक घोल माडण फैटि। वीकि दुर्वीश् देखि बेर ब्रह्म बलाण 'न धरती छ्, न पाणी छ्।' व्यार् लिजी घोल काँ बणूँ मैं? आब म्यारै पाँखन् में बैठि बेर अंड दी दै' सोनिल जवाब दी—'गरुड़, तुम विष्णु भगवानाक् वाहन छौ। तुमार् पाँखन् में म्यार् अंड दिणैले तुम अपवित्र है जाला।' गरुड़िक उ अंड छुटि गे और वीक टुकड़ है गे। तलियौक् आदुक् हिस्स धरती बणिगे और मलियौक् आकाश। अंडौक् सेत हिस्स समुद्र बणि गे और बाँकि यो भूमि बणिगे। यसिक निरंकार गुरुले यो सृष्टि बणै।

कुमाऊँ की लोककथाओं में आछरियों (परियों) की भी अनेक कथाएँ हैं। इनका निवासस्थान हिमालय है। ये ऊँचे पर्वतशिखरों से विचरण करने आया करती हैं। ये इंद्र के दरबार में नृत्य करती हैं, अत्यंत सुंदर हैं, जल क्रीड़ा से उन्हें बहुत प्रेम है। ये ऊँचे ऊँचे पहाड़ों में खिलनेवाले रंग बिरंगे पुष्पों को एकत्रित करती हैं। मृत्युलोक से सुंदर और वीर युवाओं को ये अपने निवासस्थान में उठा ले जाती हैं। अनेक लोककथाएँ केवल इसी विषय को लेकर हैं कि किस प्रकार एक युवा वीर को ये आछरियाँ उठा ले गईं और फिर किस प्रकार वह उनके चंगुल से मुक्त हुआ। उदाहरणार्थ 'सुरजू कुँवारियों की कथा' है। सुरजू लंका के राजा रावण की कन्याएँ थीं जिन्हें रावण ने शिव को चढ़ा दिया था। तभी से ये हिमालय के पहाड़ों में विचरण करती हैं। कुछ लोककथाओं में इन्हें भगवान् श्रीकृष्ण की गोपियाँ भी कहा गया है।

सामाजिक विषयवस्तुओं को लेकर भी अनेक लोककथाएँ कुमाऊँ में प्रचलित हैं, जैसे—(१) माछी राजा की कथा—साससुर के अत्याचारों से पीड़ित एक स्त्री डूबकर मरने पर माछी राजा (मछलियों के राजा) के पास चली जाती है। (२) 'जूँ हो' चिड़िया की कथा में एक लड़की पहाड़ों से दूर मैदानों में कहीं ब्याह दी गई है। ग्रीष्म ऋतु में वह मायके लौटना चाहती है, पर उसकी सास उसे नहीं जाने देती। मायके के लिये वह अपनी सास से पूछती है—'जूँ हो' (जाऊँ)? सास जवाब देती है—'भोली जाणा' (कल जाना)। वह और सह न सकी, एक दिन वहीं धरती पर गिर पड़ी और उसके प्राणपखेरू उड़ गए।

लोग उठाने गए, तो वह एक चिड़िया बन गई और 'जूँ हो, जूँ हो' गाने लगी। तब से हर ग्रीष्म ऋतु के आगमन के समय वह चिड़िया पहाड़ों में आ 'जूँ हो, जूँ हो' गाती है।

(२) लोकोक्तियाँ—लोककथाओं की तरह ही लोकोक्तियाँ भी प्रायः प्रत्येक विषय पर उपलब्ध हैं। कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जो कुमाऊँ के बाहर भी प्रचलित हैं, पर कुमाऊँनी भाषा में होने के कारण उनका रूप कुछ बदल गया है, जैसे—'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली' की जगह कुमाऊँ में 'काँ राजै कि राणि, काँ भगतुवै कि काँणि' कहावत प्रचलित है। 'सावन सूखा न भादों हरा', यहाँ पर 'सौंण सूखो न भादो हरो' हो गया है। इसी प्रकार अन्य कई कहावतें हैं जो दूसरी बोलियों और कुमाऊँनी दोनों में प्रचलित हैं।

कुछ प्रसिद्ध कहावतें इस प्रकार हैं :

(१) चोर जै मोर मारनात,
भाबर रीतो है जान[1]**।**

(यदि चोरों से मोर मरते, तो भाबर के जंगल खाली हो जाते; अर्थात् यदि मूर्ख ही सब कार्य कर लेते तो फिर चतुर व्यक्तियों को कौन पूछता ?)

(२) बान बानै बल्द हराणा।

(खेत जोतते जोतते बैल खो गया। यह कहावत उस समय लागू होती है जब कोई व्यक्ति अपने उसी औजार को ढूँढ़ने लगता है, जिससे वह काम कर रहा हो।)

(३) मरि स्यापाक आँख खचोरण।

(मरे हुए सर्प की आँखों को छेड़ना। उस अवस्था के लिये प्रयोग में आती है जब स्वयं सताए हुए को कोई फिर सताता है।)

खेती से संबंधित एक कहावत है :

(४) धान पधान, मडुवा राजा, ग्यूँ गुलाम।

(धान गाँव का मुखिया, मँडुवा राजा और गेहूँ गुलाम है। यह कहावत गाँव की आर्थिक दशा का परिचय देती है। चावल को बेचकर मुखिया को लगान देना पड़ता है, गेहूँ सरकारी अफसरों को खुश करने के काम आता है। केवल मँडुवा से ही एक किसान अपने परिवार का भरण पोषण करता है।)

(५) ऐसी ही एक दूसरी कहावत है :

'बरखे हयूँ, को सँभाल ग्यूँ ?'

(यदि बरफ गिरे तो गेहूँ कौन सँभाल सकेगा ? अर्थात् गेहूँ इतना अधिक पैदा होगा ।)

शक्तिशाली मनुष्य को कोई नहीं दबा सकता । इस बात पर कहावत है : 'बलिया देखि भूत भाजौ' अर्थात् बली को देखकर भूत भी भागता है ।

परखे हुए मनुष्य को लेकर भी कई कहावतें हैं, जैसे :

(६) ताप्यूँ घाम के तापणौं, देख्यूँ भैंस के देखणौं।

(जिसने सूर्य के ताप का अनुभव किया है वह जानता है कि धूप कैसी होती है ? अर्थात् जब किसी व्यक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है, फिर उसके चरित्र की क्या छानबीन ?)

(७) गौंक लच्छण गल्याट बटि ।

(गाँव के रास्तों से ही गाँव की हालत का अंदाजा लग जाता है, अर्थात् किसी व्यक्ति के चरित्र का अनुमान आप उसके व्यवहार से कर सकते हैं ।)

(८) जब मनुष्य पर कर्ज हो जाता है तो उसकी दशा बड़ी दयनीय हो जाती है । इसी बात को एक कुमाऊँनी कहावत में व्यंगपूर्वक कहा गया है :

खाणि बखत खाप, लाल, दिणी बखत आँख लाल ।

(उधार लेकर पान खाते समय तो मुँह का रंग लाल होता है, पर पैसे देते समय आँखें क्रोध से लाल हो जाती हैं ।)

(९) इसी पर एक दूसरी कहावत है :

घोड़ो तो दिन में दौड़ों, ब्याज रात दिन दौड़ों ।

(घोड़ा तो दिन में ही दौड़ता है, पर ब्याज रात दिन दौड़ता है ।)

(१०) कुछ लोग छोटी छोटी घटनाओं में भी हमेशा कुछ न कुछ गूढ़ अर्थ ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं । ऐसे लोग बड़ी छोटी घटना में कोई भेद नहीं समझ पाते और हमेशा किसी न किसी जाल में फँसते रहते हैं । ऐसों के लिये एक लोकोक्ति है :

धरनाक दाण भितर चावलक गुह ।

(धान के अंदर चावल का एक दाना ।)

३. पद्य

(१) लोकगाथाएँ (पँवाड़े)—कुमाऊँ के लोकसाहित्य में सबसे प्रमुख स्थान लोकगाथाओं (पँवाड़ों) का है । इन गाथाओं में कुमाऊँ का इतिहास और परंपराएँ छिपी हुई हैं ।

विषयवस्तु की दृष्टि से इन गाथाओं के चार प्रमुख भेद हैं :

(१) वीरगाथाएँ
(२) प्रेमाख्यान
(३) देवी देवताओं की गाथाएँ
(४) पौराणिक गाथाएँ

(क) वीरगाथाएँ—वीरगाथाओं से कुमाऊँ का लोकसाहित्य भरा पड़ा है। इन्हें 'भड़ौ' कहा जाता है और गाथा के नायक को 'पैगे'। हर स्थान का अपना अलग 'पैगे' और उससे संबंधित भड़ौ होता है। प्राचीन काल में गाँवों के छोटे छोटे सामंत 'पैगे' अपने अपने कोटों में रहते थे। ये आपस में लड़ते रहते थे। कभी कभी राजा भी इनसे मदद लेते थे, क्योंकि ये रणविद्या में कुशल होते थे। कोट के आसपास के सभी गाँवों पर उनका प्रभुत्व रहता था। वह किसी न किसी कोट के नायक होते थे। वीरगाथाओं में से अधिकांश चंद राजाओं के काल से (सन् १५००–१७६० ई०) संबंधित हैं।

(१) सालवीर—सालवीर और उनका भाई घोघसाल झोवरी कोट के वीर थे। इसी तरह दूसरे कोटों से संबंधित दूसरे वीर थे—(१) बफौली कोट का अजुवा बफौला, (२) करैती कोट का मानसिंह करैत, (३) बौहरी कोट का रणजीत बौरा, अजीत बौरा इत्यादि। 'कोटो' के 'पैगों' के अतिरिक्त कुछ पँवाड़े कत्यूरी राजाओं के भी हैं, जिनमें कत्यूरियों की वीरता का वर्णन है, जैसे (१) राजा जगदेव पँवार[1], और (२) राजा प्रीतमदेव के पँवाड़े।

(क) **पैग सौन**—सभी पँवाड़ों में एक विशेषता यह दिखाई देती है, कि इनमें चुनौतियाँ दी जाती हैं, जिनका रूप हरेक पँवाड़े में एक सा ही मिलता है, जैसे 'पैग सौन' के पँवाड़े में उसे कालीकुमाऊँ से चुनौती मिलती है :

यो स्यरो माया, कुमूँ घर बटी, रे मरघे सौन हो।
यो त्वे हुँणो जुबाब ऐ रौछ, रे मरघे सौन हो।
यो मरघा हो लै ज्यौनी मैको तू च्येलो रे मरबे सौन हो।
यो नशी आए कुमूँ घर माँजा, वे मरघे सौन हो।
यो हौलै मरीया मै को तू च्यलो, रे मरघे सौन हो।
यो बैठी रे यै शुना का ढुंगाला, रे मरघे सौन हो॥

[1] यह पँवाड़ा ब्रज और दूसरी लोकभाषाओं में भी मिलता है।

(२) अजीत बौरा—कुमाऊँ के राजाओं को अपने शत्रुओं से बचने के लिये बहुधा इन 'पैगों' की मदद लेनी पड़ती थी। इसका वर्णन कई पँवाड़ों में है, जैसे अजीत बौरा के पँवाड़े[1] में। एक बार राजा को 'माल' (तराई का इलाका) से आकर चार पठानों ने घेर लिया और लड़ने की चुनौती देने लगे। तब राजा के मंत्री ने अजीत बौरा को पत्र लिखकर भेजा :

आब तुम आई कै समझाया, हो अजीत बौरा।
आई जैला राजा की कछुरी, हो अजीत बौरा॥
याँ तो अरेहीं चार भै पठाना, हो अजीत बौरा।
खौणा रैईन डि नका बाकरा, हो अजीत बौरा॥
बैठी बैठी खानी हंसराज बासमती, हो अजीत बौरा।
हमरो राजा आज लुटी जाँछ, हो अजीत बौरा।
राज हमरो भंग हैई जाँछ, हो अजीत बौरा॥

(३) रणजीत बौरा—जब ये 'पैग' युद्ध करते थे तो सारी पृथिवी डोलने लगती थी। एक बार रणजीत बौरा का छोटा भाई चनरी बौरा अपनी भावज द्वारा रचे हुए किसी षड्यंत्र का शिकार होकर नैनीताल पहुँचा, जहाँ उसके वंश के परम शत्रु मानसिंह और उसके भाई भी पहुँचे हुए थे। चनरी बौरा ने जब उन्हें देखा तो :

झपकना झौछ, पैगक वंशक छी ईजा।
हाथ को तस्याल चनरी बौरा,
जाणि मल्लिताल बुबा में खाले।
जाणि चलक है रौछ रे,

यारो घन घन म्यारा पैंगा जू।

नौर का बाग कमर न्हैगीं,
रतड्याली आँखी में खून सरिगो,
भौंरयाली कानी में घोड़ फुटिगो।
यसौ जो गुस को, भरीए है ग्वो रे, चनरी बौरा।
घरति में जाणि चलक उणि कै गो।

× × ×

जतुक लोग छी, सब नाक मघार पड़िगे।
कि मलिताल पं आज उघरों कुनई',

[1] यह पँवाड़ा ब्रज और दूसरी लोकभाषाओं में भी है।

भगवान् जी आज जगा जगा में सरनों।
जगा जगा में दबनों,
ऊ लै अठ्वारिक बैग छी।
चनरी बौर भगवान् ज्यू।'

(ख) लोकगाथाएँ (पँवाड़ा)—सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक जनप्रिय प्रेमाख्यान 'मालूशाही और रैंजुली' का है। दूसरा प्रसिद्ध प्रेमाख्यान 'गंगनाथ और माना' का है। पँवाड़ों (लोकगाथाओं) में ये दो प्रमुख प्रेमाख्यान हैं, जिन्हें आज भी प्रत्येक कुमाऊँनी सुनना पसंद करता है। इनमें से 'मालूशाही रैंजुली' की गाथा किसी भी अवसर पर गाई जा सकती है। पर 'गंगनाथ माना' की गाथा देवी देवताओं की गाथा का एक अंग बन गई है, क्योंकि अब गंगनाथ और माना दोनों को देवता मानकर पूजा जाता है, इसलिये इनकी पूजा के अवसर पर ही इस प्रेमाख्यान को गाते हैं।

पँवाड़े कुमाऊँनी लोकसाहित्य के अमूल्य रत्न हैं जिन्हें कुमाऊँ के ग्रामों में फैले हुए अनेक लोकनायक जाड़े की लंबी रात में अलाव के किनारे बैठकर गाकर सुनाते हैं, और लोग एकत्रित होकर उन्हें बड़ी चाव से सुनते हैं। इन पँवाड़ों की नायक नायिकाओं में से कुछ बहुत प्राचीन काल से संबंध रखती हैं, जैसे रमौले; कुछ चंद राजाओं के काल हैं, जैसे 'गंगनाथ और माना।'

(१) मालूशाही—सबसे अधिक जनप्रिय पँवाड़ा 'मालूशाही और रैंजुली' का है। इस प्रेमाख्यान का नायक कत्यूरी वंश का राजा मालूशाही और नायिका भोट देश के एक प्रसिद्ध व्यापारी शुनपति शौक की कन्या रैंजुली है।

मालूशाही परगना पालों पछाऊँ में 'बैराट' (विराट) नामक स्थान में राज्य करता था। शुनपति शौक का प्रभुत्व शौकाँण (जोहार ?) में था। वह तिब्बत (भोट) का बहुत बड़ा व्यापारी था और अपनी भेंड़, बकरियों तथा घोड़ों पर माल लादकर हर साल व्यापार करने पालीं पछाऊँ की बड़ी मंडी द्वारा हाट की ओर जाता था। उसकी एक ही संतान रैंजुली थी, जो अपने सौंदर्य और कुशाग्र बुद्धि के लिये चारो ओर प्रसिद्ध थी। पँवाड़े में उसके रूप का वर्णन है :

चैतै की कैरुवा जसी, पूसै की चागँला रैंजुली।
पुन्यू कसी चाना, जै को रूपा देखी।
चराणि गाई चरण छोड़ि दीनी, पंछी रिंङण छोड़ि दीनी।
टोड़ियाँ हलदा जसी, गीड़े की अस्याला।

रैंजुली ने अपने पिता शुनपति से प्रार्थना की कि इस वर्ष की व्यापारयात्रा में मुझे भी अपने साथ ले चलो। शुनपति ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

शुनपति की 'ढाँकुरी' (काफिला) द्वाराहाट पहुँची । शुनपति दिन भर व्यापार करता और रेंजुली भेड़ बकरियों की रखवाली करती । एक दिन मालूशाही आखेट करते हुए वहाँ पहुँचा, जहाँ एक पहाड़ी पर उसकी इष्ट देवी अग्नियारी का मंदिर था । पहाड़ी के नीचे रहप नदी बह रही थी । पहाड़ी के एक स्थान पर, ठीक नदी के ऊपर, रेंजुली बैठी भेड़ बकरियों को चरा रही थी और उसकी परछाईं नदी में पड़ रही थी । मालूशाही नदी के किनारे किनारे जा रहा था । एकाएक उसकी दृष्टि उस परछाईं पर पड़ी । उसने उस परछाईं को अपनी इष्टदेवी की परछाईं समझा :

मालू चाइमें रैगो परभू, रहप गंगे माँजा ।
पाली पंछौं की देवी, तू गंगा में लुकी रैछै ।

मालूशाही कहता गया :

सुण सुण मेरी माता, गंगा कि लैकी जे रैछै ।
बीच समुंदरे, तू किले लुकी रैछै ।
त्वी देवी कैं स्यारा, बाबू लै मानछ ।
बुबू लै मानछ, आज मेरी माता, तू किले लुकी रैछै ।
हाथ जोड़नोछ देवी, मालूशाही राजा ।
मेरी माता है जाली, तू माथी किलै ने ओनी ।

उधर रेंजुली यह सब देख रही थी । उसे मालूम नहीं था, कि यही पुरुष उसके हृदय का देवता मालूशाही है । उसने समझा, यह कोई विक्षिप्त सा व्यक्ति है, जो उसकी परछाईं नहीं समझ रहा है । उसे जोर की हँसी आ गई । यह हँसी मालूशाही के कानों में पड़ी और विस्मय से उसने उस ओर अपनी दृष्टि फेरी । दृष्टि मिलते ही एक के प्राण दूसरे के प्राणों से मिल गए । पँवाड़े में इसका वर्णन इस प्रकार है :

हँस खैंची भेर त्यरो, मालू मैं न्हैई गोछ ।
मालू को हँस खैंची भेर, त्वै मैं पड़ी गोछ छोकरयो ।
एक एका कैं चाइयें रैगो, एक एका जै चै रौछ ।
+ + + +
द्वीयै जाणी नैक रेंजुला, बैठक है गोछ रेंजुला ।

इस प्रकार उनका प्रथम मिलन हुआ और दोनों प्रेमपाश में बँध गए ।

'मालूशाही और रेंजुली' के प्रेमाख्यान में प्रेम और विरह का सुंदर और यथार्थवादी चित्रण मिलता है । उनका प्रेम सरल तथा छलकपट से मुक्त है ।

(२) गंगनाथ—एक दूसरी जनप्रिय प्रेमगाथा गंगनाथ की है। इसका नायक डोटी का राजकुमार गंगनाथ और अलमोड़ा की नायिका पट्टी सालम के अदौली गाँव की ब्राह्मणकन्या भाना जोशी है। गंगनाथ डोटी के राजा वैभवचंद का पुत्र था। डोटी राज्य काली नदी के उस पार, नेपाल और कुमाऊँ के बीच अवस्थित था।

कथा इस प्रकार है : एक रात गंगनाथ को स्वप्न में भाना दिखाई दी और उसने उसे प्रेमपाश में बँधने के लिये आमंत्रित किया। गंगनाथ उसपर मोहित हो गया। वह आधी रात के समय अपनी चारपाई पर उठ बैठा और कहने लगा : 'मेरा हृदय विचलित हो गया है, मैं डोटी का राज्य छोड़कर साधु बनूँगा :'

द भुली किलै छोड़ी त्वीलै नौ लाखै की डोटी
बुबू के रीचन छोड़ा आमा भानमती छोड़ी।
पिता विवेचन को राज छोड़ो गांगू,
माता प्योला राणी की गोद छोड़ी।
नौलाखै की डोटी छोड़ी भुलू,
बारहार की सभा छोड़ी।
तली डोटी में रूछिये,
मली डोटी की हवा खाँछिये।
तेपुरौ महल छियो तेरो,
पुरबी झरोख में बैठी रूँछिये।
चौफुली बजार में नजर नारछिये,
चौफुली बजार में भुली,
डाँगी मिरासी को नाच है रूँछियो।
क्या बाजा बाजि रौंछिया,
किले उदेख लागो।
किलै छोड़ी नौलाखे की डोटी॥
के भाना को नाम को जोगी बणी जानू।
के भाना के नाम को बैरागी बणी जानू॥

माँ पुत्र की यह दशा देखकर चिंतित हो उठी और उससे कारण पूछने लगी। वह पहले तो शर्माया, पर माँ के आग्रह करने पर बताने लगा :

भाना को नामा को ईजू जोगी बणी जानू,
भाना को नामा को ईजू बैरागी बणी जानू।

नौ लाखे की डोटी आग लागी माँग फुलिज,
तिरिया दोच्छाई को मुख देखूँलो ।
आता प्योला राणी गांगू, ढवा ढवा रूबींछ । ··· इत्यादि

(३) सिदुवा विदुवा (रमौला)—सिदुवा और विदुवा कुमाऊँ के अत्यंत जनप्रिय नायक हैं । इनकी वीरता के गीत पँवाड़ों में गाए जाते हैं जिन्हें 'रमौले' कहते हैं । इन्हें महाभारत काव्य का नायक भी कहा जा सकता है, क्योंकि पँवाड़े में इन्हें श्रीकृष्ण का अनुज बताया गया है । इनके कई कार्य द्वारिका में राज्य करनेवाले श्रीकृष्ण से संबंधित हैं । पँवाड़े के कुछ गायक इन्हें श्रीकृष्ण का अनुज न बताकर बहनोई या दामाद भी बतलाते हैं—सिदुवा से श्रीकृष्ण की छोटी बहन बिजौरा ब्याही थी ।

कुमाऊँ के प्रमुख व्यापारी होने के कारण इनका जीवन व्यापार में ही अधिक बीता करता था । इनके पास लाखों भेड़ बकरियाँ थीं, जिन्हें यह चरागाहों में ले जाते थे । इनका जीवन तरह तरह की विचित्र घटनाओं से परिपूर्ण है । इनके मुख्य अस्त्र वाद्ययंत्र थे, जिनमें बाँसुरी और डंगर (डमरू) मुख्य थे । इन्हें बजाकर ये जिसे चाहते, उसे वश में कर लेते थे । जब वन में वाद्ययंत्रों को बजाते, तो इंद्रलोक की अप्सराएँ भी मोहित होकर मृत्युलोक में उतर आतीं और इनके संगीत की लय में नृत्य करने लगती थीं । एक स्थान पर इसका वर्णन इस प्रकार है :

द्वी भाई रमौला, सिदुवा बिदुवा ।
उदासी मुरुली, बजौण फैगया ।
विद्धौशी डंगर, बजौण फैगया ।
वंशी को शबद, इंद्रलोक माजा ।
इनरा परिया, बटीण फैगया ।
टिकुली बिंदुली, पेरण फैगया ।
सिंदूरी गाजल, झलकण फैगया ।
काँसासुरी थाल, बाजण फैगया ।
चूड़ी को छौंणाट, सुणिण फैगोछ ।
न्योई को शबद, सुणीण फैगोछ ।
नद्दों को डंगर, बाजण फैगोछ ।

रमौलों की बाँसुरी में इतनी मनमोहनी शक्ति थी कि एक बार इंद्रलोक की इन नर्तकियों ने मोहित हो सिदुवा के प्राण को खींचकर सिंदूर की डिबिया में बंद कर दिया और उसे अपने लोक में उठा ले गईं, ताकि सदा वे उसकी बाँसुरी की धुन पर नृत्य किया करें । बड़ी कठिनाई के बाद स्वयं श्रीकृष्ण के प्रयत्न से सिदुवा के प्राण वापस लौटाए जा सके ।

(४) सालवीर—सालवीर एक प्रसिद्ध पैग (योद्धा) था, जो अपने प्रिय भाई घोघसाल के साथ झाँवरी कोट में रहता था। दोनों भाइयों की वीरता की प्रसिद्धि केवल कुमाऊँ तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि दिल्ली दरबार तक भी पहुँच गई थी :

उनकी वीरता की खबर सुनकर एक दिन दिल्ली की एक तरुणी, जिसका नाम रौतेली रुना था, उनके घर पहुँची। उस समय दोनों भाई सो रहे थे। वह उनकी चारपाई के पास गई और बिना जगाए उन्हें चुनौती देने लगी :

अब होलो जागुली धुरा, हो ओ सालवीर।
अब होलो जागुली लचुएँण, हो ओ सालवीर॥
भड़ रे तैकड़ीं साँधले, हो ओ सालवीर।
भड़ रे स्यारा धोखा आये हो, ओ सालवीर॥
होलो भड़ गाँजई धुरा को हो ओ सालवीर।
अब होलो तो गाँजा केसर, हो ओ सालवीर॥
अब भड़ तैकणी साधले, हो ओ सालवीर।
तब भड़ स्यारा धोखा आये, हो ओ सालवीर॥
अब भड़ तौ कुनई खेत, हो ओ सालवीर।
अब होला बारबीसी भराए, हो ओ सालवीर॥
अब भड़ा तनन साधले, हो ओ सालवीर।
तब आये दिली दरखना, हो ओ सालवीर॥
अब होलो सात शैली पार, हो ओ सालवीर।
अब होलो सुनुवा कठैत, हो ओ सालवीर॥
अब भड़ा तैकणी साधले, हो ओ सालवीर।
तब भड़ा स्यारा धोखा आये, हो ओ सालवीर॥

(ग) स्थानीय देवी देवताओं की गाथाएँ

कुमाऊँ में अनेक ऐसे देवीदेवता और भूतप्रेत पूजे जाते हैं, जिनका क्षेत्र केवल कुमाऊँ तक ही सीमित है। इनकी गाथाओं को 'जागर' कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि इन गाथाओं का लोकसाहित्य में कोई स्थान नहीं, क्योंकि इनमें अंधविश्वास के सिवाय और कुछ नहीं है। पर यह मत गलत है, क्योंकि ये देवीदेवता और भूतप्रेत अधिकतर ऐसे चरित्र हैं, जो समाज के अत्याचारों से किसी न किसी तरह पीड़ित हुए और मृत्यु के बाद भूत बनकर लोगों को सताने लगे। जब इनका आतंक बढ़ा, तो इनकी पूजा की जाने लगी और इनकी तृप्ति के लिये भेंट दी जाने लगी। कई स्थानों में इनके मंदिर बन गए और इन्हें दूसरे पौराणिक

देवीदेवताओं की तरह पूजा जाने लगा। ऐसे चरित्रों की संख्या बहुत अधिक है। इनमें से अधिकांश का क्षेत्र बहुत सीमित है, पर कुछ अधिक प्रसिद्ध हैं और उनका क्षेत्र भी बड़ा है, जैसे :

(१) सत्यनाथ, (२) भोलानाथ, (३) गंगनाथ, (४) मसान, (५) ग्वाल्ल, (६) सैम, (७) ऐड़ी, (८) फल विष्ट, (९) चौमू, (१०) हरु।

(घ) पौराणिक गाथाएँ

स्थानीय देवी देवताओं और भूत प्रेतों के अतिरिक्त रामायण और महाभारत की अनेक कथाएँ भी कुमाऊँनी लोकसाहित्य में विद्यमान हैं :

(१) नंदादेवी[1]—पौराणिक गाथाओं में सबसे प्रसिद्ध नंदादेवी जागर है। इस गाथा में सृष्टि की उत्पत्ति की सारी कथा कही जाती है। जैसे :

सालो हो भूमि हो सों सों कार,
साली हो भूमि हो जल्लोकार।
जल्लो हो कारो हो सों सों कार,
सों सों हो कारो हो घों घों कार।
जल्ला हो माँजा हो गाजा जनम,
गाजा हो माँजा हो नला जनम।
नला हो माँजा हो गाजा जनम,
गाजा हो पारा हो टुका जनम।
टुका हो पारा हो फूला जनम,
फूला हो पारा हो फला जनम।

× × ×

फला हो माँह हो पुरा ह्वै गया,
तहाँ जनम रगत को ढिन।

इस गाथा में सभी जीव जंतुओं, सूर्य, चंद्रमा, नदी, पहाड़ों के बनने की कहानी कही जाती है।

इस गाथा का दूसरा भाग कुमाऊँ के इतिहास से संबद्ध है।

[1] हिमालय की पुत्री पार्वती अपने मातृगृह में ननद (ननांदा) हैं, वही नंदा बन गया। नंदादेवी का निवास उन्हीं के नाम की चोटी पर है जो आज भारत का सबसे बड़ा पर्वतशिखर है।

(२) लोकगीत—कुमाऊँनी लोकसाहित्य का एक प्रमुख रूप कुमाऊँ के लोकगीत हैं, जिनके निम्नलिखित मुख्य भेद हैं :

(१) श्रमगीत,
(२) ऋतुगीत,
(३) मेले के गीत,
(४) उत्सवों के गीत,
(५) संस्कारगीत,
(६) न्योलीगीत (वनों के गीत),
(७) बैर
(८) विविध गीत

(क) श्रमगीत—कुमाऊँ में श्रमगीतों को 'हुड़किया बोल' कहा जाता है। ये धान की पौद लगाते (रोपाई के) समय और मडुवा के खेत गोड़ते समय गाए जाते हैं। इनके गाने के बाद 'पैग' का गीत गाया जाता है, ताकि काम करनेवालों को थकान न मालूम हो और गीत की जोशीली धुन और लय के साथ काम करने से काम भी अधिक किया जा सके।

इन गीतों में भूमि के देवता और धरती माता की आराधना की जाती है। साथ में देवी देवताओं से भी प्रार्थना की जाती है कि वे वरदायक, सुफलदायक हों, उनके खेतों में अधिक अन्न उपजे और वे दान धर्म में उसे लगा सकें और साधु संतों की सेवा कर सकें :

**अब देवा वरदेणा ह्वै जाए, हो ओ भुम्याल देवो।
अब देवा तुमी सेवा दिया विदा, हो ओ भुम्याल देवो॥
अब देवा वरदेणा ह्वै जाए, हो ओ भुम्याल देवो।
अब देवा खोई को गणेश, हो ओ गणेण देवा॥
अब देवा मोरी को नरेण, हो ओ नरेण देवा।
अब देवा वरदेणा ह्वै जाए, हो ओ वासुकी नागा॥
अब देवा वरदेणा ह्वै जाए, हो ओ सरगा इनरा।
अब देवा वरदेणा ह्वै जाए बागेसर, रे बागनाथा॥
अब देवा तुमन चढूँओ, रे सुना को कलस।
अब देवा वरदेणा ह्वै जाए, हो काना को कासिला॥**

(ख) ऋतुगीत—ऋतुगीतों में (क) वसंतगीत, (ख) रितुरेण, (ग) बारामाशी प्रधान हैं। ये गीत चैत्र में गाए जाते हैं। प्रत्येक नव वर्ष के आगमन की सूचना हुड़कीवादकों के मधुर कंठ से निकले हुए इन गीतों

के 'बोलों' से मिलती है, जिन्हें वे घर घर जाकर सुनाते हैं और बदले में कुछ 'इनाम' पाते हैं।

(१) वसंतगीत—वसंतगीतों में वसंत का स्वागत करते हुए कुछ ऐसे प्रश्न किए जाते हैं जो मौलिक हैं :

कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ मनमा, रे हाँ ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ सुक्यालो संसार, हाँ ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ दिन को सुरिजा, रे हाँ ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ रात को चनरमा, रे हाँ ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ भूमि को भुम्यालो, रे हाँ ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ खोली को गनेश, रे हाँ ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ भोरी को नेरेण, रे हाँ ?
ओ नारी, सुण रे हाँ,
रितु बसंता नारी खेलिले फाग।
रँगीलो पिड लो भँवरा खेलिले फाग।

(२) रितुरैण—रितुरैण गीत 'भेंटौली' प्रथा से संबंधित है। इस प्रथा के अनुसार चैत्र मास में भाई अपनी बहिन से भेंट करने जाता है और उसे वस्त्र, पूड़ी पकवान, मिठाई इत्यादि का उपहार देता है। जो बहिनें दूर ब्याही होती हैं, वे भाई द्वारा भेजी गई इस भेंट की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं। नजदीक ब्याही हुई बहनों को मायके ही बुला लिया जाता है। जिनका कोई भाई नहीं होता, उन्हें रह रहकर मायके की याद हो आती है और वे इस ऋतु में अत्यधिक उदास हो जाती हैं। बहिन को ऋतु के आगमन की सूचना वसंत ऋतु में गानेवाले पक्षियों, जैसे कोयल, न्यौली, कफुवा इत्यादि से मिलती है और वह भाई की प्रतीक्षा में बेचैन हो जाती है :

काली बाँशा केलड़ी, न्योलड़ी बाँशैली वे।
अच्छा गोरी रणमणी ऋतु भया वे ॥
बाँश माया कफुवा ओ मैती का देशा वे।
ईंजु मेरी सुणैली, भेटोई लगाली वे ॥
देराणी जेठाणी को आलीवाला एजींला वे।
मेरा भैले वे क्या ऐबेर लैछ वे ॥

एक गीत में सादो नामक एक भाई की कथा आती है जो अपनी ब्याही हुई बड़ी बहिन से मिलने पहली बार जाता है। जब वह गोद का बालक था तभी उसकी बहिन की शादी हो गई थी। तब से वह अपनी ससुराल में ही रही, एक बार भी मायके लौटकर नहीं आ पाई। बड़ी कठिनाई से वह अपनी बहिन की ससुराल

पहुँचता है। भाई बहिन एक दूसरे से लिपटकर खूब रोते हैं। गीत केवल इतनी ही बात कहकर समाप्त हो जाता है। पर, कहा जाता है, जब भाई ने बहिन को मायके ले जाने की बात की, तो उसकी बहिन के ससुरालवालों ने दोनों को जहर देकर मार डाला। यह अंश गीत में नहीं आता। गीत के अंत में गानेवाला हुड़-किया श्रोताओं को आशीर्वाद देता है :

रितु एगी हेरी फेरी यो गरमा रितु।
गरीया मनखा पलटी नी औना॥
ज्यूना भागी जियली नौ रितु सुणला।
मरीयो मनखा पलटी नी औना॥
ज्यूना भागी जियला नौ रितु सुणला।
यो दिना यो मासा जुग जुग भेठिया॥

(ग) बारामासी—बारामासी गीत भी हुड़कियों द्वारा गाया जाता है। इस गीत में वर्ष के बारहो महीनों की विशेषता बताई गई है। एक गीत इस प्रकार है :

फुलैवो बिंदिया फुलै बुरूँशी।
सबै फूला फूलीगो चैतोई मासा॥
बैसाख मासा भुँवापनि बाता।
सिरै को अँचला उड़ि उड़ि जालो॥
जेठई मासा तपकी गे धूपा।
हुरुकै दे बिजना ठंडी सरूपा॥
असाड़ै धरतरी किरिले सिंगारा।
गिरादिमा ऐगो मेघ बहारा॥
सावन मासा गरजी गोयो मेघ।
बरसना लागा सागरे तो ला॥
भादोई भवन भयो घनघोरा।
पिहु पिहु बोले बनका ई मोरा॥
असोज मासा कुँवार कवायो।
पंचनामा देवा करीलो औतारा॥
कातिक मासा अघनी कवाई।
घर घर दीपक जगै दिवाई॥
मँगशीर मासा शितमा रितु आई।
सौड़ सवेद को सेज बनायो॥
पुसैई मासा पड़लो तुस्यारो।

हियड़ो कँपलो अगनी अपारा ॥
आघई मासा घरमा रितु आई ।
घीऊँ खिचड़ी ले बरमा जिवाया ॥
फागुना मासा बादी गई चीरा ।
चोया चांदनी को पैरी ले अबीरा ॥

(३) **मेला गीत**—कुमाऊँ अपने मेलों और उत्सवों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ हर मौसम में कहीं न कहीं कोई मेला अवश्य लगता है। कुछ मेले बड़े होते हैं जिनमें दूर दूर के लोग एकत्रित होते हैं। कुछ धार्मिक महत्व के हैं, कुछ व्यापारिक महत्व के और कुछ दोनों के लिये। प्रसिद्ध मेले ये हैं—(१) बागेश्वर में उत्तरायणी का मेला, (२) अल्मोड़ा में नंदादेवी का मेला, (३) अस्कोट में जौंतजीवी का मेला, (४) द्वाराहाट में शोभनाथ बमौरी तथा श्यालवे बिखौत का मेला, (५) कत्यूर में कोट का मेला, (६) काली कुमाऊँ में देवी-धूरा का मेला, (७) नैनीताल में नंदादेवी का मेला, (८) काशीपुर में चैती का मेला। ये सभी मेले कूर्मांचल के ग्रामवासियों को किसी एक स्थान पर एकत्रित होने का अवसर देते हैं, जहाँ स्वच्छ वस्त्रों और सुंदर आभूषणों से सज्जित होकर स्त्री पुरुष, बाल वृद्ध और युवक विविध नृत्यों और गीतों से आमोद प्रमोद करते हैं। ग्रामीण जनता के लिये इन मेलों का सांस्कृतिक महत्व होता है। इन मेलों को कुमाऊँनी भाषा में 'कौतिक' (कौतुक) कहा जाता है और मेले में सज धजकर जानेवालों को 'कौतिकार'। मेलों में वैसे सभी प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं, पर प्रमुख निम्नलिखित हैं :

(क) छपेली, (ख) झोड़ा, (ग) चाँचरी, (च) बैर अथवा भग-नौला। छपेली, झोड़ा और चाँचरी कुमाऊँ के प्रसिद्ध नृत्य भी हैं।

(क) **छपेली**—छपेली गीत शृंगार-रस-प्रधान होते हैं। अपनी द्रुत लय के कारण ये गीत अधिक आकर्षक होते हैं। इन गीतों को हुड़क, मजीरे और बाँसुरी पर गाया जाता है तथा साथ में नृत्य भी होता है।

छपेली गीत को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) टेक, जिसे 'ध्रुव' कहते हैं और (२) जोड़। 'ध्रुव' की पंक्तियों से ही छपेली गीत का परिचय मिलता है और 'जोड़ों' के माध्यम से गीत को विकसित किया जाता है। 'ध्रुव' सामूहिक रूप में गाया जाता है और 'जोड़' एक ही व्यक्ति गाता है। 'जोड़' के पद पहले से निश्चित नहीं रहते, वे तुरंत बनाए जाते हैं। जोड़ की केवल अंतिम पंक्ति ही सार्थक होती है, बाकी पंक्तियाँ केवल तुक मिलाने के लिये होती हैं। 'जोड़' की अंतिम पंक्ति को ध्रुव के साथ मिला दिया जाता है। इस प्रकार छपेली गीत चलता रहता है। किसी भी विषयवस्तु पर छपेली गीत बनाए जा सकते हैं, पर

अधिकतर इनमें सौंदर्यवर्णन रहता है। हास्य का पुट देकर इन्हें मेले के वातावरण के अनुकूल बना लिया जाता है। प्रेम और विरह पर, राजनीति पर, सामाजिक परिवर्तनों पर, सभी पर 'जोड़' बनते रहते हैं और 'ध्रुव' की पंक्तियों के साथ उन्हें लोकगायक बड़ी चतुराई से पिरोता रहता है। 'जोड़ों' में, जिसे 'जोड़ मारना' कहते हैं, कभी कभी बड़ी चुभती हुई बातें भी गायक कहता है। एक छपेली गीत के कुछ अंश इस प्रकार है :

ध्रुव—ओ बाना पनुली चखोरा, तीलै धारो बोला।
ओ लौंडा शेरुवा पधाना, तीलै धारो बोला॥

जोड़— बाकरे की शाँकी।
तराजू में तोली लहीनूँ।
केकी माया बाँकी।

ध्रुव—ओ बाना चखोरा पनुली, कैकी माया बाँकी।
ओ लौंडा शेरुवा पधाना, कैकी माया बाँकी॥
ओ बाना चखोरा पनुली, तिलै धारो बोला।
ओ लौंडा शेरुवा पधाना, तिलै धारो बोला॥

जोड़— झुँगुरै की घाँणा,
मैं कणी खै घलो,
तेरो ठीक ठाँणा।

ध्रुव—ओ बाना चखोरा पनुली, तेरो ठीक ठाँण।
ओ लौंडा शेरुवा पधाना, तेरो ठीक ठाँण॥
ओ बाना चखोरा पनुली, तिलै धारो बोला।
ओ लौंडा शेरुवा पधाना, तिलै धारो बोला॥

जोड़— जुनलिया घोघी।
दिए खांणों को मुख न्हैती।
पिरिमा को भोगी।

ध्रुव—ओ बाना चखोरा पनुली, पिरिमा को भोगी।
औ लौंडा शेरुवा पधाना, पिरिमा को भोगी॥
ओ बाना चखोरा पनुली, तिलै धारो बोला।
ओ लौंडा शेरुवा पधाना, तिलै धारो बोला॥

ऊपर दिए हुए छपेली गीत में 'तिलै धारो बोला' का प्रयोग उचित रूप में हुआ है। पर इसका प्रयोग अब ऐसे गीतों में भी होने लगा है जिनमें नहीं होना चाहिए। 'तिलै धारो बोला' का सही अर्थ है 'तूने मुझे बोल रख लिया'। 'बोल'

का तात्पर्य कुमाऊँनी में 'श्रम' से है—अर्थात् मैं अब तेरा 'बोल' हूँ, गुलाम हूँ। 'त्वीलै' का बिगड़ा हुआ रूप 'तिलै' है और 'बोल' का 'बोला'। पर अब भाई बहिन के गीतों में भी इसे जोड़ते हैं और इसका प्रयोग केवल तुकबंदी के लिये किया जाता है।

(ख) झोड़ा[1]—झोड़ा गीत कुमाऊँ के सबसे जनप्रिय लोकगीतों में से है। वैसे, ये गीत भी नृत्य के साथ मेलों में ही गाए जाते हैं, पर विवाह इत्यादि के या किसी अन्य उत्सव के समय भी इन्हें गा सकते हैं।

छपेली गीतों की तरह इनमें भी 'ध्रुव' और 'जोड़' की पंक्तियाँ रहती हैं। पर, उन्हें अलग अलग ढंग से नहीं बल्कि एक ही चाल से कहा जाता है, जैसे :

ध्रुव—देवानी लौंढा दुरिहाटे को तिले धारो बोला।
जंतुली बौरैरौ की जैंता तूछै भली बाना॥

जोड़—तामा को अरग लौंडा तामा को अरगा।
औ नै रये जाने रये घौ कसी बरखा॥

(मिला हुआ)—घौ कसी बरखा लौंडा, घौ कसी बरखा।
देवानी लौंडा दुरि हाटे को, घो कसी बरखा॥

झोड़ा गीतों में 'जोड़' की पहली पंक्ति हमेशा निरर्थक नहीं होती। मुख्य उद्देश्य तो तुकबंदी से ही होता है, पर कभी कभी पहली पंक्ति सार्थक भी होती है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर, या अलग अलग भी, इन्हें गाते हैं। गीतों की विषय-वस्तु कुछ भी हो सकती है। प्रेम और विरह को लेकर भी कई झोड़े बने हैं। विरह पर बना हुआ एक प्रसिद्ध झोड़ा इस प्रकार है :

पारा भिड़ा को छै भागी सूर-सूर, मुरली बाजिगे।
पारा भिड़ा को छै भागी रूण-भूण, बिणुली बाजिगे।

पड़ी गौ बरफ शुवा पड़ी गो बरफ,
पंछी हुन्यूँ उड़ी ऊन्यूँ में तेरी तरफ,
भागी फूर फूर मुरली बाजिगे।

तेल बाता जली गयो, यो दिया निमाणो,
तू न्है गये परदेश मैं ले कथ जाणो,
भागी सूर सूर मुरली बाजिगे।

[1] नेपाली में भयाउरे।

प्रेम पर बने हुए एक झोड़ा गीत में प्रेमी अपनी प्रियतमा की सुंदर आँखों पर मोहित होकर उससे कहता है :

रजवारौ लै झूलो लायौ, गोरी गंगा मांजा वे।
पीतलियाँ कैंची वे।
मदुराली आँखी तेरी, मैं दि हाल पेंच वे।

'बेड़ू पाको बारा मासा' कुमाऊँ का एक प्रसिद्ध झोड़ा गीत है। पूरा गीत इस प्रकार है :

बेड़ू पाको बारा मासा, हो नरैण, काफल पाको चैत, मेरि छैला।
रूणां झूणां दिन आया, हो नरैण, पुजा मेरा मैल, मेरि छैला॥
रौ की रौतेली लै, हो नरैण, माछो मारो गीड़ा, मेरि छैला।
त्यारा खूटा कानौ बूड़ौ, हौ नरैण, प्यारा खूटा पीड़ा, मेरि छैला॥
सवाई को बोल, हो नरैण, सवाई को बाल, मेरि छैला।
मेरो हिया भरी ऑछ, हो नरैण, जसो नैनीताल, मेरि छैला॥
बाकरै की बसी, हो नरैण, बाकरै की बसी, मेरि छैला।
देखां है छै पारा डाना, हो नरैण, ब्याण तारा जसी, मेरि छैला॥
लड़ि मरी कै होलो, हो नरैण, लड़ाई छ धोखा, मेरि छैला।
हरी भरी रई चैंछ, हो नरैण, धरती की कोख, मेरि छैला॥

राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव से कई झोड़े बने। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गांधी जी के संबंध में निम्नलिखित झोड़ा प्रचलित हुआ था :

गौं गौं में खुशी का नडारा बाजा।
आब चली गौ पंचैत राजा॥
गाँधी लै आपणों मंत्र चलायो।
सितिया देश फिरी जगायो॥
बाँध बोरिया अंग्रेज भाजा।
आब चली गौ पंचैत राजा॥

(ग) **चाँचरी**[1]—हिमालय की गोद में बसे हुए कुमाऊँ के लोकजीवन की अभिव्यक्ति यदि किसी माध्यम से उभर उठती है तो वह है वृत्तनृत्य चाँचरी। जहाँ भी धरती के कुछ बेटे एकत्रित होंगे, वहाँ वृत्तनृत्य अवश्य दिखाई पड़ेगा। यह नृत्य चाँचरी गीतों के साथ हुड़ुके की लय पर होता है।

[1] हजारीबाग जिले में बिरहे को चाँचर कहते हैं; हर्ष के समय (६३० ई०) में भी चंचरी गाई जाती थी।

चाँचरी गीतों की विषयवस्तु का भी कोई बंधन नहीं है। हाँ, इन गीतों में झोड़ा और छपेली गीतों से अधिक गंभीरता होती है और संगीत की लय भी अधिक गहरी और धीमी रहती है। गाँव के सभी नर नारी मिलकर इन गीतों को गाते और नृत्य करते हैं। लोकजीवन को छूनेवाली सभी बातें इन गीतों का विषय बन जाती हैं। अल्मोड़ा जिले का दानपुर का इलाका चाँचरियों के लिये सबसे प्रसिद्ध है; वैसे, प्रत्येक भाग की चाँचरी अपनी अपनी विशेषता रखती है। दो पंक्तियों का तुक मिलाने के लिये छपेली और झोड़े की तरह चाँचरी के भी अधिकतर गीतों में 'जोड़े' मिलाए जाते हैं। इसलिये चाँचरी में भी पहिली पंक्ति असंबद्ध अथवा संबद्ध हो सकती है। चाँचरी गीत का नमूना देखिए :

तिलगा तेरि लंबी लटी, टसरौ कौ फूना।
उकालौ बज्यौण है जो, टुटी जानी घुना॥
नैणीताल तलो बङ्यालो, खोलनी कुची लै।
आवौ भैठौ तमाखू पीयौ, नी कयौ लुचीलै॥
नैणीताले की नंदादेवी, शोरै की भगवती।
मेरि माया टोड़ी गेछै, ह्वै जाये लखपती॥

(घ) बैर (भगनौला) गीत—लोकगीतों में बैर या भगनौले को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और लोकगायकों में बैर गानेवाले, जिन्हें बैरिया कहते हैं, विशेष आदर के पात्र होते हैं। इसका कारण यह नहीं है, कि बैर का संगीत तत्व बहुत अच्छा या कविता की दृष्टि से सर्वोत्तम है। सर्वप्रियता का कारण है, बैरिया की अपनी प्रतिभा। बैरिया कुमाऊँ का आशुकवि है, जिसे सभी विषयों का, विशेषकर पौराणिक कथाओं, लोककथाओं और लोकोक्तियों का, अच्छा ज्ञान रहता है। किसी भी मेले में, जहाँ दो बैरिए भी एकत्र हो जाते हैं, बैर प्रारंभ हो जाते हैं। बैर का अर्थ है युद्ध, पर यह युद्ध प्रश्नोत्तरों की होड़ तक ही सीमित रहता है। कभी कभी ये प्रश्नोत्तर कई दिनों तक चलते रहते हैं। विभिन्न विषयों को लेकर एक बैरिया प्रश्न पूछता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। काफी संख्या में जनता बैठकर बड़े चाव से उनके प्रश्नोत्तरों को सुनती है और कभी एक बैरिया की ओर, कभी दूसरे की ओर झुकती रहती है।

गाँव की जनता पर इन बैरियों की बातों का बड़ा प्रभाव है। प्रत्येक समस्या को लेकर वे बैरों में अपनी अपनी प्रतिभा दिखाते हैं। इतिहास, राजनीति, दर्शन, कर्मकांड, पुराण, सभी पर वादविवाद चलता है और सभी वर्णों के बैरिए इसमें भाग ले सकते हैं। हार जीत का कोई निश्चित मापदंड नहीं होता। श्रोताओं की प्रतिक्रिया से ही उसका अंदाज लगाया जा सकता है।

(४) **त्योहार गीत**—भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों की तरह कुमाऊँ में भी अनेक त्योहार (उत्सव) होते हैं। पर, लोकगीतों की दृष्टि से भाद्र शुक्ल पंचमी (ऋषि पंचमी) और भाद्र शुक्ल सप्तमी तथा अष्टमी को होनेवाले डोर-दूर्वा-पूजन का त्योहार महत्वपूर्ण है। इस उत्सव में स्त्रियाँ उमामहेश्वर का पूजन करती हैं और जौ, गेहूँ, सरसों, कुकुड़ी, माकुड़ी इत्यादि पेड़ों को पूजती हैं। गेहूँ और चने के दाने एक पोटली में बाँधकर पानी में भिगो रखती हैं जिन्हें बिरुड़ कहा जाता है। डोर और दूर्वा पर उस दिन स्त्रियाँ अनेक गीत गाती हैं। कुकुड़ी तथा माकुड़ी के फूलों पर भी अनेक गीत गाए जाते हैं।

डोर पर हास्यरस का पुट लिए हुए एक प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है :

दियौ दियौ महेश्वर हार डोर दियौ।
हार डोर सुहालो बैणा रुकमिणी॥
तुमन सुहालो गँवरा सिंदूरी को डाबा।
चड़कनी भड़कनी देली में भै गेन॥
काली होली गंगा जमुना स्नान कन करे।
काला होला गणपति बाला गोदी कन लेवा॥
काला होला शालिग्राम पूजा कन करे।
काली होली शरगुली दीठ कन छोड़े॥
पैरो पैरो गँवरा देवी हार डोर पैरौ।

(५) **संस्कारगीत**—संस्कारगीतों में मंगलदान, कलश-स्थापन-गीत, नवग्रह-पूजा-गीत, श्राद्धदेव गीत, मातृ-पूजा-गीत, उपनयन-संस्कार-गीत तथा विवाह-संस्कार-गीत प्रमुख हैं।

संस्कारगीतों में कुमाऊँ के बाहर की भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है, कुछ गीत तो हिंदी में भी हैं।

(क) **मंगलगीत**—प्रत्येक शुभ अवसर पर, किसी भी शुभ कार्य के पहिले जो मंगलगीत गाया जाता है, उसे शकुनाखर (शकुनाक्षर) कहते हैं। गीत इस प्रकार है :

शकुना दे, शकुना दे, काज ए अतिनीका शकुना बोल।
दाईण बाजन शंख शबद, देणीतीर भरियो कलेश।
अति नीको सो रँगीलो, पाटन आँचली, कमल को फूल।
सोई फूल मोलावंत, गणेश रामीचंद्र लछिमन।
जीवा जनम, आद्या अमरू होई, सोई पाटू पैरी रैना।
सिद्धी बुद्धी सीता देही बहूराणी, आईवंती पुत्तवंती होई।

(ख) जनेऊ—उपनयन संस्कार में भी कई गीत गाए जाते हैं। यज्ञोपवीत गले में डालते समय गाया जानेवाला गीत बहुत महत्वपूर्ण है। गीत इस प्रकार है :

रौंलिया पौंलिया मिलि बोयीछ कपास, बटू बोयी छ कपास।
देराणी जेठाणी मिलि गोड़ी छ कपास, बटू गोड़ी छ कपास॥
भाई भतीजा मिलि बोयी छ कपास, बटू बोयी छ कपास।
नँद भावज मिलि गोड़ी छ कपास, बटू टिपी छ कपास॥
उनियाँ धुनियाँ मिलि धुनी छ कपास, बटू धुनी छ कपास।
भाई भतीजा मिली काती छ कपास, बटू काती छ कपास॥
ब्राह्मण पुरोहित ले पुरी छ जनेऊ, बटू पुरी छ जनेऊ।

एक गुणी जनेउ, बटू, द्विगुणी जनेउ॥
त्रिगुणी जनेउ बटू, चारगुणी जनेउ।
पाँचगुणी जनेउ बटू, छगुणी जनेउ॥
सातगुणी जनेउ, बटू, आठ गुणी जनेउ।
नौ गुणी जनेउ बटू, नौ गुणी जनेउ॥

ऐसी करी बाला बटू रची छ जनेउ, बटू रची छ जनेउ।
तब तेरी बाला बटू रची छ जनेउ, बटू रची छ जनेउ॥

(ग) विवाहगीत—विवाहगीतों में सभी गीत बहुत सुंदर हैं और उनसे विवाह की पूरी रस्म का ज्ञान होता है।

जब बारात लड़की के दरवाजे पर पहुँचती है तो अनेक गीत गाए जाते हैं। उस समय हँसी खुशी का ही वातावरण रहता है। एक गीत में दूल्हे के पिता का उपहास करती हुई समधिन पूछती है :

छाजा में बैठी समदिणी पूछै, को होलो दुलहा को बाप ए।
कालो छ जोतो पिहली छ टाँकी, वी होलो दुलहा को बाप ए॥
स्याता लुकुड़ा लाल दुशालो, वी होलो दुलहा को बाप ए।
खोकलो बुड़ो लंबी छ दाढ़ी, वी होलो दुलहा को बाप ए॥
हस्ती चढ़े भडुवा दाम बखेरा, वी होलो दुलहा को बाप ए॥

एक विवाहगीत में आदर्श दूल्हे का वर्णन है। लड़की को तरह तरह के वरों का वर्णन सुना दिया जाता है। जिस वर को वह श्रेष्ठ समझती है, उसका वर्णन गीत में इस प्रकार है :

घर छो ठूलो बेटी, वर छ नान।
वी होलो लाड़िको कोत ए॥

हाथ छ धोती बेटी।
काखी छ पोथी॥
बैठी पुराण सुनाइये।
उस रे पंडित कें।
दियो मेरे बाबुल।
कुल तुमारो उजालिए॥

लड़की को बिदा करते समय गाए जानेवाले करुण गीत भी विवाहगीतों में प्रमुख स्थान रखते हैं। लड़की की माँ बहुत ही नम्रता से लड़की के ससुरालवालों से कहती है :

अरे अरे लोको पंडित लोको, सज्जन लोको।
मेरि धीया दुख झन दीया ए॥
दस धारी मैले दूध पेवायो।
मेरि धीया दुख झन दीया ए॥
दस तुंबा मैले तेल चुँवायो।
मेरि धीया दुख झन दीया ए॥

(६) न्योली गीत—लोकगीतों में न्योली गीतों का भी विशिष्ट स्थान है। इन्हें 'वनगीत' भी कहा जा सकता है क्योंकि वनों में घास या लकड़ी काटते या कोई और काम करते समय इन्हें गाते हैं। कुमाऊँ अपने सुंदर वनों के लिये सारे भारत में विख्यात है। वन ही कुमाऊँ की सबसे बड़ी संपत्ति है। जब लोग वनों में काम करने जाते हैं तो वे अपने को एक विचित्र निःस्तब्ध वातावरण में पाते हैं। उस निःस्तब्धता को भंग करने के लिये ऊँचे स्वर में एक पहाड़ी से कोई पुकार उठता है और दूसरी पहाड़ी पर काम करनेवाला पुरुष अथवा स्त्री उसका उत्तर देती है। सवाल जवाब ही हों, यह आवश्यक नहीं। न्योली गीतों में लंबी खींच होती है। ऐसा लगता है, मानों इनके स्वरों में कुमाऊँ के पहाड़ों की आत्मा व्याप्त हो।

ये गीत कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार से गाए जाते हैं। पर, लंबी खींच—एक ही स्वर पर काफी देर तक टिके रहना—इत्यादि गुण सभी में विद्यमान रहते हैं। इनका प्रचलन अल्मोड़ा जिले के शोर पिठौरागढ़ इलाके में अधिक है। नेपाल की सीमा से लगे हुए प्रांत में अधिकतर न्योली गीत गाए जाते हैं। डोटी के डोटियाल भी इन्हें अपनी विशेष धुन में गाते हैं।

न्योली गीतों का रूप दोहे का है, पर गाने में दूसरी पंक्ति के दूसरे भाग के साथ 'न्योली' या 'हायला' लगाकर फिर दुहराते हैं। यद्यपि कोई विशेष नियम

नहीं है, फिर भी मर्द 'न्योली' कहेंगे और स्त्रियाँ 'हायला'। प्रेम और विरह ही इनकी प्रमुख विषयवस्तु है। इन्हें बिना किसी बाजे की सहायता के गाया जाता है।

न्योली गीतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

प्रेमी प्रेमिका को संबोधित करते हुए कहता है—

भूख लागली भोरजन खाये, घाम लागलो भै जाये।
बची रौंलो भेटा होली, सुक्यारी रै जाये।
सुक्यारी रै जाये न्योली, सुक्यारी रै जाये॥

उत्तर में प्रेमिका कहती है—

वारा ऐजा सुर्ती खैजा मंडी को किराइन।
श्योल भैजा पाणी पीजा, क्वे छै नै विराइन।
क्वे छै नै विराइन 'हायला', क्वे छै नै विराइन॥

(७) बालकगीत—

(क) लोरी—कुमाऊँ के विभिन्न भागों में विभिन्न लोरियाँ प्रचलित हैं। नैनीताल जिले में चौगड़ पट्टी की एक लोरी इस प्रकार है :

भुलील्ये भुली भावा भुली ले।
पुरबि को पिंग द्यों लो।
पच्छिम की हवा, भुलि लै भावा।
तेरी ईजू पलुरिया, घास जाई रैछ।
तेरा लैजिया भावा।
चुचि भरी ल्याली, चड़ि मारी ल्याली।
चुचि खाप ले लै भावा।
चड़ी खेल लगाले, होलिले।
चुंगरो टौड़ले भावा।
खातड़ी फाड़लै।
तेरी छत्तर राजगद्दी, बड़ी गली होली ले।
कुमवी को जौव खाले, अजुवा को पानी।
गुदड़ी में सोई रैले, होली ले होली ले।

(ख) खेलगीत—बचों के खेल के गीत भी कुमाऊँ में बहुत मिलते हैं। कुछ तो गीत न होकर तुकबंदियाँ मात्र होती हैं, और उन्हें वैसे ही कहा भी जाता है, जैसे :

अरसी कसी दनियाँ, बरेली के बनियाँ

कुछ गीत ऐसे भी हैं, जिन्हें बच्चे खेलते समय गाते हैं, जैसे :

**ओ बौज्यू बानरि कैं जानू ।
बानरि खाँछ फूल फल ।
ओ बौज्यू बानरि कैं जानू ।
बानरि खोरि मखमलै टोपी ।
ओ बौज्यू बानरि कैं जानू ।**

(८) विविध गीत—ऊपर वर्णित लोकगीतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लोकगीत हैं जिन्हें हम विविध गीतों के अंतर्गत रख सकते हैं । ये गीत विषयवस्तु और रूप की दृष्टि से भी अन्य गीतों से भिन्न हैं, जैसे (१) दीपक जलाने के गीत, (२) साली जीजा के गीत, ससुर बहू के गीत, सास बहू के गीत इत्यादि ।

४. मुद्रित साहित्य

कुमाऊँनी में लिखित साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में उपलब्ध है, पर वह अधिकतर पद्य में है ।

(१) पद्य—पुराने कवियों में गुमानी और शिवदत्त सती उल्लेखनीय हैं ।

(क) गुमानी (१८०० ई०)—की अधिकांश रचनाएँ संस्कृत में हैं । पर उन्होंने नेपाली, हिंदी, उर्दू तथा कुमाऊँनी में भी लिखा है । कुमाऊँनी में रचित उपलब्ध कविताएँ यद्यपि अधिक नहीं हैं, फिर भी कुमाऊँनी के लिखित साहित्य की दृष्टि से उनका स्थान सर्वोत्तम कृतियों में है । एक प्रसिद्ध रचना में गुमानी ने गंगोली (अल्मोड़ा) के खाद्यों का उल्लेख किया है :

**केला निंबु अखोड़ दाड़िम रिखू नारिंग आदो दही ।
खासो भात जमालि को कलकलो भूना गड़ेरी गवा ।
च्यूड़ा सद्य उत्योल दूद बकलो घ्यू गाय को दाणेदार ।
खानी सुंदर मौणिया घवड़वा गंगावली रौणिया ॥**

अकाल की परिस्थिति का वर्णन देखिए :

**आटा का अनचालिया खसखसा रोटा लड़ा बाकला ।
फानो भट्ट गुरूंस ओ गहत को डुवका बिना लूण का ।
कालो शाग जिनो बिना भुटण को पिंडालु का नौल को ।
ज्यों ज्यों पेट भरी अकाल कटनी गंगावली रौणिया ॥**

हिसालू फल पर उनकी यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध है :

**हिसालु की वाण बड़ी रिसालू,
नैजीक जै बेर उद्देड़ी खाँछै,**

ये बात को कैले गटो नी मानणो,
दुध्याल की लात कौंणी पड़ंछे।

(ख) शिवदत्त सती—शिवदत्त सती गुमानी पंत के बाद हुए। कुमाऊँनी भाषा में ही उन्होंने अधिक लिखा—नेपाली में भी उनकी कुछ कृतियाँ मिलती हैं। उनकी प्रसिद्ध कृतियों के नाम इस प्रकार हैं :

(१) भाबर के गीत (कुल नौ गीत)
(२) घस्यारी नाटक (गीति नाटिका)
(३) प्रेमसागर (रुक्मिणी जी का विवाह)
(४) गोपीदेवी का गीत।

इन सबमें गोपीदेवी का गीत या गोपीगीत अधिक प्रसिद्ध और जनप्रिय है। इस गीत में सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठाई है। हिंदू समाज में एक विधवा लड़की की क्या दुर्दशा होती है, इस बात को एक ऐसी विधवा लड़की के ही मुँह से कहलवाया है जो ग्यारह मास विधवा जीवन व्यतीत कर मर जाती है और पिता को स्वप्न में आकर यह गीत सुनाती है। पिता स्वयं शिवदत्त सती हैं। उनका कहना है, उन्होंने उसी की करुण गाथा को पद्यबद्ध कर दिया। गीत के प्रत्येक बोल में नारीहृदय की वेदना और विधवा की सामाजिक स्थिति का मार्मिक विवरण मिलता है। वह कहती है, मृत्यु ही विधवा का सौभाग्य है :

फुटि गयो भाग जैको, करि गयो गलो।
विधवा चेहड़ि को बौज्यू मरणो छौ भलो।
विधवा केहड़ि घर जहर को डलो!
विधवा चेहड़ि को बौज्यू मरणो छौ भलो॥

× × × ×

कागज ल्ही बेर बौज्यू कलम दवात।
मुलुक सुणाई दिया गोपी की कवात।
योई मेरी गया कासी योई छ सराद।
पोथि वणै छपै दिया, कँ दिया खैरात।

(ग) गौरीदत्त पांडेय 'गौर्दा'—आधुनिक कवियों में 'गौर्दा' का नाम सर्वप्रथम आता है। कई साल हुए, उनकी मृत्यु हो गई। उनकी कृतियाँ अधिकतर विनोदपूर्ण हैं। सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, सभी विषयों पर उन्होंने लिखा है।

अपना परिचय स्वयं देते हुए वह कहते हैं :

गौर्दा मै खस भाषि का भगनौली कविराज।
आपूँ थें कवि कूण में वी ऊँछ बड़ि लाज।

देशप्रेम पर उनके कई गीत हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के समय उनके द्वारा रची हुई एक चाँचरी के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

आओ यारो, गांधी संग मिललो स्वराज रे।
गांधी का सिपाही बणौ वीछ सरताज रे।
चरख को तोप रे,
काती बुणी चलूँ लात,
उड़ि जाली टोप रे।

(घ) जीवित आधुनिक कवि—आधुनिक जीवित कवियों में अल्मोड़े के श्री चंदूलाल वर्मा तथा रानीखेत निवासी श्री रामदत्त पंत प्रमुख हैं। श्री चंदूलाल जी ने कुमाऊँनी कहावतों की एक पुस्तक 'प्यास' नाम से प्रकाशित की है। उन्होंने कई गीत कुमाऊँनी में लिखे हैं जिनमें से 'धार में को पौ, आँखिन रिटी रो' गीत बहुत प्रसिद्ध है। इनके अलावा भी कई कवि हैं, जिन्होंने कुमाऊँनी में लिखा और लिख रहे हैं, जैसे रैखौली गाँव (जिला अल्मोड़े) के श्री गोपीसिंह मेहता, पौधार गाँव (जिला अल्मोड़े) के श्री नारायणराम आर्य।

(२) गद्य—गद्य साहित्य में जो कुछ भी संकलित हुआ, लिखा या छपा है, उसका बहुत बड़ा श्रेय कुमाऊँनी की मासिक पत्रिका 'अचल' को है। इस मासिक पत्रिका के कितने ही अंक निकले और प्रत्येक अंक से कुमाऊँनी भाषा को प्रोत्साहन मिला।

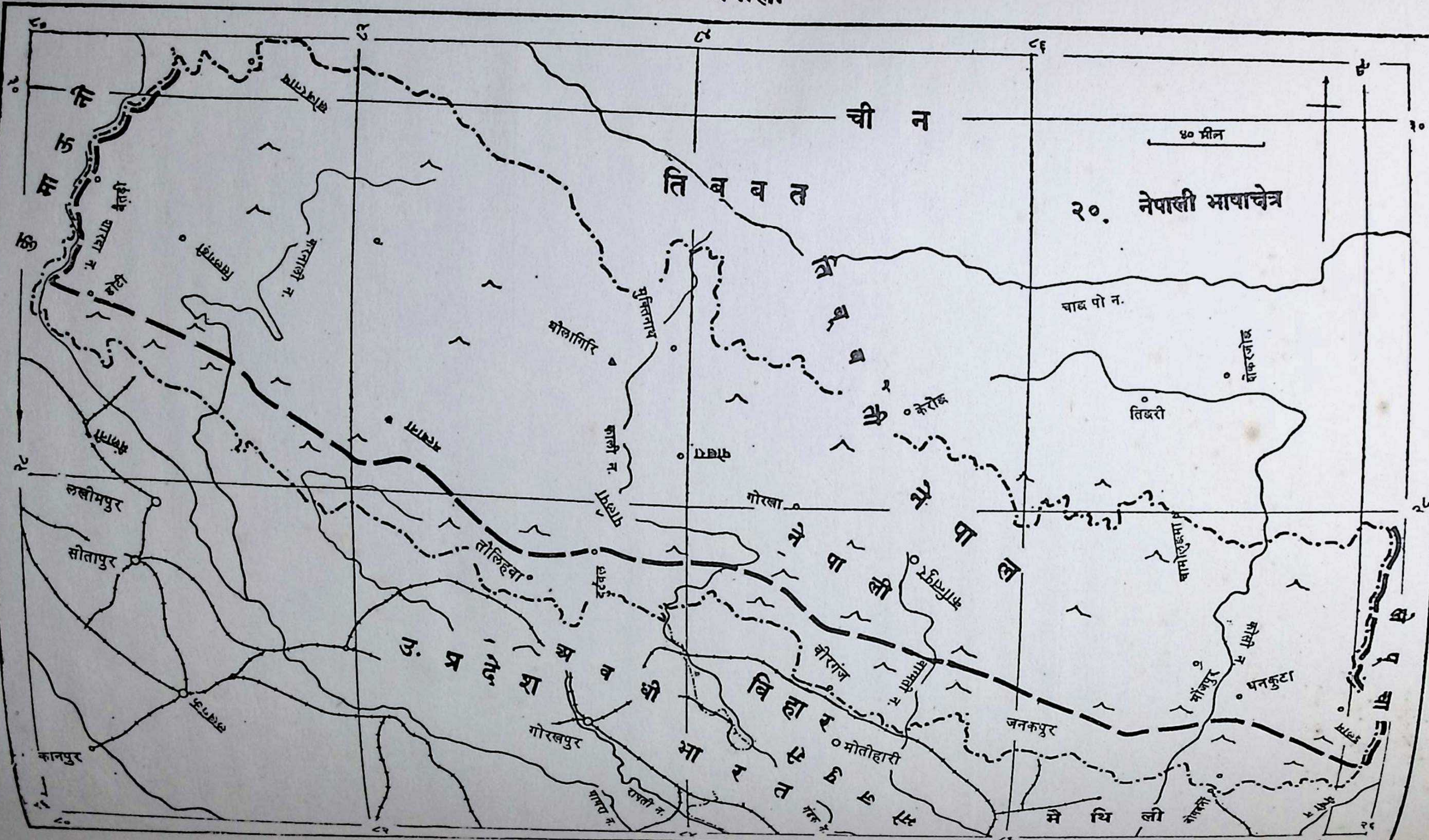
अनुवादों में श्री लीलाधर जोशी ने गीता का कुमाऊँनी में अनुवाद किया।

सन् १६१४ ई० में श्री जईदत्त जोशी द्वारा लिखित पुस्तक 'शिशुबोध' प्रकाशित हुई, जिसमें अंग्रेजी व्याकरण को कुमाऊँनी में समझाया गया और कई उपयोगी शब्दों को भी अंग्रेजी तथा कुमाऊँनी, दोनों भाषाओं में दिया गया है।

१८. नेपाली लोकसाहित्य

श्रीमती कमला सांकृत्यायन

२०—नेपाली


२०. नेपाली भाषाक्षेत्र
४० मील
चीन
तिब्बत
नेपाल
मुक्तिनाथ
धौलागिरि
काली न.
गोरखा
तौलिहवा
लखीमपुर
सीतापुर
कानपुर
गोरखपुर
मोतीहारी
जनकपुर
धनकुटा
तिङरी
चाङ्‌पो न.
विहार
भारत
उ. प्रदेश
मैथिली
कोसी न.
बागमती न.
वीरगंज
राप्ती न.
घाघरा न.
करनाली न.
शारदा न.
बैतडी

(१८) नेपाली लोकसाहित्य

१. सीमा आदि

(१) सीमा—नेपाली भाषा नेपाल देश की भाषा है। नेपाल का क्षेत्रफल ५४३४३ वर्गमील है, जिसमें ३१८२० गाँव और १९५४ की जनगणना के अनुसार ५४, ३१, ३७० आदमी बसते हैं। इसके उत्तर में भोट (चीन गणराज्य) तथा दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में भारत के प्रदेश पड़ते हैं।

(२) भाषा—नेपाल के समस्त लोगों की मातृभाषा नेपाली नहीं है। नेपाली भाषा का दूसरा नाम खसकुरा भी है, जिसका अर्थ है खसों की भाषा। वस्तुतः यह नेपाल के खस लोगों की ही मातृभाषा थी, जो राजनीतिक प्रभुत्व के प्रसार के साथ औरों में फैली। नेपाल के प्रायः आधे निवासी तराई में बसते हैं जो अपने दक्षिणवाले पड़ोसी भाइयों की भाषाएँ—अवधी, भोजपुरी और मैथिली—बोलते हैं। वे रक्त से भी अपने दक्षिणी पड़ोसियों से संबद्ध हैं। थारू अवश्य एक दूसरी—मौन्-ख्मेर या किरात—जाति से संबंध रखते हैं। उनकी मुखाकृति पर मंगोल छाप भी इस बात की पुष्टि करता है। पर, वह अपनी पुरानी भाषा सैकड़ों वर्ष पहले भूल चुके हैं, और अपने पड़ोसियों की तरह अवधी, भोजपुरी या मैथिली बोलते हैं। पहाड़ में भी मौन्-ख्मेर (किरात) जाति के लोगों की संख्या बहुत है जिनमें से अधिकांश अपनी अपनी भाषा बोलते हैं। मौन्-ख्मेर जातियाँ हैं—मगर, गुरुंग, तमंग (तामङ्) नेवार, याखा, लिंबू, राई, आदि जिनमें से अंतिम तीन की भूमि को आज भी किरांती देस कहा जाता है। मौन-ख्मेर भाषाओं में नेवार भाषा यथेष्ट समृद्ध है। दूसरों का लोकसाहित्य भी कम समृद्ध नहीं है, पर वह अधिकतर मौखिक रूप में मिलता है। तिब्बत की सीमा पर पूर्व की ओर भोट के तिब्बतीभाषी शरबा और पश्चिम की ओर मुस्तंग और छारका लोग रहते हैं, जिनकी संख्या मौन्-ख्मेर लोगों की अपेक्षा भी बहुत कम है। पहाड़ में तिब्बती और मौन्-ख्मेर जातियों को छोड़कर बाकी सब लोगों (जिनमें खस अधिक हैं) की मातृभाषा नेपाली या खसकुरा है। मौन्-ख्मेर भाषाएँ आपस में इतना अंतर रखती हैं कि एक भाषाभाषी दूसरे की भाषा नहीं समझ सकता। गोरखा वंश के प्रभुत्व की स्थापना के साथ गोरखा (नेपाली) भाषा राजभाषा बनी, जिसने सारे नेपाल के लिये संमिलित भाषा बनने का अवसर प्राप्त किया। १७४२ ई० तक गोरखा राज्य की सीमा उत्तर में हिमाल, दक्षिण में सेती नदी, पूर्व में त्रिशूलगंडकी, पश्चिम में चेपे तथा मर्स्यांग नदी थी। गोरखा राज्य के पश्चिम कुमाऊँ और नेपाल

के बीच बहनेवाली काली नदी तक और भी कितने ही खसकुरा बोलनेवाले छोटे छोटे राज्य थे। १८वीं सदी के मध्य तक नेपाली भाषा त्रिशूलगंडकी के पूर्व नहीं फैल पाई थी और नेपाल उपत्यका लिए आधे से अधिक नेपाल मौन्-ख्मेर और तिब्बती भाषाएँ बोलता था। १७७४ ई० तक गोरखा विजेता पृथिवीनारायण का राज्य दार्जिलिंग तक फैल गया था। इस प्रकार सारे नेपाल को एक शासन में आने का अवसर प्राप्त हुआ। पहाड़ में एक एक उपत्यका की भाषा अलग हो जाती है, और वह अपनी विशेषता को बहुत काल तक कायम रखती है। इसी का फल है कि नेपाल में एक दर्जन से अधिक मौन्-ख्मेर वंश की भाषाएँ अब भी बोली जाती हैं। राजकाज के लिये ही नहीं, व्यवहार की दृष्टि से भी एक संमिलित भाषा की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति नेपाली भाषा ने की। यह स्मरण रखने की बात है कि इस भाषा का नाम पहले गोरखा भाषा या खसकुरा था। नेपाली नाम का प्रचार पीछे हुआ। आजकल कभी कभी नेवार भाषा को भी नेपाली भाषा कह दिया जाता है, पर वस्तुतः नेपाली भाषा नाम गोरखा भाषा के लिये ही रूढ़ है।

नेपाल में नेपाली भाषा के भी अपने क्षेत्र हैं। महाभारत श्रेणी के दक्षिण, पश्चिमी नेपाल में यही भाषा बोली जाती है। पूर्वी नेपाल के दक्षिणी पहाड़ी इलाकों में पिछले दो सौ वर्षों में खस लोगों के बहुत से गाँव बस गए जिनके कारण वहाँ नेपाली बोली जाती है। पर महाभारत पर्वतश्रेणी के उत्तर कितनी ही जगहों पर मौन्-ख्मेर या तिब्बती भाषाएँ बोली जाती हैं। इस भूभाग के दक्षिण-वाले कुछ लोग अपनी मौन्-ख्मेर भाषा भूलते जा रहे हैं और कुछ अपनी भाषा के अतिरिक्त नेपाली भी बोलते हैं। हिमालय के पास की स्त्रियों को छोड़कर बाकी सारे नेपाल में पुरुष नेपाली भाषा बोलते समझते हैं। तराई के अधिकांश लोगों के बारे में भी यही बात है।

नेपाली भाषा की सीमारेखा खींचना आसान नहीं है। मोटे तौर से कहा जा सकता है कि स्थानीय भाषाओं के सहित सारे नेपाल में नेपाली भाषा बोली जाती है। नेपाल के बाहर पहाड़ी दार्जिलिंग जिले और सिक्किम की अधिकांश जनता भी नेपाली बोलती है। भूटान में हजारों नेपाली परिवार जाकर बस गए हैं। सेना और दूसरे कामों के संबंध में नेपाली धर्मशाला (कांगड़ा), शिमला, देहरादून, लैंसडौन, आसाम और बर्मा तक जा बसे हैं। यद्यपि वहाँ नेपाली भाषा-भाषी कोई अलग भूखंड नहीं है, तो भी लोगों का अपनी मातृभाषा के साथ प्रेम है। नेपाल से बाहर गए खसों के अतिरिक्त अन्य नेपाली केवल नेपाली भाषा बोलते हैं और गुरुंग, मगर, राई, लिंबू आदि में भाषा संबंधी कोई भेद नहीं हैं।

नेपाली भाषा के उत्तर में तिब्बती, पूर्व में तिब्बती की शाखा भूटानी, दक्षिण में बँगला, मैथिली, भोजपुरी, अवधी भाषाएँ और पश्चिम में कुमाऊँनी

पड़ती है। कुमाऊँनी से इसका विशेष संबंध है। किसी समय पहाड़ में पश्चिम से खस लोग मौन्-ख्मेरों (किरातों) की भूमि में दाखिल हुए और पूर्व ओर बढ़ते हुए १८वीं सदी के मध्य में नेपाल उपत्यका की सीमा पर और उस शताब्दी के अंत में दार्जिलिंग तक जा पहुँचे। नेपाली (गोरखाली) मुख्यतः पश्चिमी नेपाल की भाषा थी, जिसके पड़ोस में कुमाऊँनी पड़ती थी। चंबा, कुलुई, गढ़वाली, कुमाऊँनी भी नेपाली की तरह खसों की भाषाएँ हैं, और वहाँ के लोगों में खसों की प्रधानता है। इनकी भाषाओं में भी कितनी ही समानता है। नेपाल से चंबा तक और मारवाड़ी में भी *का* के लिये *रा*, *गा* के लिये *ला* और *है* के लिये *छे* विशेष शब्द हैं, जिनमें *ला* और *छे* मारवाड़ी और पहाड़ की सभी भाषाओं में मिलते हैं। *र* का प्रयोग नेपाली में नहीं मिलता, उसकी जगह अपने दक्षिण के मैदानी भाषाओं की तरह उसमें *को* का प्रयोग देखा जाता है।

(३) उपभाषाएँ—नेपाली शासन और भाषा को पहले गोरखा या गोरखाली कहा जाता था। सप्तगंडकी इलाके में गोरखा का छोटा सा राजवंश था जो अपनी राजधानी के नाम से गोरखा वंश कहा जाने लगा। यद्यपि राज्यविस्तार में पश्चिमी नेपाल के दूसरे खस भी दिग्विजय में सहायक हुए, तथापि राजवंश और दरबार में गोरखावालों की प्रधानता थी। इसीलिये नेपाली की प्रथम आदर्श भाषा गोरखा जिले की भाषा थी, जिसे आजकल पश्चिम नं० २ जिला कहा जाता है। पश्चिमी नेपाल में गोरखा के अतिरिक्त और भी कितनी ही उपभाषाएँ हैं, जिनमें मुख्य है सबसे पश्चिम में डोटियाली और उसके बाद जुमला की भाषा। इन दोनों भाषाओं ने आदर्श नेपाली के निर्माण में बहुत कम भाग लिया। नेपाल उपत्यका की विजय के बाद पृथिवीनारायण ने राजधानी को गोरखा से हटाकर कांतिपुर (काठमांडू) में स्थापित किया और उनके साथ गोरखा के बहुत से संभ्रांत परिवार नेपाल उपत्यका में आ बसे। आजकल की साहित्यिक नेपाली भाषा वही भाषा है जिसे नेपाल उपत्यका के पहाड़ी लोग बोलते हैं। नेपाल उपत्यका के प्रधान और मूल निवासी नेवार लोग नेपाली भाषियों को 'पहाड़ी' कहते हैं, यद्यपि वे स्वयं भी पहाड़ों में ही बसे हुए हैं। साहित्यिक नेपाली मूलतः गोरखा प्रदेश से लाई भाषा का विकसित रूप है जिसे संस्कृत के तत्सम, तद्भव तथा कितने ही उर्दू फारसी शब्दों को मिलाकर बनाया गया है। गावों में पूर्वी नेपाल में भी लोकभाषा के अंश का प्राबल्य है, यद्यपि शिक्षित वर्ग उसे कम करने की कोशिश करता है। लोकभाषा की विमुखता का पता इससे भी चलता है कि भानुभक्त ने अपने रामायण में लोकप्रचलित छंदों को न लेकर संस्कृत छंदों को अपनाया, जिन्हें साधारण जन 'सिलोक' कहते हैं। पूर्वी नेपाल (किरात देश) में फैली नेपाली गोरखा भाषा का ही अंग है। यद्यपि पिछली डेढ़ शताब्दियों में उसमें कई अंतर आ गए हैं, तो भी वहाँ की भाषा अपने में अधिक प्राचीनता सँजोए हुए है।

नेपाली की उपभाषाएँ मुख्यतः चार हैं—(१) पूर्वी नेपाली (धनकुटा इलाम की भाषा), (२) केंद्रीय नेपाली (नेपाल उपत्यका, गोरखा जिले की भाषा), (३) मादी की भाषा और (४) पश्चिमी नेपाली (डोटियाली आछाम)।

उदाहरणार्थ एक ही अनुच्छेद इन विभिन्न उपभाषाओं में नीचे दिए जा रहे हैं[1] :

(क) पूर्वी नेपाली (धनकुटा)—एक देशमा चार बीसै पंद्र बर्ख का बुड़ा बुड़ि रछन्। तिनेरू अघोरै हरिकंगाल थिए। एक दिन् बुड़ालाइ रोटी खान मन लागेछ र बुड़िलाइ भन्यो बुड़ि मलाई रोटी खान सारे छुट्टे लाग्यो। तं गाऊँमा गएर चामल माङेर ले। म बजारमा गएर तेल भिच्छे गरेर ल्याउँ छु भनेर बुड़िलाइ चामल भिच्चे गर्न पठायो। बुड़ो तेल भिच्छे गर्न बजार तिर लाग्यो। दुवैले अलेलि तेल चामल भिच्छे गरेर ल्याए। रोटी खान पाइयो भनी बुडि दङ् परेर रोटी पोल्न लागी। जम्मा रोटी पांचोड़ा भएछ। त्यो देखेर बुड़ाले भन्यो—जे भए पनि तैंले मलाइ मान्ने पर्छ। तं दुइड़ा रोटी खा, म तिनोड़ा खान्छु।

(ख) केंद्रीय नेपाली—एका देशमा ९५ वर्ष का बूढ़ा बूढ़ी रहेछन्। तिनीहरू चौपट्टै गरीब थिए। एक दिन बूढ़ालाई सेल खान मन लागेछ र बूढ़ीलाई भन्यो—'बूढ़ी, मलाई सैल खान साह्रै तिर्सना लाग्यो। तं गाउंमा गएर चामल मागी ले। म बजारमा गई तेल भिक्षा गरी ल्याउंछु' भनी बूढ़ीलाई चामल भिक्षा माग्न पठायो। बूढ़ो तेल भिक्षा माग्न बजारतिर लाग्यो। दुवैले अलि अलि तेल चामल भिक्षा मागेर ल्याए। सेल खान पाइयो भनी बूढ़ी खूब खुशी भएर सेल पकाउन लागी। जम्मा सेल पांचओटा भएछ। त्यो देखेर बूढ़ोले भन्यो—जे भए पनि तैंले मलाई मान्नैपर्छ। तं दुइटा सेल खा, म तीनओटा खान्छु।

(ग) मादी (पूर्व बूढ़ी गंडक)—एक देशमा पंचान्बे बर्ष का बुढ़ा बुढ़ी रचन्। ती बुढ़ा बुढ़ी निर्ती दुखी थिए। एक् दिन् बुढ़ालाइ सेल खान मन लाएच। अनिचाँइँ बुढ़ाले बुढ़ीलाइ भनेच—'ए बुढ़ी, मलाइ सेल खान औधि मन ला' यो। तं गान् मा ग'र चामल् माएर ल्या। म बजार् मा ग'र तेल भिच्छे माएर ल्याउँचु।' यति भनेर बुढ़ाले बुढ़ीलाइ चामल् भिच्छे माग्न पठायो। बुढ़ो चाइँ तेल भिच्छे माग्न बजार तिर ला'यो। दुवैले अलिकता तेल् अलिकता चामल् भिच्छे माएर ल्याए। सेल खान पाइयो भनेर बुढ़ी औधि रमाएर सेल पकाउन लाई। जम्मा सेल पांचोड़ा भएछ। त्यो देखेर बुढ़ाले भन्यो—'जे भा'नि तैंले मलाइ मान्नै पर्च। तं दुइटा सेल् खा, मचाइँ तिन्टा खांचु।'[2]

[1] संग्राहक : श्री गंगाप्रसाद उप्रेती, आठराई, पांचघर (धनकुटा)।

[2] संग्राहक : श्री माधवप्रसाद घिमिरे, लम्जुङ् (पश्चिम ३ नंबर)।

(घ) अछाम पश्चिम—एका देशमा ६५ बर्खका बड्डा बड्डी थिया। तिनी हरू भौति गरीब थिया। एक दिन बड्डालाइ बाबर खान मन लागेछ र बड्डीलाइ भन्यो—'बड्डी मलाइ बाबर खान भौति तिर्सना लाग्यो। तं गाऊँ तिर्क गैखेर चामल माँगि लैया। म बजार तिर्क गै तेल मागि ल्याउँला भनिखेर बड्डी-लाइ चामल मागी लै आउन पठायो। बड्डो तेल मागी ल्याउन बजार तिर्क लाग्यो। दुइटैले नापो-नापो तेल चामल भिच्छया मागी पंड ल्याए। बाबरखान पाइयो भनी बड्डी भौति खुशी भईखेर बाबर हाल्न लागी। सप्पै बाबर पाँच भयाछन्। त्योर देखि खेर बड्डाले भन्यो—ज्या भया पनि तैले मलाइ मान्नै पर्छ। तं दुइटा बाबर खा म तिनोटा खाऊँला।'[1]

(ङ) डोटियाली—एका देश चारविसि पन्नर वर्षा बड्डा बड्डी रैछन्। तिनरिमौ (तिनु) भौति गरीब थे। एका दिन बड्डालाई बाबर खाने मन् लागि छरे। बड्डीखि भण्यो—बड्डी, म बाबर खानाखी भौतै मन लाग्यो। तं गाँउड़ो जारे चामल् मागी ल्या, म बजार् गै पट तेल् मागी ल्यांउंछु तसो भनी पट बड्डीलाई चामल् मागन् लायो। बड्डो तेल मागन् बजारौड़ो ग्यो। दुवैले थोका थोकाइतेल् चामल् मागी ल्याय। बाबर खान पाइयो भनी पट बड्डी मंमनानी भैरे बाबर् पकाउन् लागी। जम्माइ बाबर पाँचै भ्याछन्। तसो धेकी पट बड्डैले भँण्यो ज्यै हौ, तैंले भँण्या माण्डे पड्यो। तं दुयै बाबर् खा, मै तीन् खानौ।

(च) वैतडेली—एक देशमा ६५ वर्षा बुड़ा बुड़ि ज्यान्। ति भौत् गरीब् थ्या। एक दिन् बुड़ा 'शैल् खान्या मन् लागिछ रे' बुड़िथाइ भण्यो—बुड़ी मइ शैल् खान्या साऽऽरी मन् लागि। तैं गौं भड़ झाइबरे चावल् मागिल्या। मैं बजार झाइवरे तेल भिद्मा मागि ल्यौंनों भणिवरे बुड़ि चावल् भिद्मा मागि ल्योंनाकि लायो। बुड़ो तेल् भिद्मा माँगनाकि बजार तिर लाग्यो। दूए जना थोक् थोकाइ तेल् लैरे चावल् लै भिद्मा मागि लेया। आव शेल् खानों भडिवरे बुड़ि भौत् खुसि भैरै शेल् पकौंन् पशि। जम्मा पाँच् शेल् भ्याँन। तै घेकिवरे बुड़ाले भण्यो—ज्या भ्यालै तैंले मइ मान्डै पड्यो। तैं दुइ शेल खा, मै तीन खानौ।

(४) लोकसाहित्य—नेपाली लोकसाहित्य के अच्छे संग्रहों का अभाव है। वस्तुतः इस ओर लोगों का ध्यान अभी अभी गया है। अन्य पहाड़ी लोक-साहित्य की तरह नेपाली लोकसाहित्य भी बहुत समृद्ध है। इसमें गद्य और पद्य दोनों ही मिलते हैं। गद्य में लोककथाएँ (कथा) और लोकोक्तियाँ (उखान) मुख्य हैं और पद्य में लोकगाथाएँ (पँवाड़े) तथा लोकगीत। इन विभिन्न विधाओं के उदाहरण निम्नांकित हैं :

[1] संग्राहक : रूपबहादुर स्वार छत्री, अछाम (कर्णाली प्रदेश)।

२. गद्य

(१) लोककथाएँ—

(१) सुनकेसरी रानी—सुनकेसरी रानी रुखको हाँगामा बसेकी थिई, बाबु बोलाउन गयो श्रौ भन्यो—'झरन झर सुनकेसरी चेली विवाहको लगन टरे है'

छोरी—'झर्न ता झर्थैं नी मेरी बाबा ससुरा पर्ने रैछ है।'

यो सुने पछि चाँहि मर्‍यो।

आमा गएर भन्छे—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टरे है।'

सुन—'झर्न ता झर्थें नी मेरी आभै सासुनै पर्ने रैछ है।'

त्यस पछि आमा पनि मर्छें।

दाज्यू जान्छ—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टरे है।'

सुनकेसरी—'झर्न ता झर्थें नी मेरा दाज्यू, जेठाजु पर्ने रछौ है।'

मदाज्यू पनि मर्‍यो।

माइला दाज्यू—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टरे है।'

सुनकेसरी—'झर्न ता झर्थें नी मेरा दाज्यू, जेठाजू पर्ने रछौ है।'

माईला दाज्यू पनि मर्‍यो।

साईला दाज्यू—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टरे है।'

सुनकेसरी—'झर्न ता झर्थें नी मेरा दाज्यू, जेठाजू पर्ने रछौ है।'

साईला दाज्यू पनि मर्‍यो।

जेठी भाउज्यू—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टरे है।'

सुनकेसरी—'झर्न ता झर्थें नी मेरी भाउज्यू, जेठानी पर्ने रछौ है।'

जेठी भाउज्यू मरी।

माईली भाउज्यू—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टर्‍यो है।'

सुनकेसरी—'झर्न ता झर्थें नी मेरी भाउज्यू, जेठानी पर्ने रछौ है।'

माईली भाउज्यू पनि मरी।

साईली भाउज्यू—'झरन झर सुनकेसरी चेली, विवाहको लगन टर्‍यो है।'

सुनकेसरी—'झर्न ता झर्थें नी मेरी भाउज्यू, जेठानी पर्ने रछ्यो है।'

साईली भाउज्यू पनि मरी।

यसपछि सुनकेशरी चेली (रानी) का सबै मानिसहरू बाबु श्रामादेखि लिएर दाज्यूहरूसम्म मरी सकेको हुन्छन् तर एउटै भाई मात्र बाँचेको हुन्छ। सुनकेशरी चेलीको आसन एउटा रुखको हाँगामाथि हुन्छ। तल फेदिदेखि सानू भाईले

उसकी दिदीलाई भन्छ—'दिदी ! म पनि आउँछु नी। दिदी ! म पनि आउँछु।' त्यसो सुन्दा दिदीले जवाब दिन्छे—'भाई, तँ यहाँ न आइज, मेरोमा आइस् भनै तँलाई मं केही चीजको जोगार गरिदिनु सक्तिन, कारण मेरामा केही छैनन्। तं म भाकैमा आइस भनै 'भोको छु' भनि भन्नेछस्। मं के दिउँला तंलाई। त्यहीं बस्, यहाँ मं भए ठाउँ आउने मेलो न गर्।' यस कुरामा उसको भाई कसै गरेर पनि राजी हुँदैन। उ आफ्नो लिंड़ेढिपी गरी रहन्छ। उसले फेरि भन्छ—'होइन दिदी' तिमीले त्यसौं भन्नु हुँदैन, म माथि जरूर आउँछु, तिमीले मलाई बोलाउनै पर्छ। म माथि आएर भोको छु औ भोक लाग्यो भने कहिले पनि तिमीलाई दिक् दिने छैन। तिमीले आफ्नो भाईलाई माथि बोलाउनै पर्छ। 'सुनकेशरी चेलीको हृदय सारै नरम औ दयालु भएको हुनाले उसले भाईलाई' तं कसै गरेर पनि मान्दैनस् भने माँथि आइज भनी बोलाउँछे। भाई पनि बड़ो खुशी भएर दिदी भए ठाउँमा गएर बस्छ।

माथि पुगेर बसेको एकछिनपछि भाई चें लाई भोक लाग्छ। पहिले ता उसले कति त्यो कुरोलाई टार्ने कोशिश गर्छ तर पछि केही लाग्दैन र उसले दिदीलाई भन्छ—'दिदी, म न भनुंला भन्थें तर पनि एकदमै कर पर्‍यो, मलाई यस घरि साह्रै भन्दा साह्रै भोक लागि रहेको छ। मलाई केही न केही खानेकुराको चाँजो मिलाई दिनुपर्छ।' भाईको यो कुरा सुनी दिदीको मनमा साह्रै फिक्री पर्छ। उनले ता यो कुराको पहिले नै विचार गरेकी हुन्छिन् कि भाईले जरूर भोकोछु भन्नेछ भनी। दिदीले भाईलाई भन्छिन्—'भाई, तैंले ता मलाई भोक लाग्यो भन्छस् औ मेरोमा केही पनि छैन। मैले ता तंलाई पहिले नै भनेकी हुँ। अहिले मेरामा तिल र चामल मात्र छ। यही खान्छस् भने म दिन्छु, तर यसलाई चाँहि भुईंमा एकदमै नखसाली खानुपर्छ।' यस कुरामा भाई चाँहिले आफ्नो भोकलाई पटक्कै खप्न न सक्दा त्यही तिल र चामल पनि खानलाई तयार हुन्छ, औ दिदीको हातबाट सो दुई चीजहरू लिन्छ अनि दिदीलाई भन्छ कि 'म यी चीजहरूलाई न खसाली खानेछु।' भाई ले सो जिनिसहरुलाई ली खान थाल्छ तर चामल र तिलको सिताहरू भुंईमा खसी हाल्छन्। ती सिताहरू जमिनमा पर्ने बित्तिकै तिलको चाँहि भैंसीहरू अनि चामलको चाँहि गायहरू बनिन्छन्। गाय र भैंसीहरू गोठमा कराउन थाल्छन्—भोकले। यसो हुँदा सुनकेशरी रानी लाई भाई समेत जमिनमा ओर्लिन कर पर्छ औ तिनी भाईलाई पनि साथमा लिएर तल ओर्लिन्छन्। त्यसपछि तिनी-हरू गाई र भैंसी गोठ समालेर त्यसकै साथमा एउटा सानो झोपड़ी बनाएर वसो-वासो गर्न थाल्छन्। यसरी तिनीहरूको त्यहाँ निकै दिन बित्छ।

एक दिन अचानक तिनीहरूको दैलोमा एउटा जोगी घुम्दै फिर्दै पुग्छ। उसले त्यहाँ आएर चामल माँग्छ। चामल हातमा लिएर भाई चाँहि पुऱ्याउनु

बाहिर आउँदा उसले भाई चाँहिको हातबाट दच्छिना पटक्क लिनु मान्दैन। उसको भनाई अनुसार कन्ये केटी सुनकेशरी रानीकै हातबाट दच्छिना लिन चाहन्छ। भाई चाँहिले भिन्न गई योगीराजले गर्नुभएको विचार दिदीलाई सुनाई दिन्छ। सुनकेशरी चेली पनि योगीराज लाई कसै गरेर टार्न न सकदा आफै बाहिर आउन तयार पर्छिन्। बाहिर आउन भन्दा पहिले उनले आफ्नो अनुहार भरी मोसो लाउँछिन् औ आफ्नो एकदम राम्रो रूपलाई निख्खुर कालो बनाउँछिन्। यसपछि उनी बाहिर आउँछिन्। बाहिर आएर दान दिन लाग्दा जोगीराजले आफ्नो कमण्डलुको पानी निकाली औंलाले रानीका मुखमा छर्कि दिन्छन्। सो पानी अनुहारमा पर्ने बिच्चिकै सुनकेशरी चेलीको अनुहार झलझल बल्ने हुन्छ। यत्तिकैमा तिन्लाई जोगीराजले भगाएर टाड़ो देशको एउटा राजदरबारमा पुर्‍याउँछन्। वहाँ पुगेर पत्ता चल्छ कि ती जोगीराज ता त्यही दरबार का राजकुमार रहेछन्। उनले आफ्नो भेष चाँहि योगीराजको भेषमा बदलेर तिनको दैलामा पुगेका रहेछन्। उता भने भाई चाँहिलाई पत्ता लाग्छ कि जोगीराजले उसकी दिदीलाई भगाएर लगेछन्। भाईलाई बड़ो अफसोस लाग्छ औ एकलै सोच्दै बसीरहन्छ। उसले दिदीको बिरहमा भन्छ :

भ्यागुताको छाला झिकी डम्फु मोड़ुंला,
मेरी दिदी सुनकेसरीलाई कहाँ गई भेटुंला ?

भाई चाँहिलाई दिदी हराएको कुराले अफसोस र दुःख लाग्छ। उसको दुःख र पीर केही कम होला भन्नुको सट्टामा ता उसलाई यस कुराले दिनैपिच्छे रिंगटा चल्न लाग्छ। उसले दिन्हों माथि लेखिएका दुई लाइनको रट लगाईबस्छ। उसले एक दिन आफ्नो गाई गोठ, घरबार सब छोड़ेर दिदीको खोजीमा बाहिर जाने आँट गर्छ। अनि उसले यस्तै गर्छ। उ बाहिर निसकन्छ औ देश विदेशको सैर लाउँदै जान्छ। बाटामा कति जगह उसलाई घेरै दुःख खप्न पर्छ। आखिरीमा घुम्दै फिर्दै एउटा बहुतै राम्रो शहरमा आई पुग्छ। त्यस शहरमा पनि रातों दिन लगाई उसले आफ्नी प्यारी दिदीको खोजी गर्छ औ उसले पनि सम्झन्छ कि दिदी बिना संसारमा उसको कोही छैन। यसै विचारमा मग्न हुँदै त्यस देशको दरबारको एक कुनामा गएर बस्छ। यत्तिकैमा अचानक उसको अघि एउटा एकदमै बढ़िया काँग्यो आएर खस्छ। त्यस काँग्योलाई टिपेर हेर्दा त्यसमा उसले आफ्नी दिदीका झैं सुनका केशहरू भेट्छ। उ झसंग हुन्छ। आफ्नी दिदी त्यतैतिर भए झैं लाग्छ र उसले फेरि पनि गाउन शुरू गर्छ :

भ्यागुताको छाला झिकी डम्फु मोड़ुंला,
मेरी दिदी सुनकेसरीलाई कहाँ गई भेटुंला ?

यस पल्ट उसले जोर जोरले यो गीत गाउँछ। त्यो काँग्यो उसकै दिदीको

हातबाट फुस्केर झरेको रहेछ। उसकी दिदी त्यसै दरबारको सबै भन्दा माथिल्लो तल्लाको एउटा झ्यालको छेउमा बसेर आफ्नो केश समाल्दै गर्दा अचानक त्यो काँग्यो भुईंमा झरेको रहेछ। आफ्नो काँग्यो अचानक यसरी झर्दा सुनकेशरीले ओह्रालो हेंरी पठाउँछिन् तर उनले आफ्नो काँग्यो कुनै अर्काको हातमा भएको देख्छिन् औ त्यो काँग्यो लिने मानिसले ठूलो बिरह लिई एउटा गीत गाउँदै गरेको हुन्छ। राम्ररी सो गीत सुन्दा औ राम्ररी त्यो मानिसलाई नियालेर हेर्दा उनले आफ्नै भाई पो रहेछ भनेर चिन्छिन् र उनले माथिदेखि बोलाउँछिन्—'भाई, म तेरी दिदी हुँ, जसको तैंले यत्री विरहको शाथमा खोजी गरि हिंड्दैछस्। तं यहाँ ठीक मौकामा आई पुगिछस्, बड़ो राम्रो भो। 'यचि भनेर उनले एउटा बलियो डोरी खोजेर ल्याउँछिन् र भाईको निमित्त झ्यालदैखि तल्तिर झारी दिन्छिन्। भाई पनि सो डोरी समात्दै माथि आउँछ। यसरी ती दुई दिदी भाईको भेट हुन्छ। यो कुरापछि सबैमा जाहेर हुन्छ कि यिनीहरू दुई दिदी भाई हुन् भनी। त्यसपाछ ती दुई जना त्यसै दरबारमा बड़ो आनन्द साथ आफ्नो दिन बिताउँछन्।

(२) लोकोक्तियाँ (मुहावरे)—

(१) अकबरी सुनलाई कसी लाउनु पर्दैन—अकबरी (मुहर के) सोने को कसौटी में कसने की आवश्यकता नहीं। (असली चीज की जाँच करने की जरूरत नहीं।)

(२) अगुल्टो पनि न झोसी बल्दैन—मशाल भी बिना आग लगाए नहीं जलती। (एक घर में भी सदा मेल मिलाप नहीं रहता।)

(३) अचानो को पीर अचानोले नै जांदछ—कसाई की लकड़ी अपनी पीर स्वयं ही जानती है।

(४) अँध्यारो को काम खोला को गीत—अँधेरे का काम, नाले का गीत। (बिना ढंग जाने किया गया काम।)

(५) अल्छी तिघ्रो, स्वादे जिब्रो—आलसी टाँगें, स्वादवाली जीभ। (काम करने में तो आलसी, लेकिन खाने को अच्छी अच्छी चीज चाहिए।)

(६) औंलो दिंदा डुडुल्नो निल्ने—उँगली पकड़के पहुँचा पकड़ना। (अधिक लोभ करना।)

(७) इंद्र को अगाड़ि स्वर्ग को कुरा—इंद्र के आगे स्वर्ग की बातें। (बहुविज्ञ के सामने अनभिज्ञ की बात।)

(८) उफ्रने गोरू को सींग भांचिन्छ—कूद फाँद करनेवाले बैल के सींग टूट जाते हैं। (घमंडी का घमंड चूर हो जाता है।)

(९) एक थुकी सुकी, हजार थुकी नदी—एक का थूक सूख जाता है, हजार के थूकने से नदी बनती है। (सबके मिलकर कार्य करने से काम बनता है।)

(१०) एकै माघले जाड़ो जांदैन—एक माघ से जाड़ा नहीं जाता। (सदा एक ही दिन नहीं आता।)

३. पद्य

(१) लोकगाथा (पँवाड़ा)—वीरों, देवताओं आदि की लोकगाथाएँ भी नेपाल में प्रचलित हैं। राणा जंगबहादुर के प्रधान मंत्रित्व के समय १८५५ ई० में नेपाली सेना ने तिब्बत पर आक्रमण किया था, जिसके बारे में निम्नलिखित प्रसिद्ध पँवाड़ा 'भोट को सवाई' रचा गया :

(१) भोट को सवाई—

सुन सुन पंचहो म केहि भन्छू।
अगम संग्राम को सवाइ कहन्छू॥
सब कुरा छोड़ि कन एक कुरा भन्छू।
भोटमा भएको लडाञि कहन्छू॥ १॥

'रन प्रिया' लेटरंता कुति तिर गयो।
सबैलाइ भन्नु चाहिं तेसै लाइ भयो॥
कलिकाल को कालो मैलो कुति माहाँ थियो।
रन प्रिया लेटर लेजिउ पनि दीयो॥ २॥

मंत्रि बिनु लडाञि सब त्यसै बिग्रि गया।
सिपाहिको वर्कत बुद्धि खेर जांदो भयो॥
अघि देखि भोटे सारा भन्दे पनि थीये।
संसरबारको दिन आयो राहदानि लीयो॥ ३॥

कुतिभुरका भोटे सबै सुना गुम्बा गए।
राति राति छापा हान्न शामेल् हुदा भए॥
चांडै आउ भन्ने तहाँ उपदेश दिए।
न जानि ती भोटे जात्ले एकै मतो लिए॥ ४॥

भरत गुरुङ् सुबेदार लाइ समचार पठाए।
लेटर का सिपाहिलाइ बिकट[1] खटाए॥

[1] चौकी (बैठना)।

लेटर का सिपाहि सब विकट मा रहे ।
बिकटदेखि अलिकू दिन्मा चेवा[1] गर्न गए ॥ ५ ॥

झस्टी झस्टी भोटेहरू आउन्दै पनि थिए ।
सर्कारका ताना-वाना[2] सबै लुटि लिए ॥
लेटर का सिपाहिलाइ इशारा सब दिए ।
भोट को चिनुलाइ बायें हातमा लिए ॥ ६ ॥

सुनेको र देखे को सब जोजो हाल थियो ।
पट्टि पट्टि गई का समाचार दियो ॥
कुन दिन कुन बार हात पनि परयो ।
डिट्ठा बिचारिले अब हिंड्नु बुझि परयो ॥ ७ ॥

कार्तिक वदि दशमिमा पर्नें रविवार ।
पूर्वाषाढा नक्षत्र को साइत् अब सार ॥
काला राहु शंखासुर को हात पनि परयो ।
अपिसर को बुद्धि सारा त्यसै दिन हरयो ॥ ८ ॥

मन्त्रि चाहिं भये कच्चा क्यै पनि न जान्ने ।
सिपाहिले भनेको ता क्यै पनि न मान्ने ॥
डिपुकोता तोप सारा उभो तिर तान्ने ।
बैरीलाइ देख्दा हुँदि डरै मात्र मान्ने ॥ ९ ॥

साह्रै खराज् स्वप्ना ताहाँ एक दुइले पाये ।
लेटरका सिपाहिलाइ पट्टिमा मिलाए ॥
माझ माझको सन्तरमा रनप्रिया थीए ।
अन्तर्बिच्मा भवानीप्रसाद राखि दिए ॥१०॥

अघिबाट गुमानघोज बिच खालि थियो ।
भोटे सबले दाउ पनी तहिं बाट लीयो ॥
आइतबार ब्याउँदो भै सोंबार आइलाग्दो ।
रात्रिका बिचमाँह शूक उदाऊँदो ॥११॥

बियाउँदो रात बिषे जोरि हाले हात ।
छल कपट गर्न जान्ने भोटेको जात ॥
भाला बर्छि हातमा छन् घुश्रत्रा का डोरी ।
हाले लागे भोटेहरू वन्दुकका गोली ॥१२॥

[1] गुप्तचरी । [2] सैनिक पोशाक ।

ठुलो हात्ति प्रमाणको पत्थर गिराउँछन् ।
उभो जाने लश्कर लाइ तलतिर फिराउँछन् ॥
भाला बर्छि तलवार असिना झैं झारे ।
गोर्खालिका लश्करको घेरै नाश पारे ॥१३॥

अघिबाट शुद्धि बुद्धी कसैले लिएन ।
कैपवाल बन्दुक् पनी उसबेला थिएन ॥
नयाँ नयाँ सिपाहिलाइ अर्तिक्यै भएन ।
बन्दुक भरि हान्ने पनो ढंग तक् पुगेन ॥१४॥

डोला कार्तोस् हालेको बन्दुक चलेन ।
वर्मा सुजनिले पनी नाशित नै खुलेन ॥
नयाँ भये सिपाहि सब कवाज न जान्ने ।
टाढैबाट भोटेलाइ गोलि तक न हान्ने ॥१५॥

भोटेसित छ्यासमिस नयाँ पल्टन् भयो ।
हेर्दा बुझ्दा विचार्दामा एक घडि गयो ॥
वारि पारि चारैतिर भोटेले गै घेर्‌यो ।
साने कप्तान् बुद्धिबलको व्यर्थै ज्यान पर्‌यो ॥१६॥

भागिकन जानु चाहिं याहिनै भरौंला ।
महाराजका ज्यानमाँह ज्यान दी लडौंला ॥
तोपका तखत भीत्र आइपुग्यो भोटे ।
एकै गोलि लाग्दा हूँदि साने कप्तान लौटे ॥१७॥

बुद्धिबल राना थिये शरिरका भारी ।
चार्जाना भोटे दिए घुंडा घसि मारी ॥
कप्तानि बन्दुक ताहाँ छिनाले मगाए ।
चाँडै चाँडै बन्दुक माँह कल् पनि चढ़ाए ॥१८॥

सब चाकर सुसारेलाइ घरतिर पठाए ।
सन्मुख आउने वैरिलाई उहिंनै गिराए ॥
एक भोटे मार्दाहुँदी दश भोटे आउने ।
एक्लाज्यूको सामु सरी क्यै पनि न लाग्ने ॥१९॥

ढुंगो मुढ़ो चुपि गोली वर्षाऊन थाल्यो ।
थाप्लामाथि वज्रिवज्री घेरै लाइ ढाल्यो ॥
सामु पर्न सब जना डरैमात्र मान्ने ।
भोटे भने घुमि घुमी तिनैलाइ तान्ने ।२०॥

भोटेले हाँनेको सब् मुटु भीत्र घस्यो ।
हातको बन्दुक ताहाँ लतरक्कै खस्यो ॥
बुद्धिबल रानाको खुब जिउभारी थीयो ।
भोटेको हुल उठी ज्यान खिंचि लीयो ॥२१॥

कठैवरा साने कप्तान् उमेरदार थीए ।
सन्सारको भोग छोड़ी बाटो अर्कै लीए ॥
ज्यौवन् सबै वैरिजात्का हाटबाट गयो ।
पल्टनको माया मोह नेपालैमा रह्यो ॥२२॥

लडाञिमा पर्नेजति बैकुण्ठमा जान्छन् ।
त्यस्तालाइ घौता पनि प्राणै सरि मान्छन् ॥
ज्यूंदै शरिर गए जस्तै कैलाशमा गयो ।
ग्यांडल सिकिन् तर्फ सुबिदार घिसि भयो ॥२३॥

हर्कै थापा जसराज थर्मराज खत्री ।
कम्यान्डर अजिटन् नैनसिङ् छत्री ॥
सरुप कुँवर झुकिने बाका बचनका बाना ।
आजदेखि गयो तिम्रो एक माना दाना ॥२४॥

महाराजको प्रशस्तिले तोपको थियो बाना ।
तोप टिपि उभो लग्यो के गर्छौं साना ॥

(अर्थ सुगम होने तथा निबंधविस्तार के भय के कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया जा रहा है ।)

सुनो सुनो पंच लोग, मैं कुछ कहना चाहत हूँ ।
अंगय संग्राम के बारे में सवाई कहता हूँ ।
सब बातों को छोड़कर एक ही बात कहूँगा ।
भोट में हुई लड़ाई के बारे में कहूँगा ॥ १ ॥

रणप्रिय लेटर कुत्ती की ओर गया,
सबको छोड़कर वही आगे बढ़ा ।
कलिकाल का सारा झगड़ा कुत्ती में ही था,
रणप्रिय लेटर ने अपना बलिदान दिया ॥ २ ॥

मंत्रीके बिना लड़ाई खराब हुई,
सिपाहियों का साहस और बुद्धि नष्ट हुई ।
भोटिया लोग पहले ही से कह रहे थे,
शनिवार के दिन उसने मार्गपत्र लिया ॥ ३ ॥

कुत्ती के सारे भोटिया सोना गुंबा की ओर गए,
रातोरात हमले के लिये तैयार।
जल्दी आने के लिये उन लोगों ने कहा,
सब लोग एक दिल हो गए ॥ ४ ॥

सूबेदार भरत गुरुंग के पास समाचार भेजा,
लेटर के सिपाहियों को चौकी में भेजा।
लेटर के सिपाही चौकी में रहे,
फिर वहाँसे गुप्तचरी करने के लिये जाने लगे ॥ ५ ॥

भोटिया सिपाही झपट्टा मारने लगे,
सरकार का सारा धन लूटने लगे।
लेटर के सिपाहियों को इशारा किया गया,
भोट के स्मारक चिह्न को हाथ में लिया ॥ ६ ॥

(२) लोकगीत—समस्त पहाड़ी लोकभाषाओं की तरह नेपाली का लोक-साहित्य भी बहुत समृद्ध है। नेपाली भाषा बोलनेवाले या उससे संपर्क रखनेवाले तिब्बती, मौन-ख्मेर (किरात) आदि जातियों के संगीत और भावों को इसमें खुलकर अपनाया गया है। तमंग और तिब्बती के लय पर 'भोटे सेलो' नामक प्रसिद्ध गान हैं। 'झ्याउरे' भी उसी तरह की एक लय है, जो अनेक जातियों के प्रयत्न से बनी है। नेपाली लोकगीतों को मुख्यतः निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है:

१—श्रमगीत	५—त्योहार गीत
२—नृत्यगीत	६—संस्कारगीत
३—ऋतुगीत	७—प्रेमगीत
४—मेला गीत	८—बालगीत
	९—विविध गीत

(१) श्रमगीत—वैसे तो सभी जगह थकावट दूर करने और काम को मनोरंजक ढंग से करने के लिये श्रमिक नरनारी गीत गाते हैं, पर पहाड़ों में, विशेषकर नेपाल में, इसका प्रयोग बहुत अच्छे ढंग से किया जाता है। यहाँ के कुछ श्रमगीत निम्नांकित हैं:

(क) असारे (रोपनी)—यह नेपाल में सर्वत्र गाया जाता है। वैसे तो यह बारहो महीने गाया जाता है, पर अधिकतर आषाढ़ की रोपनी और अगहन की दवाई या यात्रा के समय युवक युवती इन गीतों को प्रश्नोत्तर रूप में गाते हैं। प्रश्नोत्तर रूप में गाए जानेवाले गीत दोहरी, जुहारी और देउला भी हैं।

युवक—सानुमा सानु नरीवले हुका, भिरै लाई-लाई खोलेको।
पातली ज्यानको स्वर मात्रै सुन्छु, कता होला बोलेको।
डोकोमा बुन्ने त्यो हातको सिपले, गुन्द्री बुन्ने हतासोले।
मिश्रीको गोली चरी तिम्रो बोली, उड्याइत्यायो बतासले॥ १॥

लेक्को चरी पानी खान झरी
लाको सानो माया जंगारलाई तरी
माया लाउन नक्कलीले कस्ता कुरा गरी
देवको लीला कठै नि बरी॥ २॥

माया लाउँला भन्दाभन्दै जंगलैमा परी
सात दिनसम्म जंगलैमा लास, स्याउ स्याउ कीरा परी
खोजमेल गरी वायु डाक्दा, पितासको रूप घरी
गाउँदै गाउँदै, गाउँमा नै झरी॥
पातली ज्यानको स्वर मात्रै सुन्छु, कता होला बोलेको।
मिश्रीको गोली, चरी तिम्रो बोली कता होला बोलेको॥ ३॥

युवती—श्री कृष्ण ज्यूको गाईलाई सोर सये ल्याउने भन्दा लानेगो।
अमिलो महिले मेरो माया ऐले, किन हुकुम मर्जि भो ?
एकैर मुठी त्यौ जीरीको साग नरम तेलमा तारेर।
नबोलुं भने सुख छैन मलाई, बोल्यौ फन्दा पारेर॥ ४॥

(गीत की पहली पंक्ति केवल तुक मिलाने के लिये होती है, उसका कोई संबद्ध अर्थ नहीं होता।)

भाले र पोथी जुरेली आए बेलौंती को झुप्पामा।
मितेरी दाजु पिंद बेसी होलान् मं एकली छु टुप्पामा॥

स्त्री—मकैको पीठो पनि कत्ति मीठो चतमासे 'बाको' ले।
मसिनु भुटुक रानी नी पार्‌यो विरह को राँको ले॥

पुरुष—निदारी अलि अलि दली यौटा ढुंगो खसाल्यौ।
कुमारी पाठी जिउनी दिऊँला माया च्वाट्टै बसाल्यौ॥

पुरुष—घाँटी पनि सुक्यो छाती पनि सुक्यो, तिमी भने बोल्दिनौ।
हिर्दय खोल एक फेरा बोला किन हो है बोल्दिनौ॥

स्त्री -रंगी र चंगी आँखे, पंखे पुच्छर फरर पुच्छ मुजूर को।
कमलो बोली मुटुसम्म विज्यो माया त रैछ हजूरको।

पुरुष - माइली को मायाँ, गाला को चायाँ,
खोजी खोजी हिंड्थें बल्ल आज पायाँ।

आधा माना पीठो खाई बिहानै आयाँ,
पीरति लाउन भनी ठिमी देखि धायाँ।
हातमा छाता विर्कै टोपी लायाँ,
आलीमा बसी भ्याउतीसंग गायाँ।
दायाँ र बायाँ कदमको छायाँ मलाई मार्‍यो पाटीमा,
कमलो बोली कसरी हो बिज्यो ? नौनीले कोर्छु घाँटीमा॥

स्त्री—एकातिर कूवा आकौंतिर धारा, बीचमा बग्ने सिमखोला,
बाहिर नौनी, नौनी भीत्र काँड़ा, चपाई हेरे था होला।

पुरुष—वन को बोको तीन दिन को भोको,
कुटुकुटु पारिघौ सर्किनी को डोको।
पाटी को पौवाली को पिड़ालु को पोको,
धौता, गाई, बाउन भन्दा पनि धेरै चोखो।
खाउँला खाउँला भन्दा भंदै दुख्न थाल्यो कोखो,
फुक्न भनी धामीहरू आए कोको कोको।

(ख) रसिया—यह गीत काम समाप्त करके घर लौटते समय लंबी तान खींचकर गाया जाता है। यात्रा करते समय भी युवक युवती मिलकर इसे गाते हैं :

आ: आ, आ, इ इ इ—बेत को राम्रो डाली, खेत को राम्रो आली।
पश्चिम महाकाली, तिमी त बड़ी जाली।
केरा फुल्यो थंब, फल्यो लटरम्म।
बसे गजधम्म, उठे सगर सम्म ! आ, आ, ईईई।

(ग) लैबरी—

भातै र पाक्यो ज्यान गुदुगुदु, तिउन ता चिंडेको। लैबरी
बागमती तरनु के माया गरनु, छोड़ेर हिंड़नेको। लैबरी
आजु र मैले घाँसै है काटैं, गाइलाई कि गोरुलाई।
हजुर ज्यानले बोलाउनु भयो, मलाई कि अरुलाई। लैबरी
आजु र मैले खेताला डाकें, नौ बीसे नौजवान।
बिरानो देशमा मैं मरी जाउँला, को दिने गौ दान।
बहर गोरु दाइसक्यो, एकबिस हिउँद खाइसक्यो।
हातको मासु हातैमा, बाबुको छोरो पाखैमा, लैबरी माले ह, ह।

(घ) घाँसे—यह गीत घास काटने जाते समय, गाय चराते समय, पहाड़ पर चढ़ते उतरते समय या गोचर भूमि में युवक युवती, बालक बूढ़े गाते हैं। यह 'असारे' की तरह होता है, पर इसकी लय दूसरी है :

सुनबुट्टे बेंसे नक्कले दाई, ठोकरे राम्रो गाजु गाई।
नौ डाँड़ा पारी मेलुंगे दाई, चाहिंदैन केही मलाई॥
लाउँदिन माया तिमीलाई, नलाउ रे माया भो, भो।
चार चोली मैले फोड्सकें, पराईको घरमा गैसकें।
नानी की आमा भैंसकें, नलाउ रे माया भो, भो!
आज रै मैले त्यो घाँसे न काटें, सिंदूर को बनमा।
यत्तिको दिन भो न छ चिठीपत्र, विरह उठ्छ मनमा।

(ङ) दँवाई—यह पूर्व पश्चिम सर्वत्र मार्गशीर्ष में धान काटते (दँवाई करते) समय गाया जाता है :

पूतली गाई को बाछो बरादो, माली गाई को नाती।
हिंड्न लाग्यो मेरा भाइ बरादो, धान रराल माथि।
हाम्रा बरातुका लामा लामा कान, ल्याऊ भूमे राजा खलाभरी धान।
हाम्रा बरातुले पाएन जोडी खलाका भूमे राजा, ल्याऊ पहरा फोरीफोरी।

(२) नृत्यगीत—

(क) सोरठि—यह गीत नृत्य के साथ गाया जाता है। सोरठि एक नृत्य का नाम है, जो विशेषकर नृत्यप्रेमी गुरुंज जाति में अधिक प्रचलित है। दशहरा, भैयादूज और मार्गशीर्ष महीने में प्रायः यह नृत्य होता है। यह अधिक सरस और सुंदर नृत्य है। इसके साथ गाए जानेवाले गीत को भी 'सोरठी गीत' कहते हैं। नृत्य में ३ से लेकर ७–८ व्यक्ति तक होते हैं। पुरुष सफेद चोगा, सिर में पगड़ी, हाथ में रुमाल और गर्दन में माँदल (ढोलक की तरह का वाद्य) लटकाता है। स्त्री दुपट्टा, साड़ी, चोली, कान में सोना, गले में माला, हाथ में डबल चूड़ी, रूमाल तथा पैरों में घुंघरू इत्यादि से सुसज्जित रहती है। इसमें एक 'लवार पांड' होता है, जो चारो तरफ घूम घूमकर माँदल बजाता हुआ नाचता है। पहले एक पुरुष बैठे बैठे माँदल बजाते हुए लंबे स्वर में पगड़ी का एक छोर छूते हुए नाचता है। स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर भूमि को दंडवत् करते माँदल बजाते नाचते हैं। आसपास बैठे हुए लोग एक स्वर में गाने लगते हैं। थोड़ी देर नृत्य करने के पश्चात् ये लोग और कई लयो में गाते हैं। गीत विशेषकर बूढ़े या प्रौढ़ पुरुष ही गाते हैं :

यसै पापी राजा को आस छैन मलाई, चलि जाउँ माइती को देश।
बारीको रायो तुषारोले खायो, सानीआमै यो ढिंडो के सित खाउँ?
बालक कालमा खसम बितिगयो, सानीआमा यो वैराग कसलाई सुनाऊँ।
यो पापी राजाको आस छैन मलाई, चली जाऊँ माइ तीको देश।

लिन आऊ संगी मेरी, फाटिदेऊ बादल, म त हेर्छु माइतीको देश।
यस पापी राजाको आस छैन मलाई, चलि जाऊँ माइतीको देश।

(ख) माँदले—माँदले नृत्य नेपाली लोगों का प्राण है। यह सारे नेपालियों को एक सूत्र में बाँधने का महामंत्र है। प्रायः सभी नेपाली लोकगीत, लोकनृत्य इसी के कारण आज जीवित हैं। आज तक हमारे पूर्वजों के धरोहर को सुरक्षित रखनेवाला यही माँदल है। इसी माँदल की धुन में नेपाली लोकगीत की सृष्टि होती है। यह माँदले नृत्य युवक स्वर में स्वर मिलाकर गाते और नाचते हैं। स्त्रियाँ भी माँदल बजाकर यह नृत्य करती हैं :

लौ लौ बजाऊ मादलु, फाटिदेउन बादलु।
फाटिदेउन बादलु, है २
लौन है शशी बजाइद्यौ, बजाइद्यौ मादल जोडले।
कालोमा ठेकी-काली काठको, रातो न ठेकी दारको।
रातो न ठेकी दारको! है २
ठाडेमा जाने उकाली त, तेर्सै जाने फेरो।
खोइ, खोइ, आमै देखाइद्यौ, बाँकटे भोटो मेरो!
बाँकटे भोटो मेरो! २
टुप्पैमा काटी कलमी त, फेदैन काटी सोते।
फेदैन काटी सोते! है २

(मारुनी सिंगार्दा)—

सिरे क्या रे पछ्यौरा मेरो, स्वामी राजैले दिएको।
स्वामी राजे पुरुषलाई कही न बिर्सू।
खेलौंला हाँसौंला, डुलौंला, फिरौंला।
यति गरी कठैवरा, यही घर फिरौंला।

(मारुनी का सिंगार करते समय गाते हैं—सिर में मेरी पगड़ी है, जिसे मेरे स्वामिराज ने दिया है। मेरे स्वामिराज पुरुष मैं तुम्हें कभी न भूलूँ।

खेलेंगे, हँसेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे।
इतना करके हाय हाय, फिर इसी घर में लौट आएँगे।)

(ग) डंफू—यह नृत्य तमंग (तामाङ्) जाति में ज्यादा चलता है। इसमें दो से लेकर चार व्यक्ति तक नाचते हैं। वे नृत्य का चोगा पहनते तथा कमर में चारो तरफ चँवरी की पूँछ से बटी रस्सी बाँधते हैं। इसमें पहले 'डंफू' (डमरू) और घंटा मंद चाल में बजता है। वह थोड़ी देर बिना गीत के नृत्य के साथ ही बजता रहता है, तत्पश्चात् धीरे धीरे गीत शुरू होता है। फिर नर्तक नाचना शुरू करते हैं।

'डंफू' की चाल के साथ साथ नृत्य की चाल द्रुत गति से बढ़ती जाती है। अंत में गीत बंद हो जाता है और बाजा बजता रहता है तथा नर्तक नृत्य करते रहते हैं। नृत्य करते हुए नृत्यकार चारों तरफ ऐसे घूमते हैं कि कमर में बँधी हुई रस्सी एक वृत्त सा बनाती है। तभी डंफू अपनी चाल मंद करता है और उसके साथ ही नृत्य की गति भी मंद हो जाती है। फिर गीत शुरू होता है। चारों तरफ आदमी बैठे होते हैं। गीत नृत्य की धीमी चाल के साथ धीमी गति से गाया जाता है। एक गीत इस प्रकार है :

उभो त सैलुङ् डाँड़ैमा, चम्री को पुच्छर भैसैमा।
हाम्रो त डंफू बिड सानो, डंफू को चरा उड्छानो।
बाहुनको घरमा सेल पोल्छ, भोटेको घरमा बाबर पोल्छ।
बाबुको ठूलो कान्छालाई, सिंगै कुखुरा रक्सी खोई।
बाबुकी ठूली कान्छीलाई, सिंगै कुखुरा रक्सी खोई।
डंफू त हाम्रो बिड सानो, डंफू को चरा उड्छानो।

(ऊपर सैलूंग नाम के डाँड़े पर चँवरी की पूछ भैंसा है। हमारा डंफू तो छोटा है।......)

(घ) बालन—यह नृत्य जागरण बसते समय, पशुपतिनाथ के स्थान पर महादीप जलाते समय तथा सतव्यु लगाते समय अधिक होता है। इसमें नर्तक अपनी इच्छा के अनुसार कपड़े पहनता है, कोई निश्चित पोशाक नहीं होती। इस नृत्य में माँदल मंद चाल से बजता है। गायक भी माँदल की ताल के साथ साथ मंद गति से गाता है। इसमें १ से १६ व्यक्ति तक नृत्य करते हैं। यह नृत्य ४ पाइले (कदम), १६ पाइले, ३२, ६४, १२८ पाइले तक का होता है। नृत्य करते समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारो तरफ घूम घूमकर नाचते हैं। नाचते समय एक कदम बढ़ाकर भूमि को छूते हुए नमस्कार करते, फिर पीछे हटकर और पुनः दो कदम आगे बढ़ नमस्कार करके फिर पीछे हटते हैं। इसी प्रकार आगे बढ़ते और जितने कदम नृत्य करने की इच्छा हो उतने ही कदम नृत्य करते हैं। गायक धीरे धीरे गाते रहते हैं। इस गीत में देवताओं के भजन अधिक होते हैं :

हो हो, तिम्रै सरणमा खेलन आयौं, आज्ञा देऊ धर्तिमाता।
हो हो, सत्यको कीर्ति गणपति ब्रह्मा, लंबोधर विधाता।
हो हो तिम्रै०
हो हो, तिल भीर मा समी को रूख, मंछे को अधम तहाँ।
हो हो, तँ पापी दैत्येले, के मार्लास मलाई, तँलाई मार्नै गोकुल यहाँ।

(हे धरती माता, हम तुम्हारी शरण में खेलने आए हैं, तुम हमें आज्ञा दे दो।

हे सत्य की कीर्ति गणपति ब्रह्मा लंबोदर विधाता, हम तुम्हारी शरण आए हैं ।······)

(ङ) करुवा (साली बहनोई) गीत—यह नृत्य किसी निश्चित समय में नहीं किया जाता । इसमें स्त्रियाँ न हों तो पुरुष ही दिन या रात, किसी समय नाचते हैं । इसमें परिधान की भी उतनी आवश्यकता नहीं होती । गीत भी अपनी इच्छा के अनुसार गाया जाता है । गावों में तो मादल ही बजाते हैं पर मेला, हाट आदि जगहों में जाते समय मजीरा भी साथ बजता है । एक गीत इस प्रकार है :

औंठी त देख्छु प्युठाने, कसले मार्‌यो वैना ?
यता हेर ए साँहिली, म हूँ तिम्रे भेना ।
छ कि माया पुरानो लाउँ कि त माया फेरि ?
होला कि माया पुरानो, बोलाऊँ कि माया फेरि ?
मायाले होला कि मलाई ? बाटैमा फूलमाला राखेको ?
छ कि माया पुरानो लाऊँ कि त माया फेरि !
होला कि माया पुरानो, बोलाऊँ कि माया फेरि !
चौतारो मैले चिनैको, साली लाई भनेर ।
अब त जान्छु भनन, चुल्ठे कपाल कोरेर ।
छ कि माया पुरानो, लाउँ कि त माया फेरि ।
होला कि माया पुरानो, बोलाऊँ कि माया फेरि ।

(३) ऋतुगीत—

(क) लोसर—यह माघपूर्णिमा को या सरसों पकने के समय गाया जाता है :

भगवती साँचिला घोता, फूलपाती चढ़ाउने मै एउटा ।
कति राम्रो ठोकरे गाजूगाइ, हामी जान्छौं बस है दाजुभाई ।
सालको पात टुप्पैमा सुकेको, मेरो माया जगतै फुकेको ।
सपनिमा सबैको हाइहाइ, विपनिमा कोही छैन दाजुभाइ ।

(ख) बारहमासा—यह गीत बारहो महीने भिन्न भिन्न ढंग से गाया जाता है :

वैशाख महीना तालु छेड़ने धूप, हरे राम अग्नि जस्तै रूप ।
जेठको मास टनटलापुर घाम, असार मास दहि च्यूरा खानु ।
हरे राम हलीको बचिगयो भानु, साउन मास दूधको खीर ।
भदौ मास उर्ली आउने गंगा, असोज मैना फुल्लि गयो काँस ।
कार्तिक महीना लिंगौ पुज्ने चाड़, पूसको मास बरर शीत ।

आघको मास घामले गर्छ हित, फागुन मास पलाइ गयो मुना।
चैतको मास हरी बतास खूब, यति मंदामंदै बाह्रमास पुग्यो।
सुन्ने लाउला फूलको माला, मन्ने स्वर्ग जाला।

(ग) जाड़ो—

दुःखीलाई नआओस् जाड़ो, पिंडीमा सुत्न नि पाइन्न।
भैंसीले दिंदैन दूध, घाँस पनि पाइंदैन वनमा।

(४) मेला गीत—

(क) देउडा—'देउडा' युवक युवती मेला (पर्व) में गाते हैं। वे एक दूसरे के हृदय को जाँचने के लिये गीत में सवाल जवाब करते हैं :

युवक—गों जों खायो सिंदूरेले, सोलीयाना भरको माया।
धान खायो भीकांले सोलीयाना भरको माया ।
काँ छ सुवा पानी न्याउँलो, सोलीयाना भरको माया।
मरि गए तिर्खाले, सोलीयाना भरको माया।
युवतो—किट्टा किट्टा पाटी गैगो सोलीयाना भरको माया।
गोडा मैको पाउलो सोलीयाना भरको माया।
आइज मैना खाइजा पानी सोलीयाना भरको माया।
नजीकै छ न्याउलो सोलीयाना भरको माया।

(युवक—तुम्हारे साथ सोलह आने प्रेम करता हूँ। ओ जलरूपी न्याउली (चिड़िया), कहाँ हो, मैं प्यास से मर रहा हूँ।

युवती—तुम्हारे साथ पूरे सोलह आने प्यार है। ओ मैना, आओ और जल पियो, तुम्हारी न्याउली पास में ही है।)

(५) त्योहार गीत—

(क) तीज (श्रावण)—

वर्ष दिनका तीजमा मैया लिन आएका,
पठाउनुस् न राजै ! माइत बरिले।
पति—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्रा ससुरालाई विन्ति चढ़ाऊ।
बहू—खटियामा बसेका ससुरा हाम्रा,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं ?
ससुरा—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्री सासूलाई विन्ति चढ़ाऊ।

बहू—भान्सैमा बसेकी सासू बज्यै हाम्री,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं।
सास—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्रा जेठाज्यूलाई विन्ति चढ़ाऊ।

बहू—पाठशालामा बसेका जेठाज्यू हाम्रा,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं।
जेठा—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्री जेठानीलाई विन्ति चढ़ाऊ।

बहू—खोपीमा बसेकी जेठानी हाम्री,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं।
जेठानी—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्रा देवरलाई विन्ति चढ़ाऊ।

बहू—गोठमा बसेका देवर हाम्रा,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं।
देवर—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्री देवरानीलाई विन्ति चढ़ाऊ।

बहू—ढिकीमा बसेकी देवरानी हाम्री,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं।
देवरानी—त्यो कुराको हामीलाई मालुम छैन,
तिम्रा स्वामीलाई विन्ति चढ़ाऊ।

बहू—खटियामा बसेका स्वामी राजे हाम्रा,
हामीलाई माइत पठाउने कि नाहीं।
पति—आज पनि माइत, भोलि पनि माइत,
ल्याउन आमै मुँगरो फोर्छु तिगरी।

बहू—यति खेर मेरा बाबै कपड़ा कोठी खोल्दा हुँ।
कति रै छु अभागिनी बिचै मरैं नी॥
सास—लाउन दिने ससुरा खान दिने मैं छु,
न रोऊ न रोऊ मेरी बहू माइत संझेर।

बहू—खटियामा सुतेको कोपरामा चुठेको,
कैले हुन्थ्यो मेरी बज्यै माइतघर जस्तो।

(ख) भैलो (दीवाली)—यह गीत दीवाली की रात में स्त्रियाँ मिलकर गाती हैं। दिन को समवयस्क लड़के लड़कियाँ मिलकर घर घर जाकर इसे गाते हैं:

हे औंसीवारो गाइ तिहार—भैलो।
हरियो गोबरले लिपेको, लच्छिमीपूजा गरेको,
हे औंसी वारो गाइ तिहार—भैलो।
भै लेनी आइन् आँगन, गुने चोलो माँगन, हे औंसी०।
जसले दिन्छ मानो, उसको सुनको छानो।
जसले दिन्छ मुरी, उसको सुनको धुरी।
जसले दिन्छ पाथी, उसको सुनको छाती। हे औंसी०।
हामी यसै आएनौं, बलि राजाले पठाएको, हे औंसी०।

(ग) देउसी (भैयादूज)—यह गीत भी भैयादूज के दिन से युवक लड़के अपने अपने साथियों को लेकर घर घर जाकर गाते हैं। एक वृद्ध अगवानी करने के लिये साथ रहता है। जब बूढ़ा चारो तरफ घूमकर पहले अगवानी (गाते हुए) करता है, बाकी सब एक स्वर में ताल मिलाकर 'देउसीरे' कहते हैं। 'देउसी' की चहल पहल दो तीन दिन तक रहती है। जिस घर में 'देउस्यारे' (दल के लोग) जाते हैं वहाँ उनको 'सगुन' खाने को मिलता है, जिसे 'देउसे भाग' कहते हैं। इसे खाने के बाद फिर थोड़ी देर 'देउसी' खेलकर उस घर के सभी लोगों के लिये वे शुभकामना व्यक्त करते हैं। (इसकी लय प्रयाग के मेले में 'हर गंगा' गाने जैसी है):

हे भन भन भाइ हो, देउसी रे।
वर्ष दिनको, देउसी रे। चहाड़ ठूलो, देउसी रे।
रमाइलो पर्व, देउसी रे। झिली र मिली, देउसी रे।
घर घर बत्ती, देउसी रे। ये बल गर भाइ हो, देउसी रे।
ये भन भन भाइ हो, देउसी रे।
सेल र रोटी, देउसी रे। जो दिनु पर्नै, देउसी रे।
दिनेमा लागे, देउसी रे। झ्यालबाट हेरे, देउसी रे।
आँगनमा आए, देउसी रे। पख पख जेठू, देउसी रे।
था था बाबु, देउसी रे। भन भन भाइ हो, देउसी रे।

आशिश—गाइ वस्तु बढुन्, देउसी रे। माटो सरी द्रव्य, देउसी रे।
घरभरी अन्न, देउसी रे। भरी पूर्ण होउन्, देउसी रे।
न परोस् दुःख, देउसी रे। न परोस् पीर, देउसी रे।
ये भन भन भाइ हो, देउसी रे। ये भन भन भाइ हो, देउसी रे।

(घ) मालसिरी (क्वार नवरात्र)—इसे दशहरा के समय स्त्रियों का दल नौ दिनों तक दुर्गादेवी की पूजा करते समय, पूजा की कोठरी के बाहर बैठकर, गाता है। इसमें देवी का वर्णन रहता है:

श्रीदेवी भगवती दुर्गा भवानी, जगतको प्रतिपाल गर।
हा हा दुर्गे प्रचण्डरूपी, कालीके प्रतिपाल गर।
जय देवि भैरवी गोरखनाथ, दर्शन देउ भवानी ये॥
प्रथम देवी उत्पन्न भई हैं, जन्म लिये कैलाश ये।
ज्योति जगमग चहुँदिशि देवी, चौषष्ठियोगिनी साथ ये॥ज०॥१॥
सप्ना दिये हैं गोरखनाथको, भैरवी मनाइये।
विस्वास ये भोग प्रसन्नादेवी, वर्दानि दिये सब देश ये॥ज०॥२।
देवी बचन बरदान पाये हैं, भारत सकल नेपाल ये।
खाटसिंहासन जीतिलिये हैं, और लिये सब देश ये॥जय०॥३॥
देववरन माथ मुकुट बदन सूर्योदये।
तपस्या जीति प्रकट भये है, तखत भये हो नेपाल ये॥जय०॥४॥
शिरमा सिन्दूर मुकुट झलकत, कुण्डल झलकत कानमा।
देववर श्रीरणबहादुर तपस्या, जीति अखण्डये॥जय०॥५॥

(६) संस्कारगीत—

(क) विवाह—

(१) मँगनी—

पिता—नियाली देशबाट माग्न आए,
जान्छयौ कि जान्नौ जेठी मैया?
पुत्री—बाबुको वचन कति मैले हारूँला,
छुरीको दाइजो दिए बरिलै।

पिता—छुरीको दाइजो किन दिउँला छोरीलाई,
खड़्करो दाइजो दिउँला बरिलै।
नियाली देशबाट माग्न आए,
जान्छयौ कि जान्नौ माहिली मैयाँ?
दूसरी पुत्री—बाबुको वचन कति मैले हारूँला,
छुरीको दाइजो दिए बरिलै।

पिता—छुरीको दाइजो किन दिउँला छोरीलाई,
रोजेको दाइजो दिउँला बरिलै।
नियाली देशबाट माग्न आए,
जान्छयौ कि जान्नौ साहिंली मैयाँ?
तीसरी पुत्री—बाबुको वचन कति मैले हारूँला,
छुरीको दाइजो दिए बरिलै।

पिता—छुरीको दाइजो किन दिउँला छोरीलाई,
गाग्री दाइजो दिउँला बरिलै ।
नियाली देशबाट माँग्न आए,
जान्छयौ कि जान्नौ कान्छी मैया ?

कनिष्ठ पुत्री—बाबुको वचन कति मैले हारूँला,
आफ्नो करम खाम्ला बरिलै ।

(७) प्रेमगीत—

(क) बुझौअल—

दाइदे सुवा घाइदे ढुंगो तिनमा सब मिलाइदे ।
पंद्रह मुन्टो उन्तीस आँखा त्यसको अर्थ लाइदे ।
पानी खान मयालु, झरेको मैना,
पानी चाहिं मयालु, पाउँछ कि पाउँदैन ?
दाइदे बुढ़ा, घाइदे ढुंगो जस्मा गरी यो भो ।
एक रावण, एक ब्रह्मा, एक शुक्र ठीक भो ।
लहलह मयालु हालेको जोबन,
सानु माया मयालु, दन्केको आगोलाई ।

जुआरी—

कहिले झरयो ओराली, कहिले चढ्यो उकाली ?
भेट हाम्रो कहिले भएथ्यो, नबोल माया यसै ।
लेकमा हो या, बेसीमा घर, बताउन दाज्ये के हो थर ?
के काम गर्छौ, के छ भर, पल्टने जागीर खाएका हौं ?
कि गाउँघरका मुखिया हौं, बाबुका छोरा कुनचाहिं हौं ?
कि स्वास्नीका धनी छौं, बताउन दाज्यै लौ, लौ ।

(ख) झ्याउरे—

ए साहिंली प्रीतिको फूल न वेलीआँसू संगसंगै जावोस् झरेर ।
पानी र परयो त्यै रिमीझिमी, हिउँ परयो थुमथुमैमा ।
एक डाँड़ा तिमी एक डाँड़ा हामी माया छ कुमकुमैमा ।
हिमाल चुली हिउँको रासी, हिउँले कैले छाड्दैन ।
बगेको पानी लाएको प्रीति, थामेर कैले थामिन्न ।
ऐया हो साहिंली रीमाई चौरीगाई, जाले रुमाल मारयो मधुवन ।

(ग) लाहुरे—

लाहुरेको रेलीमाई फैसनै राम्रो,
रातो रुमाल रेलीमाई खुकुरी भिरेको।
लाहुरेको रेलीमाई फैसनै राम्रो,
रातो रुमाल रेलीमाई तुम्लेट भिरेको।
आमाले के छोरो पाइछन्,
लाहुरे बन्न दुई अमल पुगेन।

× × × ×

भोलि जानु पर्‍यो है साहिंली, जानु पर्‍यो जिर्मनको घावैमा।
घर त तिम्रो रेलीमाई, सय खोला पारी।
आउनुहोला रेलीमाई, जर्मिनलाई मारेर।
बैरागीलाई रेलीमाई संझनुहोला,
आउनुहोला रेलीमाई, राम हरि संझेर।
सालको पात रेलीमाई, साहिंलीको हात।
एउटा चिठी रेलीमाई, खसाल्यौ रेलबाट।
खोला खोला रेलीमाई नहिंड्नु होला।
दुस्मनले रेलीमाई, खसालला बमगोला।

(घ) वियोग—

गाइ भैंसीको विजोग भयो गोठालो भागिगो।
भाई मिली खायाका थियौं फटाहा लागिगो।
मालिकाको सेवा अन्या वर पाउँलाइन क्या।
काजले पर्देस ल्यायो घर जाउँलाइन क्या।
कै वैरीले काटी दियो बाँसको कलिलो।
जोवा छ देवर मेरो पोइ छ झन् बलियो।
मह घेकी मीठो क्यै नाउ खा भन्या खाँदैन।
मनले रोज्याको छाडी जा भन्या जाँदैन।
गोठाला घाँस काटी लैया खोलाउँन्याको पीन्या।
धान बेच्दो छ कोधा खान्छ सानु भया धीन्या।
औंलीसो भैंसोली कन बेडुलो गाइकन।
नर्तम्या फुलौटो मर्‍यो कोधाइ न पाइकन।
दाइ गयो भैंसोल्या पूर्व भाइ गयो मावला।
कि गड्या गड्याउरे भवो कि गड्या पावला।

ए साइमल्या तैंले खाइ कि मौलाको दैं तानी।
कि तोइ होल्लाइ कि मै हौंला प्रीतिको रैथानी।

(ङ) पंछी—नेपाली लोकगीत में पत्ती ने भी मानव हृदय का मान पाया और सुख दुःख में उसका साथ दिया है। उसके पास कौवा बोलने लगे तो शुभ अशुभ समाचार के लिये हृदय छटपटाने लगता है :

नकरा बनको न्याउली, तं भन्दा म दशगुना वैरागी।
नकरा बनको कोकले, मारिदिउँला रिसको झोंकले।

(ओ वन की न्याउली चिड़िया, विरक्त होकर न चिल्ला।

तुझसे तो मैं दस गुना वैरागी हूँ। ओ वन की कोकिले, तू मत चिल्ला, नहीं तो गुस्सा होकर तुझे मार डालूँगा।)

चरी बस्यौ बाँसैको मुनामा, छिन्ला पोते नसमाऊ तुनामा।

× × × ×

तितरीको मासु जति भुट्यो उति चाम्रो।
बैंसालु केटी जति हेर्यो उति राम्रो।

(···तुम तने मत पकड़ो, नहीं तो पोत (माला) टूट जायगा।

तीतर का मांस जितना ही भूनो उतना ही कड़ा होता है, जवान लड़की को जितना ही देखो, उतनी ही सुंदर लगती है।)

(च) अन्योक्ति—

ए आमा सानीमा, फूलको थुंगा खस्यो पानीमा।
जुत्ता भिज्यो टोपी भिज्यो, फालैतुङ् को शीतले।
ऐनामाथि बैना राखी, झन्डै लग्या मितले।
ए आमा सानीमा, फूलको थुंगा खस्यो पानीमा।
गुदुगुदु भातै पाक्यो, तिहुनलाई तेल छैन।
उड़ी जाउँ भने म पन्छी होइन, पहाड़मा रेल छैन।
ए आमा सानीमा, फूलको थुंगा खस्यो पानीमा।
गाई हिंड्ने गोरेटो त भैंसी हिंड्ने गौंहो।
यत्ति राम्रो लाको माया छुट्याइदिने को हो ?
ए आमा सानीमा, फूलको थुंगा खस्यो पानीमा।

(८) बालकगीत—

(क) खेल—

चचली पुइयाँ, चचली पुइयाँ।
घुंघोन भैया, स्यालको हुइया।
चचली पुइयाँ, चचली पुइयाँ।

उठ उठ रेखी उठन्धरा बैह्री, ध्यू खाने डाङ्क पंचरते बाजा।
घुमाउने टपरी चीनियाको खाजा, खेलुँ र खेलुँ बसी जाऊन।
बस बस रेखी बसुन्धरा बैह्री, ध्यू खाने डाङ्क पंचरते बाजा।
घुमाउने टपरी चीनियाको खाजा, खेलुँ र खेलुँ उठी जाऊन।

(ख) लोरी (निंदुली)—

टप टप टोपी कुस्मै राना, बाघिनी सिंघिनी ऐरा गेछ।
ऐराबाट मूसिमारि ल्याइछ, मूसी मैले आरन् राखें।
आरन्‌बाट सीयो पायें, सीयो मैले दमाइँलाई दियें।
दमाइँले मलाइ टोपी दियो, टोपी मैले गोठालालाइ दियें।
गोठालाले मलाइ घाँस दियो, घाँस मैले गाइलाइ दियें।
गाइले मलाइ दूद दिइन्, दूद मैले गंगा डोलायें।
गंगाले मलाइ सहर दिइन्, सहर मैले राजालाइ दियें।
राजाले मलाइ घोड़ा दिंये, घोड़ा गयो छड़्की।
म आयें फड़्की।

(ग) नेपाल—

हिमालचुली हिउँले सेते नागबेली परेको।
छ चीसो पानी रुसाउने घाँटी, हिउँ पग्ली झरेको।
कसले होला गाएको गीत, खोलालाई रोकेर ?
नसुनाऊ गीत बैरागीलाई, विरह रोपेर।
माछापुच्छरे हिमालयको, चाँदीकलपै ठुन्को।
झल्को लाग्छ नन्देभाइको, माया लाग्छ उनको।
कालो बादल सगरमा छायो, हिउँचुलीलाई ढपक्कै ढाकेर।
ए, चौंरीगाई कहाँ गयो, धौलागिरि बनैमा।
बिहान पख झुल्कने घाम, डाँड़ानै शिरान।
एकसरो जीवन बीताउन गाह्रौ, भैगएँ हैरान।
हलो र गोरू जोखमी भयो, सौवार डाम्नाले।
रसको यौवन बेरसे भयो, अकेला बोल्नाले।
ए, चौंरीगाई कहाँ गयो, धौलागिरी वनैमा।

(घ) ननद भाभी—

ननद—नेपाले सिंदुर सुनको बट्टी लाऊ न लाऊ।
जेठी भाउज्यू, जेठा दाजेले लगनमा दिएकौ।
गलैको पौनियो लाऊ न लाऊ जेठी भाउज्यू,
जेठा दाजैले लगनमा दिएको।

हातैको चुरा लाऊ न लाऊ जेठी भाउज्यू, जेठा० ।
पाँवैको कल्ली लाऊ न लाऊ जेठी भाउज्यू, जेठा० ।

भाभी—सिरको सिन्दुर कसरी लाउनु ?
ए जेठी नन्द, तिम्रा दाज्यै रणमा मरेका ।

ननद—सिरको सिन्दूर पैरन भाउज्यू,
हाम्रा दाज्यै आई र पुगे विजयपुर शहर ।

भाभी—त्यतिको झझत्को किन पो मान्छ्यौ नानी ।
कैले र आउँथे तिम्रा दाज्यै रणैमा परेका ।

(ङ) सासबहू—

सासु भन्छे—बुहारी बुहारी भन्छे—जीउ,
सिङ्माङ् मा राखेको कसले खायो घीउ ।
देख्नु न सुन्नु मैले कहाँ खाएँ,
ओंठ तेरा चिल्ला छन् थाहा मैले पाएँ ।
ढोका जत्ति थुन्छु, झ्याल जत्ति खोल्छु,
घिउ चोर्ने बुहारीको, ओठ तेरा पोल्छु ।

(च) सिपाही—

आजसम्म उसैका भर, अबलाई शून्य भो घरबार ।
ठग्गु भनी फकाई फकाई, लग्यो होला गल्लाले उसपार ।
अझ, उ कल्पना गर्छौं, कहाँ बसी के खायो होला ।
गोरखपुरमा कुन गोर्खामा भर्ना भो; लाहुरे भै खुकुरी भिरेर ।
समुद्र पारी कुन दिशामा खटी गो ।
लाहुरेको काँधैमा झोला, हान्छ क्यारे जर्मनले बमगोला ।
लाहुरेको फेसनै राम्रो रातो रूमाल खुकुरी भिरेर ।
मायालाई झलक सम्झेर, आउनु होला जर्मनलाएँ मारेर ।

(६) कर्खा—इसे बारहो महीने गाइने लोग सारंगी के साथ गाते हैं। इसमें वीररस से ओतप्रोत ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख रहता है। एक उदाहरण देखें :

(पृथ्वीनारायणशाह का नेपाल पर आक्रमण)

महाराज का भीम भाइ चौतरिया मदन कीर्ति शाह ।
पहिला नुवाकोट, बेलकोट मारे, ककनी आई साँध लाए ।
नुवाकोट देखि फौज ल्याए बेलासपुर, थीसी कपिलास आए ।

पच्छे घातु नजीकन सिंधू धक्का लगाई दलदुरगा का साई।
पूर्व सिंधू नालदुङ्मानँ मदन कीर्ति शाह।
थाना टिस्टुङ् पाल्दुङ्, फर्पिङ् को भारा जेठा चौतरिया।
झिल्टुङ् दहुवा, दहचोक हांदै चांदागिरि पुगे।
बुडंचोली, जाई ठाना देउन सात गाउँ लुटी ल्याए।
वुडमती, खोकना, चपागाउँ मारी सहरलाई धक्का दिए।
सिम्पुरी बाहौं भन्छन् मणिको हान्नलाई।
मणिको चौतरियाले टोखा, धरमथली लुटी ल्याई।
तीन सहर का भाग्न थाले जयप्रकाश का सिपाही।
नेपाल हान्ने, जीह गर्नु, कीर्तिपुर, सिंभू क्षेत्र वार्नु।
सांखु, चांगु दुवै मारी डुंगङ् थाना जानु।
दुङरुङ् मारी ठिमी आउनु तीन सहर प्रवेश गर्नु।
भादगाउँ का रणजीत मल्लुलाई डोली चढ़ाई ल्याउनु।
शिव मंडल पलांचौक ठानापर्‍यो भमरकोट।
महादेव पोखरी बलियो गर आउँला रानीकोट।
बाह्र तिमल हाथ लिई पूर्वको छुट्ल्याए देश।
चमड़ा; कस्तूरी, बाजे तुरूगा लिस्टां लिस्टां मारे भोट॥

४. मुद्रित साहित्य

नेपाली भाषा अपने लोकसाहित्य में अत्यंत समृद्ध है पर उसके संग्रह की ठीक तौर से अभी तक चेष्टा नहीं की गई है। नेपाली साहित्यिक भाषा यद्यपि संस्कृत तत्सम शब्दों और रूढ़ियों से बहुत प्रभावित है, तथापि बोलचाल की भाषा का आकर्षण भी बहुतों को है। इसीलिये लोकसाहित्यिक शैली में कविता लिखने की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। नेपाली भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि श्री लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'मुनामदन' में इसी शैली का प्रयोग बड़ी सफलता से किया है। लोकगीतों के सर्वश्रेष्ठ गायक श्री धर्मराज थापा ने इसी शैली में 'बनचरो' लिखा है। जहाँ तक लोकगीतों के संग्रह का प्रश्न है, श्री लक्ष्मीप्रसाद लोहनी द्वारा संगृहीत 'रोदीघर' और श्री सत्यमोहन जोशी द्वारा संगृहीत 'नेपाली लोकगीत' दर्शनीय हैं। लोकगीतों की विशाल राशि, जो बूढ़े कंठों में जीवित है, की रक्षा के लिये कोई विशेष उद्योग नहीं किया जा रहा है जो बड़े खेद की बात है।

कुछ शिक्षित गायक और कवि लोकगीतों की शैली के कुछ गीत लिख गाकर संतोष कर लेते हैं, और चाहते हैं कि उन्हीं के गीतों को लोकगीत समझा जाय। यह मनोवृत्ति लोकगीतों के महत्व को न समझने की है। नकली लोकगीत असली लोकगीतों का स्थान नहीं ले सकते। लोककथाओं को भी जनमुख से

निकली मूल भाषा में रखने की कोशिश नहीं की जाती और उन्हें साहित्य की शिष्ट भाषा में अनूदित कर देने की प्रवृत्ति देखी जाती है। ये ऐसे प्रयास हैं जो नेपाली लोकगीतों की रक्षा में विशेष बाधक हैं।

नेपाली लोकसाहित्य से संबंध रखनेवाली पुस्तकें ये हैं :

(१) रोदीघर—संग्राहक : श्री लक्ष्मीप्रसाद लोहनी (संवत् २०१३, काठमांडू)। इसमें शुद्ध लोकगीत व्याख्या के साथ एकत्र किए गए हैं।

(२) नेपाली लोकगीत (प्रथम भाग)—इसमें श्री सत्यमोहन जोशी ने कुछ शुद्ध लोकगीतों का संग्रह किया है।

(३) सवाई पचीसा—श्री पद्मप्रसाद उपाध्याय द्वारा संगृहीत इस ग्रंथ में पचीस सवाइयाँ हैं, जिन्हें शुद्ध रूप में संग्रह करने की चेष्टा नहीं की गई है। तो भी इनमें लोकसाहित्य के कितने ही गुण हैं। यह पुस्तक बनारस में छपी थी।

(४) दंत्यकथा माला—ललितजंग सिजापति द्वारा संगृहीत तथा संवत् २००३ में काठमांडू में छपी इस पुस्तक में सत्ताईस लोककथाएँ हैं। भाषा की शुद्धता का ध्यान नहीं रखा गया है, तो भी वह सरल है।

(५) नेपाली दंत्यकथा—संग्राहक : श्री बोधविक्रम अधिकारी (संवत् २००६ में काठमांडू में मुद्रित) यह पुस्तक भी उपर्युक्त पुस्तक जैसी है।

(६) मनमा—श्री कलानाथ अधिकारी द्वारा लोकगीत शैली पर लिखी यह छोटी सी पुस्तिका संवत् २००८ में काठमांडू (कांतिपुर) में प्रकाशित हुई। कलानाथ जी लोकगीतों के सुंदर गायक हैं। शुद्ध लोकगीतों के महत्व को वे नहीं समझ पाते, नहीं तो उनका अच्छा संग्रह कर सकते थे।

(७) मन धन—श्री कलानाथ अधिकारी के गीतों का छोटा सा यह संग्रह संवत् २००८ में प्रकाशित हुआ।

(८) कुतकुते गीत—श्री कलानाथ अधिकारी के गीतों का यह दूसरा छोटा संग्रह भी संवत् २००८ में प्रकाशित हुआ।

(९) नेपाली सामाजिक कहानी—नेपाली भाषा के यशस्वी कथाकार, नाटककार और कवि श्री भीमनिधि तिवारी का लोकगीतों के साथ विशेष अनुराग है। वे अपनी कृतियों में उन्हें जब तब उद्‌धृत किया करते हैं। उनकी सामाजिक कहानियों के कई संग्रह निकल चुके हैं। यह संग्रह (माहिलो) संवत् २००८ में मुद्रित हुआ था।

(१०) मधुमालती कथा—मधुमालती के प्रेमकथानक को लेकर श्री एम०

पी० शर्मा की यह गद्य-पद्य-मिश्रित कृति सन् १९५० में बनारस में मुद्रित हुई थी। इसपर भी लोकशैली की छाप है।

(११) नेपाली ऐतिहासिक संग्रह—श्री ललितजंग सिजापति ने यह संग्रह संवत् २००८ में काठमांडू में मुद्रित कराया था। इसमें बीस ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह है अतः यह लोकसाहित्य में नहीं गिना जा सकता।

इनके अतिरिक्त 'डाफेचरी', 'शारदा', 'साहित्यस्रोत' आदि पत्रिकाओं तथा दैनिक, साप्ताहिक पत्रों में भी कभी कभी लोकगीत निकलते रहते हैं।

१६. कुलुई लोकसाहित्य

श्री पद्मचंद्र काश्यप

(१६) कुलुई लोकसाहित्य

१. भौगोलिक दिग्दर्शन

कुलुई भाषी क्षेत्र एक विशाल भूखंड है जिसका क्षेत्रफल १,६१२ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ५ लाख है। यह दो भागों में विभक्त है—कुल्लू और सराज, जो उत्तर में तिब्बती (लाहुली, स्पिती), पूर्व दक्षिण में महासुई पहाड़ी तथा पश्चिम में काँगड़ी और चंबियाली भाषाक्षेत्रों से घिरा है।

कुल्लू को कुलूत तथा वहाँ के निवासियों को कुलिंदा या कुनिंदा भी कहते हैं। इस प्रदेश का उल्लेख स्वेन् चाङ् के यात्रावर्णन तथा संस्कृत ग्रंथों में आता है।

कुल्लू और सराज उत्तरी अक्षांश ३०°२८', ३०°२८' और पूर्व में ७६°५६' तथा ७७°५०' देशांतर के बीच स्थित है। बाहरी हिमालय में व्यास उपत्यका में कुल्लू तथा सतलुज उपत्यका में सराज है। सतलुज नदी दक्षिण पश्चिम की ओर बहती है जिसके दूसरे किनारे पर महासू के कोटगढ़, कुम्हारसेन तथा शांगरी नामक स्थान हैं। मंडी रियासत, जो अब हिमाचल प्रदेश का एक जिला है, कुल्लू के पश्चिम में स्थित है।

कुल्लू और सराज में खेती योग्य भूमि कुल सात प्रतिशत है, बाकी या तो जंगल है या निर्जन पहाड़ियाँ।

२. परंपरा

परंपरा के आधार पर कुल्लू का इतिहास महाभारत के समय से चला आता है। कहा जाता है, कुल्लू में एक समय तंडी राक्षस का राज्य था। वह अपनी बहन हिरंमा के साथा रोटांग दर्रे के दक्षिण में रहा करता था। पांडव भीमसेन प्रवास के दिनों में कुल्लू आया और लोगों ने उससे प्रार्थना की कि वह तंडी के अत्याचारों से उनकी रक्षा करे। भीम तंडी को युद्ध में परास्त कर उसकी बहन हिरंमा को अपने साथ ले गया। तंडी यद्यपि परास्त हो चुका था, पर अपने वंश की यह मानहानि सहन नहीं कर सका। उसने भीम का पीछा किया। दोनों में पुनः युद्ध हुआ जिसमें तंडी मारा गया। तंडी की पुत्री का विवाह भीम के साथी बदार (विदुर) के साथ हुआ, जिनसे भोट तथा मकर नामक दो पुत्र हुए। इनका पालन पोषण व्यास ऋषि ने किया।

दूसरी किंवदंती के अनुसार पांडवों ने अपने कुल्लू प्रवास के दिनों में डुंगरी वन में आकर शरण ली थी। आदिवासियों के मुखिया हिडंब (तंडी) को अपने प्रदेश में परदेसियों का आकर बसना अप्रिय लगा। उसने अपनी बहन हिडंमा (हिरंमा) को आदेश दिया कि वह पांडवों को मार डाले। बहन भाई का आदेश पालने चल पड़ी। मार्ग में उसने बीच जंगल में भीम को पत्थर पर सिर रखे सोता पाया। भीम के पौरुष और सौंदर्य पर मुग्ध होकर हिडंमा आदेश भूल गई और भीम से प्रणय की भीख माँग उसकी पत्नी बन गई। बाद में भीम ने हिडंब को मार डाला तथा उसकी पुत्री का व्यास मुनि के पुत्र विदुर से विवाह कर दिया। इस दंपती से मकर (कुल्लू) तथा भोट (तिब्बत) ने जन्म लिया।

३. पहाड़ी भाषाएँ

भारत की पहाड़ी भाषाओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाड़ी। पश्चिमी पहाड़ी जौनसार बाबर से चंबा तक बोली जाती है जिसकी भाषाएँ हैं—जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, किउँथली, कुल्लुई, मंडयाली, चम्याली तथा भद्रवाही।

(१) **सिरमौरी**—यह सिरमौर और जुब्बल में बोली जाती है। जौनसारी से इसका निकट का संबंध है, किंतु ज्यों ज्यों हम गिरी नदी के पूर्वोत्तर जुब्बल में आते हैं, यह किउँथली (कियुंथली) से मिलती जाती है।

(२) **बघाटी और किउँथली**—इन दोनों भाषाओं का आपस में निकट संबंध है। बघाटी बघाट (सोलन) में तथा कियुँथली अपनी कई विभिन्न बोलियों के रूप में शिमला के आसपास बोली जाती है।

(३) **कुलुई**—इस भाषा का क्षेत्र कुल्लू से लेकर हिमाचल प्रदेश के महासू जिले के उत्तर में सराहन, पूर्वोत्तर में कोट खाई, जुब्बल, घरोच और दक्षिण में बलसन, ठयोग तथा फागू तक है।

(४) **मंडयाली**—मंडी और मुकेत में बोली जाती है।

४. लिपि

पश्चिमी पहाड़ी के सारे भूखंड की भाषाएँ टाकरी (टक्करी) लिपि में लिखी जाती रही हैं। इधर अब टाकरी का प्रचलन कम हो गया है और देवनागरी लिपि सर्वप्रिय हो गई है।

टाकरी का कश्मीर की शारदा और पंजाब सिंध की लंडा लिपियों से निकट का संबंध है। इस लिपि में स्वरयोजना नितांत अपूर्ण है। मध्यम ह्रस्व स्वर प्रायः

प्रयुक्त नहीं होते हैं और मध्यम दीर्घ स्वर प्रायः अपनी पूर्व अवस्था में ही प्रयुक्त होते हैं। नागरी का 'तू' टक्करी में 'तऊ' लिखा जाता है।

कुलुई साहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। गद्य लोककथाओं और लोकोक्तियों के रूप में प्राप्य है।

५. गद्य

(१) **लोककथा**—इस भाषाक्षेत्र में विभिन्न प्रकार की लोककथाएँ प्रचलित हैं। सर्दी के मौसम में जब चारो ओर बर्फ छाई रहती है और खेती का कोई काम नहीं होता तब परिवार के सब सदस्य तथा गाँव के लोग भी आग के सामने बैठकर ऊन कातते और मनोरंजन के लिये विविध प्रकार की लोककथाएँ सुनते सुनाते हैं।

कुछ ऐसी कथाएँ हैं जो केवल बच्चों के मनोरंजन के लिये हैं। शायद ही कोई ऐसा बालक हो जिसने इन्हें न सुना हो। कुछ लोककथाएँ देवी देवता संबंधी हैं जिनमें किसी ग्रामदेवता के आशीर्वाद के फलस्वरूप अलौकिक घटना घटने या असंभावित फलप्राप्ति का वर्णन होता है। कतिपय कथाएँ किसी सामान्य व्यक्ति को लेकर ग्राम्य जीवन का सुंदर चित्र उपस्थित करती हैं। एक उदाहरण देखें :

देवा कोन्या (देवकन्या)

देवा कोन्या कथा में गद्य पद्य दोनों का मिश्रण है :

सौती जुग गेओ तौ भूकी, तँरता बी। जो आ द्वापारा जुगे गौल। पताळा दी तों तँभी बासुकी नागो राज ता, पिथवी गाहे तो काँसे ओ।

एकी बेरा, बासुकी नाग तौ बेशौ नो आपणों मेहला दी। सौब राणी बी ती तीदी। से ती तेऊ ए रोढा भांडदी लागोनी। तेऊ लागी ती नींज[1] आई। जेती तेऊए आख लागी ती लागी, तेती गेओ तेऊए मूंडा गाहे माटो लागी पौड़ी। सौ मटिए बरूर नीसी भूकी। सौ माटो तो लागो नीं पौडदौ पिथवी गाहा का। जीदी तेऊ ओ मूंड तौ, तेथा गाशे तो लाओ नीं राजा काँ सेए आपणों मेहल वीणनौं। तेऊ मेहले आथरी[2] ती लाइमी पाणीं सौ एतरी डूगी,[3] जै पृथिवी दो गेओ तो खाळ[4] पौड़ी। तेऊ खाळा का तौ सौ माटौ लागौ नीं पोड़दौ बासुकी नागा गाहे।

जेबी बासुकी नागै ऊजी हेरो, तै कै धिआ, धौरती दी आ खाळ पौड़ो नौ। सौ लागौ सोणा दौ।

[1] नींद। [2] नीव। [3] गहरी। [4] गढ़ा।

धरना पौड़ा तो दूधा है घिउआ रे।
आज पौड़ा माटीए बारूरा रे।

आजा तेंईं ता पौडां ती मूँ गाहै दूधा ता धीऊ ए धारणा। जौ आज के गौल हुई। मूँ गाहै लागी माटेए बरूर पौड़दी। हो न हो, गाशै पृथिवी गाहै कै नौई गौल लागौनी होंदी। जुण तेऊ राजा दी लागोनों होंदो तेथै खौबर सार चैंई जाणनी। ऐणों सीचिआ बोला—तेऊ ए आपणे छोट्टू तासकी नागा ले :

जाये ता जाये बेटा है तासकी।
भातड़ो का खौंबरा ले आए रे।

बेटा तासकी आ, तू नाह मिरतिऊ लोका लै, ती जुण किछ होदौ लागौ नों तेबे खौबरा आणा भूँ आग लै।'

बापुओ बैंणा शुँणींआ ताशकी नागै बी की[१] तैरी धौरती गाहै आँठें ए।

जेबी सौ गाशै धौरती गाहै आओ र तेखो लागौ रिंगदौ फिदौ। केबी एऊ सौहरा दी केबी दूजे दी। एँउ एक दिने आऔ सौ मौथरा नोगरी।

मौथा नौगरी दी तौ काँसे ओ रा। इंदे तौ तेऊए सौ मैहल लाओ नों चींणा नौ। काँसे राजे ता बासुकी नागे तौ आपू माँहें बैर। जेबी काँसे कै थोग[२] लागौ जै तासकी आऔ नो तेऊए नौगरी तेऊए, छाड़ी आपणें फौजा तेऊ ढाकणा ले। काँ सेए बोलौ—मेरी बैरी आओ नों, तेऊ आणा मूँ आगले बानी[३] आ।

फौजा बी आली नासकी पाछा। आगा तासकी, पाछा फौज। ठूरी ठूरी आ तासकी औ नीरखुऔ शौप[४]। सौ जेशा लै ठूरा तौ तेशा इ आती फौजम तेऊलैइ हूऐ आपणों आ बचाऊणे काठे। प्राणा के ती तेऊए पौड़ी नी।

नोहठदै नोहठदा तेसरे जोंधड़[५] गए शौलै[६]। शाश[७] तेहरौ लागो फूलदौ। सौ आओ एकौ बाई[८] आगे। जेभी सौ बाई गाहे ऊखुऔ तेहि[९] हेरो तेऊए एक ब्रामण लागौ नो जौपा[१०] कौरदौ। तेऊए डाएनै हाथ जोड़ी, आखी डाईनी हूडी[११]।

सौ ब्रामण तो बोसू। सौ तो बोड़ी पौंडित। तेऊए तै चारे वेद पौढ़नें। होंआ तौ सौ दाड़जी[१२]। भौ तौ कें को[१३]। धौरा के नेंही तै तेऊए कोए। दोती[१४] उझइआ[१५] गौआतौ सौ बाइ गाहे याही नाँहुँदौ धौऊँदौ।

तासकीए जेभी सौ हेरौ टौपचारैं[१६] आपणों रूप बोदलौ। माँखी बोणीं आ

[१] तैयारी। [२] पता। [३] बाँधकर। [४] दम। [५] पाँव। [६] थक। [७] साँस। [८] बावली। [९] वहाँ। [१०] जप। [११] बंद। [१२] निर्धन। [१३] अकेला। [१४] प्रातः। [१५] उठकर। [१६] शीघ्रता।

पेशौ सौ तेऊए हाथा जाँदरी[1] तेखो रौहौ तीदी[2] बेशी। तेऊए बौलौ बोसूलै मूँ पाछा लागी नी काँसे राजेए फौजा। सौ आमूँ मारदी पौड़ीनी। जै तू मूँ आपणों हाथा पी डाहै, ता मूँ बचावै ता मूँ देऊँ तौले खासौ[3] जैओ सूनौं रूपी, हीरे ता मोती।

(२) लोकोक्तियाँ—

१—मेरो इ मूँड मेरो इ पोलळो। (मेरा सर, मेरा जूता।)

२—बौउदा बेचिया सूतौ नो। (बैल बेंच कर सोना।)

३—कौदरै बाळो तोंगे, पैसे बाळो तोंगा पाळे।
(अन्नवाला घर में, पैसोंवाला घर के बाहर, अन्नवाला धनवाले से बड़ा।)

४—घोळै चौढ़दा काठी।
(चलते समय सवारी की खोज, घोड़ा चढ़ते जीन की खोज।)

५—न्हयारी खाओ गाडादी गाओ।
(अँधेरे में, चोरी से खाना, नदी के किनारे गाने के समान व्यर्थ है। न कोई देख सकता है, न सुन सकता है।)

६—हीशी नी न तापा।
(बुझी आग को कोई नहीं तापता। निर्बल का कोई सहायक नहीं।)

७—तीले लाळू मुठी दी भानणें। (दिल की दिल में रखना।)

८—दूई जिऊ खिचळी घीऊ।
(दो जीव, खिचडी घी। छोटी गृहस्थी, मौज ही मौज।)

९—भौरी शीरै कुला विनाश, भौरी जमी बिऊ विनाश।
(बड़ा परिवार, कुल का नाश। अधिक भूमि बीज का नाश।)

१०-दुओ बारहुओ, आठौ छोटो। (निरंतर कलह।)

६. पद्य

(१) वीरगाथाएँ (पँवाड़े)—कुलुई लोकसाहित्य में वीरगीतों (पँवाड़ों) का कुछ अभाव सा है। जो कतिपय गीत हैं भी, उनमें आल्हा ऊदल सा वीरगान नहीं, उनमें सेनाओं के युद्धप्रस्थान का मार्मिक वर्णन नहीं और न युद्ध की घटनाओं का ही वर्णन है।

[1] बीच में। [2] वहाँ। [3] प्रचुर मात्रा में।

नेगी दयारी के गीत में दो राजाओं—कुल्लू तथा नाहन (सिरमौर)—की आपसी कशमकश तथा फलस्वरूप नाहन के राजा के कुल्लू के राजा को द्यूत-निमंत्रण का उल्लेख है जिससे वह कुल्लू के राजा को जूए में परास्त कर उसके राज्य को हड़प सके। लेकिन, कुल्लू नरेश के बुद्धिमान् मंत्री नेगी दयारी ने उसकी रक्षा की। उदाहरण देखिए :

नाहणीय राजयै चिटी दीनी लीया,[1] कुळ (कुल्लू) बाजारा दी आई।
हाँय बोला हाँय मेरे कुळू केरे राजया, कुळू बाजारा दी आई॥
चीठी दीती लीया बोला नाहणीय राजयै, जूए पासै खेलदौ आए।
जै न आओ तू जूए पासै खेलदौ कुळू दैऊँ तेरो जळाए॥
कुळूए राजयै चिठी लाई बाँचणी, माँझा माँझी ओठ गेओ दोळी[2]।
हाँय बोला हाँय मेरी कुळू केरी राणीयें, जो कै आज विपता पौळी[3]॥
घोळी बीता छाळै बोला चाकरा राजयै, नाही गेए छिवरै दयारै।
सौहरा का आओ बोला होकमा दयारिया आओ लोड़ी कुळू बाजारै॥
जाँदो गेओ बोंदो नेगिया दयारिया, कुळू बाजारा दी आओ।
मूलै बीता कौरे बोला होकमा राजया, केऊ कामै मूँ बादाओ॥
डौरे बीना डौरे मेरे कुळू केरे राजया, पीठी लै मूँ नेगी दयारी।
जैणों बोलू मूँ तैणों कौरे तू राजया, विपता न पौळदी[4] भारी॥
छौआ बीता शौआ ईना घोळे दे, पालकी नौ शौआ डाँगू सापाही।
ठारह जै भेजा ईना कूळू केरे कौलशा, पीठी दैआ हिळमा[5] माई॥
कुळूए राजयै चिठी दोझी लीया, नाहनी बाचारा दी आई।
हाँय बोला हाँय मेरो नाहणीय राणीये, नहणी बाजारा दी आई॥
ताँबू दी न रौंहदौ चानणी न रौंहदौ, पहा गहौळी बेळे बाणाए।
जैना बाणाय तू बेळै भौंणा, तेरी दैऊँ नाहणी जळाए॥
नाहणीय राजये चिठी लाई बाँचणीं, माँझा माँझी ओठ गेओ दौळी।
हाँय बोला हाँय मेरी नाहणीय राणीये, जौ के आज बिपता पौळी॥

(२) राजा भरथरी—

(क) वैराग्य—शिशिर ऋतु में सारा कुल्लू प्रदेश श्वेत हिम की चादर से ढँका रहता है, खेतों में काम नहीं होता और ग्रामीण लोग ऊन आदि कातने के काम में व्यस्त रहते हैं। पौष मास के दूसरे पखवाड़े के आरंभ से मकर संक्रांति

१ लिखकर। २ फटना। ३ पड़ी। ४ पड़ती। ५ हिडिंबा (मनाली की देवी)

तक नाथ संप्रदाय के अनुयायी द्वार द्वार पर जाकर राजा भर्तृहरि, रानी बिरमा, रानी पिंगला तथा गुरु गोरखनाथ संबंधी गीत गाते हैं। उदाहरणार्थ :

काँची बोणी काया कोटड़ी, झूठा बोंणा सणसार[१]।
चौऊ दिने राजा जिउणा, छाड़ी देणा घर बार।
समझे सुणे राजा भरथरी।

× × ×

चौऊ दिने राजा जिउणा, छाड़ी देणा घर बार।
ए राजा भरथरी नार।
पाँची लेवे राजा कापड़े, पाँची लैवे अथियार।
नीली लैवे तासी घोड़िबै, जाणों खेलणें शिकार।
समझे सुणे राजा भरथरी।
जै था भूँका[२] राजा मांसकै, तीतर मारे दुई चार।
गेंडा मृग मत मारिये, होंदे बण को सरदार। समझे सुणे०।
मांस ता देवे राजपूत को, जुण खाई तो जाण।
खाल देवें साधु सात को, जुण बजाती तो जाण।
हाड़ी देवे शंखी कूत्ते को, जुण चाबी तो जाँण। समझे सुणे०।
कागद दिये राणी बाँचिये, करम बाँची न जाये।
लिखणे वाळा बादा लिखी गया, बाँचण वाळा नहीं कोय।
समझे सुणे०।
राणी बोले सिंहलद्वीपा ले, ए महले नहीं मेरो राज।
गोद नहीं मेरे बालका, राजा भरथरी नार। समझे सुणे०।
माया दे पापी सूमी को, अन्धा दे सुन्दर नार।
नैंणा देवे बण मृगा को, जुणा जंगला जंगला। समझे सुणे०।
चन्दा बिना नहीं सूरजा, रेणा[३] बिना नहीं ध्याड़[४]।
भैया बिना नहीं जीडिया,[५] पुरुषा बिना नहीं नार।
समझे सुणे०।

(२) लोकगीत—कुलुई लोकगीतों के प्रकार और उदाहरण निम्नलिखित हैं :

(१) ऋतुगीत—ऋतुविशेष में गाए जानेवाले बहुत से गीत हैं। वसंत ऋतु में स्त्रियाँ 'छींजे' गाती हैं, ग्रीष्म में 'झुरी', 'लामण' आदि, वर्षा ऋतु में

[१] संसार। [२] भूखा। [३] रजनी। [४] दिन। [५] बहन।

विरहगान, शरद् ऋतु में 'दियाउड़ी' आदि। अन्यान्य प्रिय गीतों में हैं भर्तृहरि, विरमा राणी आदि।

(क) वसंत (छींजा) गीत—कुल्लू प्रदेश का एक विशेष गीत 'छींजा' है। यह केवल स्त्रियों का गीत है जिसे किसी पुरुष के संमुख गाते वे लज्जा अनुभव करती हैं। प्रतिबंधों को तोड़ने का यह गीत एक साधन है। कई बार बूढ़ी स्त्रियाँ इसी के माध्यम से नवोढा बधुओं अथवा अन्य युवतियों की हृदय दशा का ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं :

> **डेई गो चैंतरा रो महीनो, वे फुलटु सोब फूली गेए।**
> **हासी हासी जाँदे बे पाँछी, सौब सौब साओ भूली बे गेए।**
> **हौरी हौरी डार्डी डोली, जाँदी डोलीए जाँदी।**
> **हरे पींडँरो फुलटु लाल फूलै, खुशी ए खुशी दी फूलै।**
> **ऐसे ऐसे हासी दी मौन सोबी रे, भूली ई भूली गेए।**

साधारणतः यह गीत 'निर्शू' या 'विर्शू' उत्सवों के दिनों में गाया जाता है। उत्सव से एक पखवाड़ा पूर्व ग्राम की प्रायः सभी स्त्रियाँ घर के काम काज से निवृत्त हो एक स्थान पर किसी आँगन में इकट्ठी हो जाती हैं। छींजा गीतों का विशेष धार्मिक महत्व नहीं, यह सामाजिक अथवा आर्थिक कारणों से ही चैत्र वैशाख के महीनों में गाए जाते हैं।

छींजे का आरंभ प्रायः किसी भजन से किया जाता है और तत्पश्चात् विविध प्रकार के गीत गाए जाते हैं जिनमें कभी प्रवासी कंत को बुलाया जाता है, तो कभी रूठे देवर को मनाया जाता है। किसी गीत में निर्दयी सास द्वारा सताई बहू का करुण क्रंदन, तो दूसरे में भाई के लिये बहन का स्नेहप्रदर्शन होता है। छींजे में ही बारहमासा का भी स्थान है, परंतु बारहमासा आधुनिक प्रतीत होता है, क्योंकि इसकी शब्दावली स्पष्टतः हिंदी रूप लेकर चलती है।

पावस ऋतु संबंधी छींजा उस विरहिणी की हृदयव्यथा का चित्र हमारे संमुख प्रस्तुत करता है जिसका कंत परदेश गया है। विदा होते समय वह आश्वासन दे गया था कि शीघ्र ही लौटकर आएगा और साथ में कुछ उपहार भी लेता आएगा। पर समय बहुत बीत गया, प्रवासी लौटा नहीं। इधर वर्षा का आरंभ हो गया। आकाश में छाए मेघ देख विरहिणी का हृदय खिन्न हो उठा। जब वर्षा होने लगी, तो हृदय का बाँध रोके न रुका :

> **काळीए बादळिए मूइए, बरखाँदो मेहा बे।**
> **कींह बरखे लोकळिए मुइए, बागुरे बारूरा बे।**

कान्ता[1] दासावरिश्रा[2] पिया, धौरे[3] कीले य आया बे।
आँऊँ आँऊँ धोराडिए मूँइए, लेई आएँ तो खेले[4] चौळट्टू[5] बे।
आग लागे पिया तेरी चाकरिये, मूना लोड़ी[6] तेरो चोळट्टू बे।
कान्ता दासावरिश्रा पिश्रा, धौरे कीले न आया बे।
आग लागे पिया तेरी चाकरिये, मूना लोड़ी तेरे जुड़खै बे।

बहन बहुत दिनों से मायके नहीं गई। भाई उसके घर के निकट आ रहा था। बहन ने भाई को देखा तो फूली नहीं समाई :

मोळे[7] लुहारा तू छैले सनारा,
ऊँचीए डाँडीए दियाळेमा[8] बाड़ाए।
बौळे बौळे दियाळेश्रा सौकली[9] रात्री,
बीर[10] पाराहुँणों[11] आश्रों आज की रात्री।
खाये खाये बीरा तू गोरी[12] छुआरै।
जेबी आए मेरी शाशुड़ी खोड़िए दुआरै।
जेबी आए मेरी शाशुड़ी खोड़िए दुआरै।
खोई कै लाए गौ बीरा खोड़खळाटा।
पीठो मूँ मुछिया आँएँ भौरी पाराता।
तेरे चाकुरा ले देंऊँगो बीरा, टाटे की टाँणी।
तेरे घोड़े ले देंऊँगो बीरा, ताँबूए ताँणीं।
तेरे घोड़े ले देंऊँगो बीरा खेचा[13] के जौश्रा।
तेरे चाकुरा ले देंऊँगो बीरा मैदे की रोटी।

सहस्रों वर्ष पूर्व अयोध्या, गया, काशी तथा राजस्थान से कुछ लोग सतलुज नदी के किनारे बढ़ते बढ़ते कुल्लू प्रदेश के बाह्य अंचलों तथा निकटवर्ती भागों में आ बसे। उनका पहला काफिला काश्रो, दूसरा ममेल, तीसरा निरत, चौथा नगर (दत्तनगर) नामक हिमाचल प्रदेश के गावों में तथा पाँचवाँ और अंतिम कुल्लू निर्मुंड स्थान में आ बसा। यह 'छींजा' उसकी याद में गाया जाता है और बालक से पूछा जाता है, 'बेटा, इस नदी के इस पार कौन बसेगा और उस पार कौन'? बालक कहता है, 'इस पार मेरे दादा, पिता और उस पार मेरी दादी तथा माता। इस प्रकार सतलुज नदी के दोनों किनारों पर हम लोग बसेंगे' :

[1] कंत। [2] परदेसी। [3] पास। [4] लिये। [5] पहाड़ी साड़ी। [6] जरूरत। [7] भोले। [8] दीपक। [9] सफल। [10] भाई। [11] पाहुना। [12] गरी। [13] खेत।

कींदरा देशा का सूनौ मँगाया।
कींदरा देशा का सनारू[1] आया।
उत्तरा देशा का सूनौ मँगाया।
पछिमा देशा का सनारू आया।
केती लाख राधा जीए सूना मँगाया।
केती लाख दैंणी घळाई।
दूई लाख राधा जीए सूना मँगाया।
चार लाख दैंणी घळाई।
सूलळै सूलळै जोळी दे सनारूआ।
सासू शुंणी दैंदी गाए।
उछटी हवेली ए ठाकुरा सोया।
तैं मेरी निंद्रा गवाई राधा।
लाइया पहनीआ बाहरे निरवुई।
कृष्णो मारणी लाई राधा।

(ख) शरद् गीत—

आई गेओ ठाँडे रा[2] महीनो।
वे पाच झड़ी जाँदे।
सूलै सूलै बोला पौण चालो।
हावा ठाँड़ी ई आँदी जाँदी।
पीउँणी शैशों फूली जाँदी।
खेच धैरे बे घीशा हो।

(ग) बारहमासा—

राधा सोच करे मन माहीं।
जेठ मास प्रिय परदेस सिधारे।
भज रहे सैंयाँ मत जारे।
तपत तपत सैंया पाँव जौडत हैं।
राधा सोच करै मन माहीं।
हम को छोड़ चले बन माधो।
शाळ मास घिरी बादळी, बिजळी चौमके।
चौमके चौमके चौह्र दिशा दीं चौमके।

[1] सोनार। [2] सरदी का।

चौमक रह्यो तेरे आँगणा में।
हमको छोळ चले बन माधो।
शाँवण मास में तैं चलन कीने।
प्रीत करे कुबजा घरे जाये।
तू तारे स्वामी मेरे जन्म का कपटी।
कपट रह्यो तेरे मन माहीं।
भौद्र मास में घिरी आई बादळी।
भौरी आयो ताल बिन्द्राबण में।
कोयल होंदी मूँ गौली गौली ढूँढूँ।
क्वार मास में निर्मल भयो रे सजनी।
मेरो जिऊ चाहत गंगा न्हाई को।
कोई जतना से मिलूँ प्रिय को। हमको छोड़।
कार्तिक मास में रची दियाउळी।
दिउआ बळे सब के आँगणा में।
भौरिया मेरे दीपक हरिहर ले गयो।
जाये जले दीपक कुबजा के आँगणा में।
मकर मास में गेंद बड़ाये।
सब सखियाँ गेंद खिलावे।
खेलत गेंद गिरी जाये जमना।
काली नाग पै ताळ छीन कर लायो।
राधा सोच करे मन माहीं।
पौष मास में पाळो पळत है।
ठंड लगी है सैंया तेरे तन में।
माघ मास में ऋतु आयो सजनी।
सब सखियाँ ऋतु मनावे।
हिल मिल सखियाँ मंगल गावे।
फागुण मास में खेलण ऋतु आयो सजनी।
सब रंग लाल गुलाल उळे गली माहीं।
सब के मुख पर लाल आयो रंगा।
राधा सोच करै मन माहीं।
चैत मास अब आयो सजनी।
सब रंग फूल फुलै बन माहीं।
मेड़े के दिन सब आँउँण लागे।
बैशाख मास ऋतु आ गई सजनी।

ब्रह्मा वेद पढ़े तेरे द्वारे।
पढ़त पढ़त सैंया नींद्रा व्यापी।
राधा सोच करे मन माहीं। हमको छोळ०।

(२) श्रमगीत—इस प्रदेश का जीवन श्रम की एक लंबी कहानी है। प्रातःकाल से लेकर रात गए तक काम से छुट्टी नहीं मिलती। यदि आकाश निर्मल है, ठंढ कम है, तो खेतों में, नहीं तो घर पर ही कोई न कोई काम करना पड़ता है। श्रम के लंबे जीवन में जनमन मौन कैसे रह सकता है? कभी 'छींजे' का कोई टुकड़ा, कभी 'दशी', 'कुफू', 'झुरी' या 'लामण' का कोई पद, कभी भजन या देवी देवताओं का गीत या नाटी नृत्यगीत गुनगुनाया जाता है। यदि सामूहिक श्रम का कार्य है तो गीत की पंक्तियाँ विश्राम का सा आनंद देती तथा कुछ काम की बातें भी सिखाती हैं, जैसे :

देशा चकणा रा हेसरू,
समिये चकणा देशा रा भार, मिलिए जुलिए होआ त्यार।
हेसरू बोला हे सार॥
देउआ चौकदे उमरा नौहठी, जीवन सा बीथारा ढेउआ नी गोहठी।
तेवे भी कादकी हुए बमार, गुरे खोली दोशे री झाड़॥
रिशी मुनी केरे बाकरे मार, हेसरू बोला हेसार।
राम नी हुआ ता टाए गिरी साधु, तेइए बोलु भैरू जादू॥
एकीरी जागा लागणे चार, हेसरू बोला हेसार॥
चाकटी देशा रा बुरा रवाज, पागल होणा ता चकेरता नाज।
एंडा की या रो मन भलाणा, जोकिए ढीखिणा मौरिए जाणा।
जीणा रा कोरना कारोवार, हेसरू बोला हेसार॥
सौबी ए मिलिए जुलिए ऐहा, मिली जुलिआ काम कमोआ।
अर्ज मेरी बारमबार, हेसरू बोला हेसार॥

(३) नृत्यगीत—कुल्लूवासी नृत्यप्रेमी हैं। चाहे बाँठड़ा नृत्य हो, नाट हो, या हो नाटी, वह लास्य और तांडव की विशेषताओं को थोड़े बहुत रूप में ले लेता है। नृत्य के लिये वाद्ययंत्रों और संगीत की आवश्यकता होती है। संगीत में वे उपाख्यान, जो किसी व्यक्तिविशेष के जीवन या किसी विशिष्ट घटना से संबद्ध हों विशेष लोकप्रिय होते हैं।

(क) नाटीगीत (भोड़ाराम)—कुल्लू की कंडी कोठी का नेगी भोड़ाराम माता पिता के हजार समझाने पर भी एक वेश्या से विवाह कर बैठा। घर पर सती साध्वी पत्नी पहले ही से थी। उधर वेश्या से एक रेंजर (जंगल का अधिकारी,

वजीर) भी प्रेम करता था। नेगी ने रेंजर की शत्रुता भी मोल ले ली। फलस्वरूप उसे धर्मशाला (भागसू) में कैद भुगतनी पड़ी :

इजीए न्यारौ मेरे बाबुए न्यारौ तौ।
ना गो आँठो ऐआ दोखिएँ दौशा।
भोडाराम नेगीआ,
ना गौ आँऐ ऐआ दोखिएँ दौशा॥
जाँऊँ बी न आँएँ एआ दोखिएँ सनारटी।
ताऊँ नहीं भोडारामा नाऊँ।
नौकरी न कौरणी बहरे बौखिए।
भाटे रे न चारणें गोरू। मेरे नेगिआ।
भाटे रे न चारणें गोरू।
जींभी बी न खौटणी चाँजरा बाँजरा।
काँजरा न आँणनी जोरू। मेरे नेगिआ।
काँजरा न आँणनी जोरू।
बागे बीता फूला बोला नींबू फूलौ भाड़ती।
माँजणी बाहरी गेरू। भोडाराम नेगिआ।
माँजणी बाहरी गेरू।
सुख बीता साना दे इना गौटी गाराँई लै।
भोड़ाराम चालौ न फेरू। मेरे नेगिआ।
भोडारामा चालो न फेरू।
एकी बीता सोह्ठ तेरो ढीलौ ढीलौ हाँडणों।
दूजे सोठू कोटा रे बीड़े।
जेबी ता नाहे तू एऊ जांगली बाजीरा लै।
तेरी लाँऊँ पाशड़ी कीड़े।

(४) प्रेमगीत—

(क) अबजू लाळी—

बाहरे ता निखु[1] बोला अबजू लाडिए।
देऊ आओ घून्बल खोली॥
मौत ता लोड़ी बापुरे तेई पाळे न।

[1] निकल।

(ख) देवर भाभी—

थाथड़ू धोंदिए, मूँहा धोंदिए,
आरशी बिसरी बाई ।
भावी ओ देउरा बड़ो पचीकड़ा
बातै बेशौ झोगड़ो पाई ।
काठे रे आरशी मौरने दे
चाँदी ए देंऊ बड़ाई ।
चाँदीए आरशी मौरने देए
सूनेए देंऊ बड़ाई ।

फुल निबरू फुलिए, भर पुतला दाणा ।
न्हीष्ठी कोरिए, लौहुरी नजरा, लौके लाऊ भरम खाणा ।
आहगे न्यारी थी मेरी झूरिए, भाणा नी लोभा न लाणा ।
ठाऊ ए लागी आरती, झीड़ी रणकू भाणा ।
तेरे बागे ए खाटा गमरू, मिठा बोलिए खाणा ।

(ग) लाहलड़ी—

सर्दी के दिनों में जब कभी आकाश निर्मल हो जाता है और चाँद पूरे यौवन पर होता है, चाँदनी अपना रुपहला जाल बर्फ पर फैला देती है। दूर पहाड़ी झरना अपने कलकल से एक साज का काम करता है। ऐसे वातावरण में गाँव के अल्हड़ युवक और युवतियाँ अपनी अपनी टोलियों में खलिहान में एकत्र हो जाते हैं। लड़के एक तरफ, लड़कियाँ दूसरी तरफ आमने सामने घेरा डालते हैं और गाते गाते नृत्य आरंभ करते हैं "लाहलड़ी" का। युवक प्रश्न करते हैं, युवतियाँ उत्तर देती हैं :

लाहलळिए एज खेलणा खौले मेरी लाहलळिए ।
लाहलळिए खेली जोंघळू शौले मेरी लाहळणिए ।
लाहलळिए एज मिलणा गौले मेरीलाह लळिए ।
लाहलळिए नैंई रावळे रोले मेरी लाहलळिए ।
लाहलळिए भेळा डाहणी मौले, मेरी लाहलळिए ।
लाहलळिए धूपे जोंघळ जौले, मेरी लाहलळिए ।
लाहलळिए फिटे लछुण तेरे ।
लाहलळिए थूकै तोलदे केरे ।
लाहलळिए लोभी झूरी रे जेरे ।
लाहलळिए साथ औंठदे केरे ।

लाहलळिए मारे पंद्रा फेरे ।
लाहलळिए झूठे लालचा तेरे ।
लाहलळिए लोभी भेळा रा राणा ।
लाहलळिए गोड होच्छी रा काणो ।
लाहलळिए साता बळा सिम्राणा ।
लाहलळिए तैबे संगे टणाणा ।
लाहलळिए एज बोंणनी जोंळी ।
लाहलळिए होथा बोचना लोळी ।

(५) मेला गीत—

(क) मेला—

देशा देशा न शोभला, देश कुळू रा प्यारा ।
आसे सी एई रै तितरू चाकरू, ए बगीचळू म्हारा ।
ठांडी बागुरी जोतळू लंगदी ठंडा जायरू पाणी ।
सौभै सौजा सो आपणे देशा, न आक्ली बाझी न जाणी ।
ऋषि मुनी रा उतराखोंडा, देवादेवी रा प्यारा ।
देशा देशा न शोभला, देश कुळू रा प्यारा ।

यह कविकल्पना मात्र नहीं, यह है सच्चे, भोले भाले हृदय का उद्गार। प्रकृति का भव्य, अनुपम और मनोहर रूप कुल्लू में मूर्तिमान् हुआ है। इसके वेगवान् झरने, ऊँचे ऊँचे पर्वत, फल फूलों से लदे उद्यान, हरी भरी खेती, घने जंगल और हिमाच्छादित शृंग स्वयं कविता हैं। ऐसे वातावरण में रहनेवाले प्राणी यदि भावुक हों तो आश्चर्य क्या ?

साजन हाथळू जैंणे गलाबा रे फूला ।
राची मीला सूपमैं धैंळी मेरी आखियै झूला ।

(प्रिय के वे हाथ याद आने लगे जिन्होंने उसे स्पर्श किया था। गुलाब के फूल के समान कोमल और मृदुल वे हाथ रात को स्वप्न में दिखाई देते हैं और दिन में आँखों में झूलते रहते हैं।)

(ख) दशमी—

मूं जाणा दसमी बोला दसमी जाणा लाणा रेशमी थीपू[१] ।
तू ऐजै दसमी बोला दसमी लाई चितरा[२] पाट्टू ।

१ सिर पर के वस्त्र का फूल। २ चारखानेवाला।

मूं लागी खाणेंरी बोलाखाणें री, आणें गौरी रा गोळा।
तू खाए रोजिआ[1] बोला रोजिआ, आणूं मौरिए झौळा।
जैबै एबी दसमी बोला दसमी ऐजी पाहुणी मेरी।
ऐंळे न एजीदा बोला एजीदा एणनूं बणिए लाळी[2]।
ओ रै ता एज भुरिए बोला भुरिए, बोन्ही लेंणी ओसा जोळी।

(६) संस्कारगीत—

(क) जन्म—बच्चा जब लगभग छह महीने का हो जाता है, तो उसे पहली बार घर के द्वार से बाहर निकाला जाता है। सगी संबंधी स्त्रियाँ परिवार में आ जाती हैं। बालक को नहला धुलाकर मामा के घर से आए वस्त्र पहनाए जाते हैं। गावँ के अन्य परिवार सगुन के लिये मेवे अथवा मोड़ी रीड़ी[3] लाते हैं। इसी समय स्त्रियाँ गाती हुई द्वार की पूजा करती हैं :

आओ पहलाळीए पीलळीये[4], आपणे आप जगावे।
आओ दूजळीए[5] पीलळीये, आपणी शाशुई जगावे।
आओ चीजळीए[6] पीलळीये, आपणे स्वामिआ जगावे।
आओ चौथळीए पीलळीये, आपणी दाइआ[7] सुहाइआ[8] की बदावे।
थाळी लें दिए बेटळिए, प्रावउळी[9] पूजा रचाये।
गांगा केरे[10] पांणिए बेटळिए, पूजा रचाये।
कूंगूए पचैउळे बेटळिए, पूजा रचाये।
बेला केरी पाची[11] ए बेटळिए, प्रावउळी पूजा रचाये।
लाडूए नेऊजे बेटीए, आवउळी पूजा रचाये।
घोंळियारे घूपै बेटीए, आवउळी पूजा रचाये।
थाळ भौरी बजीउरिए, रोक रू पथ्यो बधाई।

(ख) चूड़ाकर्म (जडोलण)—डेढ़ से लेकर पाँच वर्ष तक की आयु के भीतर बालक का चूड़ाकर्म संस्कार किया जाता है। यह अवसर विशेष उत्सव का होता है। ग्राममंदिर में सब नातेदार रिश्तेदार एकत्रित होते हैं। माता पिता देवी देवता की पूजा के उपरांत बालक के बालों को काटते हैं। यह गीत इसी अवसर का है :

[1] भरपेट। [2] दूल्हन। [3] भुने हुए गेहूँ और चने आदि। [4] सौभाग्यवती माता। [5] दूसरी। [6] तीसरी। [7] बहन। [8] सहेलियाँ। [9] द्वार। [10] का। [11] पत्ते।

गोपाले मोथुरा जोरामे बालया ।
कौसूदेवे कौसूदेवे जौळू[1] बान्हें ।
बसुदेवे बसुदेवे जौळू बान्हें ।
देबकी माइयै आंचड़ो पगारौ[2] ।
कौसूदेवे कौसूदेवे जोळ बान्हें ।
नोन्दी[3] मोरे नोन्दी मोरे जोळू बान्हें ।
कौसूदेवे कौसूदेवे जोळू बान्हें ।
(पिता का नाम) जोळू बान्हें ।
(माता का नाम) आँचड़ो पगारौ ।
कौसूदेवे कौसूदेवे च्चौरौ कीश्रौ ।
बसुदेवे बसुदेवे च्चौरौ कीश्रौ ।
देबकी माइयै आंचळो पगारौ ।
कौसूदेवे कौसूदेवे च्चौरौ कीश्रौ ।
नोन्दी मोरे नोन्दी मोरे च्चौरौ कीश्रौ ।
दसोदा माइयै आंचळो पगारौ ।
कौसू देउए[4] देहूरे[5] च्चौरौ कीश्रौ ।
माई श्रम्बके देहूरे च्चौरौ कीश्रौ ।

(ग) विवाहगीत—

(१) अरगना (स्वागत) गीत—जब बरात कन्या के घर के पास पहुँच जाती है, तो सास वर की आरती उतारती है :

हारो सुमराऊँ गउरीए नन्दो, एतो धौरै गणपति बेशे ।
एतो धौरै गणपतो बेशी कोरे, मोतिए चउकौ फुराए[6] ।
मोतिए चउको फुराई कोरे, कारिए[7] कलशो ढुलाए ।
कारिए कलशो ढुलाई कोरे, ब्रामण बेदो बळाए ।
ब्रामण बेदो बळाई कोरे, आइए मौंगळो[8] गाए ।
आइए मौंगळो गाई कोरे, पाँजे शोब्दो बजाए ।
पाँजे शोब्दो बजाई कोरे, प्रावउळी तूरण लाए ।
प्रावउळी तूरण लाई कोरे, श्रीखंडे[9] आँगणों लपाए ।
श्रीखंडे आँगणों लपाई कोरे, श्रो भाई चितरे विचितरे ।

[1] बाल । [2] पसारना । [3] नंद । [4] देवता । [5] मंदिर । [6] पुन्य । [7] कोरा । [8] मंगल । [9] चंदन ।

ब्राह्मा बिष्णु महेशर देव, श्रीखंडे आँगणों लपाए ।
श्रीखंडे आँगणों लपाई कोरे, सुनेए कलशो ढुलाए ।

(२) कन्यादान—

उजू बेटी गौरिए लोगना आश्रौ ।
आठ शाठ दी आळे बड़ाए ।
कीजूए बापुआ दीआळे बळाए ।
कीजू केरी लागाँदी धारो ।
सूनेए बेटिए दीआळो बळाए ।
घीआ केरो लागाँदी धारो ।
रेशमा केरी लागाँदी बानी ।
सूतेआ बापुआ बिंउदळो होए ।
होई गेई लोगना दी बेर ।
हाथे गीने बापुआ पाँणीओ कळिसा ।
मूँहाँ आगे बाँचणी पोथी ।
आच्छौ बौर ढूँढ़ओ जाँणों मेरे बापुआ ।
आगे रोही कोर्मा रे रेखो ।

(३) विदागीत—कन्या को विदा करते समय, जब वह द्वार पर गणेश-पूजा करती है, तो गाया जाता है :

ऊळे ऊळे कुँजरिए देश बगाँनीए ।
किआँ कोरी मूँ ऊळूसाइयो मेरो बूआबी न मीलए ।
ऊळ ऊळ कूँजरिए देश बगाँनीए ।
किआँ कोरी मूँ ऊळूसाइयो मेरो बापु वी न मीलए ।

(७) धार्मिक गीत—

(क) कृष्णलीला—कृष्णलीला कुल्लू में बड़ी लोकप्रिय है । सूर कृष्ण के बालजीवन के गीत गाकर संतुष्ट हुए, महाभारतकार कृष्ण की राजनैतिक महत्ता से प्रभावित हुए । हमारे कुल्लू के लोकगायक बहुधा युवक कृष्ण के कार्यों से प्रभावित हैं । एक लंबे गीत में युवक कृष्ण युवती का वेश बनाकर माता यशोदा को धोखा देते हैं और बाद में रुक्मिणी की बहन 'चंदा राउडी' (चंद्रावती) के घर जा धोखा दे उसे द्वारिका ब्याह लाते हैं ।

(ख) भागदेव पुरोहित—पूर्व काल में इस प्रदेश में नरमेध का प्रचलन था । एक बार बैना नामक स्थान पर इस प्रकार का नरयज्ञ (मूंडा) हो रहा था ।

यज्ञ के पुरोहित थे प्रसिद्ध विद्वान् भागदेव। यज्ञ की समाप्ति पर बलि देने में देर हो गई तथा पुरोहित की स्वयं बलि चढ़ गई। इस घटना को लेकर यह गीत बना है :

भागदेऊ पारोहिता बेशौ जो बैहनौ रूँणा, लो।
राजा पूछा भाई शाँगरीश्रो जो कूँडा कै कूणा, कूणा रूँणालो।
शूशा मूँगरी घारा दी लागौ सौ दोखणी बाजौ, बाजौ लो।
कीता आश्रौ माहमाई श्रो कोळिशा, बौर्धो राजौ, राजौ लो।
माहमाई कलै चानणी पौडा जौ, राजे ले ताँबू, ताँबू लो।
शूशा मूँगरी धारा दी फूटे, सै लूँबरू बूकै, बूकै लो।
बौली देंणीए बोगता आई सैं, ब्रामणू चूकै, चूकै लो।
कूंडा हूँणनीए बोगता आई लौ साइता घौड़ी, घौड़ी लो।
भागदेऊश्रा पारौहिता म्हारे सौ श्रौकिला टौडी, टौडी लो।
शूशा मूँगरी घारा दी पाकै सै, लूबरू माँशा, माँशा लो।
ठाणेघारा भाई पूळसिश्रो गौ, सौतिश्रा नाशा, नाशा लो।
चारै बेदी देउश्रा टैरी तेरे सै, पाँजे स्थाना, स्थाना लो।
कूटौ पीशौ देउश्रा थोडड़ौ गेश्रौ सौ, छुश्रारू घाना, घाना लो।
दिलू मायौ मंगल गाँणों सौ, भोजनूँ गूरा, गूरा लो।
काटो भाइयो जेखुड़ी ऐबे सौ, नाचणों धूरा, धूरा लो।
भागदेऊ पारोहिता बेशौ जो बेहनौ रूँणा।

(ग) पाँजशो—सतलुज उपत्यका में कुल्लू के विख्यात गाँव निरमुंड में श्रंबिका देवी का मंदिर है। इस मंदिर पर सवर्ण तथा हरिजनों का समान श्रधिकार है। एक बार यहाँ एक तहसीलदार श्राया। किन्हीं कारणों से वह ग्रामवासियों से श्रसंतुष्ट हुश्रा श्रौर उसने नगर के धनीमानी प्रतिष्ठित व्यक्तियों का चालान कर दिया। इस चालान में दोनों जातियों के व्यक्ति थे। उस समय के सबसे श्रधिक प्रभावशाली विद्वान् पंडित बेगादेव, जिनका चालान किया गया था, इससे ऐसे व्यथित हुए, कि कुछ काल उपरांत उन्होंने देह त्याग दिया :

णाड़ेए तेऊ पीपुए का बाशी चेली शीयारी।
शीयारी गे पाँजा शौ दोश्रा शाठिए।
लागी कुड़ूए तीयारी, तीयारी गे।
पाँजा शौ दोश्रा शाठिए।
कामदारा बोलू उधानंदा दै हामा के ढोला।
ढोलागे कामदारा बोला उधानंदा।
बेगदेऊ नीनी ज्वालादेऊ चाले कैदा लै।
सारो सौरा काँबो।

काँबो गौ बेगदेऊ नीती चाले कैदा लै।
कामदारा नींओं कैदा लै।

(८) बालगीत—

(क) लोरी—

ओरा दै ओरा दै मेरा गूँदा।
गुंदे री तेंई खे लागा रौंदा।
ओरा दै ओरा दै०।
(चौऊ) चौऊ आने लोटळी ठानी तूंबा। औरा०।
पोरा बोली बोलो गिरी रा कनारा।
पाँडा सामणा फागू, कोथ लागी रौंदी बेटळिए।
होंऊँ ताँदा न लागू। औरा० दै०।

(९) विविध गीत—गीतों के कुछ महत्वपूर्ण तथा अत्यंत लोकप्रिय रूप हैं लामण, दौशी, कुफू, झाँगो, गीनो, रासो, बूढ़ा, हार, बालो तथा गंगी। ये एक ही गीत के विभिन्न नाम हैं, नाममात्र का ही अंतर है। जीवन की अभिलाषा लिए अमर मानव के ये अमर गीत कल्पवृक्ष के पुष्पों के समान ताजे तथा वसंत के फूलों जैसे विविध रंग के हैं। शायद ही कोई अभिलाषा, कोई मनोकामना ऐसी हो जिसे इन गीतों द्वारा वाणी न मिली हो। शायद ही कोई भाव इनकी परिधि से बाहर हो। इन गीतों में हँसना, रोना, सुख, दुःख, संयोग, वियोग, मिलन, विरह, इहलोक, परलोक सबका चित्रण मिलता है। अतः ये चौपदे गीत कहीं प्रश्न और उत्तर के रूप में शृंखलाबद्ध हैं और कहीं तर्क रूप में। प्रायः इनके पहले दो पद केवल तुकबंदी के लिये प्रयुक्त होते हैं :

जैता सोहू नाठिए तेरे इना आखिए नोका।
पौल घौटा लोहूओ भीते लागा काडजू चौटा॥

(क) कुफू—पोस्त के फूल का नाम कुफू है। जेठ के महीने में जब पोस्त फूलती थी और अफीम डोडों से निकाली जाती थी, तो स्त्रियाँ खेतों में गर्मी से बचने के लिये सुबह सबेरे ही चली जाया करती थीं और कुफू गीत द्वारा वातावरण में एक हलचल पैदा कर देती थीं। अब तो पोस्त की खेती बंद है। पर गेहूँ के खेत में आज भी वही समा बँधता है। कुफू का एक उदाहरण यह है :

कीदा का आओ कुफू आ-एप एबड़े धूपै।
म्हारे बेशे चाउड़ी, साधु बारागी ए रूपै॥

(कुफू रूपी साजन, तू इस कड़कड़ाती धूप में कहाँ से आया। जरा ठहर, विश्राम करने के लिये मेरे घर चला जा। हाँ, वहाँ जाने से पहले साधु बैरागी का रूप धारण कर लेना।)

२०. चंबियाली लोकसाहित्य

श्री हरिप्रसाद 'सुमन'

(२०) चंबियाली लोकसाहित्य

१. भौगोलिक विवरण

(१) क्षेत्र, आबादी[1]—देशी रियासतों के विलीनीकरण से पहले चंबा पंजाब की एक पहाड़ी रियासत थी। लोकगीत, लोकनृत्य तथा सौंदर्य इन तीनों के लिये चंबा प्रसिद्ध है। प्रकृतिपूजकों का यह रम्य क्षेत्र अब हिमाचल प्रदेश का सीमांत जिला है। यह भारत के मानचित्र में उत्तरी अक्षांश पर ३२°११′३०″ और ३३°१३′६″ तथा पूर्वी देशांतर पर ७५°४६′०″ और ७७°३′३०″ में स्थित है। इस जिले के उत्तर पश्चिम और पश्चिम में जंमू कश्मीर, उत्तर पूर्व और पूर्व में—लद्दाख, लाहुल तथा दक्षिण-पूर्व और दक्षिण में जिला काँगड़ा और गुरदासपुर (पंजाब) स्थित हैं। चंबियाली भाषा उत्तर में तिब्बती और लाहुली किराती, पूर्व में कुलुई, दक्खिन में काँगड़ी और पश्चिम में डोगरी से घिरी है। इसका क्षेत्रफल ३,१३५ वर्गमील तथा सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार जनसंख्या १,७६,०५० है जिसके आधार पर यहाँ की आबादी लगभग ५६·२ व्यक्ति प्रति वर्गमील बैठती है। चंबा का समस्त क्षेत्र पहाड़ी है जिसमें समुद्रतल से २,००० फुट से लेकर २१,००० फुट तक की ऊँचाई पाई जाती है। साधारणतया इस क्षेत्र में १०,००० फुट की ऊँचाई तक आबादी है। दक्षिण पश्चिम की ओर चंबा जिले की अधिक से अधिक लंबाई ७० मील तथा उत्तर पश्चिम की ओर अधिक से अधिक चौड़ाई ५० मील है।

इस क्षेत्र में व्यास उपत्यका, रावी उपत्यका (चंबा उपत्यका) तथा चनाब उपत्यका के भाग संमिलित हैं। चनाब उपत्यका में ही पाँगी और लाहुल स्थित हैं। इस जिले में पाँच तहसीलें हैं—चंबा, भरमौर, चुराह, भटियात और पाँगी।

२. इतिहास[2]

ईसवी ५५० में चंबा एक छोटी रियासत थी जिसका प्रथम शासक था 'मरु' और राजधानी 'ब्रह्मपुर' (तहसील भरमौर में स्थित) थी। इसी राजवंश के २०वें राजा 'साहिल वर्मा' ने ईसवी ९२० में 'चंबा' नगर बसाया जिसका नाम

[1] इस अनुच्छेद के लेखक श्री रामदयाल 'नीरज' हैं।
[2] विशेष के लिये देखिए : 'हिमांचल प्रदेश' (राहुल सांकृत्यायन)।

अपनी प्रिय पुत्री चंपावती के नाम पर 'चंपा' रखा। कहते हैं, इस नगर को बसाने में चंपावती की ही प्रेरणा थी। चंबा में उसी समय से एक किंवदंती भी चली आ रही है कि नगर में पानी के कष्ट को दूर करने के लिये इसी राजा की रानी नयना-देवी ने अपने आपको जीते जी भूमि में गड़वा दिया था। यहाँ के प्रसिद्ध लोकगीत 'सुकरात' में इसी घटना का वर्णन है जिसे वहाँ के स्थानीय मेले 'मिंजर' के अवसर पर अत्यंत कारुणिक लय में गाया जाता है।

३. भाषा और लिपि

(१) भाषा—यद्यपि चंबा का क्षेत्रफल ३,००० वर्गमील से कुछ ही ऊपर है, फिर भी यहाँ छः भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें से पाँच में बहुत समानता है, किंतु एक (किराती) ऐसी है जो इनसे नितांत भिन्न है। उपभाषाएँ ये हैं—(१) चंबा जिले के उत्तर पश्चिम में बोली जानेवाली 'चुराही', (२) उत्तरी केंद्रीय भाग की 'पंगवाली', (३) उत्तर पूर्व की 'चंबा लाहुली' (किराती), (४) दक्षिण पश्चिम में 'भटयाली', (५) दक्षिण पूर्व में 'भरमौरी' या 'गद्दी' तथा चंबा शहर के चतुर्दिक्—जो जिले के दक्षिण पश्चिम में स्थित है—चंबियाली है।

'लाहुली' को छोड़कर समस्त बोलियाँ हिंदी आर्य कुटुंब की एक शाखा 'पश्चिमी पहाड़ी' मौन् ख्मेर (किरात) भाषा से संबंध रखती हैं जो हिमालय से लगी हुई कंबोज (कंबोडिया) तक चली जाती है और भारत चीनी भाषा शाखाओं में से एक है।

(२) लिपि—चंबा जिले में केवल चंबियाली ही एक ऐसी राजभाषा थी जिसे 'टाँकरी' लिपि में लिखा जाता था। रियासत के परगनों आदि सभी स्थानों तथा जनसाधारण के पत्रव्यवहार में इसी लिपि और भाषा का प्रयोग होता था। यह लिपि सिंध नदी से लेकर यमुना नदी तक के समस्त पहाड़ी भागों में कुछ स्थानीय परिवर्तन तथा परिवर्धन के साथ प्रयुक्त होती थी। इसका जन्म 'शारदा' लिपि से माना जाता है, जो काश्मीर में प्रयुक्त होती थी। पंजाब के समस्त पहाड़ी क्षेत्रों में इसी लिपि का प्रचलन था और संभवतः मैदानी भागों में भी इसी को काम में लाया जाता था। 'शारदा' पश्चिमी भाग में प्रयुक्त गुप्तकालीन लिपि की पुत्री है।

किसी समय चंबा में 'ब्राह्मी' (जिससे आधुनिक नागरी लिपि का जन्म हुआ) और 'खरोष्ठी' का भी साथ साथ प्रयोग होता था। 'खरोष्ठी' दाईं से बाईं ओर लिखी जाती है। काँगड़ा जिले (पंजाब) में स्थित 'पठियार' और 'कंहीआरा' स्थानों पर ईसा पूर्व के दो शिलालेख विद्यमान हैं जिनपर एक ही बात का अंकन 'ब्राह्मी' और 'खरोष्ठी' लिपियों में है। ये दोनों ही स्थान कभी चंबा राज्य के अंतर्गत थे।

इस समय चंबा में—(१) उर्दू (पुराने अदालती लोगों में), (२) हिंदी (नारियों, नवयुवकों और पंडितों में), (३) कश्मीरी (कश्मीर से आए लोगों में) और (४) तिब्बती (चंबा लाहुल के 'मियार नाला' के गाँवों में रहने वालों में) बोली जाती है।

'टाकरी' लिपि में चंबा का कोई विशेष साहित्य प्राप्त नहीं होता। लुधियाना में कभी इस लिपि का प्रेस था जिसमें अधिकतर ईसाई प्रचार साहित्य चंबियाली भाषा में छपा करता था।

(३) विभिन्न बोलियों में कुछ वाक्य—

चंबा की छह बोलियों में लिखे निम्नांकित एक ही वाक्य से उनके अंतर का पता लगता है :

(क) हिंदी—यहाँ से कश्मीर कितनी दूर है ?

पंजाबी—एत्थों कश्मीर किन्नी दूर ऐ ?
(१) **भटयाली**—हत्थें वळा (इयू) कश्मीर कितणे दूर है ?
(२) **चंबियाली**—इथा कळा कश्मीरा तिकर कितणी दूर है ?
(३) **चुराही**—एठां कश्मीर केतरोडे दूर है ?
(४) **भरमौरी**—ए ठाउं कश्मीर केतरी दूर आ ?
(५) **पँगवाली**—इडियाँ (यथ्यां) कश्मीर कतरू दूर अही (असा) ?
(६) **चंबा लाहुली**—देरस कश्मीर छिड़ी ओहेतार तो ?

(ख) हिंदी—मैं आज बड़ी दूर से चलकर आया हूँ।

पंजाबी—मैं अज्ज हिंडदा हिंडदा बड्डी दूरों आया हूँ।
(१) **भटयाली**—मैं अज्ज बड़े दूरा कळा हाँडी आया।
(२) **चंबियाली**—हाओं अज्ज बड़े दूरा कळा हाँडी आया।
(३) **चुराही**—औं अज्जा दूर कना हाँडी याह।
(४) **भरमौरी**—औं अज्ज बड़े दूरा थाउँ हाँडिआ हूँ।
(५) **पँगवाली**—औं अज्ज बड़ा दूरा हंठा।
(६) **चंबा लाहुली**—गे तो ओहे तारे आंदो।

(ग) हिंदी—उसे युक्ति से मारकर रस्सी से अच्छी तरह बाँधो।

पंजाबी—ओस जुगती देनाल तंगी तरियां रस्सी नाल बाँध।
(१) **भटयाली**—उसकआ जुगती करी मारो जोड़िया कन्ने बन्हो।
(२) **चंबियाली**—उसजो जुगती मारी करी जोड़ी कन्ने बन्हा।
(३) **चुराही**—उसनी जुगतें कन्ने मारी करी डोरा रश्शी कने बन्हा।

(४) **भरमौरी**—तेन जो मता मारी करी जोड़े सेते (सीते) बन्हा।
(५) **पँगवाली**—उस दी जुगती मारी के रजूरी लेई बन्ह।
(६) **चंबा लाहुली**—दों कें हजे तेश्रों थाजेरन् त्शू ?

(घ) हिंदी—तेरे पीछे किसका लड़का आ रहा है ?

पंजाबी—कीसदा पुत्तर थ्वाड़े पिच्छूँ आउँदा पया ए ?
(१) **भटयाली**—कुदा पुत्तर तुआड़े पिच्छे आउंदा है ?
(२) **चंबियाली**—कुसेरा कुडा तेरे पिछू आह दिहीरा है ?
(३) **चुराही**—कुसेरा गभरू तुंआडे पिच्छे (पिछोडें) एचा ?
(४) **भरमौरी**—कसेर गभरू तुंदे पिच्छे इंदा (एंदा) हा ?
(५) **पँगवाली**—कसे कोआ ताण पटे ईंता ?
(६) **चंबा लाहुली**—कां थले आदुइ यो आबाद ?

(ङ) हिंदी—उसे तुमने किससे मोल लिया ?

पंजाबी—ओह तुसां कीदे कोलो मुल्ल लिआई ?
(१) **भटयाली**—से तुध कुस कछा मुल्ले लेआ ?
(२) **चंबियाली**—से तुसां कुस कछा मुल्ले लेआ ?
(३) **चुराही**—ओह तुए कुस किन्ना मुल्ल लेआ ?
(४) **भरमौरी**—सो (से) तौं कस थाऊँ मुल्ले लेओ ?
(५) **पँगवाली**—ओह कस कुणा मुल्ले धिना ?
(६) **चंबा लाहुली**—कें दु आदो दोत्स हानदान ?

चंबियाली भाषाक्षेत्र की प्राकृतिक स्थिति ने उसके लोकसाहित्य और लोककला पर बड़ा प्रभाव डाला है। चुराही नृत्यमंडली ने दिल्ली में एक बार गणराज्य का प्रथम पुरस्कार जीता है। यहाँ का लोकसाहित्य विविध और सरस है, पर अभी इसके संग्रह की चेष्टा नहीं की गई है। यह गद्य और पद्य दोनों में मिलता है।

४. गद्य

गद्य में लोककथा (कहानियाँ) और मुहावरे हैं। इनके उदाहरण निम्नांकित हैं :

(१) लोककथाएँ—

(क) गिद्दड़ ऊँटे री कथा—इक जे थिया से ऊँट थिया। तिस कने इकी गिदड़े री मित्री होई गेई। से दोई जिहणे बड़े घुली मिली करि रहंदे थिये। इक साल बडा सोहा तपेया सभ किछ फुकी गेहया। किछ खाणे जो नी जुड़णा

लगेया, ताँ गिदड़े ऊँटा कने बोलया, जे मैं इस दरया रे पार इकी खेतरा अंदर मते सारे खरबूजे लगोरे दिखो रे हिन धियाड़ी ता दा लगणा नी अपण राती दा लाया करंधे। ऊँटे ने बोलेया, जे खरी। जिस वेले रात हुई ता गिदड़ ऊँटेरी पिट्ठी उप्र चढ़ी करि दरिया टप्पी करी दोई जिहणे पार खेत्रा मंझ जाई पे अते मजे कने खरबूजे खाणा लगे।

इहेंया ई से रोज राती राती जाई करी थरबूजे खाई ईंदे थिये अते भियाग हूणे कछ पैहले पैहले उवार आई रेहंदे थिये। तिस खेत्रे रा मालक रोज भियागा खरबूजे रे नुकसाना जो दिखंदा थिया अपण तिस जो पता नी लगो जे ए कुसेरा कम्म है? अज्ज उनी सोचेया जे मैं राती वेही करि दिखंदे रैहणा जे ए कुसेरा कम्म है? तधाड़ी राती से खेत्रा विच इक पट्टू लेई करि लुकी रेहया अते हथा अंदर तिनि इक बड़ा मोटा सोठा लेई रखया। जिस वेले खरी निहारी रात होई गेई ता गिद्दड़ ऊँटेरी पिट्ठी उप्र चढ़ी करी खेत्रा विच आई रेहया। ऊते पिट्ठी कछ उतरी करी दोई जिहणे खरबूजे खाण लगे। बड़ी हाण हुई ता गिद्दड़े बोलेया जे 'मामा मामा, भिंजो उँघणी आई।' ऊँटै बोलेया जे—'अवे मत ऊँघदा।' गिद्दड़े बोलेया जे—अवे नी टिकींदा अती होई गेई।' जे गिद्दड़ा कच्छलेर दीह गेई लेर सुणंदे कने मालके ने सोठा मारी करी भणकाया ताँ गिद्दड़ ता खिट्ट मारी करी न्हसी गेया। अपण ऊँटे रा मारी मारी तिनि काल के बुरा हाल करी दित्ता। बचारा ऊँट बड़ी मुश्कला कने दरिआ रे बन्ने तिकर पुजेया ताँ कुदखा बरवा गिद्दड़ वी आई रे हया। अंत ऊँटा जो पुछण लगेया जे—'मामा सुणा कै हाल है।' ऊँटे बोलेया जे—'खरा गिदड़े पुच्छेया जे भिंजो वी टपाई दिंदा पार।' ऊँटे बोलेया जे—'तिघेरे तिकर ता हँऊ तिन्नो माली बठोरा थिया।'

गिद्दड़ झट ऊँटे री पिट्ठी ता उनी बोलेया जे—'भाणजा भाणजा, मिंजो लेटणी आई।' गिद्दड़े बोलेया जे—मामा मामा, छंते तेरे इचे पाणी बड़ा डुग्घा है पार टिप्पी करी मारे लेट।' ऊँटे बोलेया जे—'अवे नी टिकी हंदा।' करि ऊँटे लेट मारी जे गिद्दड़ तिचे खूब डुग्घे पाणी अंदर डुबाई दित्ता। अते अप्पु पार टपी आया :

सच गलान्दे जे करन्दे कनेनी करो
तिसेरा वी खस्सम मरो।

(२) मुहावरे—

इस क्षेत्र में प्रचलित कतिपय मुहावरे और उनके भावार्थ निम्नांकित हैं :

१—टच्च होई रेहणा। (चकित रह जाना।)
२—वाग वाग हूणी। (प्रसन्नता से खिल जाना।)

३—मुड़दा तिस्सेई किलणी टँगणा। (वही ढाक के तीन पात।)
४—मोरे जो हक्का देणाँ। (वृथा प्रयास करना।)
५—हारवी दस्सणा। (रोब दिखाना।)
६—साँये वाँये करणा। (बहाना करना।)
७—पंजुई घीउश्रा बिच्च। (बहुत लाभ।)
८—बगानी सुथणी जंघ देणा। (पराई बात में दखल देना।)
९—मोहले मोहले कन्न बिभ्रण। (बहुत बड़ी नसीहत मिलना।)
१०—पितरीह रेहणा। (शर्मिंदा होना।)
११—घोड़े बेची सूणा। (निश्चिंत होना।)

५. पद्य

चंबियाली पद्य लोकसाहित्य में हिमालय की सादगी, ताजगी श्रौर सरसता मिलती है। यह कहने की श्रावश्यकता नहीं कि वह बहुत समृद्ध है। पद्य दो रूपों में मिलता है—(१) लोकगाथा या पँवाड़े श्रौर (२) लोकगीत।

(१) पँवाड़ा—पँवाड़ों की संख्या बहुत है जिनमें से पूरे एक के लिये भी यहाँ यथेष्ट स्थान नहीं है, इसलिये उसका कुछ श्रंश दिया जाता है :

(क) एँचली—

वरसाँ ता होईयाँ मेरे पाण्डरू समौरे।
वरसाँ होई माँसा खौरे हो।
ता निज जमन्दी मेरे यो पुत्रो कुपुत्रो।
तुसाँ जम्मे श्रौतरी पाई हो।
हथा वो लिन्दा हिगुला घनोटी।
मूँढे पाये पंज वाणा हो कजली वणा जो जेगे वो।
कजली वणा कोई सर्प तलाई।
तित्ते जाई पठर वणाया हो।
ता पहले वो पहरे चिड़ुवो पखेरु।
पाणी पीणे जो श्राये हो।
पाणी वो पीन्दे चिड़ु हटन्दे पिचेहड़ा।
चुरु भुरु लान्दे बचारे हो।
दूजे पहरे जो मिरग मियालू।
पाणी पीणे जो श्राये हो।
पाणी पीन्दे से हटन्दे पिचेहड़ा।
मुँह वो जिन्हा दे विकराल हे।

त्रियेता पहरे नौलख सोरभा ।
पाणी पीणे जो आईया हो ।
पाणी ता पीन्दी वो हटन्दी पिचेहड़े ।
पुँछु जिन्हा दे वुस्ह क्याले हो ।
चौथे पहरे तेरे शीतल गैंडा ।
पाणी पीणे जो आया हो ।
पाणी ता पीन्दे जो किच्छु नी गलाणा ।
पाणी पीन्दे तिरह्यालू हो ।
पाणी पी करी हटेया पिचेहडा ।
अर्जुणे वाण सँढाया हो ।
खरी वो कीति मेरे यो पुत्रो सुपुत्रो ।
वापू मारेया तुसाँ अपणा हो ।
भन्नदा घनोटी लेई हथा सोठी ।
अर्जुन घरे मुखे आया हे ।
सुणे वो सुणे मेरीये माता कुन्ता ।
वापु रा नाँ कै थिया है ?
तेरा वापू वो मेरा भर्त्ता भर्तेरा नाँ किह्या लेणा है ?
जान्दा वो जान्दा अर्जुन वाणिया ।
जाई पुच्छन्दा सहदेवा जो ।
सहदेवा पराडता कुले दे प्रोहता ।
पाप मोच्छत किह्याँ हूणे हो ?
ता गंगड़ी न्हाणी वो भद्र कराणी ।
पाप मोच्छत[1] होई जाँदे हो ।
इक कुम्भड़ी दूजा कुम्भे दा मेला ।
पाराडव चले हरिद्वारा हो ।
ता तुसी ता चले वो गंगा न्हाण ।
बालक ते नार कुसेरी हे ?
गंगा न्हाई हटी करी घरे ईला ।
बालक नार हमारी हे ।
बालक नारे हुगत कमाई मैम्ही चलणा संगत तेरे हो ।
गंगड़ी न्हाणी वो धर्म कमाणे पाप कन्ने कुनी नैणे हाँ ।
दिने करली तेरा भार भरोट्ठू संझा करली सेज न्यारी हो ।

१ मोच्च, मुक्ति ।

(२) लोकगीत—चंबियाली भाषा लोकगीतों में बहुत समृद्ध है, पर अभी उनका कोई अच्छा संग्रह नहीं हुआ है। उनके कुछ नमूने यहाँ दिए जाते हैं :

(क) ऋतुगीत—

रित ता वसन्दी आई भाईयो, फुल कुधेरा फुलयो हो ?
रित ता वसन्दी आई भाईयो, फुल घियाणु फुलेया हो।
रित ता वसन्दी आई भाईयो, हो फुल वडोत्री रा फुलेया हो।
रित ता वसन्दी आई भाईयो, हो फुल तिलहणी रा फुलेया हो।

(ख) श्रमगीत—

मैंटा हो सन्तरामा हे, लेवर पुजाणी ठंडे राना हे।
मेटा हे सन्तरामा हे, तेरी हे लेवर पुजाणी ठंडे नाला हे।
पंज सौ लेव्वर तेरी हे, तेरी हे सत्त सौ लेवर मेरी हे।
नहर वणाई घूमे घूमे हे, दोस्ताँ लगोरी अन्दमे हे।
नहर त्रुटि लाया डंगा हे, डंगा हे जली तेरी छुणकुन्दी वंगा हे।
घड़ी घड़ी जेवा हथ पान्दा हे, वडए रा रोम कै दसान्दा हे।
मेटा हे जल सेठा हे, नगद रुपैया तेरा खोटा हे।

(ग) प्रेमगीत—

पंज सत्त गोरी पाणी जो जान्दी, कुण गोरी दूण मदूणी हे।
जिसा वो गोरी रे कन्त परदेशा, से गोरी दूण मदूणी हे।
जिसा वो गोरी रे पिया होले दूर, से गोरी दूण मदूणी हे।
जिसा वा गोरी रे पेइये होले दूर, से गोरी दूण मदूणी हे।
पैरा जो तेरे मोचड़े देला, मत हुन्दी दूण मदूणी हे।
जंघा जो तेरे सोथण देला, मत हुन्दी दूण मदूणी ।
ढाका जो तेरी घाघरू देला, मत हुन्दी दूण मदूणी हे।
हिका जो तेरी काँझली देला, मत हुन्दी दूण मदूणी हे।
सरा जो तेरे सालणू देला, मत हुन्दी दूण मदूणी हे।

(घ) मेलागीत—

मैहले दीया जात्रा लोहड़िया दा पाणी।
ते किल्ला मत पीन्दा ढील शराविया।
पहला डेरा लाणा स्त्रैंई वो घराटा।
दूजा डेरा लाणा देवी दे देहरे।
ते त्रीया डेरा लाणा लोहड़ी रे पाणी।

मैहले दीया जातरा लोहड़िये रा पाणी।
ते किल्ला मत पीन्दा ढोल शराविया।

(ङ) धार्मिक गीत—

हाँ हाँ सौ सठ तेरी झीरी तेरे पाणी जो चलिया हाँ।
हाँ हाँ हथा वो लेन्दी शीश घड़ोलू सरा पर नलिहर वीने हाँ।
हाँ हाँ उठ दखाणेया खोल परोली हाँ।
हाँ हाँ सौ सठ गोपी तेरी न्हौणा की चलियाँ हाँ।
हाँ हाँ नदी रे कनारे कोई कमल का बूटा हाँ।
हाँ हाँ हथे वो लेन्दी लोटकी मूँढे पान्दी धोतकी।
हाँ हाँ चन्दन रुखे उन्हे कपड़े लपेटे हाँ।
हाँ हाँ रुखा पर कृष्ण लुफेरि कृष्ण छुपो रे हाँ।
हाँ हाँ सेईयो ता कपड़े मेरे कृपणे छुपाये हाँ हाँ।
सौ सठ गोपी तेरी नगन जे होइयाँ हाँ हाँ।
हाँ हाँ देया देया कृष्ण जी कपड़े हमारे हाँ।
हाँ हाँ इकी हथे गोरिये शर्म घटाई दूजे हथे अर्ज करी।
हाँ हाँ इकी हथे कृष्णे कपड़े लपेटे दूजे हथे बँसरी बजाई हाँ।

(च) संस्कार गीत—

(१) जनेऊ—

कुनिये कत्तेया कुनिये बट्टेया, कुनि ऐ दित्ता जीवादान ए।
अम्मे कत्तेया वापुए वट्टेया, वाहमणे दित्ता जीवादान ए।
हलके जोगटुए जोग धियाआ, काहे दे वास्ते धियाया हो।
धागे दे वास्ते जोग धियाया, रूपे दे वास्ते जोग धियाया।
सुन्ने दे वास्ते जोग धियाओ, ताम्बे दे वास्ते जोग धियाओ।

(२) विवाह—

खारै रखे बदलाई धिये, अज्ज होई पराई।
अम्मा रिये धिउए लाड़लिये, अज्ज होई पराई।
बापू दिये धिये लाड़लिये, अज्ज होई पराई।
भाऊए रीए भैणे लाड़लिये, अज्ज होई पराई।
चाचू रीये कुडिये लाड़लिये, अज्ज होई पराई।

कन्या की बिदाई का गीत—

तेरी परोणी दे अन्दर वे बाबल मेरा डोला अडेया।
तेरे परोली अन्दर वे बाबल मेरी गुड्डियाँ रेहिया।

तेरी गुड्डियाँ जो देली पुजाई धिये घर जा अपणे ।
तेरे बेहड़े दे अन्दर वे बाबल मेरा खिन्नु रे हया ।
तेरे खिन्नु जो देला पुजाई धिये घर जा अपणे ।

(छ) बालगीत

पठार वठोरेया भाउआ बन्दूकिया, इसा हरणी जो भत मारे हो ।
इसा हरणी रे मास नी खाणे, ए हरणी पेटा भारी हो ।
रामसे लक्ष्मण चौंपड़ खेलन्दे, सिया राणी कढ़दी कसीदा है ।

(ज) विविध गीत

(१) खजियार की शोभा—

ठंडा पाणी तेरे खजियारा है, लाल सेऊ मेरी जमुपारा है ।
खज्जी नाग तेरी खजियारा है, जम्मुनाग मेरी जमुहारा है ।
मुकी बरसात आई काती है, तोर वो लुआली तेरी छाती है ।
मुक्की बर्सात आई सैरी है, तीर लाणा ताकत न तेरी है ।
लम्मे लम्मे तोस खजियारा है, रैंई वो कलेंई जमुहारा है ।
सड़क त्रुटि ता लाया डंगा है, जली तेरी छुणकन्दी वंगा है ।
मन लगा ठंडे खजियारा है, साहो मन किहाँ करि लाणा है ।

(२) गोरखा आक्रमण—

राजा तेरे गोरखियाँ ने लुटया पहाड़ ।
लुटया पहाड़ गोरी रा लुटया पहाड़ ।
तीसा लुटया वैरा लुटया भान्दल किहार ।
पाँगी दी पँगवालीया लुटियाँ लुटी वाँकी नारा ।
राजा तेरे गोरखियाँ ने लुटया पहाड़ ।
सुन्ना लुटया चान्दी लुटया, लुटया जवाहरा ।
सेजा सुत्ती कामनी लुटियाँ, लुटया पहाड़ ।
राजा तेरे गोरखिया ने, लुटया पहाड़ ।

(३) चंबे का चौगान मैदान—

इक दिन छोड़ी देणा, चम्बे रा चुगान छोड़ी देणा है ।
इक दिन छोड़ी देणे, अम्मा अते बापू छोड़ी देणे है ।
इक दिन छोड़ी देणे, घर ते घराट छोड़ी देणे है ।
इक दिन छोड़ी देणे, भैण असे भाऊ छोड़ी देणे है ।
इक दिन छोड़ी देणे, भिंजरा रे मेरे छोड़ी देणे है ।

(४) चंबियाली पहेलियाँ (फलूहणी)—

१—चार सोठे चार मोठे, चार सुरमे वाणिया।
कैलाश तोता बोलन्दा, कल फौजा ईणियाँ ॥—पालकी

२—रीणी बगड़ी रेडेड़ा बी संझा वाणा भ्यागा लुणए।
—तारों भरा आकाश

३—काली थी कलोत्तण काले कपड़े लान्दी थी।
हथा विच रेहन्दी थी हथभर डरान्दी थी ॥—तलवार

४—सिर भिरी सिर भिरी संग शरीरी।
पिठिमते चिच्चु चल कश्मीरी ॥—ढाल

५—काला हण्डू लाल भत्त सणे हण्डुए गरल गप्प फगूड़ा।
—अंजीर का दाना

६—कच्चा खाणापकेरा मुल पाणा।—सरसों

७—उटरू मुटरू श्याम घटा वैरागिया वन्ह जठा।—मक्के का भुट्टा

८—ओलहणी मोलहणी छारा अन्दर खोलहणी।—जूते

९—बारा (१२) ओवरी इक्कोई थम्ह।—छाता

१०—डक डक डण्डी डक डक डाल, सुने कटोरू रूपे रे थाल।
—नरगिस का फूल

६. मुद्रित लोकसाहित्य

लोकसाहित्य हमारे सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब है। जनसाधारण की आशाओं और भावनाओं की झाँकी हम लोकसाहित्य के माध्यम से ही देख पाते हैं।

भारत के पंजाब, गुजरात, कश्मीर, राजस्थान, बंगाल आदि अन्य प्रदेशों की भाँति हिमाचल प्रदेश का लोकसाहित्य भी अपना विशेष महत्व रखता है। चंबा जिला, जो हिमाचल प्रदेश का मुख्य जिला है, किसी समय पंजाब की एक प्राचीन ऐतिहासिक देशी रियासत थी। पंजाब के काँगड़ा, नूरपुर, हरिपुर, बसोहली, भद्रवाह, कुल्लू आदि क्षेत्रों के साथ इसका गहरा संपर्क रहा है। काँगड़ा और बसोहली की अनेक ललित कलाओं का आदान प्रदान यहाँ हुआ। चंबा के घर घर में बनाए गए प्राचीन भारतीय कसीदाकारी के रूमाल, रंगमहल तथा अन्य अनेक स्थलों पर अंकित काँगड़ा शैली के भित्तिचित्र तथा भूरिसिंह संग्रहालय में सुरक्षित पहाड़ी शैली के दुर्लभ चित्र चंबा के सांस्कृतिक महत्व के सजीव प्रमाण हैं।

ललित कलाओं की भाँति चंबा लोकसाहित्य की दृष्टि से भी समृद्ध रहा है। चंबा के लोकगीत दूर दूर तक, यहाँ तक कि सात समुद्र पार रहनेवाले अंग्रेजों को भी, आकर्षित करते रहे हैं। किंतु खेद का विषय है कि उचित प्रोत्साहन तथा साहित्यिक साधकों के अभाव से इस दिशा में कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं हो सका। मुद्रण की दृष्टि से तो चंबियाली लोकसाहित्य का अभाव सा है।

हाँ, ईसाई प्रचारक डाक्टर हचिन्सन ने चंबियाली लोकसाहित्य का पर्याप्त संग्रह किया। उनका उद्देश्य साहित्यिक नहीं, ईसाइ धर्म का प्रचार था। अतएव उन्होंने उसे अपने उद्देश्यानुरूप बनाकर न केवल संग्रह ही किया, अपितु उसका प्रकाशन भी करवाया। चंबा में प्रचलित टाकरी लिपि का टाइप तैयार करवाया और इसके लिये हजारों रुपए व्यय करके स्यालकोट में प्रेस भी खोला। इस प्रेस से 'मंगल समाचार' नाम से अनेक प्रचार पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित करवाईं जिनकी भाषा चंबियाली और लिपि टाकरी थी। उक्त लेखक ने ही उर्दू में भी 'चंबियाली री पहली पोथी' तथा 'दूई पोथी' नाम से दो पुस्तकें प्रकाशित करवाईं जिनमें प्रचार संबंधी कथाओं के अतिरिक्त कुछ चबियाली लघुकथाएँ भी संगृहीत हैं। इनमें से अब कोई भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है। एक प्रति बड़ी कठिनाई से लेखक को केवल देखने के लिये उपलब्ध हुई है।

लोकगीतों के अनन्य साधक श्री देवेंद्र सत्यार्थी ने चंबा के अनेक लोकगीतों का संग्रह किया है और अपनी पुस्तकों—'बेला फूले आधी रात', 'धरती गाती है' आदि—में उनका प्रकाशन भी करवाया है।

चंबा के ख्यातिप्राप्त लेखक श्री दौलतराम गुप्त ने भी १६३५-३६ से इलाहाबाद से प्रकाशित 'कर्मयोगी', 'गुलदस्ता' आदि में चंबा के लोकगीत 'हिमतरंग' शीर्षक से प्रकाशित करवाए। दिल्ली से प्रकाशित उर्दू साप्ताहिक 'रियासत' में भी कुछ लोकगीत प्रकाशित हुए। शिमला से प्रकाशित 'लोकतंत्र', 'हिमप्रस्थ' आदि में भी गुप्त जी के लोकगीत प्रकाशित हुए। अप्रैल १६५० से इन पंक्तियों के लेखक ने भी लोकसाहित्य को अपनी लेखनी का विषय बनाया। 'आजकल' में उसका पहला लेख 'चंबा गाता है' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस लेख में चंबा के दो गीत थे, एक के बोल इस प्रकार थे :

ऊचे ऊचे ठेढू हो हो बँसरी बजान्दा वो बैरिया०।

इस गीत में प्रेयसी अपने प्रेमी को बाँसुरी बजाते सुनकर विरहव्यथा से पीड़ित होकर उसे आने का निमंत्रण देती है। बहाना बताती है यह कि तुम्हारे हाथ में हुका, डिबिया में तंबाकू तो है, किंतु आग लेने के बहाने ही मिल जाओ।

एक अन्य गीत में वैशाखी आने पर दूर देश में पति के घर रहनेवाली एक स्त्री अपने मायके संदेश भेजती है :

पंजे ता सत्ते अम्मा विशू आया, हो विशू तिहारे भिंजो सद्दे हो।
दाही ता होली मेरी अम्मड़ी जो, हो भाउए जो सहरणा भेजे हो।
पिन्दड़ी ता पिन्दड़ी सस्सु कप्पु खाई,
हो पिन्दड़ी रे पट्ठे भिंजो देत्ते हो।

कितनी ममता है इस गीत में!

एक अन्य गीत में मेघ से प्रार्थना की जाती है :

गुड़के चमके माउआ मेघा हो, हो वह चम्यालाँ रे देशा हो।
किह्याँ गुड़काँ किह्याँ चमका हो, अंबर भरोरा तारे हो।
कुथुए दी आई काली बादली हो, कुथुए दा बरसेया मेघा हो।
छाती री आई काली बादली हो, हो नेणा रा बरसेया मेघा हो।

श्री एम० एस० रनधावा (दिल्ली के भूतपूर्व मुख्यायुक्त) के भी कुछ लेख 'ट्रिब्यून', 'हिंदुस्तान टाइम्स' आदि अंग्रेजी पत्रों में प्रकाशित हुए जिनमें चंबा के लोकगीत और उनकी व्याख्या दी गई है। इनके अतिरिक्त मेरे अनेक लेख चंबियाली लोकगीतों पर 'वीर अर्जुन', 'लोकतंत्र', 'हिमप्रस्थ', 'सहयोग', 'मिलाप' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए और हो रहे हैं।

श्री मैथिलीप्रसाद भारद्वाज ने 'हिमप्रस्थ' में एक लेख 'गल्लाँ होई बीतियाँ-' शीर्षक से प्रकाशित करवाया। इसमें चंबा की एक मार्मिक प्रणयगाथा का लोकगीत था। उसी समय से इस कथा को नाटक रूप में प्रकाशित कराने की बात मेरे मस्तिष्क में घूम रही थी। अतः मैंने 'गल्लाँ होई बीतियाँ' शीर्षक से ही नाटक रूप में इसी गीत को आधार बनाकर प्रकाशित करवाया। 'चंबा गाता है' शीर्षक से लोकगीतों का एक संग्रह भी लेखक के पास प्रकाशनार्थ तैयार है।

श्री अमरसिंह रणपतिया, श्री मैथिलीप्रसाद भारद्वाज आदि युवक भी लोकसाहित्य पर यदाकदा लेखनी उठाते रहते हैं। आज सभी प्रांतों की सरकारें तथा केंद्रीय सरकार संस्कृति के इस महत्वपूर्ण अंग लोकसाहित्य के उत्थान के लिये लाखों रुपए व्यय कर रही है। साहित्य अकादमी तथा संगीत नाटक अकादमी द्वारा परिश्रमी लेखकों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

किंतु खेद का विषय है कि हिमाचल में इस दिशा में कुछ भी नहीं किया गया है। जो कुछ कार्य हुआ है वह व्यक्तिगत रूप से ही हुआ है।

हिमाचल जहाँ भौतिक रूप में रत्नाकर के नाम से विश्वविख्यात है, वहाँ बौद्धिक रूप में भी व्यास, मांडव्य, परशुराम, जमदग्नि आदि महर्षियों की तपोभूमि

रही है। उन्हीं के विचारों की पावन त्रिवेणी यहाँ के लोकसाहित्य में युगों से प्रवाहित हो रही है। आवश्यकता है केवल उसे गहरे पानी पैठ संग्रह करने और लिपिबद्ध करके जनताजनार्दन के समक्ष प्रस्तुत करने की। आशा है, जनता और सरकार शीघ्र ही इस ओर उचित क्रियात्मक पग उठाकर भारतीय साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान देंगी।

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना खंड 'प्र०' द्वारा तथा विभिन्न लोकसाहित्य संबंधी प्रकरण

आद्यक्षरों द्वारा संकेतिक हैं।

घ

च

झ

ट

भ

म

ल

लोकसाहित्य संबंधी ग्रंथसूची

हिंदी में लोकसाहित्य संबंधी ग्रंथसूची का नितांत अभाव है। इसलिये पाठकों की सुविधा के लिये तत्संबंधी पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की जा रही है। यह ग्रंथसूची दो भागों में विभक्त है : (१) हिंदी भाषा में लिखे गए ग्रंथों की सूची तथा (२) अंग्रेजी में लिखे गए ग्रंथों की सूची। हिंदी तथा अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं में लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति संबंधी सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए हैं। स्थानाभाव के कारण उन सभी लेखों की सूची यहाँ नहीं दी जा सकी है।

मैथिली

कपिलेश्वर झा—डाक वचनामृत (भाग १–४)
कालिकुमार दास—मैथिली गीतांजलि (भाग १–३)
कृष्णकांत मिश्र—मैथिली साहित्यक इतिहास (लहरियासराय, दरभंगा)
डा० जयकांत मिश्र—ए हिस्ट्री आव् मैथिली लिटरेचर
बैजनाथसिंह 'विनोद'—मैथिली साहित्य (पटना)
रामइकबाल सिंह 'राकेश'—मैथिली लोकगीत (हिं० सा० स०, प्रयाग)
" " मैथिली ग्रामसाहित्य ('माधुरी', लखनऊ, मार्च, १६३६)
" " मैथिली ग्रामसाहित्य में करुण रस (माधुरी, लखनऊ, जून, १६३६)
" " मैथिली गीतिकाव्य ('हिंदुस्तानी', प्रयाग, अक्टूबर, १६४२)

मगही

कृष्णदेव प्रसाद—मगही भाषा और उसका साहित्य (रा० भा० प० पटना)
कपिलदेव सिंह—मगही भाषा और साहित्य (पटना)
रमाशंकर शास्त्री—मगही (एकंगरसराय, बिहार)
श्रीकांत शास्त्री—मगही कहावतें ('जनपद', वैशाख, सं० २०१० वि०)

भोजपुरी

आर्चर, डब्ल्यू० जी० तथा संकटाप्रसाद—भोजपुरी ग्राम्यगीत (पटना)
डा० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य (रा० भा० परिषद्, पटना)

डा० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी मुहावरे (हिंदुस्तानी, प्रयाग, अप्रैल तथा अक्टूबर, १६४० ई०, जनवरी, १६४१ ई०)
„ „ „ भोजपुरी पहेलियाँ ('हिंदुस्तानी', प्रयाग, अक्टूबर तथा दिसंबर १६४२ ई०)
„ „ „ भोजपुरी लोकोक्तियाँ ('हिंदुस्तानी' प्रयाग, अप्रैल, १६३६ ई०, जूलाई १६३६ ई०)
„ „ „ ओरिजिन एंड डेवलपमेंट आव् भोजपुरी लैंग्वेज (एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता)
डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीत भाग १, भाग २
„ „ „ भोजपुरी और उसका साहित्य (नई दिल्ली)
„ „ „ भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन (वाराणसी)
„ „ „ भोजपुरी लोककथाएँ (इलाहाबाद)
„ „ „ लोकसाहित्य की भूमिका (इलाहाबाद)
ग्रियर्सन, डा० सर जार्ज अब्राहम—सम बिहारी फोकसांग्स (जे० आर० ए० एस० भाग १६ (१८८४ ई०), पृ० १६६)
„ „ „ सम भोजपुरी फोकसांग्स, वही, भाग १८ (१८८६ ई०), पृ० २०७
„ „ „ फोकलोर फ्राम ईस्टर्न गोरखपुर (जे० ए० एस० बी०, भाग ५२ (१८८३ ई०) पृ० १)
„ „ „ टू वर्शंस आव् द सांग आव् गोपीचंद,(वही), भाग ५४ (१८८५ ई०), पार्ट १, पृ० ३५
„ „ „ दि सांग आव् विजयमल, वही, भाग ५३ (१८८४ ई०), पार्ट ३, पृ० ६४
„ „ „ दि सांग आव् आल्हाज मैरेज (इंडियन एंटीक्वेरी, भाग १४ (१८८५ ई०), पृ० २०६)
„ „ „ ए समरी आव् दि आल्हखंड, वही, भाग १४ (१८८५ ई०), पृ० २०६
„ „ „ सेलेक्टेड स्पेसिमेन्स आव् दि बिहारी लैंग्वेज—दि भोजपुरी डाइलेक्ट, द गीत नयका बनजरवा—जेड० डी० एम० जी०, भाग ४३ (१८८६ ई०), पार्ट २, पृ० ४६७
„ „ „ दि सांग आव् मानिकचंद-जे० ए० एस० बी०, भाग १३, खंड १, संख्या ३ (१८७८ ई०)

ग्रियर्सन, डा० सर जार्ज अब्राहम—दि ले आव् आल्हा
" " " दि पापुलर लिटरेचर आव् नार्दर्न इंडिया (बुलेटिन आव् द स्कूल आव् ओरिएंटल ऐंड अफ्रिकन स्टडीज, लंदन, भाग १, पार्ट ३ (१९२०), पृ० ८७)
" " " बिहार पीजेंट लाइफ
दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (हिं० सा० सं०, इलाहाबाद)
" " भोजपुरी के कवि और काव्य (रा० भा० प०, पटना)
बैजनाथसिंह 'विनोद'—भोजपुरी लोकसाहित्य—एक अध्ययन
रघुवंशनारायण सिंह—'भोजपुरी' पत्रिका
रामनरेश त्रिपाठी—कविताकौमुदी, भाग ५ (इलाहाबाद)
डाक्टर सत्यव्रत सिनहा—भोजपुरी लोकगाथा (हिं० ए०, प्रयाग)

अवधी

इंदुप्रकाश पांडेय, प्रोफेसर—अवधी लोकगीत और परंपरा (प्रयाग)
डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित—अवधी और उसका साहित्य, नई दिल्ली
सत्यव्रत अवस्थी—बिहाग रागिनी

बघेली

लखनप्रताप 'उरगेश'—बघेली लोकगीत
श्रीचंद्र जैन – विंध्यप्रदेश के लोकगीत
" " विंध्यभूमि की लोककथाएँ
डा० उदयनारायण तिवारी—हिंदी और हिंदी की बोलियाँ,
लाल भानुसिंह बघेल – 'बांधव', वर्ष २, अंक ७, ८, ९।
हरिकृष्ण देवसरे—'विंध्यभूमि', लोकसंस्कृति अंक, अगस्त, १९५५
माधव विनायक किबे—रीवाँ राज्य के गोंड
श्रीचंद्र जैन—विंध्यप्रदेश के आदिवासियों के लोकगीत, प्रकाशक—मिश्रबंधु, जबलपुर, 'आदिवासियों की लोककथाएँ, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली।
पं० गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री—विंध्यप्रदेश का इतिहास
बैजनाथप्रसाद 'बैजू'—'बैजू की सूक्तियाँ'

छत्तीसगढ़ी

चंद्रकुमार—छत्तीसगढ़ की लोककथाएँ, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली

खोजी—छत्तीसगढ़ी लोकगीत ('छत्तीसगढ़ी', मई, ५५, छत्तीसगढ़ी शोधसंस्थान, रायपुर)

बुंदेलखंडी

कृष्णानंद गुप्त—ईसुरी की फागें
शिवसहाय चतुर्वेदी—बुंदेलखंड की ग्राम्य कहानियाँ
,, ,, गौने की बिदा
,, ,, पाषाणनगरी
,, ,, बुंदेलखंडी लोकगीत
,, ,, हमारी लोककथाएँ (सस्तासाहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली)
श्रीचंद्र जैन—बुंदेलखंड के लोककवि

ब्रज

आदर्शकुमारी यशपाल—ब्रज की लोककथाएँ (नई दिल्ली)
डा० सत्येंद्र—ब्रज की लोककहानियाँ
,, ,, ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन
,, ,, ब्रज लोकसंस्कृति
,, ,, ब्रज ग्रामसाहित्य का विवरण (ब्रजसाहित्य मंडल, मथुरा)
,, ,, जाहरपीर या गुरुगुग्गा

कनउजी

संतराम 'अनिल'—कन्नौजी लोकसाहित्य
डा० धीरेंद्र वर्मा—ग्रामीण हिंदी

राजस्थानी लोकसाहित्य

ओमप्रकाश गुप्त—मारवाड़ी गीतसंग्रह (नई दिल्ली)
गणपति स्वामी—जीण माता रो गीत
,, ,, तेजा जी रो गीत
,, ,, पाबू जी रा पँवाड़ा
गेंडाराम वर्मा—राजस्थानी लोकोत्सव
जगदीशसिंह गहलोत—मारवाड़ के ग्रामगीत (१६१६)
ताराचंद ओझा—मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह
देवीलाल सामर—राजस्थानी लोकसंगीत
,, ,, राजस्थान के लोकानुरंजन
,, ,, राजस्थानी लोकनृत्य
,, ,, राजस्थानी लोकनाट्य

नरोत्तमदास स्वामी—राजस्थान रा दूहा, भाग १
नागरमल गोपा—राजस्थानी संगीत
निहालचंद वर्मा –मारवाड़ी गीत
पद्मा भगत तेली—रुक्मिणी मंगल
„ „ कृष्ण रुक्मिणी रो ब्यावलो
पुरुषोत्तमदास पुरोहित—पुष्करणों का सामाजिक गीत
पुरुषोत्तम मेनारिया—राजस्थानी लोकगीत
प्रह्लाद शर्मा गौड़—मारवाड़ी गीत और भजनसंग्रह (दिल्ली)
बैजनाथ केडिया (प्रकाशक)—मारवाड़ी गीत (कलकत्ता)
मदनलाल वैश्य—मारवाड़ी गीतमाला
मेहता रघुनाथसिंह –जैसलमेरीय संगीतरत्नाकर (लखनऊ)
रामनरेश त्रिपाठी—मारवाड़ के मनोहर खाती (प्रयाग)
„ „ राजस्थानी भीलों के लोकगीत (उदयपुर)
रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत—राजस्थानी लोकगीत
विद्याधरी देवी—असली मारवाड़ी गीतसंग्रह
सरदारमल जी थानवी—घुड़ला
सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत (हिं० सा० स०, प्रयाग)
„ „ राजस्थान के ग्रामगीत, भाग १ (आगरा)
„ „ राजस्थान के लोकगीत, भाग १–२ (कलकत्ता)
सौभाग्यसिंह शेखावत—'जीणमाता' (जयपुर)
सुखवीरसिंह गहलोत—राजस्थानी कृषि कहावतें (जोधपुर)
जगदीशसिंह गहलोत—राजस्थानी वातालार्थ (जोधपुर)

मालवी

रतनलाल मेहता—मालवी कहावतें (शोधसंस्थान, उदयपुर)
डा० श्याम परमार—मालवी लोकगीत (इंदौर)
„ „ „ मालवी और उसका साहित्य (नई दिल्ली)
„ „ „ मालवा की लोककथाएँ (दिल्ली)
„ „ „ लोकधर्मी नाट्यपरंपरा (वाराणसी)

कौरवी

राहुल सांकृत्यायन—आदि हिंदी की कहानियाँ और गीत
सीतादेवी—धूलिधूसरित मणियाँ

पंजाबी

(क) हिंदी भाषा में

नरेंद्र धीर—मैं धरती पंजाब की
,, ,, धरती मेरी बोलती
संतराम—पंजाबी गीत

(ख) पंजाबी भाषा में

अमृता प्रीतम—पंजाब दी आवाज
,, ,, मौली ते महिंदी
अवतारसिंह दलेर—पंजाबी लोकगीत, रूप ते बखतर
उत्तमसिंह तेज—रंगरँगीले गीत (अमृतसर)
कर्तारसिंह शमशेर—जीऊँ दी दुनियाँ (अमृतसर)
देवेंद्र सत्यार्थी—गिद्धा (अमृतसर)
प्रीतमसिंह 'प्रीतम'—कुरियाँ दे गीत (अमृतसर)
भगवानसिंह दास—बीवियाँ दे गीत (अमृतसर)
महेंद्रसिंह रंधावा—पंजाब दे गीत
रामशरण दास—पंजाब दे गीत
वणजारा बेदी—पंजाब दीआँ लोक कहाणीआँ
,, ,, पंजाब दीआँ जनोर कहाणियाँ
शमशेरसिंह—वार दे ढोले
संतोखसिंह धीर—लोकगीताँ वारे
हरजीत सिंह—नै झनाँ
हरभजन सिंह—पंजाबण दे गीत

डोगरी

घनश्याम सेठी—डुग्गर प्रदेश के लोकगीत ('नई धारा', पटना, फरवरी, १९५३)
,, ,, काश्मीर की तीन लोककथाएँ (संमेलन पत्रिका, प्रयाग, आश्विन, २०११)
रामनरेश त्रिपाठी—काश्मीरी ग्रामगीत ('हिंदुस्तानी', प्रयाग, जुलाई, १९३७)

गढ़वाली

अंबादत्त डंगवाल—गढ़वाली कहावत संग्रह
गिरिजादत्त नैथाणी—माँगल संग्रह
डा० गोविंद 'चातक'—गढ़वाली लोकगीत
,, ,, ,, गढ़वाल के कथात्मक लोकगीत

राहुल सांकृत्यायन—हिमालय परिचय (गढ़वाल)
ललिताप्रसाद 'नैथाणी'—गढ़वाली लोकनृत्य (संमेलन पत्रिका, प्रयाग, श्रावण-आश्विन सं० २००४)
वाचस्पति गैरोला—गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण (विशाल भारत, कलकत्ता, मार्च, ५३)
वीरेंद्रमोहन रतूड़ी—गढ़वाल की नारी और उसके गीत ('प्रवाह', अकोला, जनवरी, ५३)
वासुदेवशरण अग्रवाल—गढ़वाली लोकगीत ('सरस्वती', प्रयाग, फरवरी, ५५)
शालिग्राम वैष्णव—'गढ़वाली पखाणा'
शिवनारायण सिंह 'विष्ट'—गढ़ू सुमरियाल

कुमाऊँनी

गुमानी कवि—फुटकल कविताएँ।
चंदूलाल—'प्यास'
मोहनचंद्र उपरेती—कुमाऊँनी लोकसाहित्य
शिवदत्त सती—भावर के गीत
" " गोपादेवी के गीत

नेपाली

कन्हैयालाल भिंडा—नेपाली लोकगीतों की एक झलक ('अवंतिका', अगस्त, १९५५)
" " नेपालियों के प्रसिद्ध त्योहार ('सरस्वती', इलाहाबाद, सितंबर, ५३)
दिल्लीरमण रेगमी—नेपाल की 'नेवार' जाति ('सरस्वती', इलाहाबाद, अगस्त, ४२)
नारायणसिंह नेपाली—नेपाल के सरस लोकगीत ('हिंदुस्तान', नई दिल्ली, २ मई, ५४)

चंबियाली

दौलतराम गुप्त—'हिमतरंग'
मैथिलीप्रसाद भारद्वाज—'गल्लाँ होई बीतियाँ' ('हिमप्रस्थ')
राहुल सांकृत्यायन—किन्नरदेश में
हरिप्रसाद 'सुमन'—'चंबा गाता है' ('आजकल', नई दिल्ली)

मिश्रित गीतसंग्रह

देवेंद्र सत्यार्थी—धरती गाती है (नई दिल्ली)
,, ,, बाजत आवे ढोल (नई दिल्ली)
,, ,, धीरे बहो गंगा (नई दिल्ली)
,, ,, बेला फूले आधी रात (नई दिल्ली)
डा० श्याम परमार – भारतीय लोकसाहित्य (नई दिल्ली)
रामनरेश त्रिपाठी—कविताकौमुदी, भाग ५ (ग्रामगीत), (प्रयाग)
,, ,, हमारा ग्रामसाहित्य (प्रयाग)
,, ,, सोहर (प्रयाग)
,, ,, 'हमारा ग्रामसाहित्य', भाग १, २, ३ (नई दिल्ली)
रामकिशोरी श्रीवास्तव – हिंदी लोकगीत (प्रयाग)
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथिवीपुत्र (द्वितीय संस्करण), रामप्रसाद ऐंड संस (आगरा)
,, ,, ,, माताभूमि, चेतना प्रकाशन (हैदराबाद)

(ख) अँग्रेजी ग्रंथ

आगरकर, ए० जे० –फोक डांस आव् महाराष्ट्र
,, ,, ए ग्लासरी आव् कास्ट्स, ट्राइब्स ऐंड रेसेज इन बड़ौदा स्टेट (बंबई)
आर्चर, डब्ल्यू० जी०—'दि ब्ल्यू ग्रोव्' (लंदन)
,, ,, 'दि वर्टिकल मैन' (लंदन, १९४७)
,, ,, 'दि डव् ऐंड दि लेपर्ड (कलकत्ता, १९४८)
,, ,, 'इंडियन प्रिमिटिव् आर्किटेक्चर'।
इंथोवेन, आर० ई०—'दि फोकलोर आव् बांबे' (आक्सफोर्ड, १९२८)
इमेन्यू, एम० बी०—'कोटा टेक्स्ट्स' (केलिफोर्निया, १९४४–४६)
इलियट, एच० एम०—'मेमायर्स आन दि हिस्ट्री, फोकलोर ऐंड डिस्ट्रीब्यूशन आव् दि रेसेज आव् नार्थवेस्टर्न प्राविंस आव् इंडिया' (१८६९)
उसबोर्न, सी० एफ० –'पंजाबी लिरिक्स ऐंड प्रोवर्ब्स' (लाहौर, १९०५)
ऐंडरसन, जे० डी०—कलेक्शन आव कचारी फोकटेल्स ऐंड राइम्स (शिलांग, १८९५)
ऐंडल, रेवेरेंड सिडनी—'दि कचारीज' (लंदन, १९११)
ऐबट, जे०—'दि कीज आव् पावर—ए स्टडी आव् इंडियन रिचुअल ऐंड बिलीफ' (१९३२)

एलविन वैरियर – दि बैगा (मरे, लंदन १६३६)
„ „ दि अगारिया (आ० यू० प्रे०, बंबई १६४२)
„ „ मरिया मर्डर ऐंड सुइसाइड (आ० यू० प्रे०; १६४३)
„ „ 'दि मरिया ऐंड देअर घोटुल' (आ० यू० प्रे०; बंबई, १६४७)
„ „ 'फोकटेल्स आव् महाकोशल' (आ० यू० प्रे०, बंबई, १६४४)
„ „ 'फोकसाँग्स आव् छत्तीसगढ़' (आ० यू० प्रे०, बंबई, १६४६)
„ „ 'दि ट्राइबल आर्ट आव् मिडिल इंडिया' (आ० यू० प्रे०)
„ „ 'ए फिलासफी आव् नेमा'
„ „ मिथ्स आव् मिडिल इंडिया (आ० यू० प्रे०, बंबई)
„ „ 'ट्राइबल मिथ्स आव् ओरिसा' (आ० यू० प्रे०, बंबई)
„ „ 'लीव्ज फ्राम दि जंगल' (मरे, लंदन १६३६)
„ „ 'दि ऐबारिजिनल्स' (आ० यू० प्रे०)
एलविन तथा हिवाले—'दि फोकसाँग्स आव् मैकल हिल्स' (बंबई, १६४४)
एलविन तथा श्यामराव हिवाले—'साँग्स आव् दि फारेस्ट' (जार्ज ऐलेन ऐंड अनविन, लंदन, १६३५)
ऐयंगर, एम० वी०—'पापुलर कल्चर इन कर्नाटक' (बँगलोर, १६३७)
ऐयंगर, एम० एस०—'तामिल स्टडीज' (मद्रास, १६१४)
ऐरेंफेल्स, ओ० आर०—'मदर राइट इन इंडिया' (हैदराबाद, १६४१)
ऐयर, एल० ए० के० –'कोचीन ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स (मद्रास, १६०६)
„ „ दि ट्रेवेनकोर ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स (ट्रिवेंड्रम, १६३७)
ऐयर, अनंतकृष्ण तथा नंजुदय्या, एच० वी०—दि मैसूर ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स (मैसूर, १६२८)

ओब्रायन, ई०—मुल्तानी ग्रामर।
कज़ंस, मारगैरेट ई०—दि म्युजिक आव् ओरिएंट ऐंड आक्सिडेंट (१६१५)
कस्तूरी, एन०—फोक डांसेज ऐंड प्लेज इन मैसूर (मैसूर, १६३७)
कानूनगो, के० आर०—'फ्रैगमेंट आव् वाओ बैलेड इन हिंदी', सरदेसाई कामेमोरेशन वाल्यूम (बंबई, १६३८)
कुल्शो, डब्ल्यू० जे०—'ट्राइबल हेरिटेज, ए स्टडी आव् संताल्स' (लंदन, १६४६)
कुमारस्वामी, आनंद के०-तथा रत्नादेवी—थर्टी साँग्स फ्राम दि पंजाब ऐंड काश्मीर (लंदन)
„ „ „ आर्ट ऐंड स्वदेशी (मद्रास)
कोल्ड्रे, ओसवाल्ड जे०—साउथ इंडियन अवर्स (लंदन, १६२४)
क्रिश्चियन, जे०—बिहार प्रोवर्ब्स (लंदन, १८६१)

क्रुक, विलियम—रिलीजन ऐंड फोकलोर आव् नार्दर्न इंडिया (आ० यू० प्रे०, १९२६, तृतीय संस्करण)

" " ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आव् नार्थ वेस्टर्न प्राविंस (इलाहाबाद,)

गुर्डन, पी० आर० टी० –दि खासीज (लंडन, १९१४)

गुरुवायुरु—ए कलेक्शन आव् तेलेगु प्रोवर्ब्स (मद्रास, १८३८)

" " सम आसामीज प्रोवर्ब्स (१८९६)

गैरोला, तारादत्त-तथा ओकले, इ० एस०—'हिमालयन फोकलोर' (गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद, १९३५)

गोवर, चार्ल्स, ई० —फोकसाँग्स आव् सदर्न इंडिया (मद्रास, १८७१)

गोवर, जी०—हिमालयन विलेज (लंदन, १९३८)

गोस्वामी, प्रफुल्लदत्त—बिहू साँग्स आव् आसाम, (लाइयर्स बुकस्टाल, गौहाटी, आसाम, १९५७)

गौरुदल, जे०—कांट्रीब्यूशन टु संताल हाइमोलाजी (बर्गेन, १९३५)

गंगादत्त उपरेती—प्रोवर्ब्स ऐंड फोकलोर आव् कुमाऊँ ऐंड गढ़वाल (लोदियाना, १८९२)

ग्रिगनार्ड, ए०—'हांस ओराँव फोकलोर' (पटना, १९३१)

ग्रिगसन, डब्ल्यू० वी०—'दि मरिया गोंड्स आव् बस्तर' (आक्सफोर्ड, १९३८)

ग्रियर्सन, सर जी० ए०—बिहार पीजेंट लाइफ (पटना, १९१८)

" " दि ले आव् आल्हा (आ० यू० प्रे०, १९२३)

घुरये, जी० एस०—'कास्ट ऐंड रेस इन इंडिया' (बंबई)

चटर्जी, नयनमोहन-तथा दास, तारकचंद्र—अल्पना रिचुअल डेकोरेशन इन बंगाल (कलकत्ता, १९४८)

चेलसेका, टी० –'पैरेलल प्रोवर्ब्स आव् तामिल ऐंड इंगलिश (मद्रास, १८९९)

जमशेद जी पेटिट—कलेक्शन आव् गुजराती प्रोवर्ब्स

जेम्स लांग—'ईस्टर्न प्रोवर्ब्स ऐंड ऐक्लेंस (लंडन, १८८१)

झवेरी, के० एम०—माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर (बंबई, १९३८)

टाड, कर्नल—ऐनल्स ऐंड ऐंटीक्वीटीज आव् राजस्थान (आक्सफार्ड, १९२०)

ट्रेंच, सी० जी० सी०—ए ग्रामर आव् गोंडी (मद्रास, १९१९)

टेंपुल, रिचर्ड सी०—दि लीजेंड्स आव् दि पंजाब (बंबई, १८८४-१९०१, तीन भाग)

डाउसन, जे०—'ए क्लासिकल डिक्शनरी आव् हिंदू माइथोलोजी ऐंड रिलिजन' (१९०८)

डाल्टन, ई० टी०—डिस्क्रिप्टिव इथनोलाजी आव् बंगाल (कलकत्ता, १८७२)

डायर, टी०—फोकलोर आव् प्लांट्स
डुबोई, एल०—हिंदू मैनर्स, कस्टम्स ऐंड सेरिमनीज (१६०६)
डुबाश, पी० एन०—हिंदू आर्ट इन इट्स सोशल सेटिंग (१६३६)
डे—म्यूजिक आव् सदर्न इंडिया
डेम्स, डब्ल्यू० टी०—पापुलर पोइट्री आव् दि बिलोचीज (लंदन, १६०७)
तोरुदत्त—एंशेंट बैलेड्स ऐंड लीजेंड्स आव् हिंदुस्तान (कलकत्ता, १८८२)
थर्स्टन, ई० –इथनोग्राफिक नोट्स इन सदर्न इंडिया (मद्रास, १६०६)
" " कास्ट्स ऐंड ट्राइब्स आव् सदर्न इंडिया—सात भागों में (मद्रास, १६०६–६)
" " ओमेन्स ऐंड सुपरस्टीशंस आव् सदर्न इंडिया (लंदन, १६१२)
दत्त, गुरुसदय –दि फोक आर्ट आव् बंगाल
दास, कुंजबिहारी—ए स्टडी आव् ओरिस्सन फोकलोर (विश्वभारती, शांतिनिकेतन, १६५३)
दास, एस०—ए हिस्ट्री आव् शाक्तज
दासगुप्त, शशिभूषण—आकल्ट रिलिजस कल्ट्स (कलकत्ता विश्वविद्यालय)
दिवेतिया, एन० बी०—'गुजराती लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर, भाग १–२ (१६२६)
देवेंद्र सत्यार्थी—मीट माइ पीपुल (चेतना, हैदराबाद, १६५१)
दुबे, श्यामाचरण—फील्ड सॉंग्स आव् छत्तीसगढ़ (युनिवर्सल बुकडिपो, लखनऊ)
" " दि कमार्स (युनिवर्सल बुकडिपो, लखनऊ)
देशपांडे, गणेश नारायण—ए डिक्शनरी आव् मराठी प्रोवर्ब्स (पूना, १६००)
नटेश शास्त्री—फोकलोर इन सदर्न इंडिया
" " फेमिलियर तामिल प्रोवर्ब्स
पंत, एस० डी० –दि सोशल एकोनामी आव् दि हिमालयाज (लंदन, १६३५)
पर्सिवल, पी० –दि तामिल प्रोवर्ब्स (मद्रास, १८७४)
पॅंजर, एन० एम०—दि ओशन आव् स्टोरीं (लंडन, १६२४–२८)
पैंगटे, के० एस०—लोनली फरोज आव् दि बार्डर लैंड (लखनऊ, १६४६)
प्रधान, जी० आर०—'अनटचेबुल वर्कर्स आव् बांबे सिटी' (बंबई, १६३८)
प्लेफेयर, ए०—दि गारोज (लंडन, १६०६)
फारसाइथ, जे०—'दि हाइलैंड्स आव् सेंट्रल इंडिया' (लंदन, १८७१)
फुरेर, हैमनडोर्फ सी० वान –दि चेंचुज (हैदराबाद, १६४३)
" " " दि नेकेड नागाज (लंदन, १६३६)
" " " 'दि रेड्डीज आव् दि बिसोन हिल्स' (लंदन, १६४५)

फुरेर, हैमनडोर्फ सी० वान—दि राजगोंड्स आव् आदिलाबाद (लंदन, १६४८)
फैरे, एन० ई०—दि लाखेर्स (लंदन, १६३२)
फैलेन, एस० डब्ल्यू०—ए डिक्शनरी आव् हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स (१८८६)
बक, सी० एच०—फेथ्स, फेयर्स ऍंड फेस्टिवल आव् इंडिया (१६१७)
बनर्जी, बी०—एथ्नोलाजिक डु बेंगाल
बनर्जी, यू० के०—हैंडबुक आव् प्रोवर्ब्स—इंगलिश ऍंड बेंगाली (कलकत्ता, १८६१)
बनर्जी, प्रजेश—'दि फोकडांस आव् इंडिया' (इलाहाबाद, १६४४)
" " 'दि डांस आव् इंडिया' (इलाहाबाद)
बर्टन, आर० एफ०—'सिंध ऍंड दि रेसेज दैट इनहैबिट दि वैली आव् इंडस' (१८५१)
" " 'सिंध रिविजिटेड' (१८७७)
बसु, एम० एम०—'पोस्ट-चैतन्य सहजिया कल्ट' (कलकत्ता)
बसु, एम० एन०—'दि बुनाज आव् बेंगाल (कलकत्ता, १६३६)
बारलेट, एफ० सी०—'साइकोलाजी आव् प्रिमिटिव कल्चर' (कैंब्रिज, १६२३)
बरुआ, विरंचिकुमार—'आसामीज लिटरेचर' (बंबई, १६४१)
बेक, ए०—इंडियन म्यूजिक
बेरिंग, क्लाउड—स्ट्रेंज सरवाइवल्स (१८६२)
बेगलर, जे० डी०—'रिपोर्ट्स आव् दि आर्कैयालाजिकल सर्वे आव् इंडिया', भाग ८ (१८७८)
बेदी, फ्रेडा—बिहाइंड दि मड वाल्स (लाहौर, १६४५)
बोडिंग, पी० ओ०—ए संताल डिक्शनरी (भाग १–५) (ओसलो, १६२५–२६)
" " 'ट्रेडीशंस ऍंड इंस्टीट्यूशंस आव् दि संताल्स' (ओसलो, १६४०)
ब्यायड—विलेज फोक आव् इंडिया (१६२४)
ब्याएज, एफ०—प्रिमिटिव् आर्ट
ब्रिग्स, जी० डब्ल्यू०—दि चमार्स
" " गोरखनाथ ऍंड दि कनफटा जोगीज (कलकत्ता, १६३८)
भंडारी, एन० एस०—'स्नोबाल्स आव् गढ़वाल' (यूनिवर्सल बुकडिपो, लखनऊ)
भागवत, एम० जी०—दि फारमर, हिज वेलफेयर ऍंड वेल्थ (बंबई, १६४३)

भार्गव, बी० एस०—दि क्रिमिनल ट्राइब्स
मजुमदार, डी० एन०—'ए ट्राइब इन ट्रांजिशन (लंदन, १९३७)
„ „ फोक सॉंग्स आव् मिर्ज़ापुर
„ „ दि फारचून्स आव् प्रिमिटिव ट्राइब्स
„ „ दि मेट्रिक्स आव् इंडियन कल्चर
„ „ दि अफेयर्स आव् ए ट्राइब
मिल्स, जे० पी०—दि लोहता नागाज (लंदन, १९२२)
„ „ दि आवो नागाज (लंदन, १९२६)
„ „ दि रेंगमा नागाज (लंदन, १९३७)
मुकर्जी, सी०—दि संताल्स (कलकत्ता, १९४३)
मैकनोची—ऐग्रिकल्चरल प्रोवर्ब्स आव् दि पंजाब।
रसल, आर० वी० तथा—डा० हीरालाल—'दि ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आव् दि सेंट्रल प्राविंसेज आव् इंडिया (लंदन, १९१६)

रतनजानकर, एस० एन०—फोकसॉंग्स आव् भरतपुर (भरतपुर, १९३६)
राममूर्ति, जी० वी०—ए मैन्युअल आव् सवर लैंग्वेज (मद्रास, १९३१)
राबर्टसन, जी० एस०-द काफिर्स आव् हिंदूकुश (१८९६)
राय, शरच्चंद्र—दि मुंडाज ऐंड देअर कंट्री (कलकत्ता, १९१२)
„ „ दि बिरहोर्स (राँची, १९२५)
„ „ ओराँव रिलिजन ऐंड कस्टम्स (राँची, १९२८)
„ „ दि हिल भुइयाज आफ ओरिस्सा (राँची, १९३५)
„ „ दि खारीज (राँची, १९३७)
„ „ दि ओराँव्स आव् छोटा नागपुर (राँची, १९१५)
„ „
राबिनसन, इ० जे०—टेल्स ऐंड पोएम्स आव् साउथ इंडिया (१८८५)
रिवर्स, डब्ल्यू० एच० आर०—दि टोडाज (लंदन, १९०६)
रिजले, एच० एच०—दि ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आव् बेंगाल (कलकत्ता, १८९१)
रेफी, श्रीमती—फोकटेल्स आव् खासीज (लंदन, १९२०)
रोज, एच० ए०—ए ग्लासरी आव् दि ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स आव् दि पंजाब ऐंड नार्थ-वेस्ट-फ्रंटियर प्राविंसेज (लाहौर, १९१९)

रोरिक, निकोलस—हिमालयाज—एबोड आव् लाइट (बंबई, १९४७)
रोड्रिगनर, ई० ए०—दि हिंदू कास्ट्स (१८४६)
लांगवर्थ, डी० एम०—पापुलर पोएट्री आव् दि बिलोचीज

लुवर्ड, सी० ई० —दि जंगल ट्राइब्स आव् इंडिया (१९०१)
" " एथ्नोलाजिकल सर्वे आव् सेंट्रल इंडिया एजेंसी (लखनऊ, १९०९)

लैटिनर, जी० डब्ल्यू० —मैनर्स एंड कस्टम्स आव् दि दर्द्स ।
वाटरफील्ड, डब्ल्यू० —दि ले आव् आल्हा (आक्सफोर्ड, १९२३)
विल्सन, जे० —'ग्रामर एंड डिक्शनरी आव् वेस्टर्न पंजाबी विद प्रोवर्ब्स, सेइंग्स एंड वर्सेज' (लाहौर)

वेब, ए० डब्लू० टी०—दीज टेन ईयर्स (जयपुर, १९४१)
वैडेल—लामाइज्म
शेक्सपियर—लुशाई कुकी क्लान (१९१२)
शेरिफ, ए० जी० —हिंदी फाकसाँग्स (हिंदीमंदिर, प्रयाग, १९३६)
श्रीनिवास, एम० एन० –मैरेज एंड फैमिली इन मैसूर (बंबई, १९४२)
सरकार, विनयकुमार—दि फोक एलिमेंट इन हिंदू कल्चर (लंदन, १९१७)
सापेकर, जी० जी०—मराठी प्रोवर्ब्स (पूना, १९७२)
सावे, के० जे० –दि वरलीज (बंबई, ११४५)
साहु, लक्ष्मीनारायण—दि हिल ट्राइब्स आव् जयपुर (कटक, १९४२)
सिंह, पूरन—'दि स्पिरिट आव् ओरिएंटल पोएट्री' (लंदन)
सिंह, जवाहर—पंजाबी बातचीत (लाहौर)
सीतापति, जी० वी०—सोरा साँग्स एंड पोएट्री (मद्रास, १९४०)
सेन, दिनेशचंद्र–फोक लिटरेचर आव् बेंगाल (कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२०)
" " ग्लिम्पसेज आव् बेंगाल लाइफ (१९२५)
" " हिस्ट्री आव् बेंगाली लैंग्वेज एंड लिटरेचर (कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९११)
" " ईस्टर्न बेंगाल बैलेड्स भाग १–४ (कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२३–३२)

सेनगुप्त, पी० पी०—डिक्शनरी आव् प्रोवर्ब्स (कलकत्ता, १८९९)
स्विनर्टन सी० –रोमेंटिक टेल्स फ्राम दि पंजाब (वेस्टमिंस्टर, १९०३)
स्टील, फ्लोरा एनी—टेल्स आव् दि पंजाब (लंदन, १८९४)
स्टेक, ई०—दि मिकिर्स (१९०८)
स्टेन, सर आरेल—हातिम्स टेल्स (लंदन, १९२३)
स्लेटर, जी०—ड्रेवेडियन एलिमेंट्स इन इंडियन कलचर (१९२४)

हटन, जे० एच० —द अंगामी नागाज (लंदन, १९२२)
" " दि सेमा नागाज (लंदन, १९२२)
हंटर, डब्ल्यू० डब्ल्यू० —एनल्स ग्राव् रूरल बेंगाल (१८६८)
हान, एफ०—कुरुख फोकलोर इन ग्रोरिजिनल (कलकत्ता, १९०५)
हाफमैन, जे० तथा व्रान इमेलेन, ए० —इनसाइक्लोपीडिया मुंडारिका (पटना, १९३०-३१)
हिवाले, श्यामराव—दि प्रधान्स ग्राव दि अपर नर्मदा वैली (बंबई, १९४६)
हिवाले, श्यामराव तथा एलविन, वैरियर —साँग्स ग्राव् दि फारेस्ट (लंदन, १९३५)
" " " " फोकसाँग्स ग्राव् दि मैकल हिल्स (बंबई, १९४४)
हिस्लप, एस० —पेपर्स रिलेटिंग टु दि एबारिजिनल ट्राइब्स ग्राव् दि सेंट्रल प्राविंसेज (नागपुर, १८६६)

संशोधन तथा संवर्धन

प्रस्तावना खंड में कुछ प्रेस की अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनका संशोधन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :

प्रस्तावना—पृ० १ अंतिम श्लोक की प्रथम पंक्ति का शुद्ध रूप है : बहु व्याहितो वा अयं **बहुशो** लोकः ।

" " २ पादटिप्पणी ५—महाभाष्य **पशपशाह्निक** ।

" " ५ पंक्ति ११—**वावेरु जातक** ।

" " ८ पंक्ति १८—विलियम जान टाम्स

" " " पंक्ति २२—डा० फ्रेजर का 'गोल्डेन बाउ' **१२ (बारह)** भागों में लिखा गया है ।

" " ११ श्लोक का शुद्ध रूप इस प्रकार है :

अस्मिन् महा**मोहमये कटाहे**, सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन ।
मासर्तु दर्वीपरिघट्टनेन, **भूतानि** कालः पचतीति वार्ता ॥

प्रस्तावना—पृ० १८ पादटिप्पणी ३—आ० गृ० सू०

" " १९ पादटिप्पणी २—अमरुक के ग्रंथ का नाम **'अमरुकशतक'** है । गाथासप्तशती के रचयिता राजा हाल या शालिवाहन हैं ।

" " २० प्रथम श्लोक की दूसरी पंक्ति में **'देवदुंदुभयो नेदुः'** होना चाहिए ।

" " २४ पंक्ति ६—**तोरुदत्त** ।

" " २७ शोभनादेवी की पुस्तक का नाम **'ओरिएंट पर्ल्स' है**

" " ३३ पंक्ति ८—जल का **अभाव** ।

" " " पादटिप्पणी १—**अधिकांश** ।

" " ३४ पैरा १, पंक्ति १—**विद्वत्**त्रयी ।

" " ३७ शार्दूल **राजस्थान** रिसर्च इंस्टिट्यूट

" " ३८ आदर्शकुमारी **यशपाल** ।

" " ४१ **करमा** नामक जाति

" " " श्री लखनप्रताप **'उरगेश'**

" " ५८ पंक्ति ११—**भाँगडा** नृत्य

" " ५९ रामचरितमानस

” ” ६० देवदुंदुभयो नेदुः ।
” ” ६५ गृहिणी सचिवः सखी मिथः ।
” ” ६७ सी० ई० गोवर
” पादटिप्पणी २—गोवर
” ” ६६ नागमती
” ” ७० पादटिप्पणी ३, बाँगलार मंगल काव्येर इतिहास ।
” ” १०५ पंक्ति २०—संपादक
” ” ” पाद टिप्पणी १—हिं० सा० बृ० इ०
” ” ११३ श्लोक का शुद्ध पाठ इस प्रकार है :
किंचित्सत्वयुताः नराः ।
कथामिच्छन्ति संकीर्णां ।
” ” १२४ भूतदूत ।
” ” १३२ पैरा २, पंक्ति ३—अनुभवसिद्ध ज्ञान ।
” ” ” पादटिप्पणी—रेशल
” ” १३३ न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
” ” १३४ अदृष्टमप्यर्थमदृष्ट वैभवात् ।
” सुष्ठु भाषितं सुभाषितम् ।
” अन्य देशों के लोकोक्तिसंग्रह ।
” ” १४३ अश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
” ” १४४ कं बलवन्तं न बाधते शीतम् ।
” ” १५४ गोतिनी लुटावेली बनउरवा ।
” ” १७० जगदेव भयो एक दानी ।
” ” १७७ पैरा २—‘गुपु रक्षणे’ धातु
” ” ” ” ‘लुज् छेदने’ धातु

मूल ग्रंथ लोकसाहित्य खंड के पृ० २३४ पर भ्रमवश श्री वंशीधर शुक्ल का उपनाम ‘रमई काका’ लिखा है। वास्तव में ये दो पृथक् व्यक्ति हैं। श्री चंद्रभूषण मिश्र का उपनाम ‘रमई काका’ है, न कि श्री वंशीधर शुक्ल का। श्री चंद्रभूषण मिश्र ‘रमई काका’ के ही नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। ये अनेक वर्षों से आकाशवाणी, लखनऊ से संबद्ध हैं एवं अच्छे कलाकार होने के अतिरिक्त सुयोग्य कवि भी हैं। कविताओं में हास्य और व्यंग्य का पुट अधिक पाया जाता है। कविसंमेलनों में आपकी सरस कविता सुनकर श्रोतागण लोटपोट हो जाते हैं। ‘रमई काका’ का अवधी भाषा के आधुनिक कवियों में प्रधान स्थान है। इनकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है।

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद' ने 'मैथिली साहित्य' नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में लेखक ने मिथिला जनपद का इतिहास, मैथिली भाषा, मैथिली जनजीवन तथा मैथिली साहित्य की संक्षिप्त मीमांसा प्रस्तुत की है। मैथिली साहित्य की जानकारी प्राप्त करने के लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है[1]।

इधर भोजपुरी में दो महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं : (१) महुआ बारी और (२) चतुरी चाचा की चटपटी चिट्ठियाँ। 'महुआ बारी' के लेखक श्री मोती बी० ए० हैं जो श्रीकृष्ण इंटर कालेज, बरहज, जिला देवरिया में प्राध्यापक हैं। आप इसके पहले बंबई में अनेक फिल्मों में गीतकार रह चुके हैं। 'नदिया के पार' फिल्म में गीतों की रचना आपने ही की है। मोती बी० ए० की कविता में सरसता तथा मधुरता प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। 'महुआ बारी' तथा 'रासलीला' आपकी सरस कविताएँ हैं।

श्री मुक्तेश्वर तिवारी एम० ए० मरचेंट्स इंटर कालेज, चिटबड़ागाँव, जिला बलिया में प्राध्यापक हैं। आप 'चतुरी चाचा' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आपकी 'चटपटी चिट्ठियाँ' काशी के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'आज' में अनेक वर्षों से प्रकाशित हो रही हैं जिन्हें पढ़ने के लिये पाठकगण लालायित रहते हैं। इनकी चिट्ठियों का संग्रह 'चतुरी चाचा की चटपटी चिट्ठियाँ' के नाम से दो भागों में प्रकाशित हो चुका है। 'चतुरी चाचा' की शैली बड़ी चलती हुई है जिसमें भोजपुरी समाज का सच्चा चित्रण पाया जाता है।

भोजपुरी लोकसंगीत मंडली, प्रयाग—इधर प्रयाग में लोकसंगीत तथा लोकगीत के प्रचार के लिये भोजपुरी लोकसंगीत मंडली की स्थापना हुई है जिसके संचालक (भदयाँ, आरा) बिहार के निवासी श्री मुद्रिकासिंह हैं। इस मंडली ने देश के विभिन्न भागों में लोकगीतों का प्रदर्शन किया है। इस संस्था का उद्देश्य शिष्ट तथा शिक्षित जनता में लोकसंगीत के प्रति रुचि उत्पन्न करना है। दिल्ली का 'भोजपुरी समाज' भोजपुरी लोकसाहित्य के उन्नयन के लिये प्रयत्नशील है। इस समाज के प्रधान कार्यकर्ता तथा मंत्री श्री त्रिवेणीसहाय जी हैं जिनके प्रयास से यह समाज निरंतर उन्नति करता जा रहा है।

[1] प्रकाशक : श्री अजंता प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड, पटना।